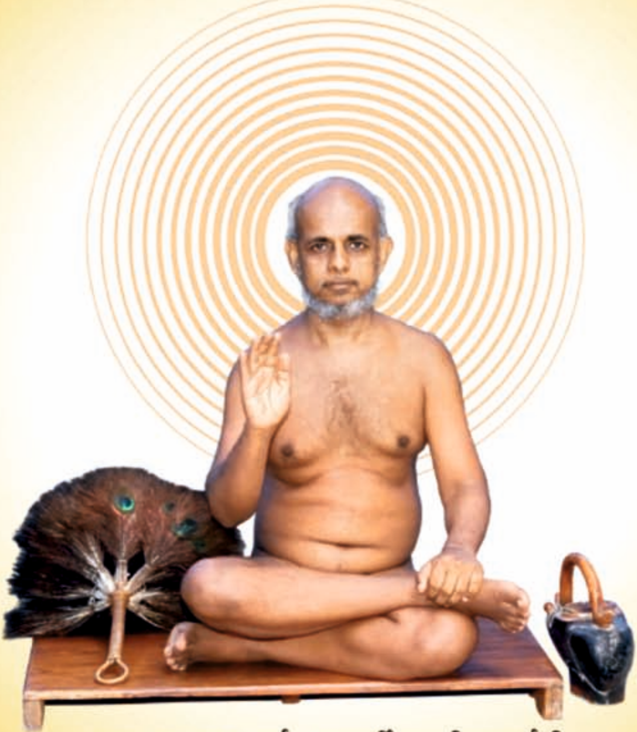

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

लब्धिसार = ०२

ग्रन्थकर्त्ता

परम पूज्य आचार्यश्री नेमिचन्द्र जी महाराज

मराठी अनुवादिका एवं सम्पादिका

डॉक्टर सुजाता रोटे

हिन्दी अनुवादिका एवं सम्पादिका

ब्रह्मचारिणी मृदुला जैन

प्रकाशक

अनेकान्त शोधपीठ

बाहुबली (महाराष्ट्र)

(परम्परानायक)

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्राय: होता है। फलत: उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

।। ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।।

श्रीमद् आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तिविरचित

लब्धिसार

(द्वितीय-भाग)

एवं

श्रीमद् माधवचन्द्राचार्य विरचित

संस्कृत गद्यात्मक

क्षपणासार

: अनुवादिका एवं संपादिका :

ब्र. डॉ. सुश्री. सुजाता रोटे, बाहुबली

शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य, पीएच. डी.

: हिन्दी अनुवादिका :

ब्र. मृदुला जैन, खण्डवा (म.प्र.)

एम्. कॉम.

: प्रकाशक :

अनेकान्त शोधपीठ, बाहुबली

लब्धिसार (द्वितीय भाग) एवं संस्कृत क्षपणासार
पुष्प - १८ वे

- **प्रकाशक -**
  अनेकान्त शोधपीठ, बाहुबली
  ता. हातकणंगले, जि. कोल्हापूर - ४१६११०

- **प्रथम आवृत्ति - १००० प्रति**

- **प्रकाशन तिथी -**
  प. पू. गुरुदेवश्री समन्तभद्र महाराजजी की ३० वी पुण्यस्मृति,
  शनिवार, दि. १८ अगस्त २०१८

- **लागत मूल्य - रू. ३००/-**
  विक्री मूल्य - रू. १००/- (पुन: प्रकाशनार्थ)

- **मुद्रक -**
  श्री. महावीर चौगुले
  एम. स्केअर डिजिटल
  पेपर गल्ली, शनिवार पेठ, पुणे
  ९८२२१४१३१२

- **प्राप्तिस्थान -**
  श्री भरतेश ग्रंथ भांडार
  बाहुबली, जि कोल्हापूर
  फोन नं. : (०२३०) २५८४४२२

  श्री महावीर ग्रंथ भांडार
  कारंजा (लाड), जि. वाशिम
  फोन नं. : (०७२५६) २२२०३१

प्रकाशकीय

प्राचीन गुरुकुल शिक्षा के पुनरुद्धारक प. पू. १०८ गुरुदेवश्री समन्तभद्र महाराजजी ने आषाढ शुक्ल द्वितीया, १३ जुलै १९३४ में 'श्री बाहुबली ब्रह्मचर्याश्रम, बाहुबली' इस गुरुकुल संस्था की संस्थापना की। आज उसे ८४ वर्ष पूर्ण हो चुके हैं। प्रारंभ में केवल पाँच छात्र थे, किन्तु आज चौदह हजार से अधिक छात्र लौकिक शिक्षा के साथ धार्मिक, नैतिक, मूल्य शिक्षा भी प्राप्त कर रहे हैं।

गुरुदेवश्री समन्तभद्र महाराजजीने अनेक गुरुकुलों की तथा अनेक प्रशालाओं की स्थापना की है। अनेक जिनमंदिरों का निर्माण किया। साथ ही जैन संशोधन क्षेत्र में भी विशेष कार्य होता रहे, इस भावना से दि. २० फरवरी १९८३ के दिन 'गुरुकुल दिव्यावदान' इस समारोह के शुभावसर पर राष्ट्रसंत आचार्यश्री विद्यानंद महाराजजी के मंगल सान्निध्य में 'अनेकान्त शोधपीठ' इस ज्ञानपीठ की संस्थापना की। प्रत्यक्ष में दि. १५ जून १९८३ को श्रुतपंचमी के शुभअवसर से शोधपीठ का कार्य प्रारंभ हुआ है।

शोधपीठ का कार्य एवं व्यापकता का विचार करते हुए स्वतंत्र तथा सर्वप्रकार की सुविधाओं से युक्त इमारत की आवश्यकता लगने लगी। तब प. पू. गुरुदेवश्री समन्तभद्र महाराजजी के शुभाशीर्वाद से, आचार्यश्री विद्यानंदजी महाराजजी की प्रेरणासे आदरणीय ब. माणिकचंदजी भीसीकर न्यायतीर्थ एवं गुरुकुलमाता ब्र. गजाबेन इनके अथक प्रयासों से कुछ विद्याप्रेमी उदारदाताओं के औदार्यपूर्ण बृहद्दानराशी के सहयोग से 'श्री कुंदकुंद सिद्धान्तभवन व अनेकान्त शोधपीठ' इसकी भव्य वास्तु की निर्मिती हुई। श्रुतपंचमी के शुभ अवसर पर (दि. २८ मई १९९०) आचार्यश्री विद्यानंद महाराजजी के मंगल सान्निध्य एवं श्रवणबेलगोला के स्वस्तिश्री चारुकीर्ति भट्टारक महास्वामीजी तथा मूडबिद्री के स्वस्तिश्री चारुकीर्ति भट्टारक महास्वामीजी इनके संयुक्त करकमलों से उसका लोकार्पण किया गया।

आजतक इस शोधपीठ के द्वारा अनेक संशोधनात्मक कार्य हुए हैं। अनेक संगोष्ठी एवं चर्चासत्रों का आयोजन किया जाता हैं। विविध स्पर्धाएँ भी आयोजित की जाती है। संशोधकों को जैनविद्या में शोधकार्य हेतु प्रेरित किया जाता हैं। एम. फिल. तथा पीएच. डी. करनेवाले संशोधकों को यथाशक्ति छात्रवृत्ति दी जाती है। 'शिक्षण, प्रशिक्षण व संशोधन विभाग' इस विभाग के द्वारा शिक्षक, प्रशाला एवं समाज के लिए अनेक स्तुत्य उपक्रमों का आयोजन किया जा चुका है। धर्मशिक्षण शिबिरों का आयोजन, कार्यशाला, शैक्षणिक-सामाजिक-सांस्कृतिक इस विषयपर संगोष्ठी, निबंध स्पर्धा, कार्यकर्ता-प्रशिक्षण शिबिर, 'शिक्षण-भारती' त्रैमासिक, परिसर में विद्यमान जिनमंदिरों का सर्वेक्षण इत्यादि उपक्रम इस

विभाग के द्वारा किये जा चुके हैं। इस शोधपीठ के द्वारा अनेक संशोधनात्मक ग्रंथों का प्रकाशन किया गया हैं। दिसंबर २०१० में सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्यश्री नेमिचन्द्रद्वारा विरचित 'लब्धिसार' यह करणानुयोग का श्रेष्ठ ग्रंथ मराठी में अनुवादित करके प्रकाशित किया था। साथ में संस्कृत टीका का समावेश किया था। जुलाई २०१२ में 'लब्धिसार' का द्वितीय भाग 'अपरनाम क्षपणासार' यह ग्रंथ मराठी भाषा में प्रकाशित किया गया था। इन दोनों ग्रंथों में अर्थसंदृष्टि, विविध आकृतियाँ, आवश्यकता के अनुसार चार्टस् इत्यादि आधुनिक शिक्षापद्धतिओं का समावेश किया गया हैं। अत: यह ग्रंथ अत्यंत सुलभ एवं बोधगम्य बन चुका है। इस कार्य हेतु ब्र. डॉ. सुश्री सुजाता दीदी ने बहुत ही समीचीन परिश्रम किया है। इन मराठी में प्रकाशित दोनों ग्रंथों की विश्रुतता को देखकर, जानकर तथा विषय-विश्लेषण की आधुनिक विधाओं को समझकर हिन्दी भाषिक श्रावक-श्राविकाएँ एवं त्यागियों के अनुरोध पर हिंदी लब्धिसार का प्रथम भाग एप्रिल २०१७ में आचार्यश्री वर्धमानसागर महाराजजी के करकमलों से शोलापूर नगरी में प्रकाशित किया जा चुका है। अब उसका दुसरा भाग 'अपरनाम क्षपणासार' हम आपके सामने प्रस्तुत कर रहे हैं।

ब्र. सुश्री. सुजाता दीदी ने अपना संपूर्ण जीवन आत्मसेवा एवं धर्मसेवा हेतु समर्पित किया है। ऐसी समर्पणभावना ही आत्मबोध तथा आत्मिक सुख प्रदान करती है। सुजाता दीदी की ज्ञानसाधना अतीव प्रशंसनीय, पवित्र व शुद्ध है। 'विद्या विनयेन शोभते' इस सूक्ति का परिचय उनके जीवन से सहज ही ज्ञात होता है। अत्यंत दुष्प्राप्य ज्ञान को अवगत करते हुए भी लेशमात्र अहंकार वा अभिमान दिखाई नहीं देता। उनके करणानुयोगविषयक ज्ञानकी सूक्ष्मता सुदूरवर्ती प्रसृत हुई है। अत: सकल भारतवर्ष के अनेक श्रावक-श्राविकाएँ ही नहीं, अपितु बहुत से त्यागीगण भी उनके समीप अध्ययन हेतु उत्सुक रहते हैं। तथा दीदी भी केवल ज्ञानदान ही नहीं, अपितु आहार-चर्या में भी उत्साहित रहती है। उनका सान्निध्य मिलता रहे, इस हेतु से अनेक श्रावक एवं त्यागियों ने कुंभोज-बाहुबली में अनेक वर्षायोग किये हैं। यह कहा जाता है, वह सही है कि 'क्षणमपि सज्ज्नसंगतिरेका भवति भवार्णवतरणे नौका।'

मुनिगण सदाकाल क्षेत्रपर रहकर अध्ययन नहीं करते तथा अन्यत्र भी विहार करना अनिवार्य होता है। तब करणानुयोग का सहजता से अध्ययन होता रहे, जटिल विषय को सुगमता से समज सके। एतदर्थ ग्रंथाकार रूप में यह विषयवस्तु प्रकाशित हो, ऐसी उनकी सद्भावना थी। आज तक लगभग सत्ताईस शिबीरों का आयोजन किया जा चुका है। जिसमें करणानुयोग के प्राथमिक ज्ञान से धवला-महाधवला तक अध्यापन किया गया हैं। जिसमें जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार, धवला के १ से १५ पुस्तक इत्यादि पुस्तकों का अध्यापन हुआ हैं। इससे ज्ञात होता है की दीदी बहुत ही सरलता से रोचकता पूर्ण दुरुह विषय को पढ़ाती है।

अनुवाद एवं ग्रंथरचना ये दो भिन्न-भिन्न विषय है। ग्रंथरचनाकार की अपेक्षा से अनुवादक को बहुत मर्यादाएँ होती है। आचार्यश्री के हार्द को सर्वप्रथम स्वत: आत्मसात करके दुसरों को सहजता से

अवगत कराने का कठिन कार्य करना पड़ता है। इस कार्य के लिए भाषाशैली के साथ विषय की सूक्ष्मता भी स्पष्टरूप से अवगत होनी चाहिए। यहाँ पर मूल ग्रंथ प्राकृत एवं टीका संस्कृत भाषा में है। अत: इन भाषाओं का व्याकरणनिष्ठ अभ्यासक ही श्रेष्ठ अनुवादक बन सकता है । अत: दीदी एक श्रेष्ठ अनुवादिका, संपादिका है। अनुवादक का पहला गुण भाषा ज्ञान है तो दूसरा महत्त्वपूर्ण गुण है विचारों की सुस्पष्ट प्रस्तुति (सुव्यवस्थितता)। यह एक दुर्लभ गुणविशेषता दीदी की लेखनी में है।

प्रस्तुत ग्रंथ की और एक विशेषता यह है कि, ग्रंथ के समापन के पश्चात् श्रीमद् माधवचन्द्राचार्य द्वारा विरचित संस्कृत गद्यात्मक टीका को भी समाविष्ट किया गया है, जो आज तक अप्रकाशित था। आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजीने 'सम्यग्ज्ञान-चंद्रिका' इस ग्रंथ का लेखन करते समय इस संस्कृत टीका ग्रंथ का अवलंबन लिया था। आज वर्तमान में प्राय: ऐसे मूल ग्रंथों की प्रकाशनपरंपरा लुप्त सी दिखाई देती है, किन्तु सुजाता दीदीने मूल हस्तलिखित प्रतियों का आधार लेकर प्रस्तुत टीकाग्रंथ को संशोधितरूप में तथा प्रचलित देवनागरी लिपी में प्रकाशित करने हेतु बहुत ही परिश्रम किया है। जिनवाणी माता के संरक्षण-संवर्धन हेतु उनको शतश: धन्यवाद! भविष्य में भी उनके द्वारा ऐसा ही प्रशंसनीय कार्य हो, ऐसी शुभकामना!

उभय संस्था के विश्वस्त मा. श्री. अरविंदजी दोशी, विद्यपीठ के अध्यक्ष मा. श्री. कल्लाप्पाण्णा आवाडे, आश्रम के अध्यक्ष मा. श्री सनत्कुमारजी आरवाडे, महामंत्री मा. श्री. डी. सी. पाटील, संचालक मा. श्री. बी. टी. बेडगे गुरुजी आदि पदाधिकारियों का हमेशा मार्गदर्शन एवं सहकार्य मिलता ही हैं। उनके अनुमति से ही प्रस्तुत ग्रंथ का प्रकाशन किया जा रहा है। इस कार्य हेतु ब्र. श्री. जितेंद्रजी चंकेश्वरा, ब्र. श्री. वीतरागजी दोशी, पं. श्री. विक्रांतजी शहा, सोलापूर आदि विद्वद्गणों का सहकार्य प्राप्त हुआ है। तथा ग्रंथ के प्रकाशन हेतु आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है। अनेक श्रावकोंने इस कार्य हेतु बृहद्दानराशी दी है। सौ. वृषाली शहा, सोलापूर इन्होंने डी. टी. पी कार्य हेतु सहकार्य किया है। इन सभी मान्यवरों का शतश: आभार!

श्रुतपंचमी महापर्व,
सोमवार,दि.१८ जून २०१८

डॉ. नेमिनाथ शास्त्री, बाहुबली
एम.ए., बी.एड्., पीएच.डी.
सचिव, श्री अनेकांन्त शोधपीठ,
बाहुबली मो. ९४२०७७६६३१

मनोगत

एक वर्ष पहले सोलापूर में आचार्य १०८ प. पू. वर्धमानसागर जी महाराजजी के करकमलों से लब्धिसार प्रथम भाग का प्रकाशन हो चुका है। अब द्वितीय भाग पाठकों के हात सुपूर्द करते हुए अत्यंत आनंद का अनुभव हो रहा है। प्रारंभ किया हुआ मंगलकार्य सम्पन्न होने पर किसको आनंद नहीं होता।

सिद्धान्तचक्रवर्ति नेमिचन्द्र आचार्य ने षट्खंडागम और कषायपाहुड ग्रंथ तथा उसकी धवला और जयधवला टीका का मंथन करके लब्धिसार ग्रंथरूपी नवनीत को निकाला है। जीवस्थान खंड की चूलिका और कषायपाहुड के अंतिम छह अधिकार में निहित विस्तृत विषय को ६५३ गाथाओं में निबद्ध करके 'घागर में सागर' की सूक्ति को सार्थक किया है। विस्तारभी न हो, दुरुह भी न हो और कुछ विषय भी न छूट पाये ऐसी अद्‌भुत कला के धनी नेमिचन्द्र आचार्य थे। धवला और जयधवला टीका में यत्र तत्र आये हुए विषय को एक सुव्यवस्थितरूप से रख करके जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड और लब्धिसार ग्रंथ की रचना करके आचार्य ने हम जैसे पाठकों पर उपकार किया है।

जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार ग्रंथ पढ़ते समय नेमिचन्द्र आचार्य की जितनी महिमा आती थी उससे कई गुणी महिमा षट्खंडागम ग्रंथ पढ़ते समय आती है। ऐसा लगता है कि नेमिचन्द्र आचार्य गोम्मटसार, जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड और लब्धिसार ग्रंथ नहीं लिखते तो षट्खंडागम और कषायपाहुड ग्रंथ में प्रवेश पाना और उसका मर्म समझना बहुत मुश्किल होता।

लब्धिसार ग्रंथ में छह अधिकार हैं, उनमें से प्रथम पाँच अधिकार प्रथम भाग में प्रकाशित हुए हैं। छठा चारित्रमोहक्षपणाधिकार इस द्वितीय भाग में प्रकाशित हो रहा है। प्रथम पाँच अधिकारपर संस्कृत टीका उपलब्ध है। टीकाकर्ता के नाम का उल्लेख आदि अंत में कहीं पर भी दिखाई नहीं देता किन्तु रचना को देखने से गोम्मटसार की संस्कृत टीका के रचयिता नेमिचन्द्र आचार्य ही इस टीका के रचयिता है ऐसा अनुमान होता है। छटे अधिकारपर संस्कृत टीका उपलब्ध नहीं है। लेकिन माधवचन्द्र आचार्य विरचित क्षपणासार नाम का संस्कृत भाषा में लिखा हुआ स्वतंत्र गद्यात्मक ग्रंथ हस्तलिखितरूप में उपलब्ध है। उसी के आधार से पंडित टोडरमलजी ने

ढूंढारी भाषा में टीका लिखी है।

माधवचन्द्र आचार्य विरचित क्षपणासार ग्रंथ की पांडुलिपि श्री १००८ चंद्रनाथस्वामी बालात्कारगण दिगम्बर जैन मंदिर कारंजा के ग्रंथभांडार में सुरक्षित है। विश्वस्तों की अनुमति से कंकुबाई श्राविकाश्रम के महामंत्री संजुभाऊ रुईवाले और धर्मानुरागिणी प्रज्ञाताई डोणगावकर इन्होंने उसकी सत्यप्रति बनाकर हमें दी। विश्वस्तगण, संजुभाऊ और प्रज्ञाताई की मैं अत्यंत ऋणी हूँ।

मूलग्रंथ के प्राप्त होने से इस ग्रन्थ सहित ही लब्धिसार के छठे अधिकार का हिन्दी अनुवाद करुँगी ऐसा सोचकर यह काम रुका हुआ था। लेकिन इस पाण्डुलिपि को पढ़ना, फिर समझना और उसके बाद लिखना यह कार्य दीर्घकाल का था। अन्य कार्यों की व्यस्तता में यह कार्य नहीं हो पाया। लब्धिसार प्रथम भाग प्रकाशित होने पर त्यागी और स्वाध्यायी श्रावकों की तरफ से दूसरे भाग को भी जल्दी प्रकाशित करने की माँग होने लगी। इसलिए लब्धिसार द्वितीय भाग जो मराठी में लिखा हुआ था उसी का हिन्दी अनुवाद का कार्य ब्र. मृदुला दीदी ने अपने जिम्मे लिया और शीघ्रातिशीघ्र उसका अनुवाद का कार्य संपन्न भी किया, उनको बहुत बहुत धन्यवाद। फरवरी में ही इसको प्रकाशित करने का संकल्प था किन्तु माधवचन्द्र आचार्य के मूल संस्कृत क्षपणासार को भी प्रकाशित करने की इच्छा हुई। ब्र. विद्या और आचार्य सुनीलसागर संघस्थ आर्यिका श्रुतमती माताजी ने इस पांडुलिपी को आधुनिक लिपि में लिखने का बड़ा कष्टसाध्य काम किया।

इसके हिन्दी अनुवाद का कार्य नहीं हो पाया, किन्तु लब्धिसार द्वितीयभाग ग्रन्थ के विशेषार्थ में इसका बहुत सारा विषय स्पष्ट हुआ है। संस्कृत भाषा के जानकार इस क्षपणासार ग्रन्थ को पढ़कर इसका अर्थ समझ सकेंगे ऐसी आशा है। आजतक अप्रकाशित और कपाटों में बंद यह ग्रन्थ पाठकों को देखने और पढ़ने को तो मिले ऐसी सद्भावना है। कितनी ही ग्रन्थसंपदा कपाटों में धूल खाती हुई बंद पड़ी है, जिसके प्रकाशन और संशोधन की परम आवश्यकता है।

पं. रतनचन्दजी मुख्तार जी ने लब्धिसार भाग २ का हिन्दी भाषा में विशेषार्थसहित अनुवाद किया है, आर्यिका विशुद्धमती माताजी ने पुनः संशोधित कर इसका संपादन किया है। इसका और पंडितप्रवर टोडरमल्लजी लिखित सम्यग्ज्ञानचंद्रिका टीका का आधार लेकर मैंने लब्धिसार द्वितीय भाग लिखा है। इसमें कोष्टक और विषयानुसार कुछ आकृतियाँ नयी निकाली हैं। विषय को सरल बनाने के लिए अंकसंदृष्टि भी कल्पित की है। प्रत्येक गाथा का अन्वयार्थ भी दिया है। संस्कृत क्षपणासारग्रंथ की पांडुलिपि में परसवर्ण न लिखकर सर्वत्र अनुस्वार ही दिये हैं अतः हमने भी वैसे ही दे दिये है। जैनाचार्य अपरिग्रही थे अतः, शाई की बचत, समय की बचत और

कागज की बचत करने के लिये वें परसवर्ण न लिखकर अनुस्वार लिखते हैं। वाक्य के अन्त में मात्र सर्वत्र हलन्त म् किया है। पाण्डुलिपि की प्रति में पढ़नेवाले किसी अभ्यासक ने नीचे, ऊपर, इधर उधर अर्थस्पष्टता के लिये शब्द और वाक्य लिखे हैं। उनको हमने टिप्पणी में दिया है।

आचार्य नेमिचन्द्र विरचित लब्धिसार भाग २ में कुछ गाथाओं के पाठ अशुद्ध प्रतीत होते हैं उसके संशोधन की बहुत इच्छा थी किन्तु उसकी पाण्डुलिपि की प्रति प्राप्त न होने से संशोधन का कार्य नहीं हो पाया।

जिनकी प्रेरणा से लब्धिसार, क्षपणासार ग्रन्थ को मैने पढा और उसमें प्रवेश प्राप्त किया, जिनके निमित्त से मेरा मनुष्य जन्म सार्थक हुआ उन आदरणीय धर्ममाता भून (गजाबेन) को विनयांजली अर्पण करती हूँ।

आदरणीया विजयाताई भीशीकर से मुझे लब्धिसार का ज्ञान प्राप्त हो गया इसलिए मैं उनकी चिरऋणी हूँ। संस्था के संचालक आदरणीय बी. टी. बेडगे गुरुजी सब कार्य में मदत करते हैं और प्रेरणा देकर उत्साह बढ़ाते है इसलिए मैं उनकी कृतज्ञ हूँ।

डॉ. नेमिनाथ शास्त्री की मदद के बिना कोई कार्य नहीं कर सकते। प्रिन्ट निकालना, प्रूफ भेजना, मुद्रण करवाना इत्यादि बाहर के सभी काम वे ही संभालते हैं। उनकी मैं अत्यंत ऋणी हूँ। ब्र. नमिता दीदी ने पूरे हिन्दी ग्रन्थ को देखकर इसमें भाषासंबंधी संशोधन किया इसलिए वे अनेकश: धन्यवाद के पात्र है।

ब्र. विद्या, प्रांजली रुईवाले कारंजा, सौ. शोभा मगदूम, कु. श्वेता बेडगे बाहुबली इन्होंने संस्कृत क्षपणासार का प्रुफ जांचने में सहायता की मैं उन सब को धन्यवाद देती हूँ।

सोलापूर की सौ. वृषाली शहा को टाइप करने का कार्य सौंप दिया गया। उन्होंने भी जल्दी ही इसको टाइप कर के दिया। संस्कृत भाषा के लम्बे सामासिक पद, आकृतियाँ और अर्थसंदृष्टि गणित इन सब को टाइप करने का कार्य भी बहुत कष्टसाध्य था लेकिन सौ. वृषाली शहा ने बड़ी मेहनत और धैर्य के साथ इसके टाइपिंग का कार्य पूरा किया। वे बहुत बहुत धन्यवाद के पात्र हैं।

बहुत बार प्रुफ जाँचनेपर भी प्रमादवश और अज्ञानता से त्रुटियाँ होना संभव है। उसके लिए मैं देवशास्त्रगुरु के चरणों में क्षमायाचना करती हूँ। पाठकों से अनुरोध करती हूँ कि पढ़ते समय कुछ दोष दृष्टि में आ जाये तो अवश्य सुधारे और मुझे भी ज्ञात करे।

- ब्र. सुजाता रोटे
बाहुबली

प्रस्तावना

लब्धिसार प्रथम भाग में दर्शनमोहनीयका उपशम और क्षय, देशसंयमलब्धि, सकलसंयमलब्धि और चारित्रमोहनीय का उपशम इन पाँच विषयों का वर्णन किया है। अब इस द्वितीय भाग में (क्षपणासार में) चारित्रमोहनीय के क्षय का प्ररूपण करते हैं। चारित्रमोहनीय के क्षय का वर्णन तेरह अधिकारों द्वारा किया है। (१) अध:प्रवृत्तकरण (२) अपूर्वकरण (३) अनिवृत्तिकरण (४) बंधापसरण (५) सत्त्वापसरण (६) क्रमकरण (७) क्षपणा (८) देशघातिकरण (९) अन्तरकरण (१०) संक्रमण (११) अश्वकर्णकरण (अपूर्व-स्पर्धककरण) (१२) कृष्टिकरण (१३) कृष्टिअनुभवन। उपरोक्त अधिकारों की समाप्ति होने पर शेष रहा वर्ण्यविषय आगे के विभागोंद्वारा समझाया जा सकता हैं। (१४) सूक्ष्मकृष्टिकरण (१५) सूक्ष्मसांपराय (१६) क्षीणमोह गुणस्थान (१७) सयोगकेवली (१८) केवलीसमुद्घात (१९) योग निरोध (२०) अयोग केवली।

इन अधिकारों में से अध:प्रवृत्तकरणादि तीन करणों का लक्षण पूर्व के समान ही जानना । अध:करण सातवें गुणस्थान में, अपूर्वकरण आठवें गुणस्थान में, उसी प्रकार अनिवृत्तिकरण नववें गुणस्थान में होता है। श्रेणी के पूर्व में किसी भी एक गुणस्थान में ये तीन करण होते हैं, परन्तु श्रेणी में तीन करण क्रम से तीन गुणस्थानों में होते हैं। सातिशय मिथ्यादृष्टि को ये तीनों परिणाम होते हैं। उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि, संयमी और श्रेणी पर आरूढ़ होने वाले जीवों को ये तीन करण परिणाम होते हैं। इन सभी भिन्न-भिन्न स्थानों में होने वाले ये अध:करणादि तीन करण परिणाम भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। उनमें भिन्न-भिन्न कार्य करने की शक्ति है। कोई मिथ्यादृष्टि अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में स्थित है और उसी समय में कोई मुनि नवमें गुणस्थान के प्रथम समय में स्थित है। उन दोनों का समान समय होने पर भी और एक नाम का परिणाम होते हुए भी दो अनिवृत्तिकरण परिणामों में भिन्नता है। यहाँ एकता का प्रश्न नहीं आता। एक ही गुणस्थानवर्ती समान समय कें जीवों के अनिवृत्तिकरण परिणाम समान होते हैं यह नियम है। किसी भी विवक्षित गुणस्थान में स्थित जीव के अध:करण परिणामों से अपूर्वकरण और अपूर्वकरण से अनिवृत्तिकरण परिणाम अनन्तगुणे विशुद्ध होते हैं, परन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं कि किसी भी गुणस्थान का अनिवृत्तिकरण परिणाम किसी भी अन्य गुणस्थान के अध:करण और अपूर्वकरण परिणामों से अनन्तगुणे विशुद्ध हो। किसी भी नीचे के गुणस्थानों के अनिवृत्तिकरण परिणामों से ऊपर के गुणस्थान के अध:प्रवृत्तकरण परिणाम भी अनन्तगुणे विशुद्ध होते हैं।[१]

---

१) ज. ध. पु. १३ पृ. ११९-१२०/ ध. पु. ३ पृ. २६९

१) अध:प्रवृत्तकरण - इसमें गुणश्रेणीरचना, गुणसंक्रमण, स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डक घात ये चार कार्य नहीं होते हैं। प्रत्येक समय में अनन्तगुणी विशुद्धि को प्राप्त होकर प्रशस्त कर्मों का चतु:स्थानीय (गुड, खांड, शर्करा, अमृतसमान) और अप्रशस्त कर्मों का द्विस्थानीय (लता दारु / निंब, कांजीर समान) अनुभागबंध करता है। प्रत्येक अंतर्मुहूर्त में उत्तरोत्तर पल्योपम के संख्यातवे भागप्रमाण स्थितिबंध कम करके स्थितिबंध करता है। इस करण के प्रथम समय में होने वाले स्थितिबंध से उसके अंतिम समय में होनेवाला स्थितिबंध संख्यातगुणा हीन होता है।

२) अपूर्वकरण - अपूर्वकरण के प्रथम समय में गुणश्रेणी, गुणसंक्रम, स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात और अन्य स्थितिबंध आरंभ करता है। यहाँ गुणश्रेणी का आयाम अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय और क्षीणकषाय गुणस्थान काल से कुछ अधिक होता है। यह गलितावशेष गुणश्रेणी है। अपूर्वकरण के प्रथम समय से ही प्रत्येक समय में असंख्यातगुणे द्रव्य का अपकर्षण करके गुणश्रेणी की रचना करता है। उसी प्रकार अप्रशस्त अबन्धरूप प्रकृतियों के द्रव्य को असंख्यातगुणे क्रम से अपकर्षित करके बंधरूप अपनी जाति की प्रकृतियों में संक्रमित करता है। जिन कर्मों का संक्रमण अथवा उत्कर्षण होता है वे एक आवली काल तक तदवस्थ रहते हैं। उसके पश्चात् वे भजनीय हैं अर्थात् उनका संक्रमण या उत्कर्षण भी हो सकता है अथवा नहीं भी हो सकता है। परन्तु जिन कर्मपुंजों का अपकर्षण होता है उनका पश्चात् के समयों में संक्रमणादि क्रिया हो सकती है।

अपूर्वकरण के प्रथम समय में जघन्य स्थितिकांडक पल्योपम के संख्यातवें भाग प्रमाण होता है और उत्कृष्ट उससे संख्यातगुणा होता है। अपूर्वकरण के प्रथम समय में स्थितिकाण्डक, स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व का जितना प्रमाण होता है उसके अंतिम समय में इनका प्रमाण उससे संख्यातगुणा हीन होता है। अपूर्वकरण के प्रथम समय में स्थितिबंध अन्त:कोटाकोटी प्रमाण होता है और स्थितिसत्त्व उससे संख्यातगुणा होता है। एक-एक स्थितिकांडकघात काल में हजारों अनुभागकांडक घात होते हैं। अशुभ प्रकृतियों के अनुभागकाण्डक का प्रमाण अनन्त बहुभाग प्रमाण है। प्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग का घात नहीं होता है। इस गुणस्थान में ३६ प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है।

३) अनिवृत्तिकरण - अपूर्वकरण का काल पूर्ण होने पर यह जीव बादर सांपराय गुणस्थान में प्रवेश करता है। इसके प्रथम समय में स्थितिकाण्डकादि नवीन शुरू होते हैं। इसी समय में अप्रशस्त उपशमन, निधत्ति और निकाचन इन तीन करणों की व्युच्छित्ति होती है। प्रथम समय में प्रथम स्थितिकांडक विसदृश होता है। उसके पश्चात् सभी जीवों के द्वितीयादि स्थितिकांडक समान होते हैं। प्रथम जघन्य स्थितिकांडक पल्योपम का संख्यातवाँ भाग प्रमाण होता है और उत्कृष्ट इससे संख्यातवाँ भाग अधिक होता है। शेष सर्व स्थितिकांडक सदृश होते हैं।

४) स्थितिबंधापसरण ५) स्थितिसत्त्वापसरण ६) क्रमकरण - स्थितिबंधापसरण अर्थात् नवीन स्थितिबंध हीन करना और स्थितिसत्त्वापसरण अर्थात् पूर्व में बाँधी गयी सत्तारूप स्थिति को हीन

करते जाना। स्थितिबंधापसरण द्वारा स्थितिबंध हीन होता है और स्थितिकांडकघात द्वारा स्थितिसत्त्व हीन होता है। क्रमकरण द्वारा नामादिक के स्थितिबंध का क्रम बदलता है।

अनिवृत्तिकरण का संख्यात बहुभाग काल व्यतीत होने पर मोहादिकर्मों का स्थितिबंध असंज्ञी पंचेन्द्रिय के स्थितिबंध के समान होता है। पुन: संख्यात हजार स्थितिबंधापसरणों के द्वारा हीन होते-होते क्रम से चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रिय के समान स्थितिबंध होता है। उसके पश्चात् पुन: स्थितिबंध हीन होते हुए क्रम से पल्य, पल्य का संख्यातवाँ भाग, दूरापकृष्टि और पल्य का असंख्यातवाँ भाग स्थितिबंध होने लगता है। उसके पश्चात् स्थितिबंध क्रम से हीन होते हुए क्रमकरण की विधि से मोहनीय का सबसे अल्प स्थितिबंध होता है। उससे संख्यातगुणा तीसिय का (ज्ञानावरणादि तीन घातिकर्म), उससे असंख्यातगुणा नाम गोत्र का और उससे कुछ अधिक अर्थात् डेढ़गुणा वेदनीय का बंध होने लगता है। उसके पश्चात् स्थितिसत्त्व भी स्थितिबंधापसरण में कहे अनुसार क्रम से हीन होता जाता है और स्थितिसत्त्व का भी क्रमकरण होता है अर्थात् सबसे अल्प मोहनीय का स्थितिसत्त्व, उससे असंख्यात गुणा तीन घाति का, उससे असंख्यातगुणा नामगोत्र का और उससे डेढ़गुणा वेदनीय का स्थितिसत्त्व होता है। इसप्रकार क्रमकरण के पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होने पर असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होने लगती है।

७) संक्रमण - इसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंध होने पर अतिअप्रशस्त ऐसी चार अप्रत्याख्यानावरण कषाय और चार प्रत्याख्यानावरण कषायों को चार संज्वलन और पुरुषवेद में संक्रमित करके नष्ट करता है। उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होने पर दर्शनावरण की स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा और नामकर्म की नरक और तिर्यंचगतिसंबंधी तेरह प्रकृतियाँ इस प्रकार सोलह प्रकृतियों का एक ही समय में स्वजाति प्रकृतिरूप संक्रमणद्वारा क्षय करता है।

८) देशघातिकरण - इसके पश्चात् देशघातिकरण होता है अर्थात् मन:पर्यय आदि बारह प्रकृतियों का पूर्व में सर्वघाति द्विस्थानगत अनुभागबंध होता था। अब यहाँ से आगे लता और दारु का अनन्तवाँ भागरूप देशघाति अनुभागबंध होता है।

९) अंतरकरण - देशघातिकरण के पश्चात् हजारों स्थितिकाण्डक व्यतीत होने पर यह जीव चार संज्वलन और नौ नोकषायों का अन्तरकरण करता है। नीचे के और ऊपर के निषेकों को छोड़कर अंतर्मुहूर्तमात्र मध्य के निषेकों का अभाव करना ही अंतरकरण है। चार संज्वलन और तीन वेद इनमें से जिन दो प्रकृतियों का उदय होता है उनकी प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और शेष ग्यारह प्रकृतियों की एक आवलि प्रमाण प्रथम स्थिति स्थापित करता है। जिन निषेकों का अंतर किया जाता है उनका द्रव्य बंधयुक्त प्रकृतियों के द्वितीय स्थिति के समान नवीन स्थिति में और उदययुक्त प्रकृतियों की प्रथम स्थिति में निक्षेपण करता है। अंतरकरण क्रिया संपन्न होने पर उसके बाद के समय में सात करण एक ही समय मे प्रारंभ होते हैं। उन सात करणों के नाम १) मोहनीय का एक लतास्थानीय बंध २) मोहनीय का एक

लतास्थानीय उदय ३) मोहनीय का संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबंध ४) आनुपूर्वी संक्रम ५) लोभ का असंक्रम ६) नपुंसकवेद का आयुक्तकरण संक्रमण ७) बंध के पश्चात् छह आवलि काल व्यतीत होने पर उदीरणा। आनुपूर्वी संक्रमणानुसार नपुंसकवेद और स्त्रीवेद के द्रव्य का पुरुषवेद में संक्रमण, सात नोकषायों के द्रव्य का संज्वलन क्रोध में संक्रमण, क्रोध संज्वलन का मान संज्वलन में, मान संज्वलन का माया संज्वलन में, माया संज्वलन का लोभ संज्वलन में संक्रमण होता है। केवल लोभ संज्वलन का अन्य किसी भी प्रकृति में संक्रमण नहीं होता है, उसका स्वमुख से ही क्षय होता है। अंतरकरण क्रिया संपन्न होने पर प्रतिलोम संक्रमण नहीं होता है।

१०) संक्रमण - इसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होने पर नपुंसकवेद का पुरुषवेद में पूर्ण संक्रमण होकर उसका क्षय होता है। यहाँ पुरुषवेदादि जिन प्रकृतियों का बंध होता है उनके बंधद्रव्य से उदय द्रव्य असंख्यातगुणा और उदयद्रव्य से संक्रमण द्रव्य असंख्यातगुणा जानना। क्योंकि प्रदेशबंध योग के अनुसार होता है। योग में चार प्रकार की वृद्धि, चार प्रकार की हानि और अवस्थान होता है। तदनुसार प्रदेशबंध भी चार प्रकार की वृद्धि, चार प्रकार की हानि और अवस्थानरूप से भजनीय जानना चाहिए।

इसके पश्चात् क्रम से स्त्रीवेद और सात नोकषायों का संक्रमण होता है। यहाँ जितना अनुभागसहित कर्म का बंध होता है, उससे अनन्तगुणा अनुभाग सहित कर्म का उदय होता है और उससे अनन्तगुणा अनुभाग सहित कर्म का संक्रमण होता है। विशेष यह है कि अप्रशस्त कर्मों का अनुभागोदय अनन्तगुणा कम होता है और प्रदेशोदय असंख्यातगुणा अधिक होता है। संक्रमण भजनीय है क्योंकि एक काण्डकघात होने तक संक्रमण तदवस्थ रहता है। उसके पश्चात् कांडक बदलने पर उसका प्रमाण अनन्तगुणा हीन होता है। इस प्रकार यह जीव सात नोकषायों का संक्रामक होता है। विशेषता यह है कि सात नोकषायों के संक्रमण के अंतिम समय में पुरुषवेद का एक समय कम दो आवलि प्रमाण नवकबंध शेष रहता है। अपगतवेदी होने पर उसका नाश करता है।

११) अश्वकर्णकरण (अपूर्वस्पर्धककरण) - यह जीव जिस समय में पुरुषवेद के पूर्वसत्त्वद्रव्य के साथ छह नोकषायों का क्षय करके प्रथम समयवर्ती अपगतवेदी होता है उस समय से लेकर चार संज्वलन कषायों के अनुभाग का अश्वकर्णकरण करता है। अश्वकर्णकरण याने घोडे के कान के समान संज्वलन क्रोध से लेकर संज्वलन लोभ तक अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा हीन-हीन दिखता है और संज्वलन लोभ से लेकर संज्वलन क्रोध तक अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा अधिक-अधिक दिखता है। जिस समय में यह जीव अनुभाग के अश्वकर्णकरण को प्रारंभ करता है उस समय में कांडकघात करने के लिए अनुभाग के जिन स्पर्धकों को ग्रहण करता है वे क्रोध में सबसे कम हैं, उससे मान, माया और लोभ में क्रम से विशेष अधिक हैं। उसी प्रकार घात करने पर जो अनुभाग स्पर्धक शेष रहते हैं वे लोभ में सबसे कम रहते हैं। उससे माया, मान और क्रोध में क्रम से अनन्तगुणे शेष रहते हैं। उसी समय पूर्व स्पर्धकों की

जघन्य वर्गणा के नीचे नवीन अपूर्व स्पर्धकों की रचना होती है। वे अपूर्व स्पर्धक यथायोग्य पूर्व स्पर्धकों के साथ उदीर्ण भी होते हैं। इस प्रकार द्वितीयादि समयों में भी जानना। विशेष यह है कि प्रतिसमय जो अपूर्व स्पर्धक किए जाते हैं वे पूर्व समय में किए गए अपूर्व स्पर्धकों से उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे कम होते हैं। क्रोध में अपूर्व स्पर्धक सबसे अल्प होते हैं । उससे मान, माया और लोभ में उत्तरोत्तर विशेष अधिक होते हैं। इस प्रकार अश्वकर्णकरण के अंतिम समय तक अपूर्वस्पर्धकों की रचना होती है। ये सर्व कार्य यहाँ प्रतिसमय बढती विशुद्धि से सहज होते जाते हैं। यह अश्वकर्णकरण का काल क्रोध वेदक काल का साधिक तृतीय भागप्रमाण है।

१२) कृष्टिकरण - उसके पश्चात् क्रोधादि चार कषाय संबंधी पूर्व और अपूर्व स्पर्धकों का अपकर्षण करके बादरकृष्टियों की रचना होती है। यह काल भी क्रोधवेदककाल का एक तिहाई भाग है। क्रोधादिचारों कषायों में से प्रत्येक की तीन-तीन संग्रहकृष्टियाँ होती है और अंतरकृष्टियाँ अनन्त होती हैं। यहाँ यह विशेष है कि जो क्रोधकषाय के उदय से क्षपकश्रेणी पर चढता है उसे क्रोधादि चार कषायों की बारह संग्रहकृष्टियाँ होती हैं। जो मान के उदय से क्षपकश्रेणी चढता है उसे मानादि तीन कषायों की नौ संग्रहकृष्टियाँ होती हैं । जो माया के उदय से क्षपकश्रेणी चढता है उसे माया और लोभ की छह संग्रहकृष्टियाँ होती हैं और जो लोभ के उदय से क्षपकश्रेणी चढता है उसे केवल लोभ कषाय की तीन संग्रहकृष्टियाँ होती हैं। एक-एक संग्रहकृष्टि में अन्तरकृष्टियाँ अनन्त होती हैं। ये सब कृष्टियाँ अनुभाग की अपेक्षा से लोभ से लेकर क्रोध तक उत्तरोत्तर अनन्तगुणी हैं और क्रोध से लेकर लोभ तक अनन्तगुणी-हीन हैं। दो संग्रहकृष्टियों में जो अंतर है उसे संग्रहकृष्ट्यन्तर कहते हैं और दो अंतर कृष्टियों में जो अंतर है उसे कृष्ट्यन्तर कहते हैं। लोभ से लेकर क्रोध तक स्वस्थान अन्तर क्रम से अनन्तगुणा है। उन सभी स्वस्थान अंतर से संग्रहकृष्टियों का अन्तर अनन्तगुणा है। इसका विशेष विचार मूलग्रंथ में किया है वहाँ से जानना चाहिए।

प्रत्येक समय में यह जीव संग्रहकृष्टियों के नीचे नवीन अपूर्व कृष्टियों की रचना करता है और पूर्व में की गयी कृष्टियों के पार्श्वभाग में उसके समान अनुभागयुक्त कृष्टियों की भी रचना करता है। जो अनन्तगुणी हीन शक्तियुक्त कृष्टियाँ नीचे की जाती हैं उनकी अधस्तन कृष्टि संज्ञा है और जो पार्श्वभाग में पूर्वकृष्टियों के समान शक्तियुक्त कृष्टियाँ की जाती हैं उनकी पार्श्वकृष्टि ऐसी संज्ञा है। इस प्रकार दूसरे समय में बारह संग्रहकृष्टियों में ग्यारह अंतर संग्रहकृष्टियाँ और अंतरकृष्टियाँ होती हैं । इन सबमें होने वाले प्रदेशविन्यास के क्रम से ऊँट की पीठ के समान रचना होती है। जिसप्रकार ऊँट की पीठ पीछे ऊंची होकर मध्यभाग में नीची होती है पुन्हा आगे ऊँची-नीची रूप से होती है उसी प्रकार यहाँ भी प्रदेशपुंज पहले अधिक, बाद में कम पुन: संधि में अधिक, बाद में कम निक्षिप्त होता है इसलिए दिये जाने वाले द्रव्य की २३ जगह ऊष्ट्रकूट के समान रचना होती है। इसी प्रकार आगे भी कृष्टिकरण के सभी काल में जानना चाहिए। परन्तु सर्व द्रव्य मिलाकर देखने पर लोभ की प्रथम नवीन संग्रहकृष्टि की जघन्यकृष्टि से

लेकर क्रोध की तीसरी संग्रहकृष्टि की अंतकृष्टि तक अनन्तवाँ भाग घटता क्रम दिखता है अर्थात् गोपुच्छाकार रचना दिखती है।

कृष्टि और स्पर्धकों में यह अन्तर है कि प्रथम कृष्टि से लेकर अंतकृष्टि तक प्रत्येक कृष्टि का अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा होता है परन्तु स्पर्धकों में प्रथम वर्गणा से अंतिम वर्गणा तक अनुभाग विशेष अधिक, विशेष अधिक होता है। यह जीव जिस काल में कृष्टियों की रचना करता है उस काल में उसे पूर्व और अपूर्व स्पर्धकों का ही उदय होता है। इसप्रकार जब क्रोध संज्वलन की प्रथम स्थिति में उच्छिष्टावलि काल शेष रहता है तब कृष्टिकरण काल समाप्त होता है।

१३) कृष्टिवेदन - कृष्टिकरण के अनन्तर समय में वह क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में से द्रव्य अपकर्षण करके प्रथम स्थिति स्थापित करता है और मध्य की कृष्टियों का वेदन करता है। वहाँ क्रोध के उच्छिष्टावलिमात्र जो निषेक शेष रहे हैं उन्हें कृष्टिरूप परिणमाकर उनका वेदन करता है और जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवीन समयप्रबद्ध शेष रहते हैं उन्हे कृष्टिरूप परिणमाकर उनका नाश करता है। कृष्टियों की रचना करनेवाला लोभ से लेकर क्रोध तक क्रम से कृष्टियों की रचना करता है परन्तु कृष्टियों का वेदक प्रथम क्रोध की संग्रहकृष्टियों का वेदन करता है। पश्चात् मान, माया और लोभ की संग्रहकृष्टियों का क्रम से वेदन करता है। उसमें भी जो क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि है उसे प्रथम वेदन करता है। उसके पश्चात् द्वितीय और प्रथम संग्रहकृष्टियों को वेदता है। इसलिए वेदना की अपेक्षा से क्रोध की तृतीय कृष्टि को प्रथम कृष्टि कहा है। कृष्टियों का वेदन करनेवाला जीव प्रथम समय में सर्व कृष्टियों के असंख्यातवें भाग प्रमाण कृष्टियों का नाश करता है। इस प्रकार उपान्त्य समय तक जानना चाहिए। कौन-सी कृष्टियों का बंध होता है? कौन-सी कृष्टियों का उदय होता है? और कौन-सी कृष्टियाँ बन्ध उदयरहित है? इसका विचार मूल में से कर लेना चाहिए।

कृष्टियों के संक्रमण के विषय में यह नियम है कि विवक्षित कषाय की प्रथमादि संग्रहकृष्टियों का द्रव्य अपनी-अपनी संग्रहकृष्टियों में और आगे की कषायों की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित होता है लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य लोभ की द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टियों में तथा लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य उसी की तृतीय संग्रहकृष्टि में संक्रमित होता है और लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य अन्य किसी में भी संक्रमित नहीं होता है।

यह कृष्टिवेदक जीव प्रत्येक समय में बारह कृष्टियों के अग्रभाग से लेकर असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियों का नाश करता है। यहाँ काण्डकघात नहीं होता है। संक्रमणद्रव्य में से असंख्यातवें भाग प्रमाण द्रव्यद्वारा अधस्तन अपूर्वकृष्टियों को करता है और असंख्यात बहुभागप्रमाण द्रव्य अंतरकृष्टियों में देता है। बन्धद्रव्य में से अनन्तवाँ भागप्रमाण द्रव्य पूर्वकृष्टियों में देता है और अनन्तबहुभाग प्रमाण द्रव्य द्वारा अंतरकृष्टियों में नवीन कृष्टियों की रचना करता है। क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमणद्रव्य का अभाव होने से उसके बंध द्रव्यद्वारा अपूर्व कृष्टियों को करता है। शेष ग्यारह संग्रहकृष्टियों में संक्रमण द्रव्यद्वारा

अपूर्व कृष्टियों को करता है।

क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के वेदन के पश्चात् क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि में से द्रव्य का अपकर्षण करके क्रोध की प्रथम स्थिति स्थापित करता है और क्रोध की द्वितीय कृष्टि का वेदक होता है। इसका भी अन्तर्मुहूर्त तक वेदन करता है। सर्वत्र यह नियम है कि जब जिस कषाय की जिस संग्रहकृष्टि का वेदन करता है तब उसी संग्रहकृष्टि का बंध करता है और शेष कषायों की प्रथम संग्रहकृष्टि का ही बन्ध करता है। इसी प्रकार द्वितीय संग्रहकृष्टि का वेदन करके पूर्वोक्त क्रम से क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि का भी अन्तर्मुहूर्त काल तक वेदक होता है। यह क्रम लोभ कषाय की प्रथम संग्रहकृष्टि के वेदन तक जानना चाहिए। जिस समय जिस कृष्टि को वेदता है उस समय उसकी प्रथम स्थिति में एक समय अधिक आवलिप्रमाण स्थिति शेष रहने पर उसकी जघन्य उदीरणा होती है और वह अंतिम समयवर्ती वेदक होता है।

१४) सूक्ष्म कृष्टिकरण - लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि के वेदनकाल के पश्चात् लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि में से प्रदेश अपकर्षित करके प्रथम स्थिति स्थापित करता है और इसी द्वितीय लोभ कृष्टि के वेदनकाल में लोभ की द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टि में से द्रव्य लेकर सूक्ष्मकृष्टियों की रचना करता है। संपूर्ण लोभ वेदक काल का दो त्रिभागप्रमाण काल नववें गुणस्थान में पूर्ण होता है। इस दो त्रिभागप्रमाण काल में लोभ की प्रथम और द्वितीय संग्रहकृष्टि का वेदन होता है। शेष एक त्रिभाग प्रमाण लोभ वेदककाल ही सूक्ष्मसांपराय का काल है। इसलिए लोभ की द्वितीय बादरकृष्टि के वेदककाल में ही यदि सूक्ष्मकृष्टियों की रचना नहीं की तो तीसरे त्रिभागकाल में सूक्ष्मकृष्टियों का वेदक नहीं हो सकता। इस प्रकार जब लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथम स्थिति में एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण काल शेष रहता है तब यह जीव अनिवृत्तिकरण अंतिम समयवर्ती होता है और लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि को सूक्ष्मकृष्टिरूप से परिणमाता है। केवल एक समय कम दो आवलि प्रमाण नवक समयप्रबद्ध और एक समय अधिक एक आवलि प्रमाण उच्छिष्टद्रव्य बादरकृष्टिरूप शेष रहता है। वह जीव आगे के समय में सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान को प्राप्त होकर उच्छिष्टावलि प्रमाण द्रव्य को क्रम से स्तिबुक संक्रमण द्वारा सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमाकर उसका अभाव करता है और दो समय कम दो आवलि प्रमाण द्रव्य को भी संक्रमण द्वारा सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमित करता है।

१५) सूक्ष्मकृष्टिवेदन (सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान) - क्षपक जीव सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में प्रविष्ट होकर सूक्ष्मकृष्टियों का वेदन करता है। सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान को प्राप्त होने पर प्रथम समय में जो कार्यविशेष प्रारंभ होते हैं उनका विवरण -

१) सूक्ष्मकृष्टि के अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितिके संख्यातवें भागप्रमाण स्थिति का एक स्थितिकाण्डकायाम होता है। २) मोह के कृष्टिगत द्रव्य की अनुसमयापवर्तना होने लगती है। ३) ज्ञानावरणादि कर्मों का स्थितिकाण्डक घात और अनुभागकाण्डकघात पूर्ववत् होता रहता है।

४) यहाँ नवीन उदयादि गुणश्रेणी की रचना होती है। अपकृष्ट द्रव्य के एक भाग को गुणश्रेणि में निक्षिप्त करता है और शेष बहुभागप्रमाण द्रव्य को अंतरायाम के ऊपर द्वितीय स्थिति में यथाविधि निक्षिप्त करता है। पूर्वोक्त विधि से सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान का संख्यात बहुभागप्रमाण काल व्यतीत होने पर अंतिम स्थितिकाण्डक को ग्रहण करता है। तब सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान का जितना शेषकाल है उतनी गुणश्रेणी करता है। इस प्रकार सूक्ष्मलोभ का वेदन करते हुए इस गुणस्थान के अंतिम समय को प्राप्त होकर मोहनीय का सर्वथा अभाव करता है।

१६) क्षीणमोह गुणस्थान - दसवें गुणस्थान का काल समाप्त होने पर यह जीव क्षीणमोह नामक बारहवें गुणस्थान को प्राप्त होता है। इसे यथाख्यात विहार शुद्धिसंयत कहते हैं। यही जीव निर्ग्रन्थ वीतराग संज्ञा को भी प्राप्त होता है। इसके प्रथम समय में यह जीव ज्ञानावरणादि छह कर्मों की गुणश्रेणिरचना साधिक क्षीणमोह गुणस्थान के काल प्रमाण करता है। यहाँ केवल सातावेदनीय का एक समय स्थितियुक्त बन्ध होता है। इसे ही ईर्यापथ आस्रव कहते हैं। यहाँ घातिकर्मों का स्थितिकाण्डकायाम अंतर्मुहूर्त प्रमाण और अघातिकर्मों का स्थितिकाण्डकायाम शेष स्थितिसत्त्व का असंख्यात बहुभाग प्रमाण होता है। अशुभ प्रकृतियों का अनुभागकांडकायाम अनन्त बहुभाग प्रमाण होता है। गुणश्रेणी अवस्थित होती है। जब यह जीव तीन घातिकर्मों का अंतिम स्थितिकाण्डक का पतन करता है तब इसकी कृत्यकृत्य छद्मस्थ ऐसी संज्ञा होती है। इसके पश्चात् घातिकर्मों की उदीरणा तब तक होती है जब तक उनकी स्थिति एक समय अधिक आवलिप्रमाण शेष रहती है। उदयावली में प्रवेश करने पर क्रम से उदय होकर उसका नाश होता है। इसके उपान्त्य समय में निद्रा और प्रचला ये दो प्रकृतियाँ उदय और सत्त्व से व्युच्छिन्न होती हैं। उसी प्रकार अंतिम समय में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय की शेष चौदह प्रकृतियों की सत्त्वव्युच्छित्ति होती है।

तीन वेद और चार कषायों में से कोई भी एक वेद और एक कषाय के उदय से जीव क्षपकश्रेणी चढता है इस अपेक्षा से बारह भंग होते हैं। उसकी विशेषता मूलग्रंथ में से जान लेनी चाहिए।

१७) सयोग केवली - चार घातिकर्मों की उदय और सत्त्व व्युच्छित्ति होने पर यह जीव सर्वज्ञ - सर्वदर्शी सयोगी जिन होता है। इसके प्रथम समय में चार घातिकर्मों का अभाव होने से अनन्त चतुष्टय की युगपत् प्राप्ति होती है। सात प्रकृतियों का पूर्व में ही क्षय होने से क्षायिक सम्यकत्व व चारित्रमोह का क्षय होने से क्षायिक चारित्र भी होता है। सयोग केवलियों को इंद्रियजन्य सुख-दुःख नहीं होता हैं। वे इंद्रियातीत सुख से युक्त होते हैं। क्योंकि दानान्तरायादि अन्तराय कर्मों का अभाव होने से वेदनीय कर्म अपना कार्य करने में असमर्थ है। इसे सातावेदनीय का एकसमय वाला स्थितिबन्ध होने से सातावेदनीय का निरन्तर उदय है। जब पूर्वबद्ध असाता वेदनीय का उदय होता है तो भी सातारूप परिणमता है। इनका परमौदारिक शरीर होता हैं क्योंकि बारहवें गुणस्थान के अंतिम समय में शरीर में रहने वाले निगोदीयाँ जीवों का अभाव होता है और प्रतिसमय दिव्यतम नवीन नोकर्म वर्गणाओं का ग्रहण

होता है।

१८) समुद्घात केवली - जब आयु में अन्तर्मुहूर्तकाल शेष रहता है तब तीन अघातियाँ कर्मों की स्थिति को आयुकर्म की स्थितिसमान करने के लिए यथासंभव केवली जिन समुद्घात करते हैं। दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण के भेद से समुद्घात चार प्रकार का है। इसे चढ़ने पर चार समय और उतरने पर चार समय ऐसे कुल आठ समय लगते हैं। जिस समय केवली जिन समुद्घात के सन्मुख होते हैं तब सर्वप्रथम आवर्जितकरण (समुद्घात के सन्मुख होना) होता है।

केवली जिनों के स्वस्थान अवस्था में और आवर्जितकरण के काल में स्थिति और अनुभाग का घात नहीं होता है। यहाँ उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि आयाम है और गुणश्रेणि का द्रव्य भी अवस्थित होता है। मात्र स्वस्थान केवली के गुणश्रेणिआयाम से आवर्जितकरणसंबंधी गुणश्रेणि आयाम संख्यातगुणा हीन है वह आवर्जितकरण के समय से लेकर शेष रहे सयोगी जिन का काल, अयोगीजिन का काल और उसका संख्यातवाँ भाग सब मिलकर जितना काल होता है उतना है । स्वस्थान गुणश्रेणि के काल में जितने द्रव्य का अपकर्षण होता है उसमें से आवर्जितकरण काल में असंख्यातगुणे द्रव्य का अपकर्षण होता है। आवर्जितकरण संपन्न होने पर केवलीजिन केवली समुद्घात क्रिया संपन्न करते हैं।

समुद्घात करते समय प्रथम चार समयों में एक-एक समय में आयुकर्म बिना शेष तीन अघातिकर्मों की शेष रही स्थिति का असंख्यात बहुभाग का घात करता है और अप्रशस्त कर्मों के शेष रहे अनुभाग के अनन्त बहुभाग का घात करता है। जब यह जीव लोकपूरण क्रिया संपन्न करता है तब योग की एक वर्गणा होती है। इसका अर्थ ऐसा है कि इसके पूर्व आत्मप्रदेशों में योग के अविभागप्रतिच्छेद हीनाधिक होते हैं। यहाँ आत्मा के सर्व आत्मप्रदेशों में योग के अविभागप्रतिच्छेद समान होते हैं। वे सूक्ष्मनिगोदिया जीव के जघन्य योगसंबंधी जघन्य वर्गणा से भी अल्प हैं। वे केवल एक समयतक रहते हैं। इसके पश्चात् पुन: हीनाधिक होते हैं।

१९) योगनिरोध - समुद्घात क्रिया संपन्न होने पर अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् सयोग केवली भगवान योगनिरोध करते हैं। कर्मों का ग्रहण करने में निमित्तभूत जीव प्रदेशों के परिस्पंदन को योग कहते हैं। उसका नाश करना 'निरोध' हैं। केवलियों को मन-वचन-काय ये तीनों योग बादर होते हैं। बादरकाययोग द्वारा क्रम से बादर मनोयोग, बादर वचनयोग, बादर उच्छ्वास-निश्वास को सूक्ष्मरूप करते हैं। पश्चात् बादर काययोग का भी निरोध करके सूक्ष्म काययोग करते हैं। पुन: सूक्ष्म काययोग द्वारा क्रमश: सूक्ष्म मनोयोग, वचनयोग और उच्छ्वास-निश्वास का नाश करके वह जीव सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति ध्यान को प्राप्त होता हैं उस समय से अन्तर्मुहूर्त अन्तर्मुहूर्तकाल तक योगसंबंधी पूर्वस्पर्धकों के नीचे श्रेणि के असंख्यातवें भागप्रमाण अपूर्व स्पर्धकों की रचना करते हैं। योग को उत्तरोत्तर हीन करने के लिए प्रथम समय में जितने जीवप्रदेशों का अपकर्षण करते हैं उससे द्वितीयादि समयों में उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे जीवप्रदेशों का अपकर्षण करते हैं।

इसके पश्चात् सयोगी जिन अपूर्व स्पर्धकों के नीचे जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भागप्रमाण सूक्ष्म कृष्टियों को करते हैं। कृष्टिगत जीवप्रदेशों की शक्ति अपूर्व स्पर्धकों से असंख्यातगुणे हीन होती है। कृष्टिकरण क्रिया संपन्न होने पर पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों का अभाव करके केवली सूक्ष्म कृष्टिगत योग का वेदन करते हैं। उसके पश्चात् प्रथम समय में सर्वकृष्टियों के असंख्यातवें भागप्रमाण नीचे और ऊपर की कृष्टियों को मध्यम कृष्टिरूप परिणमाकर नष्ट करते हैं और बहुभागप्रमाण कृष्टियों को उदयद्वारा नष्ट करते हैं। इसके पश्चात् उत्तरोत्तर विशेष कम कृष्टियों का उदय होता है। जब सयोग गुणस्थान का अंतिम समय प्राप्त होता है तब शेष सर्व असंख्यात बहुभागप्रमाण मध्य की कृष्टियों का भी नाश करते हैं।

जब सयोगी गुणस्थान का अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहता है तब वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म के अंतिम स्थितिकांडक को नाश करने के लिए ग्रहण करते हैं। इसमें सयोगी और अयोगी गुणस्थान का जितना काल शेष रहता है उतने निषेकों को छोडकर गुणश्रेणिशीर्षसहित संपूर्ण उपरितन स्थिति को ग्रहण करते हैं। इस प्रकार तीन अघातिकर्मों की स्थिति को कम करके अयोगी जिन के प्रथम समय में आयुकर्म के समान शेष कर्मों की स्थिति शेष रहती हैं।

२०) **अयोगकेवली -** अयोगी जिन समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति नामक चतुर्थ शुक्लध्यान करते हैं। उसी प्रकार प्रथम समय में ही शील के ईशपने को प्राप्त करके संपूर्ण आस्रव बंध रहित होते हैं। अयोगी के काल का प्रमाण 'अ, इ, उ, ऋ, लृ,' इन पाँच ह्रस्व स्वर के उच्चारण कालप्रमाण लघु अंतर्मुहूर्त है । इसकाल के उपान्त्य समय में बहत्तर (७२) प्रकृतियाँ और अंतिम समय में तेरह प्रकृतियों का क्षय करके अनन्तर समय में सिद्ध होते हैं और सिद्धालय में जाकर विराजमान होते हैं। ऐसे सिद्धगति को प्राप्त सिद्ध भगवान हमें उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन- ज्ञान-चारित्र लब्धि के साथ उत्कृष्ट समाधि देवें।

* * * * *

विषयानुक्रमिका

विषय	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.
चारित्रमोहक्षपणाधिकार	-	-
• चारित्रमोह के क्षपणासंबंधी अधिकारों का निर्देश	३९३	०१
• अध:प्रवृत्तकरण में होनेवाली क्रियाएँ	३९४-३९७	०२
• चारित्रमोह की क्षपणा के लिए उद्यत जीव के परिणाम	-	०४
योग, कषाय, लेश्यादि कैसी होती है उसका वर्णन	-	-
• अपूर्वकरण में होने वाले कार्य विशेष	३९८	०९
• अपूर्वकरण में होनेवाली गुणश्रेणि का कथन	३९९-४००	१०
• गुणसंक्रमण का निर्देश	४०१	१२
• अपकर्षणसंबंधी अतिस्थापना का कथन	४०२	१३
• संक्रमण, उत्कर्षण, अपकर्षणसंबंधी विशेष नियम	४०३-४०५	१४
• अपूर्वकरण में जघन्य उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक का प्रमाण	४०६	२०
• अपूर्वकरण में प्रथम और अंतिम स्थितिकांडकायाम,	४०७-४०८	२१
स्थितिसत्त्व और स्थितिबंध का अल्पबहुत्व	-	-
• अनुभागकांडकघात का वर्णन	४०९-४१०	२२
• अपूर्वकरण में बंधव्युच्छित्ति का कथन	४११	२४
• अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में आवश्यक	४१२	२५
• अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में स्थितिकांडक का प्रमाण	४१३-४१४	२५
• स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व का प्रमाण	४१५	२७
• स्थितिबंधापसरण के क्रम का वर्णन	४१६-४१८	२८
• स्थितिकांडक और स्थितिबंधापसरण में विशेषता	४१९	३०
• स्थितिबंधापसरण का प्रमाण	४२०	३०
• स्थितिबंध के क्रमकरण का प्ररूपण	४२१-४२७	३१
• स्थितिसत्त्वापसरण का निर्देश	४२८	३८
• क्रमकरण के पश्चात् असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा का प्रारम्भ	४२९	४०

विषय	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.
• मध्यवर्ती आठ कषायों का संक्रमण	४३०	४०
• सोलह प्रकृतियों का संक्रमण	४३१	४२
• देशघातिकरण का निरूपण	४३२-४३३	४४
• अंतरकरण का विधान	४३४-४३६	४५
• अंतरकरण के पश्चात् प्रारंभ होने वाले सात करण	४३७-४३८	५१
• आनुपूर्वी संक्रमण का क्रम	४३९-४४०	५२
• संक्रमणद्वारा नपुंसकवेद की क्षपणा	४४१	५३
• संक्रमण को प्राप्त होने वाले द्रव्य का माहात्म्य	४४२	५३
• उदय और संक्रमण की निरंतर गुणश्रेणि	४४३	५५
• स्त्रीवेद का संक्रमण और उसमें होने वाले कार्यों का निर्देश	४४४-४४५	५६
• सात नोकषायों के संक्रमणकाल में होने वाले कार्यविशेष	४४६-४६२	५७
• अश्वकर्णकरण का स्वरूप	४६३	७०
• अश्वकर्णकरण के प्रारंभ में संज्वलन के सत्त्व और बंध का प्रमाण	४६४	७०
• संज्वलन के अनुभाग का अल्पबहुत्व	४६५	७१
• घात होने पर शेष अनुभागसत्त्व का प्रमाण	४६६	७२
• अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में होने वाले अपूर्व स्पर्धकों के द्रव्य देने का विधान	४६७-४६९	७६
• पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों में गोपुच्छाकार रचना	४७०-४७१	९०
• लोभादिक के स्पर्धकों की वर्गणासंबंधी विशेष विचार	४७२-४७३	१०२
• उपयोगी करणसूत्र	४७४	१०३
• क्रोधादिकों के काण्डक का प्रमाण	४७५	१०४
• प्रकृत अल्पबहुत्व	४७६	१०८
• अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में स्पर्धकों के उदय और बंध का प्रमाण	४७७	१०९
• द्वितीयादि समयों में अपूर्वस्पर्धकों का विधान	४७८-४७९	१११
• दीयमान द्रव्य का क्रम	४८०	११३

विषय	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.
• दृश्यमान द्रव्य का क्रम	४८१	११५
• प्रथम अनुभागकांडकघात का परिणाम	४८२	११६
• प्रथमादि समयों में घटतेक्रम से अपूर्वस्पर्धकों की रचना	४८३	११७
• स्पर्धकों की वर्गणाओं में अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व	४८४	११८
• अश्वकर्णकरण के प्रथम अनुभागकांडक का पतन होने पर स्पर्धकादिकों का अल्पबहुत्व	४८५-४८७ -	११९
• अपूर्वस्पर्धककरण की समाप्ति	४८८	१२३
• अश्वकर्णकरण के अंतिम समय में स्थितिबंध और सत्त्व	४८९-४९०	१२६
• बादरकृष्टिकरण के काल का प्रमाण	४९१-४९२	१२७
• बादरकृष्टिकरण के लिए द्रव्य का अपकर्षण और उसका विभाग	४९३-४९४	१३०
• संग्रह और अवयवकृष्टियों की संख्या	४९५	१३१
• कृष्टियों में कषाय और नोकषाय के द्रव्यविभाजन संबंधी विशेष	४९६-४९७	१३२
• कौन सी कषाय से श्रेणि चढ़नेवाले की कितनी संग्रहकृष्टियाँ होती है?	४९८	१३८
• अंतरकृष्टियों की संख्या और उनका क्रम	४९९-५००	१३८
• लोभ की जघन्यकृष्टि से लेकर क्रोध की उत्कृष्ट कृष्टि तक देयद्रव्य का क्रम	५०१-५०२	१४२
• द्वितीयादि समयों में नीचे और पार्श्वभाग में अपूर्वकृष्टियों की रचना	५०३-५०४	१४५
• पूर्व-अपूर्व कृष्टियों में द्रव्य देने का क्रम और उष्ट्रकूट रचना	५०५-५०६	१६४
• कृष्टिकरण के अंतिम समय में स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व का प्रमाण	५०७-५०९	१७२
• अनुभाग की अपेक्षा से कृष्टि और स्पर्धक का लक्षण	५१०	१७५

विषय	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.
• कृष्टिकारक कृष्टि का भोक्ता नहीं और कृष्टिकरण का निष्ठापन	५११	१७५
• कृष्टिवेदन के प्रथम समय में स्थितिबंध और सत्त्व	५१२	१७६
• उच्छिष्टावली और नवकबंध के अनुभाग का निर्देश	५१३	१७७
• कृष्टिकारक और कृष्टिवेदन का क्रम	५१४	१७८
• कृष्टिवेदक के प्रथम समय में क्रोध की प्रथम स्थिति	५१५	१७८
• उदीयमान और बध्यमान कृष्टियों का निर्देश	५१६	१८३
• नीचे और ऊपर की अनुभय, उदय और उभयकृष्टियों का अल्पबहुत्व	५१७-५१८	१८४
• द्वितीयादि समयों में उदयादि कृष्टियों का प्रमाण और विशेष	५१९-५२१	१८७
• प्रतिसमय कृष्टियों की बंध-उदय की अहिगति	५२२	१९२
• संक्रमण द्रव्य का विधान	५२३	१९३
• प्रतिसमय अपवर्तना की प्रवृत्ति का क्रम	५२४	१९९
• परस्थान स्वस्थान गोपुच्छ का नाश	५२५	१९९
• आय और व्यय द्रव्य का कथन	५२६	२००
• स्वस्थान और परस्थान गोपुच्छा के सद्भाव का विधान	५२७	२०१
• मध्यमखंडादिक करने का विधान	५२८	२०४
• संक्रमण द्रव्य और बंधद्रव्य का विभाग	५२९-५३२	२०५
• बंध अपूर्वकृष्टियों में अंतराल का प्रमाण	५३३	२०८
• बंध द्रव्य देने का विधान	५३४	२०८
• संक्रमणद्रव्य द्वारा अधस्तन और अंतर अपूर्व कृष्टियों की रचना	५३५-५३६	२१०
• घातकृष्टियों का प्रमाण	५३७-५३८	२३३
• क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की प्रथम स्थिति में एक समय अधिक आवलि शेष रहने पर जघन्य उदीरणा और चरमवेदक	५३९	२३५
• उस समय में स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व	५४०-५४१	२३६
• क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि का वेदन और उस समय में होने वाले कार्यविशेष	५४२-५४५	२३८

विषय	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.
• क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि के स्वस्थान परस्थान संक्रमण की सीमा	५४६	२४१
• स्वस्थान-परस्थान संक्रमण का नियम	५४७	२४१
• कौन-कौन सी कृष्टियों के संक्रमण का अभाव	५४८	२४३
• वेद्यमान और अवेद्यमान संग्रहकृष्टियों के बंध-अबंध का निर्देश	५४९	२४३
• द्वितीय संग्रहकृष्टि के वेदनकाल में अवयव कृष्टियों का और द्रव्य का अल्पबहुत्व	५५०	२४४
• वेद्यमान कृष्टि की प्रथम स्थिति समयाधिक आवलि शेष रहने पर होने वाले कार्यविशेष	५५१	२४६
• द्वितीय संग्रहकृष्टिवेदक के अंतसमय में स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व	५५२-५५४	२४६
• तृतीय संग्रहकृष्टि की प्रथम स्थिति स्थापना और अंतसमय मे बंध और सत्त्व का प्रमाण	५५५	२४८
• मान की प्रथम संग्रहकृष्टि की प्रथम स्थिति की स्थापना	५५६	२४९
• चरमसमय में बंध और सत्त्व का निर्देश	५५७	२५०
• मान की द्वितीय संग्रहकृष्टि का वेदन, स्थितिबंध और सत्त्व	५५८	२५५
• मान की तृतीय संग्रहकृष्टि का वेदन, स्थितिबंध और सत्त्व	५५९	२५५
• माया की प्रथम संग्रहकृष्टि का वेदन, स्थितिबंध और सत्त्व	५६०	२५६
• माया की द्वितीय संग्रहकृष्टि का वेदन, स्थितिबंध और सत्त्व	५६१	२५६
• माया की तृतीय संग्रहकृष्टि का वेदन, स्थितिबंध और सत्त्व	५६२-५६३	२५७
• लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि का वेदन, स्थितिबंध और सत्त्व	५६४-५६५	२५८
• लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि का वेदन, सूक्ष्मकृष्टि की रचना	५६६	२५९
• सूक्ष्मकृष्टियों का अवस्थानादि	५६७	२६०
• सूक्ष्मकृष्टियों का प्रमाण लाने के लिये अल्पबहुत्व	५६८-५६९	२६१
• प्रत्येक समय में असंख्यातगुणी हीन कृष्टियों की रचना और दीयमान द्रव्य में असंख्यातगुणा क्रम	५७०	२६३

विषय	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.
• प्रथम समय में दीयमान द्रव्य की श्रेणी प्ररूपणा	५७१	२६३
• द्वितीयादि समयों में अधस्तन और अंतरकृष्टियों की रचना	५७२	२७५
• पूर्व और अपूर्व सूक्ष्मकृष्टियों में दीयमान द्रव्य की श्रेणी प्ररूपणा	५७३	२७६
• सूक्ष्म और बादर कृष्टियों में दृश्यमान द्रव्य	५७४-५७५	२८०
• संक्रम्यमाण द्रव्य का अल्पबहुत्व	५७६-५७८	२८२
• लोभ की द्वितीयकृष्टि में से तृतीय कृष्टि में संक्रमण होने की अवधि	५७९	२८५
• बादर लोभ की प्रथमस्थिति समयाधिक शेष रहने पर सर्व द्वितीय और तृतीय कृष्टि का सूक्ष्मकृष्टिरूप से परिणमन	५८०	२८६
• नवमें गुणस्थान के अंतिमसमय में स्थितिबंध और सत्त्व का प्रमाण	५८१-५८२	२८७
• सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान की प्राप्ति और गुणश्रेणी में द्रव्य देने का प्रमाण	५८३	२८८
• तीन पर्वों के कथनपूर्वक अवस्थित गुणश्रेणी आयाम का प्रमाण	५८४	२८८
• तीन पर्वों में अपकृष्ट द्रव्य देने का विधान	५८५-५८७	२८९
• दृश्यमान द्रव्य की श्रेणी प्ररूपणा	५८८	२९५
• प्रथमकांडक की चरमफालि का द्रव्य और उसे देने का विधान	५८९	२९६
• द्वितीय कांडक से लेकर द्विचरम कांडक तक द्रव्य देने का विधान	५९०	३००
• द्वितीय कांडक से लेकर द्विचरम कांडक तक दृश्यमान द्रव्य	५९१-५९२	३०१
• मोह की गुणश्रेणी, अंतरायामादि कों का अल्पबहुत्व	५९३	३०३
• द्वितीयादि कांडकों के काल में गुणश्रेणी के ऊपर गोपुच्छ रचना	५९४	३०३
• नीचे और ऊपर की अनुदीर्ण और मध्यम उदीर्ण कृष्टियों का अल्पबहुत्व	५९५	३०४
• सूक्ष्मसांपराय के अंतिम स्थितिकांडकायाम का प्रमाण	५९६	३०६
• अंतिम स्थितिकांडक के दीयमान और दृश्यमान द्रव्य की रचना सम्यक्त्व के समान होती है इसका निर्देश	५९७	३०७
• अंतिम स्थितिकांडक का घात होने पर स्थितिघात का अभाव और मोह के स्थितिसत्त्व का कथन	५९८	३०९

विषय	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.
• सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व का प्रमाण	५९९-६००	३१०
• क्षीणकषाय गुणस्थान की प्राप्ति और वहाँ की विशेषता	६०१	३११
• क्षीणकषाय गुणस्थान में स्थिति और अनुभागकांडक का प्रमाण	६०२	३१३
• अंतिमकांडक ग्रहण का काल और वहाँ देयादि द्रव्य का विधान	६०३	३१३
• अंतिमकांडक का पतन होने पर क्षीणकषायी को कृतकृत्य संज्ञा की प्राप्ति	६०४	३१४
• मानादि तीन कषाय सहित श्रेणी चढ़ने वाले जीवों की प्रथम स्थिति आदि की विशेषता	६०५-६०६	३१५
• स्त्रीवेदसहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव की विशेषता	६०७	३२०
• नपुंसकवेदसहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव का विशेष वर्णन	६०८-६०९	३२१
• क्षीणकषाय गुणस्थान के अंतिम समय में उदय और सत्त्वव्युच्छित्ति का कथन करके सयोगी जिनों का वर्णन	६१०	३२२
• अनन्तचतुष्टय की उत्पत्ति का कारण	६११	३२४
• कौन से कर्म के नाश से कौन से गुण की प्राप्ति	६१२-६१४	३२५
• केवलियों के दु:ख का अभाव	६१५	३२६
• केवलियों के इंद्रियसुख का अभाव	६१६	३२७
• केवलियों के साता असाताजनित जनित सुखदु:ख के अभाव का कारण	६१७-६१८	३२७
• केवलियों का नोकर्माहार और उसकी स्थिति का प्रमाण	६१९	३२९
• केवली समुद्घात में तीन समय तक नोकर्माहार नहीं	६२०	३२९
• केवली समुद्घात के पूर्व में आवर्जितकरण और वहाँ होने वाले कार्यविशेष	६२१-६२४	३३१
• केवली समुद्घात का वर्णन	६२५-६२८	३३५
• योगनिरोध का निरूपण	६२९-६३१	३३८

विषय	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.
• सूक्ष्मकाययोग के प्रथम समय से लेकर अपूर्व स्पर्धकों की रचना	६३२-६३५	३४१
• योगसम्बन्धी कृष्टियों की रचना	६३६-६४०	३४७
• कृष्टिकरणकाल की समाप्ति के पश्चात् होने वाली प्रक्रिया	६४१	३५४
• कृष्टिगत योग का वेदन	६४२-६४३	३५४
• कृष्टिगत योगियों के तृतीय शुक्लध्यान का वर्णन	६४४	३५६
• सयोगी का अंतिम स्थितिकांडकायाम का प्रमाण और देयादि क्रम	६४५-६४६	३५७
• अयोगी जिनों को चौथा शुक्लध्यान	६४७	३६०
• शैलेश्यभाव की प्राप्ति	६४८	३६०
• अयोगी जिनों की शुक्लध्यान द्वारा नष्ट प्रकृतियाँ	६४९	३६१
• आठवी पृथ्वी का वर्णन	६५०	३६२
• प्रथम दो शुक्लध्यान के स्वामी	६५१	३६२
• सिद्धों के रत्नत्रय की शुद्धि की और समाधि की याचना	६५२	३६३
• लब्धिसार शास्त्र की समाप्ति	६५३	३६५
• अंतिम मंगलाचरण	६५४	३६५

ॐ

चारित्रमोहक्षपणाधिकार

मंगलाचरण

सिद्धे जिणिंदचंदे आयरियउवज्झायसाहुगणे।
वंदिय सम्मद्दंसणचरित्त लद्धिं परुवेमो।

चारित्रमोह की क्षपणा के अधिकारों के नाम कहते हैं -

तिकरणमुभयोसरणं कमकरणं खवणदेसमंतरयं।
संकम अपुव्वफड्ढयकिट्टीकरणाणुभवण खवणाये ।।३९३ ।।

त्रिकरणमुभयापसरणं क्रमकरणं क्षपणं देशमन्तरकम्।
संक्रममपूर्वस्पर्धककृष्टिकरणानुभवनानि क्षपणायाम्।।३९३।।

अन्वयार्थ - (खवणाये) चारित्रमोह की क्षपणा के विषय में **(तिकरणं)** अध:करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण ये तीन करण, **(उभयोसरणं)** बंधापसरण और सत्त्वापसरण ये दो अपसरण, **(कमकरणं)** क्रमकरण, **(खवणदेसमंतरयं)** क्षपणा, देशघातिकरण, अंतरकरण **(संकम अपुव्वफड्ढयकिट्टीकरणाणुभवण)** संक्रमण, अपूर्वस्पर्धककरण, कृष्टिकरण, कृष्टिअनुभवन ये १३ अधिकार हैं।

विशेषार्थ - चारित्रमोह की क्षपणा दर्शनमोह की क्षपणा होने पर होती है। क्योंकि क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव ही क्षपकश्रेणी पर आरोहण कर सकता है। अनंतानुबंधी कषाय की विसंयोजना हुए बिना दर्शनमोह की क्षपणा का प्रारंभ नहीं हो सकता। अनन्तानुबन्धी कषाय की विसंयोजना और दर्शनमोह की क्षपणा होने पर क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर मोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों के सत्त्व से सहित होता है। वह जघन्य से अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्टरूप से अंतर्मुहूर्तसहित आठ वर्ष कम दो पूर्वकोटि से अधिक तैंतीस सागरोपमकाल संसार में रहता है। वहाँ किसी भी काल में चारित्रमोह की क्षपणा के योग्य विशुद्धि से सहित होकर प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानों में हजारों बार गमनागमन करके महामुनि चक्रवर्ती यथाख्यात चारित्ररूप एक छत्र राज्य करने के लिए क्षपक श्रेणीरूप दिग्विजय करने के सन्मुख होता हुआ प्रथम सातिशय अप्रमत्तगुणस्थान में अध:करणरूप प्रस्थान करता है।

क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले की अध:करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण ऐसे तीन विशद्ध परिणाम कालों की एक पंक्ति है। इन तीनों में से प्रत्येक का काल अन्तर्मुहूर्त है। दर्शनमोह की उपशमना के प्रसंग में अध:प्रवृत्तकरणादि के लक्षण और तत्संबंधी क्रियाओं की जिस प्रकार प्ररूपणा की गयी है उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए क्योंकि दोनों में प्राय: समानता है। विशेषता केवल इतनी है कि उपशमनादि में होने वाले अध:प्रवृत्तकरणादि के काल की अपेक्षा क्षपकश्रेणी संबंधी अध:प्रवृत्तकरणादि का काल संख्यातगुणा हीन है क्योंकि शुद्धतर परिणामों में दीर्घकाल तक रहना शक्य नहीं है। उपशमनादि संबंधी परिणामों की अपेक्षा क्षपक श्रेणी संबंधी परिणाम अनन्तगुणे विशुद्ध हैं।

अध:प्रवृत्तकरण में होने वाले कार्य विशेष चार गाथाओं के द्वारा कहते हैं-

गुणसेढी गुणसंकम ठिदिरसखंडाण णत्थि पढमम्हि।
पडिसमयमणंतगुणं विसोहिवड्डीहिं वड्ढदि हु[1] ।।३९४।।

गुणश्रेणी गुणसंक्रमं स्थितिरसखण्डनं नास्ति प्रथमे।
प्रतिसमयमनन्तगुणं विशुद्धिवृद्धिभिर्वर्धते हि।।३९४।।

अन्वयार्थ - (पढमम्हि) प्रथम अध:प्रवृत्तकरण में **(गुणसेढी)** गुणश्रेणी **(गुणसंकमठिदिरसखंडाण)** गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात **(णत्थि)** नहीं होते हैं परन्तु वह जीव **(हु)** निश्चय से **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(अणंतगुणं)** अनन्तगुणी **(विसोहिवड्डीहिं)** विशुद्धि की वृद्धि से बढता है।

सत्थाणमसत्थाणं चउविट्ठाणं रसं च बंधदि हु।
पडिसमयमणंतेण य गुणभजियकमं तु रसबंधे[2] ।।३९५।।

शस्तानामशस्तानां चतुर्द्विस्थानं रसं च बध्नाति हि।
प्रतिसमयमनन्तेन च गुणभजितक्रमं तु रसबंधे।।३९५।।

अन्वयार्थ - (हु) पुन: वह जीव **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(रसबंधे)** अनुभागबंध में **(सत्थाणं)** प्रशस्त प्रकृतियों का **(अणंतेण गुणकमं)** अनन्तगुणित क्रम से **(चउविट्ठाणं रसं)** चतु:स्थानीय अनुभाग **(बंधदि)** बाँधता है **(च)** और **(असत्थाणं)** अप्रशस्त प्रकृतियों का **(अणंतेण य भजियकमं)** अनन्तवें भाग क्रम से **(विट्ठाणं रसं)** द्विस्थानीय अनुभाग **(बंधदि)** बाँधता है।

१) लब्धिसार गाथा ३७ के समान
२) लब्धिसार गाथा ३८ के समान

भावार्थ - अध:प्रवृत्तकरण में दो कार्य होते हैं। (१) प्रशस्त (पुण्य) प्रकृतियों का प्रत्येक समय में अनन्तगुणित क्रम से गुड़, खांड, शर्करा, अमृतरूप चतु:स्थानीय अनुभागबंध होता है। (२) पाप प्रकृतियों का प्रत्येक समय में अनन्तगुणित हीनक्रम से घातिकर्मों का लता-दारु रूप और अघातिकर्मों का निंब-कांजीर रूप द्विस्थानीय अनुभागबंध होता है।

पल्लस्स संखभागं मुहुत्तअंतेण ओसरदि बंधे।
संखेज्जसहस्साणि य अधापवत्तम्हि ओसरणा[1] ।।३९६।।

पल्यस्य संख्यभागं मुहूर्तान्तेनापसरति बन्धे।
संख्येयसहस्राणि च अध:प्रवृत्तेऽपसरणानि।।३९६।।

अन्वयार्थ - (बंधे) बंध में **(मुहुत्तअंतेण)** अंतर्मुहूर्त द्वारा **(पल्लस्स संखभागं)** पल्य का संख्यातवां भाग **(ओसरदि)** कम करता है। इस प्रकार **(अधापवत्तम्हि)** अध:प्रवृत्तकरण काल में **(संखेज्जसहस्साणि य)** संख्यात हजार **(ओसरणा)** अपसरण होते हैं।

भावार्थ - पूर्व स्थितिबंध से पल्योपम का संख्यातवां भाग मात्र स्थितिबंध कम करके एक अंतर्मुहूर्त काल तक प्रतिसमय समान स्थितिबंध करता है तब एक स्थितिबंधापसरण होता है। ऐसे संख्यातहजार स्थितिबंधापसरण अध:प्रवृत्तकरण में होते हैं।

आदिमकरणद्धाए पढमट्ठिदिबंधदो दु चरिमम्हि।
संखेज्जगुणविहीणो ठिदिबंधो होदि णियमेण[2] ।।३९७।।

आद्यकरणाद्धायां प्रथमस्थितिबन्धतस्तु चरमे।
संख्येयगुणविहीनः स्थितिबन्धो भवति नियमेन।।३९७।।

अन्वयार्थ - (आदिमकरणद्धाए) प्रथम करण अर्थात् अध:प्रवृत्तकरण के काल में **(पढमट्ठिदिबंधदो दु)** प्रथम स्थितिबंध से **(चरिमम्हि)** अंतिम समय का **(ठिदिबंधो)** स्थितिबंध **(णियमेण)** नियम से **(संखेज्जगुणविहीणो)** संख्यातगुणा हीन होता है।

भावार्थ - अध:प्रवृत्तकरण काल में एक-एक अन्तमुहूर्त में एक-एक स्थितिबंधापसरण होता है। प्रत्येक स्थितिबंधापसरण में पल्य का संख्यातवां भाग स्थितिबंध हीन होता है। इस प्रकार संख्यात-

---

१) लब्धिसार गाथा ३९ के समान २) लब्धिसार गाथा ४० के समान

हजार स्थितिबन्धापसरण होने के कारण प्रथम समय के स्थितिबंध से अंतिम समय का स्थितिबंध संख्यात गुणा हीन होता है।

इस प्रकार अध:प्रवृत्तकरण का काल क्रम से व्यतीत करके वह जीव अंतिम समय को प्राप्त होता है। अध:प्रवृत्तकरण के अंतिम समय में 'आत्मविशुद्धि के द्वारा बढ़ता है'। इसका प्रारंभ करके चारित्रमोह की क्षपणा से संबंधित चार गाथासूत्रों का व्याख्यान यहाँ करते हैं -

प्रथम गाथा -

संकामणपट्ठवगस्स परिणामो केरिसो भवे।
जोगे कसाय-उवजोगो लेस्सा वेदो य को भवे[1] ।।१।।

गाथार्थ - संक्रामण प्रस्थापक के अर्थात् कषायों की क्षपणा का प्रारंभ करने वाले जीव का परिणाम किस प्रकार का होता है? योग, कषाय, उपयोग, लेश्या और वेद कौन सा होता है ?

विशेषार्थ - प्रश्न- क्षपणा का प्रारंभ करने वाले के परिणाम किस प्रकार के होते हैं ?

उत्तर - उसके परिणाम विशुद्ध होते हैं। इस सूत्र वचन से अशुभ परिणामों का निराकरण करके शुभ-शुद्ध परिणाम ही यहाँ संभव है, इसका ज्ञान कराया है।

अध:करण के अंतिम समय में इसके परिणाम विशुद्ध होते हैं ऐसा नहीं है तो अध:प्रवृत्तकरण का प्रारम्भ करने के पूर्व अन्तर्मुहूर्त से प्रत्येक समय में अनन्तगुणी विशुद्धि से वह विशुद्ध होता आया है क्योंकि शुभ परिणाम की प्रणाली बिना एक ही समय में सुविशुद्ध परिणामरूप से परिणमन असंभव है।

प्रश्न - योग कौनसा होता है ?

उत्तर - चारों मनोयोगों में से कोई भी एक मनोयोग अथवा चारों वचनयोगों में से कोई भी एक वचनयोग अथवा सात काययोगों में से औदारिक काय योग होता है। इन ९ योगों के अतिरिक्त अन्ययोग सम्भव नहीं है।

शंका - ध्यानस्वरूप उपयोग के सन्मुख हुए छद्मस्थ को मनोयोग होने में विरोध नहीं है इसलिए मनोयोग संभव है; परन्तु चारों वचनयोग कैसे संभव हो सकते हैं ? क्योंकि ध्यानावस्था में समस्त बाह्य व्यापार रोक दिया है। इसलिए वचनयोग की प्रवृत्ति होने में विरोध है।

समाधान - यह कोई दोष नहीं है क्योंकि ध्यान में उपयुक्त हुए जीव को अव्यक्तरूप से वचनयोग की प्रवृत्ति संभव होती है। उसी प्रकार औदारिक काययोग भी संभव है क्योंकि औदारिक काययोग के निमित्त से जीवप्रदेशों का परिस्पन्दन होने में विरोध नहीं है।[2]

शंका - सातवे गुणस्थान से ध्यानावस्था होने से बारहवें गुणस्थान तक असत्य वचनयोग कैसे संभव है ?

---

१) ज. ध. पु. १४ पृ. १५४ २) ज.ध. पु. १४ पृ. १५६

समाधान - श्रुतकेवली संख्यात विषयों को ही जानते हैं। जब वे आकाशादि अनन्तात्मकपदार्थों का विचार करते हैं तब अव्यक्तरूप से असत्य वचनयोग की प्रवृत्ति संभव है। बारहवें गुणस्थान तक औदयिक अज्ञान है इसलिए असत्यवचनयोग संभव है।

प्रश्न - क्षपक को कौन-सी कषाय होती है ?

उत्तर - इस जीव को संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ में से कोई भी एक कषाय परिणाम होता है क्योंकि अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक चारों संज्वलन कषायों की प्रवृत्ति होती है। इसका हीयमान कषाय परिणाम होता है, वर्धमान नहीं क्योंकि विशुद्धिरूप परिणाम वर्धमान कषाय के विरुद्ध है।[१]

प्रश्न - क्षपक को कौन-सा उपयोग होता है ?

उत्तर - नियम से श्रुतज्ञान से उपयुक्त होकर क्षपकश्रेणी पर चढता है ऐसा एक उपदेश है। पृथक्त्व-वितर्क-वीचार नामक प्रथम शुक्लध्यान के अभिमुख हुआ चौदह, दस और नौ पूर्वधारी जीव को श्रुतज्ञानोपयोग अवश्य होता है क्योंकि उस अवस्था में जिन्होंने बाह्य इन्द्रियों के प्रसार का निरोध किया है उसे मतिज्ञानादि शेष ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग नहीं हो सकता है।

दूसरे उपदेशानुसार श्रुतज्ञान, मतिज्ञान, चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन इन चारों में से कोई भी एक उपयोग होता है क्योंकि श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है और मतिज्ञान चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन पूर्वक होता है इसलिए कारण में कार्य का उपचार करके उसको भी स्वीकार किया है।[२]

प्रश्न - क्षपक को कौन-सी लेश्या होती है ?

उत्तर - क्षपक को नियम से शुक्ल लेश्या होती है। वह भी अत्यन्त विशुद्ध लेश्या के कारणभूत मन्दतम कषाय के उदयसे वर्धमान होती है, हीयमान नहीं क्योंकि प्रत्येक समय में कषाय के अनुभाग स्पर्धकों का अनन्तगुणी हानिरूप से उदय होने से उससे उत्पन्न हुए शुभ लेश्याके परिणामों की वृद्धि ही होती है, हानि नहीं होती है।[३]

प्रश्न - वेद कौन-सा होता है ?

उत्तर - भाववेद की अपेक्षा से स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद इन तीनों में से कोई एक वेद होता है क्योंकि तीनों भाववेद के उदय से श्रेणी पर चढ़ने का निषेध नहीं है। इतनी विशेषता है कि द्रव्यवेद की अपेक्षा से पुरुषवेदी ही क्षपकश्रेणी पर आरोहण करता है।

---

१) ज. ध. पु. १४ पृ. १५६-१५७ २) ज. ध. पु. १४ पृ. १५७-१५८-१५९
३) ज.ध.पु. १४ पृ. १५९

द्वितीय गाथा -

काणि वा पुव्वबद्धाणि के वा अंसे णिबंधदि।
कदि आवलियं पविसंति, कदिण्हं वा पवेसगो[१] ।।२।।

गाथार्थ - पूर्वबद्ध कर्म कौन - कौन से हैं ? कौनसे कर्म परमाणुओं को बाँधता है? उदयावली में कितनी कर्म प्रकृतियाँ प्रवेश करती हैं ? कौनसे कर्मों का प्रवेशक (उदीरक) होता है?

विशेषार्थ-प्रश्न - क्षपक को सत्ता में पूर्वबद्ध कर्म कौन-कौन से होते हैं और कैसे होते हैं ?

उत्तर - इसका उत्तर प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशसत्त्व की अपेक्षा से देते हैं।

प्रकृति सत्कर्म - दर्शनमोहनीय तीन, अनन्तानुबन्धी चार कषाय और मनुष्यायु बिना तीन आयु इन दस प्रकृतियों को छोड़कर शेष कर्मों की सत्ता होती है। इतनी विशेषता है कि आहारक शरीर, आहारक शरीर अंगोपांग और तीर्थंकर ये तीन प्रकृतियाँ भजनीय हैं अर्थात् इन तीनों का सत्त्व किसी को होता है और किसी को नहीं।

स्थिति सत्कर्म - आयुकर्म के अतिरिक्त जिन प्रकृतियों की सत्ता है उनका स्थितिसत्त्व अन्त: कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है।

अनुभाग सत्कर्म - अप्रशस्त प्रकृतियों का द्विस्थानिक (अघातियों का निम्ब, कांजीर तथा घातियों का लता दारुरूप) और प्रशस्त प्रकृतियों का चतु:स्थानिक (गुड़, खांड, शर्करा, अमृतरूप) अनुभाग सत्कर्म है।

प्रदेश सत्कर्म - सर्व प्रकृतियों का प्रदेशसत्कर्म अजघन्य-अनुत्कृष्ट है। जघन्य और उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओं का समूह यहाँ संभव नहीं है।

प्रश्न - कौन - कौन से कर्मांशों को बाँधता है ?

उत्तर - प्रकृतिबन्ध - ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण की स्त्यानगृद्धित्रिक छोड़कर ६, सातावेदनीय, संज्वलन चतुष्क ४, पुरुषवेद १, हास्य , रति , भय , जुगुप्सा , उच्चगोत्र, अंतराय ५ ऐसी २७ और नामकर्म की देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक, तैजस, कार्मण-शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक शरीर अंगोपांग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण ये २८ प्रकृतियाँ अथवा कोई तीर्थंकर सहित २९, कोई आहारकद्विक सहित ३०, कोई तीर्थंकर आहारकद्विक सहित ३१ प्रकृतियाँ बाँधता है। इस प्रकार कुल ५५, ५६, ५७ अथवा ५८ प्रकृतियों को बाँधता है।

स्थितिबन्ध - उपर्युक्त प्रकृतियों का उनके स्थितिसत्त्व से संख्यातगुणा कम ऐसा अंत:

---

१) ज.ध.पु. १४ पृ. १६०-१६१

कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण स्थितिबन्ध होता है।

अनुभागबन्ध - अप्रशस्त प्रकृतियों का प्रत्येक समय में अनन्तगुणा घटते हुए क्रम से द्विस्थानीय और प्रशस्त प्रकृतियों का अनन्तगुणा बढ़ते हुए क्रम से चतु:स्थानीय अनुभागबंध होता है।

प्रदेशबन्ध - अजघन्य - अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है। यहाँ जघन्य अथवा उत्कृष्ट समयप्रबद्ध नहीं बांधता है। विशेष यह है कि निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकद्विक, आहारकद्विक, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, तीर्थंकर इन प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध भी होता है।

प्रश्न - उदयावली में कितनी प्रकृतियाँ प्रवेश करती हैं ?

उत्तर - सर्व मूल प्रकृतियाँ उदयावली में प्रवेश करती हैं; परन्तु जो उत्तर प्रकृतियाँ सत्त्वरूप हैं वे सब उदय अथवा अनुदयरूप से (परमुख-उदयरूप से) उदयावली में प्रवेश करती हैं। यहाँ कौन-सी प्रकृतियाँ उदयरूप होकर खिरती हैं और कौन सी प्रकृतियाँ स्तिबुक संक्रमण होकर खिरती हैं ? ऐसा प्रश्न नहीं पूछा, केवल यहाँ उदयावली में कौन-सी प्रकृतियाँ प्रवेश करती हैं, ऐसा प्रश्न पूछा है। इसलिए इसका उत्तर इतना ही है कि वहाँ सत्त्वरूप मूल और उत्तर जितनी प्रकृतियाँ हैं वे सब उदयावली में प्रवेश करती हैं।

प्रश्न - कौन-सी कर्म प्रकृतियाँ उदीरणा स्वरूप से उदयावली में प्रवेश करती हैं?

उत्तर - आयु और वेदनीय कर्म को छोड़कर वेदन किए जाने वाले कर्मों का उदीरणा स्वरूप से उदयावली में प्रवेश होता है। पाँच ज्ञानावरण और चार दर्शनावरण कर्मों का नियम से उदय है। निद्रा और प्रचला का कदाचित् वेदक होता है क्योंकि उनका कदाचित् अव्यक्त उदय संभव है। साता और असाता में से किसी एक का, चार संज्वलन में से एक का और तीन वेदों में से एक का, हास्य-रति अथवा शोक-अरति में से एक युगल का नियम से उदय है। भय-जुगुप्सा का कदाचित् उदय है और कदाचित् उदय नहीं है। मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर छह संस्थानों में से एक, औदारिक शरीराङ्गोपांग, वज्रर्षभनाराच संहनन, वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति में से एक, त्रस चतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग, दोनों स्वरों में से एक, आदेय, यश:कीर्ति, उच्चगोत्र और ५ अंतराय इनका नियम से उदय हैं। इन प्रकृतियों को छोड़कर अन्य प्रकृतियों का यहाँ उदय नहीं है। इनमें से साता-असाता वेदनीय और मनुष्यायु के अतिरिक्त शेष प्रकृतियों की उदीरणा होती हैं।

शंका - यहाँ वेदनीय और आयुकर्म की उदीरणा क्यों नहीं होती है ?

समाधान - क्योंकि वेदनीय और आयुकर्म की उदीरणा प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक होती है उसके आगे नहीं होती है यह नियम है[१]।

---

१) ज. ध. पु. १४ पृ. १६२

तृतीय गाथा -

के अंसे झीयदे पुव्वं बंधेण उदयेण वा

अंतरं वा कहिं किच्चा, के के संकामगो कहिं[१] ।।३।।

गाथार्थ - पूर्व में कौन-कौन सी प्रकृतियाँ बंध और उदय की अपेक्षा से व्युच्छिन्न होती हैं ? अंतर कहाँ करके कौन-कौन सी प्रकृतियों का कहाँ संक्रामक होता है?

प्रश्न - पूर्व में कौन-कौनसी प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति होती है ?

उत्तर - स्त्यानगृद्धित्रिक, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, १२ कषाय, अरति, शोक, स्त्री, नपुंसकवेद, आयु ४, नरक - तिर्यंच-मनुष्यगति, एकेन्द्रियजाति ४, औदारिक शरीर और औदारिक शरीर अंगोपांग, अंतिम संस्थान ५, संहनन ६, नरक-तिर्यंच-मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति और नीचगोत्र इन ६२ प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति होती है। १ से ७ गुणस्थान तक की बन्ध व्युच्छित्ति की ये ६२ प्रकृतियाँ हैं। १६ + २५ + १० + ४ + ६ + १ = ६२

प्रश्न - पूर्व में कौन-सी प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है?

उत्तर - स्त्यानगृद्धित्रिक ३, दर्शनमोह ३, कषाय १२, नरक-तिर्यंच-देवायु ३, नरक-तिर्यंच-देवगति और उनकी आनुपूर्वी ६, एकेन्द्रियादि जाति ४, वैक्रियिक-आहारक शरीर और अंगोपांग ४, अंतिम संहनन ५, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, तीर्थंकर और नीचगोत्र इन ५२ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति क्षपक श्रेणी के पूर्व में होती है।

पहले से सातवें गुणस्थानतक की उदयव्युच्छित्तिरूप ५१ प्रकृतियाँ और अनुदयरूप तीर्थंकर प्रकृति इस प्रकार ५२ प्रकृतियाँ होती हैं। ५ + ९ + १ + १७ + ८ + ५ + ४ = ४९ क्षपक श्रेणी होने से वज्रनाराच और नाराच संहनन का उदय नहीं देखा जाता है और तीर्थंकर प्रकृति का तेरहवें गुणस्थानसें उदय का नियम होने से उसका भी यहाँपर अनुदय होता है। इस प्रकार कुल ५२ प्रकृतियाँ होती हैं।

प्रश्न - कहाँ अन्तरकरण करके कौन-कौन से कर्मों का कहाँ संक्रमण करता है ?

उत्तर - अनिवृत्तिकरण का संख्यात बहुभाग व्यतीत कर संख्यातवां भाग शेष रहने पर अन्तरकरण करता है और उसके पश्चात् क्रम से चारित्रमोह की प्रकृतियों का संक्रमण करता है। अध:प्रवृत्तकरण में अन्तर और संक्रमण नहीं करता है।

---

१) ज. ध. पु. १४ पृ. १६३ - १६५

चतुर्थ गाथा -

किंट्ठिदियाणि कम्माणि अणुभागेसु केसु वा।
ओवट्टियूण सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि[1] ।।४।।

गाथार्थ - कौनसी स्थिति में और कौनसे अनुभाग में स्थित कर्मों की अपवर्तना करके शेष रही स्थिति और अनुभाग कौनसे स्थान को प्राप्त होते हैं?

प्रश्न - कौनसी स्थिति में रहनेवाले कर्म कांडकघात करके कौनसी स्थिति को प्राप्त होते हैं? कौन-से अनुभाग में रहने वाले कर्म कांडकघात करके कौनसे अनुभाग को प्राप्त होते हैं? अर्थात् स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात संबंधी प्रश्न किया है।

उत्तर - अध:प्रवृत्तकरण में स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात नहीं होता है। अपूर्वकरण में प्रवेश होने पर दोनों काण्डकघात की प्रवृत्ति होती है।

शंका - जब ऐसा है तो अध:प्रवृत्तकरणरूप विशुद्धि की प्राप्ति निरर्थक है क्योंकि उस विशुद्धि से स्थितिघात और अनुभागघातादि कार्यों की उपलब्धि नहीं होती है।

समाधान - ऐसी शंका नहीं करना चाहिए क्योंकि स्थितिघात और अनुभागघात को कारणभूत अपूर्वकरण परिणामों की उत्पत्ति में निमित्तरूप से इस करण की सफलता दिखती है। इस प्रकार अध:प्रवृत्तकरण काल समाप्त होता है।[2]

इति अध:प्रवृत्तकरणाधिकार: ।।१।।

अब अपूर्वकरण का वर्णन करते हैं -

गुणसेढी गुणसंकम ठिदिखंडमसत्थगाण रसखंडं।
विदियकरणादिसमए अण्णं ठिदिबंधमारभई[3] ।।३९८।।

गुणश्रेणी गुणसङ्क्रम: स्थितिखण्डमशस्तकानां रसखण्डम्।
द्वितीयकरणादिसमये अन्यं स्थितिबन्धमारभते ।।३९८।।

अन्वयार्थ - (विदियकरणादिसमए) द्वितीयकरण अर्थात् अपूर्वकरण के प्रथम समय में **(गुणसेढी)** गुणश्रेणी **(गुणसंकम)** गुणसंक्रमण **(ठिदिखंडं)** स्थितिखण्डन और **(असत्थगाण रसखंडं)** अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभागखंडन होता है। वैसे ही **(अण्णं ठिदिबंधमारभई)** अन्य स्थितिबंध को

१) ज. ध. पु. १४ पृ. १६६ २) ज. ध. पु. १४ पृ. १६७ ३) ल. सा. गाथा ५३ के समान

प्रारम्भ करता है अर्थात् अध:प्रवृत्तकरण के अंतिमसमय में जो स्थितिबंध होता था उससे पल्य का संख्यातवां भाग कम अन्य स्थितिबंध करता है।

विशेषार्थ - अध:प्रवृत्तकरण समाप्त होने पर अनन्तर समय में अपूर्वकरण गुणस्थान में प्रवेश करता है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है। अपूर्वकरण के प्रथम समय में गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडक घात प्रारंभ होता है, क्योंकि अपूर्वकरण की विशुद्धि का पूर्वोक्त कार्यों के साथ अविनाभावी संबंध है। अध:प्रवृत्तकरण के अंत समय में एक स्थितिबंधापसरण पूर्ण होने से अध:प्रवृत्तकरण के अंतिम समय में जो स्थितिबंध होता था उससे पल्योपम के संख्यातवें भाग कम अन्य नवीन स्थितिबंध प्रारम्भ करता है।

अपूर्वकरण में होनेवाली गुणश्रेणी का कथन -

गुणसेढीदीहत्तं अपुव्वचउक्कादु साहियं होदि।
गलिदवसेसे उदयावलिबाहिरदो दु णिक्खेओ [१]।।३९९।।

गुणश्रेणीदीर्घत्वं अपूर्वचतुष्कात् साधिकं भवति।
गलितावशेष उदयावलिबाह्यतस्तु निक्षेप: ।।३९९।।

अन्वयार्थ - (गुणसेढीदीहत्तं) यहाँ गुणश्रेणी आयाम का प्रमाण **(अपुव्वचउक्कादु साहियं)** अपूर्वचतुष्क से अर्थात् अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय और क्षीणकषाय इन चार गुणस्थानों के काल से अधिक **(होदि)** है। **(उदयावलिबाहिरदो दु)** उदयावली के बाहर **(गलिदवसेसे)** गलितावशेषरूप गुणश्रेणी आयाम में (अपकर्षित द्रव्य का) **(णिक्खेओ)** निक्षेपण होता है।

विशेषार्थ - अपूर्वकरण के प्रथम समय में परिणाम विशेष से असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण द्रव्य का अपकर्षण करके उदयावली के बाहर गुणश्रेणी आयाम में निक्षिप्त करता है। गुणश्रेणी दो प्रकार की है - गलितावशेष और अवस्थित। पुन: प्रत्येक गुणश्रेणी दो प्रकार की है - १) उदयादि गुणश्रेणी और २) उदयावली बाह्य गुणश्रेणी। यहाँ उदयावली बाह्य गलितावशेष गुणश्रेणी विवक्षित है।

---

१) ल. सा. गाथा ५५ के समान

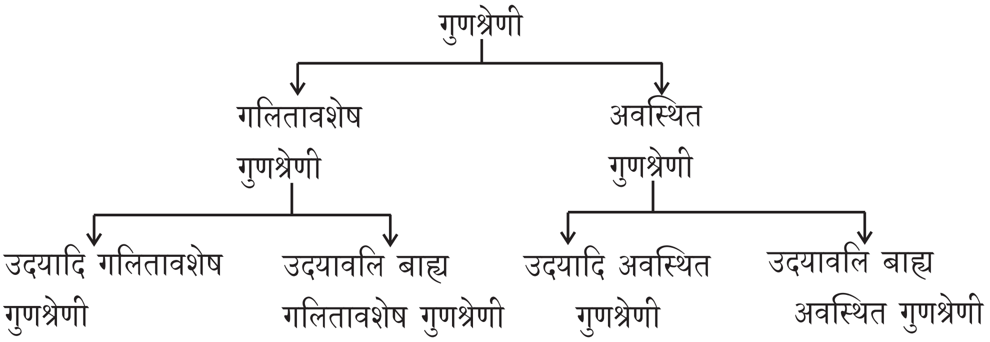

गुणश्रेणी आयाम - जितने निषेकों में असंख्यातगुणित श्रेणीरूप से प्रदेशों का निक्षेपण होता है उतने निषेकों को गुणश्रेणी आयाम कहते हैं।

गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम - गुणश्रेणी प्रारंभ करने पर प्रथम समय में जितना गुणश्रेणी आयाम का प्रमाण होता है उसमें से एक-एक समय व्यतीत होने पर द्वितीयादि समयों में गुणश्रेणी-आयाम क्रमश: एक-एक निषेक कम होकर शेष रहता है उसे गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम कहते हैं।

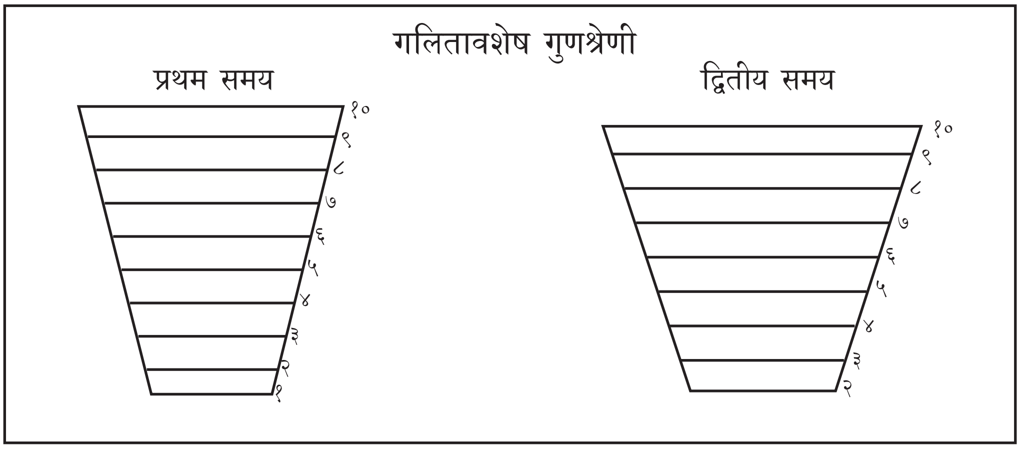

यदि उदय समय से गुणश्रेणी के अंतिम निषेक तक गुणितक्रम से द्रव्य दिया जाता है तो उसे उदयादि गुणश्रेणी कहते हैं और जब उदयावली के बाहर गुणितक्रम से द्रव्य दिया जाता है तो उसे उदयावली बाह्य गुणश्रेणी कहते हैं।

अवस्थित गुणश्रेणी आयाम - प्रथम समय में जितना आयाम लेकर गुणश्रेणी प्रारंभ किया द्वितीयादि समयों में भी उतना ही आयाम रहता है क्योंकि उदयावली का एक समय व्यतीत होने पर उपरितन स्थिति का एक निषेक गुणश्रेणी में आकर मिलने से गुणश्रेणी आयाम उतना ही रहता है इसलिए इसे अवस्थित गुणश्रेणी आयाम कहते हैं।

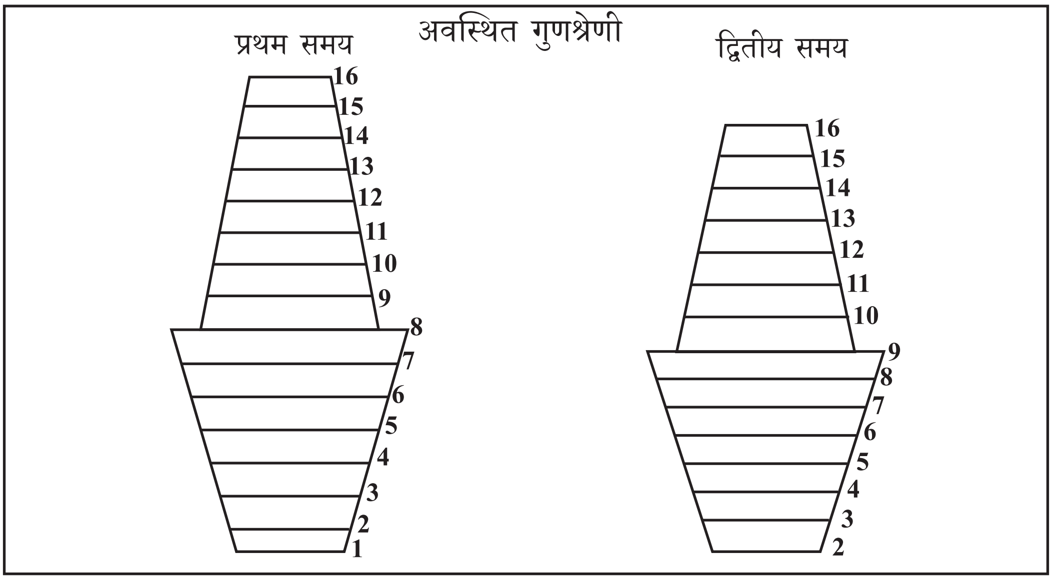

प्रथमनिषेक गल जाने से उपरितन स्थिति का नौवां निषेक गुणश्रेणी आयाम में मिल गया।

पडिसमयं ओकड्डुदि असंखगुणिदक्कमेण सिंचदि य।
इदि गुणसेढिकरणं पडिसमयमपुव्वपढमादो[1] ।। ४०० ।।

प्रतिसमयमपकर्षत्यसंख्यगुणितक्रमेण सिञ्चति च।
इति गुणश्रेणीकरणं प्रतिसमयमपूर्वप्रथमात् ।।४००।।

अन्वयार्थ - (पडिसमयं) प्रत्येक समय में **(असंखगुणिदक्कमेण)** असंख्यात गुणितक्रम से **(ओकड्डुदि)** द्रव्य का अपकर्षण करता है **(य)** और **(सिंचदि)** गुणश्रेणी आयाम में निक्षेपण करता है। **(इदि)** इस प्रकार **(अपुव्वपढमादो)** अपूर्वकरण के प्रथम समय से **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(गुणसेढीकरणं)** गुणश्रेणीकरण है।

गुणसंक्रमण का निर्देश -

पडिसमयमसंखगुणं दव्वं संकमदि अप्पसत्थाणं।
बंधुज्झियपयडीणं बंधंतसजादिपयडीसु[2] ।। ४०१ ।।

१. ल. सा. गाथा ७४ के समान २) ल. सा. गाथा ७५ के समान

प्रतिसमयसङ्ख्यगुणं द्रव्यं सङ्क्रामत्यप्रशस्तानाम्।
बन्धोज्झितप्रकृतीनां बध्यमानस्वजातिप्रकृतिषु।। ४०१।।

अन्वयार्थ - अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम समय से **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(अप्पसत्थाणं बंधुज्झियपयडीणं)** बन्धरहित अप्रशस्त प्रकृतियों का **(दव्वं)** द्रव्य **(बंधंतसजादिपयडीसु)** बध्यमान सजातीय प्रकृतियों में **(असंखगुणं)** असंख्यातगुणित क्रम से **(संकमदि)** संक्रमित होता है अर्थात् तद्रूप परिणमित होता है।

विशेषार्थ- प्रत्येक समय में असंख्यात गुणितक्रम से संक्रमण होने को गुणसंक्रमण कहते हैं। गुणसंक्रमण में जानने योग्य बातें - १) जिन प्रकृतियों का बन्ध चल रहा है उनका गुणसंक्रमण नहीं होता है। अबन्धरूप प्रकृतियों का ही गुणसंक्रमण होता है।

२) अबन्धरूप प्रशस्त प्रकृतियों का गुणसंक्रमण नहीं होता है, अबन्धरूप अप्रशस्त प्रकृतियों का ही गुणसंक्रमण होता है।[१]

३) स्वजातीय बन्धरूप प्रकृतियों में ही संक्रमण होता है, अबन्ध प्रकृतियों में संक्रमण नहीं होता है। जैसे - क्षपकश्रेणी में अबन्धरूप असातावेदनीय का द्रव्य साता वेदनीय रूप से परिणमता है, अबन्धरूप नपुंसक और स्त्रीवेद का द्रव्य बन्धरूप पुरुषवेद में संक्रमण होता है।

अपकर्षणसंबंधी जघन्य अतिस्थापना का प्रमाण -

ओव्वट्टणा जहण्णा, आवलिया[२] ऊणिया तिभागेण।
एसा ठिदिसु जहण्णा, तहाणुभागेसणंतेसु[३]।। ४०२।।

अतिस्थापना जघन्या आवलिकोनिका त्रिभागेन।
एषा स्थितिषु जघन्या तथानुभागेष्वनन्तेषु ।। ४०२।।

अन्वयार्थ - (जहण्णा ओव्वट्टणा) जघन्य अतिस्थापना **(तिभागेण ऊणिया आवलिया)** त्रिभाग से कम आवली मात्र है। **(एसा)** यह **(ठिदिसु जहण्णा)** स्थितिसंबंधी जघन्य अतिस्थापना है। **(तहा)** उसी प्रकार **(अणुभागेसु)** अनुभागसंबंधी जघन्य अतिस्थापना **(अणंतेसु)** अनन्त स्पर्धकरूप है।

---

१) ज.ध.पु. १४ पृ. १७५ २) पाठभेद आउलिया आगास प्रति
३) ज. ध. पु. १४ पृ. २७७

विशेषार्थ - इस गाथा में स्थिति के अपकर्षण के विषय में जघन्य अतिस्थापना का प्रमाण कहा गया है। उदयसमय से लेकर एक समय अधिक आवलिप्रमाण स्थिति के निषेक का अर्थात् द्वितीयावली के प्रथम निषेक का अपकर्षण होने पर एक समय कम आवलि का दो त्रिभागप्रमाण अतिस्थापना है और एक समय अधिक आवली का त्रिभागप्रमाण निक्षेप है। स्थिति के अपकर्षण और उत्कर्षण संबंधी जघन्य और उत्कृष्ट, अतिस्थापना और निक्षेप का प्रमाण लब्धिसार भाग १ गाथा ५६ से ६७ तक में स्पष्ट किया है वहाँ जान लेना।

अनुभाग की जघन्य अतिस्थापना का प्रमाण अनन्त स्पर्धक है अर्थात् जब तक अनन्त स्पर्धक अतिस्थापना रूप से स्थापित नही होते हैं तब तक अनुभाग का अपकर्षण नहीं होता है। जिन स्पर्धकों का अपकर्षण होता है उसके नीचे अनन्त स्पर्धक अतिस्थापनारूप और उसके नीचे अनन्तस्पर्धक निक्षेपरूप होंगे तो ही उन स्पर्धकों का अपकर्षण होता है, अन्यथा नहीं।

संक्रमित और उत्कर्षित द्रव्यसंबंधी विशेष कहते हैं -

संकामेदुक्कड्डुदि जे अंसे ते अवट्ठिदा होंति।
आवलियं से काले तेण परं होंति भजियव्वा[1] ।। ४०३ ।।

सङ्क्रम्यन्ते उत्कृष्यन्ते येंऽशास्तेऽवस्थिता भवन्ति।
आवलिकां स्वे काले तेन परं भवन्ति भजितव्याः।।४०३।।

अन्वयार्थ - (जे अंसे) जो परमाणु **(संकामेदुक्कड्डुदि)** संक्रमित और उत्कर्षित किए जाते हैं **(ते)** वे **(से काले)** उसके अनन्तर काल में **(आवलियं)** एक आवली पर्यन्त **(अवट्ठिदा)** अवस्थित **(होंति)** रहते हैं। **(तेण परं)** उसके पश्चात् **(भजियव्वा होंति)** भजनीय हैं अर्थात् अवस्थित रहते हैं अथवा उनकी स्थिति आदि में हानि वृद्धि भी हो सकती है।

विशेषार्थ - जो परमाणु परप्रकृतिरूप से संक्रमण करते हैं वे एक आवली काल तक तदवस्थ रहते हैं अर्थात् उनमें अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमण नहीं हो सकता है। जो परमाणु स्थिति अथवा अनुभाग में उत्कर्षण को प्राप्त होते हैं वे भी एक आवली काल तक अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमण के योग्य नहीं है। एक आवली काल व्यतीत होने पर अपकर्षणादि के लिए वे परमाणु भजनीय हैं अर्थात् उनमें हानि - वृद्धि और संक्रमण हो सकता है अथवा वे अवस्थित भी रह सकते हैं।

---

१) ज.ध.पु. १४ पृ. १८३

अपकर्षित कर्मपुंज की विशेष अवस्था कहते हैं -

ओक्कड्डुदि जे अंसे से काले ते च होंति भजिदव्वा।
वड्ढीए अवट्ठाणे, हाणीए संकमे उदए[1] ।। ४०४ ।।

अपकृष्यन्ते ये अंशाः स्वे काले ते च भवन्ति भजितव्याः।
वृद्धाववस्थाने हानौ संक्रम उदये ।। ४०४ ।।

अन्वयार्थ - (जे अंसे) जो कर्म परमाणु **(ओक्कड्डुदि)** स्थिति और अनुभाग द्वारा अपकर्षित किए जाते है । **(ते)** वे **(से काले)** उसके अनंतर समय में **(वड्ढीए अवट्ठाणे हाणीए संकमे उदए)** वृद्धि, अवस्थान, हानि, संक्रमण और उदय के लिए **(भजिदव्वा होंति)** भजनीय हैं।

विशेषार्थ - जिन कर्मपरमाणुओं की स्थिति अथवा अनुभाग का अपकर्षण होता है उन कर्मपरमाणुओं के अनंतर द्वितीय समय में ही पुनः अपकर्षण होना, परप्रकृति में संक्रमण होना, उत्कर्षण होना और उदीरणा होना संभव है अथवा वे परमाणु अवस्थित भी रह सकते हैं। कर्मप्रदेशों का अपकर्षण स्थिति और अनुभागरूप से ही होता है, अन्य प्रकार से नहीं।[2]

जो प्रदेशपुंज उत्कर्षित किया जाता है उसकी 'वृद्धि' ऐसी संज्ञा है। जो प्रदेशपुंज अपकर्षित किया जाता है उसकी 'हानि' ऐसी संज्ञा है। वैसे ही जो प्रदेशपुंज अपकर्षित या उत्कर्षित नहीं किए जाते हैं उनकी 'अवस्थान' ऐसी संज्ञा है।

उत्कर्षण और अपकर्षण का विशेष वर्णन -

एक्कं च ठिदिविसेसं, तु असंखेज्जेसु ठिदिविसेसेसु।
वड्ढेदि हरस्सेदि च, तहाणुभागेसणंतेसु[3] ।। ४०५ ।।

एकं च स्थितिविशेषं त्वसङ्ख्येयेषु स्थितिविशेषु।
वर्ध्यते ह्रस्यते च तथानुभागेष्वनन्तेषु ।। ४०५ ।।

अन्वयार्थ - (एक्कं च ठिदिविसेसं) एक स्थितिविशेष को **(असंखेज्जेसु ठिदिविसेसेसु)** असंख्यात स्थितिविशेषों में **(वड्ढेदि हरस्सेदि च)** बढ़ाता अथवा घटाता है। **(तहा)** उसी प्रकार एक स्पर्धक की वर्गणा को **(अनुभागेसणंतेसु)** अनुभाग विषयक अनन्त स्पर्धकों में बढ़ाता और घटाता है।

---

१) क. पा. गा. १५४ के समान २) ज. ध. पु. १४ पृ. २८५-२८६ ३) ज. ध. पु. १४ पृ.२८९

विशेषार्थ - एक स्थितिविशेष का अर्थात् निषेक का उत्कर्षण होने पर असंख्यात स्थितिविशेषों में उसकी वृद्धि होती है क्योंकि उत्कर्षण संबंधी जघन्य निक्षेप भी आवली का असंख्यातवां भाग है उससे कम नहीं। एक आवली में जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण समय होते हैं। आवली का असंख्यातवां भाग भी असंख्यात समय प्रमाण है। एक स्थितिविशेष का अपकर्षण हुआ तो असंख्यात स्थिति विशेषों में उसका ह्रास हो सकता है क्योंकि अपकर्षण संबंधी जघन्य निक्षेप भी आवली का तृतीय भाग है।

अनुभाग के अपकर्षण और उत्कर्षण की दृष्टि से चूर्णिसूत्रकार ने दो प्रकार की प्ररूपणा का निर्देश किया है - १) बन्धानुलोम २) सद्‌भाव।

१) बन्धानुलोम प्ररूपणा - श्रुत के अनुसार प्ररूपणा का नाम बन्धानुलोम प्ररूपणा है। यह प्ररूपणा स्थूल है क्योंकि यह प्ररूपणा स्थिति को माध्यम बनाकर अनुभाग का अपकर्षण और उत्कर्षण का कथन करती है।[१] जैसे उदयावली से लेकर सर्व स्थितिविशेषों में सर्व अनुभाग सम्बन्धी स्पर्धक हैं इसलिए उन स्थितियों का अपकर्षण-उत्कर्षण होने पर उनमें स्थित सर्व अनुभाग स्पर्धक अपकर्षित और उत्कर्षित होते हैं। क्योंकि उन स्थितियोंमें स्थित परमाणुओं को छोड़कर अनुभागस्पर्धक भिन्न नहीं है। उदयावली में प्रविष्ट हुए अनुभाग को छोड़कर सर्व अनुभाग स्थिति के माध्यम से अपकर्षित और उत्कर्षित होता है।

२) सद्‌भाव प्ररूपणा - यह प्ररूपणा सूक्ष्म है क्योंकि यह प्ररुपणा स्थिति की विवक्षा न करके अनुभाग को ही प्रधानरूप से ग्रहण करके तद्‌विषयक अपकर्षण-उत्कर्षण की प्रवृत्तिक्रम का निरूपण करती है।[२]

जिन स्पर्धकों में अपकर्षित द्रव्य का पतन होता है उसे निक्षेप कहते हैं। निक्षेप के ऊपर जिन स्पर्धकों में अपकर्षित द्रव्य का पतन नहीं होता है उसे अतिस्थापना कहते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि उसी स्पर्धक का अपकर्षण होता है जिसके नीचे कम से कम जघन्य अतिस्थापनारूप स्पर्धक हो और उसके नीचे जघन्य निक्षेपरूप स्पर्धक हो इसलिए प्रथम स्पर्धक से जघन्य निक्षेप और जघन्य अतिस्थापनारूप स्पर्धकों का उल्लंघन करके उसके ऊपर के स्पर्धक से उत्कृष्ट स्पर्धक तक के अनन्तस्पर्धकों का अपकर्षण होता है। यह अपकर्षण की सद्‌भावरूप प्ररूपणा है।

अंकसंदृष्टि - माना कि एक गुणहानि में २ स्पर्धक, जघन्य निक्षेप ४ स्पर्धक (दो गुणहानि) और जघन्य अतिस्थापना ८ स्पर्धक (चार गुणहानि) हैं।

---

१) ज.ध.पु. १४ पृ. ३१०   २) ज.ध.पु. १४ पृ.३१३ विशेषार्थ

अनुभाग अपकर्षण

	←प्रथम गुणहानि→				←दुसरी गुणहानि→			
शक्त्यंश वर्गणा	८ ९ १० ११ १०२४, ९६०. ८९६, ८३२ पहला स्पर्धक	00000	१६ १७ १८ १९ ७६८, ७०४, ६४०, ५७६ दूसरा स्पर्धक	0000	२४ २५ २६ २७ ५१२, ४८०, ४४८, ४१६ तीसरा स्पर्धक	0000	३२ ३३ ३४ ३५ ३८४, ३५२, ३२०, २८८ चौथा स्पर्धक	0000
	←जघन्य निक्षेप→ ←तीसरी गुणहानि→				←चौथी गुणहानि→			
शक्त्यंश वर्गणा	४० ४१ ४२ ४३ २५६, २४०, २२४, २०८ पाँचवाँ स्पर्धक	0000	४८ ४९ ५० ५१ १९२, १७६, १६०, १४४ छठा स्पर्धक	0000	५६ ५७ ५८ ५९ १२८, १२०, ११२, १०४ सातवाँ स्पर्धक	0000	६४ ६५ ६६ ६७ ९६, ८८, ८०,७२ आठवाँ स्पर्धक	0000
	←जघन्य अतिस्थापना→ ←पाँचवी गुणहानि→				←छठी गुणहानि→			
शक्त्यंश वर्गणा	७२ ७३ ७४ ७५ ६४, ६०. ५६, ५२ नवमा स्पर्धक	0000	८० ८१ ८२ ८३ ४८, ४४ ४०, ३६ दसवाँ स्पर्धक	000	८८ ८९ ९० ९१ ३२, ३०, २८, २६ ग्यारहवाँ स्पर्धक	0000	९६ ९७ ९८ ९९ २४, २२, २०, १८ बारहवाँ स्पर्धक	0000
	←जघन्य अतिस्थापना→ ←सातवी गुणहानि→							
शक्त्यंश वर्गणा	१०४ १०५ १०६ १०७ १६, १५, १४, १३ तेरहवाँ स्पर्धक	0000	११२ ११३ ११४ ११५ १२, ११, १०, ९ चौदहवाँ स्पर्धक	000				

अनुभाग अपकर्षण का विधान - १०४-१०४ अविभागप्रतिच्छेदयुक्त १६ परमाणुओं के पुंजरूप वर्गणा के अनुभाग का अपकर्षण करना हो तो उस अपकर्षित द्रव्य का अनुभाग अतिस्थापना रूप स्पर्धकों को छोड़कर निक्षेपरूप स्पर्धकों की शक्ति समान परिणमित होता है अर्थात् १०४ अविभागप्रतिच्छेद वाले १६ परमाणुओं में से कुछ परमाणु अपने १०४ शक्त्यंश को छोड़कर यथायोग्य ८

से ३५ शक्त्यंश रूप से परिणमन करते हैं, ४० से ९९ शक्त्यंश रूप से परिणमत नहीं करते हैं। इसे ही अनुभाग का अपकर्षण कहते है।

अनुभाग का उत्कर्षण - अन्तिम स्पर्धक से जघन्यअतिस्थापना और जघन्य निक्षेपप्रमाण स्पर्धक के नीचे उतरकर उसके पश्चात् स्थित स्पर्धक से नीचे के स्पर्धक उत्कर्षित किए जाते हैं। जैसे - अंतिम स्पर्धक सहित उसके नीचे के अनन्त स्पर्धक निक्षेपरूप होते हैं। उसके नीचे अनन्त स्पर्धक अतिस्थापनारूप होते हैं। उसके पश्चात् उसके नीचे जिसका उत्कर्षण किया जाता है वह स्पर्धक होता है। इस प्रकार उस स्पर्धक के नीचे अनन्तस्पर्धक हैं। उनकी भी यही अवस्था है।[1]

विशेष ज्ञातव्य - १) उदयावली में प्रवेश किए गए स्पर्धकों का उत्कर्षण नहीं होता है।

२) जिस नवीन बन्ध में उत्कर्षण होता है उसकी आबाधा प्रमाण स्थिति में उन उत्कर्षित स्पर्धकों का निक्षेप नहीं होता है।

३) बन्ध को प्राप्त हुए कर्मस्पर्धक बन्धावलीकाल तक उत्कर्षण और अपकर्षण के अयोग्य हैं।

४) बन्धावली के पश्चात् आबाधा के भीतर अपकर्षण होकर वहाँ से उन अपकर्षित स्पर्धकों का भी यथानियम उत्कर्षण हो सकता है।

अनुभाग संबंधी अपकर्षण - उत्कर्षण विषयक अल्पबहुत्व -

१) अपकर्षण - उत्कर्षण संबंधी जघन्य निक्षेप सबसे कम है।

२) इससे अपकर्षण - उत्कर्षण संबंधी जघन्य अतिस्थापना अनन्तगुणी है।

३) इससे व्याघात की अपेक्षा से अपकर्षण संबंधी उत्कृष्ट अतिस्थापना अनन्तगुणी है। क्योकि यह अन्तिम एक वर्गणा से कम उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकप्रमाण है।

४) इससे अनुभागकाण्डक एक वर्गणा से अधिक है।

५) इससे उत्कृष्ट अनुभाग सत्कर्म और बन्ध विशेष अधिक है।[2]

शंका - व्याघातसंबंधी उत्कृष्ट अतिस्थापना कहाँ प्राप्त होती है ?

समाधान - संसार अवस्था में उत्कृष्ट अनुभाग का बन्ध करके उसके पश्चात् प्रतिभग्न होकर विशुद्धि बढ़ाकर उत्कृष्ट अनुभाग कांडक का घात करनेवाले जीव को इसकी प्राप्ति होती है।

शंका - अनुभाग काण्डकघात और अनुभाग अपकर्षण - उत्कर्षण में क्या अंतर है ?

समाधान - अनुभागकाण्डक घात की विशेषता - १) अनुभागकाण्डक घात में जीव के सत्त्व में उत्कृष्ट अनुभाग वाले सभी स्पर्धकों के सभी कर्मपरमाणुओं का एक ही समय में अनुभागहीन होता है।

---

१) ज.ध.पु. १४ पृ. ३१३ २) ज.ध.पु. १४ पृ. ३१४

२) अनुभागकाण्डकघात में अनन्त बहुभाग प्रमाण स्पर्धकों का एक अन्तमुहूर्त में पूर्ण अभाव होता है। उस शक्तिरूप एक भी परमाणु शेष नहीं रहता है।

३) अनुभागकाण्डकघात केवल अप्रशस्त प्रकृतियों का ही होता है।

उदाहरण - माना कि असातावेदनीय के कुल १०० स्पर्धक हैं । उसमें से ७५ स्पर्धक कांडकघात के लिए ग्रहण करता है। ७५०० परमाणु और अनुभागकांडक घात का उत्कीरण काल ४ समय हैं। एक-एक समय में एक-एक फालि का पतन होता है। एक-एक फालि में थोड़े-थोड़े परमाणु कम अनुभागवाले स्पर्धको में निक्षिप्त होते हैं। कांडकोत्कीरण के अंतिम समय में शेष रहे सभी परमाणु निक्षिप्त होते हैं। द्विचरम फालि तक अतिस्थापना जघन्य अतिस्थापना स्पर्धकों के समान होती है; परन्तु चरमफालि पतन के समय अतिस्थापना एक वर्गणा से कम पूर्ण कांडकप्रमाण होती है। अंतिम समय में पूर्ण कांडकप्रमाण स्पर्धकों का घात होकर वे कम अनुभागरूप से परिणमते हैं।

४) अनुभागकांडकघात अपूर्वकरणादि विशुद्ध परिणामों से ही होता है।

अनुभाग अपकर्षण की विशेषता -

१) अनुभाग अपकर्षण में सर्वप्रथम सर्व स्पर्धक द्रव्य में अपकर्षण - उत्कर्षण भागहार से भाग दकर एक भाग प्राप्त होता है, उतने परमाणुओं का अपकर्षण-उत्कर्षण होता है।

उदाहरण - सर्व स्पर्धक संबंधी परमाणु १०,००० है। अपकर्षण-उत्कर्षण भागहार ५ है। अत: १०,००० ÷ ५ = २००० । सर्व स्पर्धकों में से मात्र इतने परमाणुओं का उत्कर्षण अथवा अपकर्षण होता है। शेष परमाणु तदवस्थ रहते हैं।

२) अपकर्षण - उत्कर्षण प्रशस्त और अप्रशस्त सभी कर्मप्रकृतियों का होता है।

३) संसार अवस्था में यथायोग्य परिणामों से कभी भी अपकर्षण - उत्कर्षण होता है।

आगे की सारणी का स्पष्टीकरण -

माना कि प्रत्येक निषेक में कुल २८ स्पर्धक हैं। उसमें से सभी निषेकों के १३ से २८ स्पर्धक कांडकरूप से ग्रहण किए। कांडकरूप स्पर्धकों के नीचे ९ से १२ स्पर्धक अतिस्थापनारूप और उसके नीचे १ से ८ स्पर्धक निक्षेपरूप हैं। १३ से २८ स्पर्धकों की शक्ति अन्तर्मुहूर्त में, १ से ८ स्पर्धक समान परिणमित होकर उस काण्डकरूप पूर्ण स्पर्धकों का अभाव होता है इसलिए उसे कांडकघात कहते हैं।

अनुभाग कांडकघाताचा नकाशा

निषेक	निक्षेपरूप स्पर्धक संख्या	अतिस्थापनारूप स्पर्धक संख्या	कांडकरूप स्पर्धक संख्या
अंतिम स्थिति का निषेक	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
द्विचरम स्थिति का निषेक	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
त्रिचरम स्थिति का निषेक	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
०	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
०	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
०	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
०	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
छठी स्थिति का निषेक	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
पंचम स्थिति का निषेक	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
चतुर्थ स्थिति का निषेक	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
तृतीय स्थिति का निषेक	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
द्वितीय स्थिति का निषेक	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
प्रथम स्थिति का निषेक	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८

अपूर्वकरण में जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिकांडक का प्रमाण -

पल्लस्स संखभागं वरं पि अवरादु संखगुणिदं तु ।
पढमे अपुव्वखवगे ठिदिखंडपमाणयं होदि[1] ।। ४०६ ।।

पल्यस्य सङ्ख्यभागं वरमप्यवरात् सङ्ख्यगुणितं तु।
प्रथमेऽपूर्वक्षपके स्थितिखण्डप्रमाणकं भवति।।४०६।।

अन्वयार्थ - (अपुव्वखवगे) क्षपक अपूर्वकरण में **(पढमे ठिदिखंडपमाणयं)** प्रथम (जघन्य और उत्कृष्ट) स्थितिकांडक का प्रमाण **(पल्लस्स संखभागं)** पल्य का संख्यातवां भाग है, **(तु)** परन्तु **(अवरादु)**जघन्य से **(वरं पि)** उत्कृष्ट का प्रमाण **(संखगुणिदं)** संख्यातगुणित है।

विशेषार्थ - जिसकी सत्त्वस्थिति संख्यातगुणित कम है उसका जघन्य स्थितिकांडक होता है और जिसकी सत्त्वस्थिति संख्यातगुणा अधिक है उसका उत्कृष्ट स्थितिकांडक होता है। यद्यपि जघन्य कांडक से उत्कृष्ट कांडक संख्यातगुणा है। तथापि दोनों का प्रमाण पल्य का संख्यातवां भाग है।

१. ज. ध. पु. १४ पृ. १६९/ध.पु.६ पृ.३४४

ऐसा नियम है कि जब-जब अपूर्वकरण परिणाम होते हैं तब-तब स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात अवश्य होते हैं। ऐसे ७ स्थान हैं।[१] १) दर्शनमोहनीय की उपशामना २) दर्शनमोहनीय की क्षपणा ३) संयमासंयम की प्राप्ति ४) सकलसंयम की प्राप्ति ५) अनन्तानुबंधी की विसंयोजना ६) चारित्रमोहनीय की उपशामना ७) चारित्रमोहनीय की क्षपणा। इनमें से प्रथम ६ स्थानों में अपूर्वकरण का प्रथम स्थितिकांडक जघन्य से पल्योपम का संख्यातवां भाग और उत्कृष्टरूप से सागरोपमपृथक्त्व है, परन्तु चारित्रमोह की क्षपणा का अपूर्वकरण संबंधी प्रथम स्थितिकांडक जघन्य और उत्कृष्ट दोनों पल्योपम का संख्यातवाँ भाग प्रमाण होने पर भी जघन्य से उत्कृष्ट संख्यातगुणित है।

जो जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर उपशम श्रेणी चढ़कर नीचे उतरकर पश्चात् क्षपक श्रेणी पर चढ़ता है उसके उपशमश्रेणी पर बहुत स्थितिकांडकघात होने से स्थितिसत्त्व कम रहता है इसलिए उसका स्थितिकांडकायाम जघन्य होता है।

जो जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर उपशमश्रेणी न चढ़कर क्षपक श्रेणी चढ़ता है उसका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित होता है क्योंकि स्थिति के अनुसार कांडकघात होता है। इस प्रकार दुसरे तिसरे आदि स्थितिकांडक से लेकर अपूर्वकरण के अंतिम स्थितिकांडक तक दोनों जीवों के स्थितिकांडक की प्रवृत्ति इसी क्रम से जानना चाहिए। इसी प्रकार अपूर्वकरण के चरम स्थितिकांडक तक जघन्य और उत्कृष्ट दोनों स्थितिकांडक पल्योपम के संख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं, परन्तु जघन्य से उत्कृष्ट संख्यातगुणा है।

अपूर्वकरण के प्रथम और चरम समय के स्थितिसत्त्वादिकों का प्रमाण दो गाथाओं द्वारा कहते हैं -

आउगवज्जाणं ठिदिघादो पढमादु चरिमठिदिसंतो।
ठिदिबंधो य अपुव्वे होदि हु संखेज्जगुणहीणो[२] ।। ४०७।।

आयुष्कवर्ज्यानां स्थितिघातः प्रथमाच्चरमस्थितिसत्त्वम्।
स्थितिबन्धश्चापूर्वे भवति हि सङ्ख्येयगुणहीनः।। ४०७।।

अन्वयार्थ - (आउगवज्जाणं) आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मोंका **(ठिदिघादो)** स्थितिघात होता है। **(अपुव्वे)** अपूर्वकरण में **(पढमादु चरिमठिदिसंतो)** प्रथम समय के स्थितिसत्त्व और स्थितिबंध की अपेक्षा चरम समय का स्थितिसत्त्व और **(ठिदिबंधो)** स्थितिबंध **(संखेज्जगुणहीणो)** संख्यातगुणित कम **(होदि हु)** होता है।

१) ज.ध.पु. १४ पृ. १७१ विशेषार्थ २) ल. सा. गाथा ७८ के समान

(संखेज्जगुणहीणो) संख्यातगुणित कम **(होदि हु)** होता है।

विशेषार्थ - अपूर्वकरण काल में संख्यात हजार स्थितिकांडकघात होते हैं। प्रत्येक स्थितिकांडकघात में पल्य का संख्यातवां भाग प्रमाण स्थिति का घात होने पर उतना स्थितिसत्त्व कम होता है। उससे प्रथम समय की अपेक्षा अंतिम समय में स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित कम होता है।

अपूर्वकरण काल में संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होते हैं। प्रत्येक स्थितिबंधापसरण द्वारा पल्य का संख्यातवां भागप्रमाण स्थितिबन्ध कम होता जाता है। इसलिए प्रथम समय की अपेक्षा अंतिम समय में स्थितिबंध संख्यातगुणा कम होता है।

अंतोकोडाकोडी अपुव्वपढमम्हि होदि ठिदिबंधो।
बंधादो पुण सत्तं संखेज्जगुणं हवे तत्थ[1] ।। ४०८ ।।

अन्तः कोटीकोटिरपूर्वप्रथमे भवति स्थितिबन्धः।
बन्धात् पुनः सत्त्वं सङ्ख्येयगुणं भवेत्तत्र ।। ४०८ ।।

अन्वयार्थ - (अपुव्वपढमम्हि) अपूर्वकरण के प्रथम समय में **(ठिदिबंधो)** स्थितिबंध **(अंतोकोडाकोडी)** अन्तः कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण **(होदि)** है अर्थात् पृथक्त्वलक्षकोटी सागरोपम प्रमाण है। **(पुण तत्थ)** पुनः वहाँ **(सत्तं)** स्थितिसत्त्व **(बंधादो)** स्थितिबंध की अपेक्षा **(संखेज्जगुणं)** संख्यातगुणा **(हवे)** है।

विशेषार्थ - अपूर्वकरण के प्रथम समय में स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व दोनों अंतःकोटाकोटी सागरप्रमाण हैं तथापि बन्ध की अपेक्षा सत्त्व संख्यातगुणा है।

अनुभागकांडक घात का निर्देश दो गाथाओं द्वारा करते हैं -

एक्केक्कट्ठिदिखंडयणिवडणठिदिओसरण काले।
संखेज्जसहस्साणि य णिवडंति रसस्स खंडाणि[2] ।। ४०९ ।।

एकैकस्थितिखण्डकनिपतनस्थित्यपसरणकाले।
सङ्ख्येयसहस्राणि च निपतन्ति रसस्य खण्डानि ।। ४०९ ।।

अन्वयार्थ - (एक्केक्कट्ठिदिखंडयणिवडणठिदिओसरण काले) एक-एक स्थितिकांडक के पतनकाल में अथवा एक-एक स्थितिबंधापसरण काल में **(संखेज्जसहस्साणि य)** संख्यातहजार

१ पु. ६ पृ. ३४५/क.पा.सुत्त पृ.७४२ सूत्र ५५ २. ल. सा. गाथा ७९ के समान

(रसस्स खंडाणि) अनुभागकांडकों का **(णिवडंति)** पतन होता है।

विशेषार्थ - एक स्थितिकांडक का काल और एक स्थितिबंधापसरण का काल समान है। अपूर्वकरण के प्रथम समय में स्थितिकांडक, स्थितिबंधापसरण और अनुभागकांडक एक ही समय में प्रारंभ होते हैं। वहाँ यथायोग्य काल जाने पर प्रथम अनुभागकांडक का पतन होता है, परन्तु स्थितिकांडक वही रहता है। उसके पश्चात् दूसरे, तीसरे आदि संख्यातहजार अनुभागकांडकों का पतन होने पर प्रथम स्थितिकांडक का घात पूर्ण होता है और उसी समय में प्रथम स्थितिबंधापसरण समाप्त होता है। अर्थात् प्रथम समय में जो स्थितिबंध प्रारंभ किया था उसके समान अंतर्मुहूर्तकाल तक स्थितिबंध होता है और उसके पश्चात् पुन: स्थिति कम करके दूसरा स्थितिबंधापसरण प्रारम्भ होता है। इसी प्रकार द्वितीयादि स्थितिकांडककालों में भी जानना चाहिए।

असुहाणं पयडीणं अणंतभागा रसस्स खंडाणि।
सुहपयडीणं णियमा णत्थि त्ति रसस्स खंडाणि[1] ।। ४१० ।।

अशुभानां प्रकृतीनामनन्तभागा रसस्य खण्डानि।
शुभप्रकृतीनां नियमान्नास्तीति रसस्य खण्डानि।।४१०।।

अन्वयार्थ - (असुहाणं पयडीणं) अशुभ प्रकृतियों का **(रसस्य खंडाणि)** अनुभागकांडक का प्रमाण **(अणंतभागा)** अनन्त बहुभाग मात्र है। **(सुहपयडीणं)** शुभ प्रकृतियों के **(रसस्स खंडाणि)** अनुभागकांडक **(णियमा)** नियम से **(णत्थीत्ति)** नहीं होते हैं।

विशेषार्थ - अपूर्वकरण में विशुद्धि के द्वारा अशुभ प्रकृतियों का अनुभागकांडक घात होता है। शुभ प्रकृतियों का अनुभागकांडकघात नहीं होता है क्योंकि विशुद्ध परिणामों से शुभ प्रकृतियों का अनुभाग कम नहीं होता है। पूर्व में अशुभ प्रकृतियों का जो अनुभाग होता था उसमें अनन्त का भाग देकर जो बहुभाग आता है उतना अनुभाग प्रथम कांडक में कम होता है। शेष रहे एक भाग में पुन: अनन्त का भाग देकर जो बहुभाग आता है वह दूसरे काण्डक में कम होता है और अवशेष एक भाग रहता है। यही क्रम अंतिम अनुभागकांडक पर्यन्त जानना चाहिए।

अनुभागसंबंधी अल्पबहुत्व -

एक प्रदेशगुणहानि स्थानान्तर स्पर्धक (एक गुणहानि में स्पर्धकों की संख्या) स्तोक हैं। उससे अतिस्थापनासंबंधी स्पर्धक अनन्तगुणे हैं।[1] उससे निक्षेपरूप स्पर्धक अनन्तगुणे हैं और उससे अनुभागकांडकगत स्पर्धक अनन्तगुणे हैं। इसका स्पष्टीकरण, लब्धिसार प्रथमभाग गाथा ८१ में देखें।

१. ल. सा. गाथा ८० के समान २. ज. ध. पु. १४ पृ. १६९

अपूर्वकरण में बन्धव्युच्छित्ति का क्रम कहते हैं -

पढमे छट्टे चरिमे भागे दुग तीस चदुर वोच्छिण्णा ।
बंधेण अपुव्वस्स य, से काले बादरो होदि ।। ४११ ।।

प्रथमे षट्के चरमे भागे द्विकं त्रिशंच्चतस्रो व्युच्छिन्नाः ।
बन्धेनापूर्वस्य चानन्तर काले बादरो भवति ।। ४११ ।।

अन्वयार्थ - (अपुव्वस्स) अपूर्वकरण के **(पढमे भागे)** प्रथम भाग में **(दुग)** दो प्रकृतियाँ, **(छट्टे भागे)** छठे भाग में **(तीस)** तीस प्रकृतियाँ और **(चरिमे भागे)** अंतिम भाग में **(चदुर)** चार प्रकृतियाँ **(बंधेण)** बंध की अपेक्षा से **(वोच्छिण्णा)** व्युच्छिन्न होती हैं **(य)** और **(से काले)** अनन्तर समय में जीव **(बादरो)** बादरसाम्पराय होता है।

विशेषार्थ - अपूर्वकरण गुणस्थान के समान सात भाग किये हैं। हजारों स्थितिबंधापसरण व्यतीत होने पर प्रथम भाग समाप्त होता है। दूसरे भाग के प्रथम समय में निद्रा और प्रचला की बन्ध-व्युच्छित्ति होती है। यह कथन अनुत्पादानुच्छेद अर्थात् पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से है। उत्पादानुच्छेद अर्थात् द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से प्रथम भाग के अंतिम समय में निद्रा-प्रचला की बन्धव्युच्छित्ति होती है। उसके बाद निद्रा-प्रचला का द्रव्य गुणसंक्रमण विधान के द्वारा बध्यमान स्वजातीय प्रकृतियों में संक्रमित होने लगता है। क्योंकि क्षपक और उपशम श्रेणी में जिन अप्रशस्त प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है उनका गुणसंक्रमण नियम से होता है। इसके बाद सात भागों में से छह भाग व्यतीत होने पर परभव संबंधी तीस प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है।

परभवसंबंधी ३० प्रकृतियाँ- देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक - आहारक - तैजस - कार्मण शरीर, समचतुरस्त्र संस्थान, वैक्रियिक - आहारक शरीरांगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर। परभव संबंधी देवगति के साथ इनका बन्ध होता है इसलिए इनकी परभविक संज्ञा है।

इसके बाद संख्यातहजार स्थितिबंधापसरण होने पर अपूर्वकरण के अंतिम समय में हास्य, रति, भय और जुगुप्सा की बंध-व्युच्छित्ति होती है। उसी समय में छह नोकषायों की उदयव्युच्छित्ति होती है।

उसके अनन्तर समय में जीव बादरसाम्पराय अर्थात् अनिवृत्तिकरण होता है।

इति अपूर्वकरणाधिकारः समाप्तः ।। २ ।।

अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में आवश्यक कार्य कहते हैं -

अणियट्टिस्स य पढमे अण्णं ठिदिखंडपहुदिमारभई[1] ।
उवसामणा णिधत्ती णिकाचणा तत्थ वोच्छिण्णा ।। ४१२ ।।

अनिवृत्तेश्च प्रथमेऽन्यं स्थितिखण्डप्रभृतिमारभते ।
उपशामना निधत्तिर्निकाचना तत्र व्युच्छिन्ना: ।। ४१२ ।।

अन्वयार्थ - (अणियट्टिस्स) अनिवृत्तिकरण के **(पढमे)** प्रथम समय में **(अण्णं ठिदिखंडपहुदि)** अन्य स्थितिकाण्डकादि (अनुभागकांडक, स्थितिबंध) **(आरभई)** प्रारंभ करता है **(य)** और **(तत्थ)** वहाँ **(उवसामणा णिधत्ती णिकाचणा)** उपशान्तकरण, निधत्तीकरण और निकाचनाकरण **(वोच्छिण्णा)** व्युच्छिन्न (नष्ट) होते हैं।

विशेषार्थ - निवृत्ति का अर्थ है भेद। जहाँ परिणामों में भेद नहीं होता है उसकी अनिवृत्ति संज्ञा है। समान समयवर्ती नाना जीवों के परिणामों में परस्पर भेद नहीं होने से प्रतिसमय होने वाला एक - एक परिणाम अनिवृत्तिकरण कहलाता है।[2]

अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में अन्य स्थितिखंडादि होते हैं अर्थात् अपूर्वकरण के अंतिम समयवर्ती स्थितिकांडकायाम से अन्य ही पल्य का संख्यातवां भाग मात्र स्थितिकांडकायाम होता है। इसके बाद शेष रहे अनुभाग का अनन्त बहुभाग प्रमाण अन्य ही अनुभागकांडक होता है और अपूर्वकरण के अंतिम स्थितिबंध से पल्योपम का संख्यातवाँ भाग कम अन्य ही स्थितिबन्ध यहाँ होता है। उसी प्रकार सर्व कर्मों का अप्रशस्त उपशान्तकरण, निधत्तिकरण और निकाचनाकरण व्युच्छिन्न होते हैं अर्थात् यहाँ से आगे सभी कर्मों के सभी प्रदेशपुंज उदीरणा, संक्रमण, अपकर्षण और उत्कर्षण के योग्य होते हैं।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में स्थितिकांडकों का प्रमाण कहते हैं -

बादरपढमे पढमं ठिदिखंडं विसरिसं तु बिदियादि।
ठिदिखंडयं समाणं सव्वस्स समाणकालम्हि ।। ४१३ ।।

बादरप्रथमे प्रथमं स्थितिखंडं विसदृशं तु द्वितीयादि ।
स्थितिखंडकं समानं सर्वस्य समानकाले ।। ४१३ ।।

१) पाठभेद-मारवई २) ज. ध. पु. १४ पृ. १७९

अन्वयार्थ - (बादरपढमे) अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में **(पढमं ठिदिखंडं)** प्रथम स्थितिकांडक **(विसरिसं)** विसदृश होता है अर्थात् नाना जीवों के समान नहीं होता है, **(तु)** परन्तु **(बिदियादि)** द्वितीयादि **(ठिदिखंडयं)** स्थितिकांडक **(समाणकालम्हि)** समान काल में **(सव्वस्स)** सभी जीवों के **(समाणं)** समान होते हैं।

पल्लस्स संखभागं, अवरं तु वरं तु संखभागहियं।
घादादिमठिदिखंडो, सेसा सव्वस्स सरिसा हु ।। ४१४ ।।

पल्यस्य सङ्ख्यभागमवरं तु वरं तु सङ्ख्यभागाधिकम्।
घातादिमस्थितिखण्डः शेषाः सर्वस्य सदृशा हि ।। ४१४ ।।

अन्वयार्थ - (घादादिमठिदिखंडो) प्रथम स्थितिकांडक **(अवरं)** जघन्य **(पल्लस्स संखभागं)** पल्य का संख्यातवां भाग है **(तु वरं)** परन्तु उत्कृष्ट स्थितिकांडक जघन्य से **(संखभागहियं)** संख्यातवां भाग अधिक है। **(सेसा)** शेष स्थितिकांडक **(सव्वस्स)** सभी के **(सरिसा हु)** सदृश हैं।

विशेषार्थ - त्रिकाल संबंधी समानसमयवर्ती सभी अनिवृत्तिकरण जीवों के परिणाम सदृश होते हैं इसलिए उनका प्रथम स्थितिकांडक भी समान ही होता है ऐसा नहीं, परन्तु प्रथम स्थितिकांडक में जघन्य और उत्कृष्ट भेद होने से विसदृशता संभव है। जघन्य की अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिकांडक संख्यातवां भाग अधिक होता है।

शंका - सदृश परिणामयुक्त अनिवृत्तिकरण जीवों में प्रथम स्थितिकांडक का विसदृशपना कैसे संभव है ?

समाधान - परिणाम सदृश होते हुए भी स्थितिसत्त्व समान नहीं होने से प्रथम स्थितिकांडक में विसदृशता संभव है। दो जीव एक ही समय में क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए। उनमें से एक का स्थितिसत्कर्म अल्प है। दूसरे का उससे संख्यातवाँ भाग अधिक है। स्थितिसत्त्वानुसार स्थितिकांडक (आयाम) भी जघन्य-उत्कृष्ट होता है। अपूर्वकरण के प्रथम समय से अनिवृत्तिकरण का प्रथम स्थितिकांडक समाप्त होने तक ऐसा ही होता है। जिसका स्थितिसत्त्वकर्म अधिक है उस जीव के अपूर्वकरण के अंतिम स्थितिकांडक के पश्चात् जितना स्थितिसत्त्व अधिक है उतना अनिवृत्तिकरण के प्रथम स्थितिकांडक में ग्रहण करता है। इसलिए अनिवृत्तिकरण का उत्कृष्ट स्थितिकांडक संख्यातवां भाग अधिक होता है।[१]

शंका - यदि किसीका स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा हो तो उसका प्रथम उत्कृष्ट स्थितिकांडक संख्यातगुणा होता है ?

समाधान - प्रथम उत्कृष्ट स्थितिकांडक संख्यातगुणा नहीं होता क्योंकि वहाँ स्थितिसत्त्व

१) ज.ध.पु. १४ पृ. १८१

संख्यातगुणा संभव नहीं है।

शंका - संख्यातगुणा स्थितिसत्त्व संभव क्यों नहीं है ?

समाधान - अपूर्वकरण के अंतिम समय में घात होकर शेष रहा उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व भी जघन्य से संख्यातवां भाग ही अधिक होता है ऐसा नियम है।

प्रथम स्थितिकांडक का घात होने के पश्चात् समान काल में विद्यमान त्रिकालविषयक सभी अनिवृत्तिकरण जीवों का स्थितिसत्त्व समान होता है। इसलिए द्वितीयादि स्थितिकांडक समान होते हैं क्योंकि कारणों की समानता से कार्य भी समान होते हैं। इस प्रकार प्रथम अनुभागकांडक विसदृश होता है और द्वितीयादि अनुभागकांडक समान होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।[1]

उदधिसहस्सपुधत्तं लक्खपुधत्तं तु बंध संतो य।
अणियट्टिस्सादीए गुणसेढी पुव्वपरिसेसा ।। ४१५ ।।

उदधिसहस्रपृथक्त्वं लक्षपृथक्त्वं तु बन्धः सत्त्वं च।
अनिवृत्तेरादौ गुणश्रेण्यपूर्वपरिशेषा ।। ४१५ ।।

अन्वयार्थ - (अणियट्टिस्सादीए) अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में **(बंध)** स्थितिबंध **(उदधिसहस्सपुधत्तं)** पृथक्त्व हजार सागर **(य)** और **(संतो)** स्थितिसत्त्व **(लक्खपुधत्तं)** पृथक्त्व लक्ष सागर है। **(गुणसेढी)** गुणश्रेणी **(पुव्वपरिसेसा)** अपूर्वकरण में प्रारंभ की हुई गुणश्रेणी में से जितनी शेष रही उतनी होती है।

विशेषार्थ - अपूर्वकरण के प्रथम समय में जो अंत:कोटाकोटी सागरोपमप्रमाण स्थितिबंध होता था वह अपूर्वकरण में होनेवाले संख्यातहजार स्थितिबंधापसरणों के द्वारा हीन होता हुआ अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में पृथक्त्वहजार सागरप्रमाण रहता है। वैसे ही पूर्व में जो अंत:कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण स्थितिसत्त्व था वह अपूर्वकरण में होनेवाले संख्यात हजार स्थितिकांडकघातों के द्वारा हीन होता हुआ पृथक्त्वलक्ष सागरोपमप्रमाण रहता है।

जघन्य अथवा उत्कृष्ट परिणामों से जो जघन्य अथवा उत्कृष्ट गुणश्रेणी निक्षेप अपूर्वकरण में प्रारंभ किया था वह गुणश्रेणी आयाम अपूर्वकरण का काल व्यतीत होने पर जितना शेष है उतना ही यहाँ जानना चाहिए। प्रत्येक समय में असंख्यात गुणितक्रम से गुणश्रेणी प्रवृत्त होती है। गुणसंक्रमण भी अबंध रूप अप्रशस्त प्रकृतियों का पूर्व के समान ही असंख्यात गुणितक्रम से प्रवृत्त होता है। प्रत्येक समय में विशुद्धि अनन्तगुणी बढ़ती है।[2]

इति अनिवृत्तिकरणाधिकार: ।।

१) ज.ध.पु. १४ पृ. १८२ २) ज.ध.पु. १४ पृ. १८२-१८३

तीन गाथाओं के द्वारा स्थितिबंधापसरण का क्रम कहते हैं -

ठिदिबंधसहस्सगदे संखेज्जा बादरे गदा भागा।
तत्थासण्णिस्स ट्ठिदिसरिसं ठिदिबंधणं होदि[1]।। ४१६।।

स्थितिबंधसहस्रगते संख्येया बादरे गता भागाः।
तत्रासञ्ज्ञिनः स्थितिसदृशं स्थितिबन्धनं भवति।।४१६।।

अन्वयार्थ - इस प्रकार **(ठिदिबंधसहस्सगदे)** संख्यातहजार स्थितिबंध होने पर **(बादरे)** अनिवृत्तिकरण में **(संखेज्जा भागा)** संख्यात बहुभाग **(गदा)** व्यतीत हुआ। **(तत्थ)** वहाँ **(असण्णिस्स ट्ठिदिसरिसं)** असंज्ञी के स्थितिबंध के समान **(ठिदिबंधणं)** स्थितिबंध **(होदि)** होता है।

विशेषार्थ - पूर्वोक्त क्रम से अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में संख्यातहजार स्थितिबंधापसरण व्यतीत होने पर अनिवृत्तिकरण का बहुभाग व्यतीत होकर एक भाग शेष रहता है तब असंज्ञी पंचेन्द्रिय के स्थितिबंध के समान स्थितिबंध होता है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव दर्शनमोहनीय का उत्कृष्ट स्थितिबंध एक हजार सागरोपम प्रमाण करता है। उसके अनुसार अन्य कर्मों का स्थितिबंध जानना चाहिए। अनिवृत्तिकरण जीव एक हजार सागर का चार सप्तमांश भागप्रमाण मोहनीय कर्म का, तीन सप्तमांश भागप्रमाण ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अंतराय कर्म का, दो सप्तमांश भागप्रमाण नाम और गोत्र कर्म का स्थितिबंध करता है। चालीस, तीस और बीस कोटाकोटी सागर स्थिति की अपेक्षा से चारित्रमोह को चालीसिय, ज्ञानावरणादि चार कर्मों को तीसिय और नाम-गोत्र को वीसिय कहते हैं।[2]

ठिदिबंधसहस्सगदे पत्तेयं चदुरतियबिएइंदी।
ठिदिबंधसमं होदि हु ठिदिबंधमणुक्कमेणेव[3] ।। ४१७।।

स्थितिबन्धसहस्रगते प्रत्येकं चतुस्त्रिद्व्येकेन्द्रियानाम्।
स्थितिबन्धसमं भवति हि स्थितिबन्धमनुक्रमेणैव।। ४१७।।

अन्वयार्थ - (पत्तेयं) प्रत्येक स्थान में **(ठिदिबंधसहस्सगदे)** संख्यात हजार स्थितिबंध जाने पर **(अणुक्कमेणेव)** क्रम से ही **(चदुरतियबिएइंदी ठिदिबंधसमं)** चतुरिन्द्रिय त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रिय जीवों के स्थितिबंध के समान **(ठिदिबंधं)** स्थितिबंध **(होदि हु)** होता है।

---

१) ल.सा.गाथा २२९ के समान / क.पा. सुत्त पृ. ७४४ सूत्र ८१ २) ज.ध.पु. १४ पृ. १८५
३) ल.सा.गाथा २३० के समान।

विशेषार्थ - सत्तर (७०) कोटाकोटी सागरोपम उत्कृष्ट स्थितियुक्त मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का एकेन्द्रिय जीव को उत्कृष्ट स्थितिबंध एक सागरोपम, द्वीन्द्रिय को पच्चीस (२५) सागरोपम, त्रीन्द्रिय को पचास (५०) सागरोपम चतुरिन्द्रिय को सौ (१००) सागरोपम और असंज्ञी पंचेन्द्रिय को हजार (१०००) सागरोपम होता है तो इन्हीं जीवों को क्रमशः चालीस, तीस और बीस कोटाकोटी सागर उत्कृष्ट स्थितियुक्त चारित्र मोहनीय, ज्ञानावरणादि चार कर्मों का और नाम गोत्र का बंध कितना होता है ? ऐसा त्रैराशिक करने पर सातों कर्मों का उत्कृष्ट बन्ध इस प्रकार होता है।

जीव	**चारित्रमोहनीय कर्म**	**ज्ञानावरणादी(तीसिय)४ कर्मे**	**नाम व गोत्र**
असंज्ञी पंचेन्द्रिय	$१०००\times\frac{४}{७}$ सागरोपम	$१०००\times\frac{३}{७}$ सागरोपम	$१०००\times\frac{२}{७}$ सागरोपम
चतुरिन्द्रिय	$१००\times\frac{४}{७}$ सागरोपम	$१००\times\frac{३}{७}$ सागरोपम	$१००\times\frac{२}{७}$ सागरोपम
त्रीन्द्रिय	$५०\times\frac{४}{७}$ सागरोपम	$५०\times\frac{३}{७}$ सागरोपम	$५०\times\frac{२}{७}$ सागरोपम
द्वीन्द्रिय	$२५\times\frac{४}{७}$ सागरोपम	$२५\times\frac{३}{७}$ सागरोपम	$२५\times\frac{२}{७}$ सागरोपम
एकेन्द्रिय	$१\times\frac{४}{७}$ सागरोपम	$१\times\frac{३}{७}$ सागरोपम	$१\times\frac{२}{७}$ सागरोपम

अनिवृत्तिकरण में उपर्युक्त जीव प्रत्येक स्थान में संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होने पर स्थितिबन्धापसरण के माहात्म्य से सातों कर्मों का स्थितिबन्ध इसी क्रम से करता है।[१]

एइंदियट्ठिदीदो संखसहस्से गदे हु ठिदिबंधे।
पल्लेकदिवड्ढदुगं ठिदिबंधो वीसियतियाणं।। ४१८।।

एकेन्द्रियस्थितितः सङ्ख्यसहस्रे गते हि स्थितिबन्धे।
पल्यैकद्व्यर्धद्विकं स्थितिबन्धो वीसियत्रिकाणाम्।।४१८।।

अन्वयार्थ - (एइंदियट्ठिदीदो) एकेन्द्रियसमान स्थितिबंध से लेकर आगे **(संखसहस्से गदे हु ठिदिबंधे)** संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होने पर **(वीसियतियाणं)** वीसियत्रिक का अर्थात् वीसिय, तीसिय और चालीसिय का **(ठिदिबंधो)** स्थितिबंध क्रम से **(पल्लेकदिवड्ढदुगं)** एक पल्य, डेढ़ पल्य और दो पल्य होता है।

१) ज. ध. पु. १४ पृ. १८५ - १८६ / ल.सा.गा.२३१ के समान

विशेषार्थ - एकेन्द्रिय समान स्थितिबंध के पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंध जाने पर नाम-गोत्र का एक पल्योपम, ज्ञानावरणादि चार कर्मों का डेढ़ पल्योपम और चारित्रोहनीय का दो पल्योपम प्रमाण स्थितिबंध होता है।[1]

उस समय स्थितिसत्त्व का प्रमाण कहते हैं -

तक्काले ठिदिसंतं लक्खपुधत्तं तु होदि उवहीणं।
बंधोसरणा बंधं, ठिदिखंडं संतमोसरदि।। ४१९।।

तत्काले स्थितिसत्त्वं लक्षपृथक्त्वं तु भवत्युदधीनाम्।
बन्धापसरणा बन्धं स्थितिखण्डं सत्त्वमपसरति।। ४१९।।

अन्वयार्थ - (तक्काले) उस समय (कर्मों का) **(ठिदिसंतं)** स्थितिसत्त्व **(उवहीणं लक्खपुधत्तं)** लक्षपृथक्त्व सागर प्रमाण **(होदि)** होता है। **(बंधोसरणा)** बन्धापसरण **(बंधं)** बन्ध को **(ओसरदि)** कम करता है और **(ठिदिखंडं)** स्थितिकांडक **(संतं)** सत्त्व को **(ओसरदि)** कम करता हैं।

विशेषार्थ - जिस समय में नाम गोत्रादिकों का बंध एक पल्योपमादि होता है तब उन कर्मों का स्थितिसत्त्व लक्षपृथक्त्व सागर प्रमाण होकर प्रथम समय के स्थितिसत्त्व की अपेक्षा संख्यातगुणा कम है। स्थितिबंधापसरण के द्वारा स्थितिबंध घटता जाता है और स्थितिकांडक घात के द्वारा स्थितिसत्त्व हीन होता जाता है। ऐसा सर्वत्र जानना चाहिए।

कब कितना बंधापसरण होता है उसका प्रमाण कहते हैं -

पल्लस्स संखभागं, संखगुणूणं असंखगुणहीणं।
बंधोसरणं पल्लं पल्लासंखं ति संखवस्सं ति[2] ।। ४२०।।

पल्यस्य सङ्ख्यभागं सङ्ख्यगुणोनमसङ्ख्यगुणहीनम्।
बंधापसरणं पल्यं पल्यासङ्ख्यमिति सङ्ख्यवर्षमिति।।४२०।।

अन्वयार्थ - (पल्लं ति) पल्य प्रमाण स्थितिबंध होने तक **(बंधोसरणं)** बन्धापसरण **(पल्लस्स संखभागं)** पल्य का संख्यातवाँ भाग होता है। **(पल्लासंखं ति)** पल्य का असंख्यातवाँ भाग स्थितिबंध

१) ज.ध.पु. १४ पृ. १८७

२) आगास प्रति में पल्लासंख असंखवस्सं ति पाठ है उसके स्थान परपल्लासंखं तिसंखवस्स ति यह पाठ रखा है। कारण ल.सा.गा. २३२ में यही पाठ है। अर्थानुसार यही पाठ योग्य दिखता है।

प्राप्त होने तक **(संखगुणूणं)** पूर्व स्थितिबंध की अपेक्षा संख्यातगुणा हीन स्थितिबंध होता है।**(संखवस्संति)** संख्यात वर्ष प्रमाण स्थितिबंध होने तक पूर्व स्थितिबंध की अपेक्षा **(असंख्यगुणहीणं)** असंख्यातगुणा हीन स्थितिबंध होता है।

विशेषार्थ - पल्यमात्र स्थितिबंध होने तक पल्य का संख्यातवां भाग स्थितिबंधापसरण जानना चाहिए। वहाँ पूर्व स्थितिबंध से अनन्तर स्थितिबंध विशेषहीन होता है। उसके पश्चात् पल्य का संख्यातवां भाग मात्र दूरापकृष्टि नाम का स्थितिबंध होने तक संख्यात बहुभाग प्रमाण स्थितिबंधापसरण जानना चाहिए। वहाँ पूर्व स्थितिबंध से अनन्तर स्थितिबंध संख्यातगुणा हीन होता है। पुनः उसके बाद संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबंध होने तक असंख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिबंधापसरण जानना चाहिए। वहाँ पूर्व स्थितिबंध से अनन्तर स्थितिबंध असंख्यातगुणा हीन होता है। संख्यातवर्ष स्थितिबंध प्रारंभ होने पर संख्यात बहुभाग का अपसरण होकर पूर्व स्थितिबंध की अपेक्षा संख्यात गुणा हीन-हीन स्थितिबंध होता है। पल्य, दूरापकृष्टि और संख्यातवर्ष ये तीन सन्धिस्थान हैं। वहाँ स्थितिबंधापसरण का प्रमाण बदलता है।[१]

एवं पल्लं जादा, वीसिया तीसिया य मोहो य।
पल्लासंखं च कमं बंधेण य वीसियतियाओ[२]।। ४२१ ।।

एवं पल्यं जाते वीसिया तीसिया च मोहश्च।
पल्यासङ्ख्यं च क्रमेण बन्धेन च वीसियत्रिकाः।।४२१।।

अन्वयार्थ - (एवं) इस प्रकार **(पल्लं जादा)** पल्यप्रमाण स्थितिबंध हुआ। वहाँ **(वीसिया, तीसिया और मोहो य)** वीसिय, तीसिय और मोह ऐसा **(बन्धेण कमं)** बंध की अपेक्षा से क्रम है। **(च)** और **(पल्लासंखं)** पल्य का असंख्यातवां भाग स्थितिबंध होने तक भी **(वीसिय-तियाओ बंधेण कमं)** वीसियत्रिक का बंध की अपेक्षा से यही क्रम है।

विशेषार्थ - नाम और गोत्र कर्म का पल्योपम प्रमाण स्थितिबंध सम्पन्न होने पर अन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा हीन होता है क्योंकि वहाँ पल्य का संख्यात बहुभाग का अपसरण होकर एक भागमात्र स्थितिबंध होता है। शेष कर्मों का स्थितिबंध विशेष हीन होता है क्योंकि उनका बंध पल्यप्रमाण नहीं होने से वहाँ पल्य के संख्यातवें भाग का अपसरण होता है।

अल्पबहुत्व - यहाँ वीसिय का स्थितिबंध सबसे हीन है, उससे तीसिय चार कर्मों का स्थितिबंध परस्पर समान होकर भी वीसिय से संख्यातगुणा है। उससे चारित्रमोहनीय कर्म का स्थितिबंध विशेष अधिक है।[३]

१) ज.ध.पु. १४ पृ. १९० २) ल. सा. गाथा २३३ के समान ३) ज.ध.पु. १४ पृ. १८८

इस क्रम से संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होने पर ज्ञानावरणादि कर्मों का स्थितिबन्ध पल्योपम प्रमाण होता है। उसी समय में मोहनीय कर्म का स्थितिबंध तीसरा भाग अधिक पल्योपम प्रमाण होता है क्योंकि जहाँ तीसिय का पल्योपम प्रमाण स्थितिबन्ध होता है वहाँ चालीसिया का स्थितिबंध कितना होता है ? ऐसा त्रैराशिक करने पर तीसरा भाग अधिक पल्योपम प्रमाण प्राप्त होता है। उसके पश्चात् तीसिय का संख्यातगुणा कम स्थितिबंध होता है। उस समय का अल्पबहुत्व - वीसिय का स्थितिबंध सबसे अल्प, उससे तीसिय का संख्यातगुणा और उससे मोहनीय का संख्यातगुणा होता है।[1]

इस क्रम से संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होने पर मोहनीय कर्म का पल्योपम प्रमाण स्थितिबंध होता है और शेष ६ कर्मों का पल्योपम का संख्यातवां भाग प्रमाण स्थितिबंध होता है। यह स्थितिबंध संपन्न होने पर मोहनीय कर्म का स्थितिबंध पल्योपम का संख्यातवां भागमात्र होता है उसके पश्चात् सातों कर्मों का स्थितिबंध पल्योपम का संख्यातवाँ भाग प्रमाण ही होता है। उस समय में अल्पबहुत्व - वीसिय का स्थितिबंध सबसे अल्प, उससे तीसिय कर्मों का संख्यातगुणा और उससे मोहनीय कर्म का स्थितिबंध संख्यातगुणा होता है।[2]

इस क्रम से संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होने पर नाम और गोत्र कर्मों का दूरापकृष्टि नाम का अंतिम पल्योपम का संख्यातवां भाग प्रमाण स्थितिबंध होता है। तत्पश्चात् असंख्यात बहुभाग प्रमाण अपसरण होकर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग प्रमाण स्थितिबंध होता है तब शेष कर्मों का स्थितिबंध पल्योपम का संख्यातवाँ भाग प्रमाण होता है। उस समय में अल्पबहुत्व - वीसिय का स्थितिबंध सबसे अल्प, उससे तीसिय चार कर्मों का असंख्यातगुणा और उससे मोहनीय कर्म का संख्यातगुणा स्थितिबंध होता है।[3]

उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होने पर तीसिय चार कर्मों का दूरापकृष्टि स्थितिबंध संपन्न होता है। तत्पश्चात् असंख्यात बहुभाग का अपसरण होकर पल्योपम का असंख्यातवाँ भागप्रमाण प्रथम स्थितिबंध होता है। वहाँ अल्पबहुत्व वीसिय का सबसे अल्प, उससे तीसिय चार कर्मों का असंख्यातगुणा उससे मोहनीय कर्म का असंख्यातगुणा स्थितिबंध होता है।

उसके पश्चात् संख्यातहजार स्थितिबंध व्यतीत होने पर मोहनीय कर्म का भी दूरापकृष्टि विषयक पल्योपम का संख्यातवां भाग प्रमाण अंतिम स्थितिबंध होता है और तत्पश्चात् असंख्यात बहुभाग का स्थितिबंधापसरण होकर पल्योपम का असंख्यातवां भाग प्रमाण प्रथम स्थितिबंध होता है। उस समय में सातों कर्मों का स्थितिबंध पल्योपम का असंख्यातवां भागप्रमाण होता है।[4] इस प्रकार वीसिय, तीसिय और चालीसिय कर्म का स्थितिबंध क्रम से पल्योपम का असंख्यातवां भागप्रमाण होता है। उस समय का अल्पबहुत्व अल्प वीसिय का स्थितिबंध सबसे कम, उससे तीसिय चार कर्मों का

१) ज.ध.पु. १४ पृ. १८९ २) ज.ध.पु. १४ पृ. १९०
३) ज.ध.पु. १४ पृ. १९१ ४) ज.ध.पु. १४ पृ. १९२

असंख्यात गुणा उससे मोहनीय कर्म का असंख्यातगुणा स्थितिबंध होता है।

इस गाथा में यह स्पष्ट किया है कि उत्तरोत्तर यथासंभव स्थितिबंधापसरण होने पर सर्वप्रथम वीसिय प्रकृतियों का एक पल्योपम प्रमाण स्थितिबंध प्राप्त होता है। उसके पश्चात् यथासंभव स्थितिबंधापसरण होने पर तीसिय प्रकृतियों का एक पल्योपम प्रमाण स्थितिबंध प्राप्त होता है। उसके पश्चात् उत्तरोत्तर यथासंभव मोहनीय कर्म का एक पल्योपम प्रमाण स्थितिबंध प्राप्त होता है। उसके पश्चात् यथासंभव स्थितिबंधापसरण होने पर वीसिय, तीसिय और मोहनीय का स्थितिबंध क्रम से पल्योपम का असंख्यातवां भाग प्रमाण प्राप्त होता है। (इस संबंध का नक्शा आगे पेज पर देखिये।)

उस समय का स्थितिसत्त्व कहते हैं -

उदधिसहस्सपुधत्तं अब्भंतरदो दु सदसहस्सस्स।
तक्काले ठिदिसंतो आउगवज्जाण कम्माणं ।।४२२।।

उदधिसहस्रपृथक्त्वमभ्यन्तरतस्तु शतसहस्रस्य ।
तत्काले स्थितिसत्त्वमायुर्वर्जितानां कर्मणाम् ।। ४२२ ।।

अन्वयार्थ - (तक्काले) उस काल में **(आउगवज्जाण कम्माणं)** आयुकर्म छोड़कर शेष सात कर्मों का **(ठिदिसंतो)** स्थितिसत्त्व **(सदसहस्सस्स अब्भंतरदो दु)** एक लाख सागरोपम के अंदर **(उदधिसहस्सपुधत्तं)** हजार सागरोपम पृथक्त्व प्रमाण होता है।

विशेषार्थ - पूर्वोक्त संधि में जो लाख सागरोपम पृथक्त्वप्रमाण स्थितिसत्त्व होता है वह क्रम से संख्यातहजार स्थितिकांडकों के द्वारा हीन होकर इस स्थान में एक लाख सागरोपम के भीतर पृथक्त्वहजार सागरोपम प्रमाण होता है।[1]

अब स्थितिबंध का विपरीत क्रम कहते हैं-

मोहगपल्लासंखट्ठिदिबंधसहस्सगेसु तीदेसु ।
मोहो तीसिय हेट्ठा असंखगुणहीणयं होदि[2] ।। ४२३ ।।

मोहकपल्यासङ्ख्यस्थितिबन्धसहस्रकेष्वतीतेषु ।
मोहस्तीसियमधस्तनोऽसङ्ख्येयगुणहीनकं भवति ।। ४२३ ।।

---

१) ज.ध.पु. १४ पृ. १९२ २) ल.सा.गाथा २३४ के समान

<table>
<tr><th colspan="6">स्थितिबंधापसरण का क्रम</th></tr>
<tr>
<td colspan="2">पल्या का असंख्यातवाँ भाग
} पल्य का असंख्यात बहुभाग
पल्या का असंख्यातवाँ भाग
} पल्य का असंख्यात बहुभाग
पल्य का असंख्यातवाँ भाग
} पल्य का असंख्यात बहुभाग
दूरापकृष्टी
पल्य का संख्यातवाँ भाग
} पल्य का संख्यात बहुभाग
पल्य का संख्यातवाँ भाग
} पल्य का संख्यात बहुभाग
पल्य का संख्यातवाँ भाग
} पल्य का संख्यात बहुभाग
पल्य</td>
<td colspan="2">पल्या का असंख्यातवाँ भाग
} पल्य का असंख्यात बहुभाग
पल्या का असंख्यातवाँ भाग
} पल्य का असंख्यात बहुभाग
दूरापकृष्टी
पल्य का संख्यातवाँ भाग
} पल्य का संख्यात बहुभाग
पल्य का संख्यातवाँ भाग
} पल्य का संख्यात बहुभाग
पल्य का संख्यातवाँ भाग
} पल्य का संख्यात बहुभाग
पल्य
} पल्य का संख्यातवाँ भाग
डेढ़ पल्य</td>
<td colspan="2">पल्य का असंख्यातवाँ भाग
} पल्य का असंख्यात बहुभाग
दूरापकृष्टी
पल्य का संख्यातवाँ भाग
} पल्य का संख्यात बहुभाग
एकभाग
} पल्य का संख्यात बहुभाग
पल्य का संख्यातवाँ भाग
} पल्य का संख्यात बहुभाग
पल्य
} पल्य का संख्यातवाँ भाग
त्रिभाग अधिक पल्य
} पल्य का संख्यातवाँ भाग
दो पल्य</td>
</tr>
<tr>
<td>स्थितिबंध का प्रमाण</td><td>स्थितिबंधापसरण प्रमाण</td>
<td>स्थितिबंध का प्रमाण</td><td>स्थितिबंधापसरण प्रमाण</td>
<td>स्थितिबंध का प्रमाण</td><td>स्थितिबंधापसरण प्रमाण</td>
</tr>
<tr>
<td colspan="2">वीसिय</td><td colspan="2">तीसिय</td><td colspan="2">चालिसिय (मोहनीय)</td>
</tr>
</table>

अन्वयार्थ - (मोहगपल्लासंखट्ठिदिबंधसहस्सगेसु तीदेसु) मोहनीय का पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण हजारों स्थितिबंध व्यतीत होने पर **(मोहो)** मोहनीय का स्थितिबंध **(तीसिय हेट्ठा)** तीसिय के नीचे **(असंखगुणहीणयं)** असंख्यात गुणा हीन **(होदि)** होता है।

विशेषार्थ - पूर्वोक्त क्रम से संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होते हैं तब जहाँ अन्य स्थितिबंध होता है वहाँ एक समय में नाम और गोत्र कर्म का स्थितिबंध सबसे अल्प होता है। उससे मोहनीय कर्म का स्थितिबंध असंख्यातगुणा और उससे तीसिय चार कर्मों का स्थितिबंध असंख्यातगुणा होता है।

शंका - यहाँ चार कर्मों के स्थितिबंध से मोहनीय का स्थितिबंध असंख्यातगुणा होता था तो एक समय में तीसिय के नीचे असंख्यातगुणा हीन कैसे हुआ ?

समाधान - परिणामों की विशुद्धि के माहात्म्य से विशेष घात होने के कारण तीसिय कर्मों के नीचे अति अप्रशस्त मोहनीय कर्म का स्थितिबंध असंख्यातगुणा हीन हुआ।

तेत्तियमेत्ते बंधे, समतीदे वीसियाण हेट्ठादु।
एक्कसराहे मोहो, असंखगुणहीणयं होदि[1]**।। ४२४।।**

तावन्मात्रे बन्धे समतीते वीसियानामधस्तात्।
एकसमये मोहोऽसंख्यगुणहीनको भवति।। ४२४।।

अन्वयार्थ - (तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे) उतने मात्र (संख्यात हजार) स्थितिबंध व्यतीत होने पर **(एक्कसराहे)** एक समय में **(वीसियाणं हेट्ठादु)** वीसिय कर्मों के नीचे **(मोहो)** मोहनीय कर्म का स्थितिबंध **(असंखगुणहीणयं)** असंख्यात गुणा हीन **(होदि)** होता है।

विशेषार्थ - पूर्वोक्त क्रम से संख्यात हजार स्थितिबंध होने पर एक ही समय में अन्य प्रकार का स्थितिबंध होता है। वहाँ मोह का स्थितिबंध सबसे अल्प, उससे वीसिय का असंख्यात गुणा, उससे तीसिय चार कर्मों का असंख्यात गुणा स्थितिबंध होता है। यहाँ विशुद्धता से अतिअप्रशस्त मोहनीय का स्थितिबंध नाम और गोत्र कर्म की अपेक्षा असंख्यातगुणा हीन हुआ।[2]

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वेयणीयहेट्ठादु।
तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति[3]**।।४२५।।**

१) ल. सा. गाथा २३५ के समान/क.पा. सुत्र पृ. ७४७ सुत्त पृ. ७४७ सू. १३४ - १३६
२) ज.ध. पु. १४ पृ. १९४ ३) ल.सा.गाथा २३६ के समान

तावन्मात्रे बन्धे समतीते वेदनीयाधस्तात्।
तीसियघातित्रिका असङ्ख्यगुणहीनका भवन्ति ।। ४२५।।

अन्वयार्थ - (तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे) उतने मात्र (संख्यात हजार) स्थितिबंध जाने पर **(तीसियघादितियाओ)** ज्ञानावरणादि तीन घातिकर्म **(वेयणीय हेट्ठादु)** वेदनीय कर्म के नीचे **(असंखगुणहीणया)** असंख्यातगुणे हीन **(होंति)** होते हैं।

विशेषार्थ - पुनः इस क्रम से संख्यातहजार स्थितिबंध व्यतीत होने पर अन्य प्रकार से स्थितिबंध होता है। वहाँ मोहनीय कर्म का स्थितिबंध सबसे हीन, उससे नाम और गोत्र कर्म का स्थितिबंध असंख्यात गुणा उससे तीन घाति कर्मों का असंख्यातगुणा उससे वेदनीय कर्म का असंख्यातगुणा स्थितिबंध होता है। यहाँ विशुद्धता से वेदनीय कर्म के नीचे अप्रशस्त तीन घातिया कर्मों का स्थितिबंध असंख्यातगुणा हीन हुआ।[१]

तेत्तियमेत्ते बंधे, समतीदे वीसियाण हेट्ठादु।
तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति [२]।। ४२६ ।।

तावन्मात्रे बन्धे समतीते वीसियाणामधस्तात्।
तीसियघातित्रिका असङ्ख्यगुणहीनका भवन्ति ।। ४२६ ।।

अन्वयार्थ - (तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे) उतने मात्र (संख्यात हजार) स्थितिबंध व्यतीत होने पर **(तीसियघादितियाओ)** तीसिय के तीन घातिकर्म **(वीसियाण हेट्ठादु)** वीसिय के नीचे **(असंखगुणहीणया)** असंख्यातगुणे हीन **(होंति)** होते हैं।

विशेषार्थ - पूर्वोक्त क्रम से संख्यातहजार स्थितिबंध जाने पर तीन घातिया कर्मों का स्थितिबंध नामगोत्र की अपेक्षा असंख्यातगुणा हीन होता है। वहाँ मोहनीय कर्म का स्थितिबंध सबसे अल्प, उससे तीन घातियों का असंख्यातगुणा, उससे नाम और गोत्र का असंख्यातगुणा, उससे वेदनीय का विशेष अधिक स्थितिबंध होता है।[३] यहाँ विशुद्ध परिणामों के माहात्म्य से अति अप्रशस्त तीन घातिया कर्मों का स्थितिबंध वीसिय से असंख्यातगुणा हीन हुआ।

---

१) ज.ध.पु. १४ पृ. १९४
३) ज.ध.पु. १४ पृ. १९५
२) ल. सा. गाथा २३७ के समान / क.पा. सुत्त पृ. ७४७-७४८ सूत्र १३७-१४०

स्थितिबंधापसरणरूप क्रमकरण का उपसंहार -

तक्काले वेदणीयं णामागोदादु साहियं होदि।
इदि मोहतीसवीसियवेदणीयाणं कमो बंधे[१] ।। ४२७ ।।

तत्काले वेदनीयं नामगोत्रात् साधिकं भवति।
इति मोहतीसियवीसियवेदनीयानां क्रमो बन्धे ।। ४२७ ।।

अन्वयार्थ - (तक्काले) उस काल में **(णामागोदादु)** नाम और गोत्र कर्म की अपेक्षा **(वेदणीयं)** वेदनीय कर्म **(साहियं)** साधिक **(होदि)** होता है। **(इदि)** इस प्रकार **(बंधे)** बंध में **(मोहतीसवीसियवेदणीयाणं)** मोहनीय, तीसिय, वीसिय और वेदनीय ऐसा **(कमो)** क्रम हुआ।

विशेषार्थ - जिस समय में विशुद्धतावश घातिकर्मों का स्थितिबंध असंख्यातगुणा हीन हुआ तब वेदनीयकर्म का स्थितिबंध नाम और गोत्र कर्म के स्थितिबंध की अपेक्षा आधा प्रमाण अधिक है क्योंकि वीसिय कर्मों के स्थितिबंध से तीसिय कर्मों का स्थितिबंध त्रैराशिकविधि से डेढ़गुणा सिद्ध होता है। वेदनीयकर्म का स्थितिबंध भी नामकर्म और गोत्रकर्म के स्थितिबंध से पूर्व में असंख्यात-गुणा होता था। अब वह अपनी स्थिति के प्रतिभाग से विशेष अधिक हुआ ऐसा जानना चाहिए। इस प्रकार मोहनीय, तीसिय, वीसिय और वेदनीय कर्म का क्रम से बन्ध होना यही क्रमकरण जानना चाहिए।

क्रमकरण का निर्देश

क्रमव्यत्यास क्र.	कर्मों के नाम			
४	मोहनीय	तीन घाति	वीसिय	वेदनीय
३	मोहनीय	वीसिय	तीनघाति	वेदनीय
२	मोहनीय	वीसिय	तीसियचतुष्क	
१	वीसिय	मोहनीय	तीसियचतुष्क	
पूर्वक्रम	वीसिय	तीसियचतुष्क	मोहनीय	

(कोष्टक नीचे से ऊपर देखें।)

इति स्थितिबंधापसरणरूप - क्रमकरणाधिकार:।

१) ल.सा.गाथा २३८ के समान/ध.पु.६ पृ. ३५३

अब स्थितिसत्त्वापसरण का वर्णन करते हैं-

बंधे मोहादिकमे संजादे तेत्तियेहिं बंधेहिं।
ठिदिसंतमसण्णिसमं मोहादिकमं तहा संते ।। ४२८।।

बन्धे मोहादिक्रमे सञ्जाते तावद्भिर्बन्धैः।
स्थितिसत्त्वमसञ्ज्ञिसमं मोहादिक्रमं तथा सत्त्वे ।। ४२८।।

अन्वयार्थ - (बन्धे) बन्ध में **(मोहादिकमे संजादे)** मोहादिकों का क्रम होने पर **(तेत्तियेहिं बंधेहिं)** उतने ही (संख्यात हजार) स्थितिबंधों के द्वारा **(असण्णिसमं)** असंज्ञी पंचेन्द्रिय के समान **(ठिदिसंतं)** स्थितिसत्त्व होता है **(तहा)** उसी प्रकार **(संते)** सत्त्व में **(मोहादिकमं)** मोहादि का क्रम होता है।

विशेषार्थ - यहाँ पल्योपम स्थिति तक पल्य का संख्यातवां भागप्रमाण, वहाँ से आगे दूरापकृष्टि स्थितिबंध तक पर्यन्त पल्योपम का संख्यात बहुभागप्रमाण, वहाँ से आगे प्रथम संख्यात हजारवर्ष स्थितिबन्ध तक असंख्यात बहुभागप्रमाण जो स्थितिबंधापसरणों के द्वारा स्थितिबंध घटाने का कथन किया उसके समान यहाँ उतने ही आयामसहित स्थितिकांडकों के द्वारा स्थितिसत्त्व घटाता है। क्रमकरण में जहाँ संख्यातहजार स्थितिबंध व्यतीत होने पर ऐसा कहा है उस जगह उतने स्थितिकांडक व्यतीत होने पर ऐसा कथन करना चाहिए । वैसे ही क्रमकरण के प्रकरण मे जहाँ स्थितिबंध कहा है वहाँ उस जगह स्थितिसत्त्व कहना चाहिए। अल्पबहुत्व और त्रैराशिकादिका विशेष कथन बन्धापसरण के समान ही जानना चाहिए।

स्थितिसत्त्व के क्रम का कथन इस प्रकार -

प्रत्येक में संख्यातहजार स्थितिकांडक होने पर क्रम से असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रिय के स्थितिबंध के समान कर्मों का स्थितिसत्त्व हजार सागरोपम, सौ सागरोपम, पचास सागरोपम, पच्चीस सागरोपम और एक सागरोपम के प्रतिभागानुसार होता है। उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिकांडक व्यतीत होने पर वीसियकर्मों का पल्योपम, तीसिय का डेढ़ पल्योपम और मोहनीय का दो पल्योपम प्रमाण स्थितिसत्त्व होता है। उसके पश्चात् पूर्व सत्त्व का संख्यात बहुभागप्रमाण एक स्थितिकांडक होने पर वीसिय का स्थितिसत्त्व पल्योपम का संख्यातवां भागप्रमाण होता है। उस समय में वीसिय की अपेक्षा तीसिय कर्मों का संख्यातगुणा और तीसिय की अपेक्षा मोहनीय का विशेष अधिक स्थितिसत्त्व हुआ।

इस क्रम से संख्यात हजार स्थितिकांडक होने पर तीसियकर्मों का स्थितिसत्त्व पल्योपम प्रमाण होता है। उस समय में मोहनीय का स्थितिसत्त्व त्रिभाग अधिक पल्योपमप्रमाण होता है। उसके पश्चात् संख्यात बहुभागप्रमाण एक स्थितिकांडक होने पर तीसिय कर्मों का स्थितिसत्त्व पल्योपम के संख्यातवें भागप्रमाण हुआ। उस समय अल्पबहुत्त्व - वीसिय कर्मों का स्थितिसत्त्व सबसे अल्प, उससे तीसिय का संख्यातगुणा, उससे मोहनीय का संख्यातगुणा स्थितिसत्त्व है।[1]

उसके पश्चात् इस क्रम से संख्यात हजार स्थितिकांडक होने पर मोह का पल्योपम मात्र स्थितिसत्त्व होता है। तत्पश्चात् एक स्थितिकांडक होने पर मोहनीय का भी पल्योपम का संख्यातवां भाग प्रमाण स्थितिसत्त्व होता है। उस समय सातों कर्मोंका स्थितिसत्त्व पल्योपम का संख्यातवां भागप्रमाण हुआ। उसके पश्चात् संख्यातहजार स्थितिकांडक व्यतीत होने पर वीसियकर्मों का स्थितिसत्त्व पल्योपम का असंख्यातवां भागप्रमाण होता है। उस समय का अल्पबहुत्त्व- वीसिय का स्थितिसत्त्व सबसे अल्प, उससे तीसिय का असंख्यातगुणा, उससे मोहनीय का संख्यातगुणा होता है।[2]

उसके पश्चात् संख्यातहजार स्थितिकांडक व्यतीत हो जाने पर तीसिय चार कर्मों का स्थितिसत्त्व पल्योपम का असंख्यातवां भागप्रमाण होता है। उस समय वीसिय का स्थितिसत्त्व सबसे अल्प, उससे तीसिय का असंख्यातगुणा, उससे मोहनीय का असंख्यातगुणा होता है। उसके पश्चात् संख्यातहजार स्थितिकांडक व्यतीत हो जाने पर मोहनीय का स्थितिसत्त्व पल्योपम का असंख्यातवां भागप्रमाण होता है। उस समय वीसिय का स्थिति सत्त्व सबसे अल्प, तीसिय का उससे असंख्यातगुणा, उससे मोहनीय का असंख्यातगुणा है। उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिकांडक व्यतीत होने पर वीसिय कर्मों का स्थितिसत्त्व सबसे अल्प, उससे मोहनीय का स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा, उससे तीसिय कर्मों का स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा होता है। यहाँ तीसिय की अपेक्षा मोहनीय का स्थितिसत्त्व हीन हुआ। उसके पश्चात् संख्यातहजार स्थितिकांडक व्यतीत हो जाने पर एक समय में मोहनीय का स्थितिसत्त्व सबसे अल्प हुआ। उससे वीसिय का असंख्यातगुणा, उससे तीसिय का असंख्यातगुणा होता है।

उसके पश्चात् संख्यातहजार स्थितिकांडक व्यतीत हो जाने पर मोहनीय का स्थितिसत्त्व सबसे अल्प, उससे वीसिय का असंख्यातगुणा, उससे तीन घातिया कर्मों का असंख्यातगुणा, उससे वेदनीय का असंख्यातगुणा हुआ। उसके पश्चात् संख्यातहजार स्थितिकांडक व्यतीत होने पर मोहनीय का स्थितिसत्त्व सबसे अल्प, उससे तीन घाति कर्मों का असंख्यातगुणा, उससे वीसिय का असंख्यातगुणा और उससे वेदनीय कर्म का स्थितिसत्त्व विशेष अधिक हुआ। इस प्रकार अन्त में नाम-गोत्र के स्थितिसत्त्व से वेदनीय कर्म का स्थितिसत्त्व विशेष अधिक हुआ। तब मोहादि कर्मों का क्रम से स्थितिसत्त्व का क्रमकरण हुआ।[3]

१) ज. ध. पु. १४ पृ. १९५-१९९ २) ज. ध. पु. १४ पृ. १९७ ३) ज. ध. पु. १४ पृ. २००

असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा का कथन करते हैं -

तीदे बंधसहस्से पल्लासंखेज्जयं तु ठिदिबंधे।
तत्थ असंखेज्जाणं उदीरणा समयबद्धाणं[1] ।। ४२९ ।।

अतीते बन्धसहस्रे पल्यासङ्ख्येयकं तु स्थितिबंधे।
तत्रासङ्ख्येयानामुदीरणा समयबद्धानाम्।।४२९।।

अन्वयार्थ - (ठिदिबंधे) स्थितिबंध में **(पल्लासंखेज्जयं)** पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र **(बंधसहस्से तीदे)** संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होने पर **(तत्थ)** वहाँ **(असंखेज्जाणं समयबद्धाणं)** असंख्यात समयप्रबद्धों की **(उदीरणा)** उदीरणा होती है।

विशेषार्थ - पूर्व में कहे गये अल्पबहुत्व के अनुसार सभी कर्मों का पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्व की असंख्यातगुणित हानिरूप से प्रवृत्ति होती है। इससे पूर्व अपकर्षित द्रव्य को उदयावली में देने के लिए असंख्यात लोक प्रमाण भागहार था। वहाँ समयप्रबद्ध का असंख्यातवां भाग प्रमाण उदीरणा द्रव्य प्राप्त होता था। अब परिणामों की विशुद्धि से उदयावली में देने के लिए पल्योपम का असंख्यातवां भागप्रमाण भागहार होने से असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण उदीरणा द्रव्य प्राप्त होता है।

इति स्थितिसत्त्वापसरणरूप क्रमकरणाधिकारः ।।५ ।।

मध्यवर्ती आठ कषायों की संक्रमणविधि कहते हैं -

ठिदिबंधसहस्सगदे अट्ठकसायाण होदि संकमगो।
ठिदिखंडपुधत्तेण य, तट्ठिदिसंतं तु आवलियविद्धं[2] ।। ४३० ।।

स्थितिबन्धसहस्रगतेऽष्टकषायाणां भवति सङ्क्रमकः।
स्थितिखण्डपृथक्त्वेन च तत्स्थितिसत्त्वं त्वावलिकविद्धम्।।४३० ।।

अन्वयार्थ - उसके पश्चात् **(ठिदिबंधसहस्सगदे)** संख्यातहजार स्थितिबंध जाने पर **(अट्ठकसायाण)** मध्यवर्ती आठ कषायों का **(संकमगो)** संक्रामक **(होदि)** होता है। **(य)** और

---

१) ल. सा. गाथा २३९ के समान/क. पा. सुत्त पृ. ७५१ सू. १९३-१९४
२) ज.ध.पु. १४ पृ. २०१

(ठिदिखंडपुधत्तेण) स्थितिकांडक पृथक्त्व के द्वारा **(तद्विदिसंतं)** उन आठ कषायों का स्थितिसत्त्व **(आवलियविद्धं)** एक आवलि प्रमाण शेष रहता है।

विशेषार्थ - असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा प्रारंभ होने के पश्चात् संख्यात हजार स्थितिकांडक व्यतीत हो जाने पर अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभरूप आठ कषायों के संक्रमण को प्रारंभ करता है। परप्रकृति में संक्रमण के द्वारा क्षपणा का प्रारम्भ होना यही यहाँ संक्रमण का अर्थ ग्रहण करना चाहिए। वैसे गुणसंक्रमण आठवें गुणस्थान के प्रथम समय से लेकर चल रहा है।।

ये आठ कषाय अति अप्रशस्त हैं। इसीलिए उनकी क्षपणा का प्रारंभ पहले होता है। कांडकरूप से संक्रमण करके इनका नाश करता है। कांडकरूप से ग्रहण किये गये निषेकों से कुछ द्रव्य प्रथम समय में, कुछ द्वितीय समय में, कुछ तृतीय समय में इस प्रकार प्रत्येक समय में एक-एक फाली का संक्रमण होता है। अन्तर्मुहूर्त के जितने समय हैं उतनी फालियों के द्वारा प्रथम कांडक का संक्रमण होता है। इस प्रकार दूसरे, तीसरे आदि स्थितिकाण्डकों का संक्रमण होता है। इस क्रम से संख्यात हजार कांडकों के द्वारा आठ कषायों के द्रव्य का परप्रकृति में संक्रमण होता है। इस प्रकार ये प्रकृतियाँ परमुख से नष्ट होती हैं।

अन्य प्रकृतिरूप होकर उन प्रकृतियों का नाश होने को परमुखनाश कहते हैं। इस प्रकार मोहराजा की सेना के नायक स्वरूप आठ कषायों के अंतिम कांडक की अंतिम फालि का नाश होने पर अवशिष्ट स्थितिसत्त्व काल की अपेक्षा से आवली मात्र शेष रहता है और निषेकों की अपेक्षा से एक समय कम एक आवलि प्रमाण रहता है, क्योंकि अंतिम कांडकघात के समय में प्रथम निषेक का स्वमुख उदयरूप जो संज्वलन कषाय है उसमें संक्रमण होकर उदय होता है।

शंका - एक समय कम आवली प्रमाण स्थिति अंतिम फाली के साथ निर्जीण क्यों नहीं होती है?

समाधान - नही, क्योंकि उदयावली में प्रविष्ट हुए कर्म का कांडकघात संभव नहीं है। इसलिए प्रत्येक समय में एक-एक निषेक स्तिबुक संक्रमण के द्वारा संज्वलन कषायरूप से संक्रमित होकर नाश को प्राप्त होता है।

विशेष ज्ञातव्य बातें -

१) अप्रत्याख्यानावरण - प्रत्याख्यानावरण कषायों का अपूर्वकरण के प्रथमसमय से लेकर अंतिम स्थितिकांडक के द्विचरम फालि तक गुणसंक्रमण होता है।[1]

२) अन्तिम फालि का सर्वसंक्रमण होता है क्योंकि वह अन्य प्रकृति में संक्रमित होकर नष्ट होती है।

---

१) ज. ध. पु. १६ पृ. ४१३

३) संक्रमण काण्डक पृथक्त्वप्रमाण हैं। कांडकद्रव्य को गुणसंक्रमण भागहार का भाग देकर जो एक भाग प्राप्त होता है उतना द्रव्य प्रत्येक समय में संक्रमित होता है। उसे ही फालि कहते हैं।

४) ये प्रकृतियाँ अनुदयरूप हैं। इसलिए इनका कांडकगत द्रव्य उदयावली में निक्षिप्त नहीं होता है। अपितु उदयावली के बाहर निक्षिप्त होता है।

५) इनकी गुणश्रेणी भी उदयावली के बाहर ही होती है क्योंकि अनुदय प्रकृति की उदयादि गुणश्रेणी असंभव है।

६) इन कषायों के द्रव्य का संक्रमण होने पर इनकी प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग चारों का संज्वलन रूप से संक्रमण होता है।

७) इन कषायों की चरम फालि का परप्रकृतिरूप संक्रमण ही होता है।

८) उदयावली सभी करणों के अयोग्य होने से वहाँ स्थितिनिषेक उदीयमान निषेक के ऊपर तक स्वमुख से ही रहते हैं। उदीयमान अन्तिम निषेक परमुखरूप से उदयरूप होता है।

सोलह प्रकृतियों के संक्रमण का प्रारम्भ

ठिदिबंधपुधत्तगदे सोलसपयडीण होदि संकमगो।
ठिदिखंडपुधत्तेण य, तट्ठिदिसंतं तु आवलिपविट्ठं[1]**।। ४३१ ।।**

स्थितिबन्धपृथक्त्वगते षोडशप्रकृतीनां भवति सङ्क्रमकः।
स्थितिखण्डपृथक्त्वेन च तत्स्थितिसत्त्वं त्वावलिप्रविष्टम्।।४३१।।

अन्वयार्थ - उसके पश्चात् **(ठिदिबंधपुधत्तगदे)** संख्यातहजार स्थितिबंध व्यतीत हो जाने पर **(सोलसपयडीण)** सोलह प्रकृतियों का **(संकमगो)** संक्रामक **(होदि)** हाता है। **(ठिदिखंडपुधत्तेण य)** संख्यात हजार स्थितिकाण्डकों के द्वारा **(तट्ठिदिसंतं तु)** उनका स्थितिसत्त्व **(आवलिपविट्ठं)** आवलि प्रविष्ट रहता है अर्थात् उच्छिष्टावली प्रमाण रहता है।

विशेषार्थ - आठ कषायों की क्षपणा करने पर पुन: स्थितिकांडक पृथक्त्व के द्वारा अन्तर्मुहूर्त काल व्यतीत कर पश्चात् सोलह प्रकृतियों के संक्रमण को प्रारंभ करता है। उन सोलह प्रकृतियों के नाम- दर्शनावरण की तीन निद्रानिद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, नामकर्म की १३ नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यक्एकादश (तिर्यञ्चगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि चार जाति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण) क्षपणा के प्रारंभ से लेकर प्रत्येक समय में इनका द्रव्य पूर्व के समान एक-एक फालि के संक्रमण के द्वारा संक्रमित होता हुआ प्रथमकाण्डकघात होता है। ऐसे पृथक्त्व-

१) ज.ध.पु. १४ पृ. २०१

स्थितिकांडकों के द्वारा संक्रमण पूर्ण होता है। यहाँ सर्वत्र पृथक्त्व शब्द का अर्थ संख्यातहजार जानना चाहिए। वहाँ अंतिमकांडकघात होने पर अवशेष स्थितिसत्त्व काल की अपेक्षा से आवलिप्रमाण और निषेक की अपेक्षा से एक समय कम आवलिप्रमाण शेष रहता है। इस प्रकार उदयावली के बाहर इन प्रकृतियों के सर्व निषेकों का द्रव्य स्वजातीय अन्य प्रकृतियों में संक्रमित होकर क्षय को प्राप्त होता है।[1]

शंका - स्वजातीय किसे कहते है ?

समाधान - अपनी जाति की अन्य प्रकृतियों को स्वजातीय कहते हैं। जैसे मतिज्ञानावरण की स्वजाति श्रुतज्ञानावरणादि अन्य चार ज्ञानावरण की प्रकृतियाँ, स्त्यानगृद्धित्रिक की स्वजातीय दर्शनावरण की अन्य सभी प्रकृतियाँ। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिए।

इस प्रकार यहाँ मोहनीय की आठ प्रकृतियों का नाश होने पर तेरह प्रकृतियों का सत्त्व रहता है क्योंकि श्रेणी चढ़ने के पूर्व में तीन दर्शन मोहनीय और चार अनन्तानुबन्धी ऐसी सात प्रकृतियों का क्षय हुआ है। २८ - (७ + ८) = २८ - १५ = १३ प्रकृतियाँ। दर्शनावरण की तीन प्रकृतियों का नाश होने पर (९ - ३ = ६) छह प्रकृतियों का और नामकर्म की तेरह प्रकृतियों का नाश होने पर (९३ - १३ = ८०) अस्सी प्रकृतियों का सत्त्व रहता है। ज्ञानावरण, वेदनीय, गोत्र और अंतराय कर्म में से किसी भी प्रकृतियों का नाश नहीं होता है।

शंका - सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त ये तीन प्रकृतियाँ प्राय: साथ-साथ होती हैं तो यहाँ सूक्ष्म और साधारण के साथ अपर्याप्त का नाश क्यों नहीं होता है ?

समाधान - समुद्‍घात अवस्था में अपर्याप्त का सद्‍भाव होता है। इसलिए यहाँ उसका नाश नहीं कहा गया है। इससे समुद्धात में अपर्याप्त का उदय होता है ऐसा अर्थ नहीं है उसका वहाँ केवल सत्त्व होता है।

इति अष्टकषायषोडशप्रकृतिक्षपणाधिकार: ।। ६ ।।

देशघाति करण का कथन करते हैं -

ठिदिबंधपुधत्तगदे मणदाणा तेत्तियेवि ओहिदुगं।
लाभं च पुणोवि सुदं अचक्खुभोगं पुणो चक्खु ।। ४३२ ।।
पुणरवि मदिपरिभोग पुणरवि विरियं कमेण अणुभागो।
बंधेण देसघादी पल्लासंखं तु ठिदिबंधो[2] **।। ४३३ ।।**

१) ज.ध.पु. १४ पृ. २०२
२) ल. सा. गाथा २४०-२४१ के समान/ध.पृ.६पृ.३५६-३५७/ ज.ध.पु. १४ पृ.२०२-२०३

स्थितिबन्धपृथक्त्वगते मनोदाने तावत्यप्यवधिद्विकम्।
लाभश्च पुनरपि श्रुतमचक्षुर्भोगं पुनश्चक्षुः ।। ४३२ ।।
पुनरपि मतिपरिभोगं पुनरपि वीर्यं क्रमेणानुभागः।
बन्धेन देशघातिः पल्यासङ्ख्यस्तु स्थितिबन्धः ।। ४३३ ।।

अन्वयार्थ - उसके पश्चात् **(ठिदिबंधपुधत्तगदे)** संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत हो जाने पर **(मणदाणा)** मन:पर्ययज्ञानावरण और दानान्तराय इनका **(अणुभागो बंधेण देसघादी)** अनुभाग बंध की अपेक्षा से देशघाति होता है। **(तेत्तिये वि)** पुन: उतने ही अर्थात् संख्यातहजार स्थितिबंध होने पर **(ओहिदुगं)** अवधिद्विक अर्थात् अवधिज्ञानावरण अर्थात् अवधिदर्शनावरण **(लाभं च)** और लाभान्तराय **(पुणो वि)** पुन: **(सुदं अचक्खुभोगं)** श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगांतराय **(पुणो)** पुनः **(चक्खु)** चक्षुदर्शनावरण **(पुणरवि मदि परिभोगं)** पुन: मतिज्ञानावरण और परिभोगांतराय **(पुणरवि)** पुन: **(विरियं)** वीर्यान्तराय इनका **(कमेण)** क्रम से **(अणुभागो बंधेण देसघादी)** अनुभाग बंध की अपेक्षा से देशघाति होता है अर्थात् देशघाति स्पर्धकों का ही बंध होता है। **(तु)** परन्तु **(ठिदिबंधो)** स्थितिबंध **(पल्लासंखं)** पल्य का असंख्यातवां भाग प्रमाण ही होता है।

विशेषार्थ - मन:पर्ययज्ञानावरणादि बारह प्रकृतियों का पूर्व में सर्वघाति और देशघाति अनुभाग बंध हो रहा था। अब यहाँ से आगे लता दारु रूप देशघाति ही अनुभागबंध होता है उसे देशघातिकरण कहते हैं। चतुर्थादि गुणस्थानों में पाप प्रकृतियों का लता दारुरूप द्विस्थानगत अनुभागबंध होता है। परन्तु दारुरूप स्पर्धकों में अनन्तवां एक भाग स्पर्धक देशघातिरूप हैं और अनन्त बहुभागस्पर्धक सर्वघातिरूप हैं। उन दोनों प्रकार के स्पर्धकों का अनुभाग बंध होता था। अब केवल दारू के देशघाति स्पर्धकों का ही बंध होता है। यह भाव है।

देशघातिकरण का क्रम - १) मन:पर्ययज्ञानावरण, दानान्तराय २) अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण, लाभांतराय ३) श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण, भोगांतराय ४) चक्षुदर्शनावरण ५) मतिज्ञानावरण, उपभोगांतराय ६) वीर्यान्तराय।

सोलह प्रकृतियों का संक्रमण हो जाने पर आगे संख्यातहजार स्थितिबंध व्यतीत हो जाने पर मन:पर्ययज्ञानावरण और दानान्तराय इनका देशघाति अनुभागबंध होता है। उसके पश्चात् प्रत्येक संख्यातहजार स्थितिबंध व्यतीत हो जाने पर क्रम से उपर्युक्त प्रकृतियों का देशघाति अनुभागबंध होता है। पुरुषवेद, संज्वलन कषायों का पूर्व में संयतासंयत गुणस्थान से ही देशघाति अनुभागबंध होता है। इसलिए यहाँ मोहनीय का देशघातिकरण नहीं कहा। यहाँ सभी का स्थितिबंधमात्र यथासंभव पल्य का असंख्यातवां भाग होता है।

इति देशघातिकरणाधिकारः ।। ७ ।।

अब अन्तरकरण का निरूपण करते हैं -

ठिदिखंडसहस्सगदे चदुसंजलणाण णोकसायाणं।
एयट्ठिदिखंडुक्कीरणकाले अंतरं कुणदि[1]।। ४३४।।

स्थितिखण्डसहस्रगते चतुःसञ्ज्वलानानां नोकषायाणां।
एकस्थितिखण्डोत्कीरणकाले अन्तरं करोति।। ४३४।।

अन्वयार्थ - देशघातिकरण के पश्चात् **(ठिदिखंडसहस्सगदे)** संख्यात हजार स्थितिकाण्डक व्यतीत हो जाने पर **(एयट्ठिदिखंडुक्कीरणकाले)** एक स्थितिकांडकोत्कीरणकाल में **(चदुसंजलणाण - णोकसायाणं)** चार संज्वलन और नौ नोकषायों का **(अंतर कुणदि)** अंतर करता है।

विशेषार्थ - परिणामविशेष के द्वारा नीचे और ऊपर के निषेकों को छोड़कर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बीच के निषेकों का अभाव करने को अन्तरकरण कहते हैं।[2] अन्तर, विरह, शून्यभाव, अभाव ये एकार्थवाचक शब्द हैं। चार संज्वलन और नौ नोकषाय इन तेरह प्रकृतियों का ही अंतर करता है। शेष कर्मों का नहीं क्योंकि चारित्रमोहनीय के अन्य भेदों का पूर्व में ही नाश हुआ है और ज्ञानावरणादि शेष कर्मों का अंतरकरण संभव नहीं है।

अन्तरकरण काल के प्रथम समय में पूर्व की अपेक्षा अन्य प्रमाण सहित स्थितिकांडक, अनुभागकांडक, स्थितिबन्ध होता है। एक स्थितिकाण्डकोत्कीरण का जितना काल है उतने काल के द्वारा अन्तरकरण का कार्य पूर्ण करता है।

शंका - स्थितिकाण्डकोत्करणकाल किसे कहते है ?

समाधान - एक स्थितिकाण्डक का घात करने के लिए जितना काल लगता है उतने काल को स्थितिकाण्डकोत्कीरणकाल कहते है। वह अंतर्मुहूर्त प्रमाण है।

प्रथम स्थिति का प्रमाण कहते हैं -

संजलणाणं एक्कं वेदाणेक्कं उदेदि तद्दोण्हं।
सेसाणं पढमट्ठिदि ठवेदि अंतोमुहुत्तमावलियं[3]।। ४३५।।

सञ्ज्वलनानामेकं वेदानामेकमुदेति तद्द्वयोः।
शेषानां प्रथमस्थितिं स्थापयत्यन्तर्मुहूर्तमावलिकाम्।।४३५।।

---

१) क.पा.सुत्त पृ. ७५२ सू. २०६-२०८ / ध.पु. ६ पृ. १५७
२) ज.ध. पु. १२ पृ. २७२ / ज.ध.पु. १४ पृ. २०४ ३) ल.सा. गाथा २४२ के समान

अन्वयार्थ - (संजलणाणं एक्कं) चार संज्वलन कषायों में से एक कषाय का और **(वेदाणेक्कं)** तीन वेदों में से एक वेद का **(उदेदि)** उदय आता है। **(तद्दोण्हं)** उन उदयरूप दोनों प्रकृतियों की **(पढमट्ठिदि अंतोमुहत्तं ठवेदि)** प्रथम स्थिति अंतर्मुहूर्तमात्र स्थापित करता है और **(सेसाणं)** शेष अनुदयरूप प्रकृतियों की **(आवलियं ठवेदि)** प्रथम स्थिति आवलिमात्र स्थापित करता है।

विशेषार्थ - जो पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध के उदयसहित श्रेणी चढ़ता है वह इन दोनों की प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और शेष अनुदयरूप प्रकृतियों की प्रथम स्थिति आवलीप्रमाण स्थापित करता है। वर्तमान समयसंबंधी निषेक से प्रथम स्थितिप्रमाण निषेकों को छोड़कर उसके ऊपर के निषेकों का अंतर करता है। गुणश्रेणीशीर्ष और उसके ऊपर प्रथम स्थिति से संख्यातगुणा निषेक अंतरायाम का प्रमाण हैं।

पुरुषवेद की प्रथमस्थिति नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और छह नोकषायों के क्षपणा काल प्रमाण होकर भी अल्प है। उससे संज्वलन क्रोध की प्रथमस्थिति क्रोध के क्षपणाकाल प्रमाण से विशेष अधिक है।

उदयरूप प्रकृतियों के अंतरायाम की अंतिम स्थिति समान ही होती है क्योंकि द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेकों का सर्वत्र सदृशरूप से अवस्थान होता है। परंतु अन्तरायाम के नीचे की प्रथम स्थिति असमान होती है क्योंकि उदयरूप प्रकृतियों की प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्त है और अनुदय रूप प्रकृतियों की प्रथम स्थिति आवली प्रमाण है।

आगम में भाववेद की अपेक्षा से ही वेद का वर्णन है। कर्मशास्त्र में बन्ध, उदय और सत्त्व की प्ररूपणा भी इसी अपेक्षा से की है। उत्तरकालीन टीकादि ग्रन्थों में ही द्रव्यवेद को स्थान प्राप्त हुआ है। वास्तविक जीवस्थानखंड में मार्गणा, गुणस्थान और जीवसमास का जीव की अवस्थारूप से ही वर्णन है। द्रव्यवेद शरीरसंबंधी अंगोपांग के अन्तर्गत आता है। अंगोपांग पुद्गल - विपाकी नामकर्म के उदय को निमित्त करके प्राप्त होता है। इसलिए द्रव्यवेद की जीवभेदों में गणना नहीं हो सकती है, क्योंकि -

१) तीन वेद का अभाव नवमें गुणस्थान में होता है, परन्तु अंगोपांगनामकर्म का उदय तेरहवें गुणस्थान पर्यन्त और सत्त्व चौदहवें गुणस्थान तक होता है।

२) एकेन्द्रिय जीवों को अंगोपांग नामकर्म नहीं होते हैं परन्तु नपुंसकवेद होता है।

३) आगम में मनुष्य पद से पुरुषवेद और नपुंसकवेद वाले मनुष्यजीव ग्रहण किए हैं और मनुष्यिनी पद से स्त्रीवेद वाले जीव ही ग्रहण किए हैं और वेद नोकषाय जीवविपाकी कर्म है, वेदमार्गणा में पुद्गलविपाकी अंगोपांग का ग्रहण नहीं है, इसलिए यह स्पष्ट होता है कि आगम में सर्वत्र नो आगम भावनिक्षेप से भाववेद ही दिया है, द्रव्यवेद नहीं। क्योंकि जीवों को द्रव्यवेदी कहना उपचार है।

उदय और अनुदय प्रकृतियों की प्रथम स्थिति में विशेषता

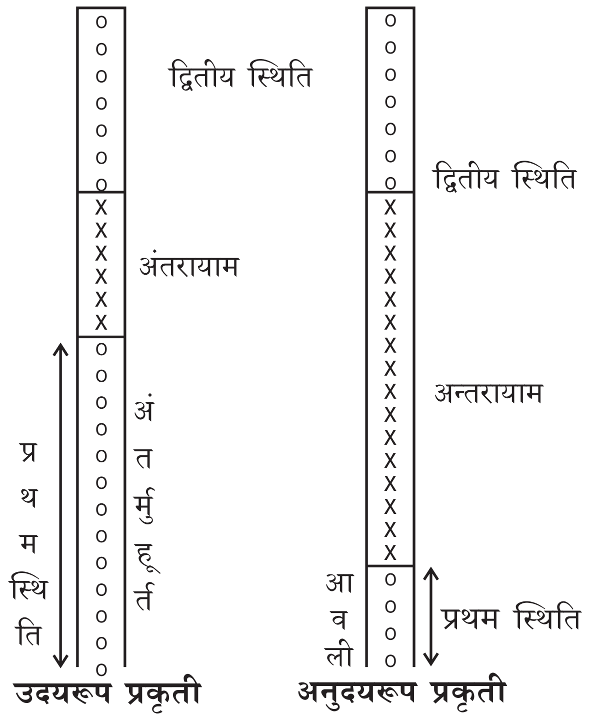

o - यह निषेक की संदृष्टि है। x - यह निषेक के अभाव की संदृष्टि है।

अन्तरायाम के उत्कीर्ण द्रव्य के निक्षेप का विधान कहते हैं -

उक्कीरिदं तु दव्वं सत्ते पढमट्ठिदिम्हि संछुहदि ।
बंधे वि य आबाधमदित्थिय उक्कट्टदे णियमा [1] ।। ४३६ ।।

उत्कीरितं तु द्रव्यं सत्त्वे प्रथमस्थितौ संक्षिपति ।
बन्धेऽपि चाबाधामतिस्थाप्योत्कर्षति नियमात् [2] ।। ४३६ ।।

अन्वयार्थ - (उक्कीरिदं तु दव्वं) अंतरायाम के उत्कीर्ण किए द्रव्य को **(सत्ते पढमट्ठिदिम्हि)** सत्ता की प्रथम स्थिति में **(संछुहदि)** निक्षिप्त करता है। **(य)** और **(बंधे वि)** बंध में भी **(आबाधमदित्थिय)** आबाधा का उल्लंघन करके **(णियमा)** नियम से **(उक्कट्टदे)** उत्कर्षण करके देता है।

१) क.पा.सुत्त पृ. ७५२-७५३ सू. २१०-२१४ / ध.पु. ६ पृ.३५८
२) आगास प्रती की संस्कृत छाया यहाँ अर्थ के अनुसार बदल दी है।

विशेषार्थ - जिस समय में अंतरकरण प्रारम्भ करता है उस समय में पूर्व का स्थितिबंध, स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डक समाप्त होते हैं और असंख्यातगुणित हानिरूप से अन्य स्थितिबन्ध, पल्य का असंख्यातवां भाग प्रमाण अन्य स्थितिकाण्डक और शेष अनुभाग का अनन्त बहुभागरूप अन्य अनुभागकांडक प्रारम्भ होते हैं।

अंतररूप निषेकों के द्रव्य में से अंतरकरणकाल के प्रथम समय में जितना द्रव्य ग्रहण किया वह प्रथम फालि, उससे असंख्यातगुणा द्रव्य दूसरे समय में ग्रहण किया वह दूसरी फालि, इस प्रकार असंख्यातगुणा क्रम से अंतर्मुहूर्त प्रमाण फालियों के द्वारा सर्वद्रव्य अन्य निषेकों में निक्षेपण करता है। अंतररूप निषेकों में निक्षेपण नहीं करता है।

निक्षेपण विधान -

निक्षिप्यमान प्रकृतियाँ चार प्रकार की हैं -

१) उदय और बन्धरूप प्रकृतियाँ (उभय) - पुरुषवेद से श्रेणी चढ़ने की अपेक्षा से पुरुषवेद और कोई भी एक संज्वलन कषाय।

२) बंधरहित और उदयरहित प्रकृतियाँ (अनुभय) - ६ नोकषाय और पुरुषवेद से श्रेणी चढ़ने की अपेक्षा से स्त्रीवेद और नपुंसकवेद, स्त्रीवेद से श्रेणी चढने की अपेक्षा से नपुंसकवेद और नपुंसकवेद से श्रेणी चढ़ने की अपेक्षा से स्त्रीवेद।

३) अबंधरूप उदयप्रकृति (केवल उदयरूप) - स्त्रीवेद से चढ़ने वाले को स्त्रीवेद और नपुंसकवेद से चढ़नेवाले को नपुंसक वेद।

४) बंधसहित अनुदयप्रकृतियाँ (केवल बंधरूप) - स्त्री और नपुंसकवेद से श्रेणी चढ़नेवाले को पुरुषवेद और सर्वत्र जिस कषाय से श्रेणी चढ़ा है उसके बिना तीन संज्वलन कषाय।

उत्कीरण तीन प्रकार से होता है - १) उत्कर्षणरूप २) अपकर्षणरूप और ३) परप्रकृतिसंक्रमणरूप

अन्तरसंबंधी प्रदेश पुंज का निक्षेप - १) प्रथमस्थिति में २) द्वितीय स्थिति में ३) प्रथम-द्वितीय स्थिति में करता है।

१) बंधरूप और उदयरुप (उभय) प्रकृतियों के द्रव्य का निक्षेप - अन्तर करने वाला क्षपकजीव जिन कर्मों को बाँधता है और वेदन करता है उन कर्मों की अन्तरस्थिति के उत्कीर्ण होने वाले प्रदेशपुंज को अपनी प्रथम स्थिति में निक्षिप्त करता है और आबाधा छोड़कर द्वितीयस्थिति में निक्षिप्त करता है परन्तु अन्तरसंबंधी स्थितियों में नहीं देता है क्योंकि उनके कर्मपुंज से वे स्थितियाँ रिक्त होनेवाली हैं। इसलिए वहाँ निक्षेप होने का विरोध है।

जब तक अंतरसंबंधी द्विचरम फालि है तब तक स्वस्थान में भी अपकर्षण संबंधी अतिस्थापना

को छोड़कर अंतरस्थिति में देता है ऐसा कितने ही आचार्यों का मत है, परन्तु सूत्र में स्पष्टरूप से उसका निषेध किया है।

२) अबंध और अनुदयरूप (अनुभय) प्रकृतियोंका निक्षेप - जो कर्म बाँधे नहीं जाते और भोगे नहीं जाते ऐसी कर्मप्रकृतियों का उत्कीर्ण द्रव्य अपनी स्थिति में नहीं देता है, परन्तु बाँधी जाने वाली प्रकृतियों की द्वितीय स्थिति में बंध के प्रथम निषेक से उत्कर्षण करके देता है। वैसे ही उदयरूप प्रकृतियों की प्रथमस्थिति में अपकर्षण करके और समान स्थिति में संक्रमण करके देता है।

३) अबंधरूप उदय प्रकृतियों का निक्षेप - जो कर्म बाँधे नहीं जाते, परन्तु भोगे जाते हैं। (स्त्रीवेद, नपुंसकवेद) उनकी अंतरसंबंधी स्थितियों के प्रदेशपुंज को अपकर्षण के द्वारा अपनी प्रथमस्थिति में देता है और उदयसहित संज्वलन कषाय की प्रथमस्थिति में संक्रमण के द्वारा निक्षिप्त करता है। वैसे ही बाँधी जाने वाली प्रकृतियों की द्वितीयस्थिति में आबाधा छोड़कर उत्कर्षण संक्रमण के द्वारा निक्षिप्त करता है अपनी द्वितीय स्थिति में नहीं देता है क्योंकि जिसका बंध नहीं है उसमें उत्कर्षण नहीं होता है।

४) उदयरहित बंधप्रकृतियों का निक्षेप - जो कर्म केवल बंध को प्राप्त होते हैं, भोगे नहीं जाते (पुरुषवेद, तीन संज्वलन) उनके अंतरसंबंधी उत्कीर्ण प्रदेशपुंज को अपनी द्वितीय स्थिति में (नवीन समयप्रबद्ध में आबाधा छोड़कर) उत्कर्षण के द्वारा देता है। वैसे ही उदयसहित प्रकृतियों की प्रथम स्थिति में अपकर्षण संक्रमण के द्वारा निक्षिप्त करता है। अपनी प्रथम स्थिति में नहीं देता है क्योंकि जिसका उदय नहीं उसकी प्रथम स्थिति आवली प्रमाण है और उदयरहित प्रकृतियों का द्रव्य उदयावली में नहीं दिया जाता है।

विशेष यह जानना चाहिए कि बाँधे जाने वाले समयप्रबद्ध की आबाधा अंतरायाम से संख्यातगुणी है। उसे छोड़कर द्वितीयस्थिति में जो जघन्य निषेक है वहाँ से बाँधी जाने वाली स्थिति के सर्व निषेकों मे उत्कर्षण करके देता है। इस प्रकार अंतररूप निषेकों का द्रव्य पूर्वोक्त प्रकार से अपकर्षण करके प्रथम स्थिति में और उत्कर्षण करके आबाधा छोड़कर बंधरूप स्थिति में देता है। इस क्रम से अंतर्मुहूर्त प्रमाण फालियों के द्वारा असंख्यातगुणित श्रेणीरूप से द्रव्य का निक्षेपण होता हुआ अंतिम फालि का उत्कीर्ण होने पर अंतरायामप्रमाण स्थिति पूर्ण खाली होती है अर्थात् उस कर्म के निषेकों से रहित होती है। उस कर्म का अंतरायाम का सर्व द्रव्य प्रथम और द्वितीय स्थिति में स्थित होता है।

इस अंतरकरण काल में हजारो अनुभागकांडक होते हैं। स्थितिकांडक, स्थितिबंध और अंतरकरण इन तीनों का काल समान होनेसे तीनों एक साथ समाप्त होते हैं।

अंतरायाम से उत्कीर्ण द्रव्य देने का विधान

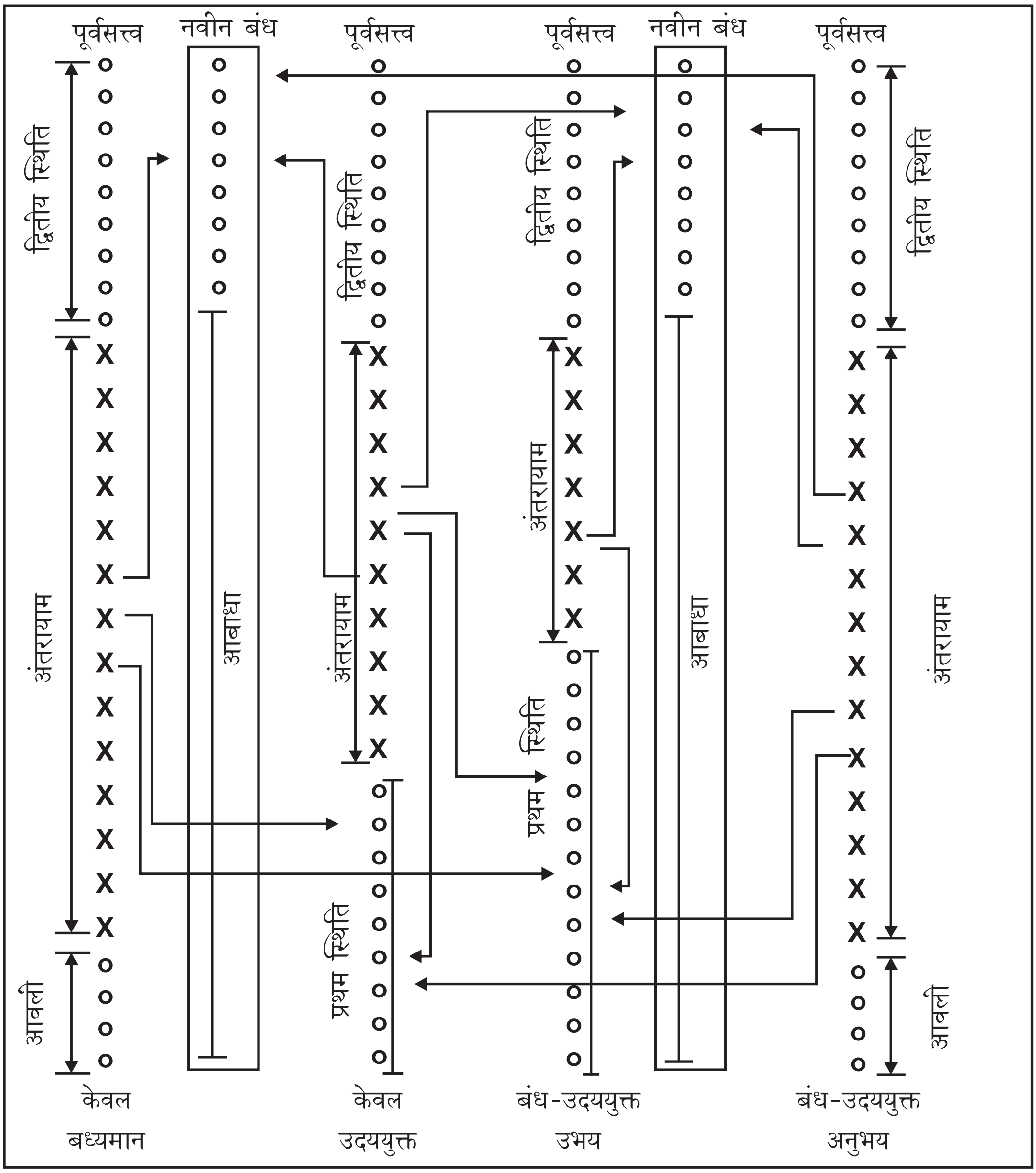

इति अन्तरकरणाधिकारः समाप्त ।।८।।

अन्तरकरण के बाद होने वाले सात करण कहते हैं -

सत्तकरणाणि यंतरकदपढमे ताणि मोहणीयस्स।
इगिठाणियबंधुदओ, तस्सेव य संखवस्सठिदिबंधो ।। ४३७ ।।
तस्साणुपुव्विसंकम, लोहस्स असंकमं च संढस्स।
आजुत्तकरणसंकम, छावलितीदेसुदीरणदा[1] ।। ४३८ ।।

सप्तकरणानि चान्तरकृत प्रथमे तानि मोहनीयस्य।
एकस्थनिकबन्धोदयौ तस्यैव च सङ्ख्यवर्षस्थितिबन्धः ।। ४३७ ।।
तस्यानुपूर्विसङ्क्रमो लोभस्यासङ्क्रमश्च षण्ढस्य।
आयुक्तकरणसंक्रमः षडावल्यतीतेषुदीरणता ।। ४३८ ।।

अन्वयार्थ - (यंतरकदपढमे) अंतरकरण होने पर प्रथम समय में **(मोहणीयस्स)** मोहनीय के **(सत्तकरणाणि)** सात करण होते हैं। **(इगिठाणियबंधुदओ)** एक स्थानीय बंध, एक स्थानीय उदय, **(संखवस्सठिदिबंधो)** मोहनीय कर्म का संख्यात वर्ष स्थितिबंध **(आणुपुव्विसंकमणं)** मोहनीय का आनुपूर्वी संक्रमण **(च)** और **(लोहस्स असंकमं)** संज्वलन लोभ का असंक्रमण **(संढस्स आजुत्तकरण-संकम)** नपुंसकवेद का आयुक्तकरण संक्रमण **(च)** और **(छावलितीदेसुदीरणदा)** छह आवली व्यतीत होने पर मोहनीय की उदीरणा।[2]

विशेषार्थ - अन्तरकरणक्रिया समाप्त होने पर अनंतर के समय में एक ही समय में सात करण शुरू होते हैं -

१) मोहनीय का एक स्थानीय (लतारूप) अनुभाग बंध प्रारम्भ होता है। इसके पूर्व में देशघाति द्विस्थानीय (लतादारुरूप) अनुभाग बंध होता था। वह अब परिणामों के माहात्म्य से कम होकर एक स्थानीय (केवल लतारूप) होता है।

२) मोहनीय कर्म के अनुभाग का उदय पूर्व में द्विस्थानीय देशघातिरूप होता था अब वह एक स्थानीय (लतारूप) परिणत हुआ।

३) मोहनीय का स्थितिबंध पूर्व में असंख्यात वर्ष प्रमाण होता था अब वह कम होकर संख्यात हजार वर्ष प्रमाण होता है।

४) मोहनीय का आनुपूर्वी संक्रमण होता है। इसका स्पष्टीकरण आगे दो गाथाओं में है।

५) पूर्व में आनुपूर्वी संक्रमण का अभाव होने से लोभ का पुरुषवेद और शेष संज्वलन कषायों में

१) ल.सा. गाथा २४९-२५० के समान   २) ज.ध.पु. १४ पृ. २०७

संक्रमण होता था। अब प्रतिलोम संक्रमण का अभाव होने से संज्वलन लोभ का संक्रमण नहीं होता है।

६) अंतरकरण के पश्चात् नपुंसक वेद की क्षपणा का प्रारम्भ करता है।

७) पूर्व में कर्मबंध होने के पश्चात् एक आवली व्यतीत होने पर ही उदीरणा होती थी। अब बंधसमय से लेकर छह आवली पूर्ण होने पर ही उदीरणा होने की योग्यता है।

आनुपूर्वी संक्रमण का निर्देश करते हैं -

संछुहदि पुरिसवेदे इत्थीवेदं णउंसयं चेव।
सत्तेव णोकसाए णियमा कोहम्मि संछुहदि[1] ।।४३९।।
कोहं च छुहदि माणे माणं मायाए णियमसा छुहदि।
मायं च छुहदि लोहे पडिलोमो संकमो णत्थि[2] ।।४४०।।

सङ्क्रामति पुरुषवेदे स्त्रीवेदं नपुंसकं चैव।
सप्तैव नोकषायान् नियमात् क्रोधे सङ्क्रामति ।।४३९।।
क्रोधश्च क्रामति माने मानो मायायां नियमेन सङ्क्रामति।
माया च क्रामति लोभे, प्रतिलोमः सङ्क्रमो नास्ति।।४४०।।

अन्वयार्थ - (इत्थीवेदं चेव णउंसयं) स्त्रीवेद और नपुंसकवेद को **(पुरिसवेदे)** पुरुषवेद में **(संछुहदि)** संक्रमित करता है। **(सत्तेव णोकसाए)** सात नो कषायों को **(णियमा)** नियम से **(कोहम्हि)** संज्वलन क्रोध में **(संछुहदि)** संक्रमित करता है **(च)** और **(कोहं)** संज्वलन क्रोध को **(माणे)** संज्वलन मान में **(छुहदि)** संक्रमित करता है **(माणं)** संज्वलन मान को **(णियमसा)** नियम से **(मायाए)** संज्वलन माया में **(छुहदि)** संक्रमित करता है **(च)** और **(मायं)** संज्वलन माया को **(ल्लोहे)** संज्वलन लोभ में **(छुहदि)** संक्रमित करता है। **(पडिलोमो संकमो)** यहाँ प्रतिलोम (अन्य प्रकारसे) संक्रमण **(णत्थि)** नहीं है।

विशेषार्थ - अन्तरकरण होने के पश्चात् जो आनुपूर्वी संक्रमण प्रारंभ होता है उस आनुपूर्वी संक्रमण का यह क्रम दिखाया है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का द्रव्य पुरुषवेद में, पुरुषवेद और हास्यादि छह नोकषायों का द्रव्य संज्वलन क्रोध में, क्रोध का मान में, मान का माया में और माया का द्रव्य लोभ में संक्रमित होता है। इसी क्रम से संक्रमण होता है। प्रतिलोम अर्थात् पश्चातानुपूर्वी से संक्रमण नहीं होता है, ऐसा जानना चाहिए।

---

१) ज.ध.पु.१४ पृ.२५०/क.पा.सुत्त पृ.७६५ गा.१३८ के समान २)क.पा.सुत्त पृ.७६५ गा.१३९ के समान।

संक्रमणद्वारा नपुंसकवेद की क्षपणा कहते हैं -

ठिदिबंधसहस्सगदे, संढो संकामिदो हवे पुरिसे।
पडिसमयमसंखगुणं, संकामगचरिमसमओत्ति[1] ।। ४४१ ।।

स्थितिबन्धसहस्रगते षण्ढः सङ्क्रामितो भवेत् पुरुषे।
प्रतिसमयमसङ्ख्यगुणं सङ्क्रामकचरमसमय इति।।४४१।।

अन्वयार्थ - (ठिदिबंधसहस्सगदे) हजारो स्थितिबंध व्यतीत होने पर **(संढो)** नपुंसक वेद **(पुरिसे)** पुरुषवेद में **(संकमिदो हवे)** संक्रमित होता है। **(संकामगचरिमसमओत्ति)** संक्रामक के अंतिम समय पर्यन्त **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(असंखगुणं)** असंख्यात गुणित द्रव्य का संक्रमण होता है।

विशेषार्थ - अन्तरकरण के अनन्तर समय से संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होने पर नपुंसक वेद का पुरुषवेद में संक्रमण पूर्ण होता है।नपुंसकवेद की क्षपणा के प्रथम समय से प्रत्येक समय में असंख्यातगुणित क्रम से संक्रमणकाल के अंतिम समय पर्यन्त नपुंसकवेद के द्रव्य का पुरुषवेद में संक्रमण होता है। प्रत्येक समय में जितना द्रव्य संक्रमित होता है उसे फालि कहते हैं। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण फालियों के समूह को कांडक कहते है। इस प्रकार गुणसंक्रमणकांडक क्रम से संख्यातहजार होने पर अंतिम समय में अंतिम कांडक की अंतिम फालि को सर्व संक्रमण द्वारा संक्रमित करता है।इस प्रकार नपुंसक वेद को पुरुषवेदरूप से परिणमाकर उसका नाश करता है। ऐसा ही कथन स्त्रीवेद की क्षपणा में भी ग्रहण करना चाहिए।

संक्रमणद्रव्य का माहात्म्य कहते हैं -

बंधेण होदि उदओ, अहिओ उदएण संकमो अहिओ।
गुणसेढि असंखेज्जा पदेसग्गेण बोधव्वा[2] ।। ४४२ ।।

बन्धेन भवत्युदयोऽधिक उदयेन सङ्क्रमोऽधिको।
गुणश्रेणिरसङ्ख्येया प्रदेशाग्रेण बोद्धव्या।।४४२।।

अन्वयार्थ - (बंधेण) बंध की अपेक्षा **(उदओ)** उदय **(अहिओ)** अधिक **(होदि)** है। **(उदएण)** उदय से **(संकमो)** संक्रमण **(अहिओ)** अधिक है। **(पदेसग्गेण)** प्रदेशाग्र की अपेक्षा से

१) ज.ध.पु. १४ पृ. २०८ ध.पु. ६ पृ. ३५९ २) ज.ध.पु १४ पृ. २६४/क.पा. सुत्त पृ.७६९ गा. १४४

(गुणसेढि) गुणश्रेणी **(असंखेज्जा)** असंख्यातगुणी **(बोधव्वा)** जानना चाहिए।

विशेषार्थ - 'प्रदेश' शब्द से परमाणुरूप द्रव्य ग्रहण करना चाहिए। यहाँ जो समयप्रबद्ध बांधता है। (संदृष्टि से स a) उसमें सात का भाग देने पर मोहनीय का द्रव्य प्राप्त होता है। [स a / ७] कषाय और नोकषायरूप द्रव्य का विभाग करने के लिए दो का भाग देने पर पुरुषवेद का बंध द्रव्य प्राप्त होता है। [स a / ७।२] पुरुषवेद का सर्व सत्त्वद्रव्य इतना [स a १२-।२ / ७।१०।४८] (मोहनीय का सत्त्वद्रव्य इतना है [स a १२- / ७] उसको कषाय और नोकषायों में विभक्त करने के लिए २ से भाग दिया। पुन: नोकषाय का द्रव्य ५ नोकषायों में विभक्त करने के लिए ५ से भाग दिया। इस प्रकार मोहनीय के द्रव्य को १० से भाग देने पर वेद का सत्त्व द्रव्य आता है। वेद द्रव्य को ३ वेदों में विभाग करके देने के लिए ४८ से भाग दिया। बहुभाग ४२ प्रमाण नपुंसकवेद को, ४ प्रमाण स्त्रीवेद को, २ प्रमाण पुरुषवेद को प्राप्त होता है। इसलिए पुरुषवेद का उपर्युक्त सत्त्वद्रव्य जानना चाहिए।) इस सत्त्व द्रव्य को अपकर्षण भागहार, पल्य का असंख्यातवां भाग और ८५ का भाग देने पर गुणश्रेणी का प्रथम निषेक आता है। [स a १२-।२ / ७।१०।४८।ओ।प।८५] इसमें पूर्वसत्त्व निषेक अधिक किया जाने पर पुरुषवेद का उदय द्रव्य आता है। [स a १२-।२ / ७।१०।४८।ओ।प।८५] यह द्रव्य बन्ध द्रव्य से अंसख्यात गुणा है। नपुंसकवेद के सत्त्वद्रव्य में [स a १२-।४२ / ७।१०।४८] गुणसंक्रमण भागहार से भाग देने पर जो लब्ध आता है। इतना द्रव्य पुरुषवेद में संक्रमित होता है। यह द्रव्य [स a १२-।४२ / ७।१०।४८।गु] उदय द्रव्य से असंख्यातगुणा आता है।

पुरुषवेद बंधद्रव्य	पुरुषवेद उदयद्रव्य	नपुंसकवेद संक्रमण द्रव्य
स a / ७।२	स a १२-।२ / ७।१०।४८।ओ।प।८५	स a १२-।४२ / ७।१०।४८।गु

एक ही काल में होने वाले बन्ध, उदय और संक्रमण के अल्पबहुत्व के कथन से गुणसंक्रमणरूप द्रव्य का प्रमाण जाना जाता है।

जिन प्रकृतियों का अध:प्रवृत्त संक्रमण होता है उनका भी अध:प्रवृत्त संक्रमण द्रव्य असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण होकर उदय द्रव्य से असंख्यात गुणा है।

शंका - उत्कर्षण अपकर्षण भागहार से अध:प्रवृत्त संक्रमण भागहार असंख्यातगुणा है इसलिए अध:प्रकृत संक्रमण द्रव्य उदय द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा नहीं हो सकता है ?

समाधान - अपकर्षित किया गया सर्व द्रव्य गुणश्रेणी में दिया नहीं जाता है क्योंकि उसका

असंख्यातवा भाग ही द्रव्य गुणश्रेणी में दिया जाता है। इसलिए उदय द्रव्य से संक्रमण द्रव्य असंख्यात गुणा है।[१]

उदय और संक्रमण की निरन्तर गुणश्रेणी कहते हैं -

गुणसेढि असंखेज्जा पदेस-अग्गेण संकमो उदओ।
से काले से काले भज्जो बंधो पदेसग्गो[२] ।। ४४३ ।।

गुणश्रेण्यसङ्ख्येया प्रदेशाग्रेण सङ्क्रम उदयः।
स्वे काले स्वे काले भज्यो बन्धः प्रदेशाग्रः ।। ४४३ ।।

अन्वयार्थ - (पदेसअग्गेण) प्रदेशपुंज की अपेक्षा से **(संकमो)** संक्रमण और **(उदओ)** उदय **(से काले से काले)** अनन्तर-अनन्तर के समय में **(असंखेज्जा गुणसेढि)** असंख्यातगुणित श्रेणीरूप से है। **(पदेसग्गो)** प्रदेशपुंज का आश्रय करके **(बंधो)** बंध **(भज्जो)** भजनीय है।

विशेषार्थ - नपुंसकवेद के क्षपणा काल के प्रथम समय में नपुंसकवेद के जितने प्रदेशों का पुरुषवेद में संक्रमण होता है। उससे दूसरे समय में असंख्यातगुणे प्रदेशों का संक्रमण होता है। इस क्रम से उत्तरोत्तर समयों में असंख्यातगुणित क्रम से प्रदेशों का संक्रमण होता है।

इसी प्रकार प्रदेशोदय जानना चाहिए। प्रथम समय में पुरुषवेद के जितने प्रदेशों का उदय होता है उससे दूसरे समय में असंख्यातगुणा, उससे तीसरे समय में असंख्यातगुणा इस प्रकार अंतिम समय तक जानना चाहिए।

पुरुषवेद के बंधकाल में प्रदेशबन्ध भजनीय है क्योंकि प्रदेशबन्ध कदाचित् चार प्रकार की वृद्धि से बढ़ सकता है, कदाचित् चार प्रकार की हानि से कम हो सकता है और कदाचित् तदवस्थ भी रह सकता है क्योंकि योग की वृद्धि, हानि अथवा अवस्था से प्रदेशबन्ध में सभी प्रकार संभव है। प्रदेशबन्ध योगानुसार कम अधिक होता है। जीवप्रदेश असंख्यात हैं और योगस्थान भी असंख्यात हैं इसलिए योग में अनन्तभाग और अनन्तगुणी वृद्धि और हानि संभव नहीं है। इस कारण से योग में षट्स्थान पतित हानि वृद्धि के स्थान में चतु:स्थान पतित हानि और वृद्धि कही गयी है।[३]

४ प्रकार की वृद्धि - असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणवृद्धि। ४ प्रकार की हानि - असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि, असंख्यातगुणहानि। योग की हानि और वृद्धि चार प्रकार से संभव है इसलिए प्रदेशबंध की भी चार

१) ज.ध.पु. १४ पृ. २६४ २) ज.ध.पु.१४ पृ.२७२/क.पा.सुत्त पृ.७७२ गा.१४९ के समान
३) ज.ध. पु. १४ पृ.२७२

प्रकार ही हानि वृद्धि होती है।

यहाँ गुणसंक्रमण की विवक्षा से संक्रमण असंख्यातगुणा कहा गया है। परन्तु अध:प्रवृत्त संक्रमण की अपेक्षा से असंख्यातगुणा नहीं है। विशेष अधिक अथवा विशेषहीन संक्रमण होता है, क्योंकि इस विषय में अन्य प्रकार संभव नहीं है।

स्त्रीवेद के संक्रमण में होने वाले कार्यों का निर्देश करते हैं -

इदि संढं संकामिय से काले इत्थिवेदसंकमगो।
अण्णं ठिदिरसखंडं अण्णं ठिदिबंधमारभई [1] ।। ४४४ ।।

इति षण्ढं सङ्क्राम्य स्वे काले स्त्रीवेदसङ्क्रमकः।
अन्यं स्थितिरसखण्डं अन्यं स्थितिबन्धमारभते ।। ४४४ ।।

अन्वयार्थ - (इदि) इस प्रकार **(संढं संकामिय)** नपुंसकवेद का संक्रमण करके **(से काले)** तदनन्तर काल में **(इत्थिवेदसंकमगो)** स्त्रीवेद का संक्रामक होता है। वहाँ **(अण्णं ठिदिरसखंडं)** पूर्व की अपेक्षा अन्य स्थितिकांडक, अन्य अनुभागकांडक और **(अण्णं ठिदिबंधं)** अन्य स्थितिबंध **(आरभई)** प्रारंभ करता है।

विशेषार्थ - नपुंसकवेद के पश्चात् स्त्रीवेद की क्षपणा प्रारंभ करता है क्योंकि पुरुषवेद की अपेक्षा स्त्रीवेद अप्रशस्त है। स्त्रीवेद का द्रव्य पुरुषवेद में संक्रमण करके नष्ट करता है। पूर्व का स्थितिकांडक, अनुभागकांडक और स्थितिबंध अनन्तर पूर्व समय में एक साथ ही समाप्त होते हैं। स्त्रीवेद की क्षपणाकाल के प्रथम समय में पूर्व की अपेक्षा अन्य प्रमाणयुक्त स्थितिकांडक, अनुभागकांडक और स्थितिबंध प्रारंभ होते हैं।

थी अद्धा संखेज्जाभागेपगदे तिघादिठिदिबंधो।
वस्साणं संखेज्जं थीसंकंतापगद्धंते ।। ४४५ ।।

स्त्रीअध्दा संख्येयभागेऽपगते त्रिघातिस्थितिबन्धः।
वर्षाणां सङ्ख्येयं स्त्रीसङ्क्रमापगताद्धान्ते ।। ४४५ ।।

अन्वयार्थ - (थी अद्धा) स्त्रीवेद का क्षपणाकाल **(संखेज्जाभागेपगदे)** संख्यातवाँ भाग व्यतीत होने पर **(तिघादिठिदिबंधो)** तीन घातिया कर्मों का स्थितिबंध **(संखेज्जं वस्साणं)** संख्यातवर्ष प्रमाण

१) क.पा. सुत्त पृ. ७५३-७५४ सूत्र २१७-२२३/ज.ध.पु.१४ पृ २०८-२१०

होता है। उसके पश्चात् **(थीसंकंतापगद्धंते)** स्त्रीवेद के संक्रमण का बहुभाग व्यतीत होने पर अंत में -

विशेषार्थ - स्त्रीवेद की क्षपणाकाल का संख्यातवाँ भाग व्यतीत होने पर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इन तीन घातिया कर्मों का स्थितिबंध संख्यातहजार वर्ष प्रमाण होता है। पूर्व में तो असंख्यातवर्ष प्रमाण होता था। उसके पश्चात् संख्यातहजार स्थितिकांडको के द्वारा स्त्रीवेद की क्षपणा का शेष संख्यात बहुभाग व्यतीत होने पर स्त्रीवेद के अंतिम स्थितिकांडक को ग्रहण करता है। उसी समय शेष कर्मों के स्थितिसत्त्व का असंख्यात बहुभाग स्थितिकांडक में ग्रहण करता है। वहाँ अंतिम स्थितिकाण्डक के पूर्ण होने पर स्त्रीवेद का संक्रमण पूर्ण होता है। द्वितीय स्थिति में स्थित पल्य के असंख्यातवें भागमात्र आयाम को धारण करने वाला अंतिम स्थितिकांडक की अंतिम फालि का पुरुषवेद में संक्रमण करके स्त्रीवेद की सत्ता समाप्त करता है।

सात नोकषायों के संक्रमणकाल का निर्देश करते हैं -

ताहे संखसहस्सं वस्साणं मोहणीयठिदिसंतं।
से काले संकमगो सत्तण्हं णोकसायाणं [१]।। ४४६ ।।

तस्मिन् सङ्ख्यसहस्रं वर्षाणां मोहनीयस्थितिसत्त्वम्।
स्वे काले सङ्क्रामकः सप्तानां नोकषायानाम्।।४४६।।

अन्वयार्थ - (ताहे) उस स्त्रीवेद के क्षपणाकाल के अंतिम समय में **(मोहणीयठिदिसंतं)** मोहनीय का स्थितिसत्त्व **(संखसहस्सं वस्साणं)** संख्यात हजार वर्षप्रमाण है। **(से काले)** उसके अनन्तर समय में **(सत्तण्हं णोकसायाणं)** सात नोकषायों का **(संकमगो)** संक्रामक होता है।

विशेषार्थ - स्त्रीवेद की क्षपणा के अंतिम समय में मोहनीय कर्म का स्थितिसत्त्व संख्यातहजार वर्षप्रमाण ही शेष रहता है। परन्तु शेष कर्मों का स्थितिसत्त्व अभी भी पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग प्रमाण ही है। स्त्रीवेद की क्षपणा के अनन्तर समय में हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और पुरुषवेद इन सात नोकषायों की क्षपणा का प्रारंभ करता है।

ताहे मोहो थोवो, संखेज्जगुणं तिघादिठिदिबंधो।
तत्तो असंखगुणियो णामदुगं साहियं तु वेयणियं।। ४४७।।

---

१) क.पा. सुत्त पृ. ७५४ सूत्र २२४ - २३२ /ज. ध. पु.१४ पृ. २११/ध.पू. ६ पृ. ३६१

तत्र मोहः स्तोकः संख्येयगुणं त्रिघातिस्थितिबन्धः।
ततोऽसङ्ख्यातगुणितो नामद्विकं साधिकं तु वेदनीयम्।। ४४७।।

अन्वयार्थ - (ताहे) उन सात नोकषायों के संक्रमण के प्रथम समय में **(मोहो थोवो)** मोहनीय का स्थितिबंध सबसे कम है। उससे **(तिघादिठिदिबंधो)** तीन घातिया कर्मों का स्थितिबंध संख्यातगुणा है। **(तत्तो)** उससे **(णामदुगं)** नाम और गोत्र कर्म का **(असंखगुणियो)** असंख्यातगुणा है **(तु)** परन्तु उससे **(वेयणियं)** वेदनीय का **(साहियं)** कुछ अधिक अर्थात् डेढ़गुणा है।

ताहे असंखगुणियं मोहादु तिघादिपयडिठिदिसंतं।
तत्तो असंखगुणियं णामदुगं साहियं तु वेयणियं।। ४४८।।

तत्रासङ्ख्यगुणितं मोहात् त्रिघातिप्रकृतिसत्त्वम्।
ततोऽसङ्ख्यगुणितं नामद्विकं साधिक तु वेदनीयम्।। ४४८।।

अन्वयार्थ - (ताहे) वहाँ सात नोकषायों के क्षपणाकाल के प्रथम समय में **(मोहादु)** मोहनीय से **(तिघादिपयडिठिदिसंतं)** तीन घातिया कर्मों का स्थितिसत्त्व **(असंखगुणियं)** असंख्यातगुणा है। **(तत्तो)** उससे **(णामदुगं)** नाम और गोत्र का **(असंखगुणियं)** असंख्यातगुणा है, **(तु)** परन्तु **(वेयणियं)** वेदनीय का स्थितिसत्त्व **(साहियं)** विशेष अधिक है।

विशेषार्थ - मोहनीय कर्म का स्थितिसत्त्व संख्यातवर्ष प्रमाण हो जाने पर भी जब तक तीन घातिया कर्मों का स्थितिसत्त्व संख्यातवर्ष प्रमाण नहीं हो जाता तब तक पूर्वोक्त क्रम से ही स्थितिसत्त्व का अल्पबहुत्व जानना चाहिए।[१]

सत्तण्हं पढमठिदिखंडे पुण्णे दु मोहठिदिसंतं।
संखेज्जगुणविहीणं सेसाणमसंखगुणहीणं[२]।। ४४९।।

सप्तानां प्रथमस्थितिखण्डे पूर्णेतु भोहस्थितिसत्त्वम्।
सङ्ख्येयगुणविहीनं शेषाणामसङ्ख्यगुणहीनम्।। ४४९।।

अन्वयार्थ - (सत्तण्हं) सात नोकषायों का **(पढमट्ठिदिखंडे पुण्णे दु)** प्रथम स्थितिकांडक

---

१) ज. ध. पु. १४ पृ. २१२

२) ज. ध. पु. १४ पृ. २१२/क.पा. सुत्त पृ. ७५४ सूत्र २३३-२३४/ध.पू. ६ पृ. ३६१

घात पूर्ण होने पर **(मोहठिदिसंतं)** मोहनीय का स्थितिसत्त्व **(संखेज्जगुणविहीणं)** संख्यातगुणा हीन होता है और **(सेसाणं)** शेष कर्मों का स्थितिसत्त्व **(असंखगुणहीणं)** असंख्यातगुणा हीन हो जाता है।

विशेषार्थ - सात नोकषायों की क्षपणा का प्रारंभ करने पर पूर्व की अपेक्षा अन्य स्थितिकाण्डकघात, अन्य अनुभागकांडकघात और अन्य स्थितिबंध का प्रारम्भ करता है। प्रथम स्थितिकांडकघात पूर्ण होने पर पूर्व स्थितिसत्त्व की अपेक्षा मोहनीय का स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा हीन होता है क्योंकि संख्यातवर्ष स्थितिसत्त्व होने से स्थितिकांडकायाम संख्यात बहुभाग होता है। शेष ज्ञानावरणादि छह कर्मों का स्थितिसत्त्व पूर्व स्थितिसत्त्व से असंख्यातगुणा हीन होता है, क्योंकि पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यात वर्ष स्थितिसत्त्व होने से स्थितिकांडकायाम पूर्व स्थितिसत्त्व का असंख्यात बहुभाग होता है।

सत्तण्हं पढमट्ठिदिखंडे पुण्णे ति घादिठिदिबंधो।
संखेज्जगुणविहीणं अघादितियाणं असंखगुणहीणं[1] ।।४५०।।

सप्तानां प्रथमस्थितिखण्डे पूर्ण इति घातिस्थितिबन्धः।
सङ्ख्येयगुणविहीनोऽघातित्रयाणामसङ्ख्यगुणहीनः ।।४५०।।

अन्वयार्थ - (सत्तण्हं) सात नोकषायों का **(पढमट्ठिदिखंडे)** प्रथम स्थितिकांडक **(पुण्णे ति)** पूर्ण होने पर **(घादिठिदिबंधो)** घातिया कर्मों का स्थितिबंध **(संखेज्जगुणविहीणं)** संख्यातगुणा हीन होता है और **(अघादितियाणं)** तीन अघातिया कर्मों का स्थितिबंध **(असंखगुणहीणं)** असंख्यातगुणा हीन होता है।

विशेषार्थ - स्थितिकाण्डकघात द्वारा स्थितिसत्त्व का घात होता है और स्थितिबंधापसरण द्वारा स्थितिबंध कम होता है। स्थितिकांडकघात का काल और स्थितिबंधापसरण का काल परस्पर समान है। सात नोकषायों के स्थितिसत्त्व का घात करने के लिए प्रथम स्थितिकांडक प्रारम्भ हुआ था, उसके समाप्त होने पर प्रथम स्थितिबंधापसरण पूर्ण होता है। उसके द्वारा पूर्व स्थितिबंध से संख्यात बहुभाग प्रमाण स्थितिबंध घट जाता है अर्थात् पूर्व स्थितिबंध का संख्यातवाँ भागमात्र स्थितिबंध होता है। घातियाँ कर्मों का स्थितिबंध संख्यातवर्ष प्रमाण होने से संख्यातबहुभाग प्रमाण स्थितिबंध कम होकर पूर्व स्थितिबंध से संख्यातगुणा हीन स्थितिबंध होता है। अघातिया कर्मों का स्थितिबंध असंख्यातवर्ष प्रमाण होने से असंख्यात बहुभाग प्रमाण स्थितिबंध कम होकर पूर्व स्थितिबंध से असंख्यातगुणा हीन स्थितिबंध होता है।

---

१) क.पा. सुत्त पृ. ७५४ सूत्र २३५-२३६/ज. ध. पू. १४ पृ. २१२-२१३

ठिदिबंधपुधत्तगदे संखेज्जदिमं गदं तदद्धाए।
एत्थ अघादितियाणं ठिदिबंधो संखवस्सं तु[१]।। ४५१ ।।

स्थितिबन्धपृथक्त्वगते सङ्ख्येयं गतं तदद्धायाम्।
अत्राघातित्रयाणां स्थितिबन्धः सङ्ख्यवर्षस्तु।। ४५१ ।।

अन्वयार्थ - (ठिदिबंधपुधत्तगदे) पृथक्त्व अर्थात् संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होने पर **(तदद्धाए)** सात नोकषाय के क्षपणाकाल का **(संखेज्जदिमं गदं)** संख्यातवाँ भाग व्यतीत होता है। **(एत्थ)** यहाँ **(अघादितियाणं)** तीन अघातिया कर्मों का **(ठिदिबंधो)** स्थितिबंध **(संखवस्सं तु)** संख्यात वर्षप्रमाण होता है।

विशेषार्थ - सात नोकषायों के क्षपणाकाल का संख्यातवाँ भाग व्यतीत होने पर नाम, गोत्र और वेदनीय इन तीन अघातिया कर्मों का स्थितिबंध असंख्यात वर्ष छोड़कर संख्यात हजार वर्षप्रमाण होता है। संख्यात हजार स्थितिबंधापसारणों द्वारा स्थितिबंध असंख्यात बहुभाग-असंख्यात बहुभाग कम होकर संख्यात हजार वर्षप्रमाण हो जाता है। अब सर्व कर्मों का स्थितिबंध संख्यात हजार वर्ष होने लगता है।

ठिदिखंडपुधत्तगदे संखाभागा गदा तदद्धाए।
घादितियाणं तत्थ य, ठिदिसंतं संखवस्सं तु[२] ।। ४५२ ।।

स्थितिखण्डपृथक्त्वगते सङ्ख्यभागा गता तदद्धायाम्।
घातित्रयाणां तत्र च स्थितिसत्त्वं सङ्ख्यवर्षं तु।। ४५२ ।।

अन्वयार्थ - (ठिदिखंडपुधत्तगदे) पृथक्त्व अर्थात् (संख्यात हजार) स्थितिकांडकों के हो जाने पर सात नोकषायों के क्षपणाकाल का **(संखाभागा गदा)** संख्यात बहुभाग व्यतीत हो जाता है, **(तत्थ य)** उस समय **(घादितियाणं)** तीन घातिया कर्मों का **(ठिदिसंतं)** स्थितिसत्त्व **(संखवस्सं तु)** संख्यात वर्ष प्रमाण रह जाता है।

विशेषार्थ - अघातिया कर्मों का स्थितिबंध संख्यातवर्ष हो जाने के पश्चात् संख्यात हजार स्थितिकांडक व्यतीत होने पर सात नोकषायों के क्षपणाकाल का संख्यात बहुभाग व्यतीत होता है उस समय ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इन तीन घातिया कर्मों का स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षप्रमाण रह जाता है। जो स्थितिसत्त्व पूर्व में असंख्यात वर्ष प्रमाण था वह स्थितिकांडकों के द्वारा नष्ट होकर संख्यात

१)क.पा. सुत्त पृ.७५४ सूत्र २३७/ज.ध.पू.१४ पृ.२१३ २)क.पा.सुत्त पृ.७५४ सूत्र २३८/ध.पू.६ पृ.३६१

वर्षप्रमाण रह जाता है। यहाँ से लेकर आगे चारों घातिया कर्मों के स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व संख्यातगुणे हीन होते जाते हैं, क्योंकि घातिया कर्मों का स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व संख्यात वर्ष प्रमाण होने से स्थितिबंधापसरण और स्थितिकांडक का प्रमाण पूर्व स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व के संख्यात बहुभाग मात्र है। नाम, गोत्र और वेदनीय का स्थितिसत्त्व पूर्व स्थितिसत्त्व से असंख्यातगुणा हीन हो जाता है और स्थितिबंध पूर्व स्थितिबंध से संख्यातगुणा हीन होता है। ऐसा क्रम सात नोकषायों के क्षपणाकाल के अंत तक जानना चाहिए।[1]

अनुभागबंध और अनुभागउदय का प्रमाण कहते हैं -

पडिसमयं असुहाणं रसबंधुदया अणंतगुणहीणा।
बंधो वि उदयादो तदणंतरसमय उदयोथ ।। ४५३ ।।

प्रतिसमयमशुभानां रसबन्धोदयौ अनन्तगुणहीनौ ।।
बन्धोऽपि चोदयात् तदनन्तरसमय उदयोऽथ ।। ४५३ ।।

अन्वयार्थ - (असुहाणं रसबंधुदया) अशुभ प्रकृतियों का अनुभागबंध और अनुभाग उदय **(पडिसमयं)** प्रतिसमय **(अनंतगुणहीणा)** अनंतगुणा हीन होता है। **(उदयादो)** अनुभागउदय से **(बंधोवि)** अनुभागबंध भी अनन्तगुणा हीन है **(य)** और **(तदणंतर समय उदयोथ)** इस बंध से उसके पश्चात् के समय का उदय अनन्तगुणा हीन होता है।

विशेषार्थ - अशुभ प्रकृतियों के अनुभाग का उदय उत्तरोत्तर समय में अनन्तगुणाहीन होता जाता है अर्थात् अप्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग का प्रतिसमय अनन्तगुणित हीन श्रेणीरूप से वेदन होता है।[2] अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग बंध भी उत्तरोत्तर हीन होता जाता है।

विवक्षित समय में अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग बंध अल्प होता है, उसी समय में बंध से अनुभागोदय अनन्तगुणा होता है, क्योंकि उदय दीर्घकालीन सत्कर्म स्वरूप है।[3] बंध की अपेक्षा सत्त्व अनन्तगुणा होता है, परन्तु उसके पश्चात् के समय में होने वाले अनुभाग उदय की अपेक्षा वर्तमान समय का बंध अनन्तगुणा है, क्योंकि समय - समय में अनुभाग का उदय विशुद्धि की प्रधानता से अनन्तगुणा हानिरूप से अपवर्तित होता है।

विवक्षित समय में उदय से बंध अनन्तगुणा हीन, उसके पश्चात् के समय में पूर्व समय के बंध से अनुभाग उदय अनन्तगुणाहीन, उसी समय का बंध उदय से अनन्तगुणा हीन, उस बंध से पश्चात् के समय का उदय अनन्तगुणा हीन इसप्रकार क्रम जानना चाहिए।

१) ज. ध. पु. १४ पृ. २१४-२१५ २) ज.ध. पु. १४ पृ. २६५ ३) ज.ध. पु. १४ पृ. २६५

बंधेण होदि उदओ अहियो उदएण संकमो अहियो ।
गुणसेढि अनंतगुणा बोधव्वा होदि अणुभागे[1] ।। ४५४ ।।

बन्धेन भवत्युदयोऽधिक उदयेन सङ्क्रमोऽधिकः ।
गुणश्रेणिरनन्तगुणा बोद्धव्या भवत्यनुभागे ।। ४५४ ।।

अन्वयार्थ - **(बंधेण)** बंध से **(उदओ)** उदय **(अहियो)** अधिक **(होदि)** होता है और **(उदएण)** उदय से **(संकमो)** संक्रमण **(अहियो)** अधिक होता है। इस प्रकार **(अनुभागे)** अनुभागसंबंधी **(अणंतगुणा गुणसेढि)** अनन्तगुणित गुणश्रेणि **(बोधव्वा होदि)** जानने योग्य है। अर्थात् यहाँ अधिक का प्रमाण अनन्तगुणा है।

विशेषार्थ - अनुभाग की अपेक्षा वर्तमान बंध अल्प है, बंध से उदय अनन्तगुणा है और उदय से संक्रमण अनन्तगुणा है; क्योंकि अनुभाग सत्त्व अनन्तगुणाहीन होकर उदय में आता है, किन्तु पूर्वसत्त्व का संक्रमण तदवस्थरूप से ही परप्रकृति में संक्रमित होता है। यह अल्पबहुत्व का कथन घातिकर्मसंबंधी है।

गुणसेढि अणंतगुणेणूणा य वेदगो दु अणुभागो ।
गणणादियंतसेढी पदेसअग्गेण बोधव्वा[2] ।। ४५५ ।।

गुणश्रेणिरनन्तगुणेनोना च वेदकस्त्वनुभागः ।
गणणातिक्रान्तश्रेणी प्रदेशाग्रेण बोद्धव्या ।। ४५५ ।।

अन्वयार्थ - अप्रशस्त प्रकृतियों के **(अणुभागो)** अनुभाग का प्रत्येक समय में **(अणंतगुणेणूणा गुणसेढि)** अनन्तगुणित हीन गुणश्रेणिरूप से **(वेदगो दु)** वेदक होता है, किन्तु **(पदेसअग्गेण)** प्रदेशाग्र की अपेक्षा **(गणणादियंतसेढी)** गणनातिक्रान्त अर्थात् असंख्यातगुणित श्रेणिरूप से उदय **(बोधव्वा)** जानना चाहिए।

विशेषार्थ - विवक्षित समय में अनुभागोदय बहुत होता है। उसके अनन्तर समयों में अनुभाग का उदय अनन्तगुणाहीन - अनन्तगुणाहीन जानना चाहिए। प्रदेशोदय विवक्षित समय में अल्प होता है, उसके अनन्तर समय में असंख्यातगुणा होता है। इसी प्रकार उत्तरोत्तर समयों में सर्वत्र असंख्यातगुणा प्रदेशोदय जानना चाहिए।[3]

१) ज.ध. पु. १४ पृ. २६१/क. पा. सुत्त पृ. ७६९ सू. १४३ २) ज.ध. पु. १४ पृ. २६७
३) क. पा. सुत्त पृ. ७७० सू. ३५६-३५७

बंधोदएहि णियमा, अणुभागो होदि णंतगुणहीणो ।
से काले से काले, भज्जो पुण संकमो होदि[1] **।। ४५६ ।।**

बन्धोदयाभ्यां नियमादनुभागो भवत्यनन्तगुणहीनः ।
स्वे काले स्वे काले भाज्यः पुनः सङ्क्रमो भवति ।। ४५६ ।।

अन्वयार्थ - (से काले) तदनन्तर समय में **(बंधोदएहि)** बंध और उदय की अपेक्षा **(अणुभागो)** अनुभाग **(णियमा)** नियम से **(णंतगुणहीणो)** अनन्तगुणा हीन होता है। **(पुण)** पुनः **(से काले)** उसके अनन्तर समय में **(संकमो)** संक्रमण **(भज्जो होदि)** भजनीय है।

विशेषार्थ - अनुभागबंध और अनुभागउदय के अनन्तगुणी हीनता का वर्णन पूर्व गाथा में किया है तथापि मंदबुद्धि जीवों को सूखपूर्वक ज्ञान कराने के लिए पुनः निर्देश किया है। संक्रमणसंबंधी यह व्यवस्था है कि जब तक एक अनुभागकांडक का उत्कीरण करता है तब तक उतने उतने ही अनुभाग का संक्रमण होता है। अन्य अनुभाग कांडक को आरंभ करने पर अनन्तगुणा हीन अनुभाग का संक्रमण होता है। इसलिए गाथा में संक्रमण भजनीय है ऐसा कहा गया है।

संक्रमण भजनीय होने का कारण कहते हैं -

संकमणं तदवट्ठं जाव दु अणुभागखंडयं पडिदि ।
अण्णाणुभागखंडे आढंते णंतगुणहीणं[2] **।। ४५७ ।।**

सङ्क्रमणं तदवस्थं यावत्त्वनुभाग खण्डकं पतति ।
अन्यानुभागखण्डे आरब्धेऽनन्तगुणहीनम् ।। ४५७ ।।

अन्वयार्थ - (जाव दु अणुभागखंडयं पडिदि) अनुभागकांडक का पतन होने तक **(संकमणं)** संक्रमण **(तदवट्ठं)** अवस्थित होता है। **(अण्णाणुभागखंडे आढंते)** अन्य अनुभागखण्ड के प्रारम्भ होने पर (पूर्व से) **(णंतगुणहीणं)** अनन्तगुणा घटता अनुभागसंक्रमण होता है।

विशेषार्थ - अनुभागकाण्डक का पतन होने का काल अन्तर्मुहूर्त है। उस अन्तर्मुहूर्त में प्रतिसमय एक-एक फालि का पतन होता है। फालि-पतन से यद्यपि फालि-प्रमाण कर्मप्रदेशों का अनुभाग अनन्तगुणा हीन हो जाता है, किन्तु शेष कर्मप्रदेशों में उतना ही रहता है। अनुभागकाण्डक की

१)क.पा.सुत्त पृ.७७२ गा.१४८ सू.३६५-३६९/ज.ध.पु.१४ पृ.२७०
२)क.पा.सुत्त पृ.७७२ गा.१४८ सू.३६५

अंतिम फालि के पतन के समय काण्डक के अन्तर्गत सर्व प्रदेशों का अनुभागघात होकर अनन्तगुणा हीन हो जाता है। जब तक अंतिम फालि का पतन नहीं होता तब तक अनुभागकाण्डककाल में अनुभाग सत्कर्म उतना ही रहता है इसलिए अनुभाग संक्रमण भी उतना ही अवस्थितरूप से होता रहता है। अनुभाग काण्डक की अंतिम फालि के पतन होने पर अनुभाग सत्कर्म अनन्तगुणा हीन हो जाने से अनुभागसंक्रमण भी अनन्तगुणा हीन होता है। यही क्रम अन्य अनुभागकाण्डकों के विषय में भी जान लेना चाहिए।

सात नोकषायों की क्षपणा के अंतिम समय में स्थितिबंध का प्रमाण कहते हैं -

सत्तण्हं संकामगचरिमे पुरिसस्स बंधमडवस्सं।
सोलस संजलणाणं संखसहस्साणि सेसाणं[1]।। ४५८।।

सप्तानां सङ्क्रामकचरिमे पुरुषस्य बन्धोऽष्टवर्षम्।
षोडश सञ्ज्वलनानां सङ्ख्यसहस्राणि शेषानाम्।। ४५८।।

अन्वयार्थ - (सत्तण्हं संकामगचरिमे) सात नोकषायों के संक्रमण के अंतिम समय में **(पुरिसस्स)** पुरुषवेद का **(बंध)** स्थितिबंध **(अडवस्सं)** आठ वर्ष प्रमाण **(संजलणाणं)** संज्वलन कषायों का **(सोलस)** सोलह वर्ष प्रमाण और **(सेसाणं)** शेष छह कर्मों का **(संखसहस्साणि)** संख्यात हजार वर्ष प्रमाण होता है।

विशेषार्थ - सात नोकषायों के संक्रमणकाल के अन्तिम समय में पुरुषवेद का अन्तिम स्थितिबंध आठ वर्ष, संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ का सोलहवर्ष और शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, वेदनीय, नाम एवं गोत्र इन घातियाँ-अघातियाँरूप छह कर्मों का स्थितिबंध संख्यात हजार वर्षप्रमाण होता है। यहाँ पर पुरुषवेद की बंधव्युच्छित्ति हो जाने से पुरुषवेद का आठ वर्ष जघन्यस्थिति बंध होता है तथा शेष कर्मों का जघन्य स्थितिबंध अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्ति के समय होता है। यहाँ संक्रामक शब्द का अर्थ क्षपक है, क्योंकि यहाँ संक्रमण के द्वारा ही क्षय होता है।

उसी समय स्थितिसत्त्व का प्रमाण कहते हैं -

ठिदिसंतं घादीणं संखसहस्साणि होंति वस्साणं।
होंति अघादितियाणं वस्साणमसंखमेत्ताणि[2]।। ४५९।।

---

१) क. पा. सुत्त पृ. ७५५ सू.२४३-२४५/ज.ध.पु.१४ पृ. २१५ २) ज.ध.पु. १४ पृ. २१६

स्थितिसत्त्वं घातिनां सङ्ख्यसहस्राणि भवन्ति वर्षाणाम् ।
भवन्त्यघातित्रयाणां वर्षाणामसङ्ख्यमात्राणि ।। ४५९ ।।

अन्वयार्थ - उसी अंतिम समय में **(घादीणं ठिदिसंतं)** घातियाँ कर्मों का स्थितिसत्त्व **(वस्साणं संखसहस्साणि)** संख्यात हजार वर्षप्रमाण **(होंति)** होता है। **(अघादितियाणं)** तीन अघातिया कर्मों का असंख्यात वर्ष होता है।

विशेषार्थ - सात नोकषायों की क्षपणा के अंतिम समय में चार घातियाँ कर्मों का स्थितिसत्त्व संख्यात हजार वर्ष होता है क्योंकि घातियाँकर्म अप्रशस्त होने से स्थितिकांडकों के द्वारा इनकी अधिक स्थिति का घात होता है। नाम, गोत्र और वेदनीय इन तीन अघातियाँ कर्मों का स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्ष प्रमाण रहता है, क्योंकि अघातियाँ होने से घातियाँ कर्मों की अपेक्षा इनका स्थितिघात अल्प होता है।

अब दो आवलि शेष रहने पर कार्यविशेष कहते हैं -

पुरिसस्स य पढमट्ठिदि आवलिदोसुवरिदासु आगाला ।
पडिआगाला छिण्णा, पडिआवलियादुदीरणदा [1] ।। ४६० ।।

पुरुषस्य च प्रथमस्थितावावलिद्वयोरूपरतयोरागाला ।
प्रत्यागालाश्छिन्नाः प्रत्यावलिकाया उदीरणता ।। ४६० ।।

अन्वयार्थ - (पुरिसस्स) पुरुषवेद की **(पढमट्ठिदि)** प्रथम स्थिति में **(आवलिदोसुवरिदासु)** दो आवलि शेष रहने पर **(आगाला पडिआगाला)** आगाल व प्रत्यागाल **(छिण्णा)** नष्ट होते हैं **(य)** और केवल **(पडिआवलियादुदीरणदा)** प्रत्यावली में से उदीरणा होती है।

विशेषार्थ - द्वितीय स्थिति में स्थित कर्मपरमाणु अपकर्षण के द्वारा प्रथम स्थिति में देने को आगाल कहते हैं और प्रथम स्थिति में स्थित कर्मपरमाणुओं को उत्कर्षण के द्वारा द्वितीय स्थिति समान नवीन समयप्रबद्ध में देने को प्रत्यागाल कहते हैं। पुरुषवेद की प्रथम स्थिति में एक समय अधिक दो आवलि शेष रहने पर आगाल और प्रत्यागाल होते हैं। पुरुषवेद की प्रथम स्थिति में आवलि और प्रत्यावलि शेष रहने पर आगाल और प्रत्यागाल उत्पादानुच्छेद की अपेक्षा व्युच्छिन्न होते हैं अथवा पूर्ण आवलि और प्रत्यावलि के शेष रहने पर आगाल और प्रत्यागाल होकर उसके अनन्तर समय में एक समय कम दो आवलि शेष रहने पर आगाल और प्रत्यागाल का अभाव होता है। यहीं से पुरुषवेद की गुणश्रेणी भी नहीं होती। केवल प्रत्यावलि में से ही असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होती है। [2]

१) क. पा. सुत्त पृ. ७५५ सू.२४९/ज.ध.पु.१४ पृ. २१५ २) ज.ध.पु. १४ पृ. २८५-२८६

आगाल-प्रत्यागाल का नक्शा

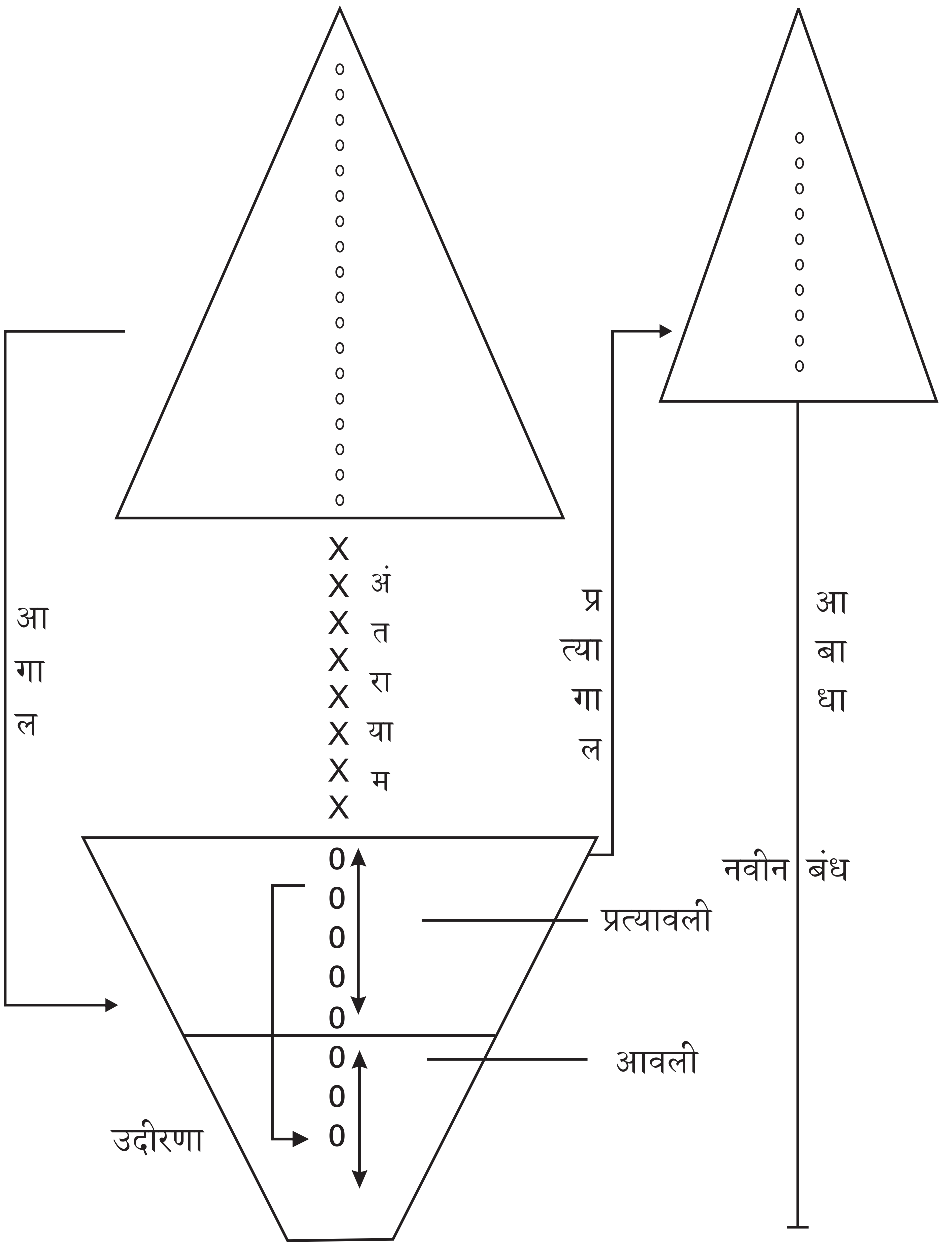

पुरुषवेद की प्रथम स्थिति में एक समय अधिक आवलि शेष रहने पर जघन्यस्थिति उदीरणा होती है अर्थात् जिस समय पुरुषवेद की प्रथम स्थिति उदयावलि और उसके ऊपर एक निषेक मात्र शेष रह

जाती है उस समय उदयावलि से बाह्य एक निषेक की स्थिति एक समय अधिक आवलि मात्र है। उस एक निषेक से द्रव्य अपकर्षण करके उदयावलि में दिया जाता है, यही जघन्य स्थितिउदीरणा है।[1] तदनन्तर समय में वह निषेक भी उदयावलि में प्रवेश कर जाता है तब पुरुषवेद की उदीरणा भी व्युच्छिन्न हो जाती है और वह चरमसमयवर्ती सवेदी होता है। उदयावलिप्रमाण निषेकों का प्रतिसमय संज्वलन क्रोधरूप परमुख उदय होकर नाश होता है, स्वमुख उदय नहीं होता।

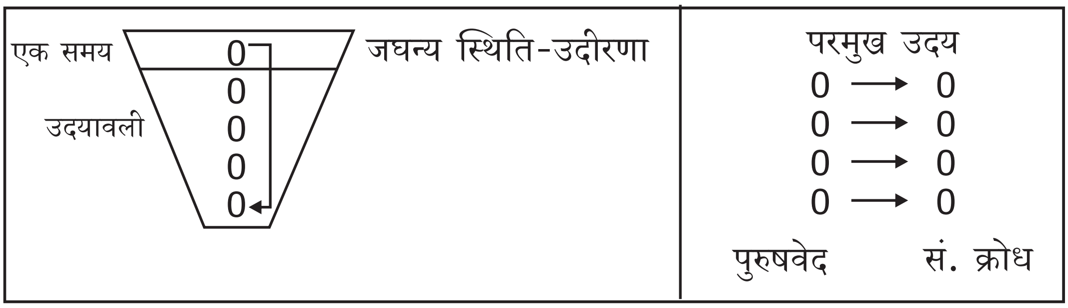

अंतरकदपढमादो कोहे छण्णोकसाययं छुहदि ।
पुरिसस्स चरिमसमए पुरिसवि एदेण सव्वयं छुहदि[2] ।।४६१।।

अन्तरकृतप्रथमात् क्रोधे षण्णोकषायकं सङ्क्रामति ।
पुरुषस्य चरमसमये पुरुषमप्येतेन सर्वं सङ्क्रामति ।। ४६१ ।।

अन्वयार्थ - (अंतरकदपढमादो) अन्तरकरण करने पर प्रथमसमय से **(छण्णोकसाययं)** छह नोकषायों को **(कोहे)** संज्वलन क्रोध में **(छुहदि)** संक्रमित करता है। **(पुरिसस्स चरिमसमए)** पुरुषवेद के अंतिम समय में **(एदेण)** छह नोकषायों के साथ **(सव्वयं पुरिसवि)** पुरुषवेद का भी सर्वद्रव्य संज्वलनक्रोध में **(छुहदि)** संक्रमित करता है।

विशेषार्थ - अन्तरकरण करने के पश्चात् प्रथम समय से संक्रमण प्रारंभ हुआ था। पुरुषवेद के उदयकाल के अंतिम समय में छह नोकषायों के सर्वसत्त्व का संज्वलन क्रोध में संक्रमण करता है।

द्वितीय स्थिति में प्राप्त संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिसत्त्वरूप अंतिमफालि का सर्वसंक्रमण द्वारा संज्वलन क्रोध में निक्षेपण करके छह नोकषायों के सत्त्व का नाश करता है। उसी समय में पुरुषवेद का भी सर्वद्रव्य संज्वलन क्रोध में संक्रमित करता है।

---

१) ज. ध. पु. १४ पृ. २१६/क.पा. सुत्त पृ. ७५५ सू.२५०
२) ज. ध. पु. १४ पृ. २१६-२१७/क.पा. सू. २५१-२५३

पुरुषवेद का कुछ द्रव्य शेष रहता है वह कहते हैं -

समऊणदोण्णि-आवलिपमाणसमयप्पबद्धणवबंधो।
बिदिये ठिदिये अत्थि हु पुरिसस्सुदयावली च तदा[1]।। ४६२।।

समयोनद्व्यावलिप्रमाणसमयप्रबद्धनवबन्धः।
द्वितीयस्यां स्थितावस्ति हि पुरुषस्योदयावली च तदा।। ४६२।।

अन्वयार्थ - (तदा) उसी समय **(पुरिसस्स)** पुरुषवेद का **(बिदिये ठिदिये)** द्वितीय स्थिति में **(समऊणदोण्णि-आवलिपमाण समयप्पबद्धणवबंधो)** एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवक समयप्रबद्ध **(च)** और **(उदयावली)** उदयावलि **(अत्थि)** शेष रहती है।

विशेषार्थ - सवेदभाग के अंतिम समय में पुरुषवेद का एक समय कम दो आवलिमात्र नवक समयप्रबद्ध द्वितीय स्थिति में शेष रहते हैं। शेष संख्यात हजार वर्षमात्र पूर्वसत्त्व था वह सर्व संज्वलन क्रोध में संक्रमित होता है। तथा प्रथम स्थिति में असंख्यात समयप्रबद्धमात्र उच्छिष्टावलि के (उदयावलि के) निषेक शेष रहते हैं। यहाँ द्वितीय स्थिति में एक समय कम दो आवलिमात्र नवक समयप्रबद्ध कैसे शेष रहते हैं, उसका स्पष्टीकरण -

नवीन बांधे गए समयप्रबद्ध को नवकसमयप्रबद्ध कहते हैं। कोई भी समयप्रबद्ध बाँधने पर एक आवलि काल तक उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं होता है अर्थात् संक्रमण भी नहीं होता है। तदनन्तर प्रत्येक समय में एक-एक फालि द्वारा एक आवलिकाल में एक-एक समयप्रबद्ध संक्रमित करके समाप्त करता है इसलिए पुरुषवेद की प्रथम स्थिति में अंतिम तीन आवलियों को बंधावली, संक्रमणावली और उच्छिष्टावलि (क्षपणावलि) कहते हैं। बंधावलि के प्रथम समय में बाँधे गए समयप्रबद्ध की बंधावलि व्यतीत होने पर संक्रमणावलि के एक-एक समय में एक-एक फालि द्वारा संक्रमित करके नष्ट करता है। इस प्रकार बंधावलि के द्वितीय समय में बाँधे गये समयप्रबद्ध का संक्रमणावलि के द्वितीय समय से संक्रमण प्रारम्भ होकर अंतिम एक फालि छोड़कर शेष समस्त द्रव्य संक्रमित होता है। उसी प्रकार बंधावलि के तृतीय समय में बाँधे गये समयप्रबद्ध का संक्रमणावलि के तृतीय समय से संक्रमण प्रारम्भ करके अंतिम दो फालियों को छोड़कर शेष समस्त द्रव्य संक्रमित होता है। इस प्रकार बंधावलि के अंतिम समय तक बाँधे गये समयप्रबद्धों का विचार करना चाहिए। बंधावलि के अंतिम समय में बाँधे गये समयप्रबद्ध की संक्रमणावलि के अंतिम समय में एक ही फालि संक्रमित हुई और एक समय कम आवलिमात्र फालियाँ शेष रहीं। संक्रमणावलि के प्रथमादि समयों में बाँधे गये समयप्रबद्धों की एक भी

१) क. पा. सुत्त पृ. ७५५ सू.२५३/ ज. ध. पु. १४ पृ. २१६-२१७

फालि नष्ट नहीं हुई। उच्छिष्टावलि में तो बंध ही नहीं है। इस प्रकार 'एकदेश को सर्व कहते हैं' इस न्याय से शेष रह गयी फालियों की समयप्रबद्ध संज्ञा कहकर बंधावलि में बाँधे गये एक कम आवलिमात्र समयप्रबद्ध और संक्रमणावलि में बाँधे गये संपूर्ण आवलिमात्र समयप्रबद्ध मिलकर एक समय कम दो आवलिमात्र नवक समयप्रबद्ध संक्रमित न होकर शेष रहते हैं।

अपगतवेदी होने पर उच्छिष्टावलि के प्रथम समय से एक-एक समय में एक-एक समयप्रबद्ध को संज्वलन क्रोधरूप परिणमाकर एक समय कम दो आवलि काल में इन नवकसमयप्रबद्धों का क्षय करता है। पुरुषवेद के उदय से श्रेणि चढ़नेवाले जीव के पुरुषवेद की बंध और उदयव्युच्छित्ति एक ही समय में होती है।

एक समय कम दो आवली मात्र शेष नवक समयप्रबद्धकी रचना

	०
	० १
	० १ २
उच्छिष्टावलि / क्षपणावली	० १ २ ३
	० १ २ ३ ४
	० १ २ ३ ४ ४
	० १ २ ३ ४ ४ ४
संक्रमणावलि / चरमावलि	० १ २ ३ ४ ४ ४ ४
	१ २ ३ ४ ४ ४ ४
	२ ३ ४ ४ ४ ४
	३ ४ ४ ४ ४
बंधावलि / द्विचरमावलि	४ ४ ४ ४
	४ ४ ४
	४ ४
	४

यहाँ संपूर्ण समयप्रबद्ध की संदृष्टि ४ है। एक-एक फालि का संक्रमण होने पर शेष रही फालियाँ ३, २, १ लिखी है। पूर्ण समयप्रबद्ध का संक्रमण होने पर उसकी शून्य (०) संदृष्टि लिखी है। लब्धिसार गाथा २६३ के समान ही इसका स्पष्टीकरण जानना चाहिए।

अब अश्वकर्णकरण का स्वरूप कहते हैं -

से काले ओवट्टणुवट्टण[१] अस्सकण्ण आदोलं।
करणं तियसण्णगयं संजलणरसेसु वट्टिहिदि[२]।। ४६३ ।।

स्वे कालेऽपवर्तनोद्वर्तनमश्वकर्णमादोलम्।
करणं त्रिसञ्ज्ञगतं सञ्ज्वलनरसेषु वर्तयति।। ४६३ ।।

अन्वयार्थ - (से काले) अनन्तर समय में **(ओवट्टणुवट्टण)** अपवर्तन-उद्वर्तन **(अस्सकण्ण)** अश्वकर्ण और **(आदोलं)** आदोल ऐसे **(तियसण्णगदं)** तीन संज्ञा को प्राप्त हुआ **(करणं)** करण **(संजलणरसेसु)** संज्वलन कषाय के अनुभाग में **(वट्टिहिदि)** प्रवृत्त होता है।

विशेषार्थ - अपवर्तनोद्वर्तनकरण, अश्वकर्णकरण और आदोलनकरण ये तीनों एकार्थक संज्ञा है। यहाँ प्रारंभ किये गये प्रथम अनुभागकांडक का घात करने पर शेष रहा अनुभाग क्रोध से लोभ तक अनन्तगुणा हानिरूप और लोभ से क्रोधतक अनंतगुणा वृद्धिरूप दिखने से इसे अपवर्तनोद्वर्तनकरण कहते हैं। अश्व अर्थात् घोड़ा। जैसे घोड़े का कान मध्यभाग से अंततक क्रम से पतला होता जाता है वैसे ही क्रोधसंज्वलन से लोभसंज्वलन तक अनुभागस्पर्धक क्रम से हीन होने से इसे अश्वकर्णकरण कहते हैं। आदोल अर्थात् झूला जैसे झूले में बाँधी गयी दोनों रस्सियाँ प्रारंभ से अंतिम तक क्रम से घटती जाती है वैसे ही संज्वलनक्रोध से संज्वलन लोभ तक अनुभाग घटता जाता है इसलिए इसका आदोलकरण नाम है।[३] अपगतवेद के प्रथम समय से ही अश्वकर्णकरण प्रारंभ होता है अर्थात् क्रोध से लोभ तक चार संज्वलन कषायों का अनुभाग क्रमसे घटता जाता है। क्रोध के अनुभाग से मान का अनुभाग कम, मान से माया का अनुभाग कम और माया से लोभ का अनुभाग कम होता है।

अश्वकर्णकरणकाल में संज्वलन के सत्त्व और बन्ध का प्रमाण कहते हैं -

ताहे संजलणाणं ठिदिसंतं संखवस्सयसहस्सं।
अंतोमुहुत्तहीणो सोलसवस्साणि ठिदिबंधो[४]।। ४६४ ।।

तत्र सञ्ज्वलनानां स्थितिसत्त्वं सङ्ख्यवर्षसहस्रम्।
अन्तर्मुहूर्तहीनः षोडशवर्षाणि स्थितिबन्धः ।। ४६४ ।।

---

१) पाठभेद - ''ओवट्टणि-उव्वट्टण'' पं. रतनचंद जैन मुख्तार कृत क्षपणासार

२)ज. ध. पु. १४ पृ. ३२२/क.पा.सुत्त पृ.७८७ सू ४७२ ३) ध.पु.६ पृ.३६४ टि.५ ४) ज. ध. पु.१४ पृ ३२४

अन्वयार्थ - (ताहे) अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में **(संजलणाणं)** संज्वलन कषायों का **(ठिदिसंतं)** स्थितिसत्त्व **(संखवस्सयसहस्सं)** संख्यात हजार वर्ष और **(ठिदिबंधो)** स्थितिबंध **(अंतोमुहुत्तहीणो सोलसवस्साणि)** अन्तर्मुहूर्त कम सोलह वर्ष होता है।

विशेषार्थ - यद्यपि सात नोकषायों के क्षपणाकाल में संज्वलन कषायों का स्थितिसत्त्व संख्यात हजार वर्ष ही था, परन्तु अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में वह सत्त्व संख्यातगुणा हीन हो जाता है। सवेद के अंतिम समय में चार संज्वलन कषायों का स्थितिबंध पूर्ण सोलह वर्षप्रमाण था। अब अपगतवेद के प्रथम समय में उसमें से अन्तर्मुहूर्त स्थिति का अपसरण होकर अन्तर्मुहूर्त कम सोलह वर्ष होता है क्योंकि बत्तीस वर्ष प्रमाण स्थितिबंध होने पर स्थितिबंधापसरण का प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है। तीन घातिया कर्मों का स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्व संख्यात हजार वर्षप्रमाण ही है। तीन अघातिकर्मों का स्थितिबंध संख्यात हजार वर्ष और स्थितिसत्त्व असंख्यात हजार वर्षप्रमाण है।

संज्वलन के अनुभाग का अल्पबहुत्व -

रससंतं आगहिदं खंडेण समं तु माणगे कोहे।
मायाए लोभे वि य, अहियकमा होंति बंधे वि[1]।। ४६५।।

रससत्त्वमागृहीतं खण्डेन समं तु मानके क्रोधे।
मायायां लोभेऽपि चाधिकक्रमं भवति बन्धेऽपि।। ४६५।।

अन्वयार्थ - (खंडेण समं) अनुभागकांडक सहित **(आगहिदं)** ग्रहण किया गया **(रससंतं)** अनुभागसत्त्व **(माणगे, कोहे, मायाए, लोभे वि य)** मान, क्रोध, माया और लोभ में **(अहियकमा)** अधिक क्रम से **(होंति)** है। **(बंधे वि)** अनुभागबंध भी इसी क्रम से होता है।

विशेषार्थ - अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के अवेदभाग के प्रथम समय में जब अश्वकर्णकरण को प्रारंभ करता है और अनुभाग का घात करने के लिए अनुभागकांडक को ग्रहण करता है तब उस अनुभागकांडक सहित संज्वलन का अनुभागसत्त्व इस प्रकार है - मान में अनुभाग सत्त्व कम है, उससे क्रोध का विशेष अधिक, उससे माया का विशेष अधिक और उससे लोभ का अनुभाग सत्त्व विशेष अधिक है।

यहाँ विशेष का प्रमाण अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद (स्पर्धक) है। उतने से अधिक-अधिक जानना चाहिए। जैसे - माना की मान के स्पर्धक ५१२ और अनन्त का प्रमाण ३ है। इसलिए मान के ५१२,

१) क.पा.सुत्त पृ. ७८८ सू. ४७६-४८०/ध.पु. ६ पृ. ३६५

क्रोध के ५१५, माया के ५१८, और लोभ के ५२१ स्पर्धक होते हैं। अनुभाग का यह अल्पबहुत्व अन्तदीपक है। इससे पूर्व में भी संज्वलन के अनुभागसत्त्व में अल्पबहुत्व का यही विधान है क्योंकि अनुभाग बंध भी इसी अल्पबहुत्व क्रम से होता है।

संज्वलन कषायों के अनुभागकांडक और शेष अनुभागसत्त्व का अल्पबहुत्व कहते हैं -

रसखंडफड्ढयाओ कोहादीया हवंति अहियकमा।
अवसेसफड्ढयाओ लोहादि अणंतगुणिदकमा [1]।। ४६६ ।।

रसखंडस्पर्धकानि क्रोधादिकानां भवन्त्यधिकक्रमाणि।
अवशेषस्पर्धकानि लोभादेरनन्तगुणित क्रमाणि ।। ४६६ ।।

अन्वयार्थ - (रसखंडफड्ढयाओ) अनुभागकांडक के लिए ग्रहण किऐ गये स्पर्धक **(कोहादीया)** क्रोधादि कषायों के **(अहियकमा)** विशेष अधिक क्रम से **(हवंति)** हैं। **(अवसेसफड्ढयाओ)** परन्तु शेष रहे स्पर्धक **(लोहादि)** लोभादिकों के **(अणंतगुणिकमा)** अनन्तगुणित क्रम से होते हैं।

विशेषार्थ - घात करने के लिए प्रथम अनुभागकांडकरूप से ग्रहण किये गये स्पर्धक क्रोध के सबसे कम हैं। उससे मान के विशेष अधिक हैं, उससे माया के विशेष अधिक हैं, उससे लोभ के विशेष अधिक हैं। इससे पूर्व जो अनुभागकांडक हुए उसमें अनुभागसत्त्व के अनुसार मान के सबसे कम, उससे क्रोध, माया और लोभ के क्रम से विशेष अधिक स्पर्धक ग्रहण होते थे। अब परिणामों की विशेषता से विशेष घात होने से अपने-अपने अनुभागसत्त्व में अनन्त का भाग देकर बहुभाग अनुभाग घात करने के लिए ग्रहण करता है। वहाँ क्रोध, मान, माया और लोभ के क्रम से विशेष अधिक हैं।

शंका - यहाँ पूर्व का क्रम छोड़कर इस क्रम से क्यों ग्रहण करता है?

समाधान - अश्वकर्णकरण में अनुभागकाण्डक घात होने के पश्चात् शेष रहे अनुभागस्पर्धक लोभ में सबसे अल्प हैं, लोभ से अनन्तगुणे माया के, उससे अनन्तगुणे मान के और उससे अनन्तगुणे क्रोध के स्पर्धक हैं। यह क्रम उपर्युक्त अनुभागघात के द्वारा ही हो सकता है, अन्य प्रकार से नहीं अथवा अपूर्वस्पर्धक विधान के पश्चात् क्षय होने वाले कर्मों में जिनका मन्द उदय होकर घात होता है उनके अनुभागसत्त्व का बहुत घात होता है। लोभ का सबसे अंत में घात होने से उसका मन्दतम उदय होकर घात होता है। अत: अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में लोभ के अधिक स्पर्धक घात के लिए ग्रहण होते हैं, उससे पूर्व माया का मन्दतर उदय होकर घात होता है और उससे भी पूर्व मान का मन्द उदय होकर

१) क.पा.सुत्त पृ. ७८८ सू. ४८१-४८८ /ज.ध.पु. १४ पृ. ३२६-३२७

घात होता है। क्रोध का सर्वप्रथम घात होने से उसके अनुभाग का, मान के समान मन्द उदय होकर घात नहीं होता, किन्तु मान की अपेक्षा विशेष अधिक अनुभाग के साथ घात होता है। इसलिए अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में अनुभागखण्ड के लिए ग्रहण किये गये स्पर्धक क्रोध के सबसे अल्प, मान के विशेष अधिक, उससे माया के विशेष अधिक और उससे लोभ के विशेष अधिक इस क्रम से हैं।

अंकसंदृष्टि - क्रोध के तीन सौ सत्तासी (३८७), मान के चार सौ अस्सी (४८०), माया के पाँच सौ दस (५१०), लोभ के (५१९) स्पर्धक हैं।

प्रथम अनुभाग कांडक का घात होने पर शेष रहे स्पर्धक लोभ के सबसे अल्प, उससे माया कें अनन्तगुणे, उससे मान के अनन्तगुणे, उससे क्रोध के अनंतगुणे जानना चाहिए।

शंका - जब कांडक में विशेष अधिकपना कहा गया है तो अवशेष अनुभाग में अनन्तगुणितपना कैसे प्राप्त होता है ?

समाधान - अंकसंदृष्टि से इसका स्पष्टीकरण करते हैं -

पूर्व का अनुभाग सत्त्व

क्रोध	मान	माया	लोभ
५१५	५१२	५१८	५२१

मान की अपेक्षा क्रोध में ३ अधिक, माया में ६ अधिक, लोभ में ९ अधिक हैं। उसमें से अधिक का प्रमाण अलग रखना चाहिए।

	क्रोध	मान	माया	लोभ
समानप्रमाण	५१२	५१२	५१२	५१२
अधिकप्रमाण	३	०	६	९

अनन्त का प्रमाण चार माना। अनन्त बहुभाग कांडक के लिए ग्रहण करता है।

अत: (५१२ ÷ ४) × ३ = ३८४ इस बहुभाग में क्रोध कषाय के अधिक स्पर्धकों का प्रमाण तीन है। उसे मिलाने पर क्रोधकांडक के स्पर्धकों का प्रमाण तीन सौ सत्तासी (३८७) होता है।

पूर्व अनुभाग सत्त्व – कांडक = शेष अनुभाग सत्त्व

५१५ – ३८७ = १२८ क्रोध का शेष अनुभाग सत्त्व

शेष रहे एक भाग को पुन: चार का भाग देकर उसका बहुभाग पूर्व के बहुभाग में मिला देने पर जितना होता है उतने मान के कांडक ग्रहण करता है। (१२८ ÷ ४) × ३ = ९६ एकभाग का बहुभाग

पूर्व का बहुभाग + एक भाग का बहुभाग = मान का कांडक

३८४ + ९६ = ४८० मान का कांडक

पूर्व सत्त्व - कांडक = मान का अवशेष सत्त्व

५१२ - ४८० = ३२ स्पर्धक मान का अवशेष सत्त्व

शेष रहे एक भाग में पुन: चार का भाग देकर उसका बहुभाग ग्रहण करके पूर्व के दो बहुभागों में मिलाकर और उसमें अधिक स्पर्धक संख्या मिलाने पर माया कांडक का प्रमाण आता है।

(३२ × ३) / ४ = २४ एकभाग का बहुभाग

पूर्व के दो बहुभाग + एक भाग का बहुभाग + अधिक स्पर्धक = माया कांडक

४८० + २४ + ६ = ५१० माया कांडक के स्पर्धक

माया का पूर्व सत्त्व – कांडक = माया का अवशेष सत्त्व

५१८ – ५१० = ८ माया का अवशेष सत्त्व

(एकभाग × अनंत - १) / अनंत = अनंत बहुभाग

शेष रहे एक भाग का बहुभाग, पूर्व के तीन बहुभाग (३८४ + ९६ + २४ = ५०४) और लोभ स्पर्धक के अधिक का प्रमाण ये तीनों मिलकर लोभ का कांडक होता है।

शेष रहे एक भाग का बहुभाग = (८ ÷ ४)× ३ = ६

पूर्व तीन बहुभाग + एक भाग का बहुभाग + अधिक स्पर्धक = लोभ कांडक

५०४ + ६ + ९ =५१९ लोभ के कांडक के स्पर्धक

पूर्वसत्त्व - कांडक = अवशेष सत्त्व

५२१ – ५१९ = २ लोभ के अवशेष स्पर्धक

इस प्रकार क्रोध, मान, माया और लोभकांडक का प्रमाण तो विशेष अधिक क्रम सहित है परन्तु शेष रहे अनुभाग सत्त्व का प्रमाण लोभ से लेकर क्रोध तक क्रम से अनन्तगुणा है।

	क्रोध	मान	माया	लोभ
पूर्व अनुभाग	५१५	५१२	५१८	५२१
कांडक अनुभाग	३८७	४८०	५१०	५१९
अवशेष अनुभाग	१२८	३२	८	२

अंक संदृष्टि से जो कथन किया गया है वही अर्थसंदृष्टि से करते हैं -

एक गुणहानिस्पर्धक शलाका ९, उसे नानागुणहानि से गुणा करने पर मान के स्पर्धक ९ ना, इसमें अनन्त का भाग देकर क्रम से एक, दो, तीन अधिक अनन्त से गुणा करने पर क्रोध के स्पर्धक [१- ९ ना ख ख] माया के स्पर्धक [२- ९ ना ख ख] लोभ के स्पर्धक [३- ९ ना ख ख] होते हैं। यहाँ क्रोधादिक के

गुणकार पर एक, दो, तीन अधिक हैं। उनके ये प्रमाण अलग रखना चाहिए।

अलग रखे गए अधिक का प्रमाण	मान	क्रोध	माया	लोभ
	०	९ ना / ख	९ ना।२ / ख	९ ना।३ / ख

मान के गुणकार में अधिक नहीं है इसलिए उसके स्थान पर शून्य लिखा है।

अधिक का प्रमाण अलग रखने पर शेष क्रोध के स्पर्धक [९ ना ख / ख] इसका अपवर्तन करने पर [९ ना] शेष रहता है। इसमें अनन्त का भाग देकर बहुभाग इतना आता है। [९ ना ख(१⌂) / ख] (बहुभाग निकालने के लिए जिस संख्या से भाग दिया उसी संख्या में एक कम करके उससे गुणा करे। इस बहुभाग का प्रमाण और अलग रखे गये अधिक का प्रमाण मिलकर क्रोध का कांडक होता है। अवशेष एक भाग मात्र [९ ना / ख] क्रोध का सत्त्व शेष रहता है। क्रोध संबंधी बहुभाग का प्रमाण [९ ना ख(१⌂) / ख] और शेष रहे एक भाग का अनन्त बहुभाग [९ ना ख(१⌂) / ख ख] मिलकर मान के कांडक का प्रमाण होता है। अवशेष एक [९ ना / ख ख] भागमात्र मान का सत्त्व रहता है।

पुन: क्रोधसंबंधी, मान संबंधी बहुभागों का प्रमाण और शेष रहे एक भाग में अनन्त का भाग देकर बहुभाग प्रमाण [९ ना ख(१⌂) / ख ख ख] ये तीनों और अलग रखे गये माया स्पर्धकों का अधिक प्रमाण ये सब मिलकर माया का कांडक होता है और शेष [९ ना / ख ख ख] एक भाग सत्त्व शेष रहता है।

पुन: क्रोध, मान, माया संबंधी बहुभागों का प्रमाण और अवशेष एक भाग का अनन्त बहुभाग [९ ना ख(१⌂) / ख ख ख ख] और लोभ का अलग रखा हुआ अधिक का प्रमाण ये सब मिलकर लोभ के कांडक का प्रमाण आता है। अवशेष एक भाग [९ ना / ख ख ख ख] यह सत्त्व शेष रहता है।

अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में होने वाले अपूर्वस्पर्धकों का कथन -

ताहे संजलणाणं देसावरफड्ढयस्स हेट्ठादो।
णंतगुणूणमपुव्वं फड्ढयमिह कुणदि हु अणंतं[१] ।। ४६७।।

तस्मिन् सञ्ज्वलनानां देशावरस्पर्धकस्याधस्तात्।
अनन्तगुणोनमपूर्वं स्पर्धकमिह करोति ह्यनन्तम् ।। ४६७।।

---

१) क. पा.सुत्त पृ.७८९ सू.४९०-४९६/ज.ध.पु.१४ पृ. ३२९/ध.पु.६पृ.३६५-३६६

अश्वकर्णकरण के प्रारंभ में संज्वलन कषायों के अनुभागकांडकों का प्रमाण और शेष अनुभागसत्त्व - अर्थसंदृष्टी

	क्रोध	मान	माया	लोभ
अधिकप्रमाण	९ ना।१ / ख	०	९ ना।२ / ख	९ ना।३ / ख
प्रथम बहुभाग	९ ना $ख^{१}$ / ख	९ ना $ख^{१}$ / ख	९ ना $ख^{१}$ / ख	९ ना $ख^{१}$ / ख
द्वितीय बहुभाग	×	९ ना $ख^{१}$ / ख ख	९ ना $ख^{१}$ / ख ख	९ ना $ख^{१}$ / ख ख
तृतीय बहुभाग	×	×	९ ना $ख^{१}$ / ख ख ख	९ ना $ख^{१}$ / ख ख ख
चतुर्थ बहुभाग	×	×	×	९ ना $ख^{१}$ / ख ख ख ख
अवशेष अनुभाग	९ ना / ख	९ ना / ख ख	९ ना / ख ख ख	९ ना / ख ख ख ख

अंकसंदृष्टी

	क्रोध	मान	माया	लोभ
अधिकप्रमाण	३	०	६	९
प्रथम बहुभाग	५१२×३ / ४ = ३८४	३८४	३८४	३८४
द्वितीय बहुभाग	×	५१२×३ / ४×४ = ९६	९६	९६
तृतीय बहुभाग	×	×	५१२×३ / ४×४×४ = २४	२४
चतुर्थ बहुभाग	×	×	×	५१२×३ / ४×४×४×४ = ६
कुल कांडकप्रमाण	३८७	४८०	५१०	५१९
अवशेष अनुभाग	५१२ / ४ = १२८	५१२ / ४×४ = ३२	५१२ / ४×४×४ = ८	५१२ / ४×४×४×४ = २

अन्वयार्थ - (इह) यहाँ अर्थात् अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में **(ताहे संजलणाणं)** संज्वलन कषायों के **(देसावरफड्ढयस्स)** देशघाति जघन्य स्पर्धक के **(हेट्ठादो)** नीचे **(णंतगुणूणं)** अनन्तगुणित हीन अनुभागरूप **(अणंतं)** अनन्त **(अपुव्वफड्ढयं)** अपूर्व स्पर्धकों को **(कुणदि हु)** करता है।

विशेषार्थ - अश्वकर्णकरण करने के प्रथम समय में क्रोध-मान-माया और लोभरूप चार संज्वलन कषायों के अपूर्व स्पर्धकों की रचना करता है।

अपूर्वस्पर्धक - जो स्पर्धक पूर्व में कभी प्राप्त नहीं हुए। किन्तु क्षपक श्रेणी में ही अश्वकर्णकरण के काल में प्राप्त होते हैं और जो संसार अवस्था में प्राप्त होने वाले पूर्वस्पर्धकों के जघन्य स्पर्धक की जघन्य वर्गणा से अनन्तगुणित हानिरूप से अवस्थित हैं, उन्हें अपूर्वस्पर्धक कहते हैं।

पूर्वस्पर्धक जाने बिना अपूर्वस्पर्धकों का ज्ञान नहीं होता। अत: पहले पूर्वस्पर्धकों का स्वरूप संक्षेप मे देखते हैं -

जिसमें सबसे कम अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं उन परमाणुओं को जघन्य वर्ग कहते हैं। ऐसे समान अविभागप्रतिच्छेद जिनमें पाये जाते हैं उन परमाणुओं के समूह को जघन्य वर्गणा कहते हैं। जघन्यवर्गणा की अपेक्षा जिसमें एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक होता है ऐसे अनन्त परमाणुओं के समूह को द्वितीय वर्गणा कहते हैं। इस प्रकार एक-एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक क्रम से वर्ग और उन वर्गों के समूहरूप वर्गणा जहाँ तक प्राप्त होती है वहाँ तक की वर्गणाओं के समूह को जघन्य स्पर्धक कहते हैं।

तदनन्तर जघन्य वर्गणा के वर्ग से दुगुने अविभागप्रतिच्छेदयुक्त वर्गों के समूहरूप द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा होती है। पूर्व के समान इससे एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से अधिक वर्गों के समूहरूप उसकी द्वितीयादि वर्गणा होती है और उन वर्गणाओं के समूहरूप द्वितीय स्पर्धक होता है। इसी प्रकार जघन्य वर्गणा के वर्ग से तिगुने, चौगुने आदि अविभागप्रतिच्छेदयुक्त वर्गों के समूहरूप तीसरे, चौथे आदि स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा होती है। जितनेवाँ स्पर्धक हो उतनी संख्या से जघन्य वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेदों को गुणा करने पर उस स्पर्धक की प्रथम वर्गणा आती है और उस पर एक - एक अविभाग प्रतिच्छेद से अधिक क्रमयुक्त वर्गों के समूह रूप अपनी-अपनी द्वितीयादि वर्गणा जानना चाहिए। अर्थसंदृष्टि से एक वर्ग में (परमाणु में) अनन्त अविभागप्रतिच्छेद होते है। एक वर्गणा में सिद्धों के अनन्तवें भाग और अभव्यराशि से अनन्तगुणे वर्ग होते है। एक स्पर्धक में उतनी ही वर्गणाएँ होती हैं। अंकसंदृष्टि से प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के प्रत्येक वर्ग में आठ-आठ अविभाग-प्रतिच्छेद और प्रत्येक स्पर्धक में चार-चार वर्गणाएँ मानी है।

वर्गणा	प्रथम स्पर्धक	द्वितीय स्पर्धक	तृतीय स्पर्धक	चतुर्थ स्पर्धक	पंचम स्पर्धक
चतुर्थ	११	१९	२७	३५	४३
तृतीय	१० १०	१८ १८	२६ २६	३४ ३४	४२ ४२
द्वितीय	९ ९ ९	१७ १७ १७	२५ २५ २५	३३ ३३ ३३	४१ ४१ ४१
प्रथम	८ ८ ८ ८	१६ १६ १६ १६	२४ २४ २४ २४	३२ ३२ ३२ ३२	४० ४० ४० ४०

सर्व कर्म परमाणुओं के प्रमाण को कुछ अधिक डेढ़गुणहानि का भाग देने से प्रथम वर्गणा के वर्गों का प्रमाण आता है और प्रथम वर्गणा के वर्ग को दो गुणहानि से भाजित करने पर चय का प्रमाण प्राप्त होता है। अत: एक-एक चय घटते हुए द्वितीयादि वर्गणाओं में वर्गों का प्रमाण प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रथम गुणहानि का क्रम जानना चाहिए। प्रथम गुणहानि से द्वितीयादि गुणहानियों में वर्गणाओं के वर्गों का और चय का प्रमाण आधा -आधा होता है। इस प्रकार कर्मपरमाणुओं में नानागुणहानियाँ होती हैं।

अनुभागरचना में गुणहानि और नानागुणहानियों का प्रमाण अनन्त है। प्रत्येक गुणहानि में अनन्त स्पर्धक हैं और प्रत्येक स्पर्धक में वर्गणाएँ अनन्त हैं। एक गुणहानि में वर्गणाओं का जितना प्रमाण है उतना ही गुणहानि आयाम का प्रमाण जानना चाहिए।

अंकसंदृष्टि से स्थितिसंबंधी एक वर्गणा के सर्व कर्मपरमाणु ६३००, गुणहानिआयाम ८, नाना गुणहानि ६, सर्वद्रव्य को कुछ अधिक डेढ़गुणहानि का भाग देने पर प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा का प्रमाण आता है।

$$\frac{\text{सर्वद्रव्य}}{\text{साधिक डेढ़ गुणहानि}} = \text{प्रथम वर्गणा}\ \frac{६३००}{१२\frac{३९}{१२८}} = \frac{६३००}{\frac{१५३६+३९}{१२८}} = \frac{६३००}{\frac{१५७५}{१२८}} = \frac{६३००\times१२८}{१५७५}$$

$= ४ \times १२८ = ५१२$ प्रथम वर्गणा

प्रथम वर्गणा ÷ दो गुणहानि = चय ५१२ ÷ १६ = ३२ चय

प्रथम वर्गणा - एक चय = द्वितीय वर्गणा ५१२ - ३२ = ४८० द्वितीय वर्गणा

इस प्रकार एक-एक चय से कम तृतीयादि वर्गणाओं का प्रमाण जानना चाहिए। इस क्रम से जिस वर्गणा में प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा का आधा २५६ वर्ग प्राप्त होंगे वह द्वितीय गुणहानि की प्रथम वर्गणा जानना चाहिए। यहाँ चय का प्रमाण आधा होता है अर्थात् १६। प्रथम वर्गणा में १६ - १६ कम करने पर द्वितीयादि वर्गणाओं का प्रमाण आता है। इस प्रकार प्रति गुणहानि में आधा-आधा प्रमाण जानना चाहिए। यहाँ गुणहानि ६ हैं।

देशघाति स्पर्धक			सर्वघाति स्पर्धक		
२८८	१४४	७२	३६	१८	९
३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
३५२	१७६	८८	४४	२२	११
३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
लतारूप स्पर्धक		दारुका एकभाग	दारुका बहुभाग	अस्थिरूप स्पर्धक	शैलरूप स्पर्धक

जघन्य स्पर्धक से अनन्त स्पर्धक लताभागरूप हैं। उसके ऊपर अनन्त स्पर्धक दारु भागरूप हैं। उसके ऊपर अनंत स्पर्धक शैलभागरूप हैं। ये स्पर्धक भी देशघाति और सर्वघाति के भेद से दो प्रकार के हैं। उसमें से प्रथम स्पर्धक देशघाति का जघन्य स्पर्धक है। वहाँ से लताभाग के सर्व स्पर्धक और दारू भाग के अनन्तवें भागमात्र स्पर्धक देशघाति हैं। वहाँ अंतिम देशघाति का उत्कृष्ट स्पर्धक है। उसके ऊपर सर्वघाति का जघन्य स्पर्धक है। वहाँ से ऊपर के सर्व स्पर्धक सर्वघाति हैं अर्थात् दारु भाग के अनन्त बहुभाग स्पर्धक और अस्थि तथा शैलभाग के सर्वस्पर्धक सर्वघातिरूप हैं। अंतिम स्पर्धक सर्वघाति का उत्कृष्ट स्पर्धक जानना चाहिए।

कुछ कर्म प्रकृतियों के अनुभाग स्पर्धक सर्वघाति ही है। जैसे-मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी आदि १२ कषाय, केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और पाँच निद्रा इन २१ सर्वघाति प्रकृतियों के सर्व स्पर्धक सर्वघाति ही हैं।

एका निषेक में अनुभाग स्पर्धकों की रचना

अविभाग प्रतिच्छेद	वर्गसंख्या	वर्गणा	स्पर्धक	गुणहानि
१११ १११ १११ १११ ...	९	अड़तालीसवीं	बारहवाँ	अंतिम
११० ११० ११० ११० ...	१०	सैंतालीसवीं		
१०९ १०९ १०९ १०९ ...	११	छयालीसवीं		
१०८ १०८ १०८ १०८ ...	१२	पैंतालीसवीं		
१०२ १०२ १०२ १०२ ...	१३	चवालीसवीं	ग्यारहवाँ	
१०१ १०१ १०१ १०१ ...	१४	तैतालीसवीं		
१०० १०० १०० १०० ...	१५	ब्यालीसवीं		
९९ ९९ ९९ ९९ ...	१६	इकतालीसवीं		
				मध्यम गुणहानियाँ
३९ ३९ ३९ ३९ ...	१४४	सोलहवीं	चौथा	द्वितीय
३८ ३८ ३८ ३८ ...	१६०	पंद्रहवीं		
३७ ३७ ३७ ३७ ...	१७६	चौदहवीं		
३६ ३६ ३६ ३६ ...	१९२	तेरहवीं		
३० ३० ३० ३० ...	२०८	बारहवीं	तीसरा	
२९ २९ २९ २९ ...	२२४	ग्यारहवीं		
२८ २८ २८ २८ ...	२४०	दसवीं		
२७ २७ २७ २७ ...	२५६	नवमी		
२१ २१ २१ २१ ...	२८८	आठवीं	दूसरा	प्रथम
२० २० २० २० ...	३२०	सातवीं		
१९ १९ १९ १९ ...	३५२	छठीं		
१८ १८ १८ १८ ...	३८४	पाँचवीं		
१२ १२ १२ १२ ...	४१६	चौथी	पहला	
११ ११ ११ ११ ...	४४८	तीसरी		
१० १० १० १० ...	४८०	दूसरी		
९ ९ ९ ९ ...	५१२	पहली		

सारणी नीचे से ऊपर देखें।

सम्यक्त्व प्रकृति के अनुभाग स्पर्धक देशघाति ही हैं। कुछ कर्म प्रकृतियों के अनुभाग स्पर्द्धक सर्वघाति और देशघाति दोनों ही प्रकार के हैं। चार ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, चार संज्वलन, नौ नोकषाय, पाँच अंतराय इन पच्चीस देशघाति प्रकृतियों में दोनों ही प्रकार के स्पर्धक हैं।छब्बीस देशघाति प्रकृतियों के लता समान स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के एक-एक वर्ग के अविभागप्रतिच्छेद समान हैं।

इन छब्बीस प्रकृतियों के अनुभाग की रचना देशघाति जघन्य स्पर्धक से उत्कृष्ट देशघाति स्पर्धक तक है। सम्यक्त्व प्रकृति का यहीं उत्कृष्ट अनुभाग समाप्त होता है। शेष पच्चीस प्रकृतियों के अनुभाग की रचना वहाँ से आगे भी सर्वघाति के उत्कृष्ट स्पर्धक तक जाननी चाहिए।

पुनः मिथ्यात्व छोड़कर शेष बीस सर्वघाति प्रकृतियों में देशघाति स्पर्धक है ही नहीं। अतः उनके सर्वघाति जघन्य स्पर्धक की प्रथम वर्गणा परस्पर समान है। उनके अनुभाग की रचना सर्वघाति के जघन्य स्पर्धक से उत्कृष्ट स्पर्धक तक जाननी चाहिए। विशेष यह है कि दारू भाग के अनन्त बहुभागरूप सर्वघाति स्पर्धकों के अनन्तवें भाग मात्र स्पर्धक तक मिश्रमोहनीय के स्पर्धक हैं। उसके ऊपर नहीं हैं। यहाँ तक मिथ्यात्व के स्पर्धक नहीं हैं। यहाँ से आगे उत्कृष्ट स्पर्धक तक मिथ्यात्व के स्पर्धक हैं।

इसी प्रकार चार अघातिया कर्मों की भी अनुभाग रचना जघन्य स्पर्धक से उत्कृष्ट स्पर्धक तक जाननी चाहिए। वहाँ चारों कर्मों की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद समान हैं। उनमें से प्रशस्त प्रकृतियों के गुड़, खांड, शर्करा और अमृतरूप चार प्रकार के स्पर्धक हैं और अप्रशस्त प्रकृतियों के निंब, कांजीर, विष और हलाहल के समान चार प्रकार के स्पर्धक हैं। इस प्रकार संसार अवस्था में होने वाले पूर्वस्पर्धक जानना चाहिए।

इस प्रकार पूर्व स्पर्धक अवस्थित होने पर चार संज्वलन कषायों के पूर्व स्पर्धकों में से प्रदेश पुंज को अपकर्षित करके पूर्वस्पर्धकों की सबसे कम जघन्य वर्गणा के नीचे उसका अनन्तवाँ भागप्रमाण अनुभागयुक्त अपूर्व स्पर्धकों की अश्वकर्णकरण स्थित प्रथम समयवर्ती रचना करता है। पूर्व स्पर्धकों में जघन्य स्पर्धक की जघन्य वर्गणा के नीचे कम अनुभागवाली कोई भी वर्गणा नहीं है। अब यहाँ जघन्य स्पर्धक की जघन्य वर्गणा के नीचे अपूर्वस्पर्धकों की उत्कृष्ट वर्गणा में अविभागप्रतिच्छेद अनन्तवें भागमात्र हैं। इस प्रकार अपूर्वस्पर्धक अनन्त होते हैं।

शंका - पूर्वस्पर्धकों के अनुभाग को अपकर्षण के द्वारा अनन्तगुणा हीन करके यदि अपूर्व स्पर्धक रचे जाते हैं तो उनकी कृष्टि संज्ञा क्यों नहीं दी गई ?

समाधान - जिनकी वर्गणाओं में अविभागप्रतिच्छेद क्रम से उत्तरोत्तर विशेष अधिक या हीन होते हैं, उनकी स्पर्धक संज्ञा है, किन्तु कृष्टियों में अनन्तगुणी वृद्धिहानि का क्रम होता है। अनन्तगुणी वृद्धि और हानि का उत्तरोत्तर क्रम अपूर्वस्पर्धकों में नहीं पाया जाता है। अतः उनकी कृष्टि संज्ञा नहीं दी गई।

अपूर्व स्पर्धकों का प्रमाण निश्चित करते हैं -

गणणादेयपदेसगगुणहाणिट्ठाणफड्ढयाणं तु।
होदि असंखेज्जदिमं अवरादु वरं अणंतगुणं[१] ।।४६८।।

गणनादेकप्रदेशकगुणहानिस्थानस्पर्धकानां तु।
भवत्यसङ्ख्येयमवरतो वरमनन्तगुणम् ।। ४६८ ।।

अन्वयार्थ - (गणणादेयपदेसगगुणहाणिट्ठाणफड्ढयाणं तु) गणना की अपेक्षा अपूर्वस्पर्धक एकप्रदेश गुणहानिस्थानान्तर के स्पर्धकों के **(असंखेज्जदिमं)** असंख्यातवें भाग प्रमाण है। **(अवरादु वरं)** जघन्य अपूर्व स्पर्धक से उत्कृष्ट अपूर्व स्पर्धक **(अणंतगुणं)** अनन्तगुणा है अर्थात् जघन्य अपूर्वस्पर्धक के अविभागप्रतिच्छेदों से उत्कृष्ट अपूर्व स्पर्धकों के अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं[२]।

विशेषार्थ - पूर्वस्पर्धकों की प्रथम वर्गणा एक-एक चय से घटते-घटते जहाँ आधी हो जाती है, उतने आयाम का नाम एकगुणहानि स्थानान्तर है। एक गुणहानि में अभव्यों से अनन्तगुणित और सिद्धों के अनन्तवें भाग स्पर्धक होते हैं।[३] एक गुणहानि के स्पर्धकों के प्रमाण को असंख्यात से गुणित अपकर्षण-उत्कर्षण भागहार से भाग देने पर जो प्रमाण आता है, उतने अपूर्वस्पर्धक होते हैं। अर्थात् एकप्रदेश गुणहानि स्थानान्तर के स्पर्धकों के असंख्यातवें भागप्रमाण अपूर्वस्पर्धकों की संख्या है। वह संख्या भी अभव्यों से अनन्तगुणी और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण अनन्त है।

अनुभाग का अल्पबहुत्व - अपूर्वस्पर्धकों में प्रथम अर्थात् जघन्य स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद जीवराशि से अनन्तगुणे हैं फिर भी उपरिम स्पर्धकों की अपेक्षा अल्प हैं। इसको अनन्त का भाग देकर जो बहुभाग आता है वह उसी में मिलाने पर द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद आते हैं। प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा की परमाणु संख्या से एक परमाणु के अविभागप्रतिच्छेदों को गुणा करने पर प्रथम वर्गणा के संपूर्ण अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण आता है। जैसे - माना कि प्रथम वर्गणा में परमाणु ५१२ और एक परमाणु के अविभागप्रतिच्छेद ८ हैं। अतः ५१२ × ८ = ४०९६ प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं।

उससे दूसरे स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के संपूर्ण अविभागप्रतिच्छेद कुछ कम दुगुने अर्थात् अनन्तबहुभाग अधिक हैं। प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के परमाणुओं की संख्या से दूसरे स्पर्धक की प्रथम वर्गणा की परमाणुसंख्या एक स्पर्धक में जितनी वर्गणाओं का प्रमाण है उतने वर्गणा प्रमाण चय से कम हैं। जैसे - माना की प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा ५१२,एक स्पर्धक शलाका की वर्गणाओं का

१) क. पा.सुत्त पृ.७८९ सू.४९७/ध.पु.६ पृ. ३६६ २) क.पा.सुत्त पृ. ७९१ स ५०१-५०२ ३)ज.ध.पु.१४ पृ.३३४

प्रमाण ४ और चय का प्रमाण ४ है।

प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा - वर्गणा शलाका प्रमाण चय = दूसरे स्पर्धक की वर्गणा

५१२ – (४ × ४) = ५१२ – १६ = ४९६ दूसरे स्पर्धक की प्रथम वर्गणा

प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के एक परमाणु के अविभागप्रतिच्छेदों से द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के एक परमाणु में अविभाग प्रतिच्छेद दुगुणे होते हैं। यदि प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा और द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा का आयाम समान होता तो प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों से द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद दुगुणे हो जाते हैं परन्तु दोनों का आयाम सदृश नहीं है। अत: जितना आयाम कम है उसे प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के एक परमाणु के अविभाग प्रतिच्छेदों से दुगुणी संख्या से गुणा करने पर जो प्रमाण आता है, उतना दुगुणा होने के लिए कम हैं। उदाहरण - द्वितीय स्पर्द्धक की प्रथम वर्गणा में १६ परमाणु कम हैं। दुगुणे द्वितीय स्पर्द्धक की प्रथम वर्गणा के परमाणु के अविभागप्रतिच्छेद = ८ × २ = १६

१६ × १६ = २५६ इतना दुगुणा होने में कम है।

प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदसमूह = ५१२ × ८ = ४०९६

द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदसमूह = (४०९६ × २) – २५६

= ८१९२ – २५६ = ७९३६ अर्थात् ४९६ × १६ = ७९३६

अर्थात् जितने अविभागप्रतिच्छेदों की वृद्धि हुई वे अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं।

उदाहरण:- अनन्त का प्रमाण १६ है।

$$\frac{\text{प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद} \times \text{अनन्त} - १}{\text{अनन्त}}$$

$$= \frac{४०९६ \times १५}{१६} = २५६ \times १५ = ३८४०$$

४०९६ + ३८४० = ७९३६ द्वि. स्प. द्वितीय वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदसमूह से द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदसमूह अनन्तबहुभाग अधिक हैं।

इसी प्रकार द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा की अपेक्षा तृतीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद कुछ कम आधे से अधिक हैं।

उदाहरण - द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद ७९३६ को २ से भाग देने पर ७९३६ ÷ २ = ३९६८ आता है। इसे द्वितीय स्पर्धक के अविभागप्रतिच्छेदों में मिलाने पर ३९६८ + ७९३६ = ११९०४ तृतीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद आते हैं। इसमें कुछ कम का अर्थ एक स्पर्धक वर्गणाशलाका प्रमाण चय को तृतीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के

अविभागप्रतिच्छेद से गुणा करने पर जो प्रमाण आता है उतना कम है।
१६ × २४ = ३८४ , ११९०४ - ३८४ = ११५२० तृतीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद हैं।

तृतीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा से चतुर्थ स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद कुछ कम तृतीय भाग से अधिक हैं।

चतुर्थ स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद =

$$\text{तृतीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद} + \frac{\text{तृतीय स्प.की प्रथम वर्गणा के अवि.}}{३}$$

= ११५२० + (११५२० ÷ ३) = ११५२० + ३८४० = १५३६०

चतुर्थ स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद इससे कुछ कम हैं।
कम का प्रमाण = एक स्पर्धक वर्गणा शलाका प्रमाण चय × चतुर्थ स्पर्द्धक प्रथम वर्गणा के एक वर्ग के अविभाग प्रतिच्छेद = (४ × ४) × ३२ = ५१२
चतुर्थ स्पर्द्धक प्रथम वर्गणा. वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद =प्रथम स्पर्द्धक प्रथम वर्ग के अविभाग-प्रतिच्छेद × ४ = ८ × ४ = ३२
१५३६० – ५१२ = १४८४८ चतुर्थ स्पर्धक प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद

उससे पाँचवें स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद कुछ कम चौथे भाग से अधिक हैं।
पाँचवें स्पर्धक के प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद =
चतुर्थस्पर्धक प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद + (चतुर्थ स्पर्द्धक प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रति ÷ ४) = १४८४८ + (१४८४८ ÷ ४) = १४८४८ + ३७१२ = १८५६० इससे कुछ कम,
कुछ कम का प्रमाण = एक स्प. वर्गणा प्रमाण चय × पाँचवें स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के एक वर्ग के अविभागप्रतिच्छेद = (४ × ४) × (८ × ५) = १६ × ४० = ६४०
१८५६० - ६४० = १७९२० = पाँचवें स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद।

उसी प्रकार छठे आदि स्पर्धकों में कुछ कम पाँचवें आदि भाग अधिक यथाक्रम जानना चाहिए। प्रत्येक स्थान में जितनेवें स्पर्धक के अविभागप्रतिच्छेद निकालना हो उसमें से एक कम करके उसके नीचे के स्पर्धक के अविभाग प्रतिच्छेद समूह में भाग देवें और आये हुए प्रमाण को नीचे के स्पर्धक में मिलावें। इस प्रकार आगे के स्पर्धक के अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। प्रत्येक बार आए हुए प्रमाण से कुछ कम करना चाहिए। कुछ कम का प्रमाण एक स्पर्धक में जितनी वर्गणाएँ है उतने प्रमाण चय को उस विवक्षित स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के एक वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों से गुणा करने पर जो आता है उतना जानना चाहिए।

जघन्य परीतासंख्यातवें स्पर्धक की प्रथम वर्गणा उसके नीचे के स्पर्धक की (उत्कृष्ट संख्यातवें

स्पर्धक की) प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों से कुछ कम उत्कृष्ट संख्यातवें भाग से अधिक है। संख्यातवें भाग की वृद्धि यहाँ समाप्त होती है। इसके आगे यथाक्रम असंख्यातवें भाग की वृद्धि होती है। जघन्य परीतानन्तवें स्पर्धक में अपने से नीचे के स्पर्धक से उत्कृष्ट असंख्यातभागवृद्धि होती है। यहाँ असंख्यात भागवृद्धि समाप्त होती है। वहाँ से आगे अपूर्वस्पर्धक के चरमस्पर्धक तक अनन्त भागवृद्धि होती है।

जितनेवाँ स्पर्धक हो उसमें से एक कम करके उतने भाग से अधिक सर्वत्र समझना चाहिए। इस प्रकार द्विचरम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों में एक कम अपूर्वस्पर्धक प्रमाण का भाग देकर आए हुए एक भाग को द्विचरम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में मिलाने पर चरमस्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण आता है।

उदाहरण - चरम स्पर्धक ८ माने।

चरम अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद =

$$\text{द्विचरम अपूर्वस्पर्धक प्रथम वर्गणा अविभाग प्रतिच्छेद} + \frac{\text{द्विचरम अपूर्वस्पर्धक प्र. व. अविभाग प्रतिच्छेद}}{\text{द्विचरम अपूर्व स्पर्धक की संख्या}}$$

= २३२९६ + (२३२९६ ÷ ७) = २३२९६ + ३३२८ = २६६२४

कुछ कम का प्रमाण १६ × (८ × ८) = १६ × ६४ = १०२४

२६६२४ - १०२४ = २५६०० आठवें अपूर्वस्पर्धक प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद।

इस प्रकार प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों से द्वितीय, तृतीयादि स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद क्रम से कम कुछ दुगुणे, तिगुणे आदि होते हैं। अंतिम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद अपूर्वस्पर्धक का जितना प्रमाण है उतने गुणे होते हैं। प्रथम अपूर्वस्पर्धक की अपेक्षा अंतिम अपूर्वस्पर्धक अनन्तगुणा है, क्योंकि प्रथम स्पर्धक से अनन्त स्पर्धक ऊपर जाकर अंतिम स्पर्धक प्राप्त होता है। अंतिम अपूर्वस्पर्धक की आदिवर्गणा की अपेक्षा पूर्व स्पर्धक की आदि वर्गणा अनन्तगुणा है, क्योंकि पूर्व स्पर्धक की सर्व जघन्य देशघाति वर्गणागत अनुभाग से अनन्तगुणा कम अनुभाग द्वारा अपूर्व स्पर्धकों की रचना होती है।

अर्थसंदृष्टि - प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के एक वर्ग के अविभाग प्रतिच्छेदों की संदृष्टि 'व' चय की संदृष्टि 'वि', एक स्पर्धक में जितनी वर्गणाएँ होती हैं उसका नाम वर्गणाशलाका है। उसकी संदृष्टि ४ है। एक गुणहानि में स्पर्धकों का जितना प्रमाण होता है उसे स्पर्धक शलाका कहते हैं। उसकी संदृष्टि '२' । स्पर्धक शलाका और वर्गणा शलाका को परस्पर गुणा करने पर गुणहानि आयाम होता है, उसकी संदृष्टि ८। २ दो गुणहानि = ८ × २ = १६

प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद = वर्ग × चय × दो गुणहानि = व वि १६,

अपूर्व स्पर्धक रचना और उनके अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण

अपूर्व स्पर्धक क्रमांक	वर्गणा क्रमांक	एक वर्गणा के परमाणुओं का प्रमाण	एक परमाणु के अविभागप्रतिच्छेद	एक वर्गणा के कुल अविभागप्रतिच्छेद
आठवाँ स्पर्धक	४	३८८	६७	३८८×६७= २५९९६
	३	३९२	६६	३९२×६६= २५८७२
	२	३९६	६५	३९६×६५= २५७४०
	१	४००	८×८=६४	४००×६४= २५६००
सातवाँ स्पर्धक	४	४०४	५९	४०४×५९= २३८३६
	३	४०८	५८	४०८×५८= २३६६४
	२	४१२	५७	४१२×५७= २३४८४
	१	४१६	८×७=५६	४१६×५६= २३२९६
छठा स्पर्धक	४	४२०	५१	४२०×५१= २१४२०
	३	४२४	५०	४२४×५०= २१२००
	२	४२८	४९	४२८×४९= २०९७२
	१	४३२	८×६=४८	४३२×४८= २०७३६
पाँचवाँ स्पर्धक	४	४३६	४३	४३६×४३= १८७४८
	३	४४०	४२	४४०×४२= १८४८०
	२	४४४	४१	४४४×४१= १८२०४
	१	४४८	८×५=४०	४४८×४०= १७९२०
चौथा स्पर्धक	४	४५२	३५	४५२×३५= १५८२०
	३	४५६	३४	४५६×३४= १५५०४
	२	४६०	३३	४६०×३३= १५१८०
	१	४६४	८×४=३२	४६४×३२= १४८४८
तीसरा स्पर्धक	४	४६८	२७	४६८×२७= १२६३६
	३	४७२	२६	४७२×२६= १२२७२
	२	४७६	२५	४७६×२५= ११९००
	१	४८०	८×३=२४	४८०×२४= ११५२०

दूसरा स्पर्धक	४	४८४	१९	४८४×१९= ९१९६
	३	४८८	१८	४८८×१८= ८७८४
	२	४९२	१७	४९२×१७= ८३६४
	१	४९६	८×२=१६	४९६×१६= ७९३६
पहला स्पर्धक	४	५००	११	५००×११= ५५००
	३	५०४	१०	५०४×१०= ५०४०
	२	५०८	९	५०८×९= ४५७२
	१	५१२	८×१=८	५१२×८= ४०९६

(सारणी नीचे से ऊपर देखें।)

क्योंकि चय को दो गुणहानि से गुणा करने पर प्रथम वर्गणा के परमाणुओं का प्रमाण आता है। उसे एक परमाणु के अविभागप्रतिच्छेदों से गुणा करने पर प्रथम वर्गणा के सर्व अविभागप्रतिच्छेद आते हैं।

प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा × २ = द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा

व वि १६ × २ = व वि १६।२

प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा × ३ = तृतीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा

व वि १६ × ३ = व वि १६।३

प्रथम समय में किये अपूर्व स्पर्धकों का प्रमाण = $\frac{\text{स्पर्धक शलाका}}{\text{अपकर्षण भागहार × असंख्यात}}$

= ९ / ओ a इसलिए

अंतिम स्पर्धक की आदिवर्गणा = प्रथम स्पर्धक प्रथम वर्गणा × अपूर्व स्पर्धकों का प्रमाण

व वि १६ × ९ / ओ a = व वि १६।९ / ओ a

अपूर्वस्पर्धकों को कितने द्रव्य से रचता है वह कहते हैं -

पुव्वाण फड्ढयाणं छेत्तूण असंखभागदव्वं तु।
कोहादीणमपुव्वं फड्ढयमिह कुणदि अहियकमा[1] ।।४६९।।

पूर्वान् स्पर्धकान् छित्त्वाऽसङ्ख्यभागद्रव्यं तु।
क्रोधादीनामपूर्वं स्पर्धकमिह करोत्यधिकक्रमम्।। ४६९।।

१) ध. पु. ६ पृ. ३६८ /ज.ध.पु.१४ पृ. ३४१

अन्वयार्थ - (पुव्वाण फड्ढयाणं) पूर्व स्पर्धकों को **(छेत्तूण)** छेदकर **(असंखभागदव्वं तु)** असंख्यातवें भागमात्र द्रव्य को ग्रहण करके **(इह)** यहाँ **(कोहादीणं)** क्रोधादिकों के **(अपुव्वं फड्ढयं)** अपूर्व स्पर्धकों को **(अहियकमा)** अधिक क्रम से रचता है।

विशेषार्थ - संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ के पूर्वस्पर्धकों के सर्व द्रव्य को अपकर्षण भागहार मात्र असंख्यात से भाग देकर आए हुए एक भागमात्र द्रव्य को ग्रहण करके यहाँ अपूर्वस्पर्धकों की रचना करता है।[१]

स्पष्टीकरण - सर्व प्रथम कषायों कें पूर्व स्पर्धकों के द्रव्य का प्रमाण कहते हैं -

स्थितिसंबंधी डेढ़गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र मोहनीय का देशघाति द्रव्य है; क्योंकि यहाँ मोहनीय के सर्वघाति द्रव्य का अभाव है। उसे अनुभागसंबंधी किंचित् अधिक डेढ़गुणहानि का भाग देने पर प्रथम वर्गणा आती है। अत: प्रथम वर्गणा को कुछ अधिक डेढ़गुणहानि से गुणा करने पर मोहनीय के सर्व द्रव्य का प्रमाण आता है। उसकी संदृष्टि [व १२]

उसे आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एक भाग अलग रखकर बहुभाग के दो समान भाग करना चाहिए। एक समान भाग में अलग रखे एकभाग को मिलाने पर कषायों का द्रव्य कुछ अधिक आधा [व १२ । / २] है और एक समान भागमात्र नोकषायों का द्रव्य कुछ कम आधा [व १२- / २] है। उन कषायों के द्रव्य को आवलि के असंख्यातवें भाग का भाग देकर आया हुआ एक भाग अलग रखकर बहुभाग के समान चार भाग करना चाहिए। अलग रखे एकभाग द्रव्य को पुन: आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देकर एक भाग अलग रखकर उसमें से बहुभाग द्रव्य प्रथम समान भाग में मिलाने पर लोभ का द्रव्य साधिक चौथा भागमात्र आता है।

समान भाग + एक भाग का बहुभाग = लोभ का द्रव्य [व १२ । / २।४] (समान भाग में एक भाग का बहुभाग मिलाने के लिए कुछ अधिक की संदृष्टि की गयी है।)

पुन: शेष एक भाग को आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देकर एक भाग अलग रखकर बहुभाग द्रव्य दूसरे समान भाग में मिलाने पर माया का द्रव्य कुछ कम चौथा भाग मात्र आता है।

[व १२- / २।४] - (चौथे भाग की अपेक्षा कम दिखाने के लिए कुछ कम की '—' संदृष्टि की गयी है।

पुन: शेष एक भाग को आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देकर आए हुए बहुभाग द्रव्य को तीसरे समान भाग में मिलाने पर क्रोध का द्रव्य कुछ कम चौथा भाग मात्र आता है।

[व १२= / २।४] (माया के द्रव्य की अपेक्षा कम दिखाने के लिए कुछ कम की - संदृष्टि की गयी है।)

शेष रहे एक भाग को चौथे समान भाग में मिलाने पर मान का द्रव्य आता है। [व १२≡ / २।४] यहाँ नोकषायों

१. ज. ध. पु. १४ पृ. ३३३

का सर्वद्रव्य क्रोधरूप संक्रमित हुआ है इसलिए उसे क्रोध के द्रव्य में मिलाना चाहिए। इस प्रकार मोह के सर्वद्रव्य का साधिक आठवाँ भागमात्र लोभ का द्रव्य हुआ। [व १२ (ऊपर ।) / २।४] = [व १२ (ऊपर ।) / ८]

माया का द्रव्य कुछ कम आठवाँ भागमात्र [व १२- / ८] मान का द्रव्य कुछ कम आठवाँ भागमात्र और क्रोध का द्रव्य कुछ कम पाँच अष्टमांश भागमात्र है वह इस प्रकार है -

क्रोध का द्रव्य = क्रोध का स्वद्रव्य $\frac{१}{८}$ + नोकषायों का द्रव्य $\frac{१}{२}$

$$\frac{१}{८} + \frac{१}{२} = \frac{१}{८} + \frac{१\times४}{२\times४} = \frac{१+४}{८} = \frac{५}{८}$$ = क्रोध का द्रव्य

अर्थसंदृष्टि

समच्छेद

$\frac{व\ १२=}{८} + \frac{व\ १२=}{२}$ | $\frac{व\ १२=}{८} + \frac{व\ १२।४=}{२।४}$ | $\frac{व\ १२=।५}{८}$ [$\frac{व\ १२=।५}{८}$] = क्रोध का द्रव्य

लोभ	माया	मान	क्रोध
व १२ (ऊपर ।) / ८	व १२- / ८	व १२ ≡ / ८	व १२=।५ / ८

अपने - अपने द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर एक भाग मात्र द्रव्य ग्रहण करके अपूर्व स्पर्धक करता है। क्रोधादिकों के अपूर्वस्पर्धक अधिक क्रमसहित हैं। क्रोध के अपूर्वस्पर्धक अल्प हैं। उससे मान के अपूर्व स्पर्धक अनन्तवें भाग अधिक हैं। उससे माया के अपूर्व स्पर्धक अनन्तवें भाग अधिक और उससे लोभ के स्पर्धक अपूर्व अनन्तवें भाग अधिक हैं।

अंकसंदृष्टि से माना कि क्रोध के स्पर्धक १६ और अनन्त का प्रमाण क्रमश : ४, ५ और ६

क्रोध के स्पर्धक + $\frac{\text{क्रोध के स्पर्धक}}{\text{अनंत}}$ = मानकषाय के अपूर्व स्पर्धक $\quad १६ + \frac{१६}{४} = १६ + ४ = २०$

मान के स्पर्धक + $\frac{\text{मान के स्पर्धक}}{\text{अनंत}}$ = मायाकषाय के अपूर्व स्पर्धक $\quad २० + \frac{२०}{५} = २० + ४ = २४$

माया के स्पर्धक + $\frac{\text{माया के स्पर्धक}}{\text{अनंत}}$ = लोभ कषाय के अपूर्व स्पर्धक $\quad २४ + \frac{२४}{६} = २४ + ४ = २८$

क्रोध के अपूर्व स्पर्धकों का प्रमाण [ओ ७ (ऊपर ९)] है। इसमें अनन्त का भाग देकर क्रम से एक, दो,

तीन अधिक अनन्त से गुणा करने पर मान, माया व लोभ के अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण आता है।

	क्रोध	मान	माया	लोभ
अर्थसंदृष्टि	९ ओ a	१- ९ ख ओ a	२- ९ ख ओ a ख	३- ९ ख ओ a ख
अंकसंदृष्टि	१६	(१६ × ५)/४ = २०	(१६ × ६)/४ = २४	(१६ × ७)/४ = २८

अपूर्व और पूर्व स्पर्धकों में देय द्रव्य का विभाग कहते हैं -

समखंडं सविसेसं णिक्खवियोकट्टिदादु सेसधणं।
पक्खेवकरणसिद्धं इगिगोउंछेण उभयत्थ ।। ४७० ।।

समखण्डं सविशेषं निक्षिप्यापकर्षितात् शेषधनम्।
प्रक्षेपकरणसिद्धमेकगोपुच्छेनोभयत्र ।। ४७० ।।

अन्वयार्थ - (ओकट्टिदादु) अपकर्षित द्रव्य में से अपूर्वस्पर्धकों में **(समखंडं सविसेसं)** विशेषसहित समखण्डरूप द्रव्य को **(णिक्खविय)** निक्षिप्त करके **(सेसधणं)** शेष रहा द्रव्य **(इगिगोउंछेण)** एक गोपुच्छद्वारा **(उभयत्थ)** उभयत्र अर्थात् पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों में देता है। इस प्रकार **(पक्खेवकरणसिद्धं)** प्रक्षेपणकरण सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ - अपकर्षित द्रव्य में से कुछ द्रव्य द्वारा अपूर्व स्पर्धक जो पूर्व में नहीं थे उनको नवीन सद्भावरूप करता है और शेष रहे द्रव्य को पूर्व और अपूर्वस्पर्धकों में निक्षिप्त करता है। अपूर्व स्पर्धकों की रचना कितने द्रव्यद्वारा की जाती है वह कहते हैं -

पूर्व स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा के द्रव्य को अपकर्षण भागहार से भाग देकर व/ओ एक भाग मात्र द्रव्य को ग्रहण करके अपूर्व स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा में कुछ वर्गो की रचना करता है। इस प्रकार दो कम अपकर्षण भागहार मात्र पूर्व स्पर्धकों की द्वितीयादि वर्गणाओं के परमाणुओं को अपकर्षण भागहार से भाग देकर (व ओ-२)/ओ एक भागमात्र द्रव्य को ग्रहण करके अपूर्व -स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में देता है।

पूर्वोक्त दोनों द्रव्य को मिलाने पर (व ओ- २)/ओ + व/ओ = (व ओ-१)/ओ (दो ऋण की जगह एक ऋण हुआ)

पूर्वोक्त वर्गणा के द्रव्य को अपकर्षण भागहार से भाग देने पर एक भाग के बिना शेष बहुभाग प्रमाण द्रव्य आता है। वर्गणा के द्रव्य को अपकर्षण भागहार से भाग देने पर और एक कम अपकर्षण भागहार से गुणा करने पर यह द्रव्य पूर्व स्पर्धक की आदि वर्गणा के द्रव्य के समान होता है, क्योंकि पूर्व स्पर्धकों की सर्व वर्गणाओं के द्रव्य को अपकर्षण भागहार से भाग देकर एक भागमात्र द्रव्य का अपकर्षण किया। अतः वहाँ बहुभागमात्र द्रव्य शेष रहा। पूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा का द्रव्य भी एक भाग अपकर्षित होकर बहुभागमात्र शेष रहा। उपर्युक्त द्रव्य इतना ही है। इतने द्रव्य से अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा उत्पन्न हुई। उसके ऊपर इतने-इतने द्रव्य से अपूर्वस्पर्धक की द्वितीयादि वर्गणाओं की रचना होती है। एक स्पर्धक की वर्गणासंख्या को अपूर्वस्पर्धकों के प्रमाण से गुणा करने पर अपूर्वस्पर्धकों की कुल वर्गणाओं का प्रमाण आता है। अपूर्व स्पर्धकों का प्रमाण × एक स्पर्धक वर्गणा शलाका = कुल अपूर्व वर्गणा

९/ओ a × ४ = [९।४ / ओ a] यहाँ स्पर्धकों की संदृष्टि '९' का अंक और वर्गणाशलाका की संदृष्टि ४' का अंक है। उन्हें परस्पर गुणा करने पर गुणहानि होती है; अतः ९ × ४ की जगह '८' गुणहानि आयाम लिखने पर [८ / ओ।a] ऐसी संदृष्टि होती है। एक वर्णणा का [व ओ-१ / ओ] इतना द्रव्य होता है तो [८ / ओ a] इतनी वर्गणाओं का कितना द्रव्य होता है ?

ऐसा त्रैराशिक करने पर अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणाओं का समपट्टिकारूप द्रव्य आता है।

प्रमाण	फलराशी	इच्छा	लब्ध		
१ वर्गणा का	व ओ-१ / ओ इतना द्रव्य	८ / ओ a इतनी वर्गणाओं का कितना?	फल×इच्छा / प्रमाण	व ओ-१।८ / ओ । ओ a	समपट्टिका धन

अंक संदृष्टि से पूर्वस्पर्धकों की प्रथम वर्गणा २३२, अपूर्व स्पर्धकों का प्रमाण ४, वर्गणा शलाका ४ इसलिए २३२ × १६ = ३७१२ समपट्टिका धन आता है। अपूर्व स्पर्धक वर्गणा = ४ × ४ = १६
अब अपूर्व स्पर्धकों का चयधन (विशेषधन) निकालते हैं -

पूर्व स्पर्धकों में गुणहानि - गुणहानि के प्रति ऊपर से नीचे चय का प्रमाण दुगुणा-दुगुणा है। यहाँ पूर्व स्पर्धक की प्रथम गुणहानि के नीचे अपूर्व स्पर्धकों की रचना हुई है। अतः पूर्व स्पर्धक की प्रथम गुणहानि में जो चय का प्रमाण है, उससे दुगुणा अपूर्व स्पर्धकों में चय का प्रमाण जानना चाहिए।

पूर्व स्पर्धकों में प्रथम गुणहानि का चय = $\frac{\text{पूर्व स्पर्धक प्रथम वर्गणा}}{\text{दो गुणहानि}}$ [व ओ-१ / ओ १६]

एक गुणहानि ८ इसलिए दो गुणहानि १६

अपूर्व स्पर्धकों का चय = पूर्व स्पर्धक प्रथम गुणहानि चय × २ = [व ओ-१×२ / ओ १६] = [व ओ-१ / ओ ८]

एक विशेष (चय) पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा के नीचे की अंतिम अपूर्वस्पर्धक की अंतिम वर्गणा में अधिक होता है। उसके नीचे द्विचरम वर्गणा में दो चय अधिक होते है। इस प्रकार क्रम से एक-एक चय अधिक होते-होते अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणाप्रमाण चय प्रथम अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में होते हैं। सर्व का संकलन करने का सूत्र - सैकपदाहतपददले

पद +१ × चय × (पद / २) = चयधन। अंकसंदृष्टि से पूर्वस्पर्धक की प्रथम गुणहानि का चय १६ है तो अपूर्व स्पर्धका का चय ३२, और पद १६ है।

(१६ + १) × ३२ × (१६ ÷ २) = १७ ×१६ ×१६ = २७२ × १६ = ४३५२ चयधन

अर्थसंदृष्टि - (८ + १ / ओ a) × (व ओ-१ / ओ ८) × (८ / ओ a २) = [व ओ-१ / ओ ८ · ८ (ऊपर १-) / ओ a · ८ / ओ a २] अपूर्व स्पर्धकों का चयधन

पूर्वोक्त समपट्टिका धन और यह चयधन मिलकर जो प्रमाण आएगा उतना द्रव्य अपकर्षित द्रव्य में से ग्रहण करके इन अपूर्व स्पर्धकों की रचना होती है।

समपट्टिकाधन + चयधन = अपूर्वस्पर्धक चयधन ३७१२ + ४३५२ = ८०६४

[व ओ-१ । ८ / ओ ओ a] + [व ओ-१ / ओ ८ · ८ (ऊपर १-) / ओ a · ८ / ओ a २] = [व (ऊपर ।) ओ-१ । ८ / ओ ओ a]

(समपट्टिकाधन में चयधन मिलाने के लिए ऊपर साधिक की संदृष्टि करना चाहिए।)

यहाँ संदृष्टि के लिए गुणकार और भागहार को डेढ़ से गुणा करना चाहिए।

(व (ऊपर ।) ओ -१।८ × (३/२)) / (ओ ओ a (३/२)) = (व (ऊपर ।) ओ-१।१२) / (ओ ओ a (३/२)) = [व (ऊपर ।) १२ ओ-१ / ओ ओ a (३/२)] (आठ गुणित तीन द्वितीयांश का भाग देने पर १२ आता है और १२ को ओ के पीछे रखा है)

इतना द्रव्य अपूर्व स्पर्धकों में देना चाहिए।

पूर्वस्पर्धक पहले थे ही, अपूर्वस्पर्धक पहले नहीं थे इसलिए उनका सद्भाव होने के लिए उपर्युक्त द्रव्य अपूर्वस्पर्धकों में दिया। गाय की पूँछ जैसे क्रम से छोटी होती जाती है वैसे ही यहाँ चय घटते हुए अपूर्वस्पर्धकों का एक गोपुच्छ हुआ। उसके ऊपर पूर्वस्पर्धकों की रचना भी चय घटते क्रम से है इसलिए पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों का मिलकर एक गोपुच्छ हुआ। अपकर्षित द्रव्य में से पूर्वोक्त द्रव्य कम करने पर जो शेष धन रहता है उसे पूर्व और अपूर्व स्पर्धकों में सर्वत्र विभाग करके देता है।

लोभ का अपकर्षण किया हुआ द्रव्य [व १२ (ऊपर ।) / ८ ओ] इतना है। मोह के सर्वद्रव्य की अपेक्षा आठ का

भागहार होता है। लोभ की ही वर्गणा को डेढ़गुणहानि से गुणा करने पर लोभ का द्रव्य होता है इसे अपकर्षण भागहार से भाग देने पर [व १२ / ओ] ऐसी अपकर्षित द्रव्य की संदृष्टि होती है।

अपकर्षित सर्वद्रव्य – अपूर्वस्पर्धकों में दिया द्रव्य = अवशेष द्रव्य

अंकसंदृष्टि से समस्त अपकर्षित द्रव्य ३९४२४ माना। ३९४२४ - ८०६४ = ३१३६०

व १२ / ओ − व १२ ओ -१ / ओ ओ ꒐ ३/२ समच्छेद करने पर [ओ ꒐ ३ / २] यह भागहार अधिक है इसलिए इतनी संख्यासे ऊपर और नीचे गुणा किया।

व १२ ओ꒐ ३/२ - / ओ ओ ꒐ ३/२ − व १२ ओ-१ / ओ ओ ꒐ ३/२

दोनों द्रव्यों में समान संख्या निकालकर मूलराशि के [ओ ꒐ ३ / २] गुणकार में से ऋणराशि का ओ-१ गुणकार घटाना।

कम करने की संदृष्टि '-' [ओ ꒐ ३ / २] इस गुणकार के आगे की है। [व १२ ओ꒐ ३/२ - / ओ ओ ꒐ ३/२]

वहाँ अपूर्वस्पर्धक वर्गणा प्रमाण [८ / ओ꒐] एक शलाका स्थापित करके उसका भाग अपूर्वस्पर्धक वर्गणा प्रमाण में देने पर स्पर्धक संबंधी एक शलाका हुई और उसका भाग डेढ़गुणहानि गुणित पूर्वस्पर्धक वर्गणा प्रमाण को [८ । ३/२] देने पर [८ । ३ / ८ । २ / ओ ꒐] असंख्यात गुणित अपकर्षण भागहार को डेढ़गुणित करने पर जितना प्रमाण आता है उतनी पूर्वस्पर्धक की वर्गणाशलाकाएँ होती हैं। यहाँ गुणहानि का अपवर्तन करके भागहार का भागहार राशि का गुणकार होता है इसलिए ओ ꒐ को राशि का गुणकार करने पर [ओ ꒐ ३ / २] पूर्वस्पर्धक संबंधी शलाकाएँ होती हैं।

पूर्वस्पर्धक के एक गुणहानिप्रमाण स्पर्धकों में असंख्यातगुणित अपकर्षण भागहार से भाग देने पर अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण आता है इसलिए असंख्यातगुणित अपकर्षण भागहार कहा गया है और पूर्वस्पर्धकों में नाना गुणहानि अनन्त हैं तथापि द्रव्य की अपेक्षा से डेढ़गुणहानिगुणित प्रथम वर्गणामात्र है। इसलिए डेढ़ का गुणकार किया ऐसा समझना चाहिए।

अंकसंदृष्टि - माना कि एक गुणहानि में पूर्व स्पर्धक १६ और प्रत्येक स्पर्धक में ४ वर्गणाएँ हैं। तो गुणहानि आयाम १६ × ४ = ६४ होता है। डेढ़गुणहानि का प्रमाण ६४ × (३ ÷ २) = ९६ आता है। अपूर्व स्पर्धक की वर्गणाओं का प्रमाण १६ माना। इसलिए ९६ ÷ १६ = ६ पूर्व स्पर्धक शलाकाओं का प्रमाण ६ आता है।

पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों की शलाकाओं को मिलाकर उसका भाग पूर्वोक्त अवशेष रहे द्रव्य में देने पर

एक शलाकासंबंधी द्रव्य आता है। उसे पूर्वस्पर्धक संबंधी शलाका से गुणा करने पर पूर्वस्पर्धक में देने योग्य द्रव्य का विभाग आता है और अपूर्वस्पर्धक संबंधी शलाका से गुणा करने पर अपूर्वस्पर्धकों में देने योग्य द्रव्य का विभाग आता है। पूर्व स्पर्धक शलाका + अपूर्व स्पर्धक शलाका = उभय शलाका

अंकसंदृष्टि ६ + १ = ७ अर्थसंदृष्टि ओ a ३/२ + १ = [१ ⁄ ओ a ३/२]

(अवशेष द्रव्य / उभय शलाका) × पूर्व स्पर्धक शलाका = पूर्व स्पर्धक संबंधि द्रव्य

(३१३६० / ७) × ६ = २६८८० पूर्व स्पर्धक संबंधि द्रव्य

अर्थसंदृष्टि

(व १२ ओ a ३/२ - / ओ ओ a ३/२ · १⁄ओ a ३/२) × ओ a ३/२ = [व १२ ओ a ३/२ - · १ ⁄ ओ ओ a ३/२] गुणकार व भागहारभूत ओ a ३/२ इसका अपवर्तन किया पूर्वस्पर्धक संबंधी द्रव्य

(अवशेष द्रव्य / उभय शलाका) × अपूर्व स्पर्धक शलाका = अपूर्व स्पर्धक संबंधी द्रव्य

अंकसंदृष्टि

(३१३६० / ७) × १ = ४४८०

अर्थसंदृष्टि [व १२ ओ a ३/२ - । १ · १ ⁄ ओ ओ a ३/२ ओ a ३/२] अपूर्व स्पर्धक संबंधी द्रव्य

इस अपूर्वस्पर्धक संबंधी विभाग द्रव्य को पूर्वोक्त अपूर्वस्पर्धकों में दिए हुए द्रव्य में मिलाने पर अपूर्वस्पर्धक संबंधी सर्व द्रव्य आता है। ८०६४ + ४४८० = १२५४४ अपूर्वस्पर्धकों का सर्वद्रव्य। पूर्वोक्त अपूर्वस्पर्धक का द्रव्य [व १२ ओ - १ ⁄ ओ ओ a ३/२] इतना है। इसमें गुणकाररूप अपकर्षण भागहार में एक कम है। उसे निकालकर भागहारभूत अपकर्षण भागहार का गुणकार ओ a ३/२ में एक अधिक करना।

(उदाहरण $\frac{१०\times(५-१)}{५\times४}$ है। इसका रूपांतर ऐसा किया $\frac{१०\times५}{५\times४+१} = \frac{१०\times५}{५\times५}$ तो उत्तर एक ही आता है। $\frac{१०\times४}{५\times४} = २$ अथवा $\frac{१०\times५}{५\times५} = २$)

परिवर्तन करने पर पूर्वोक्त अपूर्व स्पर्धक द्रव्य [व १२ ओ / १— / ओ ओ a ३ / २] इसमें बाद में दिया हुआ द्रव्य साधिक करना। [व १२ ओ / १— / ओ ओ a ३ / २] अपूर्वस्पर्धक संबंधि सर्व द्रव्य

उपर्युक्त द्रव्य 'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे' इस सूत्र में कहे गए विधान के अनुसार अपूर्वस्पर्धकों में विभाग करके देना चाहिए।

सर्वधन ÷ गच्छ = मध्यमधन। अंकसंदृष्टि = १२५४४ ÷ १६ = ७८४ = मध्यमधन

अर्थसंदृष्टि - यहाँ गच्छ का प्रमाण यह है। [८ / ओ a] सर्वधन उपर्युक्त द्रव्य है। [व १२ ओ / १— / ओ ओ a ३ / २]

इसलिए मध्यमधन [व १२ ओ / १— / ओ ओ a ३ ८ / २ ओ a] इतना आता है। (यहाँ गुणकारभूत डेढ़गुणहानि १२ और भागहारभूत गुणहानि ८ का अपवर्तन करने पर (३ ÷ २) आता है और भागहार का भागहार ओ a राशि का गुणकार करना। ऐसा करने पर मध्यमधन ऐसा आता है। [व ओ ओ a ३ / २ / १— / ओ ओ a ३ / २]

$$\frac{\text{मध्यमधन}}{\text{दो गुणहानि} - \frac{(\text{गच्छ} - १)}{२}} = \text{चय}$$

[व ओ ओ a ३ / २ / १— / ओ ओ a ३ १६ - १/८ / २ ओ a २] चय

अंकसंदृष्टि

$$\frac{७८४}{३२ - \frac{(१६-१)}{२}} = \frac{७८४}{\frac{६४ - १५}{२}} = \frac{७८४}{\frac{४९}{२}} = \frac{७८४ \times २}{४९} = ३२ \text{ चय}$$

चय × दो गुणहानि = प्रथम वर्गणा

अंकसंदृष्टि ३२ × ३२ = १०२४ प्रथम वर्गणा

(यहाँ अपूर्वस्पर्धक की वर्गणाओं का प्रमाण १६ माना। इसलिए दो गुणहानि का प्रमाण ३२ होता है।

[व ओ ओ a ३ १६ / २ / १— / ओ ओ a ३ १६ - १/८ / २ ओ a २] प्रथम वर्गणा

इतना द्रव्य अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में देता है। उससे एक-एक चय कम करते हुए द्वितीयादि वर्गणाओं में क्रम से देता है। एक हीन गच्छप्रमाण चयों से हीन द्रव्य अंतिम वर्गणा में देता है।

व ओ ओ a ३/२ १६-८ (१, ओ a) १— ओ ओ a ३/२ १६-८ (१, ओ a २)

अंकसंदृष्टि - १०२४ - (१६ - १ × ३२) = १०२४ - (१५ × ३२)
= १०२४ - ४८० = ५४४ अंतिम वर्गणा

इस प्रकार अपूर्वस्पर्धक नवीन किए। पूर्व स्पर्धकों की रचना पूर्व में थी ही। अब यहाँ पूर्वोक्त पूर्वस्पर्धक संबंधी बहुत शलाकाप्रमाण द्रव्य का जो विभाग कहा गया है वह देना चाहिए।

'दिव्वड्ढगुणहानि भाजिदे पढमा' इस सूत्रानुसार देना चाहिए।

सर्वद्रव्य ÷ डेढगुणहानि = प्रथम वर्गणा।

अंकसंदृष्टि = २६८८० ÷ ९६ = २८० यहाँ पूर्व स्पर्धक संबंधी देनेयोग्य द्रव्य सर्वद्रव्य है।

व १२ ओ a ३/२ - १— ओ ओ a ३/२ ।१२

यहाँ गुणकारभूत भागहारभूत डेढ़गुणहानि का अपवर्तन करने पर इतना द्रव्य पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में देना चाहिए।

व ओ a ३/२ - १— ओ ओ a ३/२

पूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा

प्रथम वर्गणा ÷ दो गुणहानि = चय   चय की संक्षिप्त संदृष्टि 'वि'। इस को दो गुणहानि से गुणा करने पर प्रथम वर्गणा [वि १६] आती है।

ऊपर द्वितीयादि वर्गणाओं से लेकर प्रथम गुणहानि के अंत तक एक-एक चय कम करते जाना चाहिए और प्रत्येक गुणहानि में क्रम से आधा-आधा द्रव्य निक्षेपण किया जाता है।

अंतिम गुणहानि की अंतिम वर्गणा में देय द्रव्य का प्रमाण =

एक कम नाना गुणहानि प्रमाण बार प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा को दो से भाग देने पर अंतिम गुणहानि की प्रथम वर्गणा आती है और उसमें से एक कम गुणहानि प्रमाण चय कम करने पर अंतिम वर्गणा का प्रमाण आता है।

$$\frac{\text{प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा}}{\text{२ का गुणकार एक कम नाना गुणहानि बार}} = \text{अंतिम गुणहानि की प्रथम वर्गणा} \quad \boxed{\frac{\text{वि १६}}{\text{२। ना-१}}}$$

प्रथम वर्गणा - (गुणहानि - १ × चय)= अंतिम वर्गणा

वि १६ - गु (१) २। ना-१

(पूर्वापूर्वस्पर्धकों की रचना का चित्र आगे के पृष्ठ पर दिया है।)

अपूर्वस्पर्धक व पूर्वस्पर्धकों की रचना

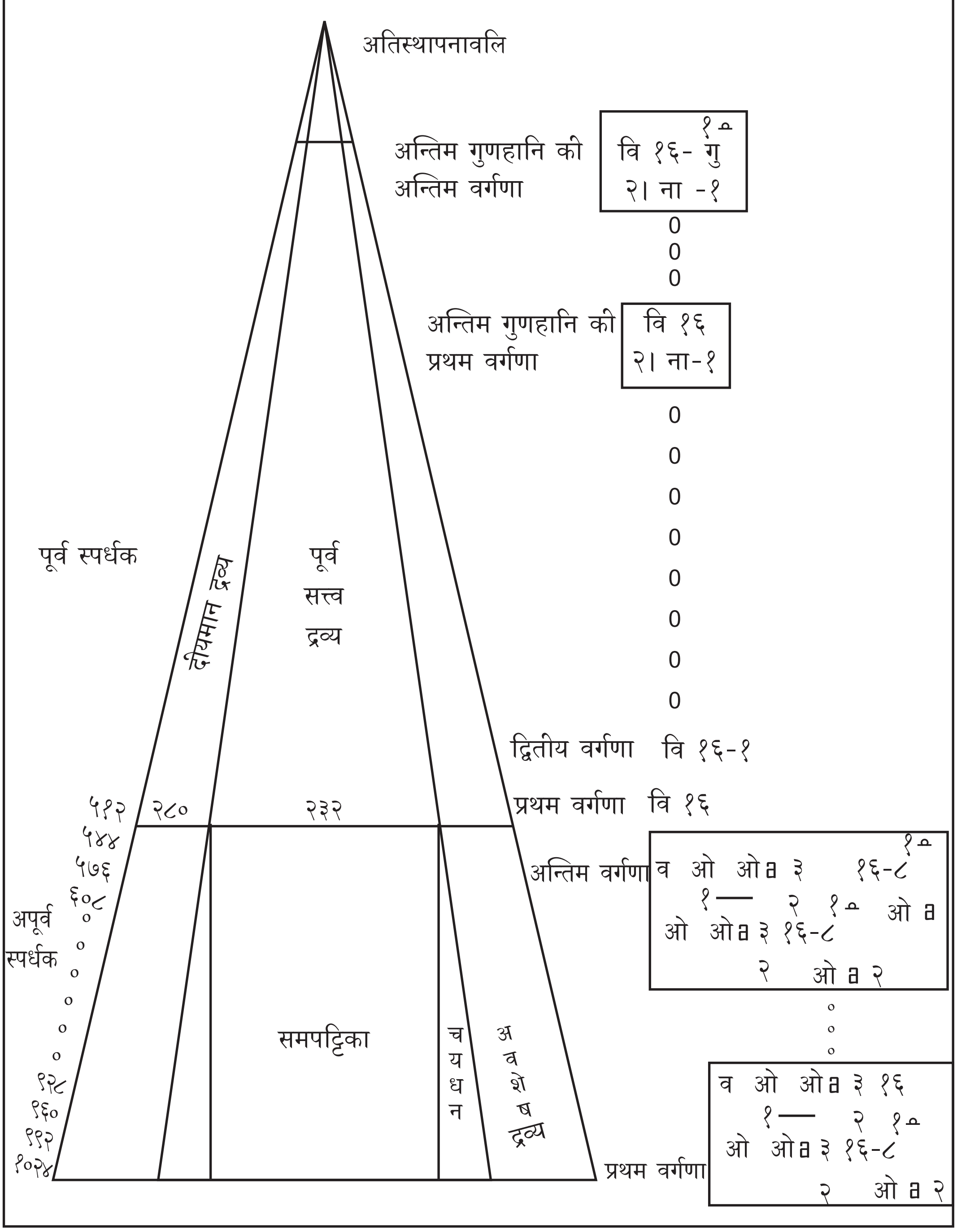

ओक्कट्टिदं तु देदि अपुव्वादिमवग्गणाउ हीणकमं।
पुव्वादिवग्गणाए असंखगुणहीणयं तु हीणकमा ।। ४७१ ।।

अपकर्षितं तु ददात्यपूर्वादिमवर्गणाया हीनक्रमम्।
पूर्वादिवर्गणायामसङ्ख्यगुणहीनकं तु हीनक्रमाः ।। ४७१ ।।

अन्वयार्थ - (ओक्कट्टिदं) अपकर्षित द्रव्य को **(अपुव्वादिमवग्गणाउ)** अपूर्वस्पर्धक की आदिवर्गणा से लेकर **(हीणकमं)** हीनक्रम से **(देदि)** देता है **(तु)** परन्तु उसके बाद **(पुव्वादिवग्गणाए)** पूर्वस्पर्धक की आदिवर्गणा में **(असंखगुणहीणयं)** असंख्यात-गुणा हीन देता है। **(तु)** पुन: उसके बाद **(हीणकमा)** विशेषहीन क्रम से देता है।

विशेषार्थ - पूर्वोक्त विधान से अपकर्षित किए द्रव्य में से अपूर्व स्पर्धक की आदि वर्गणा में सबसे अधिक द्रव्य देता है। उससे उसकी द्वितीयादि अंतिमवर्गणा तक चयहीन क्रम से द्रव्य देता है। अपूर्वस्पर्धक की अंतिमवर्गणा से पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में साधिक अपकर्षण भागहारमात्र असंख्यातगुणा हीन द्रव्य देता है। यहाँ नवीन दिये द्रव्य की विवक्षा है। इस पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा का पुराना द्रव्य वर्गणा के द्रव्य को अपकर्षण भागहार से भाग देने पर जो बहुभाग आता है उतना है। उससे सहित नवीन दिया हुआ द्रव्य अपूर्व स्पर्धक की अंतिम वर्गणा के द्रव्य से एक चय कम है, क्योंकि पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों का एक गोपुच्छ हुआ है।

उस पूर्वस्पर्धक की द्वितीयादि वर्गणाओं में एक-एक चय कम द्रव्य निक्षेपण करता है। पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में निक्षिप्त हुआ द्रव्य पूर्व अवस्थित द्रव्य का असंख्यातवाँ भागप्रमाण ही है क्योंकि डेढ़गुणहानि से भाजित अपकर्षित सर्वद्रव्य संबंधी असंख्यातबहुभाग द्रव्य देकर साधिक अपकर्षण - उत्कर्षण भागहार से आदि वर्गणा को भाग देने पर जितना द्रव्य आता है उतना प्रथम वर्गणा में प्राप्त होता है।[1] इसी अर्थ को क्षेत्रविन्यास से स्पष्ट करते हैं।

पूर्व स्पर्धकों का सर्वद्रव्य डेढ़गुणहानिगुणित प्रथम वर्गणामात्र है अर्थात् पूर्वस्पर्धकों के द्रव्य में प्रथम वर्गणा समान वर्गणाएँ करने का निश्चय किया तो वे डेढ़गुणहानि प्रमाण होती हैं।
उदाहरण - ६३०० ÷ ५१२ = १२ कुछ अधिक आता है इसलिए डेढ़गुणहानि का जितना प्रमाण है उतनी लंबाई और प्रथम वर्गणा के परमाणुप्रमाण चौड़ाई क्षेत्र स्थापन करना चाहिए।

---
१) ज.ध.पु. १४ पृ. ३५०

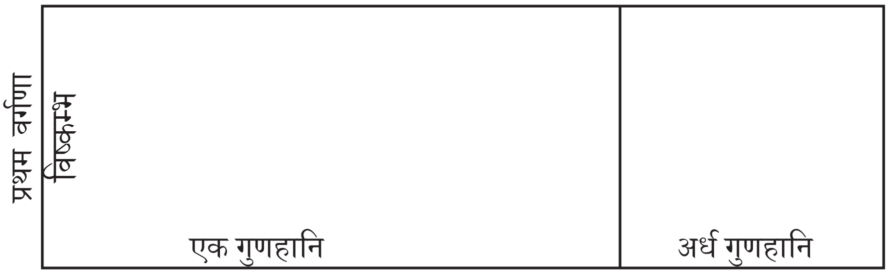

इस क्षेत्र के विष्कम्भ में अपकर्षण - उत्कर्षण भागहार प्रमाण फालि करना चाहिए। यहाँ अपकर्षण-उत्कर्षण भागहार का प्रमाण ५ माना है इसलिए पूर्ण आदिवर्गणा की पाँच फालि प्राप्त होती है। उसमें से एकफालि प्रमाण क्षेत्र समस्त अपकर्षित द्रव्य है इसलिए उसको अलग प्रदर्शित करना चाहिए।

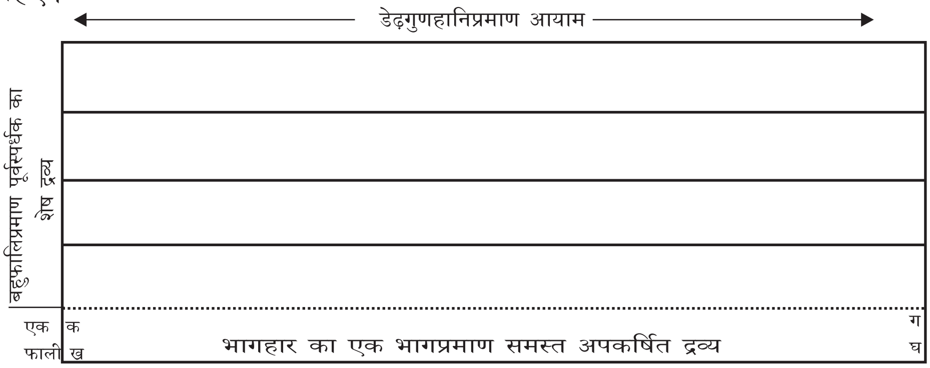

अवशेष बहुभागप्रमाण विस्तृत क्षेत्र अवशेष खंडों का रहा वह अपकर्षण करके शेष रहे पूर्वस्पर्धकस्वरूप जानना चाहिए। एक फालि को ग्रहण करके अलग स्थापित करने पर उस फालि का जितना प्रमाण है उतना अपकर्षित किए द्रव्य का प्रमाण होता है। इस द्रव्य का अपकर्षण अपूर्वस्पर्धकों की रचना करने के लिए हुआ है। अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण एकप्रदेश गुणहानिस्पर्धकों को असंख्यातगुणा अपकर्षण-उत्कर्षण भागहार से भाग देने पर एक भाग प्रमाण आता है। वह ऐसा है $\frac{८}{ओ\ a}$

यहाँ पृथक् ग्रहण किये फालि का आयाम डेढ़गुणहानिप्रमाण है इसलिए असंख्यातगुणा अपकर्षण-उत्कर्षण भागहार को डेढ़गुणहानि से गुणा करे। उदाहरण - असंख्यात का प्रमाण ८ ÷ ५, अपकर्षण भागहार ५, (८ ÷ ५) × ५ = ८ इसका डेढ़गुणित ८ × (३ ÷ २) = १२ आता है। अर्थात् पूर्वोक्त एक फालिप्रमाण द्रव्य को भाग देने पर एक-एक खण्ड का आयाम अपूर्वस्पर्धकों के आयाम प्रमाण प्राप्त होता है।

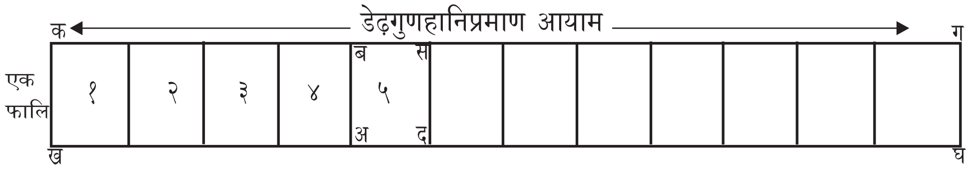

इसमें से प्रत्येक खण्ड का आयाम अपूर्वस्पर्धक के आयाम के समान है। इन खण्डों में से एक कम उत्कर्षण-अपकर्षण भागहार प्रमाण खण्डों को ग्रहण करके पूर्वस्पर्धक के नीचे आगम-अविरोधपूर्वक जोड़ने पर पूर्वस्पर्धक की आदिवर्गणा के समान अपूर्वस्पर्धक की समस्त वर्गणाएँ दिखती हैं।

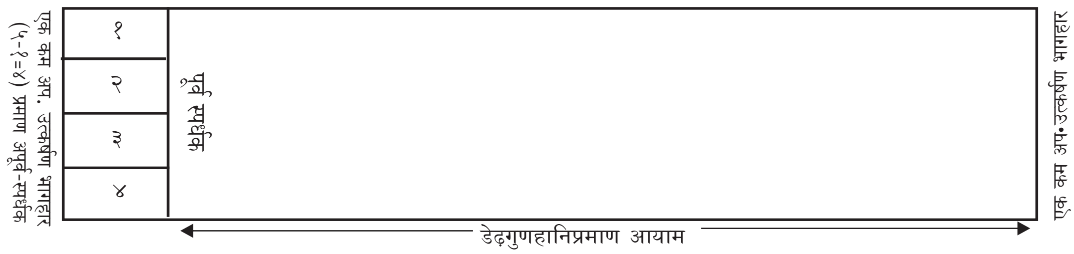

जब तक इन अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणाओं में चय नहीं मिलाते तब तक इन अपूर्वस्पर्धकों का गोपुच्छाकार हो नहीं सकता इसलिए अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणाओं के आयाम प्रमाण गच्छ का एक बार संकलन धन प्रमाण चयों को शेष खण्डों में से ग्रहण करके अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणाओं में देना चाहिए।

अपूर्व स्पर्धक की चरम वर्गणा में एक चय, द्विचरमवर्गणा में दो चय, त्रिचरमवर्गणा में तीन चय, इस प्रकार एक-एक चय बढ़ाते अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा तक ले जाना चाहिए। इन सर्व चयों को मिलाने के लिए अपूर्व स्पर्धकों की वर्गणाओं के आयाम का संकलन करें। उदाहरण - अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणा २० मानी तो एक, दो, तीन आदि २० अंक तक का जोड़ करने को एकबार संकलन कहते हैं।

$$\frac{\text{मुख} + \text{भूमि}}{२} \times \text{पद} = \frac{१ + २०}{२} \times २० = २१०$$

मुख = प्रथम संख्या
भूमि = अन्तिम संख्या

एकफालि प्रमाण द्रव्य के डेढ़गुणा असंख्यातगुणित अपकर्षण - उत्कर्षण भागहार प्रमाण (१२) खण्ड किए। उसमें से एक कम उत्कर्षण-अपकर्षण भागहार प्रमाण खण्ड अपूर्वस्पर्धकों के लिए ग्रहण किये थे इसलिए समस्त खण्डों में से एक कम अपकर्षण-उत्कर्षण भागहार प्रमाण खण्ड कम करके शेष रहे सर्व खण्ड पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों में देना चाहिए।

उन खण्डों को देने का विधान - शेष खण्डों में से एक खंड को ग्रहण करके पुन: उसके असंख्यातगुणित अपकर्षण-उत्कर्षण भागहार को डेढ़गुणा करके उसमें एक अधिक करने पर जो प्रमाण आता है उतने खण्ड करना चाहिए।(१२+१) ऐसा करने पर उसमें से प्रत्येक विकल खण्ड का आयाम अपूर्वस्पर्धक के आयाम के समान है।

एक फालि का ५ वाँ खण्ड

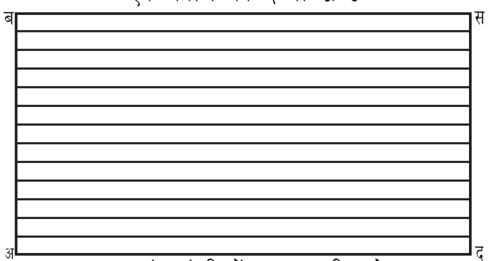

अंक संदृष्टि में १३ खण्ड किए है

इन विकल खण्डों में से एक विकल खण्ड को ग्रहण करके अपूर्वस्पर्धक के सकल खण्डों के पार्श्वभाग में स्थापन करें और शेष सर्व विकलखण्डों को पूर्वस्पर्धकों में क्रम से देना चाहिए। इस प्रकार शेष सर्व सकल खण्डों के भी विकल खंड करके पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों में देना चाहिए। इस प्रकार देने पर पूर्वस्पर्धक की आदि (प्रथम) वर्गणा में प्राप्त हुए सर्व विकल खण्डों का प्रमाण एक सकल खण्डप्रमाण नहीं होता परन्तु कुछ कम एक सकल खण्डप्रमाण प्रमाण होता है। यदि अपकर्षण उत्कर्षण भागहार प्रमाण विकलखण्ड और होते तो एक सकल खण्ड होता।

उदाहरण - अपूर्वस्पर्धक में ४ खण्ड देने पर सकलखण्ड ८ शेष हैं। एक - एक सकल खण्ड के १३ खण्ड किए। प्रत्येक सकल खण्ड में से एक - एक विकल खण्ड प्रथम वर्गणा में मिलाया अर्थात् कुल ८ विकलखण्ड मिलाये। और ५ विकलखण्ड देने पर एक सकल खण्ड होगा क्योंकि एक खंड के १३ खंड किए।

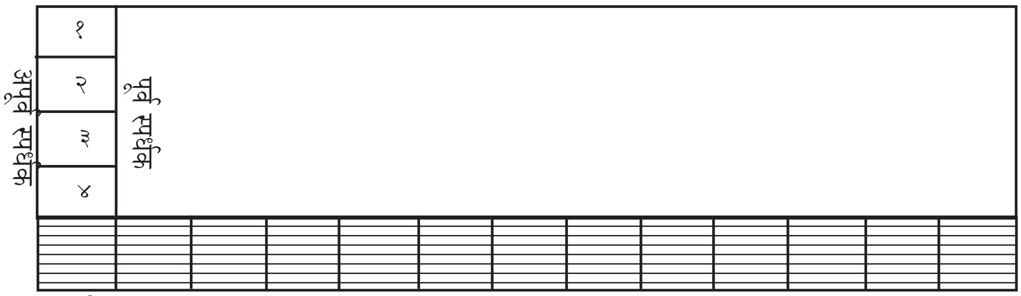

८ विकल खंड

इस प्रकार पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में दिया हुआ द्रव्य कुछ कम एक सकल खंडप्रमाण है। अपूर्व स्पर्धकों में एक कम अपकर्षण - उत्कर्षण भागहार प्रमाण सकल खंड द्रव्य और कुछ अधिक द्रव्य मिलाया। कुछ अधिक अर्थात् शेष सकल खंडों में से प्राप्त हुए विकल खंडों का प्रमाण होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि अपूर्व स्पर्धक की अंतिम वर्गणा में दिए हुए द्रव्य से पूर्वस्पर्धक की आदिवर्गणा में दिया द्रव्य असंख्यातगुणा कम है।

यहाँ गुणकार का प्रमाण साधिक अपकर्षण - उत्कर्षण भागहार है इसलिए पूर्व स्पर्धक की आदि वर्गणा में जो पूर्व अवस्थित द्रव्य था। उसका असंख्यातवाँ भाग द्रव्य नवीन मिलता है। पूर्वस्पर्धक की द्वितीय वर्गणा में एक चय हीन द्रव्य दिया जाता है। तृतीयादि वर्गणाओं में भी एक-एक चय हीन द्रव्य दिया जाता है। पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों में दिये हुए शेष द्रव्य के द्वारा पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों की रचना एक गोपुच्छाकाररूप होती है।

लोभादिक स्पर्धक वर्गणाओं के अविभागप्रतिच्छेद संबंधी हीनाधिकता का विचार करते हैं -

कोहादीणमपुव्वं जेट्ठं सरिसं तु अवरमसरित्थं।
लोहादिआदिवग्गणअविभागा होंति अहियकमा[१]।। ४७२।

क्रोधादीनामपूर्वं ज्येष्ठं सदृशं त्ववरमसदृशम्।
लोभाद्यादिवर्गणाविभागा भवन्त्यधिकक्रमाः ।। ४७२ ।।

अन्वयार्थ - (कोहादीणमपुव्वं) क्रोधादि चार कषायों के अपूर्व स्पर्धकों की **(जेट्ठं)** उत्कृष्ट वर्गणा (अंतिम स्पर्धक की आदिवर्गणा) **(सरिसं)** सदृश है। **(तु)** परन्तु **(अवरं)** जघन्य वर्गणा (प्रथम स्पर्धक की आदि वर्गणा) **(असरित्थं)** सदृश नहीं है अर्थात् विसदृश है। **(लोहादिआदिवग्गणअविभागा)** लोभादिकों की आदि वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद **(अहियकमा)** क्रम से अधिक **(होंति)** हैं।

विशेषार्थ - क्रोधादि चार कषायों के अपूर्वस्पर्धकों में से अंतिमस्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद परस्पर समान हैं, परन्तु प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद समान नहीं हैं। प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद लोभ से लेकर क्रोध तक क्रम से अधिक हैं। लोभ जघन्यवर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद सबसे अल्प हैं, उससे माया के अनन्तवें भाग अधिक हैं, उससे मान के अनन्तवें भाग अधिक और उससे क्रोध के अनन्तवें भाग अधिक हैं।

सगसगफड्डयएहिं सगजेट्ठे भाजिदे सगीआदि।
मज्झेवि अणंताओ वग्गणगाओ समाणाओ ।। ४७३ ।।

स्वकस्वकस्पर्धकैः स्वकज्येष्ठे भाजिते स्वकीयादि।
मध्येऽप्यनन्ता वर्गणाः समानाः ।। ४७३ ।।

अन्वयार्थ - (सगजेट्ठे) अपने अपने उत्कृष्ट स्पर्धक में (उत्कृष्ट स्पर्धक की आदि वर्गणा में) **(सगसगफड्डयएहिं)** अपनी-अपनी स्पर्धक संख्या से **(भाजिदे)** भाग देने पर **(सगीआदि)** अपनी-अपनी प्रथम वर्गणा आती है। **(मज्झेवि)** मध्य में भी **(अणंताओ वग्गणगाओ)** अनन्तवर्गणाएँ **(समणाओ)** समान हैं।

विशेषार्थ - सामान्य अपेक्षा से सर्वकषायों के अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण अभव्यराशि से

---
१. क. पा. सुत्त. पृ. ७९१ सू.५१०-५१४ /ध.पु.६ पृ.३६८

अनन्तगुणा और सिद्धराशि का अनन्तवाँ भागमात्र है। क्रोध से लेकर लोभ तक क्रम से विशेष अधिक हैं। स्पर्धक प्रमाण से अपने-अपने उत्कृष्ट स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों में भाग देने पर अपनी-अपनी जघन्य स्पर्धक की प्रथम (जघन्य) वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण आता है।

अंकसंदृष्टि - माना की चारों कषायों के उत्कृष्ट स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद १६८० है। इसे क्रोध के स्पर्धक १६, मान के स्पर्धक २०, माया के स्पर्धक २४ और लोभ के स्पर्धक २८ का भाग देने पर क्रोध की जघन्य वर्गणा के १०५, मान के ८४, माया के ७०, लोभ के ६० अविभागप्रतिच्छ्दे आते हैं अथवा अपनी-अपनी जघन्यवर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों के प्रमाण को अपने-अपने स्पर्धकों के प्रमाण से गुणा करने पर अपनी-अपनी उत्कृष्ट वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण आता है क्योंकि प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेदसमूह से दूसरे स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद दुगुणे, तीसरे स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद तिगुणे, चौथे स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के चौगुणे होते है। इसी क्रम से अपने स्पर्धकों का जितना प्रमाण है उतने से गुणित अंतिमस्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण होता है। वे चारों कषायों के समान है।

विषय	क्रोध	मान	क्रोध	क्रोध
अंतिम अपूर्व स्पर्धकों की आदिवर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण	१०५×१६ १६८०	८४×२० १६८०	७०×२४ १६८०	६०×२८ १६८०
अपूर्व स्पर्धक शलाका	१६	२०	२४	२८
प्रथम अपूर्व स्पर्धकों की आदिवर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण	१०५	८४	७०	६०

अंतिम अपूर्वस्पर्धक की आदिवर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद समान हैं। यह अन्तदीपक न्याय से कहा है क्योंकि नीचे भी अनन्त अपूर्वस्पर्धकों की प्रथम वर्गणाओं के अविभागप्रतिच्छेद समान हैं।

यहाँ उपयोगी गणित सूत्र कहते हैं -

जे हीणा अवहारे रूवा तेहि गुणित्तु पुव्वफलं
हीणवहारेण हिये लद्धं पुव्वफलेणहियं[1]।। ४७४।।

१) आगास मुद्रित प्रति में गाथा का कुछ भाग अशुद्ध प्रतीत होता है। थोड़े बहुत अंतरसे यही गाथा ध. पु. ३ पृ.५० पर उद्धत है। इसीसे गाथा का शुद्धिकरण किया है।
जे ऊणा अवहारे रूवा तेहिं गुणित्तु पुव्वफलं। ऊणवहारेण हिए लद्धं पुव्वफलं अहियं ।।३२।। ध.पु.३ पृ.५०

ये हीना अवहारे रूपास्तैर्गुणितं पूर्वफलम्।
हीनावहारेणापहृते लब्धं पूर्वफलेनाधिकम्।। ४७४।।

अन्वयार्थ - (अवहारे) भागहार में **(जे हीणा रुवा)** जितनी न्यून संख्या है **(तेहिं)** उससे **(पुव्वफलं गुणित्तु)** पूर्वलब्ध को गुणा करके उतने ही **(हीणवहारेण)** न्यून भागहार से **(हिये)** भाग देने पर **(लद्धं)** जो लब्ध आता है वह **(पुव्वफलेणहियं)** पूर्व लब्ध में अधिक करने पर नवीन लब्ध आता है।

विशेषार्थ - किसी संख्या को बड़ी संख्या से भाग देने पर और उसी संख्या को छोटी संख्या से भाग देने पर कितना उत्तर आता है ? यह निकालने के लिए इस गाथा में सूत्र कहा गया है। उदाहरण के लिए - ३६ संख्या को १२ से भाग देने पर ३ उत्तर आता है तो ३६ संख्या को ९ से भाग देने पर कितना उत्तर आयेगा ?

$\frac{३६}{१२}$ = ३ पूर्वलब्ध, नवीन भागहार ९

पूर्व भागहार - नवीन भागहार = न्यूनसंख्या १२ - ९ = ३ न्यूनसंख्या

सूत्र = पूर्वलब्ध + $\frac{\text{पूर्वलब्ध} \times \text{न्यूनसंख्या}}{\text{नवीन भागहार}}$ = नवीन लब्ध ३ + $\left(\frac{३\times३}{९}\right)$ = ३+१ = ४ नवीन लब्ध

३६ ÷ ९ = ४

कोहदुसेसेणवहिदकोहे तक्कंडयं तु माणतिए।
रूपहियं सगकंडयहिदकोहादी समाणसला ।। ४७५।।

क्रोधद्विशेषेणावहितक्रोधे तत्काण्डकं तु मानत्रयम्।
रूपाधिकं स्वककांडकहितक्रोधादि समानशलाकाः।। ४७५।।

अनव्यार्थ - (कोहदुसेसेण) क्रोधादिक अवशेष अर्थात् क्रोध के स्पर्धकों के प्रमाण को मान के स्पर्धकों के प्रमाण में से कम करने पर जो शेष रहता है। उसे **(अवहिदकोहे)** क्रोध के अपूर्व स्पर्धकों की संख्या में भाग देने पर **(तक्कंडयं)** क्रोध के काण्डक का प्रमाण आता है। **(तु)** और **(माणतिए)** मानत्रिक में कांडक का प्रमाण **(रूपहियं)** एक-एक अधिक है। **(सगकंडयहिदकोहादी)** अपने-अपने कांडक से अपनी-अपनी स्पर्धक संख्या को भाग देने पर क्रोधादिकों की **(समाणसला)** समान शलाका प्राप्त होती हैं।

विशेषार्थ - अंकसंदृष्टि - क्रोध के स्पर्धक सोलह (१६) को मानकषाय की स्पर्धक शलाका बीस (२०) में से कम करने पर ४ आता है। उसका भाग क्रोध के स्पर्धकों में देने पर क्रोधकांडक का प्रमाण ४ आता है।

$$\frac{\text{क्रोधस्पर्धक संख्या}}{\text{मानस्पर्धक संख्या - क्रोधस्पर्धक संख्या}} = \text{क्रोधकांडक } \frac{१६}{(२०-१६)} = \frac{१६}{४} = ४$$

$$\frac{\text{मानस्पर्धक संख्या}}{\text{माया स्पर्धक संख्या - मानस्पर्धक संख्या}} = \text{मानकांडक } \frac{२०}{(२४-२०)} = \frac{२०}{४} = ५$$

$$\frac{\text{मायास्पर्धक संख्या}}{\text{लोभ स्पर्धक संख्या - माया स्पर्धक संख्या}} = \text{मायाकांडक } \frac{२४}{(२८-२४)} = \frac{२४}{४} = ६$$

$$\frac{\text{लोभस्पर्धक संख्या}}{\text{उपर्युक्त अवशेषप्रमाण}} = \text{लोभकांडक } \frac{२८}{४} = ७$$

क्रोध के चौथे अपूव स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद १०५ × ४ = ४२०
मान के पाँचवें अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद ८४ × ५ = ४२०
माया के छठे अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद ७० × ६ = ४२०
लोभ के सातवें अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद ६० × ७ = ४२०

चारों कषायों की आदिवर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण ४२० होने से सदृश है। इस प्रकार इतना ही आयाम (४,५,६,७) ऊपर जाने पर क्रोधादि चारों संज्वलन कषायों में आठवें, दसवें, बारहवें और चौदहवें स्पर्धकों की आदिवर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद ८४० होने से सदृश हैं। इस प्रकार चरम अपूर्व स्पर्धक की आदिवर्गणा तक जानना चाहिए।

अपने-अपने कांडक का भाग अपने-अपने स्पर्धकों के प्रमाण में देने पर जो नाना कांडक का प्रमाण आता है उतनी वर्गणाओं के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण चारों कषायों का परस्पर समान है। १६ ÷ ४, २० ÷ ५, २४ ÷ ६, २८ ÷ ७ = ४ कांडक का प्रमाण.

संज्वलन क्रोधकषाय के चौथे, आठवें, बारहवें और सोलहवें इन चार अपूर्वस्पर्धकों की आदिवर्गणा, संज्वलन मान कषाय के पाँचवें, दसवें, पंद्रहवें और बीसवें इन चार अपूर्वस्पर्धकों की आदिवर्गणा, संज्वलन माया कषाय के छठे, बारहवें, अठारहवें और चौबीसवें अपूर्वस्पर्धकों की आदिवर्गणा, संज्वलन लोभ कषाय के सातवे, चौदहवें, इक्कीसवें और अठ्ठावीसवें अपूर्वस्पर्धकों की आदिवर्गणा परस्पर समान हैं। अंकसंदृष्टि - समान वर्गणाएँ मानी हुई चार है। परन्तु अनन्तवर्गणाएँ समान हैं क्योंकि अपूर्वस्पर्धकशलाका अनन्त हैं।

संज्वलन कषायों की सदृश अपूर्वस्पर्धकों की अंकसंदृष्टि

क्रोध	मान	माया	लोभ
१०५ × १६ = **१६८०**	८४ × २० = **१६८०**	७० × २४ = **१६८०**	६० × २८ = **१६८०**
१०५ × १५ = १५७५	८४ × १९ = १५९६	७० × २३ = १६१०	६० × २७ = १६२०
१०५ × १४ = १४७०	८४ × १८ = १५१२	७० × २२ = १५४०	६० × २६ = १५६०
१०५ × १३ = १३६५	८४ × १७ = १४२८	७० × २१ = १४७०	६० × २५ = १५००
१०५ × १२ = **१२६०**	८४ × १६ = १३४४	७० × २० = १४००	६० × २४ = १४४०
१०५ × ११ = ११५५	८४ × १५ = **१२६०**	७० × १९ = १३३०	६० × २३ = १३८०
१०५ × १० = १०५०	८४ × १४ = ११७६	७० × १८ = **१२६०**	६० × २२ = १३२०
१०५ × ९ = ९४५	८४ × १३ = १०९२	७० × १७ = ११९०	६० × २१ = **१२६०**
१०५ × ८ = **८४०**	८४ × १२ = १००८	७० × १६ = ११२०	६० × २० = १२००
१०५ × ७ = ७३५	८४ × ११ = ९२४	७० × १५ = १०५०	६० × १९ = ११४०
१०५ × ६ = ६३०	८४ × १० = **८४०**	७० × १४ = ९८०	६० × १८ = १०८०
१०५ × ५ = ५२५	८४ × ९ = ७५६	७० × १३ = ९१०	६० × १७ = १०२०
१०५ × ४ = **४२०**	८४ × ८ = ६७२	७० × १२ = **८४०**	६० × १६ = ९६०
१०५ × ३ = ३१५	८४ × ७ = ५८८	७० × ११ = ७७०	६० × १५ = ९००
१०५ × २ = २१०	८४ × ६ = ५०४	७० × १० = ७००	६० × १४ = **८४०**
१०५ × १ = १०५	८४ × ५ = **४२०**	७० × ९ = ६३०	६० × १३ = ७८०
	८४ × ४ = ३३६	७० × ८ = ५६०	६० × १२ = ७२०
	८४ × ३ = २५२	७० × ७ = ४९०	६० × ११ = ६६०
	८४ × २ = १६८	७० × ६ = **४२०**	६० × १० = ६००
	८४ × १ = ८४	७० × ५ = ३५०	६० × ९ = ५४०
		७० × ४ = २८०	६० × ८ = ४८०
		७० × ३ = २१०	६० × ७ = **४२०**
		७० × २ = १४०	६० × ६ = ३६०
		७० × १ = ७०	६० × ५ = ३००
			६० × ४ = २४०
			६० × ३ = १८०
			६० × २ = १२०
			६० × १ = ६०

अर्थसंदृष्टि - क्रोधकांडक अनन्त प्रमाण उस की संदृष्टि 'ख' है। उससे एक दो, तीन अधिक मानादि कांडक का प्रमाण इस प्रकार है - मानकांडक [१- / ख] माया कांडक [२- / ख] लोभकांडक [३- / ख] पूर्वस्पर्धक की आदिवर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेदों को अनन्त का भाग देने पर अपूर्वस्पर्धक की अंतिम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद आते हैं। वे चारों कषायों के समान हैं। उसकी संदृष्टि [व / ख] इसे अपने - अपने अपूर्वस्पर्धकों के प्रमाण का भाग देने पर प्रथम स्पर्धक की आदिवर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद आते हैं। इसे ही जघन्य वर्गणा कहते हैं।

$$\frac{\text{अंतिम अपूर्वस्पर्धक आदिवर्गणा}}{\text{अपूर्व स्पर्धक संख्या}} = \text{प्रथम स्पर्धक आदिवर्गणा} \boxed{\begin{matrix}\text{व} \\ \text{ख ९} \\ \text{ओ a}\end{matrix}}$$

इसकी संक्षिप्त संदृष्टि [ज] है। इसे दो, तीन, आदि क्रम से एक-एक अधिक गुणकार से गुणा करने पर जहाँ अपने अपने कांडक प्रमाण गुणकार होता है वहाँ चारों कषायों की वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद समान हैं।

क्रोध [ज ख,] मान [१- / ज ख,] माया [२- / ज ख,] लोभ [३- / ज ख,]

उसके ऊपर इसी प्रकार एक-एक बढ़ते गुणकार क्रम से उस समान वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों से दुगुणा प्रमाण होने पर समान वर्गणा आती हैं। इस प्रकार उससे तिगुणा, चौगुणा आदि एक कम अनन्तगुणित पर्यंत प्रमाण आता हैं। उसके ऊपर कांडक प्रमाण स्पर्धक जाने पर चारों कषायों के अंतिम स्पर्धक की आदिवर्गणा में समान अविभागप्रतिच्छेद आते हैं [व / ख] इस प्रकार मध्य अनन्त अपूर्वस्पर्धकों की आदिवर्गणाएँ सदृश हैं यह बात सिद्ध होती है।

यहाँ जो अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण कहा गया है वह विवक्षित वर्गणा में एक परमाणुरूप वर्ग में जितने अविभागप्रतिच्छेद हैं उस अपेक्षा से कहा गया है। सब वर्गों की समूहरूप वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण यथासंभव जानना चाहिए।

अविभागप्रतिच्छेदों के सदृशता की अर्थसंदृष्टि रचना

	क्रोध	मान	माया	लोभ
अंतिम स्पर्धक की आदिवर्गणा	व ख	व ख	व ख	व ख
	० ०	० ०	० ०	० ०
द्विचरम कांडक आदिवर्गणा	१⌒ ज ख।ख	१-१⌒ ज ख।ख	२-१⌒ ज ख।ख	३-१⌒ ज ख।ख
तृतीय कांडक आदिवर्गणा	० ० ० ज ख ।२	० ० ० १— ज ख।२	० ० ० २— ज ख।२	० ० ० ३— ज ख।२
द्वितीय कांडक आदिवर्गणा	० ० ० ज ख	० ० ० १— ज ख	० ० ० २— ज ख	० ० ० ३— ज ख
प्रथम स्पर्धक की आदिवर्गणा	० ० ० व ख ९ ओ a	० ० ० व १— ख ९ ख ओ a ख	० ० ० व २— ख ९ ख ओ a ख	० ० ० व ३— ख ९ ख ओ a ख

ताहे दव्ववहारो पदेसगुणहाणिफड्ढयवहारो।
पल्लस्स पढममूलं असंखगुणिदक्कमा होंति[१]**।। ४७६ ।।**

तत्र द्रव्यावहारः प्रदेशगुणहानिस्पर्धकावहारः।
पल्यस्य प्रथममूलमसङ्ख्यगुणितक्रमा भवन्ति।। ४७६ ।।

अन्वयार्थ - (ताहे) उस समय अर्थात् अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में **(दव्ववहारो)** द्रव्य का भागहार **(पदेसगुणहाणिफड्ढयवहारो)** प्रदेशगुणहानि स्पर्धकों का भागहार और **(पल्लस्स पढममूलं)** पल्य का प्रथम वर्गमूल ये तीनों **(असंखगुणिदक्कमा)** क्रम से असंख्यात गुणित **(होंति)** हैं।

---

१) क.पा.सुत्त पृ. ७९२ सू ५१५-५१७ / ज.ध.पु. १४ पृ. ३४६

विशेषार्थ - अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में अपूर्व स्पर्धकों की रचना करने के लिए द्रव्य को ग्रहण करने सर्व द्रव्य को जिस अपकर्षण भागहार का भाग दिया जाता है उसे द्रव्यभागहार कहते हैं। पूर्व स्पर्धकों की आदिवर्गणा एक-एक चय से हीन होती हुई जिस स्थान पर दुगुणा हीन अर्थात् आधा होता है उस स्थान को एक प्रदेश गुणहानिस्थानान्तर कहते हैं। एकप्रदेश गुणहानिस्थानान्तर में जितने स्पर्धकों की संख्या है उसे जिस संख्या से भाग देने पर क्रोधादि अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण प्राप्त होता है उसे एक प्रदेशगुणहानिस्पर्धक भागहार कहते हैं। वह भागहार अपकर्षण-उत्कर्षण भागहार से असंख्यातगुणा और पल्योपम के प्रथम वर्गमूल से असंख्यातगुणा कम ऐसा पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।

इसका स्पष्टीकरण - अश्वकर्णकरण करनेवाला जीव प्रथम समय में जिस प्रदेश समूह का अपकर्षण करता है उस अपकर्षित द्रव्य से सर्व द्रव्य को भाग देने पर अपकर्षण-उत्कर्षण भागहार प्राप्त होता है वह सबसे अल्प है। उसकी संदृष्टि 'ओ' इससे अपूर्व स्पर्धकों की प्राप्ति के लिए प्रदेश गुणहानिस्थानान्तर का भागहार असंख्यातगुणा है। उसकी संदृष्टि [ओ a] यह पल्योपम के प्रथम वर्गमूल का असंख्यातवाँ भाग है इसलिए पूर्वोक्त भागहार से पल्योपम का प्रथम वर्गमूल असंख्यातगुणा है। इससे यह सिद्ध हुआ कि पल्योपम के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भागप्रमाण भागहार से एक प्रदेश गुणहानि की स्पर्धक संख्या को भाग देने पर जो लब्ध आता है उतने क्रोधादि संज्वलन के अपूर्व स्पर्धकों को प्रथम समय में रचता है।

अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में उपर्युक्त अपूर्वस्पर्धकों में से उदय और बन्ध को प्राप्त स्पर्धकों का कथन -

ताहे अपुव्वफड्ढयपुव्वस्सादीदणंतिममुदेदि।
बंधो हु लताणंतिमभागोत्ति अपुव्वफड्ढयदो[1]।। ४७७।।

तस्मिन्नपूर्वस्पर्धकपूर्वस्यादितोऽनन्तिममुदेति।
बन्धो हि लतानन्तिमभाग इत्यपूर्व स्पर्धकतः।। ४७७।।

अन्वयार्थ - (ताहे) उस अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में **(अपुव्वफड्ढय पुव्वस्सादीदणंतिममुदेदि)** सर्व अपूर्वस्पर्धक और पूर्वस्पर्धक के आदि से लेकर अनन्तवें भाग स्पर्धक उदय में आते हैं। उसी प्रकार **(अपुव्वफड्ढयादो)** अपूर्वस्पर्धक से **(लताणंतिमभागोत्ति)** पूर्वस्पर्धक के लता के अनन्तवें भागतक **(बंधो)** बंध होता है।

विशेषार्थ - अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में अपूर्वस्पर्धक रूप से परिणमित हुए अनुभाग

१) क.पा.सुत्त पृ. ७९३-७९४ सू ५२४-५२६ / ज.ध.पु. १४ पृ. ३५५-३५६

सत्कर्म में से असंख्यातवें भागमात्र प्रदेशों का अपकर्षण करके उदीरणा करता है। उसकी उदयस्थिति में सर्व अपूर्व स्पर्धक स्वरूप का अनुभाग उपलब्ध होता है। अर्थात् सर्व अपूर्व स्पर्धक के सदृश धनवाले थोडे-थोडे परमाणु उदयनिषेक में प्राप्त होते हैं परन्तु अपूर्वस्पर्धकरूप से परिणत सर्वप्रदेशों का उदय नहीं आता है। उदयनिषेक से उपरिम निषेक के समान अनुभाग शक्ति को धारण करने वाले अपूर्वस्पर्धक उदयरूप नहीं है। इसलिए वे अनुदीर्ण हैं और अपकृष्ट द्रव्य को छोड़कर शेष अपूर्व स्पर्धकों में सदवस्थित प्रदेश अनुदीर्ण हैं। इसलिए कुछ अपूर्वस्पर्धक उदीर्ण होते हैं और कुछ अपूर्वस्पर्धक अनुदीर्ण रहते हैं। उसी प्रकार पूर्व स्पर्धकों में भी जो प्रथम स्थिति में लता और दारुरूप स्पर्धक हैं उसके लता समान अनुभाग के आरम्भ से अनन्तवें भाग प्रमाण स्पर्धक उदीर्ण रहते हैं।

लता भाग के अनन्तवें भाग प्रमाण स्पर्धकों के उपरिम अनन्त बहुभाग स्पर्धक उदय को प्राप्त नहीं होते हैं क्योंकि उतना अपने रूप से उदय नहीं होता है। इस प्रकार पूर्व स्पर्धक की आदिवर्गणा से लेकर अनन्तवें भाग स्पर्धक उदयरूप हैं ,अन्य अनुदयरूप हैं। पूर्व में संज्वलन कषाय के उदयनिषेक से उपरिम निषेकों में प्राप्त हुए लता भाग के अनन्तवें भाग प्रमाण स्पर्धक उदयरूप नहीं है इसलिए वे अनुदीर्ण हैं। लता समान स्पर्धकों के अनन्तवें भागरूप से बन्ध प्रवृत्त था। परन्तु अब उससे अनन्तगुणित हीन होकर अपूर्वस्पर्धकों के प्रथम स्पर्धक से लता के अनन्तवें भागप्रमाण अनुभाग स्पर्धक तक जितने स्पर्धक हैं उन स्पर्धक स्वरूप से बन्ध प्रवृत्त होता है अर्थात् नवीन बाँधे जानेवाले परमाणुओं का अनुभागबंध इतना हीन होता है। पूर्व में कहे गये उदयस्वरूप स्पर्धकों की अपेक्षा बन्धस्वरूप स्पर्धक अनन्तगुणे हीन अनुभाग युक्त होते हैं क्योंकि यहाँ अनुभाग बन्ध से अनुभाग उदय अनन्तगुणा होता है।

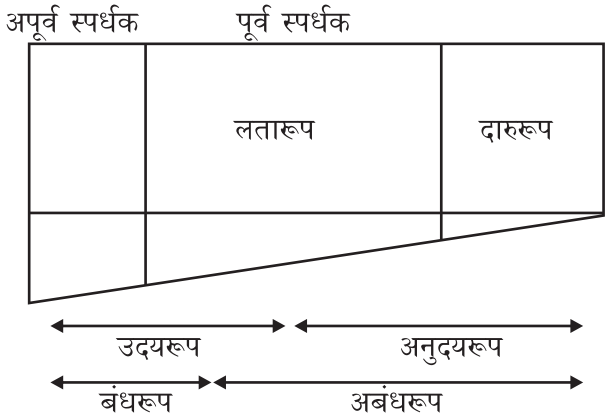

अंकसंदृष्टि - माना कि अपूर्व स्पर्धक १६ है। इन १६ स्पर्धकों का उदय भी है और बंध भी है। लतारूप पूर्वस्पर्धक २५६ और अनन्त की संख्या ४ मानी। २५६ ÷ ४ = ६४। एक भागरूप स्पर्धक उदयरूप हैं और शेष १९२ रूप स्पर्धक अनुदयरूप हैं। उदय के भी अनन्तवें भाग ६४ ÷ ४ = १६ स्पर्धक

बंधरूप हैं। शेष २४० स्पर्धकरूप बंध नहीं होता है। दारु समान अनुभाग का उदय भी नहीं और बंध भी नहीं होता है। यह सब अश्वकर्ण के प्रथम समय की प्ररूपणा है।

द्वितीयादि समयों में अपूर्व स्पर्धकों की विधि कहते हैं -

विदियादिसु समयेसु वि पढमं व अपुव्वफड्ढयाण विही।
णवरि असंखगुणूणं णिव्वत्तयदि पडिसमयं[1] ।। ४७८ ।।

द्वितीयादिषु समयेष्वपि प्रथममिवापूर्वस्पर्धकानां विधिः।
नवर्यसङ्ख्यगुणोनं निर्वर्तयति तु प्रतिसमयम् ।। ४७८ ।।

अन्वयार्थ - अश्वकर्णकरण के **(विदियादिसु समयेसु वि)** द्वितीयादि समयों में भी **(अपुव्वफड्ढयाण विही)** अपूर्वस्पर्धकों की विधि **(पढमं व)** प्रथम समय के समान ही जानना। **(णवरि)** विशेष यह है कि **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(असंखगुणूणं)** असंख्यातगुणा कम अपूर्वस्पर्धकों की **(णिव्वत्तयदि)** रचना करता है।

विशेषार्थ - अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में जो स्थितिकांडक, अनुभागकांडक और स्थितिबंधापसरण प्रवृत्त होते थे वही द्वितीय समय में भी प्रवृत्त रहते हैं। अनुभागबन्ध मात्र प्रथम समय के अनुभागबन्ध से अनन्तगुणाहीन होता है। क्योंकि प्रत्येक समय में अनन्तगुणी विशुद्धि बढ़ने से क्षपकश्रेणि में अप्रशस्तकर्मों का अनुभागबंध प्रत्येक समय में अनन्तगुणा हीन होता जाता है। यहाँ दूसरा प्रकार नहीं है। प्रतिसमय विशुद्धि में अनन्तगुणी वृद्धि होने से प्रतिसमय असंख्यातगुणे प्रदेशों का अपकर्षण करके गुणश्रेणि की रचना करता है।

प्रथम समय में जो एक प्रदेशगुणहानिस्पर्धक शलाका के असंख्यातवें भाग प्रमाण अपूर्वस्पर्धकों की रचना की गयी । द्वितीय समय में पुनः उसके समान अनुभाग की रचना करता है और वैसे ही उसके नीचे उससे असंख्यातगुणे कम अन्य अपूर्वस्पर्धकों की भी रचना करता है।

प्रत्येक समय में रचित स्पर्धकों की विशेषता कहते हैं -

णवफड्ढयाण करणं पडिसमयं एवमेव णवरिं तु।
दव्वमसंखेज्जगुणं फड्ढयमाणं असंखगुणहीणं[2] ।। ४७९ ।।

---

१) क.पा.सुत्त पृ. ७९४ सू ५२७ - ५२८ / ज.ध.पु. १४ पृ. ३५८
२) क.पा.सुत्त पृ. ७९४ सू ५२९ - ५३० / ध.पु.६ पृ.३७० / ज.ध.पु. १४ पृ. ३५८-३५९

नवस्पर्धकानां करणं प्रतिसमयमेवमेव नवरि तु ।
द्रव्यमसङ्ख्येयगुणं स्पर्धकमानमसङ्ख्यगुणहीनम् ।। ४७९ ।।

अन्वयार्थ - (एवमेव) इसी प्रकार **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(णवफड्ढयाणकरणं)** नवीन स्पर्धकों की रचना होती है। **(तु)** परन्तु **(णवरि)** विशेषता यह है कि प्रत्येक समय में **(दव्वमसंखेज्जगुणं)** द्रव्य असंख्यातगुणा ग्रहण करता है और **(फड्डयमाणं)** नवीन स्पर्धकों का प्रमाण **(असंख्यात गुणहीणं)** असंख्यातगुणा हीन होता जाता है।

विशेषार्थ - अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में जिस प्रकार अपकृष्ट द्रव्य द्वारा अपूर्व स्पर्धकों की रचना होती है उसी प्रकार द्वितीयादि समयों में भी अपकर्षित द्रव्य में से नवीन अपूर्व स्पर्धकों की रचना होती है। परन्तु विशेषता यह है कि प्रत्येक समय में अपकर्षित द्रव्य का प्रमाण असंख्यातगुणा बढ़ता जाता है। अर्थात् प्रथम समय में जितने प्रदेशों का अपकर्षण हुआ था उससे द्वितीय समय में असंख्यातगुणे प्रदेशों का अपकर्षण होता है। उससे तृतीय समय में असंख्यातगुणे प्रदेशों का अपकर्षण होता है। इसी प्रकार चतुर्थादि समयों में भी जानना चाहिए। प्रथम समय में पूर्व स्पर्धकों में से द्रव्य का अपकर्षण होता है। द्वितीयादि समयों में पूर्व और अपूर्वस्पर्धकों में से द्रव्य का अपकर्षण करके नवीन अपूर्व स्पर्धकों की रचना होती है। उनकी रचना प्रथम समय में किये गए स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा के नीचे घटते अनुभाग सहित करता है।

उस प्रथम वर्गणा के नीचे से लेकर प्रत्येक वर्गणा के प्रति एक-एक चय मात्र अधिक द्रव्य द्वितीय समयसंबंधी नवीन अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा तक जानना चाहिये। पूर्व में कहे अनुसार समपट्टिकाधन और चयधन मिलाने पर जितना द्रव्य होता है उतने द्रव्य से नवीन स्पर्धकों की रचना होती है।

अपकर्षण किये द्रव्य में से इतना द्रव्य कम करने पर जो द्रव्य शेष रहता है उसे द्वितीय समय में किए नवीन अपूर्व स्पर्धक, प्रथम समय के अपूर्वस्पर्धक और पूर्वस्पर्धकों में चय घटते क्रम से देता है। सभी का मिलकर एक गोपुच्छाकार होता है। प्रथम समय में किए अपूर्वस्पर्धकों के प्रमाण से द्वितीय समय में किये गये नवीन अपूर्व स्पर्धकों का प्रमाण असंख्यातगुणा हीन है।

द्वितीय समय में अपूर्व और पूर्वस्पर्धकों में अपकृष्ट द्रव्य देने का क्रम -

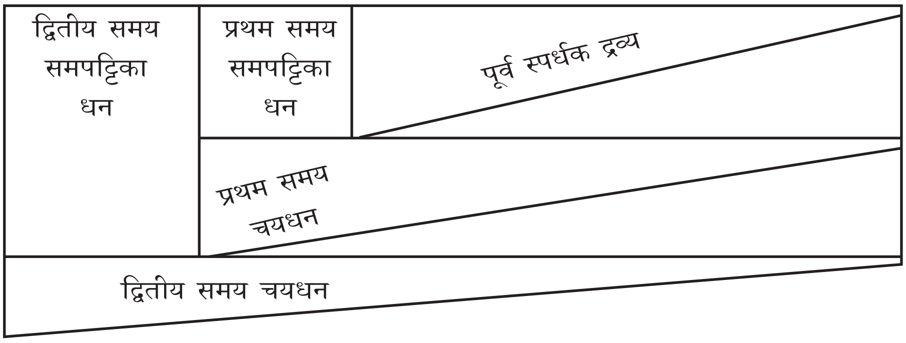

अश्वकर्णकरण के तृतीय समय में पूर्वस्पर्धक, प्रथम और द्वितीय समय में किए गए अपूर्व स्पर्धकों में से असंख्यातगुणे द्रव्य का अपकर्षण करता है। उसके असंख्यातवें भागमात्र द्रव्य द्वारा द्वितीय समय में किये गये स्पर्धकों के नीचे नवीन अपूर्वस्पर्धकों की रचना करता है और अवशेष द्रव्य तृतीय, द्वितीय और प्रथमसमयसंबंधी अपूर्वस्पर्धकों में, वैसे ही पूर्व स्पर्धकों में चयहीन क्रम से निक्षेपण करत है। द्वितीय समय के अपूर्वस्पर्धकों के प्रमाण से तृतीय समय में किये गये नवीन अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण असंख्यातगुणा कम जानना। इसीप्रकार अपूर्वस्पर्धककरण काल में अंतिम समय तक असंख्यातगुणे द्रव्य का अपकर्षण करता है और नीचे नवीन अपूर्व स्पर्धकों की रचना करता है। उनका प्रमाण असंख्यातगुणा घटता जाता है। द्वितीय समय में किये गये अपूर्व स्पर्धकों को पल्योपम के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर प्रथम समय में किये गये अपूर्व स्पर्धकों का प्रमाण प्राप्त होता है। इसलिए प्रथम समय में किये गये अपूर्वस्पर्धकों से द्वितीय समय में किए गए अपूर्वस्पर्धक असंख्यातगुणित कम होते हैं। इसी प्रकार तृतीयादि समयों में भी जानना चाहिए।

पूर्व और अपूर्व स्पर्धकों में देयक्रम कहते हैं -

पढमादिसु दिज्जकमं तक्कालजफड्ढयाण चरिमो त्ति।
हीणकमं से काले असंखगुणहीणयं तु हीणकमं[1]।। ४८०।।

प्रथमादिषु देयक्रमं तत्कालजस्पर्धकानां चरम इति।
हीनक्रमं स्वे कालेऽसङ्ख्यगुणहीनकं तु हीनक्रमम्।। ४८०।।

अन्वयार्थ - (से काले) उस काल में अर्थात् अपूर्वस्पर्धककरण काल के प्रथमादि समयों में **(तक्कालजफड्ढयाण)** उस काल में रचे गये अपूर्व स्पर्धकों की **(पढमादिसु)** प्रथमादि वर्गणा से लेकर

१) क.पा.सुत्त पृ. ७९४-७९५ सू ५३३-५३५ व ५३७-५३९/ध.पु.६ पृ.३७०-३७२

(चरिमोत्ति) अंतिम वर्गणा तक **(दिज्जकमं)** देने का क्रम **(हीणकमं)** हीनक्रम से है। उसके अनन्तर पूर्व समय में रचे हुए अपूर्व स्पर्धक की आदिवर्गणा में **(असंखगुणहीणयं)** असंख्यातगुणित हीन द्रव्य दिया जाता है। उसके अनन्तर द्वितीयादि वर्गणाओं में **(हीणकमं)** चयहीन क्रम से द्रव्य दिया जाता है।

विशेषार्थ - अपकर्षित द्रव्य जिस क्रम से दिया जाता है उसे देयक्रम कहते हैं। प्रथम समय में अपकर्षण किये द्रव्य में से उस समय में रचे हुए अपूर्वस्पर्धकों की प्रथम वर्गणा में अधिक द्रव्य देता है। उससे उसकी द्वितीय वर्गणा से लेकर अंतिम वर्गणा तक चय घटते क्रम से द्रव्य देता है। अपूर्वस्पर्धक की अंतिम वर्गणा में दिये हुए द्रव्य से पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में असंख्यातगुणा हीन द्रव्य देता है उससे उसके ऊपर उसकी अंतिम वर्गणा तक चय हीन क्रम से द्रव्य देता है।

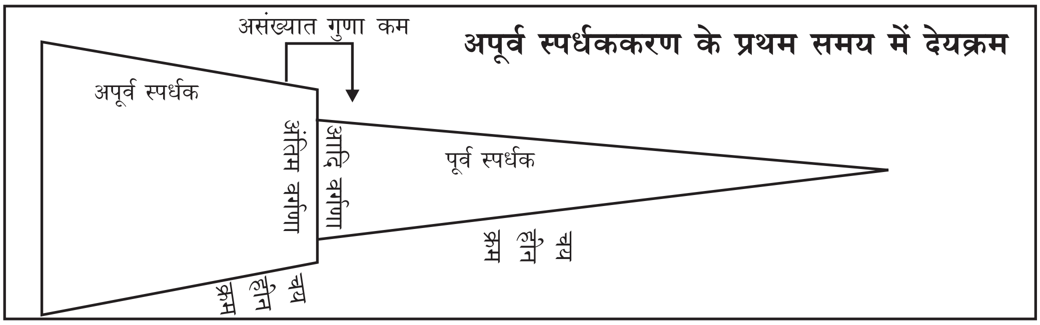

द्वितीय समय में अपकर्षण किये द्रव्य में से उस समय में किये गये नवीन अपूर्व स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा में अधिक द्रव्य देता है। उनकी द्वितीय वर्गणा से लेकर अंतिम वर्गणा तक विशेषहीन क्रम से द्रव्य देता है। उस अंतिम वर्गणा में दिये गये द्रव्य से प्रथम समय में किये गये अपूर्व स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा में असंख्यातगुणा हीन द्रव्य देता है। उससे उसके ऊपर उनकी अंतिम वर्गणा तक और उसके ऊपर पूर्वस्पर्धकों की प्रथमादि से अंतिम वर्गणा तक चयहीन क्रम से द्रव्य देता है।

तृतीय समय में नवीन रचे हुए अपूर्व स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा में अधिक द्रव्य देता है। उसके ऊपर द्वितीयादि अंतिम वर्गणा तक चय हीन क्रम से द्रव्य देता है। उसके ऊपर द्वितीय समय में रचे हुए अपूर्व स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा में असंख्यातगुणा हीन द्रव्य देता है। उसके ऊपर पूर्वस्पर्धकों की अंतिम वर्गणा तक चय हीन क्रम से द्रव्य देता है। इसी प्रकार चतुर्थादि समयों में भी जानना चाहिए।

विवक्षित समय में जो नवीन अपूर्वस्पर्धक रचे उनमें सर्वद्रव्य विवक्षित समय में ही दिया हुआ है। उसके ऊपर पहले स्पर्धक थे। अपकर्षण किये हुए द्रव्य में से कुछ द्रव्य नवीन अपूर्वस्पर्धकों में देकर शेष रहा हुआ द्रव्य ऊपर के सर्व स्पर्धकों में दिया इसलिए अपने काल में रचे गये नवीन अपूर्वस्पर्धक की अंतिम वर्गणा में दिये हुए द्रव्य की अपेक्षा अनन्तर पूर्व विद्यमान वर्गणा में दिया हुआ द्रव्य असंख्यात गुणा हीन मिलता है।

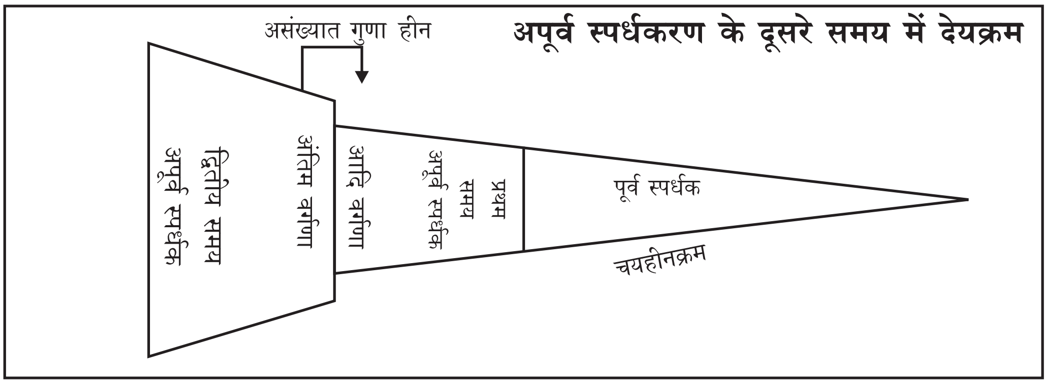

पूर्व और अपूर्वस्पर्धकों का दृश्यक्रम कहते हैं -

पढमादिसु दिस्सकमं तक्कालजफड्ड्याण चरिमोत्ति ।
हीणकमं से काले हीणं हीणं कमं तत्तो[1] ।। ४८१ ।।

प्रथमादिषु दृश्यक्रमं तत्कालजस्पर्धकानां चरम इति ।
हीनक्रमं स्वे काले हीनं हीनं क्रमं ततः ।। ४८१ ।।

अन्वयार्थ - (से काले) उस काल में **(तक्कालजफड्ड्याण)** उस काल में रचे हुए अपूर्व स्पर्धकों की **(पढमादिसु चरिमोत्ति)** प्रथमादि वर्गणा से चरम वर्गणा तक **(दिस्सकमं)** दृश्यक्रम **(हीणकमं)** हीन क्रम से है। **(तत्तो)** उसके अनन्तर अपूर्व-पूर्व स्पर्धकों में **(हीणं हीणंकमं)** हीन-हीन दृश्यक्रम है।

विशेषार्थ - अपूर्वस्पर्धककरणकाल के प्रथमादि समयों में पूर्वसत्त्वरूप द्रव्य और दिया हुआ द्रव्य मिलकर जो द्रव्य का क्रम दिखता है उसे दृश्यक्रम कहते हैं। उसका स्पष्टीकरण -

उस विवक्षित समय में रचे हुए अपूर्वस्पर्धकों का जो देयद्रव्य है वही दृश्यद्रव्य है क्योंकि उस समय में अपकर्षण किये हुए द्रव्य में से ही उनकी रचना हुई है। उनकी प्रथम वर्गणा से अंतिम वर्गणा तक विशेष हीन क्रमसहित दृश्य द्रव्य है। उस अंतिम वर्गणा से उसके ऊपर वर्गणा का दृश्यद्रव्य एक चय कम है क्योंकि दिया हुआ द्रव्य तो उस अंतिम वर्गणा के द्रव्य से असंख्यातगुणा हीन है। तथापि दिया हुआ द्रव्य और पूर्वसत्त्व रूप द्रव्य दोनों मिलकर एक चय हीन मात्र दृश्यद्रव्य होता है। उसके ऊपर पूर्व स्पर्धकों की अंतिम वर्गणा तक दिया हुआ द्रव्य और पूर्वद्रव्य मिलकर दृश्यद्रव्य चयहीन क्रम से स्थित है। इसप्रकार विवक्षित समय में किये हुए अपूर्व स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा से पूर्वस्पर्धकों की अंतिम वर्गणा तक एक गोपुच्छ हुआ।

१) क.पा.सुत्त पृ. ७९४ सू ५३६ और ५४०-५४१/ध.पु.६ पृ.३७१-३७२

पूर्वापूर्व स्पर्धकों का दृश्यक्रम

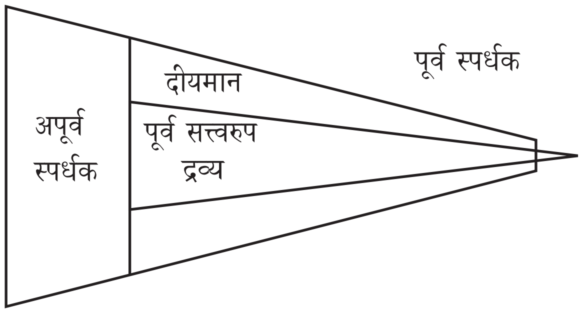

इस प्रकार अश्वकर्णकरण काल के प्रथमादि समयों में जब तक प्रथम अनुभागकांडकघात नहीं होता है तब तक स्थितिकांडक, अनुभागकांडक, स्थितिबंध और अनुभागसत्त्व समान ही है किन्तु अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग बंध प्रतिसमय अनंतगुणा हीन होता है। गुणश्रेणि में प्रतिसमय असंख्यातगुणा द्रव्य अपकर्षण करके देता है और अतीत समय संबंधी अपूर्व स्पर्धकों के नीचे अपूर्व शक्ति युक्त नवीन अपूर्व स्पर्धक प्रतिसमय करता है।

प्रथम अनुभागकांडक का घात होने पर क्या होता है, वह कहते हैं-

पढमाणुभागखंडे पडिदे, अणुभागसंतकम्मं तु [1]।
लोभादणंतगुणिदं उवरिं वि अणंतगुणिदकमं ।।४८२।।

प्रथमानुभागखण्डे पतितेऽनुभागसत्त्वकर्म तु ।
लोभादनन्तगुणितमुपर्यप्यनन्तगुणितक्रमम् ।।४८२।।

अन्वयार्थ - (पढमाणुभागखंडे पडिदे) प्रथम अनुभागकांडक का पतन होने पर **(अणुभाग संतकम्मं तु)** अनुभाग सत्कर्म **(लोभादणंतगुणिदं)** लोभ से अनन्तगुणा होता है। **(उवरिं पि)** ऊपर भी **(अणंतगुणिदकमं)** अनन्तगुणित क्रम जानना चाहिए।

विशेषार्थ - अश्वकर्णकरणकाल में प्रथम अनुभागकांडक का पतन होने पर लोभ से अनंतगुणा क्रमयुक्त अनुभागसत्त्व होता है। वहाँ संज्वलन लोभ का अनुभागसत्त्व सबसे हीन, उससे संज्वलन माया का अनन्तगुणा, उससे संज्वलनमान का अनन्तगुणा, उससे संज्वलन क्रोध का अनन्तगुणा अनुभाग सत्त्व होता है। इसके आगे संपूर्ण अश्वकर्णकरणकाल में अनुभागसत्त्व के अल्पबहुत्व का यही क्रम जानना

१) क.पा.सुत्त पृ.७९५ सू ५४२-५४८/ ध.पु.६ पृ.३७२

चाहिए।[१]

अश्वकर्णकरणकाल के प्रथमादि समयों में अपूर्व स्पर्धकों का प्रमाण कहते हैं -

आदोलस्स य पढमे णिव्वत्तिदअपुव्वफड्डयाणि बहू ।
पडिसमयं पलिदोवममूलासंखेज्जभागभजियकमा[२] ।।४८३ ।।

आन्दोलस्य य प्रथमे निर्वर्तितापूर्वस्पर्धकानि बहूनि ।
प्रतिसमयं पलितोपममूलासङ्ख्येयभागभजितक्रमम् ।।४८३ ।।

अन्वयार्थ - (आदोलस्स य पढमे) आदोलकरण अर्थात् अश्वकर्णकरणकाल के प्रथम समय में **(णिव्वत्तिदअपुव्वफड्डयाणि)** रचे गए अपूर्व स्पर्धक **(बहू)** अधिक हैं। उसके आगे **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(पलिदोवममूलासंखेज्जभागभजियकमा)** क्रम से पल्योपम के वर्गमूल के असंख्यातवें भाग से भाजित अपूर्वस्पर्धक होते हैं।

विशेषार्थ - अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में जो अपूर्व स्पर्धक रचे हैं, उनकी संख्या सबसे अधिक हैं। प्रथम समय में रचे गए अपूर्वस्पर्धकों की संख्या में पल्य के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर जो संख्या आती हैं उतने दूसरे समय में नवीन अपूर्व स्पर्धक होते हैं। दूसरे समय में नवीन रचे गए अपूर्वस्पर्धकों में पल्योपम के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर जो संख्या आती हैं उतने तीसरे समय में नवीन अपूर्वस्पर्धक रचे जाते हैं। अकंसंदृष्टि - माना कि पल्य २५६, उसका प्रथम वर्गमूल १६, उसका असंख्यातवाँ भाग १६ ÷ ४ = ४ माना कि प्रथम समय में १०२४ अपूर्व-स्पर्धक रचता हैं तो दूसरे समय में १०२४ ÷ ४ = २५६ अपूर्वस्पर्धक रचता हैं। तीसरे समय में २५६ ÷ ४ = ६४ अपूर्व-स्पर्धक रचता हैं। चौथे समय में ६४ ÷ ४ = १६ अपूर्वस्पर्धक रचता हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार अश्वकर्णकरणकाल के प्रत्येक समय में असंख्यातगुणे हीन नवीन अपूर्वस्पर्धक रचे जाते हैं। असंख्यातगुणा हीनपना प्राप्त करने के लिए पूर्वसमय के अपूर्व स्पर्धकों में प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भाग से भाग देना चाहिए।[३]

$$\text{पूर्वसमय के नवीन अपूर्वस्पर्धक} \div \frac{\text{पल्योपम का प्रथम वर्गमूल}}{\text{असंख्यात}} = \text{उत्तर समय के नये अपूर्व स्पर्धकों का प्रमाण}$$

पूर्वस्पर्धक डेढ़गुणहानि मात्र (१२), उसके नीचे प्रथम समय में किए हुए अपूर्वस्पर्धक गुणहानि के असंख्यातवें भागमात्र $\boxed{\frac{८}{a}}$ (गुणहानि की संदृष्टि ८, असंख्यात की संदृष्टि a)

---

१) ज.ध.पु.१४ पृ. ३६४ २) क.पा.सुत्त पृ. ७९६ सू ५३६ और ५४९-५५३ /ध.पु.६ पृ.३७२
३) ज. ध. पु. १४ पृ. ३६५

उसके नीचे उसका असंख्यातवाँ भागमात्र दूसरे समय में किए गए अपूर्वस्पर्धक ८ a a उनकी रचना -

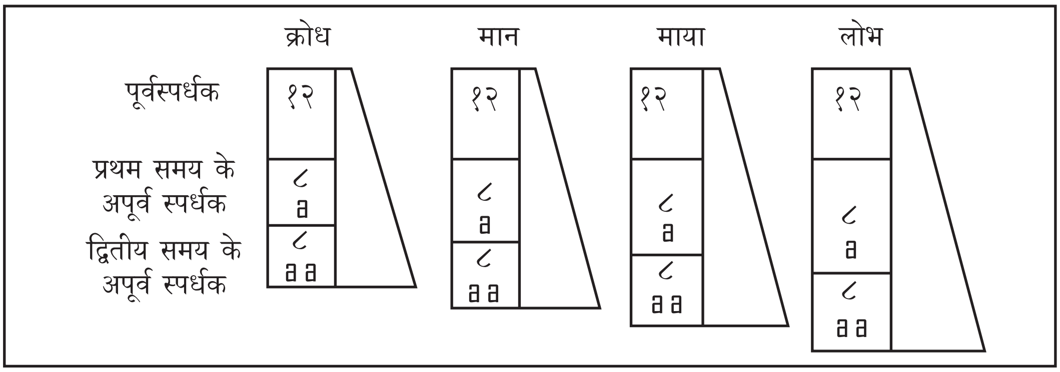

क्रोध, मान, माया और लोभ के अपूर्वस्पर्धक क्रम से अधिक हैं इसलिए क्रोध से लोभ तक अपूर्वस्पर्धकों की लंबाई क्रम से वृद्धि को प्राप्त है। इसीप्रकार तृतीयादि समयों में नीचे-नीचे असंख्यातगुणे घटते क्रम से अपूर्व स्पर्धकों की रचना करनी चाहिए

आदोलस्स य चरिमे अपुव्वादिमवग्गणाविभागादो ।
दो चढिमादीणादी चढिदव्वा मेत्तणंतगुणा[1] ।।४८४।।

आन्दोलस्य च चरमेऽपूर्वादिमवर्गणाविभागात्
द्विचटितादीनामादिश्चटितव्या मात्रानन्तगुणा ।।४८४।।

अन्वयार्थ - (आदोलस्स य चरिमे) आदोलकरण के अंतिम समय में **(अपुव्वादिमवग्गणाविभागादो)** अपूर्व प्रथम स्पर्धक की आदिवर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों से **(दो चढिमादीणादी)** द्वितीयादि स्पर्धकों की आदिवर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद दुगुणे आदि हैं । **(मेत्तणंतगुणा चढिदव्वा)** अंतिम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं।

विशेषार्थ - अश्वकर्णकरण के अंतिम समय में सभी अपूर्व स्पर्धकों की रचना हुई । उसमें से प्रथम अपूर्व स्पर्धक की आदिवर्गणा में अविभागप्रतिच्छेद सबसे अल्प हैं, उससे द्वितीय अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में दुगुणे, तृतीय स्पर्धक की आदिवर्गणा में तिगुणे, इस प्रकार जितनेवां स्पर्धक हो उसकी आदिवर्गणा में उतने गुणे अविभागप्रतिच्छेद जानना चाहिए।

इस प्रकार अनन्तस्पर्धक ऊपर चढ़ने पर अनन्तवें स्पर्धक की आदिवर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे जानना चाहिए । अंतिम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं। यहाँ

१) क. पा. सुत्र पृ. ७९६ सू. ५५४- ५५७/ध. पु. ६ पृ. ३७२ - ३७३

विवक्षित वर्गणा के एक-एक परमाणु में प्राप्त अविभाग- प्रतिच्छेदों की अपेक्षा अल्पबहुत्व कहा गया है। सभी परमाणुओं की अपेक्षा कुछ कम दुगुणे, तिगुणे आदि क्रमसे हैं क्योकि प्रत्येक वर्गणा में परमाणुओं की संख्या कम होती जाती है। चारो कषायों में ऐसा ही क्रम जानना चाहिए।[१]

अश्वकर्णकरण में प्रथम अनुभाकाण्डक का पतन होने पर स्पर्धकादि में अल्पबहुत्व -

आदोलस्स य पढमे रसखंडे पाडिदे अपुव्वादो।
कोहादी अहियकमा पदेसगुणहाणिफड्ढया तत्तो ।।४८५।।
होदि असंखेज्जगुणं, इगिफड्यवग्गणा अणंतगुणा।
तत्तो अणंतगुणिदा, कोहस्स अपुव्वफड्ढयाणं च ।।४८६ ।।
माणादीणहियकमा, लोभगपुव्वं च वग्गणा तेसिं।
कोहोत्ति य अट्ठपदा अणंतगुणिदक्कमा होंति[२] ।।४८७ ।।

आन्दोलस्य य प्रथमे रसखण्डे पतितेऽपूर्वात्।
क्रोधादधिकक्रमाः प्रदेशगुणहानिस्पर्धकास्ततः ।।४८५ ।।
भवत्यसङ्ख्येयगुणमेकस्पर्धकवर्गणाऽनन्तगुणा।
ततोऽनन्तगुणितं क्रोधस्यापूर्वं स्पर्धकानाञ्च ।।४८६ ।।
मानादीनामधिकक्रमं लोभगपूर्व च वर्गणा तेषाम्।
क्रोध इति चाष्टपदान्यनन्तगुणितक्रमाणि भवन्ति ।।४८७ ।।

अन्वयार्थ - (आदोलस्स य) आदोलकरण के **(पढमे रसखंडे पाडिदे)** प्रथम अनुभागकांडक का पतन करने पर **(अपुव्वादो कोहादी अहियकमा)** क्रोधादि अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक क्रम से हैं। **(तत्तो)** उससे **(पदेसगुणहाणिफड्डया)** एकप्रदेश गुणहानि के स्पर्धक **(असंखेज्जगुणं)** असंख्यातगुणे **(होदि)** हैं । उससे **(इगिफड्डयवग्गणा)** एकस्पर्धक संबंधी वर्गणाएँ **(अणंतगुणा)** अनन्तगुणी हैं। **(तत्तो)** उससे **(कोहस्स अपुव्वफड्डयाणं च)** क्रोध के अपूर्व स्पर्धकों की वर्गणाएँ **(अणंतगुणिदा)** अनन्तगुणी हैं। **(माणादीणहियकमा)** उससे मानादिकों के अूपर्वस्पर्धकों की वर्गणा अधिकक्रम से हैं। उससे **(लोभगपुव्वं)** लोभ के कुल पूर्व स्पर्धक **(च)** और **(तेसिं वग्गणा)** उनकी अर्थात् पूर्वस्पर्धकों की कुल वर्गणाएँ **(कोहोत्ति य अट्ठपदा)** क्रोधतक आठ पद **(अणंतगुणिदकमा)** अनन्तगुणित क्रम से **(होंति)** हैं।

१) ज. ध. पु. १४ पृ. ३६७
२) क. पा. सुत्र. पृ. ७९६-७९७ सू. ५५८-५७७ / ज. ध. पु. १४ पृ. ३६७ - ३७०

विशेषार्थ - अश्वकर्णकरण के प्रथम अनुभागकाण्डक का घात होने पर संज्वलन कषायों के शेष अनुभाग संबंधी अल्पबहुत्व इस प्रकार हैं।

१) क्रोध के अपूर्वस्पर्धक सबसे कम हैं।

२) उससे मान के अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक हैं।

३) उससे माया कषाय के अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक हैं।

४) इससे लोभकषाय के अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक हैं।

५) इससे एक प्रदेश गुणहानि के स्पर्धक असंख्यातगुणे हैं क्योंकि अपूर्व स्पर्धक एक प्रदेशगुणहानि स्पर्धकों के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । उससे

६) एक स्पर्धक की वर्गणाएं अनन्तगुणी हैं क्योंकि पूर्व और अपूर्व स्पर्धकों में एक स्पर्धकसंबंधी वर्गणाए अभव्यों से अनन्तगुणी और सिद्धराशि के अनन्तवें भागमात्र हैं। इसलिए अनन्त का गुणकार संभव हैं। सभी स्पर्धकों में वर्गणाओं का प्रमाण समान है।

७) उससे संज्वलन क्रोध के सभी अपूर्व स्पर्धकों की वर्गणाएं अनन्तगुणी हैं क्योंकि एक स्पर्धक की वर्गणाप्रमाण को क्रोध के कुल अपूर्वस्पर्धक प्रमाण से गुणा करने पर सभी अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणाओं का प्रमाण आता है। क्रोध के अपूर्व स्पर्धक अनन्त हैं इसलिए अनन्त गुणकार संभव हैं। गुणकार का प्रमाण एक प्रदेश गुणहानि स्पर्धकों का असंख्यातवाँ भाग है । क्योंकि अपूर्व स्पर्धकों का प्रमाण उतना है।

अंकसंदृष्टि - माना कि क्रोध के अपूर्वस्पर्धक २, मान के ३, माया के ४ और लोभ के ५ हैं। एक प्रदेशगुणहानि स्पर्धकों का प्रमाण २० और एक स्पर्धक संबंधी वर्गणाओं का प्रमाण १०० हैं।

क्रोध के अपूर्वस्पर्धक × एक स्पर्धक संबंधी वर्गणाएँ = कुल क्रोध अपूर्वस्पर्धक वर्गणाएँ

२ × १०० = २००

८) उससे मान के सभी अपूर्व स्पर्धकों की वर्गणाएँ विशेष अधिक हैं।

मान के अपूर्वस्पर्धक × एक स्पर्धक संबंधी वर्गणाएँ = कुल मान अपूर्व स्पर्धक वर्गणाएँ

३ × १०० = ३००

९) इससे मायाकषाय के सभी अपूर्वस्पर्धक वर्गणाएँ विशेष अधिक हैं।

मायाकषाय के अपूर्वस्पर्धक × एक स्पर्धक संबंधी वर्गणाएं = कुल मायाकषाय के अपूर्वस्पर्धक की वर्गणाएँ। ४ × १०० = ४००

१०) उससे लोभकषाय के सभी अपूर्वस्पर्धक वर्गणाएं विशेष अधिक हैं।

लोभकषाय के अपूर्वस्पर्धक × एक स्पर्धकसंबंधी वर्गणाएँ = कुल लोभकषाय के अपूर्व स्पर्धक संबंधी वर्गणाएँ

= ५ × १०० = ५००

क्रोधादिकों के अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण विशेष अधिक क्रम से हैं इसलिए उनकी वर्गणाओं का प्रमाण भी विशेष अधिक क्रम से हैं।

११) उससे लोभकषाय के सभी पूर्वस्पर्धक अनन्तगुणे हैं क्योंकि लोभ के अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण एकप्रदेश गुणहानि स्पर्धक शलाका के असंख्यातवें भाग है । उसे एक स्पर्धक की वर्गणा प्रमाण से गुणा करने पर लोभ के सभी अपूर्व स्पर्धक संबंधी वर्गणाओं का प्रमाण आता है और एक प्रदेशगुणहानि स्पर्धक की संख्या को नानागुणहानि से गुणा करने पर लोभ के सभी पूर्वस्पर्धकों का प्रमाण आता है। यहाँ एक स्पर्धक वर्गणाओं के प्रमाण से नानागुणहानि का प्रमाण अनन्तगुणा है इसलिए अनन्त का गुणकार संभव हैं।

$$\text{सर्व अपूर्व स्पर्धक वर्गणा} = \frac{\text{एकगुणहानि स्पर्धक संख्या}}{\text{असंख्यात}} \times \text{एक स्पर्धकगत वर्गणा}$$

(२० ÷ ४) × १०० = ५ × १०० = ५००

सर्व पूर्वस्पर्धक = एकगुणहानि स्पर्धक संख्या × नानागुणहानि शलाका

३००० = २० × १५०

१२) लोभ के पूर्वस्पर्धकों से उसकी ही सर्व पूर्वस्पर्धक वर्गणाएँ अनन्तगुणी हैं।

लोभपूर्वस्पर्धक × एकस्पर्धक संबंधी वर्गणाएँ = लोभ की सर्व पूर्वस्पर्धकवर्गणा

३००० × १०० = ३,००,०००

१३) लोभकषाय संबंधी सर्वपूर्वस्पर्धक वर्गणाओं से माया संज्वलन के पूर्व स्पर्धक अनन्तगुणे हैं क्योंकि प्रथम अनुभागकांडक का घात होने पर लोभादि संज्वलन के पूर्वस्पर्धकों में क्रम से अनन्तगुणित वृद्धि दिखाई देती हैं।

लोभकषाय पूर्वस्पर्धक वर्गणा × अनन्त = मायाकषाय पूर्व स्पर्धक

३,००,००० × ५ = १५,००,०००

शंका - लोभसंज्वलन के पूर्व स्पर्धकों से माया संज्वलन के पूर्वस्पर्धक अनन्तगुणे होते हैं यह तो ठीक है, परन्तु लोभसंज्वलन के पूर्वस्पर्धकों से अनन्तगुणी उसकी वर्गणाओं से माया संज्वलन के पूर्वस्पर्धक अनन्तगुणे कैसे हो सकते हैं?

समाधान - यह कोई दोष नहीं है क्योंकि वर्गणाशलाका गुणकार से स्पर्धकशलाका गुणकार अनन्तगुणा स्वीकार किया है। अंकसंदृष्टि से वर्गणा गुणकार १०० है तो स्पर्धकशलाका गुणकार ५०० है। ३००० × १०० = ३,००,००० लोभ पूर्वस्पर्धक वर्गणाएँ

लोभपूर्वस्पर्धक × अनन्त = ३००० × ५०० = १५,००,००० मायापूर्व स्पर्धक

१४) संज्वलन माया के पूर्वस्पर्धकों से उसकी ही सर्व पूर्वस्पर्धक वर्गणाएँ अनन्तगुणी हैं।

मायापूर्वस्पर्धक × एक स्पर्धक संबंधी वर्गणाएँ = माया सर्व पूर्वस्पर्धक वर्गणाएँ

१५,००,००० × १०० = १५,००,००,०००

१५) उससे मान संज्वलन के पूर्व स्पर्धक अनन्तगुणे हैं।

संज्वलन मायापूर्वस्पर्धक वर्गणाएँ × अनन्त = संज्वलन मान के पूर्वस्पर्धक

१५,००,००,००० × ५ = ७५,००,००,०००

१६) उससे मान संज्वलन की सभी पूर्वस्पर्धक वर्गणाएँ अनन्तगुणी हैं।

संज्वलन मानपूर्वस्पर्धक × एकस्पर्धक संबंधी वर्गणाएँ = सर्व मान की पूर्वस्पर्धक वर्गणाएँ

७५,००,००,००० × १०० = ७५,००,००,००,०००

१७) उससे क्रोधसंज्वलन के सर्वपूर्वस्पर्धक अनन्तगुणे हैं।

संज्वलन मानपूर्व स्पर्धक वर्गणाएँ × अनन्त = सर्व क्रोध के पूर्व स्पर्धक

७५,००,००,००,००० × ५ = ३७,५००,००,००,०००

१८) उससे क्रोध संज्वलन की सर्वपूर्वस्पर्धक वर्गणाएँ अनन्तगुणी हैं।

क्रोध पूर्व स्पर्धक × एक स्पर्धकगत वर्गणाएं = सर्वक्रोध स्पर्धक वर्गणाएँ

३,७५,००,००,००,००० × १०० = ३७,५०,०००,००,००,०००

अर्थसंदृष्टि से अल्पबहुत्व पदों का प्रमाण -

क्रोध, मान, माया और लोभ के अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण = प्रथम समय में किये गये अपूर्व स्पर्धकों की संदृष्टि के ऊपर अन्य समय में किये गये स्पर्धक मिलाने के लिए कुछ अधिक की संदृष्टि '।' करना चाहिए।

१) क्रोध के अपूर्वस्पर्धक | ।
९
ओ a |

२) मान के अपूर्व स्पर्धक | । १-
९ ख
ओ a ख |

३) माया के अपूर्वस्पर्धक | । २-
९ ख
ओ a ख |

४) लोभ के अपूर्वस्पर्धक | । ३-
९ ख
ओ a ख |

प्रथम समय में किए गए अपूर्वस्पर्धकों का स्पष्टीकरण गाथा ४६९ में देखें ।

५) एक गुणहानि स्पर्धक शलाका की संदृष्टि '९' ।

६) एक स्पर्धक में वर्गणाशलाका की संदृष्टि '४'।

७) क्रोधादि अपूर्व स्पर्धकों के आगे वर्गणाशलाका की संदृष्टि रखने पर अपूर्व स्पर्धकों की वर्गणाएँ होती हैं।

क्रोध के अपूर्व स्पर्धक की वर्गणाएँ | ।
९।४
ओ a |

८) मान के अपूर्व स्पर्धक की वर्गणाएँ | । १-
९ ख।४
ओ a ख |

९) माया के अपूर्वस्पर्धक की वर्गणाएँ [| २- / ९ ख|४ / ओ a ख] १०) लोभ के अपूर्वस्पर्धक की वर्गणाएँ [| ३- / ९ ख|४ / ओ a ख]

नाना गुणहानि से स्पर्धकशलाका को गुणा करने पर पूर्वस्पर्धकों का प्रमाण आता है। लोभ से क्रोध तक के स्पर्धकों का प्रमाण अनन्तगुणित है। यह दिखलाने के लिए लोभ के पूर्व स्पर्धकों को चार बार अनन्त से भाग दिया। माया के पूर्वस्पर्धकों को तीन बार, मान के स्पर्धकों को दो बार और क्रोध के पूर्वस्पर्धकों को एक बार अनन्त से भाग दिया ।

११) लोभ के पूर्व स्पर्धक [९ ना / ख ख ख ख] १३) माया के पूर्व स्पर्धक [९ ना / ख ख ख]

१५) मान के पूर्व स्पर्धक [९ ना / ख ख] १७) क्रोध के पूर्व स्पर्धक [९ ना / ख]

१२) लोभ के पूर्वस्पर्धक की वर्गणाएँ [९ ना ४ / ख ख ख ख] १४) माया के पूर्व स्पर्धक की वर्गणाएँ [९ ना ४ / ख ख ख]

१६) मान की पूर्वस्पर्धक की वर्गणाएँ [९ ना ४ / ख ख] १८) क्रोध के पूर्व स्पर्धक की वर्गणाएँ [९ ना ४ / ख]

अपने - अपने पूर्वस्पर्धकों को वर्गणाशलाका से गुणा करने पर अपने - अपने सर्व पूर्वस्पर्धक की वर्गणाओं का प्रमाण आता है।

अपूर्वस्पर्धककरण विधि की पूर्णता

रसठिदिखंडाणेवं संखेज्जसहस्सगाणि गंतूणं ।
तत्थ य अपुव्वफड्डयकरणविही णिट्ठिदा होदी ।।४८८।।

रसस्थितिखण्डानामेवं सङ्ख्येयसहस्रकाणि गत्वा ।
तत्र चापूर्वस्पर्धककरणविधिर्निष्ठिता भवति ।।४८८।।

अन्वयार्थ - (एवं) इस प्रकार **(संखेज्जसहस्सगाणि)** संख्यातहजार **(रसठिदिखंडाणगंतूणं)** अनुभागकांडक और स्थितिकांडक जाने पर **(तत्थ)** वहाँ **(अपुव्वफड्डयकरणविही)** अपूर्व स्पर्धक करने की विधि **(णिट्ठिदा होदी)** पूर्ण होती है।

अश्वकर्णकरण के प्रथम अनुभाकाण्डक का घात होने पर शेष रहे अनुभाग का अल्पबहुत्व

		अर्थसंदृष्टि	अंकसंदृष्टि
१) संज्वलन क्रोधकषाय के अपूर्वस्पर्धक	सबसे अल्प	। ९ ओ a	२
२) संज्वलन मानकषाय के अपूर्वस्पर्धक	विशेष अधिक	। १- ९ ख ओ a ख	३
३) संज्वलन मायाकषाय के अपूर्वस्पर्धक	विशेष अधिक	। २- ९ ख ओ a ख	४
४) संज्वलन लोभकषाय के अपूर्वस्पर्धक	विशेष अधिक	। ३- ९ ख ओ a ख	५
५) एक प्रदेश गुणहानि स्पर्धक संख्या	असंख्यात गुणा	९	२०
६) एक स्पर्धक की वर्गणाओं की संख्या	अनन्तगुणी	४	१००
७) संज्वलन क्रोध के सर्व अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणायें	अनन्तगुणी	। ९ ४ ओ a	२००
८) संज्वलन मान के सर्व अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणायें	विशेष अधिक	। १- ९ ख।४ ओ a ख	३००
९) संज्वलन माया के सर्व अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणायें	विशेष अधिक	। २- ९ ख।४ ओ a ख	४००
१०)संज्वलन लोभ के सर्व अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणायें	विशेष अधिक	। ३- ९ ख।४ ओ a ख	५००
११) संज्वलन लोभ के सर्व पूर्व स्पर्धक	अनन्तगुणे	९ ना खखखख	३०००
१२) संज्वलन लोभ की सर्व पूर्व स्पर्धकवर्गणायें	अनन्तगुणी	९ ना ४ खखखख	३,००,०००
१३) संज्वलन माया के सर्व पूर्व स्पर्धक	अनन्तगुणे	९ ना खखख	१५,००,०००
१४) संज्वलन माया की सर्व पूर्व स्पर्धकवर्गणायें	अनन्तगुणी	९ ना ४ खखख	१५,००,००,०००
१५) संज्वलन मान के सर्व पूर्व स्पर्धक	अनन्तगुणे	९ ना खख	७५,००,००,०००
१६) संज्वलन मान की सर्व पूर्व स्पर्धकवर्गणायें	अनन्तगुणी	९ ना ४ खख	७५,००,००,००,०००
१७) संज्वलन क्रोध के सर्व पूर्व स्पर्धक	अनन्तगुणे	९ ना ख	३,७५,००,००,००,०००
१८) संज्वलन क्रोध की सर्व पूर्व स्पर्धकवर्गणायें	अनन्तगुणी	९ ना ४ ख	३७,५०,०००,००,००,०००

अल्पबहुत्व का नक्शा

संज्वलन क्रोध पूर्व व अपूर्व स्पर्धक

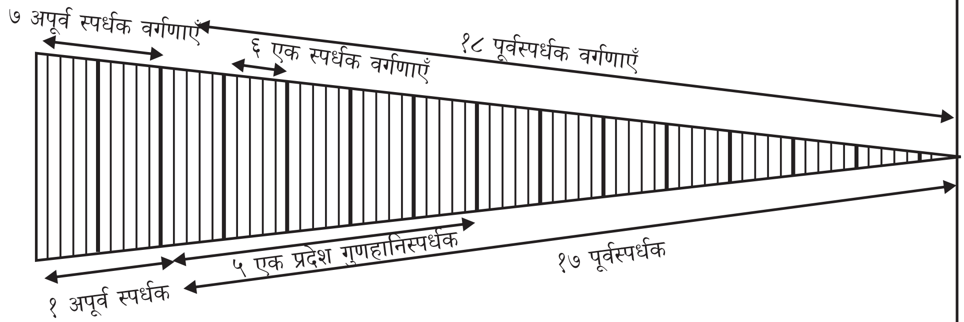

संज्वलन मान पूर्व व अपूर्व स्पर्धक

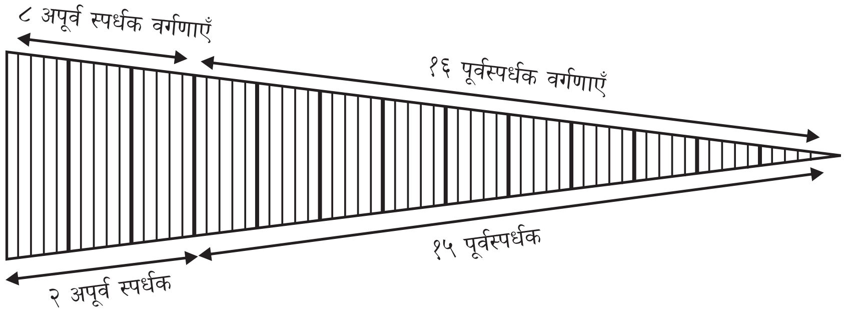

संज्वलन माया पूर्व व अपूर्व स्पर्धक

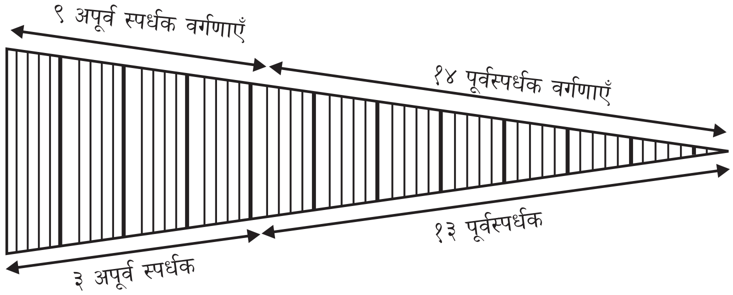

संज्वलन लोभ पूर्व व अपूर्व स्पर्धक

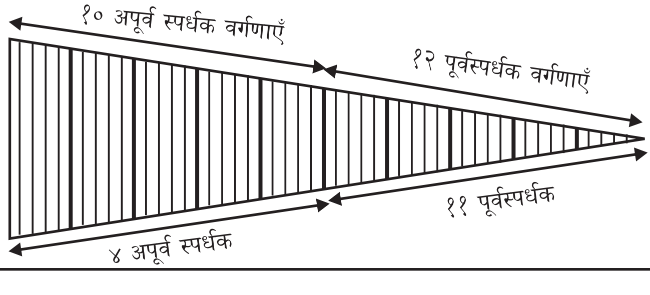

विशेषार्थ - पूर्वोक्त क्रम से हजारों अनुभागकांडक घात होने पर एक स्थितिकांडक होता है ऐसे संख्यात हजार स्थितिकांडक होने पर अश्वकर्णकरणकाल समाप्त होता हैं। उस अश्वकर्णकरण-काल में प्रत्येक समय में अपूर्वस्पर्धकों की रचना होती है। अंतर्मुहूर्तमात्र अश्वकर्ण करणकाल समाप्त होने पर अपूर्वस्पर्धकों की रचना भी समाप्त होती है।[1]

अश्वकर्णकरण के अंतिमसमय में स्थितिबंध कहते हैं-

हयकण्णकरणचरिमे संजलणाणट्ठवस्सठिदिबंधो।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति सेसाणं[2] **।।४८९।।**

हयकर्णकरणचरमे सज्ज्वलनानामष्टवर्षस्थितिबन्धः ।
वर्षाणां सङ्ख्येयसहस्राणि भवन्ति शेषाणाम् ।।४८९।।

अन्वयार्थ - (हयकण्णकरणचरिमे) अश्वकर्णकरण के अंतिम समय में **(संजलणाण ठिदिबंधो)** संज्वलन कषायों का स्थितिबंध **(अट्ठवस्स)** आठवर्षप्रमाण होता है और **(सेसाणं)** शेष कर्मों के स्थितिबंध **(वस्साणं संखेज्जसहस्साणि)** संख्यातहजार वर्षप्रमाण **(हवंति)** होते हैं।

विशेषार्थ - अश्वकर्णकरणकाल के प्रथम समय में संज्वलन कषायों का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम सोलह (१६) वर्ष प्रमाण होता था। प्रत्येक स्थितिबंधापसरण में मात्र अन्तर्मुहूर्त हीन होता हुआ यहाँ आठ वर्षप्रमाण रहता है। शेष ज्ञानावरणादि कर्मोंका स्थितिबंध प्रथम समय में संख्यातहजार वर्षमात्र होता था। एक-एक स्थितिबंधापसरण द्वारा संख्यातगुणा हीन होता है, परंतु आलाप की अपेक्षा संख्यात हजार वर्षप्रमाण ही कहा जाता है।

अश्वकर्णकरण के अंतिम समय का स्थितिसत्त्व कहते हैं-

ठिदिसत्तमघादीणं असंखवस्साण होंति घादीणं।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति णियमेण[3] **।।४९०।।**

स्थितिसत्त्वमघातिनामसङ्ख्यवर्षा भवन्ति घातिनाम्।
वर्षाणां सङ्ख्येयसहस्राणि भवन्ति नियमेन ।।४९०।।

---

१) ज. ध. पु. १४ पृ. ३७०-३७१
२) क. पा. सुत्त पृ. ७९७ सू. ५७९ - ५८०/ ज. ध. पु. १४ पृ. ३७१/ध. पु. ६ पृ. ३७४
३) क. पा. सुत्त पृ. ७९७ सू. ५८१-५८२/ध. पु. ६ पृ. ३७४

अन्वयार्थ - उसी अंतिम समय में **(अघादीणं ठिदिसत्तं)** अघातिकर्मों का स्थितिसत्त्व (**असंखवस्साण)** असंख्यात वर्षप्रमाण **(होंति)** है। **(घादीणं)** घातिकर्मों का स्थितिसत्त्व **(णियमेण)** नियम से **(वस्साणं संखेज्जसहस्साणि)** संख्यात हजार वर्ष **(हवंति)** है।

विशेषार्थ - अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में अघातिकर्मों का असंख्यात वर्ष स्थितिसत्त्व होता था। असंख्यात बहुभाग प्रमाण संख्यात हजार स्थितिकांडकों द्वारा असंख्यातगुणा स्थितिसत्त्व कम होकर भी असंख्यात वर्षप्रमाण ही रहता है। प्रथम समय में चार घातिकर्मों का स्थितिसत्त्व संख्यात हजार वर्षमात्र था। संख्यात बहुभाग प्रमाण संख्यात हजार स्थितिकांडकों द्वारा कम होकर भी सामान्यत: संख्यात हजार वर्ष प्रमाण ही रहता है। इस प्रकार अश्वकर्णकरणकाल समाप्त होता है।

इति अपूर्वस्पर्धककरणअधिकार: ।।१०।।

अपूर्वस्पर्धककरणकाल के अनन्तर समय से लेकर कृष्टिकरणकाल है। जिस करण द्वारा कर्म का अनुभाग कृष अर्थात् हीन किया जाता है उसकी कृष्टि यह अन्वर्थ संज्ञा है। वह कृष्टि दो प्रकार की हैं बादरकृष्टि और सूक्ष्मकृष्टि। संज्वलन कषायों का पूर्व अपूर्वस्पर्धकों में ईंट की पंक्ति के समान अनुभाग क्रम से बढ़ता जाता है। प्रत्येक स्पर्धक की वर्गणाओं में एक-एक अविभाग-प्रतिच्छेद बढ़ता जाता है उन वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक कहते हैं।

उन स्पर्धकों का अनुभाग अनन्तगुणा हीन करके स्थूल खंड करते हैं उसे बादरकृष्टिकरण कहते हैं। पुन: उन स्थूल खंडों का अनुभाग अनन्तगुणा हीन करके सूक्ष्मखंड करते हैं, उसे सूक्ष्मकृष्टिकरण कहते हैं।

उसमें से बादरकृष्टिकरण काल का प्रमाण जानने के लिए दो गाथाएँ कहते हैं-

छक्कम्मे संछुद्धे कोहे कोहस्स वेदगद्धा जा ।
तस्स य पढमतिभागो होदि हु हयकण्णकरणद्धा ।।४९१।।
विदियतिभागो किट्टीकरणद्धा किट्टिवेदगद्धा हु।
तदियतिभागो किट्टीकरणो हयकण्णकरणं च [1] **।।४९२।।**

षट्कर्मणि सङ्क्षुब्धे क्रोधे क्रोधस्य वेदकाद्धा या ।
तस्य च प्रथमत्रिभागो भवति हि हयकर्णकरणाद्धा ।।४९१।।
द्वितीयत्रिभाग: कृष्टिकरणाद्धा कृष्टिवेदकाद्धा हि ।
तृतीयत्रिभाग: कृष्टिकरणं हयकर्णकरणं च ।।४९२।।

१) ज. ध. पु. १५ पृ. १

अन्वयार्थ - (छक्कम्मे कोहे संछुद्धे) छह नोकषायों का क्रोध में संक्रमण होने पर **(जा कोहस्स वेदगद्धा)** जो क्रोध का वेदककाल शेष है **(तस्स य पढमतिभागो)** उसका प्रथमत्रिभाग **(हयकण्णकरणद्धा)** अश्वकर्णकरणकाल **(होदि हु)** है । **(विदियतिभागो)** उसका दूसरा त्रिभाग **(किट्टीकरणद्धा)** कृष्टिकरणकाल है **(च)** और **(तदियतिभागो)** तीसरा त्रिभाग **(किट्टिवेदगद्धा हु)** कृष्टिवेदककाल है। **(किट्टीकरणो हयकण्णकरणं)** कृष्टिकरणकाल भी अश्वकर्णकरणरूप है।

विशेषार्थ - हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इन छह नोकषायरूप कर्म प्रकृतियों का संज्वलन क्रोध में संक्रमण होकर नष्ट होने पर जो अन्तर्मुहूर्त प्रमाण क्रोधवेदककाल रहता है। उसके तीन भाग होते हैं। वह इस प्रकार है-

क्रोधवेदककाल को संख्यात से भाग देकर जो बहुभाग आता है उसके समान तीन भाग करना चाहिए । शेष रहे एक भाग को पुनः संख्यात से भाग देकर जो बहुभाग आता है उसे प्रथम समान त्रिभाग में मिलाएँ। शेष एकभाग को पुनः संख्यात का भाग देकर जो बहुभाग आता है उसे दूसरे त्रिभाग में मिलावें और शेष एकभाग तीसरे त्रिभाग में मिलावें।

अंकसंदृष्टि - माना कि क्रोधवेदककाल १०२४ और संख्यात ४ है ।
१०२४ ÷ ४ = २५६ एक भाग । २५६ × ३ = ७६८ बहुभाग। बहुभाग के समान तीन भाग ७६८ ÷ ३ = २५६ । २५६, २५६, २५६ हुए। शेष एकभाग २५६ को ४ से भाग देने पर ६४ एकभाग और ६४ × ३ = १९२ बहुभाग । इस बहुभाग को प्रथम २५६ में जोड़े। शेष एकभाग ६४ को पुनः ४ से भाग देने पर एकभाग १६ और १६ × ३ = ४८ बहुभाग दूसरे त्रिभाग में जोड़ें और शेष एकभाग १६ तीसरे त्रिभाग में जोड़े।

	प्रथम त्रिभाग	द्वितीय त्रिभाग	तृतीय त्रिभाग
बहुभाग के समान भाग	२५६	२५६	२५६
शेष एकभाग का बहुभाग और एकभाग	१९२	४८	१६
कुल	४४८	३०४	२७२

पहला त्रिभाग कुछ अधिक है क्योंकि १०२४ का त्रिभाग ३४१ होता है। प्रथम त्रिभाग ४४८ आया है इसलिए वह त्रिभाग की अपेक्षा अधिक है। दूसरा त्रिभाग कुछ कम है। तीसरा त्रिभाग उससे कम है।

अर्थसंदृष्टि -

क्रोधवेदककाल अंतर्मुहूर्त २९ (आवली × संख्यात) को संख्यात से भाग देकर [२९ / ९] बहुभाग

के (१─ २९९ ९) समान तीन भाग करने के लिए ३ से भाग दे और तीन जगह रखे

अवशेष एकभाग को (२९ ९) संख्यात से भाग देकर (२९ ९९) बहुभाग (१─ २९९ ९९) प्रथम समभाग

में देना चाहिए । पुन: शेष एकभाग को (२९ ९९) संख्यात से भाग देकर (२९ ९९९) बहुभाग (१─ २९९ ९९९)

दूसरे समभाग में मिलाना चाहिए। शेष एक भाग (२९ ९९९) तीसरे समभाग में मिलाना चाहिए।

नाम	**अश्वकर्णकरणकाल**	**कृष्टिकरणकाल**	**कृष्टिवेदककाल**
बहुभाग के समभाग	१─ २९९ ९। ३	१─ २९९ ९। ३	१─ २९९ ९। ३
एकभाग का बहुभाग और शेष एकभाग	१─ २९९ ९९	१─ २९९ ९९९	२९ ९९९

प्रथम साधिक त्रिभाग, अपूर्वस्पर्धकसहित अश्वकर्णकरणकाल है वह पहले बीत गया। दूसरा त्रिभाग कुछ कम है। वह संज्वलन चारों कषायों का कृष्टिकरणकाल है ,वह अब वर्तमान है। तीसरा त्रिभाग कुछ कम है, वह क्रोधकृष्टि का वेदककाल है, वह आगे होगा।

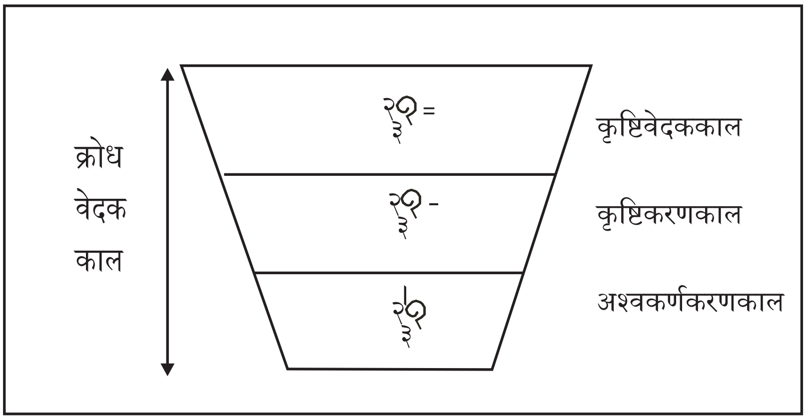

इस कृष्टिकरणकाल में भी अश्वकर्णकरण होता है क्योंकि यहाँ भी घोड़े के कान के आकार से संज्वलन कषायों का अनुभागसत्त्व और अनुभागकांडक प्रवृत्त है इसलिए यहाँ कृष्टिकरण सहित अश्वकर्णकरण संभव है।

वहाँ प्रथम समय में एक स्थितिबंधापसरण होने से संज्वलन चतुष्क का अंतर्मुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण स्थितिबंध होता है क्योंकि ३२ वर्षप्रमाण स्थितिबंध प्रारंभ होने पर अपसरण का प्रमाण अंतर्मुहूर्त है । अन्य कर्मों का स्थितिबंध पूर्व स्थितिबंध से संख्यातगुणा हीन संख्यात वर्षप्रमाण होता है । एक स्थितिकांडक घात होने से घातिकर्मों का स्थितिसत्त्व पूर्व स्थितिसत्त्व से संख्यात बहुभागमात्र हीन संख्यात हजार वर्षमात्र और तीन अघातिकर्मों का स्थितिसत्त्व पूर्व स्थितिसत्त्व से असंख्यात बहुभागमात्र कम असंख्यात वर्षमात्र है।

पूर्वस्पर्धक, अपूर्वस्पर्धक और कृष्टिकरण के लक्षण -

१) पूर्वस्पर्धक - अनादि संसार अवस्था से अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में अश्वकर्णकरण क्रिया प्रारंभ करने के पूर्व तक जो अनुभाग स्पर्धकों की रचना है उसे पूर्व स्पर्धक कहते हैं ।

२) अपूर्वस्पर्धक - संसार अवस्था में कभी भी इतने कम अनुभागयुक्त स्पर्धक प्राप्त नहीं होते, इतना ही नहीं किन्तु उपशमश्रेणी में भी प्राप्त नहीं होते। केवल क्षपकश्रेणी में अश्वकर्णकरणकाल में ही पूर्वस्पर्धकों के नीचे अनन्तगुणित हानिरूप से अपवर्तित करके जिन स्पर्धकों की रचना की जाती है उसे अपूर्वस्पर्धक कहते हैं ।

३) कृष्टिकरण - जिस प्रकार स्पर्धकों में अनुभाग की अपेक्षा से क्रमवृद्धि और क्रमहानि होती है उस प्रकार जहाँ अनुभाग रचना में क्रमवृद्धि और क्रमहानि नहीं होती है, परन्तु उत्तरोत्तर अनन्तगुणित हानिरूप से अनुभाग की रचना होती है उसकी कृष्टिकरण संज्ञा है।[1]

कृष्टि के लिए द्रव्य कहाँ से लेता हैं वह कहते हैं -

कोहादीणं सगसगपुव्वापुव्वगदफड्डयेहिंतो ।
उक्कड्डिदूण दव्वं ताणं किट्टी करेदि कमे ।।४९३ ।।

क्रोधादीनां स्वकस्वकपूर्वापूर्वगतस्पर्धकेभ्यः ।
अपकर्षयित्वा द्रव्यं तेषां कृष्टीः करोति क्रमेण ।।४९३ ।।

अन्वयार्थ - (कोहादीणं) संज्वलन क्रोधादिकों के **(सगसगपुव्वापुव्वगदफड्डयेहिंतो)** अपने-अपने पूर्व और अपूर्व स्पर्धकों में से **(दव्वं)** द्रव्य का **(उक्कड्डिदूण)** अपकर्षण करके **(कमे)** क्रम से **(ताणं)** उनकी **(किट्टी)** कृष्टियाँ **(करेदि)** करता है ।

विशेषार्थ - कृष्टिकरण के प्रथम समय में क्रोध के पूर्व और अपूर्वस्पर्धकरूप सर्वद्रव्य को अपकर्षण भागहार से भाग देकर एक भाग मात्र द्रव्य ग्रहण करके क्रोध की कृष्टियों को करता है । उसी

१) ज. ध. पु. १५ पृ. २ विशेषार्थ

प्रकार मान, माया और लोभ के पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों में से द्रव्य का अपकर्षण करके क्रमश: मान, माया और लोभ की भी कृष्टियों को करता है।

अपकर्षित द्रव्य का विभाग कहते हैं-

उक्कट्टिददव्वस्स य, पल्लासंखेज्जभागबहुभागो।
बादरकिट्टिणिबद्धो, फड्ढयगे सेसइगिभागो।।४९४।।

अपकर्षितद्रव्यस्य च पल्याङ्ख्येयभागबहुभाग:।
बादरकृष्टिनिबद्ध: स्पर्धके शेषैकभाग:।।४९४।।

अन्वयार्थ - (उक्कट्टिददव्वस्स य) अपकर्षित द्रव्य को **(पल्लासंखेज्जभागबहुभागो)** पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर आया हुआ बहुभाग **(बादरकिट्टिणिबद्धो)** बादरकृष्टि संबंधी है। **(सेसइगिभागो)** अवशेष एकभाग **(फड्ढयगे)** स्पर्धकों में दिया जाता है।

विशेषार्थ - डेढ़गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्त्वद्रव्य है वह ऐसा है [व १२] इसे अपकर्षण भागहार से भाग देने पर अपकृष्ट द्रव्य आता है [व १२ / ओ] इस अपकृष्ट द्रव्य को पल्योपम के असंख्यातवें भाग से भागकर आए हुए बहुभागमात्र द्रव्य द्वारा [व १२ प / ओ प a] बादर कृष्टियों की रचना करता है और शेष एकभाग [व १२ / ओ प a] पूर्व और अपूर्व स्पर्धकों में विभाग कर देता है।

संग्रह और अवयव कृष्टियों की संख्या कहते हैं

किट्टीओ इगिफड्डयवग्गण संखाणणंतभागो दु।
एक्केक्कम्हि कसाये, तिगतिग अहवा अणंता वा।।४९५।।

कृष्टय एकस्पर्धक वर्गणासंख्यानामनन्तभागस्तु।
एकैकस्मिन् कषाये त्रिकत्रिकमथवा अनन्ता वा।।४९५।।

अन्वयार्थ - (किट्टीओ) कृष्टियों की संख्या **(इगिफड्डयवग्गणसंखाणणंतभागो दु)** एक स्पर्धक की वर्गणा संख्या का अनन्तवां भाग है। **(एक्केक्कम्हि कसाये)** एक - एक कषाय में **(तिगतिगो)** तीन - तीन **(अहवा)** अथवा **(अणंता वा)** अनन्तकृष्टियाँ होती हैं।

विशेषार्थ - एक गुणहानि में जितने स्पर्धक होते हैं उससे अनन्तगुणी प्रत्येक स्पर्धक में

वर्गणाएँ होती हैं।प्रत्येक वर्गणा में सिद्धराशि के अनन्तवें भागप्रमाण अनन्तवर्ग (परमाणु) हैं। वर्गणा ईंटों की पंक्तिसमान एक के ऊपर दूसरी, दूसरी के ऊपर तीसरी इत्यादि हैं । नीचे की वर्गणा की अपेक्षा ऊपर की वर्गणा के वर्गों में एक-एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक होते हैं। इसप्रकार एक स्पर्धक में जो वर्गणाओं का प्रमाण है उसका अनन्तवाँ भागमात्र सर्व कृष्टियों का प्रमाण है।[1]

उसमें से एक-एक कषाय में संग्रहकृष्टि तीन-तीन हैं और एक-एक संग्रहकृष्टि में अंतरकृष्टियाँ (अवयवकृष्टियाँ) अनन्त-अनन्त हैं। सबसे नीचे लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि है। उसमें अन्तरकृष्टियाँ अनन्त हैं ।अन्तरकृष्टियाँ अर्थात् जहाँ समान गुणकार से अविभागप्रतिच्छेद बढ़ते जाते हैं वहाँ तक की कृष्टियाँ। जहाँ गुणकार बदलता है वहाँ संग्रहकृष्टि बदलती है। यहाँ एक-एक कृष्टि के ऊपर एक- एक कृष्टि है किन्तु प्रत्येक कृष्टि में परमाणुओं के अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणित होते जाते हैं। लोभ की प्रथम संग्रह कृष्टि के ऊपर लोभ की दूसरी संग्रह कृष्टि है। उसके ऊपर लोभ की तीसरी संग्रहकृष्टि है। इस प्रकार उसके ऊपर माया की प्रथम, द्वितीय, तृतीय, उसके ऊपर क्रोध की प्रथम, द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टि जानना चाहिए। प्रत्येक संग्रहकृष्टि में अंतरकृष्टियाँ अनन्त हैं । यहाँ नीचे ऊपर यह संज्ञा अनुभाग की अपेक्षा से है। अर्थात् नीचे की कृष्टियों में अनुभाग कम होता है। ऊपर की कृष्टियों में अनुभाग बढ़ता जाता है।

कृष्टियों में द्रव्य का विभाग कहते हैं-

अकसायकसायाणं दव्वस्स विभंजणं जहा होई।
किट्टिस्स तहेव हवे कोहो अकसायपडिबद्धं ।।४९६ ।।

अकषायकषायाणां द्रव्यस्य विभञ्जनं यथा भवति ।
कृष्टेस्तथैव भवेत् क्रोधोऽकषायप्रतिबद्धः ।।४९६।।

अन्वयार्थ - (जहा) जिस प्रकार **(अकसायकसायाणं)** अकषाय अर्थात् नोकषाय और कषायों के **(दव्वस्स)** द्रव्य का, **(विभंजणं)** विभाजन **(होई)** होता है । **(तहेव)** उसी प्रकार **(किट्टिस्स)** कृष्टियों के द्रव्य का विभाजन होता है। **(अकसायपडिबद्धं)** अकषायसंबंधी द्रव्य **(कोहो)** क्रोधरूप अर्थात् क्रोध कृष्टि में सम्मिलित **(हवे)** होता हैं।

विशेषार्थ - प्रदेशबंध के विभागद्वारा समयप्रबद्ध का जितना द्रव्य चारित्रमोह को प्राप्त होता है उसमें से आधा नोकषाय संबंधी है और आधा चार कषायसंबंधी है। चारित्रमोह का द्रव्य साधिक

१) ज. ध. पु. १५ पृ. ४/ध. पु. ६ पृ. ३७५

संग्रह व अवयव कृष्टियों का चित्र

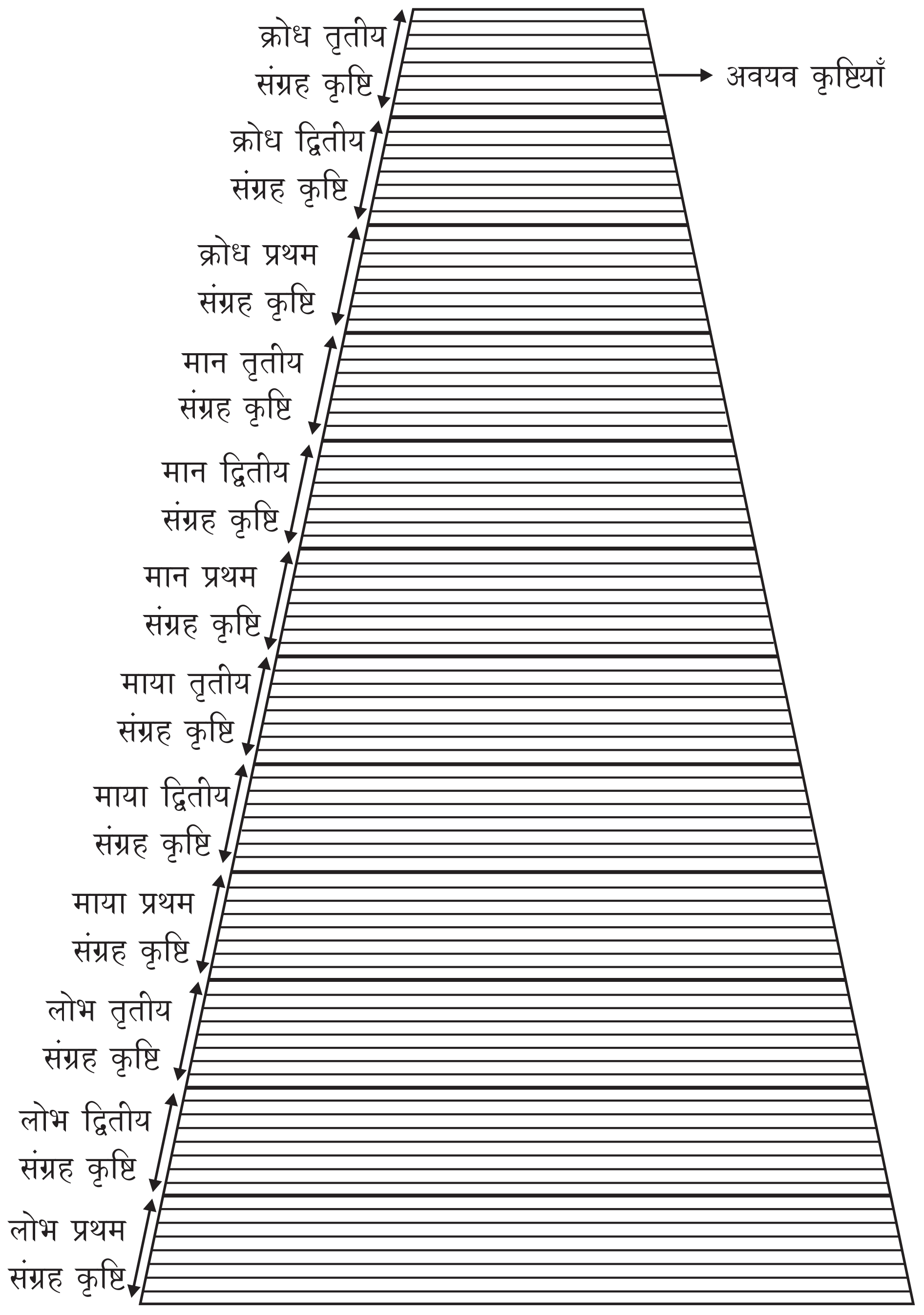

डेढ़गुणहानि गुणित प्रथम वर्गणामात्र है [व १२] । प्रत्येक कषाय को चारित्रमोहसंबंधी सर्वद्रव्य का आठवाँ भागमात्र द्रव्य प्राप्त होता हैं । उसमें से लोभ का द्रव्य साधिक आठवां भागमात्र, माया का कुछ कम आठवाँ भागमात्र, मान का कुछ कम आठवाँ भागमात्र, क्रोध का कुछ कम आठवाँ भागमात्र और इसमें कुछ कम द्वितीय भागमात्र नोकषाय का द्रव्य मिलाने पर क्रोध का द्रव्य पाँच गुणा कुछ कम आठवाँ भागमात्र होता है ।

कषाय + नोकषाय

$$\frac{१}{८} + \frac{१}{२} = \text{समच्छेद } \frac{१}{८} + \frac{१\times४}{२\times४} = \frac{१+४}{८} = \frac{५}{८} \text{ क्रोध का द्रव्य}$$

अंतरकरणक्रिया संपन्न होने पर आनुपूर्वी संक्रमण होता है। उससे क्रमशः नपुंसकवेद और स्त्रीवेद का पुरुषवेद में संक्रमण होता है। उसके पश्चात् पुरुषवेद और छह नोकषायों का सर्वद्रव्य क्रोध में सम्मिलित है। इस अपने - अपने द्रव्य को अपकर्षण भागहार से भाग देने पर अपने - अपने अपकर्षण किए गए द्रव्य का प्रमाण आता है।

कषाय	**लोभ**	**माया**	**मान**	**क्रोध**
अपकृष्ट द्रव्य	व १२ / ८ ओ	व १२– / ८ । ओ	व १२≡ / ८ ओ	व १२= ५ / ८ ओ

इस अपने-अपने अपकृष्ट द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर आया हुआ [व १२ / ८ ओ प/a] एक भागमात्र द्रव्य पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों में देने योग्य है उसे अलग रखे । अवशेष बहुभाग द्रव्य को [व १२ प/a / ८ ओ प/a] (एक कम पल्य के असंख्यातवें भागरूप गुणकार और पल्य के असंख्यातवें भागरूप भागहार को एक कम न गिनकर अपवर्तन करें।)

[व १२ / ८ ओ] पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर जो बहुभाग आता है उसके तीन समान भाग करें। एकभाग [व १२ / ८ ओ प/a] बहुभाग [व १२ प/a / ८ ओ प/a] के समान तीन भाग करने के लिए बहुभाग को ३ से भाग दे [व १२ प/a / ८ ओ प/a ३] आठ और तीन भागहार का गुणकार करने पर २४ होते हैं। [व १२ प/a / २४ ओ प/a] यह तीन भाग स्थान पर स्थापित करें। शेष एकभाग द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें का भाग देकर बहुभाग [व १२ प/a / ८ ओ प/a प/a] प्रथम समान भाग में मिलावें। शेष एकभाग को पुनः पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर आया हुआ बहुभाग द्रव्य [व १२ प/a / ८ ओ प/a प/a प/a] द्वितीय समान भाग में मिलावें और शेष एक भाग [व १२ / ८ ओ प/a प/a प/a] तीसरे समान भाग में मिलावें ।

इस प्रकार साधिक त्रिभागमात्र प्रथम पुंज अपनी-अपनी प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य है। किंचित् कम त्रिभागमात्र द्वितीय पुंज अपनी - अपनी द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य है और कुछ कम त्रिभागमात्र तृतीय पुंज अपनी - अपनी तीसरी संग्रहकृष्टि का द्रव्य है।

नोकषायसंबंधी सर्वद्रव्य क्रोध की तीसरी संग्रहकृष्टि में मिलावें। इस प्रकार कृष्टिसंबंधी सर्वद्रव्य को चौवीस का भाग देने पर क्रोध की तृतीय कृष्टि का द्रव्य तेरहभागमात्र और अन्य ग्यारह कृष्टियोंका द्रव्य एक- एक भाग मात्र आता है ।

स्थूलरूप से कषाय और नोकषाय का द्रव्य आधा-आधा है। कषाय का द्रव्य चार कषायों में विभाजित करने पर प्रत्येक का द्रव्य $\frac{१}{२} \div ४ = \frac{१}{२} \times \frac{१}{४} = \frac{१}{८}$ प्रत्येक की तीन - तीन संग्रहकृष्टि हैं। इसलिए तीन में विभाग के देने पर $\frac{१}{८} \div ३ = \frac{१}{८} \times \frac{१}{३} = \frac{१}{२४}$ प्रत्येक संग्रहकृष्टि का द्रव्य आता है। क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य में नोकषाय का १ ÷ २ द्रव्य मिलाने पर

$\frac{१}{२४} + \frac{१}{२} = \frac{१}{२४} + \frac{१ \times १२}{२ \times १२} = \frac{१}{२४} + \frac{१२}{२४} = \frac{१३}{२४}$ द्रव्य आता है इसलिए क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य अन्य कृष्टियों के द्रव्य से तेरह गुणा है।

यहाँ लोभ की कृष्टि में साधिकपना और अन्य कृष्टियों में किंचित् न्यूनपना जानना चाहिए । इसी प्रकार कृष्टियों के प्रमाण का विभाग करते हैं -

एक स्पर्धक की वर्गणाशलाका का अनन्तवाँ भाग सर्व कृष्टियों का प्रमाण है $\boxed{\begin{matrix}।\\ ४\\ ख\end{matrix}}$ उसे आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर आये हुए बहुभाग के समान दो भाग करके, अवशेष एकभाग को प्रथमसमान भाग में मिलाने पर, साधिक अर्धभागमात्र कषायों के द्रव्य द्वारा की गई कृष्टियों का प्रमाण आता है और दूसरा समान अर्धभागमात्र नोकषायों के द्रव्यद्वारा की गई कृष्टियों का प्रमाण आता है।

पुन: कषायसंबंधी कृष्टियों के प्रमाण को $\boxed{\begin{matrix}।\\ ४\\ ख\end{matrix}}$ आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देकर एक भाग अलग रखकर बहुभाग के समान चार भाग करें । पुन: अलग रखे एक भाग को आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देकर आया हुआ बहुभाग प्रथम समान भाग में मिलावें । इस प्रकार मिलाने पर साधिक चौथा भागमात्र लोभ की कृष्टियों का प्रमाण आता है। अवशेष एकभाग को आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देकर आया हुआ बहुभाग दूसरे समान भाग में मिलावें। इतना अर्थात् कुछ कम चौथा भाग मात्र माया कषाय की कृष्टियों का प्रमाण आता है। अवशेष एकभाग को, आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर आया बहुभाग तीसरे समान भाग में मिलाने पर कुछ कम चौथा भागमात्र क्रोध की कृष्टियों का प्रमाण है। अवशेष एक भाग चौथे समान भाग में मिलाने पर कुछ कम चौथा भागमात्र मान की कृष्टियों का प्रमाण आता है।

इस प्रकार सर्वकृष्टियों के प्रमाण को आठ का भाग देने पर एक-एक भागमात्र लोभ, माया,

मान की और पाँच भागमात्र क्रोध की कृष्टियों का प्रमाण आता है। लोभ की कृष्टियों के प्रमाण में साधिकपना और अन्य कषायों की कृष्टियों के प्रमाण में किंचित् न्यूनपना जानना चाहिए।

क्रोध की कृष्टियों में से नोकषाय संबंधी कृष्टियों को अलग रखकर शेष अपनी- अपनी कृष्टियों के प्रमाण को [। ४ / ख ८] पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर बहुभाग के [।१≏ ४ प / ख ८ प a] समान तीन भाग करें। [।१≏ ४ प / ख ८ प a ३]

शेष एक भाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग [। १≏ ४ प a / ख ८ प a प a] प्रथम समान भाग में मिलाने पर जो प्रमाण आता है उतना अपनी - अपनी प्रथम संग्रहकृष्टियों के अंतर कृष्टियों का प्रमाण साधिक आता है। अवशेष एकभाग को पुनः पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर आया बहुभाग [। १≏ ४ प a / ख ८ प a प a प a] द्वितीय समान भाग में मिलाने पर अपनी-अपनी द्वितीय संग्रहकृष्टियों की अंतरकृष्टियों का प्रमाण किंचित् कम आता है। अवशेष [। ४ / ख ८ प a प a प a] एक भाग तीसरे समान भाग में मिलाने पर अपनी-अपनी तृतीय संग्रहकृष्टि की अंतरकृष्टियों का प्रमाण कुछ कम आता है। नोकषायसंबंधी कृष्टियों का प्रमाण क्रोध की तृतीय संग्रह कृष्टि के प्रमाण में मिलावें।

इस प्रकार सर्वकृष्टियों के प्रमाण को चौबीस का भाग देने पर क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि का आयाम तेरह भागमात्र और अन्य ग्यारह संग्रह कृष्टियों का आयाम एक- एक भागमात्र आता है। उसमें से लोभ की संग्रहकृष्टियों में साधिकपना और अन्य ग्यारह संग्रह कृष्टियों में कुछ न्यूनपना जानना चाहिए। संग्रहकृष्टि में जितनी अंतरकृष्टियों का प्रमाण हैं उसे संग्रहकृष्टि का आयाम कहते हैं।

लोभ की तीन संग्रहकृष्टियों की अंतरकृष्टियों का प्रमाण

लोभ	प्रथम संग्रहकृष्टि	द्वितीय संग्रहकृष्टि	तृतीय संग्रहकृष्टि
समानभाग	।१≏ ४ प a / ख २४ प a	।१≏ ४ प a / ख २४ प a	।१≏ ४ प a / ख २४ प a
देयभाग	।१≏ ४ प a / ख ८ प a प a	।१≏ ४ प a / ख ८ प a प a प a	। ४ / ख ८ प a प a प a

१२ कृष्टियों का द्रव्य और कृष्टियों के प्रमाण की सारणी

कषाय	लोभ			माया			मान			क्रोध		
संग्रह.कृ.	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
द्रव्य	व १।२ २४ ओ	व १।२ २४ ओ	व १।२ २४ ओ	व १२- २४ ओ	व १२- २४ ओ	व १२- २४ ओ	व १२≡ २४ ओ	व १२≡ २४ ओ	व १२≡ २४ ओ	व १२= २४ ओ	व १२= २४ ओ	व १२=१३ २४ ओ
कृष्टि	। ४ ख २४	। ४ ख २४	। ४ ख २४	४- ख २४	४- ख २४	४- ख २४	४≡ ख २४	४≡ ख २४	४≡ ख २४	४ = ख २४	४ = ख २४	४ =१३ ख २४

बारह संग्रहकृष्टियों में हानि का क्रम और प्रमाण

पढमादिसंगहाओ पल्लासंखेज्जभागहीणाओ।
कोहस्स तदीयाए अकसायाणं तु किट्टीओ ।।४९७।।

प्रथमादिसङ्ग्रहाः, पल्यासङ्ख्येयभागहीनाः।
क्रोधस्य तृतीयायामकषायानां तु कृष्टयः ।।४९७।।

अन्वयार्थ - (पढमादिसंगहाओ) प्रथमादि बारह संग्रह कृष्टियों का आयाम **(पल्लासंखेज्जभागहीणाओ)** पल्य के असंख्यातवें भाग से घटता क्रम है । **(अकसायाणं तु किट्टीओ)** नोकषाय संबंधी कृष्टियाँ **(कोहस्स तदीयाए)** क्रोध की तृतीय संग्रह कृष्टि में हैं।

विशेषार्थ - नोकषाय की कृष्टियों को अलग रखकर विचार करने पर लोभ की प्रथम संग्रह कृष्टि में सबसे अधिक कृष्टियाँ हैं। उससे लोभ की द्वितीय संग्रह कृष्टि में पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण कृष्टियाँ कम हैं। उससे उसकी ही तृतीय संग्रहकृष्टि में पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण कृष्टियाँ कम हैं। इस प्रकार माया, मान और क्रोध की संग्रह कृष्टियों में जानना चाहिए । नोकषाय के द्रव्य से बनी कृष्टियाँ क्रोध की तृतीय संग्रह कृष्टि में गर्भित हैं। इसलिए वहाँ सबसे अधिक कृष्टियाँ हैं।

कौनसी कषाय के उदय से श्रेणी चढ़नेवाले के कितनी संग्रहकृष्टियाँ होती हैं। वह कहते हैं-

कोहस्स य माणस्स य मायालोभोदएण चडिदस्स।
बारस णव छत्तिण्णि य संगहकिट्टी कमे होंति ।।४९८।।

क्रोधस्य च मानस्य च मायालोभोदयेन चटितस्य ।
द्वादश नव षट्त्रीणि च सङ्ग्रहकृष्टयः क्रमेण भवन्ति ।।४९८।।

अन्वयार्थ - (कोहस्स य माणस्स य मायालोभोदएण चडिदस्स) क्रोध, मान, माया और लोभ के उदय से श्रेणी चढ़नेवाले जीव के **(कमे)** क्रम से **(बारसणवछत्तिण्णिय)** बारह, नौ, छः और तीन **(संगहकिट्टी)** संग्रहकृष्टियाँ **(होंति)** होती हैं।

विशेषार्थ - संज्वलन क्रोध के उदयसहित जो जीव क्षपकश्रेणी चढ़ता है उसकी चारों कषायों की बारह संग्रह कृष्टियाँ होती हैं। मानकषाय के उदय से श्रेणी चढनेवाले जीव के कृष्टिकरणकाल के पूर्व में ही क्रोध का संक्रमणद्वारा क्षय होने से संज्वलन क्रोध की संग्रहकृष्टियाँ नहीं होती हैं। शेष तीन कषायों की तीन - तीन ऐसी कुल नौ संग्रहकृष्टियाँ होती हैं। मायाकषाय के उदयसहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव के क्रोध और मानकषाय का कृष्टिकरणकाल के पूर्व में ही क्षय होने से क्रोध और मान कषाय की संग्रहकृष्टियाँ नहीं होती हैं। शेष दो कषायों की छह संग्रहकृष्टियाँ होती हैं। लोभकषाय के उदयसहित श्रेणी चढ़ने वाले जीव के क्रोध, मान, माया कषाय का कृष्टिकरण के पूर्व में ही क्षय होता है इसलिए केवल लोभकषाय की ही तीन संग्रहकृष्टियाँ होती हैं। जितनी संग्रहकृष्टियाँ होती हैं उतनी कृष्टियों में ही कृष्टिप्रमाण का विभाग यथायोग्य जानना चाहिए ।[१]

अंतरकृष्टियोंकी संख्या और उनका क्रम कहते हैं-

संगहगे एक्केक्के अंतरकिट्टी हवदि हु अणंता ।
लोभादि अणंतगुणा कोहादि अणंतगुणहीणा ।।४९९।।

संग्रहके एकैकस्मिन् अन्तरकृष्टिर्भवति ह्यनन्ता ।
लोभादावनन्तगुणा क्रोधादावनन्तगुणहीणा ।।४९९।।

अन्वयार्थ - (एक्केक्के) एक-एक **(संगहगे)** संग्रहकृष्टि में **(अंतरकिट्टी)**अन्तरकृष्टियाँ (अवान्तर कृष्टियाँ) **(हु अणंता)** वास्तविक अनन्त **(हवदि)** हैं। उनमें **(लोभादि अणंतगुणा)** लोभ

१. ज. ध. पु. १५ पृ. ४९-५०

से लेकर अनन्तगुणा और **(कोहादि अणंतगुणहीणा)** क्रोध से लेकर अनन्तगुणा हीन अनुभाग हैं।

विशेषार्थ - क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायों की प्रत्येक की तीन - तीन संग्रहकृष्टियाँ होती हैं। इसप्रकार कुल बारह संग्रहकृष्टियाँ होती हैं। इनमें से एक-एक संग्रहकृष्टि में अवान्तर कृष्टियाँ अभव्यों से अनन्तगुणी और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण अनन्त होती हैं। इन कृष्टियों के बीच का अन्तर भी अनन्त है। एक-एक संग्रहकृष्टिमें अवान्तर कृष्टियों के अन्तर को 'कृष्टि-अंतर' यह नाम है। संग्रहकृष्टि के ग्यारह अन्तरालों में रची गयी कृष्टियों के अन्तर को 'संग्रहकृष्टि-अन्तर' ऐसा नाम है। इसमें से कृष्टि-अन्तर के गुणकार को 'स्वस्थान गुणकार' और संग्रहकृष्टि - अन्तर के गुणकार को 'परस्थान गुणकार' ऐसा नाम है।[१]

लोभकषाय की प्रथम संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि में अनुभाग सबसे अल्प हैं। उससे ऊपर की कृष्टि में अनुभाग अनन्तगुणा है। इसप्रकार अनन्तगुणा क्रम क्रोध कषाय की तृतीय संग्रहकृष्टि के अंत की कृष्टि तक जानना चाहिए। यह कथन अनुलोम की अपेक्षा से है। विलोम की अपेक्षा से क्रोध कषाय की तृतीय संग्रह कृष्टि की अंत कृष्टि में अनुभाग सबसे अधिक है। उससे उसके द्विचरम कृष्टि में अनन्तगुणा हीन अनुभाग है। इसप्रकार नीचे-नीचे लोभ कषाय की प्रथम संग्रहकृष्टि की प्रथमकृष्टि तक अनन्तगुणा हीनक्रम से अनुभाग जानना चाहिए।

ऊपर की गाथा का स्पष्ट प्ररूपण करने के लिए आगे की गाथा कहते हैं-

लोभादी कोहोत्ति य सट्ठाणंतरमणंतगुणिदकमं।
तत्तो बादरसंगहकिट्टी अंतरमणंतगुणिदकमं[२] ।।५००।।

लोभादितः क्रोधान्तं च स्वस्थानान्तरमनन्तगुणितक्रमम् ।
ततो बादरसङ्ग्रहकृष्टेरन्तरमनन्तगुणितक्रमम् ।।५००।।

अन्वयार्थ - (लोभादी कोहोत्तिय) लोभ से लेकर क्रोध तक **(सट्ठाणंतरं)** स्वस्थान अंतर **(अणंतगुणिदकमं)** क्रम से अनन्तगुणित है। **(तत्तो)** उस स्वस्थान अंतर से **(बादरसंगहकिट्टी अंतरं)** बादर संग्रहकृष्टि का अन्तर **(अणंत गुणिदकमं)** अनन्तगुणा क्रमरूप है।

विशेषार्थ - प्रत्येक बादरसंग्रहकृष्टि में अवयव कृष्टियाँ सिद्धराशिके अनन्तवें भाग प्रमाण हैं और उसमें अन्तराल एक कम कृष्टिप्रमाण हैं क्योंकि दोनों कृष्टियों में अन्तराल एक होता है। तीन

१) ज. ध. पु. १५ पृ. ११
२) क.पा.सुत्त पृ. ७९९ सू ६१४-६४२ /ध.पु.६ पृ. ३७८ /ज. ध. पु १५ पृ.१०

कृष्टियों में अंतराल दो होते हैं। इसप्रकार विवक्षित कृष्टियों में अन्तराल एक कम कृष्टिप्रमाण हैं। यहाँ कारण में कार्य का उपचार करके अन्तर की उत्पत्ति को कारणभूत गुणकार को अंतर कहते हैं। यहाँ कृष्टियों के बीच के गुणकार को 'कृष्टि-अंतर' कहते हैं। नीचे और ऊपर की संग्रहकृष्टियों में ग्यारह अन्तराल हैं, क्योंकि कुल बारह संग्रहकृष्टियाँ होने से एक कम अन्तराल का प्रमाण है। इसे 'संग्रहकृष्टि-अंतर' कहते हैं। भावार्थ यह हैं कि जितने अंतराल हैं उतनी बार गुणकार हैं। एक ही संग्रहकृष्टि में नीचे की अंतर कृष्टि से ऊपर की अंतरकृष्टि में जो गुणकार है उसे स्वस्थान गुणकार (कृष्टि-अन्तर) कहते हैं। तथा नीचे की संग्रहकृष्टि की अंत की अंतरकृष्टि से अन्य ऊपर की संग्रहकृष्टि की प्रथम अंतरकृष्टि में जो गुणकार है उसे परस्थान गुणकार कहते हैं।

अब 'कृष्टि-अन्तर' और 'संग्रहकृष्टि-अन्तर' का अल्पबहुत्व को स्पष्टरूप से कहने के लिए अंकसंदृष्टि द्वारा कथन करते हैं माना कि यहाँ अनन्त की संदृष्टि दो और एक संग्रहकृष्टि में अवयव कृष्टियों का प्रमाण चार है। सर्वप्रथम लोभकषाय की प्रथम संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि को स्थापित करके उसे अनन्तरूप गुणकार से गुणा करने पर उसकी द्वितीय कृष्टि का (कृष्टि के अनुभाग का) प्रमाण आता हैं। इस गुणकार को जघन्य 'कृष्टि-अन्तर' कहते हैं। उसकी संदृष्टि दो है। द्वितीय कृष्टि को जिस गुणकार से गुणा करने पर तृतीय कृष्टि का प्रमाण आता है उस गुणकार को द्वितीय 'कृष्टि-अन्तर' कहते हैं। यह प्रमाण जघन्य 'कृष्टि-अन्तर' से अनन्तगुणा है उसकी संदृष्टि '४' हैं। इसप्रकार क्रम से तृतीयादि 'कृष्टि-अन्तर' अनन्तगुणा-अनन्तगुणा होता जाता है। जिस गुणकार से द्विचरमकृष्टि को गुणा करने पर चरमकृष्टि आती है वह अन्तिम गुणकार द्विचरम गुणकार से अनन्तगुणा है । उसकी संदृष्टि आठ '८' है। प्रथम संग्रहकृष्टि की अंतिम कृष्टि को जिस गुणकार से गुणा करने पर द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि आती है वह परस्थान गुणकार है। वह सर्व स्वस्थान गुणकारों से अनन्तगुणा है इसलिए उसे छोड़कर द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथमकृष्टि को जिस गुणकार से गुणा करने पर उस द्वितीय संग्रहकृष्टि की दूसरी कृष्टि होती है वह प्रथम गुणकार पीछे के अंतिम गुणकार से अनन्तगुणा है। उसकी संदृष्टि सोलह (१६) है। इसप्रकार मध्य के परस्थान गुणकार छोड़कर एक- एक कृष्टि के प्रत्येक गुणकार का प्रमाण अनन्तगुणा जानना चाहिए ।

कृष्टियों का जितना प्रमाण है उसमें एक कम करने पर अंतराल का प्रमाण आता है। उसमें से ग्यारह (११) परस्थान गुणकार है और एक जघन्य गुणकार है । इसप्रकार कृष्टियों के प्रमाण में से तेरह (१३) कम करने पर जितना प्रमाण रहता है उतनी बार जघन्य गुणकार को अनन्त से गुणा करने पर जो गुणकार आता है उससे क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की द्विचरमकृष्टि को गुणा करने पर उसकी अंतिम कृष्टि का प्रमाण आता है।

अंकसंदृष्टि- अड़तालीस (४८) कृष्टियों में से तेरह (१३) कम करने पर पैंतीस (३५) रहते हैं इसलिए पैंतीस (३५) बार दो को दो से गुणा करने पर बादाल गुणित सोलह (४२ = × १६) प्रमाण

आता है । यह अंतिम स्वस्थान गुणकार है। इससे प्रथम परस्थान गुणकार अनन्तगुणा है।

लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की अंतिमकृष्टि को जिस गुणकार से गुणा करने पर द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि आती है वह परस्थान गुणकार पूर्वोक्त अंतिम स्वस्थान गुणकार से अनन्तगुणा है। उसकी संदृष्टि (४२ =×३२) बादाल गुणित बत्तीस । लोभ की द्वितीय संग्रह कृष्टि की अंतिम कृष्टि को जिस गुणकार से गुणा करने पर लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि आती है वह द्वितीय परस्थान गुणकार पूर्वोक्त प्रथम परस्थान गुणकार से अनन्तगुणा है उसकी संदृष्टि बादाल गुणित चौसठ (४२ = × ६४)

उसी प्रकार लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंतिम कृष्टि को जिस गुणकार से गुणा करने पर मायाकषाय की प्रथम संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि आती है वह परस्थान गुणकार पूर्वोक्त द्वितीय परस्थान गुणकार से अनन्तगुणा है। उसकी संदृष्टि (४२= × १२८) इसप्रकार ग्यारह परस्थान गुणकारों को अनन्त से गुणा करते जाने पर क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि की अंतिम कृष्टि को जिस गुणकार से गुणा करने पर क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि आती है उस गुणकार का प्रमाण आता है। अंकसंदृष्टि से ग्यारह परस्थान गुणकारों को दुगुणा-दुगुणा करने पर बादाल गुणित बत्तीस हजार सात सौ अड़सठ (४२ = × ३२७६८) प्रमाण आता है। इससे अनन्तगुणे गुणकार से क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंतिम कृष्टि को गुणा करने पर लोभ के अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण आता है। वह गुणकार अंकसंदृष्टि से बादाल गुणित पणट्टी (४२ = × ६५) जानना चाहिए ।

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध	
तृतीय संग्रहकृष्टिमें स्वस्थान गुणकार	५१२ (९) २५६ (८) १२८ (७)	६५=४ (१८) ६५=२ (१७) ६५=१ (१६)	६५=२०४८ (२७) ६५=१०२४ (२६) ६५=५१२ (२५)	४२=१६(३६) ४२=८ (३५) ४२=४ (३४)	
परस्थान गुणकार	४२=६४ / ३८	४२=५१२ / ४१	४२=४०९६ / ४४	४२=३२७६८ / ४७	
द्वितीय संग्रहकृष्टिमें स्वस्थान गुणकार	६४ (६) ३२ (५) १६ (४)	३२७६८ (१५) १६३८४ (१४) ८१९२ (१३)	६५=२५६ (२४) ६५=१२८ (२३) ६५=६४ (२२)	४२=२ (३३) ४२=१ (३२) ६५=३२७६८(३१)	
परस्थान गुणकार	४२=३२ / (३७)	४२=२५६ / (४०)	४२=२०४८ / (४३)	४२=१६३८४ / (४६)	
प्रथम संग्रहकृष्टिमें स्वस्थान गुणकार	८ (३) ४ (२) २ (१)	४०९६ (१२) २०४८ (११) १०२४ (१०)	६५=३२ (२१) ६५=१६ (२०) ६५=८ (१९)	६५=१६३८४(३०) ६५=८१९२ (२८) ६५=४०९६ (२८)	अपूर्वस्पर्धक वर्गणा गुण
परस्थान गुणकार	जघन्यकृष्टि	४२=१२८ / (३९)	४२=१०२४ / (४२)	४२=८१९२ / (४५)	४२=६५= / ४८

यह गुणकार का यंत्र है। वहाँ पणट्ठी (६५५३६) की संदृष्टि ६५ = और बादाल (४२९४९६७२९६) की संदृष्टि ४२ = है। इसके आगे जितना अंक हो उतने का गुणकार जानना चाहिए।

इसका भाव यह है कि लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि में जो अनुभाग है उससे दुगुणा अनुभाग द्वितीयकृष्टि में, उससे चौगुणा तृतीयकृष्टि में, उससे आठगुणा अंतिमकृष्टि में है। उससे बत्तीसगुणा बादाल से गुणित लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथमकृष्टि में अनुभाग है। इसके पूर्व तक अन्य प्रकार का गुणकार था इसलिए वहाँ तक प्रथम संग्रहकृष्टि कहीं है। यहाँ से अन्यप्रकार का गुणकार हुआ इसलिए यहाँ से द्वितीय संग्रहकृष्टि कही है। इसप्रकार अंत तक जानना चाहिए। इसी प्रकार वास्तविक कथन जानना चाहिए। दो की जगह अनंत और चार अंतरकृष्टियों की जगह अनन्त प्रमाण जानना चाहिए। इसप्रकार अनुभाग के अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा से कृष्टियों का कथन जानना चाहिए।

लोभ की जघन्य कृष्टि से क्रोध की उत्कृष्टकृष्टि तक देयद्रव्य का क्रम कहते हैं -

लोहस्स अवरकिट्टीगदव्वादो कोधजेट्ठकिट्टिस्स।
दव्वोत्ति य हीणकमं देदि अणंतेण भागेण ।।५०१।।

लोभस्यावरकृष्टिगद्रव्यात् क्रोधज्येष्ठकृष्टेः।
द्रव्यान्तं च हीनक्रमं दीयतेऽनन्तेन भागेन ।।५०१।।

अन्वयार्थ - (लोहस्स अवरकिट्टीगदव्वादो) लोभ की जघन्य कृष्टि के द्रव्य से **(कोधजेट्ठकिट्टिस्स दव्वोत्ति)** क्रोध की उत्कृष्ट कृष्टि के द्रव्य तक **(अणंतेण भागेण)** अनन्तवें भाग से **(हीणकमं)** हीन-हीन द्रव्य क्रम से **(देदि)** देता है।

विशेषार्थ - प्रथम समयवर्ती कृष्टिकारक पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों में से असंख्यातवें भाग का अपकर्षण करता है। पुनः अपकर्षित द्रव्य के असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्य को कृष्टियों में देता है। यहाँ कृष्टियों में देने योग्य द्रव्य $\boxed{\frac{\text{व १२}}{\text{ओ}}}$ सर्वधन है। यहाँ गच्छ अर्थात् कृष्टियों का प्रमाण $\boxed{\frac{\text{४}}{\text{ख}}}$ है।

$\frac{\text{सवर्धन}}{\text{गच्छ}}$ = मध्यमधन $\boxed{\frac{\text{व १२}}{\text{ओ ४ ख}}}$ अंकसंदृष्टि से कृष्टि का प्रमाण ४८ और सर्वधन १३९२० माना। दो गणुहानि का प्रमाण ९६ है।

१३९२०÷४८ = २९० मध्यम धन

$$\frac{\text{मध्यम धन}}{\text{दो गुणहानि} - \left(\frac{\text{कृष्टि आयाम}-१}{२}\right)} = \text{चय} = \boxed{\begin{array}{l}\text{व } १२ \\ \quad \text{ओ } ४ \; १६-४ \\ \qquad \text{ख} \qquad \text{ख}२\end{array}}$$

अंकसंदृष्टि -

$$\frac{२९०}{९६-\frac{४७}{२}} = \frac{२९०}{\frac{९६\times२}{२}-\frac{४७}{२}} = \frac{२९०}{\frac{१९२-४७}{२}} = \frac{२९०}{\frac{१४५}{२}} = २९० \times \frac{२}{१४५} = ४ \text{ चय}$$

$$\text{चय} \times \text{दो गुणहानि} = \text{प्रथम कृष्टि का द्रव्य} = \boxed{\begin{array}{l}\text{व } १२।१६ \\ \quad \text{ओ } ४ \; १६-४ \\ \qquad \text{ख} \qquad \text{ख}२\end{array}}$$

$४ \times ९६ = ३८४$ प्रथमकृष्टि का द्रव्य

इतना द्रव्य लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि में देता है। इसके आगे द्वितीयादि कृष्टि से क्रोध की तृतीय संग्रह कृष्टि की अंतिम कृष्टि तक एक-एक चय घटते क्रम से द्रव्य देता है। वह अनन्तवाँ भाग घटते क्रम से सहित है। पूर्व-कृष्टि के द्रव्य को अनन्त का भाग देकर जो एकभाग आता है उतना कम ऊपर की कृष्टि के द्रव्य का प्रमाण है।

लोभस्स अवरकिट्टिगदव्वादो कोधजेट्ठकिट्टिस्स।
दव्वं तु होदि हीणं अणंतभागेण जोगेण ।।५०२।।

लोभस्यावरकृष्टिगद्रव्यत: क्रोधज्येष्ठकृष्टे:।
द्रव्यं तु भवति हीनमनन्तभागेन योगेन ।।५०२।।

अन्वयार्थ - (लोभस्स अवरकिट्टिगदव्वादो) लोभ की जघन्यकृष्टि के द्रव्य से **(कोधजेट्ठकिट्टिस्स)** क्रोध की उत्कृष्ट कृष्टि का **(दव्वं तु)** द्रव्य **(अणंतभागेण जोगेण)** अनन्तवें भाग से **(हीणं)** हीन **(होदि)** है।

विशेषार्थ - लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टिसंबंधी जघन्य कृष्टि के द्रव्य से क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंतिम कृष्टि का द्रव्य एक कम कृष्टि प्रमाण मात्र चयों से हीन है अर्थात् अनन्तवें भाग से कम है।

आगास प्रति में 'हीणं असंखभागेण जोगेण' ऐसा पाठ था वह बदलकर' 'हीणं अणंतभागेण जोगेण' ऐसा पाठ कषायपाहुड़ सुत्त पृ. ८०१ सूत्र ६४८ के आधार से सुधारा है।

कृष्टिरचना

सर्वधन १३९२०, चय ४

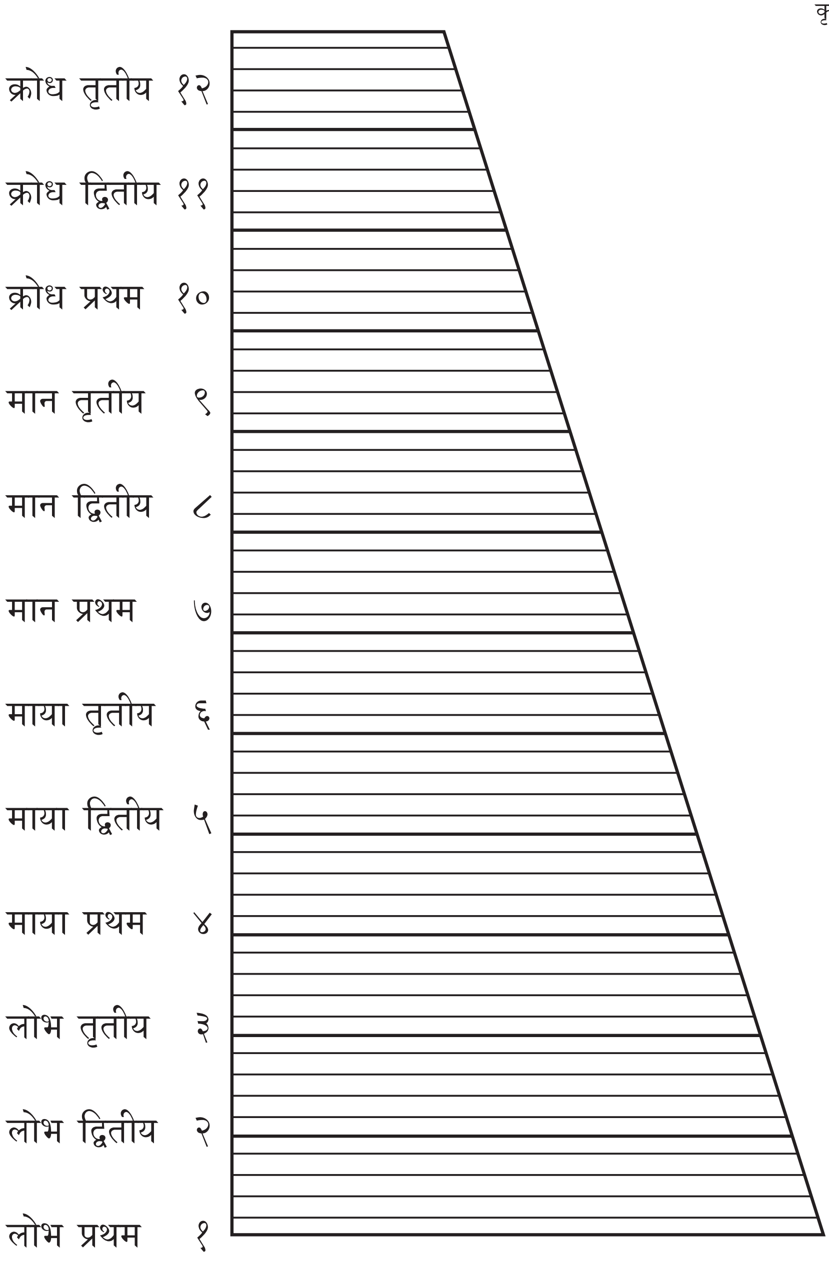

कृष्टिक्रमांक	द्रव्यप्रमाण
४८	१९६
४७	२००
४६	२०४
४५	२०८
४४	२१२
४३	२१६
४२	२२०
४१	२२४
४०	२२८
३९	२३२
३८	२३६
३७	२४०
३६	२४४
३५	२४८
३४	२५२
३३	२५६
३२	२६०
३१	२६४
३०	२६८
२९	२७२
२८	२७६
२७	२८०
२६	२८४
२५	२८८
२४	२९२
२३	२९६
२२	३००
२१	३०४
२०	३०८
१९	३१२
१८	३१६
१७	३२०
१६	३२४
१५	३२८
१४	३३२
१३	३३६
१२	३४०
११	३४४
१०	३४८
९	३५२
८	३५६
७	३६०
६	३६४
५	३६८
४	३७२
३	३७६
२	३८०
१	३८४

प्रथमकृष्टि का द्रव्य - {(कृष्टिसंख्या-१) × चय = अंतिमकृष्टि का द्रव्य
३८४ - (४७ × ४) = ३८४ - १८८ = १९६ अंतिम कृष्टि का द्रव्य

अर्थसंदृष्टि -

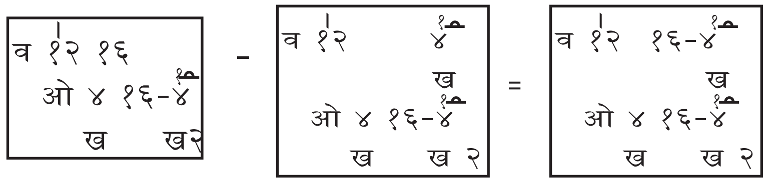

(दोनों में समान संख्या रखकर शेष गुणहानिमात्र गुणकार में से ऋणराशि का एक कम कृष्टिप्रमाण गुणकार कम किया)

सर्वकृष्टियों का प्रमाण एक स्पर्धक की वर्गणाशलाका का अनन्तवाँ भागमात्र है इसलिए एक कम सर्व कृष्टि मात्र चय कम करने पर लोभ की जघन्य कृष्टि के द्रव्य का अनन्तवाँ भागमात्र ही द्रव्य हीन हुआ।

पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों में जो देने योग्य द्रव्य कहा था उसे साधिक डेढ़गुणहानि का भाग देने पर अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में देने योग्य द्रव्य का प्रमाण आता है। यह द्रव्य क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंतिमकृष्टि में दिये गए द्रव्य का असंख्यातवाँ भाग मात्र है। उससे उसकी द्वितीय वर्गणा से पूर्वस्पर्धकों की अंतिम वर्गणा तक की वर्गणाओं में चयहीन क्रम से द्रव्य दिया जाता है। इस प्रकार कृष्टिकारक के प्रथम समय का निरूपण जानना चाहिए।

कृष्टिकरण के द्वितीयादि समयों में नवीन कृष्टियों की रचना कहते हैं-

पडिसमयमसंखगुणं कमेण उक्कट्टिदूण दव्वं खु।
संगहहेट्ठापासे अपुव्वकिट्टी करेदी हु।।५०३।।

प्रतिसमयमसङ्ख्यगुणं क्रमेणापकृष्य द्रव्यं खलु।
सङ्ग्रहाधस्तनापार्श्वेऽपूर्वकृष्टीः करोति हि।। ५०३।।

अन्वयार्थ - (पडिसमयं) प्रत्येक समय में पूर्व की अपेक्षा **(क्रमेण)** क्रम से **(असंखगुणं दव्वं खु उक्कट्टिदूण)** असंख्यातगुणे द्रव्य का अपकर्षण करके **(संगहहेट्ठापासे)** संग्रहकृष्टि के नीचे और पार्श्वभाग में **(हु अपुव्वकिट्टी)** निश्चय से अपूर्वकृष्टियाँ **(करेदी)** करता है।

विशेषार्थ - कृष्टिकरण काल में प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि बढ़ती जाने से प्रथम समय में अपकर्षित किए हुए द्रव्य से द्वितीयादि समयों में असंख्यातगुणे-असंख्यातगुणे द्रव्य का अपकर्षण करके

नवीन अपूर्वकृष्टियों की रचना करता है। अपूर्वकृष्टियों की रचना दो प्रकार से करता है- १) अधस्तनकृष्टि और २) पार्श्वकृष्टि।

पूर्व समय में बारह संग्रह कृष्टियोंकी रचना हुई । उन बारह संग्रहकृष्टियों की जघन्य कृष्टि के नीचे उससे अनन्तगुणे घटते अनुभागयुक्त नवीन अपूर्वकृष्टियों की रचना करता है। उनका नाम अधस्तनकृष्टियाँ है। उसी प्रकार पूर्व समय में की गई कृष्टियों के समान शक्तियुक्त उसके समीप कुछ कृष्टियों की रचना करता है उन्हें पार्श्वकृष्टियाँ कहते हैं। अर्थात् स्पर्धकगत कुछ अपकृष्ट परमाणुओं को पूर्वसमय में की गई कृष्टियों में देता है अर्थात् उस शक्ति युक्त करता है।

द्वितीय समय में की गई अपूर्वकृष्टियों का प्रमाण व द्रव्य देने का विधान कहते हैं-

हेट्ठा असंखभागं पासे वित्थारदो असंखगुणं ।
मज्झिमखंडं उभयं दव्वविसेसे हवे पासे ।।५०४।।

अधस्तनमसङ्ख्यभागं पार्श्वे विस्तारतोऽसङ्ख्यगुणम् ।
मध्यमखण्डमुभयं द्रव्यविशेषे भवेत् पार्श्वे ।।५०४।।

अन्वयार्थ - (हेट्ठा) संग्रहकृष्टियों के नीचे की गई कृष्टियाँ **(असंखभागं)** सर्वकृष्टियों का असंख्यातवाँ भागमात्र हैं और **(फासे)** पार्श्वभाग में की गई कृष्टियों का प्रमाण **(वित्थारदो)** विस्तार की अपेक्षा से **(असंखगुणं)** असंख्यातगुणा है। **(फासे)** पार्श्वकृष्टियों में **(मज्झिमखंडं)** मध्यमखण्ड और**(उभयं दव्वविसेसे)** उभयद्रव्यविशेष **(हवे)** है।

विशेषार्थ - अधस्तन अपूर्वकृष्टियों का प्रमाण प्रथम समय में निर्वर्तित कृष्टियों के असंख्यातवें भागमात्र है। प्रथम समय में की गई कृष्टियों में यथायोग्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर जो प्रमाण आता है उतनी अपूर्वकृष्टियाँ द्वितीय समय में होती हैं। द्वितीय समय में अपकर्षित किए द्रव्य का असंख्यातवाँ भाग द्रव्य अपूर्वकृष्टियों में देकर शेष बहुभाग द्रव्य पूर्वकृष्टि और पूर्व-अपूर्वस्पर्धकों में देता है।[१] इसप्रकार एक-एक संग्रहकृष्टि के नीचे अपूर्वकृष्टियों को करता है।

संज्वलनक्रोध के पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों में से प्रदेशों का अपकर्षण करके क्रोध की तीन संग्रहकृष्टियों के नीचे पूर्वकृष्टियों के असंख्यातवें भाग प्रमाण अपूर्व कृष्टियाँ द्वितीय समय में रचता है। इसप्रकार संज्वलन मान, माया और लोभ कषाय के अपने-अपने स्पर्धकों में से प्रदेशों का अपकर्षण करके अपनी-अपनी संग्रहकृष्टियों के नीचे प्रथम समय में रची गयी कृष्टियों के असंख्यातवें भाग प्रमाण अपूर्वकृष्टियों को द्वितीय समय में रचता है। इसप्रकार बारह संग्रहकृष्टिसंबंधी प्रत्येक की जघन्यकृष्टि के

१. ज. ध. पु. १५ पृ. २५-२६

नीचे द्वितीय समय में अपूर्व कृष्टियों की रचना होती है।[१]

प्रथम समय में की गई कृष्टियों के प्रमाण को असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार का भाग देने पर द्वितीय समय में नवीन की गई कृष्टियों का प्रमाण आता है। वैसे ही प्रथम समय में द्रव्य में जो अपकर्षण भागहार का भाग दिया था उसके स्थान पर अपकर्षण भागहार के असंख्यातवें भाग मात्र भागहार का भाग देने पर अपकर्षण किए द्रव्य का प्रमाण आता है।

दूसरे समय में कृष्टि और द्रव्य का प्रमाण

नाम	लोभ			माया		
संग्रहकृष्टि	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
कृष्टियों का प्रमाण	| ४ ख २४ ओ a	| ४ ख २४ ओ a	| ४ ख २४ ओ a	| ४ ख २४ ओ a	| ४ ख २४ ओ a	| ४ ख २४ ओ a
कृष्टि द्रव्य	| व १२ ओ २४ a	| व १२ ओ २४ a	| व १२ ओ २४ a	व १२– ओ २४ a	व १२– ओ २४ a	व १२– ओ २४ a

नाम	मान			क्रोध		
संग्रहकृष्टि	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
कृष्टियों का प्रमाण	४ ≡ ख २४ ओ a	४ ≡ ख २४ ओ a	४ ≡ ख २४ ओ a	४ = ख २४ ओ a	४ = ख २४ ओ a	४ =|१३ ख २४ ओ a
कृष्टि द्रव्य	व १२≡ ओ २४ a	व १२≡ ओ २४ a	व १२≡ ओ २४ a	व १२= ओ २४ a	व १२= ओ २४ a	व १२= ओ २४ a

पार्श्वभाग में की गई कृष्टियों का प्रमाण नीचे की गई कृष्टियों से असंख्यातगुणा है। द्वितीय समय में अपकृष्ट द्रव्य में से जितना कृष्टिसंबंधी द्रव्य है उसमें चार विभाग करें-१)अधस्तन शीर्ष द्रव्य २) अधस्तन कृष्टिद्रव्य ३) उभयद्रव्य विशेष ४) मध्यम खंडद्रव्य

अधस्तनशीर्षादि का स्वरूप उपशमचारित्र अधिकार में सूक्ष्मकृष्टि का वर्णन करते समय गाथा २८७-२८९ में विस्तार से किया है, वहाँ से जान लेना चाहिए, यहाँ भी संक्षेप में कहते हैं।

---

१. ज. ध. पु. १५ पृ. २६-२७

१) अधस्तन शीर्ष विशेषद्रव्य -

पूर्वसमय में की गई कृष्टियों में प्रथमकृष्टि से चय हीन क्रम है। वहाँ सर्व पूर्वकृष्टियों को प्रथमकृष्टि के समान करने के लिए जहाँ जितना द्रव्य कम है वहाँ उतना द्रव्य दिया जाता है उस दिये गए सर्व द्रव्य को अधस्तनशीर्ष विशेष द्रव्य कहते हैं।

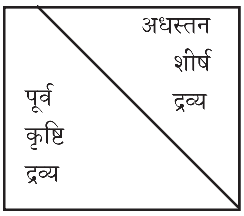

२) अधस्तन कृष्टि द्रव्य -

द्वितीय समय में की गई नीचे की अपूर्वकृष्टियों का पूर्वकृष्टियों की प्रथम कृष्टिसमान करने के लिए जो द्रव्य दिया जाता है उसे अधस्तन कृष्टिद्रव्य कहते हैं।

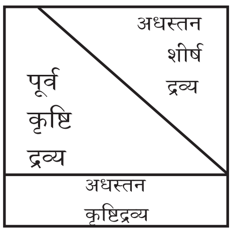

३) उभयद्रव्यविशेषद्रव्य -

पूर्व -अपूर्व कृष्टियों में प्रथम कृष्टि से लेकर अंतिम कृष्टि तक विशेष हीन क्रम करने के लिए (गोपुच्छाकार करने के लिए) जो द्रव्य पूर्व-अपूर्व कृष्टियों में दिया जाता है उसे उभय द्रव्यविशेषद्रव्य कहते हैं।

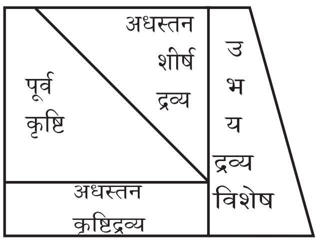

४) मध्यमखंड द्रव्य -

कृष्टि में देने योग्य द्रव्योंमें से उपर्युक्त तीन द्रव्य कम घटाने पर जो द्रव्य शेष रहता है उसे सर्व पूर्व- अपूर्वकृष्टियों में समानरूप से दिया जाता है उसे मध्यमखंडद्रव्य कहते हैं।

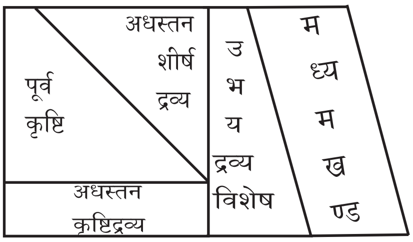

संग्रहकृष्टि की पार्श्ववर्ती कृष्टियों मे अधस्तनशीर्ष विशेष, उभयद्रव्य विशेष और मध्यमंखडरूप तीन प्रकार का द्रव्य दिया जाता हैऔर संग्रहकृष्टियों के नीचे जो नवीन कृष्टियाँ की जाती हैं उसमें अधस्तनकृष्टि, उभयद्रव्यविशेष और मध्यमखंडरूप तीन प्रकार का द्रव्य दिया जाता है। इसका विशेष स्पष्टीकरण -

क्रोध, मान, माया और लोभ के पूर्व-अपूर्व स्पर्धक संबंधी द्रव्य में से प्रथम समय में अपकर्षण किए द्रव्य से असंख्यातगुणे द्रव्य का अपकर्षण करता है। उसमें से सर्वद्रव्य को आठ का भाग देकर एक-एक भागमात्र लोभ, माया, मान का और पाँच भागमात्र क्रोध का द्रव्य यथासंभव साधिक और कुछ हीन जानना चाहिए । इसे पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर एक भागमात्र द्रव्य पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों में देवे। वह एकभाग अलग रखकर शेष बहुभाग द्रव्य का बारह संग्रहकृष्टियों में विभाग करने पर सर्वद्रव्य को चौबीसवाँ भाग देकर ग्यारह संग्रहकृष्टियों का एक-एक भागमात्र और क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टियों का तेरह भागमात्र द्रव्य होता है। यहाँ लोभ की संग्रहकृष्टियों में साधिक और शेष संग्रहकृष्टियों में कुछ कम जानना चाहिए ।

अधस्तनशीर्षादि चार प्रकार के द्रव्य का प्रमाण

प्रथम समय में अंतिमकृष्टि से प्रत्येक कृष्टि में जितना द्रव्य बढ़ा वह एक विशेष (चय) होता है। उसका प्रमाण पूर्व में कहा गया है। चय का जो प्रमाण है वही आदि (प्रथम संख्या) है। एक-एक चय का प्रमाण बढ़ता गया इसलिए वही उत्तर है। प्रथम समय में की गई कृष्टियों का प्रमाण वही गच्छ है। संकलन सूत्र -

रूपेणोनो गच्छो दलीकृतः प्रचयताडितो मिश्रः।
प्रभवेण पदाभ्यस्तः संकलितं भवति सर्वेषाम् ।।

अर्थ - (रूपेणोनो गच्छो) एक कम गच्छ के **(दलीकृतः)** अर्ध को **(प्रचयताडितो)** चय से गुणा करके उसे **(प्रभवेण मिश्रः)** प्रभव में (आदि में) मिलाकर **(पदाभ्यस्तः)** गच्छ से गुणा करने पर

(सर्वेषाम्) सभी का **(संकलितं भवति)** संकलित धन होता है।

$$\left\{\left(\frac{\text{गच्छ}-१}{२}\times \text{चय}\right)+ \text{ आदि }\right\}\times \text{ पद } = \text{ संकलनधन}$$

यहाँ चय का प्रमाण आदि है। प्रथमकृष्टि में अधस्तनशीर्ष नहीं मिलाया इसलिए एक कम लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की अंतरकृष्टियों के गच्छ का प्रमाण स्थापित करके संकलन धन लाना चाहिए । इतनी लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि का अधस्तन शीर्ष द्रव्य दूसरे समय में अपकृष्ट द्रव्य से ग्रहण करके देवें।

अंकसंदृष्टि उपर्युक्त संकलन सूत्रानुसार- $\left\{\left(\frac{३-१}{२}\times ४\right)+४\right\}३$

$$\left\{\left(\frac{२}{२}\times ४\right)+४\right\}३ = (४+४)\times ३ = ८\times ३ = २४$$ लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि का अधस्तनशीर्ष द्रव्य

अर्थसंदृष्टि - प्रथम समयसंबंधी चय का प्रमाण इतना

व १२	
ओ ४ १६-४ (१ऽ)	
ख	ख २

इसकी लघुसंदृष्टि 'वि' है। गच्छ ⟶ एक कम

इसे ही आदि और उत्तर स्थापित करके लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि का प्रमाण

१ऽ
४
ख २४

है।

$$\left\{\left(\frac{\overset{२ऽ}{४}}{\text{ख } २४।२}\times \text{वि}\right)+\text{वि}\right\}\frac{\overset{१ऽ}{४}}{\text{ख}२४}$$

विशेषमात्र आदि मिलाने के लिए गुण्य में दो कम है उसका अपवर्तन करें क्योकि यहाँ दो कम की कीमत २ ÷ २ हैं । इसका प्रमाण १ आता है। विशेषमात्र आदि मिलाने के लिए गुण्य में एक गुणकार मिलाना चाहिए उसका और १ अधिक का अपवर्तन किया

$$\frac{४ \text{ वि}}{\text{ख } २४।२}\times\frac{\overset{१ऽ}{४}}{\text{ख } २४} = \frac{४ \text{ वि } \overset{१ऽ}{४}}{\text{ख } २४।२ \text{ ख } २४}$$ ⟶ लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि का अधस्तन शीर्ष द्रव्य

जितनी कृष्टियाँ व्यतीत हुई उतने अधस्तनशीर्ष विशेष आगे की कृष्टि में देय हैं। जैसे- द्वितीयकृष्टि में १ विशेष, तृतीय कृष्टि में २ विशेष इत्यादि ।

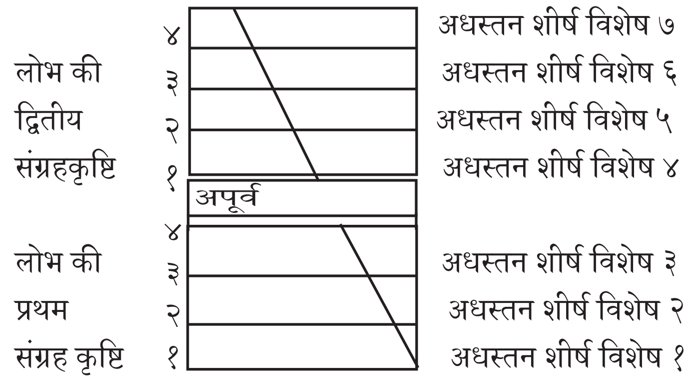

लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि में अधस्तनशीर्ष विशेष का प्रमाण -

लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथमकृष्टि में अतीत कृष्टिप्रमाण चय हीन हैं इसलिए वहाँ लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की अंतरकृष्टियों का जितना प्रमाण है उतने विशेष (चय) दिए जाते हैं। वही यहाँ आदि का प्रमाण है । एक चय उत्तर और द्वितीय संग्रहकृष्टि की अंतरकृष्टियों के प्रमाणमात्र गच्छ स्थापित करके जितना संकलन धन आता है उतना लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य में अधस्तनशीर्ष द्रव्य होता है ।

$$\left\{\left(\frac{\text{गच्छ}-१}{२}\times \text{चय}\right)+ \text{आदि}\right\}\times \text{पद} = \text{संकलनधन},\ \text{गच्छ}\ ४,\ \text{आदि}\ ४\times४,\ \text{उत्तर}\ ४$$

अंकसंदृष्टि $\left\{\left(\frac{४-१}{२}\times ४\right)+(४\times४)\right\}\times ४ = \left\{\left(\frac{३}{२}\times ४\right)+१६\right\}\times ४$

(६ + १६) × ४ = २२ × ४ = ८८ लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि का अधस्तन शीर्षद्रव्य

अंर्थसंदृष्टि = $\left\{\left(\frac{\overset{१\frown}{४}}{\text{ख}\ २४।२}\times \text{वि}\right)+\frac{४\ \text{वि}}{\text{ख}\ २४}\right\}\times\frac{४}{\text{ख}\ २४}$ प्रथम दो संख्याओं का जोड़ करने के लिए दो का समच्छेद करें

$\left\{\frac{\overset{१\frown}{४}\ \text{वि}}{\text{ख}\ २४।२}+\frac{४\ \text{वि}\ ।२}{\text{ख}\ २४।२}\right\}\times\frac{४}{\text{ख}\ २४}$ समान संख्या रखकर २ गुणकार में प्रथम संख्या का (गुण्य में एक कम है उसे नहीं गिनना) एक गुणकार मिलाए

$\frac{\overset{१\frown}{४}\ \text{वि}\ ३\ ।४}{\text{ख}\ २४।२\ \text{ख}\ २४}$

⟶ लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि का अधस्तनशीर्ष द्रव्य

लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में अधस्तनशीर्ष विशेष द्रव्य का प्रमाण -

लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की प्रथमकृष्टि में अतीतकृष्टि प्रमाण अर्थात् प्रथम व द्वितीय

संग्रहकृष्टि की अंतरकृष्टियों के प्रमाणमात्र चय हीन हैं। यही तृतीय संग्रहकृष्टि में अधस्तनशीर्ष विशेषधन निकालने के लिए आदि [वि ४।२ / ख। २४] का प्रमाण है। एक एक चय बढ़ता गया इसलिए एक चय ही उत्तर है। लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंतरकृष्टियों के प्रमाणमात्र गच्छ स्थापित करके संकलन करने पर लोभ की तृतीय संग्रह कृष्टि के द्रव्य में अधस्तनशीर्ष विशेष का द्रव्य आता है। उतना उस कृष्टि में देने योग्य द्रव्य में से देकर स्थापन करें।

अंकसंदृष्टि - $\left\{\left(\frac{\text{गच्छ}-१}{२}\times \text{चय}\right)+\text{ आदि}\right\}\times \text{ पद } = \text{ संकलनधन}$ आदि का प्रमाण ४ × ४ × २

$\left\{\left(\frac{४-१}{२}\times ४\right)+(४\times४\times२)\right\}\times ४ = \left\{\left(\frac{३}{२}\times ४\right)+३२\right\}\times ४$

= (६ + ३२) × ४ =३८ × ४ =१५२ लोभ के तृतीयसंग्रह कृष्टि का अधस्तनशीर्ष विशेषद्रव्य

अर्थ संदृष्टि - आदि [वि ४।२ / ख। २४] चय [वि] गच्छ [४ / ख २४]

$\left\{\left(\frac{\text{गच्छ}-१}{२}\times \text{चय}\right)+\text{ आदि}\right\}\times \text{ पद } = \text{ संकलनधन}$

$\left\{\frac{१⌒\ ४\ \text{वि}}{\text{ख}\ २४।२} + \frac{४\ \text{वि}\ ।२}{\text{ख}\ २४}\right\}\times\frac{४}{\text{ख}\ २४}$ प्रथम दो संख्याओं का जोड़ करने के लिए दो का समच्छेद करें।

$\frac{१⌒\ ४}{\text{ख}\ २४।२} + \frac{४\ \text{वि}\ ।२।२}{\text{ख}\ ।\ २४।२} = \frac{१⌒\ ४\ \text{वि}}{\text{ख}\ २४।२} + \frac{\text{वि}\ ४\ ।४}{\text{ख}।२४।२}$ समान संख्या रखकर धनराशि के ४ गुणकार में प्रथम संख्या का एक गुणकार मिलावें। ४ + १ = ५

[१⌒ / ४ वि ५ ।४ / ख २४।२ ख २४] लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि का अधस्तनशीर्ष विशेष द्रव्य

माया कषाय की प्रथम संग्रहकृष्टि का अधस्तन शीर्ष विशेष द्रव्य -

लोभ की प्रथम, द्वितीय व तृतीय संग्रहकृष्टियों की अंतरकृष्टियों का जो प्रमाण है उतने चय मायाकषाय की प्रथम अंतरकृष्टि में देने योग्य हैं इसलिए वही आदि का प्रमाण है। आगे एक - एक चय बढता गया इसलिए एक चय ही उत्तर है। मायाकषाय की प्रथम संग्रह कृष्टि की अंतरकृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ का प्रमाण स्थापन करके संकलन धन लाने पर मायाकषाय की प्रथम संग्रहकृष्टि के द्रव्य में अधस्तनशीर्ष विशेष द्रव्य आता है। उतना उसकी कृष्टि के देय द्रव्य में से देकर स्थापन करें।

अंकसंदृष्टि - पूर्वोक्त संकलन सूत्रानुसार -

$$\left\{\left(\frac{४-१}{२} \times ४\right) + (४\times४\times३)\right\} \times ४ = \left\{\left(\frac{३}{२} \times ४\right) + ४८\right\} \times ४$$

(६ + ४८) × ४ = ५४ × ४ = २१६ माया की प्रथम संग्रहकृष्टि का अधस्तनशीर्ष विशेषद्रव्य

अर्थसंदृष्टि - आदि [वि ४। ३ / ख २४] उत्तर [वि] गच्छ [४ / ख ।२४]

$$\left\{\frac{\overset{१\frown}{४}}{ख\ २४।२} + \frac{वि\ ४\ ।३}{ख\ २४।}\right\} \times \frac{४}{ख२४}$$ दो का समच्छेद

$$\frac{\overset{१\frown}{४}}{ख\ २४।२} + \frac{वि\ ४।३।२}{ख\ २४।२} = \left\{\frac{\overset{१\frown}{४}\ वि}{ख\ २४।२} + \frac{वि\ ४\ ।६}{ख।२४।२}\right\} \times \frac{४}{ख२४}$$ समसंख्या रखकर छह गुणकार में एक गुणकार मिलावें।

[$\overset{१\frown}{}$ ४ वि ७ ।४ / ख २४।२ ख २४] माया की प्रथम संग्रहकृष्टि का अधस्तनशीर्ष विशेषद्रव्य

इसी प्रकार शेष आठ संग्रहकृष्टियों में अपनी-अपनी नीचे की संग्रहकृष्टियों की अंतरकृष्टियों के प्रमाणमात्र विशेषों को आदि और एक विशेष उत्तर और अपनी-अपनी अंतरकृष्टियों के प्रमाण को गच्छ स्थापित करके जो संकलन धन आयेगा वह अपनी-अपनी संग्रहकृष्टि के द्रव्य में अधस्तनशीर्ष विशेषद्रव्य होता हैं।

क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि का अधस्तनशीर्ष विशेषद्रव्य -

$$\left\{\left(\frac{गच्छ-१}{२} \times चय\right) + आदि\right\} \times पद = संकलनधन$$

$$\left\{\left(\frac{४-१}{२} \times ४\right) + (४\times४\times११)\right\} \times ४ = \left\{\left(\frac{३}{२} \times ४\right) + १७६\right\} \times ४$$

(६ + १७६) × ४ = १८२ × ४ = ७२८ क्रोध के तृतीय संग्रहकृष्टि का अधस्तनशीर्ष विशेषद्रव्य

अंकसंदृष्टि - आदि [वि ४। ११ / ख २४] उत्तर [वि] गच्छ [४।१३ / ख २४]

{ (१⌒ ४ ।१३।वि)/(ख २४।२) + (वि ४×११)/(ख २४) } × (४।१३)/(ख २४)   दो का समच्छेद करके

{ (१⌒ ४ ।१३।वि)/(ख २४।२) + (वि ४×११×२)/(ख २४×२) } = { (१⌒ ४ ।१३।वि)/(ख २४।२) + (वि ४।२२)/(ख २४।२) } × (४ १३)/(ख २४)

(१⌒ ४ ३५वि)/(ख २४।२) × (४ १३)/(ख २४)   समान संख्या रखकर गुणकार २२ में १३ का गुणकार मिलावें। तेरह और पैंतीस १३× ३५ को परस्पर गुणा करने पर ४५५ आता है।

| १⌒ ४ वि ४ ।४५५ / ख २४।२ ख २४ | क्रोध की तृतिय संग्रहकृष्टि का अधस्तनशीर्ष विशेष द्रव्य

बारह संग्रहकृष्टियों में अधस्तनशीर्ष विशेषद्रव्य का प्रमाण

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
तृतीय संग्रह	१⌒ ४ वि ४।५ / ख २४ ख २४।२	१⌒ ४ वि ४।११ / ख २४ ख २४।२	१⌒ ४ वि ४।१७ / ख २४ ख २४।२	१⌒ ४ वि ४।४५५ / ख २४ ख २४।२
द्वितीय संग्रह	१⌒ ४ वि ४।३ / ख २४ ख २४।२	१⌒ ४ वि ४।९ / ख २४ ख २४।२	१⌒ ४ वि ४।१५ / ख २४ ख २४।२	१⌒ ४ वि ४।२१ / ख २४ ख २४।२
प्रथम संग्रह	१⌒ ४ वि ४।१ / ख २४ ख २४।२	१⌒ ४ वि ४।७ / ख २४ ख २४।२	१⌒ ४ वि ४।१३ / ख २४ ख २४।२	१⌒ ४ वि ४।१९ / ख २४ ख २४।२

सर्वसंग्रहकृष्टियों में अधस्तनशीर्ष विशेषों का संकलन-

एक विशेष आदि एक विशेष उत्तर, एक कम प्रथम समय में की गई सर्वकृष्टियों के प्रमाणमात्र गच्छ | १⌒ ४ / ख | अंकसंदृष्टि से आदि ४, उत्तर ४, गच्छ ४७

{ ((४७-१)/२ × ४) + ४ } × ४७ = { (४६/२ × ४) + ४ } × ४७

= (९२ + ४) × ४७ = ९६ × ४७ = ४५१२

अंकसंदृष्टि से १२ संग्रहकृष्टि में अधस्तनशीर्ष विशेषद्रव्य

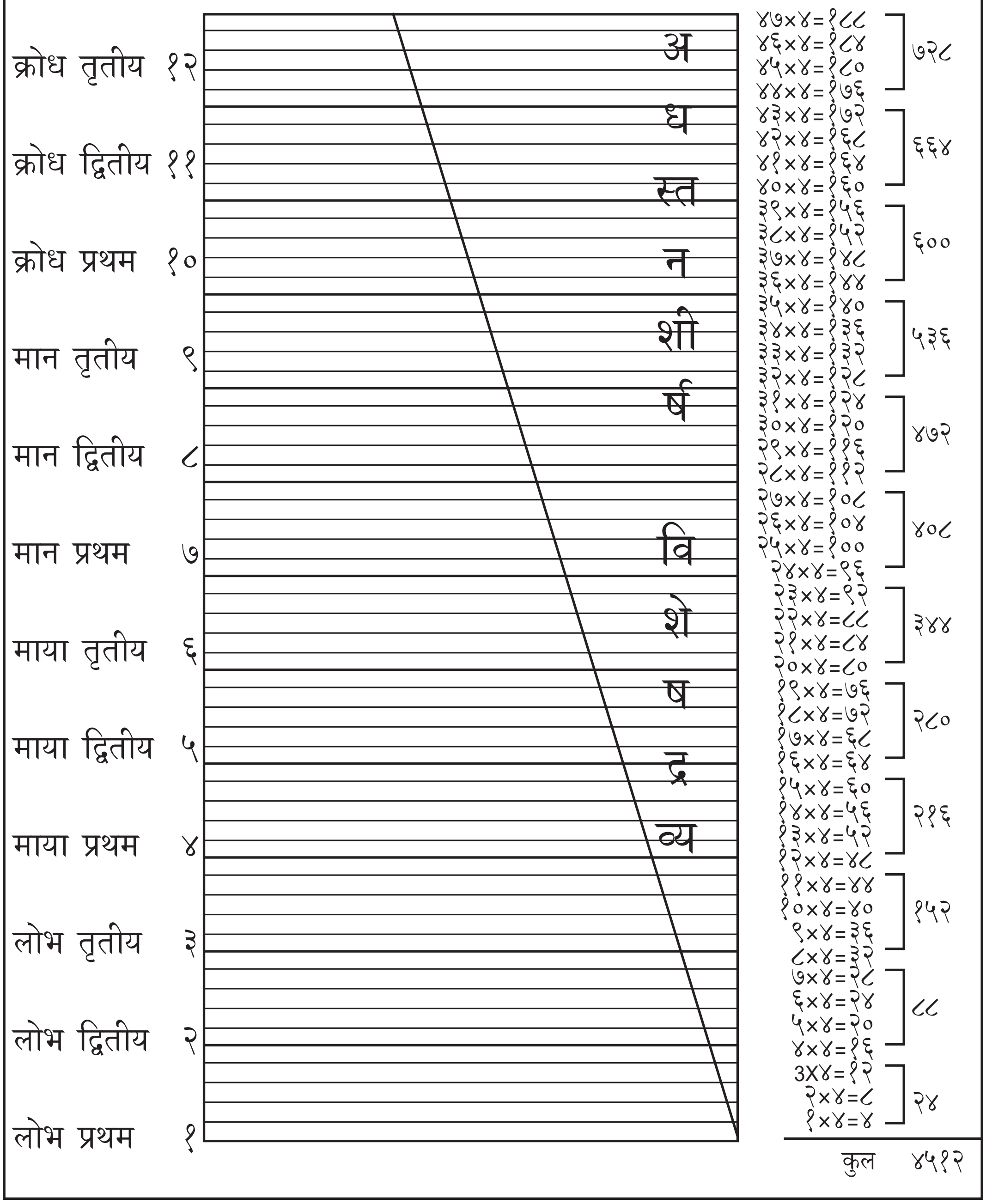

$$\left\{\left(\frac{\overset{२-}{४} \times \text{वि}}{\text{ख } २}\right) + \text{वि}\right\} \times \frac{\overset{१-}{४}}{\text{ख}} = \boxed{\frac{\overset{१-}{४}\ \text{वि } ४}{\text{ख।२ ख}}}$$

यहाँ दो कम अर्थात् $\boxed{\frac{२}{२}}$ है क्योंकि इसका $\boxed{\frac{४-२}{\text{ख}}}$ भाग दो है इसलिए एक विशेष का प्रमाण मिलाने के लिए दो कम का अपवर्तन हो गया।

इतना सर्व अधस्तन शीर्ष विशेष द्रव्य जानना चाहिए ।

अधस्तन कृष्टि द्रव्य -

प्रथम समय में लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की जघन्यकृष्टि में जो द्रव्य का प्रमाण कहा गया था उतना एक-एक कृष्टि का द्रव्य स्थापित करके उसे अपनी-अपनी संग्रहकृष्टि के नीचे की गई नवीन कृष्टियों के प्रमाण से गुणा करने पर अपनी - अपनी संग्रहकृष्टि के देयद्रव्य में अधस्तनकृष्टि के द्रव्य का प्रमाण आता है।

अंकसंदृष्टि - नवीन कृष्टियों का प्रमाण २, लोभ की पूर्व प्रथम कृष्टि का द्रव्य ३८४ ।

३८४ × २ = ७६८ एक- एक संग्रहकृष्टि का अधस्तन कृष्टिद्रव्य ।

अर्थसंदृष्टि-

लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि का द्रव्य

व १२ १६ १-
ओ ४ १६-४
ख २४ ख २४।२

इतना है। दो गुणहानि के ऋण को न गिनते हुए दो गुणहानि का अपवर्तन किया

व १२
ओ ४
ख २४

इसे अपने - अपने द्वितीय समये में की गई नवीन कृष्टियों के प्रमाण से गुणा करने पर अपनी - अपनी अधस्तनकृष्टि का द्रव्य आता है।

४
ख २४ ओ a

बारह संग्रहकृष्टियों में अधस्तन कृष्टिद्रव्य का प्रमाण

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
तृतीय संग्रह	व १२।४ ओ ४। ख २४ ओ a ख २४	व १२।४ ओ ४। ख २४ ओ a ख २४	व १२।४ ओ ४। ख २४ ओ a ख २४	व १२।४ ।११३ ओ ४। ख २४ ओ a ख २४
द्वितीय संग्रह	व १२।४ ओ ४। ख २४ ओ a ख २४	व १२।४ ओ ४। ख २४ ओ a ख २४	व १२।४ ओ ४। ख २४ ओ a ख २४	व १२।४ ओ ४। ख २४ ओ a ख २४
प्रथम संग्रह	व १२।४ ओ ४। ख २४ ओ a ख २४	व १२।४ ओ ४। ख २४ ओ a ख २४	व १२।४ ओ ४। ख २४ ओ a ख २४	व १२।४ ओ ४। ख २४ ओ a ख २४

लोभ की प्रथम कृष्टि के द्रव्य को [व १२ । ओ ४ ⅁ ख २४] सर्व नवीन कृष्टियों के प्रमाण से [४ / ख ओ ⅁] गुणा करने पर सर्व अधस्तन कृष्टिद्रव्य [व १२ । ४ / ओ ४ ख ओ ⅁ ख २४] आता है।

अंकसंदृष्टि - ३८४ × २४ = ९२१६ सर्व अधस्तन कृष्टिद्रव्य का प्रमाण

उभयद्रव्यविशेष -

प्रथम समय और द्वितीय समयसंबंधी कृष्टियों में देने योग्य द्रव्य को जोड़ने पर सर्वधन होता है। पूर्व और अपूर्व कृष्टियों का प्रमाण गच्छ है।

अंकसंदृष्टि -

प्रथम समय में अपकृष्ट कृष्टिद्रव्य	१३९२०	पूर्व कृष्टियों का प्रमाण	४८
द्वितीय समय में अपकृष्ट कृष्टिद्रव्य	९५४४८	अपूर्व कृष्टियों का प्रमाण	२४
दोनों मिलकर द्रव्य	१,०९,३६८	दोनों मिलकर कृष्टियाँ	७२

$$\frac{\text{सर्वद्रव्य}}{\text{गच्छ}} = \text{मध्यमधन} \qquad \frac{१०९३६८}{७२} = १५१९ \text{ मध्यमधन}$$

$$\frac{\text{मध्यमधन}}{\text{दो गुणहानि} - \left(\frac{\text{गच्छ}-१}{२}\right)} = \text{चय}$$

$$\frac{१५१९}{१४४ - \left(\frac{७२ - १}{२}\right)} = \frac{१५१९}{\frac{२८८ - ७१}{२}} = \frac{१५१९}{\frac{२१७}{२}} = \frac{१५१९}{२१७} \times \frac{२}{१} = \boxed{१४}$$

उभयद्रव्यविशेष

अर्थसंदृष्टि - प्रथम समय अपकृष्ट द्रव्य [व १२ / ओ]   द्वितीय समय अपकृष्ट द्रव्य [व १२ ⅁ / ओ]

प्रथम समय अपकृष्ट द्रव्य + द्वितीय समय अपकृष्ट द्रव्य = सवर्धन

[व १२ / ओ] + [व १२ ⅁ / ओ] = [१- / व १२ ⅁ / ओ] समान संख्या रखकर असंख्यात के गुणकार पर धनराशि का एक गुणकार अधिक किया।

प्रथम समय में की गई कृष्टियों $\boxed{\frac{४}{ख}}$ में द्वितीय समय में की गई कृष्टियों का प्रमाण मिलाने के लिए उसके ऊपर अधिक की संदृष्टि की $\boxed{\frac{\overset{।}{४}}{ख}}$ यह गच्छ होता है।

$$\frac{\text{सवर्धन}}{\text{गच्छ}} = \text{मध्यमधन} \qquad \boxed{\begin{matrix} व\ १२^{१-}\text{a} \\ ओ\ \overset{।}{४} \\ ख \end{matrix}} \ \text{मध्यमधन}$$

$$\frac{\text{मध्यमधन}}{\text{दो गुणहानि} - \left(\frac{\text{गच्छ}-१}{२}\right)} = \text{चय} \ \boxed{\begin{matrix} व\ १२^{१-}\text{a} & \overset{१\frown}{।} \\ ओ\ \overset{।}{४} & १६-\overset{।}{४} \\ ख & ख\ २ \end{matrix}}$$ इसकी लघुसंदृष्टि 'वि' है।

क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंतिम कृष्टि में एक उभयद्रव्यविशेष मिलता है। द्विचरमकृष्टि में दो, त्रिचरम कृष्टि में तीन इसप्रकार नीचे - नीचे एक-एक चय बढ़ता जाता है।

क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में उभयद्रव्यविशेष द्रव्य का प्रमाण -

आदि १ चय, उत्तर = १ चय, गच्छ = क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की पूर्व + अपूर्व कृष्टियाँ $\boxed{\begin{matrix} \overset{।}{४}\ १३ \\ ख\ २४ \end{matrix}}$

$$\left\{\left(\frac{\text{गच्छ}-१}{२} \times \text{चय}\right) + \text{आदि}\right\} \times \text{पद} = \text{संकलनधन}$$

अंकसंदृष्टि - आदि = १४, चय (उत्तर) = १४, गच्छ = ६

$$\left\{\left(\frac{६-१}{२} \times १४\right) + १४\right\} \times ६ = \left\{\left(\frac{५}{२} \times १४\right) + १४\right\} \times ६$$

= {३५ + १४ } × ६ = ४९ × ६ = २९४ क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि के उभयद्रव्य विशेष का द्रव्य

अर्थसंदृष्टि -

$$\left(\begin{matrix} \overset{१\frown}{\overset{।}{४}}\ १३\ वि \\ ख\ \ २४।२ \end{matrix}\right) वि \times \begin{matrix} \overset{।}{४}।\ १३ \\ ख\ २४ \end{matrix}$$

$$\begin{matrix} \overset{।}{४}\ १३\ वि\ \overset{।}{४}।१३ \\ ख\ २४।\ २\ \ ख\ २४ \end{matrix}$$

$$\boxed{\begin{matrix} वि\ \overset{।}{४}\ \ \overset{।}{४}।१६९ \\ ख\ २४\ ख\ २४।२ \end{matrix}}$$

यहाँ एक कम की कीमत अलग रखे। वह १ ÷ २ है क्योंकि धनराशि के जो गुणकार और भागहार हैं वे ऋणराशि के भी होते हैं। यहाँ धनराशि के विशेष का एक गुणकार मूलराशि के गुणकार में मिलावें। अलग रखा ऋण १÷ २ एक गुणकार में से कम करें इसलिए १ ÷ २ शेष रहता है इसलिए वह मूलराशि में अधिक होना चाहिए किन्तु उसे यहाँ गिना नहीं । १३× १३ = १६९

इतना क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में द्वितीय समय में कृष्टियों में देने योग्य जो अपकृष्ट द्रव्य कहा है उसमें से उभयद्रव्य विशेषद्रव्य का प्रमाण होता है।

क्रोध की द्वितीयसंग्रह कृष्टि का उभयद्रव्यविशेष -

एक अधिक क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की पूर्व और अपूर्व कृष्टियों के प्रमाणमात्र विशेष आदि का प्रमाण है क्योंकि उभयविशेष ऊपर से नीचे एक - एक बढ़ता जाता है। जितनी कृष्टियां व्यतीत हुई उसमें एक अधिक आगे की कृष्टि में उभयद्रव्यविशेष मिलते हैं। एक-एक चय बढ़ता गया इसलिए विशेष का प्रमाण एक चय, क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टियों के पूर्व और नवीन कृष्टिप्रमाण गच्छ स्थापन करके जितना संकलन आयेगा उतना क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि के देय द्रव्य में उभयद्रव्य विशेष द्रव्य जानना चाहिए ।

अंकसंदृष्टि - आदि - $\boxed{७\times१४}$, विशेष - $\boxed{१४}$, गच्छ - $\boxed{६}$

पूर्वोक्त संकलन सूत्रानुसार $\{(\frac{५}{२}\times १४) + ९८\} \times ६ = \{३५ + ९८\}\times ६ = १३३ \times६ = ७९८$

अर्थसंदृष्टि आदि = $\boxed{\frac{\text{वि } \overset{१-}{४}\ १३}{\text{ख } २४}}$ विशेष $\boxed{\text{वि}}$ गच्छ $\boxed{\frac{४}{\text{ख } २४}}$

$\left(\frac{\overset{१\frown}{४}\ \text{वि}}{\text{ख } २४।२} + \frac{\text{वि } \overset{१-}{४}\ १३}{\text{ख } २४।}\right) \times \frac{४}{\text{ख } २४}$ प्रथम दो संख्याओं को जोड़ने के लिए दो का समच्छेद करे।

$\left(\frac{\overset{१\frown}{४}\ \text{वि}}{\text{ख } २४।२} + \frac{\text{वि } \overset{१-}{४}\ १३\times२}{\text{ख } २४\times२}\right) \times \frac{४}{\text{ख } २४}$ समान संख्या रखकर १३ × २ का गुणकार २६ में मूलराशि का एक गुणकार मिलावें। मूलराशि और धनराशि के ऊपर एक कम और १ अधिक को न गिनकर

$\boxed{\frac{४\ \text{वि}\ २७\ ४}{\text{ख } २४।२\ \text{ख } २४}}$ क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि का उभय द्रव्य विशेष

क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का उभयद्रव्य विशेषद्रव्य -

एक अधिक क्रोध की तृतीय और द्वितीय संग्रहकृष्टि की पूर्व और अपूर्व कृष्टिप्रमाण विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की पूर्व और अपूर्व कृष्टि प्रमाण गच्छ स्थापन करके आया हुआ संकलन धन क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के देयद्रव्य में उभयद्रव्य विशेष द्रव्य का प्रमाण जानना चाहिए ।

अंकसंदृष्टि- आदि = १४ ×१३, विशेष = १४, गच्छ = ६

$$\left\{\left(\frac{६-१}{२}\times १४\right) + १४\times १३\right\}\times ६ = \left\{\left(\frac{५}{२}\times १४\right)+ १८२\right\}\times ६$$

{ ३५ + १८२}× ६ २१७ × ६ = १३०२ क्रोध प्रथम संग्रहकृष्टि का उभयविशेष द्रव्य

अर्थसंदृष्टि - आदि $\left(\frac{\overset{|}{४}\ १३}{ख\ २४} + \frac{\overset{|}{४}}{ख\ २४}\right) + १ = \boxed{\frac{\overset{१-}{\overset{|}{४}}\ १४\ वि}{ख\ २४}}$ उत्तर $\boxed{वि}$ गच्छ $\boxed{\frac{\overset{|}{४}}{ख\ २४}}$

$\left\{\frac{\overset{१\frown}{४}\ वि}{ख\ २४।२} + \frac{\overset{१-}{४}\ वि\ १४}{ख\ २४}\right\}\times\frac{\overset{|}{४}}{ख\ २४}$ प्रथम दो संख्याओं को जोड़ने के लिए २ का समच्छेद किया ।

$\left\{\frac{\overset{१\frown}{४}\ वि}{ख\ २४।२} + \frac{\overset{१-}{४}\ वि\ १४\times २}{ख२४।२}\right\}\times\frac{\overset{|}{४}}{ख\ २४}$ एक कम और एक अधिक को न गिनकर । समान संख्या रखकर१४×२= २८ गुणकार में मूलराशि का एक गुणकार मिलाने पर २९ गुणकार हुआ।

$\boxed{\frac{\overset{|}{४}\ वि\ २९}{ख\ २४।२}\ \frac{\overset{|}{४}}{ख\ २४}}$ **क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का उभयद्रव्य विशेष**

मान की तृतीय संग्रहकृष्टि का उभयद्रव्य विशेष द्रव्य -

एक अधिक क्रोध की तीन संग्रहकृष्टियों के पूर्व और अपूर्व कृष्टिप्रमाण विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और मान की तृतीय संग्रहकृष्टि की पूर्व और अपूर्व कृष्टिप्रमाण गच्छ स्थापित करके जो संकलन धन आता है वह मान की तृतीय संग्रह कृष्टि का उभयद्रव्य विशेष द्रव्य जानना चाहिये।

अंकसंदृष्टि - आदि = {(६×३)+१}×१४ = १९×१४ = $\boxed{२६६}$ उत्तर = $\boxed{१४}$ गच्छ = $\boxed{६}$

पूर्वोक्त संकलन सूत्र के अनुसार $\left\{\left(\frac{६-१}{२}\times १४\right) + २६६\right\}\times ६ = \left\{\left(\frac{५}{२}\times १४\right)+२६६\right\}\times ६$

= (३५+२६६) × ६ = ३०१ × ६ = १८०६ **मान के तृतीय संग्रहकृष्टि का उभयद्रव्यविशेष द्रव्य**

अर्थसंदृष्टि - आदि का प्रमाण $\boxed{\frac{\overset{१-}{\overset{|}{४}}\ १५\ वि}{ख\ २४}}$ उत्तर $\boxed{वि}$ गच्छ $\boxed{\frac{\overset{|}{४}}{ख\ २४}}$

पूर्व व अपूर्व कृष्टींयों में उभयद्रव्य विशेषद्रव्य

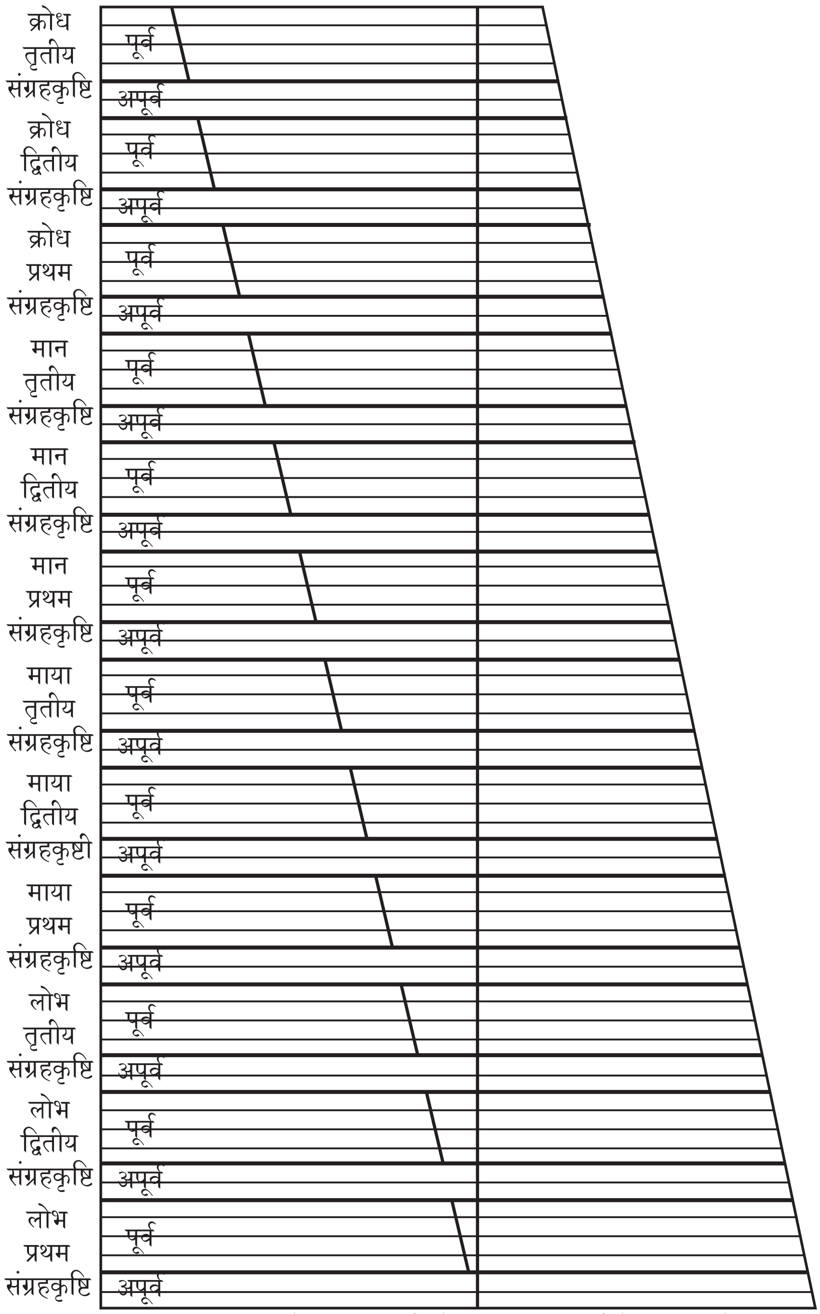

प्रत्येक संग्रह कृष्टि में ५०४ उभयद्रव्यविशेष बढ़ता है।

उभयद्रव्य विशेष का प्रमाण	
१×१४=१४ २×१४=२८ ३×१४=४२ ४×१४=५६ ५×१४=७० ६×१४=८४	२९४
७×१४=९८ ८×१४=११२ ९×१४=१२६ १०×१४=१४० ११×१४=१५४ १२×१४=१६८	७९८
१३×१४=१८२ १४×१४=१९६ १५×१४=२१० १६×१४=२२४ १७×१४=२३८ १८×१४=२५२	१३०२
१९×१४=२६६ २०×१४=२८० २१×१४=२९४ २२×१४=३०८ २३×१४=३२२ २४×१४=३३६	१८०६
२५×१४=३५० २६×१४=३६४ २७×१४=३७८ २८×१४=३९२ २९×१४=४०६ ३०×१४=४२०	२३१०
३१×१४=४३४ ३२×१४=४४८ ३३×१४=४६२ ३४×१४=४७६ ३५×१४=४९० ३६×१४=५०४	२८१४
३७×१४=५१८ ३८×१४=५३२ ३९×१४=५४६ ४०×१४=५६० ४१×१४=५७४ ४२×१४=५८८	३३१८
४३×१४=६०२ ४४×१४=६१६ ४५×१४=६३० ४६×१४=६४४ ४७×१४=६५८ ४८×१४=६७२	३८२२
४९×१४=६८२ ५०×१४=७०० ५१×१४=७१४ ५२×१४=७२८ ५३×१४=७४२ ५४×१४=७५६	४३२६
५५×१४=७७० ५६×१४=७८४ ५७×१४=७९८ ५८×१४=८१२ ५९×१४=८२६ ६०×१४=८४०	४८३०
६१×१४=८५४ ६२×१४=८६८ ६३×१४=८८२ ६४×१४=८९६ ६५×१४=९१० ६६×१४=९२४	५३३४
६७×१४=९३८ ६८×१४=९५२ ६९×१४=९६६ ७०×१४=९८० ७१×१४=९९४ ७२×१४=१००८	५८३८
कुल	३६७९२

$$\left\{\frac{\overset{\text{१}}{\text{४}}\ \text{वि}}{\text{ख}\ \text{२४।२}} + \frac{\overset{\text{१-}}{\text{४}}\ \text{वि १४}}{\text{ख}\ \text{२४}}\right\}\frac{\text{४}}{\text{ख २४}}$$

पूर्वानुसार स्पष्टीकरण जानना चाहिए।

$$\left\{\frac{\text{४}\ \ \text{वि}}{\text{ख}\ \ \text{२४।२}} + \frac{\text{४ १५ वि} \times \text{२}}{\text{ख २४} \times \text{२}}\right\} = \boxed{\frac{\text{४ वि}\ \ \text{३१।४}}{\text{ख।२४।२ ख २४}}}$$

मान की तृतीय संग्रहकृष्टि का उभयद्रव्य विशेष द्रव्य

इसीप्रकार एक अधिक अपनी ऊपर की संग्रहकृष्टियों की पूर्व और अपूर्व कृष्टिप्रमाण विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और अपनी- अपनी संग्रहकृष्टि की पूर्व और अपूर्व कृष्टिप्रमाण गच्छ स्थापित करके संकलनधन लाने पर शेष आठ कृष्टियों में भी अपने- अपने उभयद्रव्य विशेषद्रव्य का प्रमाण आता है। वह प्रमाण मान की द्वितीय संग्रह कृष्टि से लेकर लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि तक भाज्यराशि के गुणकार में दो-दो अधिक क्रम से आता है।

बारह संग्रहकृष्टियों में उभयद्रव्यविशेषद्रव्य की अर्थसंदृष्टि

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
तृतीय संग्रहकृष्टि	वि४।४।४३ / ख२४ख२४।२	वि४।४।३७ / ख२४ख२४।२	वि४।४।३१ / ख२४ख२४।२	वि४।४।१६९ / ख२४ख२४।२
द्वितीय संग्रहकृष्टि	वि४।४।४५ / ख२४ख२४।२	वि४।४।३९ / ख२४ख२४।२	वि४।४।३३ / ख२४ख२४।२	वि४।४।२७ / ख२४ख२४।२
प्रथम संग्रहकृष्टि	वि४।४।४७ / ख२४ख२४।२	वि४।४।४१ / ख२४ख२४।२	वि४।४।३५ / ख२४ख२४।२	वि४।४।२९ / ख२४ख२४।२

इन सभी का संकलन सूत्र से संकलन करने पर सर्व उभयद्रव्यविशेष द्रव्य का प्रमाण आता है।

आदि- एक उभयद्रव्यविशेष, उत्तर = एक उभयद्रव्य विशेष, गच्छ - सर्व पूर्वापूर्वकृष्टि

अंकसंदृष्टि - $\boxed{\text{१४}}$ $\boxed{\text{१४}}$ $\boxed{\text{७२}}$

पूर्वोक्त संकलन सूत्र

$$\left\{\left(\frac{\text{गच्छ}-\text{१}}{\text{२}} \times \text{चय}\right) + \text{आदि}\right\} \times \text{गच्छ}$$

दुसरा संकलन सूत्र

$$\frac{\text{मुख} + \text{भूमि}}{\text{२}} \times \text{पद}$$

$$\left\{\left(\frac{७२-१}{२} \times १४\right) + १४\right\} \times ७२$$

$$\left\{(७१\times ७)+ १४\right\} \times ७२$$

४९७ + १४ = ५११ × ७२ = [३६७९२]

$$\frac{१४+१००८}{२} \times ७२$$

$$\frac{१०२२}{२} \times ७२$$

५११ × ७२ = [३६७९२]

सर्व उभयद्रव्यविशेष

अर्थसंदृष्टि - आदि [वि] उत्तर [वि] गच्छ [४ / ख]

$$\left\{\frac{४^{१-}}{ख}\ \frac{वि}{२} + \frac{वि}{}\right\} \times \frac{४}{ख}$$

$$= \boxed{\frac{वि}{ख}\ \frac{४^{१-}}{२}\ \frac{४}{ख}}$$

सर्व उभयद्रव्यविशेष द्रव्य

यहाँ एक घाटि (कम) में एक की कीमत १÷२ है। यह ऋण है। वह अलग रखें। समान संख्या रखकर शेष गुणकार में एक गुणकार अधिक करना है इसलिए अलग रखा ऋण इस एक में से कम करके $\boxed{१ - \frac{१}{२} = \frac{१}{२}}$ आता है। इसलिए $\boxed{\frac{४}{ख\ २}}$ गुणकार के ऊपर एक कम को मिटाकर एक अधिक हुआ।

मध्यमखंडद्रव्य -

द्वितीय समय में अपकर्षण किए द्रव्य में जो कृष्टि संबंधी द्रव्य है उसमें से पूर्वोक्त तीन प्रकार के द्रव्य (अधस्तनशीर्ष, अधस्तन कृष्टि और उभय द्रव्य विशेष) घटाने पर जो शेष रहता है उसे सर्व पूर्वापूर्व कृष्टिप्रमाण से भाग देने पर एक मध्यमखंड का प्रमाण आता है।

$$\frac{\text{द्वितीय समय का अपकृष्ट द्रव्य - पूर्वोक्त तीन द्रव्य}}{\text{पूर्वापूर्वकृष्टि आयाम}} = \text{एक मध्यम खंड द्रव्य}$$

अंकसंदृष्टि- ९५४४८ - ५०५२० (अधस्तनशीर्ष ४५१२ + अधस्तनकृष्टि ९२१६ + उभयद्रव्यविशेष ३६७९२ = ५०५२०)

$$\frac{४४९२८}{७२} = \text{६२४ एक मध्यम खंड द्रव्य}$$

अर्थसंदृष्टि -

एक मध्यम खंड द्रव्य [व १२ / ओ ४ / a≡ ख] इतना है। दूसरे समय में [व १२ / ओ / a] अपकृष्टद्रव्य इतना इसमें असंख्यात भागहार के आगे तीन द्रव्य कम करने के लिए तीन बार कुछ कम की संदृष्टि की है और सर्व पूर्वापूर्व कृष्टिप्रमाण [४ / ख] से भाजित किया ।

इस एक मध्यमखंड द्रव्य को अपनी-अपनी पूर्वापूर्व कृष्टिप्रमाण से गुणा करने पर अपनी-अपनी संग्रहकृष्टि के द्रव्य में मध्यमखंड का प्रमाण आता है ।

मध्यमखंडद्रव्य की संदृष्टि

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
तृतीय संग्रहकृष्टि	व १२ ४ ओ ४ ख २४ a≡ ख	व १२ ४ ओ ४ ख २४ a≡ ख	व १२ ४ ओ ४ ख २४ a≡ ख	व १२ ४।१३ ओ ४ ख २४ a≡ ख
द्वितीय संग्रहकृष्टि	व १२ ४ ओ ४ ख २४ a≡ ख	व १२ ४ ओ ४ ख २४ a≡ ख	व १२ ४ ओ ४ ख २४ a≡ ख	व १२ ४ ओ ४ ख २४ a≡ ख
प्रथम संग्रहकृष्टि	व १२ ४ ओ ४ ख २४ a≡ ख	व १२ ४ ओ ४ ख २४ a≡ ख	व १२ ४ ओ ४ ख २४ a≡ ख	व १२ ४ ओ ४ ख २४ a≡ ख

सर्व मध्यमखंड द्रव्य = एक मध्यमखंड × पूर्वापूर्वकृष्टि

अर्थसंदृष्टि

व १२ ४ ख ४ ख a≡ख

अंकसंदृष्टि ६२४ × ७२ = ४४९२८ सर्व मध्यमखंडद्रव्य

सर्व मध्यमखंडद्रव्य

इसप्रकार द्वितीय समय में अपकर्षण किये हुए कृष्टिसंबंधी द्रव्य में चार प्रकार कहे हैं। वास्तव में उस - उस कृष्टिरूप सर्वद्रव्य एक ही समय में परिणत हुआ है, किन्तु कौन-सी कृष्टिरूप कितना द्रव्य परिणत हुआ है इसका ज्ञान कराने के लिए द्रव्य में चार प्रकार का विभाग कहा गया है ।

अब द्रव्य देने का क्रम कहते हैं-

पुव्वादिम्हि अपुव्वा पुव्वादि[1] अपुव्वपढमगे सेसे ।
दिज्जदि असंखभागेणूणं अहियं अणंतभागूणं[2] ।।५०५।।

पूर्वादौ अपूर्वात् पूर्वादपूर्वप्रथमके शेषे ।
दीयतेऽसङ्ख्यभागेनोनमधिकमनन्तभागोनम् ।।५०५।।

१. यहाँ 'पुव्वादो' पाठ चाहिये ऐसा लगता है। क्यों कि यहाँ पंचमी विभक्ती है।
२. क. पा. सुत्त पृ. ८०१-८०३ सू. ६५३-६७२/ध.पं.६ पृ. ३८०

पूर्व और अपूर्व कृष्टियों में ४ प्रकार के देयद्रव्य

क्रोध तृतीय संग्रहकृष्टि	पूर्व	अधस्तन शीर्ष विशेष	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
	अपूर्व	अधस्तन कृष्टिद्रव्य	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
क्रोध द्वितीय संग्रहकृष्टि	पूर्व	अधस्तन शीर्ष विशेष	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
	अपूर्व	अधस्तन कृष्टिद्रव्य	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
क्रोध प्रथम संग्रहकृष्टि	पूर्व	अधस्तन शीर्ष विशेष	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
	अपूर्व	अधस्तन कृष्टिद्रव्य	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
मान तृतीय संग्रहकृष्टि	पूर्व	अधस्तन शीर्ष विशेष	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
	अपूर्व	अधस्तन कृष्टिद्रव्य	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
मान द्वितीय संग्रहकृष्टि	पूर्व	अधस्तन शीर्ष विशेष	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
	अपूर्व	अधस्तन कृष्टिद्रव्य	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
मान प्रथम संग्रहकृष्टि	पूर्व	अधस्तन शीर्ष विशेष	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
	अपूर्व	अधस्तन कृष्टिद्रव्य	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
माया तृतीय संग्रहकृष्टि	पूर्व	अधस्तन शीर्ष विशेष	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
	अपूर्व	अधस्तन कृष्टिद्रव्य	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
माया द्वितीय संग्रहकृष्टि	पूर्व	अधस्तन शीर्ष विशेष	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
	अपूर्व	अधस्तन कृष्टिद्रव्य	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
माया प्रथम संग्रहकृष्टि	पूर्व		मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
	अपूर्व	अधस्तन कृष्टिद्रव्य	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
लोभ तृतीय संग्रहकृष्टि	पूर्व		मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
	अपूर्व	अधस्तन कृष्टिद्रव्य	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
लोभ द्वितीय संग्रहकृष्टि	पूर्व		मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
	अपूर्व	अधस्तन कृष्टिद्रव्य	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
लोभ प्रथम संग्रहकृष्टि	पूर्व		मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष
	अपूर्व	अधस्तन कृष्टिद्रव्य	मध्यमखंड	उभयद्रव्यविशेष

अन्वयार्थ - (अपुव्वा) अपूर्वकृष्टि की अंतिमकृष्टि से **(पुव्वादिम्हि)** पूर्वकृष्टि की आदिकृष्टि में **(असंखभागेणूणं)** असंख्यातवाँ भाग हीन द्रव्य **(दिज्जदि)** दिया जाता है और **(पुव्वादि)** पूर्वकृष्टि की अंतकृष्टि से **(अपुव्वपढमगे)** अपूर्वकृष्टि की प्रथमकृष्टि में **(असंखभागेण अहियं)** असंख्यातवाँ भाग अधिक द्रव्य दिया जाता है और **(सेसे)** शेष कृष्टियों में **(अणंतभागूणं)** अनन्तवाँ भाग हीन द्रव्य **(दिज्जदि)** दिया जाता है।

विशेषार्थ - लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि के नीचे - नीचे नवीन अपूर्वकृष्टियों की जघन्य कृष्टि में सबसे अधिक द्रव्य देता है। वहाँ अधस्तनशीर्ष विशेष का द्रव्य नहीं देता है। अधस्तन कृष्टिद्रव्य से एक कृष्टि का द्रव्य, मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड का द्रव्य और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से पूर्वापूर्व कृष्टि प्रमाण विशेषों को (चयों को) ग्रहण करके देता है ऐसा यतिवृषभआचार्य का अभिप्राय है।

पुन: द्वितीय कृष्टि से अंतिम कृष्टि तक की नवीन कृष्टियों में अधस्तन कृष्टि द्रव्य में से एक कृष्टि का द्रव्य, मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड समानरूप से सर्वत्र देता है। वैसे ही उभयद्रव्य विशेष द्रव्य में से एक-एक विशेषमात्र द्रव्य घटते क्रम से देता है। इसलिए प्रत्येक कृष्टि में एक-एक उभयद्रव्यविशेष द्रव्य न्यून मिला है। उभयद्रव्यविशेष का द्रव्य कृष्टि द्रव्य की अपेक्षा अनन्तवाँ भाग है इसलिए नीचे की कृष्टि से ऊपर की कृष्टि में अनन्तवाँ भाग हीन द्रव्य देता है ऐसा कहते हैं। यहाँ प्रथम संग्रहकृष्टि का अधस्तन कृष्टि द्रव्य समाप्त हुआ ।

नवीन अंतिम कृष्टि के ऊपर पूर्वकृष्टि की जघन्यकृष्टि है। उसमें मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड और उभयद्रव्य विशेष द्रव्य में से जितनी नीचे नवीन कृष्टियाँ व्यतीत हुई है उतने प्रमाण से ऊन सर्व कृष्टिप्रमाण मात्र विशेषों का द्रव्य देता है। यहाँ नवीन कृष्टियों की अंतकृष्टि में दिये द्रव्य से एक अधस्तन कृष्टिद्रव्य और एक उभयद्रव्य विशेष न्यून मिला है। नवीन अंतकृष्टि में दिये द्रव्य से एक अधस्तनकृष्टि द्रव्य असंख्यातवें भागमात्र और एक उभयद्रव्यविशेष अनन्तवाँ भागमात्र है इसलिए उस नवीन चरम कृष्टि से पूर्वकृष्टि की जघन्यकृष्टि में असंख्यातवाँ भाग और अनन्तवाँ भागमात्र द्रव्य कम मिलता है।

यहाँ पूर्व जघन्यकृष्टि में प्रथम समय में दिया द्रव्य एक अधस्तनकृष्टि के द्रव्य के समान है। वह मिलाने पर एक गोपुच्छाकार होता है किन्तु उसकी यहाँ विवक्षा नहीं है इसलिए असंख्यातवाँ भाग हीन है ऐसा कहा है।

इसी प्रकार आगे भी जहाँ नवीन अंतकृष्टि में दिये द्रव्य से पूर्व जघन्य कृष्टि में दिया द्रव्य असंख्यातवाँ भाग हीन कहा गया वहाँ ऐसी ही युक्ति जानना चाहिए ।

इसके ऊपर पूर्वकृष्टि की द्वितीयकृष्टि में अधस्तन शीर्ष विशेषद्रव्य में से एक विशेष का द्रव्य, मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड का द्रव्य, उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से जितनी नवीन और पूर्वकृष्टियाँ व्यतीत हुई उतने प्रमाण से हीन सर्व कृष्टिप्रमाण मात्र विशेषों का द्रव्य देता है। यहाँ पूर्व जघन्यकृष्टि में दिये द्रव्य से एक अधस्तनशीर्ष विशेष का द्रव्य अधिक हुआ और एक उभयद्रव्य विशेष द्रव्य हीन हुआ

इसलिए उभयद्रव्य विशेष में से अधस्तनशीर्ष विशेष घटाने पर जो द्रव्य शेष रहता है उतना पूर्व प्रथम कृष्टि से द्वितीय कृष्टि में कम मिला। वह द्रव्य पूर्व प्रथमकृष्टि में दिये द्रव्य का अनन्तवाँ भागमात्र है इसलिए पूर्व प्रथमकृष्टि में दिये द्रव्य से द्वितीयकृष्टि में दिया द्रव्य अनन्तवाँ भागमात्र हीन है ऐसा कहा जाता है।

पुन: पूर्व कृष्टि की तृतीयादि से अंततक की कृष्टियों में मध्यमखंड द्रव्य में से एक- एक खंड का द्रव्य, अधस्तनशीर्ष विशेष द्रव्य में से एक-एक विशेष का द्रव्य बढ़ते क्रम से और उभयद्रव्य-विशेष द्रव्य में से एक-एक विशेष का द्रव्य घटते क्रम से देता है। इसलिए अनन्तवाँ भागमात्र द्रव्य कम दिया है ऐसा कहते हैं। इसप्रकार लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि संबंधी चार प्रकार का द्रव्य देने का विधान कहा गया है।

लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की अंतिमकृष्टि के ऊपर लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि के नीचे नवीनकृष्टियों की जघन्यकृष्टि है। उसमें लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि संबंधी चार प्रकार के द्रव्य में से अधस्तनशीर्ष विशेष द्रव्य नहीं देता है। अधस्तनकृष्टि द्रव्य में से एक कृष्टि का द्रव्य, मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड का द्रव्य और उभय द्रव्यविशेष द्रव्य में से अतीत प्रथम संग्रहकृष्टि की नवीन और पूर्वकृष्टि प्रमाण से हीन सर्वकृष्टि प्रमाणमात्र विशेषों का द्रव्य मिलता है। यहाँ प्रथम संग्रहकृष्टि की पूर्व अंतिम कृष्टि में दिये गए द्रव्य की अपेक्षा एक अधस्तनशीर्ष विशेष का द्रव्य और एक उभय द्रव्य विशेष का द्रव्य हीन मिला और एक अधस्तन कृष्टि का द्रव्य अधिक मिला इसलिए एक अधस्तनकृष्टि के द्रव्य में से एक अधस्तनशीर्ष विशेष और एक उभयद्रव्यविशेष कम करने पर जो शेष रहता है वह प्रथम संग्रहकृष्टि की पूर्व अंतिमकृष्टि में दिये गए द्रव्य का असंख्यांतवा भागमात्र है इसलिए पूर्व अंतिम कृष्टि में दिये गये द्रव्य से नवीन द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथमकृष्टि में असंख्यातवाँ भागमात्र अधिक दिया है ऐसा कहते हैं। इसप्रकार यहाँ दीयमान द्रव्य की अपेक्षा से गोपुच्छ का अभाव हुआ। इसीप्रकार आगे भी पूर्वकृष्टि की अंतिमकृष्टि में दिये गए द्रव्य से नवीन कृष्टि की प्रथम कृष्टि में दिया द्रव्य असंख्यातवाँ भागमात्र बढ़ता है। वहाँ ऐसी ही युक्ति जानना चाहिए।

इसके ऊपर नवीनकृष्टि की द्वितीय कृष्टि से अंत कृष्टि तक की कृष्टियों में एक-एक उभयद्रव्यविशेष मात्र हीन द्रव्य देता है। वहाँ क्रम से अनन्तवाँ भाग हीन द्रव्य देता है। यहाँ अधस्तनकृष्टि द्रव्य समाप्त हुआ।

द्वितीय संग्रहकृष्टि की नवीन अंतकृष्टि के ऊपर पूर्व जघन्य कृष्टि है। उसमें अधस्तनशीर्ष द्रव्य में से नीचे व्यतीत हुई प्रथम संग्रहकृष्टिसंबंधी पूर्वकृष्टि प्रमाणमात्र विशेषों का द्रव्य, मध्यमखंड द्रव्य में से एकखंड का द्रव्य और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से अतीत पूर्व और अपूर्वकृष्टियों के प्रमाण से हीन सर्वकृष्टि प्रमाणमात्र विशेषों का द्रव्य देता है। एक अधस्तन कृष्टि द्रव्य में से यहाँ जितना अधस्तनशीर्ष विशेष का द्रव्य दिया वह कम करने पर द्वितीय संग्रहकृष्टि की जघन्यकृष्टि के समान होता है। उभयद्रव्यविशेष द्रव्य का विशेष मिलाने पर जो द्रव्य होता है वह नवीन अंतकृष्टि मे दिये गए द्रव्य का असंख्यातवाँ भागमात्र है। इसलिए नवीन अंतकृष्टि में दिये गए द्रव्य की अपेक्षा यहाँ पूर्व जघन्यकृष्टि में दिया गया द्रव्य

असंख्यातवाँ भागमात्र हीन है ऐसा कहते हैं।

उसके ऊपर द्वितीय कृष्टि से लेकर अंतकृष्टि तक क्रम से एक-एक अधस्तनशीर्ष विशेष बढ़ते क्रम से और एक-एक उभयद्रव्य विशेष घटते क्रम से देता है। वहाँ अनन्तवाँ भागमात्र घटता क्रम जानना चाहिए। इसप्रकार लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि का चार प्रकार से द्रव्य देने का विधान कहा गया हैं।

इसके ऊपर लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अपूर्व और पूर्वकृष्टियों में द्रव्य देने का विधान द्वितीय संग्रहकृष्टि के समान जानना चाहिए। विशेष यह है कि पूर्वकृष्टियों में अधस्तनशीर्ष विशेष के द्रव्य में से जितनी नीचे पूर्वकृष्टियाँ व्यतीत हुई उतने प्रमाणमात्र विशेषों का द्रव्य देना चाहिए। वैसे ही अपूर्व और पूर्व कृष्टियों में उभयद्रव्य विशेष द्रव्य में से जितनी नीचे अपूर्व और पूर्वकृष्टियाँ व्यतीत हुई उनके प्रमाण से हीन सर्वकृष्टि प्रमाणमात्र विशेषों का द्रव्य देना चाहिए। यहाँ लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि का चार प्रकार का द्रव्य समाप्त हुआ।

लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की पूर्वकृष्टि के ऊपर माया की प्रथम संग्रहकृष्टि की अपूर्व जघन्य कृष्टि है। उसमें माया की प्रथम संग्रहकृष्टि के चार प्रकार के द्रव्य में से अधस्तनशीर्ष विशेष का द्रव्य छोड़कर एक अधस्तन कृष्टि का द्रव्य, एक मध्यमखंड का द्रव्य और लोभ की सर्व अपूर्व और पूर्वकृष्टि प्रमाण से कम सर्व कृष्टिप्रमाणमात्र उभयद्रव्यविशेष का द्रव्य देता है। एक अधस्तन कृष्टिद्रव्य में से लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंतकृष्टि में दिये गए अधस्तनशीर्ष विशेषों का द्रव्य कम करने पर लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंतकृष्टि में जो प्रथम समय में द्रव्य दिया था उतना शेष रहता है। उसमें से एक उभयद्रव्य विशेष का प्रमाण कम करने पर शेष रहा द्रव्य लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंतकृष्टि के द्रव्य का असंख्यातवाँ भागमात्र है। इसलिए लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंतकृष्टि में दिये गए द्रव्य की अपेक्षा मायाकषाय की जघन्य अपूर्व कृष्टि में दिया द्रव्य असंख्यातवाँ भाग मात्र अधिक जानना चाहिए।

उसके ऊपर द्वितीयादि नवीन कृष्टियों में एक-एक उभयद्रव्य विशेष का प्रमाण घटते क्रम से देता हैं। उसके ऊपर माया की प्रथम संग्रहकृष्टि की पूर्व जघन्यकृष्टि से क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की पूर्व अंतिमकृष्टि तक पूर्वोक्त प्रकार से द्रव्य देने का विधान जानना चाहिए। वहाँ सर्व अपूर्व और पूर्व कृष्टियों में एक-एक मध्यमखंड का द्रव्य दें और नीचे जितनी पूर्व और अपूर्व कृष्टियाँ हुई उतने प्रमाण से कम सर्व कृष्टिप्रमाण उभय द्रव्यविशेषों का द्रव्य देवें। अपूर्व कृष्टियों में एक-एक अधस्तन कृष्टिद्रव्य देवें और पूर्व कृष्टियों में जितनी नीचे कुल पूर्व कृष्टियाँ व्यतीत हुई उतने प्रमाणमात्र अधस्तनशीर्ष विशेषों का द्रव्य देवें। इस प्रकार दूसरे समय में अपकर्षण किये द्रव्य में से जो कृष्टि संबंधी द्रव्य होता है उसे देने का विधान कहा है।

पुन: जो अपने-अपने पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों में देने योग्य द्रव्य होता है उसे 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यादि विधान से साधिक डेढ़गुणहानि का भाग देने पर जो लब्ध आता है उतना अपूर्वस्पर्धक की वर्गणा में देता है। उसके ऊपर प्रथम गुणहानि तक चय घटतेक्रम से देता है। द्वितीयादि गुणहानियों में चय आधा-आधा होता है। अंतिम गुणहानि तक अपने-अपने चय से हीन द्रव्य प्रत्येक वर्गणा में देता

है।

द्वितीय समय में जैसा वर्णन किया है वैसे ही कृष्टिकरणकाल की तृतीयादि समयों में भी जानना चाहिए । विशेष यह है कि प्रत्येक समय में जो अपकर्षण किए द्रव्य का प्रमाण असंख्यातगुणित बढ़ता जाता हैं और नीचे-नीचे जो नवीन कृष्टियां करता है उनका प्रमाण क्रम से असंख्यातगुणित घटता जानना चाहिए ।

२३ उष्ट्रकूट रचना कहते हैं-

वारेक्कारमणंतं पुव्वादि अपुव्वआदि सेसं तु ।
तेवीस ऊंटकूडा दिज्जे दिस्से अणंतभागूणं ।।५०६।।

द्वादशैकादशमनन्तं पूर्वादि अपूर्वादि शेषं तु ।
त्रयोविंशतिरुष्ट्रकूटा देये दृश्येऽनन्तभागोनम् ।।५०६।।

अन्वयार्थ - (पुव्वादि) पूर्व कृष्टियों की आदि कृष्टि **(वार)** बारह **(अपुव्वआदि)** अपूर्वकृष्टियों की आदिकृष्टि **(एक्कारं)** ग्यारह **(तु)** और **(सेसं)** शेष कृष्टियाँ **(अणंतं)** अनन्त हैं। इसप्रकार **(दिज्जे)** देय द्रव्य में **(तेवीस ऊंटकूडा)** २३ स्थानों में उष्ट्रकूट रचना होती है। **(दिस्से)** दृश्यमान द्रव्य में **(अणंतभागूणं)** लोभ की प्रथम कृष्टि से लेकर क्रोध की अंतिम कृष्टि तक अनन्तवाँ भाग हीनक्रम है ।

विशेषार्थ - पूर्व गाथा में कहे गये क्रम से द्वितीय समय में दीयमान द्रव्य बारह कृष्टिस्थानों में असंख्यातवें भाग से हीन हैं क्योंकि बारह पूर्व संग्रहकृष्टियों के नीचे अपूर्वकृष्टियों की रचना हुई है इसलिए बारह अपूर्वकृष्टियों की चरमकृष्टि से बारह पूर्व संग्रहकृष्टियों की जघन्य कृष्टियों में असंख्यातवें भाग से हीन द्रव्य दिया जाता है। किन्तु असंख्यातवें भाग से अधिक द्रव्य ग्यारह कृष्टिस्थानों में ही दिया जाता है क्योंकि लोभ की प्रथम पूर्व संग्रहकृष्टियों के नीचे जो अपूर्व कृष्टियों की रचना हुई है उन अपूर्वकृष्टियों की जघन्यकृष्टि स्थान के नीचे पूर्व संग्रह कृष्टियों का अभाव होने से वहाँ कृष्टि संबंधी संधिस्थान नहीं है इसलिए पूर्वसंग्रहकृष्टियों की अंतिम कृष्टि और अपूर्वकृष्टियों की जघन्य कृष्टिसंबंधी संधिस्थान ग्यारह ही है। शेष कृष्टिस्थानों में दीयमान द्रव्य अनन्तवें भाग से हीन है। इस प्रकार दीयमान द्रव्य की २३ स्थानोंपर उष्ट्रकूट रचना होती है ।

जिस प्रकार ऊंट की पीठ पीछे के भाग में पहले ऊँचा होती है, बीच में नीची होती है पुन: आगे ऊँचा-नीचा होती है।उसीप्रकार यहाँ द्रव्य भी प्रथम कृष्टि में अधिक होकर पश्चात् हीन होता जाता है। पुन: संधिस्थानों में असंख्यातवाँ भाग हीन और असंख्यातवाँ भाग अधिक होता जाता है

कृष्टिसंख्या			अधस्तन शीर्ष अधस्तन कृष्टिद्रव्य	मध्यमखंड	उभयद्रव्य विशेष	कुल देयद्रव्य	नीचे की कृष्टि से कितना अधिक और कम मिला
क्रोध	पूर्व	७२	४×४७ =१८८	६२४	१×१४ =१४	८२६	१४-४ =१० कम
	पूर्व	७१	४×४६ =१८४	६२४	२×१४ =२८	८३६	१४-४ =१० कम
	पूर्व	७०	४×४५ =१८०	६२४	३×१४ =४२	८४६	१४-४ =१० कम
तृ	पूर्व	६९	४×४४ =१७६	६२४	४×१४ =५६	८५६	(३८४-१७६)+१४ = २२२ कम
ती	अपूर्व	६८	३८४	६२४	५×१४ =७०	१०७८	१४ कम
य	अपूर्व	६७	३८४	६२४	६×१४ =८४	१०९२	३८४-(१७२+१४)=१९८ अधिक
क्रोध	पूर्व	६६	४×४३ =१७२	६२४	७×१४ =९८	८९४	१४-४ =१० कम
	पूर्व	६५	४×४२ =१६८	६२४	८×१४ =११२	९०४	१४-४ =१० कम
	पूर्व	६४	४×४१ =१६४	६२४	९×१४ =१२६	९१४	१४-४ =१० कम
द्वि	पूर्व	६३	४×४० =१६०	६२४	१०×१४ =१४०	९२४	(३८४-१६०)+१४ = २३८ कम
ती	अपूर्व	६२	३८४	६२४	११×१४ =१५४	११६२	१४ कम
य	अपूर्व	६१	३८४	६२४	१२×१४ =१६८	११७६	३८४-(१५६+१४)=२१४ अधिक
क्रोध	पूर्व	६०	४×३९ =१५६	६२४	१३×१४ =१८२	९६२	१४-४ =१० कम
	पूर्व	५९	४×३८ =१५२	६२४	१४×१४ =१९६	९७२	१४-४ =१० कम
	पूर्व	५८	४×३७ =१४८	६२४	१५×१४ =२१०	९८२	१४-४ =१० कम
प्र	पूर्व	५७	४×३६ =१४४	६२४	१६×१४ =२२४	९९२	(३८४-१४४)+१४ = २५४ कम
थ	अपूर्व	५६	३८४	६२४	१७×१४ =२३८	१२४६	१४ कम
म	अपूर्व	५५	३८४	६२४	१८×१४ =२५२	१२६०	३८४-(१४०+१४)=२३० अधिक
मान	पूर्व	५४	४×३५ =१४०	६२४	१९×१४ =२६६	१०३०	१४-४ =१० कम
	पूर्व	५३	४×३४ =१३६	६२४	२०×१४ =२८०	१०४०	१४-४ =१० कम
	पूर्व	५२	४×३३ =१३२	६२४	२१×१४ =२९४	१०५०	१४-४ =१० कम
तृ	पूर्व	५१	४×३२ =१२८	६२४	२२×१४ =३०८	१०६०	(३८४-१२८)+१४ = २७० कम
ती	अपूर्व	५०	३८४	६२४	२३×१४ =३२२	१३३०	१४ कम
य	अपूर्व	४९	३८४	६२४	२४×१४ =३३६	१३४४	३८४-(१२४+१४)=२४६ अधिक
मान	पूर्व	४८	४×३१ =१२४	६२४	२५×१४ =३५०	१०९८	१४-४ =१० कम
	पूर्व	४७	४×३० =१२०	६२४	२६×१४ =३६४	११०८	१४-४ =१० कम
	पूर्व	४६	४×२९ =११६	६२४	२७×१४ =३७८	१११८	१४-४ =१० कम
द्वि	पूर्व	४५	४×२८ =११२	६२४	२८×१४ =३९२	११२८	(३८४-११२)+१४ = २८६ कम
ती	अपूर्व	४४	३८४	६२४	२९×१४ =४०६	१४१४	१४ कम
य	अपूर्व	४३	३८४	६२४	३०×१४ =४२०	१४२८	३८४-(१०८+१४)=२६२ अधिक
मान	पूर्व	४२	४×२७ =१०८	६२४	३१×१४ =४३४	११६६	१४-४ =१० कम
	पूर्व	४१	४×२६ =१०४	६२४	३२×१४ =४४८	११७६	१४-४ =१० कम
	पूर्व	४०	४×२५ =१००	६२४	३३×१४ =४६२	११८६	१४-४ =१० कम
प्र	पूर्व	३९	४×२४ =९६	६२४	३४×१४ =४७६	११९६	(३८४-९६)+१४ = ३०२ कम
थ	अपूर्व	३८	३८४	६२४	३५×१४ =४९०	१४९८	१४ कम
म	अपूर्व	३७	३८४	६२४	३६×१४ =५०४	१५१२	३८४-(९२+१४)=२७८ अधिक

कृष्टिसंख्या			अधस्तन शीर्ष अधस्तन कृष्टिद्रव्य	मध्यमखंड	उभयद्रव्य विशेष	कुल देयद्रव्य	नीचे की कृष्टि से कितना अधिक और कम मिला
माया	पूर्व	३६	४×२३=९२	६२४	३७×१४=५१८	१२३४	१४-४ =१० कम
	पूर्व	३५	४×२२=८८	६२४	३८×१४=५३२	१२४४	१४-४ =१० कम
	पूर्व	३४	४×२१=८४	६२४	३९×१४=५४६	१२५४	१४-४ =१० कम
तृ	पूर्व	३३	४×२०=८०	६२४	४०×१४=५६०	१२६४	(३८४-८०)+१४ = ३१८ कम
ती	अपूर्व	३२	३८४	६२४	४१×१४=५७४	१५८२	१४ कम
य	अपूर्व	३१	३८४	६२४	४२×१४=५८८	१५९६	३८४-(७६+१४)=२९४ अधिक
माया	पूर्व	३०	४×१९=७६	६२४	४३×१४=६०२	१३०२	१४-४ =१० कम
	पूर्व	२९	४×१८=७२	६२४	४४×१४=६१६	१३१२	१४-४ =१० कम
	पूर्व	२८	४×१७=६८	६२४	४५×१४=६३०	१३२२	१४-४ =१० कम
द्वि	पूर्व	२७	४×१६=६४	६२४	४६×१४=६४४	१३३२	(३८४-६४)+१४ = ३३४ कम
ती	अपूर्व	२६	३८४	६२४	४७×१४=६५८	१६६६	१४ कम
य	अपूर्व	२५	३८४	६२४	४८×१४=६७२	१६८०	३८४-(६०+१४)=३१० अधिक
माया	पूर्व	२४	४×१५=६०	६२४	४९×१४=६८६	१३७०	१४-४ =१० कम
	पूर्व	२३	४×१४=५६	६२४	५०×१४=७००	१३८०	१४-४ =१० कम
	पूर्व	२२	४×१३=५२	६२४	५१×१४=७१४	१३९०	१४-४ =१० कम
प्र	पूर्व	२१	४×१२=४८	६२४	५२×१४=७२८	१४००	(३८४-४८)+१४ = ३५० कम
थ	अपूर्व	२०	३८४	६२४	५३×१४=७४२	१७५०	१४ कम
म	अपूर्व	१९	३८४	६२४	५४×१४=७५६	१७६४	३८४-(४४+१४)=३२६ अधिक
लोभ	पूर्व	१८	४×११=४४	६२४	५५×१४=७७०	१४३८	१४-४ =१० कम
	पूर्व	१७	४×१०=४०	६२४	५६×१४=७८४	१४४८	१४-४ =१० कम
	पूर्व	१६	४×९=३६	६२४	५७×१४=७९८	१४५८	१४-४ =१० कम
तृ	पूर्व	१५	४×८=३२	६२४	५८×१४=८१२	१४६८	(३८४-३२)+१४ = ३६६ कम
ती	अपूर्व	१४	३८४	६२४	५९×१४=८२६	१८३४	१४ कम
य	अपूर्व	१३	३८४	६२४	६०×१४=८४०	१८४८	३८४-(२८+१४)=३४२ अधिक
लोभ	पूर्व	१२	४×७=२८	६२४	६१×१४=८५४	१५०६	१४-४ =१० कम
	पूर्व	११	४×६=२४	६२४	६२×१४=८६८	१५१६	१४-४ =१० कम
	पूर्व	१०	४×५=२०	६२४	६३×१४=८८२	१५२६	१४-४ =१० कम
द्वि	पूर्व	९	४×४=१६	६२४	६४×१४=८९६	१५३६	(३८४-१६)+१४ = ३८२ कम
ती	अपूर्व	८	३८४	६२४	६५×१४=९१०	१९१८	१४ कम
य	अपूर्व	७	३८४	६२४	६६×१४=९२४	१९३२	३८४-(१२+१४)=३५८ अधिक
लोभ	पूर्व	६	४×३=१२	६२४	६७×१४=९३८	१५७४	उभय द्र.वि १४–अध शीर्ष ४ =१०कम
	पूर्व	५	४×२=८	६२४	६८×१४=९५२	१५८४	उभय द्र.वि १४–अध शीर्ष ४ =१०कम
	पूर्व	४	४×१=४	६२४	६९×१४=९६६	१५९४	उभय द्र.वि १४–अध शीर्ष ४ =१०कम
प्र	पूर्व	३		६२४	७०×१४=९८०	१६०४	अध.कृ.३८४+उभय द्र.वि १४ = ३९८कम
थ	अपूर्व	२	३८४	६२४	७१×१४=९९४	२००२	उभयद्रव्यविशेष १४कम
म	अपूर्व	१	३८४	६२४	७२×१४=१००८	२०१६	

इसलिए यहाँ द्रव्यश्रेणी की रचना को उष्ट्रकूट रचना कही जाती है।

द्वितीय समय में दृश्यमान द्रव्य की अपेक्षा से गोपुच्छाकार ही रचना है क्योंकि लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की नवीन जघन्य कृष्टि में सब से अधिक द्रव्य है। उसके पश्चात् द्वितीय कृष्टि से क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंतिमकृष्टि तक अनन्तवें भाग से घटता क्रम है। नवीन अपूर्वकृष्टियों में तो दीयमान द्रव्य ही दृश्यमान द्रव्य है। पूर्वकृष्टियों में पूर्वसमय में दिया द्रव्य और विवक्षित समय में दिया द्रव्य मिलकर दृश्यमान होता है। अपूर्वकृष्टियों में तो अधस्तन कृष्टिद्रव्य और पूर्व कृष्टियों में अधस्तनशीर्षद्रव्य देने पर सर्व कृष्टियाँ पूर्व प्रथम कृष्टि के समान होती हैं। वहाँ एक-एक मध्यमखंड देने पर सर्व कृष्टियों का प्रमाण समान ही रहता है। उभयद्रव्यविशेष क्रम से एक-एक हीन दिया जाता है। इस विशेष का प्रमाण विवक्षित कृष्टि से नीचे की कृष्टि के द्रव्य का अनन्तवाँ भाग है इसलिए दृश्यमान द्रव्य की अपेक्षा से सर्वत्र अनन्तवाँ भाग घटता क्रम कहा गया है।

पुन: अंतिम कृष्टि के दीयमान द्रव्य से अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में दिया द्रव्य अनंतगुणित हीन है क्योंकि स्पर्धकों में दीयमान एकभागप्रमाण द्रव्य में डेढ़गुणहानि का भाग देने पर उसका प्रमाण आता है।

जिसप्रकार द्वितीय समय में कृष्टियों में दीयमान द्रव्य की प्ररूपणा की उसी प्रकार सर्वकृष्टिकरण काल में दीयमान द्रव्य की २३ उष्ट्रकूट रचना की प्ररूपणा करना चाहिए किन्तु दृश्यमान द्रव्य की अपेक्षा से सर्वकाल में अनन्तवाँ भाग घटताक्रम ही (गोपुच्छाकाररचना) जानना चाहिए ।

प्रथम समय में कृष्टियों में दिया द्रव्य सबसे अल्प है। उसकी अपेक्षा द्वितीय समय में कृष्टियों में दिया द्रव्य असंख्यातगुणित है। उसकी अपेक्षा तृतीय समय में कृष्टियों में दिया द्रव्य असंख्यातगुणित है। ऐसा कृष्टिकरण के अंतिम समय तक जानना चाहिए। विशुद्धि में प्रत्येक समय में अनन्तगुणित वृद्धि होने से सर्व कृष्टिकरणकाल में उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे-असंख्यातगुणे द्रव्य का अपकर्षण करके कृष्टियों में दिया जाता है।[१]

कृष्टिकरणकाल के अंतिम समय में स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व का प्रमाण तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं-

किट्टीकरणद्धाए चरिमे अंतोमुहुत्तसंजुत्तो।
चत्तारि होंति मासा संजलणाणं तु ठिदिबंधो ।।५०७।।

कृष्टिकरणाद्धायाश्चरमेऽन्तर्मुहूर्तसंयुक्ता:
चत्वारो भवन्ति मासा: सञ्ज्वलनानां तु स्थितिबन्ध: ।।५०७।।

१) ज. ध. पु. १५ पृ. ३२-३६

२३ उष्ट्रकूट रचना

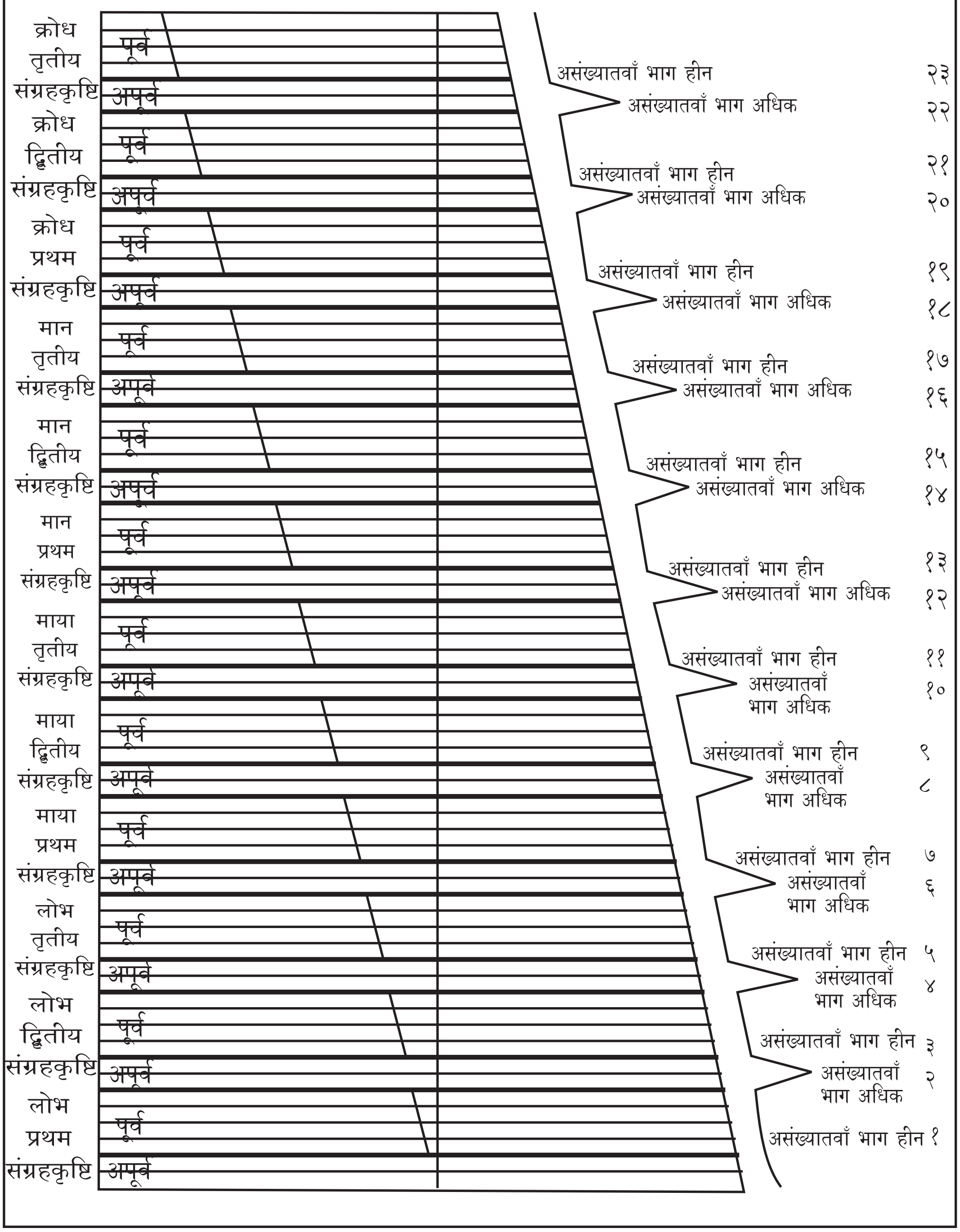

अन्वयार्थ - (किट्टीकरणद्धाए) कृष्टिकरणकाल के **(चरिमे)** अंतिम समय में **(अंतोमुहुत्त संजुत्तो)** अन्तर्मुहूर्त अधिक **(चत्तारि मासा)** चार मास **(संजलणाणं तु ठिदिबंधो)** संज्वलन कषाय का स्थितिबंध **(होंति)** होता है।

विशेषार्थ - अपूर्वस्पर्धककरणकाल के अंतिम समय में संज्वलन कषायों का स्थितिबंध आठ वर्ष प्रमाण होता था वह एक- एक स्थितिबंधापसरण में अन्तर्मुहूर्त - अन्तर्मुहूर्तमात्र हीन होते हुए अंतर्मुहूर्त प्रमाण कृष्टिकरणकाल के अंतिम समय में अंतर्मुहूर्त अधिक चार मास रहता है।

सेसाणं वस्साणं, संखेज्जसहस्सगाणि ठिदिबंधो।
मोहस्स य ठिदिसंतं, अडवस्संतोमुहुत्तहियं ।।५०८।।

शेषाणां वर्षाणां सङ्ख्येयसहस्रकानि स्थितिबन्धः।
मोहस्स च स्थितिसत्त्वमष्टवर्षोऽन्तर्मुहूर्ताधिकः ।।५०८।।

अन्वयार्थ - (सेसाणं ठिदिबंधो) मोहनीय छोड़कर शेष कर्मों का स्थितिबंध **(वस्साणं संखेज्जसहस्सगाणि)** संख्यात हजार वर्षप्रमाण होता है **(य)** और **(मोहस्स ठिदिसंतं)** मोहनीय का स्थितिसत्त्व **(अडवस्संतोमुहुत्तहियं)** अंतर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष प्रमाण रहता है।

विशेषार्थ - शेष कर्मों का स्थितिबंध पूर्व में भी संख्यातहजारवर्ष प्रमाण होता था। अब संख्यात बहुभागप्रमाण आयामयुक्त संख्यातहजार स्थितिबंधापसरण होकर भी संख्यातहजार वर्षप्रमाण ही होता है। किन्तु पूर्व की अपेक्षा संख्यात गुणा हीन है। मोहनीय कर्म का स्थितिसत्त्व संख्यातहजार वर्षमात्र था। वह संख्यातहजार स्थितिकांडकों द्वारा नष्ट होकर अब अंतर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षप्रमाण ही रहा।

घादितियाणं संखं वस्ससहस्साणि होदि ठिदिसंतं।
वस्साणमसंखेज्जसहस्साणि अघादितिण्णं तु[1] ।।५०९।।

घातित्रयाणां सङ्ख्यं वर्षसहस्राणि भवति स्थितिसत्त्वम्
वर्षाणामसङ्ख्येयसहस्राण्यघातित्रयाणां तु ।।५०९।।

अन्वयार्थ - (घादितियाणं ठिदिसंतं) तीन घातिकर्मों का स्थितिसत्त्व **(संखंवस्स सहस्साणि)** संख्यात हजार वर्ष **(होदि)** है **(अघादितिण्णं तु)** परन्तु तीन अघातिकर्मों का स्थितिसत्त्व

१ क. पा. सुत्त पु. ८०३-८०४ सू. ६७३ - ६७७/ ज. ध. पु. १५ पृ. ३६-३७

(वस्साणमसंखेज्जसहस्साणि) असंख्यात हजार वर्ष है।

विशेषार्थ - पूर्व में तीन घातिकर्मों का संख्यात हजार वर्ष प्रमाण ही स्थितिसत्त्व था। संख्यात हजार स्थितिकांडकों द्वारा संख्यातगुणा हीन होकर भी संख्यातहजार वर्षप्रमाण ही स्थितिसत्त्व रहता है। जिस प्रकार मोहनीयकर्म का स्थितिसत्त्व का विशेषघात होता है वैसे विशेषघात तीन घातिकर्मों का नहीं होता है। अघातिकर्मों का स्थितिसत्त्व पूर्व में असंख्यात हजार वर्षप्रमाण था वह अब संख्यात हजार स्थितिकांडकों द्वारा कम होकर असंख्यातगुणा हीन असंख्यात वर्षप्रमाण ही रहता है।

अनुभाग की अपेक्षा से कृष्टि व स्पर्धक का लक्षण कहते हैं-

पडिपदमणंतगुणिदा किट्टीयो फड्ढया विसेसहिया।
किट्टीण फड्ढयाणं लक्खणमणुभागमासेज्ज ।।५१०।।

प्रतिपदमनन्तगुणिता कृष्टयः स्पर्धका विशेषाधिकाः ।
कृष्टीनां स्पर्धकानां लक्षणमनुभागमासाद्य ।। ५१० ।।

अन्वयार्थ - (किट्टीयो) सर्वकृष्टियाँ **(पडिपदमणंतगुणिदा)** प्रत्येक पद में अनन्तगुणित हैं और **(फड्ढया)** स्पर्धक प्रत्येक पद में **(विसेसहिया)** विशेष अधिक हैं। इसप्रकार **(अणुभागमासेज्ज)** अनुभाग का आश्रय करके **(किट्टीण)** कृष्टियों और **(फड्ढयाणं)** स्पर्धकों का **(लक्खणं)** लक्षण कहा गया है।

विशेषार्थ - प्रथमकृष्टि के अनुभाग की अपेक्षा दूसरी कृष्टि का अनुभाग (अविभागप्रतिच्छेद) अनन्तगुणा है। उससे तृतीय कृष्टि का अनुभाग अनन्तगुणा है। इसप्रकार चरमकृष्टि तक क्रम से अनन्तगुणा अनुभाग प्राप्त होता है। इसलिए उसकी कृष्टि यह संज्ञा है किन्तु स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा से द्वितीय वर्गणा में, द्वितीय वर्गणा से तृतीय वर्गणा में इसप्रकार अनन्त वर्गणाओं में क्रम से विशेष अधिक अनुभाग होता है। एक वर्ग की अपेक्षा से प्रथम वर्गणा की अपेक्षा द्वितीय वर्गणा में एक ही अविभाग-प्रतिच्छेद अधिक होता है। जहाँ प्रत्येक वर्गणा में अनुभाग अनंतगुणित होता जाता है उसे कृष्टि कहते हैं। इसप्रकार अनुभाग की अपेक्षा से कृष्टि और स्पर्धकों का लक्षण कहा है। द्रव्य की अपेक्षा से दोनों में चय घटता क्रम ही है।

कृष्टिकारक कृष्टियों का वेदक नहीं, इसका और कृष्टिकरणकाल की समाप्ति का निर्देश करते हैं-

पुव्वापुव्वफड्ढयमणुहवदि हु किट्टिकारओ णियमा ।
तस्सद्धा णिट्ठायदि पढमट्ठिदि आवली सेसे[1] ।।५११।।

१ क. पा. सुत्त पु. ८०४ सू. ६७८/ ज. ध. पु. १५ पृ. ३७

पूर्वापूर्वस्पर्धकमनुभवति हि कृष्टिकारको नियमात् ।
तस्याद्धा निष्ठापयति प्रथमस्थितावावलिशेषे ।।५११ ।।

अन्वयार्थ - (किट्टिकारओ हु) कृष्टिकारक **(णियमा)** नियम से **(पुव्वापुव्वफड्डयमणुहवदि)** पूर्व और अपूर्व स्पर्धकों का अनुभव करता है।**(पढमट्ठिदि आवलि सेसे)** प्रथम स्थितिमें एक आवली शेष रहने पर **(तस्सद्धा)** कृष्टिकरण का काल **(णिट्ठायदि)** समाप्त करता है।

विशेषार्थ - जिसप्रकार अपूर्वस्पर्धकों की रचना करते समय पूर्व-स्पर्धकों के साथ अपूर्वस्पर्धकों का भी अनुभव करता है अर्थात् अपूर्वस्पर्धकों का उदय होता है, उसी प्रकार कृष्टिकारक कृष्टियों की रचना करते समय कृष्टियों का अनुभव नहीं करता । पूर्वापूर्व स्पर्धकों का ही उसे उदय होता है। इसप्रकार संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति में उच्छिष्टावलिप्रमाण काल शेष रहने पर कृष्टिकरणकाल समाप्त होता है।

इति कृष्टिकरणाधिकारः समाप्तः

कृष्टिवेदन काल के प्रथम समय में होने वाला स्थितिबन्ध और स्थितिसत्व का निर्देश करते हैं-

से काले किट्टीओ अणुहवदि हु चारिमासमडवस्सं ।
बंधो संतं मोहे, पुव्वालावं तु सेसाणं[1] ।।५१२ ।।

तस्मिन् काले कृष्टीननुभवति हि चतुर्मासमष्टवर्षम् ।
बन्धः सत्त्वं मोहे पूर्वालापस्तु शेषाणाम् ।।५१२ ।।

अन्वयार्थ - (से काले) अनन्तर काल में अर्थात् कृष्टिवेदन काल में **(किट्टिओ)** कृष्टियों का **(अणुहवदि)** अनुभव करता है। उस समय में **(मोहे बंधो चारिमासं)** मोह का स्थितिबंध चार मास और **(संतं)** उसका स्थितिसत्त्व **(अडवस्सं)** आठ वर्ष है। **(तु)** और **(सेसाणं)** शेष कर्मों का स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्व **(पुव्वालावं)** पूर्व में कहे गये आलाप के समान है।

विशेषार्थ - कृष्टिकरणकाल की समाप्ति के अनन्तर समय में कृष्टिवेदक कृष्टियों के उदय का अनुभव करता है । द्वितीय स्थिति के निषकों में स्थित कृष्टियों का अपकर्षण करके प्रथम स्थिति में उदयावलि के निषकों में देकर उसे भोगता है ।उसे भोगने का ही नाम वेदन है। उसी समय

१ क. पा. सुत्त पृ. ८०४ सूत्र ६७९ -६८५ / ज. ध. पु. १५ पृ. ३९-४०

उच्छिष्टावलि के स्पर्धकरूप निषेक एक-एक समय में स्तिबुक संक्रमण द्वारा कृष्टिरूप होकर उदय में आते हैं। उस काल के प्रथम समय में चार संज्वलनरूप मोह का स्थितिबंध चार मास होता है और स्थितिसत्त्व आठ वर्षमात्र रहता है। इसके पूर्व में बंध और सत्त्व अंतर्मुहूर्त अधिक था वह एक कांडकद्वारा और स्थितिबंधापसरण द्वारा कम होकर पूर्ण चार मास और आठ वर्ष रहा। शेष कर्मों का स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व यद्यपि हीन हुआ फिर भी आलाप की अपेक्षा से पूर्वोक्त ही जानना चाहिए।

उच्छिष्टावलि और नवकबन्ध के अनुभाग का निर्देश करते हैं -

ताहे कोहुच्छिट्ठं सव्वं घादी हु देसघादी हु ।
दोसमऊणदुआवलिणवकं ते फड्ढयगदाओ[1] ।।५१३।।

तत्र क्रोधोच्छिष्टं सर्वं घाति हि देशघाति हि।
द्विसमयोनद्व्यावलिनवकं तत् स्पर्धकगतम् ।।५१३।।

अन्वयार्थ - (ताहे) वहाँ **(कोहुच्छिट्ठं)** संज्वलन क्रोध की उच्छिष्टावलि के निषेक **(सव्वं घादि)** सर्वघातिरूप हैं और संज्वलन चतुष्क के **(दो समऊणदुआवलिणवकं)** दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवकसमयप्रबद्ध हैं वे **(देसघादी हु)** देशघाति हैं और **(ते)** वे समयप्रबद्ध **(फड्ढयगदाओ)** स्पर्धकस्वरूप हैं।

विशेषार्थ - घातिकर्मों में लता, दारु, अस्थि, शैलरूप चार प्रकार का अनुभाग होता है। उसमें से लता के सर्व स्पर्धक और दारु के अनन्तवें भागरूप स्पर्धक देशघातिरूप हैं और शेष दारु के अनन्त बहुभाग, अस्थि और शैलरूप स्पर्धक सर्वघातिरूप हैं। यहाँ क्रोध के जो उच्छिष्टावलि प्रमाण निषेक शेष रहे हैं उनका अनुभागसत्त्व सर्वघातिरूप है अर्थात् लता व दारुरूप है क्योंकि उदयावलि के अन्दर जो अनुभाग सत्कर्म शेष रहा है वह पूर्व का होने से सर्वघाति है ऐसा जानना चाहिए। यहाँ दारु के बहुभाग की अपेक्षा से सर्वघातिपना है। शैल और अस्थिरूप स्पर्धक की अपेक्षा से सर्वघातिपना नहीं है। उच्छिष्टावलिप्रमाण क्रोध के निषेक उदयावलि को प्राप्त हुए वे कृष्टिरूप परिणमित होकर उदययोग्य निषेकों के साथ उदयरूप होकर निर्जरा को प्राप्त होते हैं। कृष्टिकरणकाल में संज्वलन चतुष्क के द्वितीय स्थिति के सर्व निषेक कृष्टिरूप परिणमित हुए हैं। केवल दो समय कम दो आवलिमात्र काल में बाँधे हुए नवक समयप्रबद्ध अभी भी कृष्टिरूप परिणमित नहीं हुए है। वे दो समय कम दो आवलिकाल में ही कृष्टिरूप होकर नष्ट होंगे। उनमें देशघातिरूप ही अनुभाग है क्योंकि अन्तरकरण के अनन्तर समय से मोहनीय का एकस्थानीय अनुभाबंध शुरू हुआ है। यहाँ शेष रहे नवकसमयप्रबद्ध और क्रोधकषाय की

१ क. पा. सुत्र पृ. ८०४ सूत्र ६८६ -६८७ / ज. ध. पु. १५ पृ. ४०

उच्छिष्टवलिप्रमाण निषेकों का स्वरूप इस प्रकार जानना चाहिए । शेष सर्व निषेक कृष्टिकरण काल के अंतिम समय में कृष्टिरूप परिणमते हैं।

अब कृष्टिकारक और वेदक का क्रम, तथा प्रथम संग्रह कृष्टि का प्रथम वेदन करता है इसका निर्देश करते हैं -

लोहादो कोहादो कारउ वेदउ हवे किट्टी ।
आदिमसंगहकिट्टिं वेदयदि ण विदीय तिदियं च ।।५१४।।

लोभात् क्रोधात् कारको वेदको भवेत्कृष्टेः ।
आदिमसंग्रहकृष्टिं वेदयति न द्वितीयां तृतीयां च ।।५१४।।

अन्वयार्थ - (कारउ) कृष्टिकारक की **(किट्टी)** कृष्टियों का क्रम **(लोहादो)** लोभ से है और **(वेदउ)** कृष्टिवेदक की **(किट्टी)** कृष्टियों का क्रम **(कोहादो)** क्रोध से **(हवे)** है। यहाँ प्रथम क्रोध की **(आदिमसंगहकिट्टीं)** प्रथम संग्रहकृष्टि का **(वेदयदि)** वेदन करता है **(विदीय तिदियं च ण)** द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टियों का वेदन नहीं करता है।

विशेषार्थ - कृष्टिकरण में सर्वप्रथम लोभ की, उसके ऊपर माया की, उसके ऊपर मान की और सबसे अन्त में क्रोध की इस क्रम से कृष्टियां कही गयी थी किन्तु यहाँ कृष्टि वेदनकाल में प्रथम क्रोध की, पश्चात् क्रम से मान, माया और लोभ की कृष्टियों का वेदन होता है। कृष्टिकरणकाल में जिसे तृतीय संग्रहकृष्टि कहा था उसे कृष्टिवेदनकाल में प्रथम संग्रहकृष्टि कहते हैं और जिसे वहाँ प्रथम संग्रहकृष्टि कहा गया था। उसे यहाँ तृतीय संग्रहकृष्टि कहते हैं। कृष्टिवेदन का यह क्रम यदि स्वीकार नहीं किया तो प्रथम हीन शक्तियुक्त कृष्टियों का अनुभव होकर बाद में अधिक शक्तिवाली कृष्टियों का अनुभव होगा किन्तु ऐसा नहीं होता क्योंकि प्रत्येक समय में अनन्तगुणित घटते अनुभाग का उदय होता है इसलिए संग्रहकृष्टियों में कृष्टिकारक से कृष्टिवेदन का विपरीत क्रम जानना चाहिए किन्तु अन्तरकृष्टियों का पूर्वोक्त प्रकार से क्रम जानना चाहिए। यहाँ पहले क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का उदय आता है, द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टि का उदय नहीं आता ऐसा जानना चाहिए।

कृष्टिवदेक के प्रथम समय में होने वाले कार्य कहते हैं-

किट्टीवेदगपढमे कोहस्स य पढमसंगहादो दु ।
कोहस्स य पढमठिदी पत्तो उव्वट्टगो मोहे [१] ।।५१५।।

१ क. पा. सुत्र पृ. ८०४ सू. ६८९/ ज. ध. पु. १५ पृ. ४१

कृष्टिवेदकप्रथमे क्रोधस्य च प्रथमसंङ्ग्रहात्तु ।
क्रोधस्यच प्रथमस्थितिं प्राप्तोऽपवर्तको मोहे ।।५१५ ।।

अन्वयार्थ - (किट्टीवेदगपढमे) कृष्टिवेदक काल के प्रथम समय में **(कोहस्स य पढम संगहादो दु)** क्रोध की प्रथम संग्रह कृष्टि में से **(कोहस्स य)** क्रोध की **(पढमठिदी पत्तो)** प्रथम स्थिति प्राप्त करता है और **(मोहे)** मोहनीय कर्म का **(उव्वट्टगो)** अपवर्तना घात करता है।

विशेषार्थ - कृष्टिकरणकाल के अंतिम समय तक कृष्टियों का दृश्यमान द्रव्य चय घटते क्रम सहित गोपुच्छाकाररूप से अपने स्थान में स्थित है और स्पर्धकों का द्रव्य अपने स्थान में एक गोपुच्छाकारूप से स्थित है। वहाँ कृष्टियों के द्रव्य से स्पर्धकों का द्रव्य असंख्यातगुणा है इसलिए कृष्टियों का और स्पर्धकों का एक गोपुच्छाकार नहीं है। कृष्टिकरणकाल की समाप्ति के अनन्तर समय में सर्व ही द्रव्य कृष्टिरूप परिणमित होकर एक गोपुच्छाकार होता है।वहाँ संज्वलन के सर्वद्रव्य को [व १२ / ७] (कुछ अधिक डेढ़गुणहानि गुणित जघन्य वर्गणा प्रमाण सर्व सत्त्वद्रव्य है। उसे ७ से भाग देने पर एक मोहनीय का द्रव्य आता है) आठ का भाग देकर [व १२ / ७।८] एक- एक भागमात्र लोभ, माया, मान का और पाँच भाग मात्र क्रोध का द्रव्य जानना चाहिए। क्रोध में नोकषायों का चार भागमात्र द्रव्य प्राप्त हुआ और उसका स्वयं का एक भागमात्र ऐसा पाँच भागमात्र है।

कषाय	**लोभ**	**माया**	**मान**	**क्रोध**
द्रव्य	व १२ / ७।८	व १२⁻ / ७।८	व १२≡ / ७।८	व १२=५ / ७।८

यदि बारह संग्रहकृष्टियों में द्रव्य का विभाग किया तो संज्वलन के सर्वद्रव्य को २४ का भाग देकर उसमें से अन्य संग्रहकृष्टियों का द्रव्य एक - एक भाग प्रमाण और क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि को तेरह भागप्रमाण द्रव्य है। [व १२।१३ / २४] पूर्व में कृष्टिकरणकाल के द्वितीय समय में जैसा विधान कहा है वैसा ही यहाँ भी जानना चाहिए।

प्रथम समय में की गई कृष्टियों के प्रमाण में [४ / ख] $\left(\frac{\text{वर्गणाशलाका}}{\text{अनन्त}}\right)$ उसके असंख्यातवें भागप्रमाण द्वितीयादि समयों में की गई कृष्टियों का प्रमाण मिलाने पर सर्व पूर्वापूर्व कृष्टियों का प्रमाण [४ / ख] प्राप्त होता है। (प्रथम समय की कृष्टियों के प्रमाण में कुछ अधिक की '।' संदृष्टि की है।)

कृष्टिवेदक के प्रथम समय में क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के द्रव्य को [व १२।१३ / २४] अपकर्षण भागहार से भाग देकर प्राप्त हुए एक भाग को [व १२।१३ / २४।ओ] ग्रहण करके उसे पल्य के असंख्यातवें भाग से

भाग देकर एक भागमात्र [व १२।१३ / २४।ओ प a] द्रव्यद्वारा प्रथम स्थिति करता है।

क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि वेदक के काल से उच्छिष्टावलि मात्र अधिक प्रथम स्थिति के निषेकों का प्रमाण है। वही यहाँ गुणश्रेणी आयाम जानना चाहिए । उसका वर्तमान उदयरूप प्रथम निषेक में द्रव्य सबसे अल्प देता है। उससे द्वितीय समय से लेकर अंतिमसमय तक क्रम से असंख्यातगुणित द्रव्य देता है । इसप्रकार एक भागमात्र द्रव्य गुणश्रेणीरूप से देता है । यहाँ प्रथम स्थिति के अंतिम निषेक का नाम ही गुणश्रेणी शीर्ष है।

शेष बहुभाग मात्र द्रव्य [व १२।१३ प a ८ / २४।ओ। प a] को स्थिति की अपेक्षा से क्रोध की द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टि से अपकर्षित किए गए द्रव्य में [व १२।२ / २४।ओ] (दो कृष्टियों का द्रव्य है इसलिए एक कृष्टि के द्रव्य को २ से गुणा किया) मिलाने पर इतना द्रव्य [व १२।१५ प a ८ / २४।ओ। प a] हुआ। (तेरह गुणकार में दो गुणकार मिलाकर पंद्रह गुणकार उत्तर आया) उसे आठ वर्षमात्र द्वितीय स्थिति में अतिस्थापनावलि छोड़कर चय घटते क्रम से देना चाहिए ।

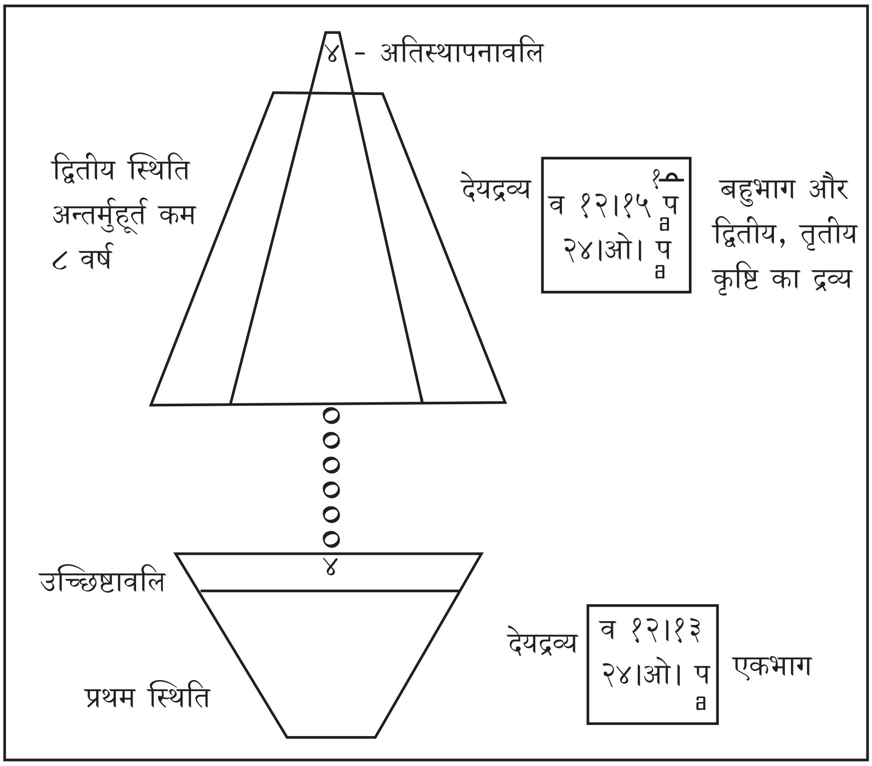

इसलिए आठ वर्ष की स्थिति की संख्यात आवलियाँ होती हैं उससे पूर्वोक्त द्रव्य में भाजित करने पर मध्यमधन प्राप्त होता है। उस मध्यमधन में एक कम गच्छ के अर्धप्रमाण चय मिलाने पर द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में दिये द्रव्य का प्रमाण आता है। प्रथम निषेक में दो गुणहानि गुणित चयप्रमाण द्रव्य होता है ऐसा कहो अथवा मध्यमधन में एक कम गच्छ के अर्धप्रमाण चय मिलाने पर जो प्रमाण आता हैं उतना द्रव्य है। इन दोनों का प्रमाण समान ही होता है। उदाहरण कुलद्रव्य १६०० गच्छ ८। सर्वधन ÷ गच्छ = मध्यमधन १६०० ÷ ८ = २०० मध्यमधन चय १६ है।
दो गुणहानि × चय = प्रथम निषेक = १६ × १६ = २५६ प्रथम निषेक
अथवा
मध्यमधन + $\left(\frac{\text{गच्छ-१}}{\text{२}} \times \text{चय}\right)$ = प्रथम निषेक २०० + $\left(\frac{\text{७}}{\text{२}} \times \text{१६}\right)$ = २००+५६ =२५६

द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में मिला हुआ द्रव्य गुणश्रेणीशीर्ष से असंख्यातगुणा है। इसका असंख्यातवाँ भाग चय का प्रमाण है। द्वितीयादि निषेकों में चय घटते क्रम से अतिस्थापनावली छोड़कर देता है। इस क्रम से प्रत्येक समय में उदयादि गलितावशेष गुणश्रेणी करता है।

यहाँ मोहनीय कर्म का अपवर्तनाघात होता है। इसके पूर्व में अश्वकर्णरूप अनुभाग का अन्तर्मुहूर्त कालद्वारा काण्डकघात होता था परन्तु अब संज्वलन की बारह कृष्टियों का प्रतिसमय अनन्तगुणित घटता अनुभाग होने से अपवर्तनाघात प्रवृत्त होता है। प्रत्येक समय में अनुभाग का अनन्तगुणा घात होना इसे ही अनुसमय अपवर्तनाघात कहते हैं।

अल्पबहुत्व दो प्रकार का है - स्वस्थान अल्पबहुत्व और परस्थान अल्पबहुत्व। प्रत्येक कषाय की अपनी संग्रहकृष्टियों में अल्पबहुत्व का विचार करना स्वस्थान अल्पबहुत्व है और विवक्षित कषाय की तृतीय संग्रहकृष्टि से द्वितीय कषाय की प्रथम संग्रहकृष्टि में अल्पबहुत्व का विचार करना परस्थान अल्पबहुत्व है।

स्वस्थान अल्पबहुत्व -

क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि में द्रव्य सबसे अल्प है क्योंकि वह मोहनीय के सर्वद्रव्य से कुछ हीन चौवीसवाँ भागप्रमाण है। उससे प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य संख्यातगुणा अर्थात् तेरहगुणा है। यहाँ 'प्रथम संग्रहकृष्टि' ऐसा कहने पर कृष्टिवेदक की अपेक्षा से प्रथम संग्रहकृष्टि का ग्रहण करना चाहिए कृष्टिकारक की अपेक्षा से नहीं।

प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य तेरह गुणा कैसे होता है यह सिद्ध करते हैं- माना कि चारित्र मोहनीय कर्म का सर्वद्रव्य ४९ है। इसमें असंख्यातवाँ भाग अधिक अर्धभाग पच्चीस कषायों संबंधी द्रव्य है और शेष अर्धभाग चौबीस नोकषायसंबंधी द्रव्य है। कषाय का द्रव्य चार संज्वलन की बारह संग्रहकृष्टियों में विभाग करने पर क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि को साधिक दो अंकप्रमाण द्रव्य प्राप्त होता है। जो मोहनीय

के सर्वद्रव्य का अर्थात् उनचास (४९) का चौबीसवाँ भागमात्र है। पुन: नोकषाय का सर्वद्रव्य क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि को प्राप्त होता है। इसलिए नोकषाय का चौवीस द्रव्य क्रोध के २ अंक प्रमाण प्रथम संग्रहकृष्टि के द्रव्य में मिलाने पर छब्बीस अंक प्रमाण हुआ। यह द्रव्य क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि के दो अंक प्रमाण द्रव्य से तेरहगुणा है (२६ ÷ २ = १३) यह सिद्ध होता है।

क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य सब से अल्प है। उससे तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य विशेष अधिक है। क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य को पल्योपम के असंख्यातवें भाग से भाग देनेपर जितनी संख्या आती है उतना विशेष का प्रमाण जानना चाहिये। इस तृतीय संग्रहकृष्टि से क्रोध की ही प्रथम संग्रह-कृष्टि का द्रव्य संख्यातगुणा अर्थात् तेरह गुणा है। पूर्व के समान ही इसका भी स्पष्टीकरण जानना चाहिए।

मानकषाय की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य सबसे अल्प है। उससे उसकी द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य विशेष अधिक है। उससे तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य विशेष अधिक है। विशेष का प्रमाण पल्योपम के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर जो एक भाग आता है उतना है। इसीप्रकार माया और लोभकषाय का भी स्वस्थान अल्पबहुत्व का विचार करना चाहिए क्योंकि इससे माया और लोभ कषाय के अल्पबहुत्व में कुछ भी विशेषता नहीं है।

परस्थान अल्पबहुत्व -

मान संज्वलन की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य सबसे अल्प है। यहाँ भी वेदक की प्रथम संग्रहकृष्टि ग्रहण करना चाहिए। इसका द्रव्य ऊपर कहे जाने वाले सर्व संग्रहकृष्टियों के द्रव्य से अल्प है। उससे उसी की ही द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य विशेष अधिक है क्योंकि तीव्रतर अनुभाग से परिणत द्रव्य की अपेक्षा मंदतर अनुभाग से परिणत द्रव्य का अधिक होना न्याय प्राप्त है। उससे उसी की ही तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य विशेष अधिक है। स्वस्थान में विशेष का प्रमाण पल्योपम के असंख्यातवें भाग से नीचे की कृष्टि के द्रव्य को भाग देने पर जितना आता है उतना है।

उससे क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य विशेष अधिक है। यहाँ विशेष का प्रमाण परस्थान विशेष होने से आवलि के असंख्यातवें भाग का प्रतिभाग स्वरूप हैं अर्थात् मान की तृतीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य को आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर जो प्रमाण आता है उतने विशेष से क्रोध की द्वितीय कृष्टि का द्रव्य अधिक है ऐसा जानना। उससे क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य विशेष अधिक है। यहाँ स्वस्थान विशेष का प्रमाण पहिले के समान जानना। उससे माया की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य विशेष अधिक है। यहाँ परस्थान विशेष का प्रमाण जानना चाहिए। उससे उसी की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य विशेष अधिक है। उससे उसी की तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य विशेष अधिक है। उससे लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य विशेष अधिक है। उससे उसी की तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य विशेष अधिक है। उससे क्रोध संज्वलन की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य संख्यातगुणा अर्थात् तेरहगुणा है।[१]

---

१ ज. ध. पु. १५ पृ. ७७-८१

इसका स्पष्टीकरण पूर्ववत् जानना चाहिए।

अब उदयरूप कृष्टि और बंधकृष्टियों का प्ररूपण करते हैं -

पढमस्स संगहस्स य, असंखभागा उदेदि कोहस्स।
बंधेवि तहा चेव य, माणतियाणं तहा बंधे ।।५१६।।

प्रथमस्य सङ्ग्रहस्य चासङ्ख्यभागानुदयति क्रोधस्स।
बन्धेऽपि तथा चैव च मानत्रयाणां तथा बन्धे।।५१६।।

अन्वयार्थ - कृष्टिवेदककाल के प्रथम समय में **(कोहस्स)** क्रोध की **(पढमस्स संगहस्स य)** प्रथम संग्रहकृष्टि की **(असंखभागा)** असंख्यात बहुभाग कृष्टियाँ **(उदेदि)** उदय को प्राप्त होती हैं और **(बंधेवि)** बन्ध में भी **(तहा चेव)** वैसा ही है अर्थात् प्रथम संग्रहकृष्टि की असंख्यात बहुभाग कृष्टियाँ बन्ध को प्राप्त होती हैं। **(माणतियाणं)** मान, माया और लोभ इन तीनों के **(बंधे तहा)** बंध संबंधी भी ऐसा ही जानना चाहिए।

विशेषार्थ - कृष्टिवेदककाल के प्रथम समय में क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का ही उदय और बंध होता है। क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की अन्तरकृष्टियों के प्रमाण को 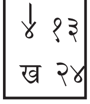

पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर उसमें बहुभाग मात्र कृष्टियाँ 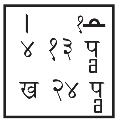

उदय में आती हैं। एक भाग प्रमाण नीचे और ऊपर की कृष्टियाँ छोड़कर मध्य की बहुभागप्रमाण कृष्टियाँ उदय में आती हैं। प्रथम द्वितीयादि कृष्टियों को नीचे की कृष्टियाँ और चरम, द्विचरम आदि कृष्टियों को ऊपर की कृष्टियाँ कहते हैं। नीचे की अनुदयरूप कृष्टियाँ अनन्तगुणा अनुभाग बढ़ाकर और ऊपर की अनुदयरूप कृष्टियाँ अनन्तगुणा अनुभाग का घात करके मध्य की कृष्टिरूप परिणमित होकर उदय को प्राप्त होती हैं।

अंकसंदृष्टि - माना कि प्रथम संग्रहकृष्टि की सर्वकृष्टियाँ २०००, पल्य का असंख्यातवाँ भाग ४० ÷ ३ है।

२००० ÷ (४० ÷ ३) = १५० एक भाग प्रमाण अनुदयरूप कृष्टियाँ

२००० - १५० = १८५० बहुभागप्रमाण उदयरूप कृष्टियाँ (इसका चित्र आगे पेज पर है)

बंध में भी असंख्यातवें भाग प्रमाण नीचे और ऊपर की कृष्टियाँ जानना चाहिए अर्थात् जो संज्वलन क्रोध का नवीन बंध होता है वह बंधद्रव्य इन कृष्टियों की शक्ति के समान अनुभागयुक्त परिणमता है। यहाँ बंध कृष्टिरूप ही होता है, स्पर्धकरूप नहीं।उदयरूप कृष्टियों में जो ऊपर की अनुदयरूप कृष्टियों का प्रमाण है उससे साधिक दुगुणा प्रमाण सहित नीचे और ऊपर की कृष्टियों का प्रमाण कम करने पर बंधरूप कृष्टियों का प्रमाण आता है। १५० × २ = ३०० उसमें साधिक १००

कृष्टियाँ करने पर ४०० अबंध और सोलहसों (१६००) बंधरूप कृष्टियों का प्रमाण आता है।

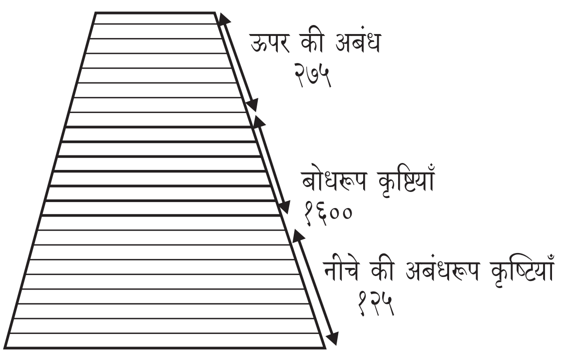

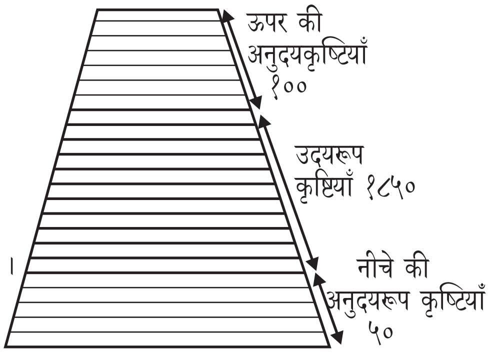

इसी प्रकार मान, माया और लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टियों का ही बंध होता है ।अन्य दो संग्रह-कृष्टियों का बंध नहीं होता है। उसमें भी अपनी-अपनी प्रथम संग्रहकृष्टि के नीचे और ऊपर की असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियों को छोड़कर मध्य की बहुभागमात्र कृष्टियों का बंध होता है। यहाँ मानादि कषायों की तीनों संग्रहकृष्टियों का उदय नहीं है और क्रोध की द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टियों का बंध और उदय दोनों नहीं है।

उदय, अनुदय और उभय कृष्टियों का अल्पबहुत्व कहते हैं-

कोहस्स पढमसंगहकिट्टिस्स य हेट्ठिमणुभयट्ठाणा।
तत्तो उदयट्ठाणा उवरिं पुण अणुभयट्ठाणा।।५१७।।
उवरिं उदयट्ठाणा, चत्तारि पदाणि होंति अहियकमा ।
मज्झे उभयट्ठाणा, होंति असंखेज्जसंगुणिया ।।५१८।।

क्रोधस्य प्रथमसङ्ग्रहकृष्टेश्चाधस्तनानुभयस्थानानि।
तत्रोदयस्थानान्युपरि पुनरनुभयस्थानानि ।।५१७।।
उपर्युदयस्थानानि चत्वारि पदानि भवन्त्यधिकक्रमाणि ।
मध्ये उभयस्थानानि भवन्त्यसङ्ख्येयसङ्गुणितानि ।।५१८।।

अन्वयार्थ - (कोहस्स पढमसंगहकिट्टिस्स य) क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की **(हेट्ठिमणुभयट्ठाणा)** नीचे की अनुभय कृष्टियाँ **(तत्तो)** उसके अनन्तर **(उदयट्ठाणा)** नीचे की ही केवल उदयरूप कृष्टियाँ **(पुण)** पुनः **(उवरिं)** ऊपर की **(अणुभयट्ठाणा)** अनुभय कृष्टियाँ पुनः **(उवरिं**

१ क. पा. सुत्त पृ. ८०५ सू. ६९६ - ६९७/ ज. ध. पु. १५ पृ. ४५/ ध. पु. ६ पृ. ३८४

उदयट्ठाणा) ऊपर की केवल उदयरूप कृष्टियाँ **(चत्तारिपदाणि)** ये चार पद **(अहियकमा)** क्रम से अधिक **(होति)** हैं। **(मज्झे उभयट्ठाणा)** मध्य की उभयरूप कृष्टियाँ **(असंखेज्जसंगुणिया)** असंख्यातगुणी **(होंति)** हैं।

विशेषार्थ - क्रोधसंज्वलन की प्रथम संग्रहकृष्टि की जघन्यकृष्टि से लेकर नीचे की असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियाँ अनुभयरूप अर्थात् बंध उदयरहित हैं उन कृष्टियों का प्रमाण सबसे अल्प है। अंकसंदृष्टि से दो शलाका प्रमाण है। उससे उन अनुभय कृष्टियों के ऊपर जो कृष्टियाँ केवल उदयरूप हैं, बंधरूप नहीं है, वे विशेष अधिक हैं। अंकसंदृष्टि से शलाका का प्रमाण तीन माना। विशेष का प्रमाण नीचे की अनुभय कृष्टियों को पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर जो एक भाग आता है उतना है।

इन नीचे की उदयकृष्टियों से ऊपर की चरम, द्विचरम आदि जो बंध और उदयरहित अनुभय कृष्टियाँ हैं वे विशेष अधिक हैं। अंकसंदृष्टि से शलाका का प्रमाण चार माना। ये कृष्टियाँ भी सर्व कृष्टिस्थान के असंख्यातवें भाग प्रमाण होकर पूर्वोक्त दोनों स्थानों से विशेष अधिक हैं। यहाँ भी विशेष का प्रमाण नीचे की उदयरूप कृष्टियों को पल्योपम के असंख्यातवें भाग से भाग देकर आया हुआ एक भाग प्रमाण है।

उससे ऊपर की अनुभयकृष्टियों के नीचे स्थित बंधरहित केवल उदयरूप कृष्टियाँ विशेष अधिक हैं अर्थात् सात शलाका प्रमाण हैं। विशेष का प्रमाण पूर्व के समान ही जानना चाहिए । उससे जिनका बंध भी है और उदय भी है ऐसी उभयरूप मध्य की कृष्टियाँ असंख्यातगुणी हैं।

क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की अंतरकृष्टियों के प्रमाण में (४ १३ / ख २४) पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर बहुभाग प्रमाण (४ १३ पु / ख २४ पु) मध्य की कृष्टियाँ वेदक के प्रथम समय में बंध और उदयरूप अर्थात् उभयरूप हैं। शेष एकभाग प्रमाण कृष्टियाँ चार स्थानों में विभाजित की गयी है। उनका प्रमाण 'प्रक्षेपयोगोद्धृत मिश्र पिंड' इस सूत्रानुसार आता है। सभी गुणकारों को मिलाकर उस मिश्रपिंड से सर्वद्रव्य को भाग देने पर एक शलाका प्रमाण प्राप्त होता है उसे अपने-अपने शलाका प्रमाण गुणकार से गुणा करने पर अपना-अपना प्रमाण प्राप्त होता है।सर्व गुणकारों का जोड २ + ३ + ४ + ७ = १६इस से पूर्वोक्त एक भाग प्रमाण कृष्टियों को (४ १३ / ख २४ पु १६) भाग दें। इसे दो गुणकार से गुणा करने पर (४ १३ । २ / ख २४ पु १६) नीचे की अनुभय कृष्टियों का प्रमाण आता है। तीन से गुणा करने पर (४ १३।३ / ख २४ पु १६) नीचे की बंधरहित उदयकृष्टियों का प्रमाण आता है। चार शलाका से गुणा करने पर (४ १३।४ / ख २४ पु १६) ऊपर की अनुभयकृष्टियों का और सात से गुणा करने पर (४ १३।७ / ख २४ पु १६) ऊपर की बंधरहित उदय कृष्टियों का प्रमाण आता है।

अंकसंदृष्टि - क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की सर्वकृष्टियों का प्रमाण २००० और पल्य का असंख्यातवाँ

भाग पाँच माना।

उभयकृष्टियाँ = $\frac{\text{सर्व कृष्टियाँ}}{\text{पल्य का असंख्यातवा भाग}}$ × पल्य का असंख्यातवा भाग - १

= बहुभागप्रमाण कृष्टियाँ

$\frac{२०००}{५}$ × ४ = १६०० बहुभाग उभयकृष्टियाँ

४०० एकभाग गुणकारों का जोड़ १६

४०० ÷ १६ = २५ एक शलाका का प्रमाण इसलिए

२५ × २ = ५० नीचे की अनुभय कृष्टियाँ २५ × ३ = ७५ नीचे की उदयकृष्टियाँ

२५ × ४ = १०० ऊपर की अनुभय कृष्टियाँ २५ × ७ = १७५ ऊपर की उदयकृष्टियाँ

उदय, अनुदय और बंध, अबंध कृष्टियों का चित्र

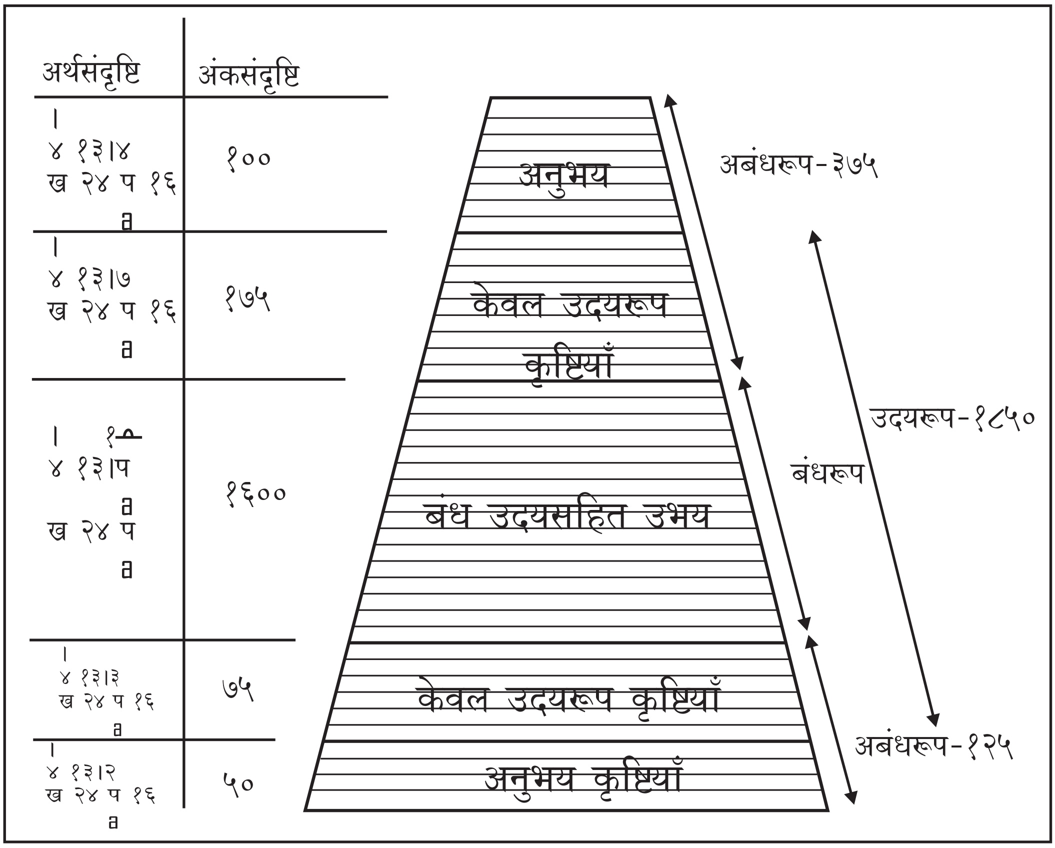

द्वितीयादि समयों में उक्तविषय का विशेष स्पष्टीकरण

विदियादिसु चउठाणा पुव्विल्लेहि असंखगुणहीणा।
तत्तो असंखगुणिदा उवरिमणुभया तदो उभया ।।५१९।।

द्वितीयादिषु चतुःस्थानानि पूर्वेभ्योऽसङ्ख्यगुणहीनानि ।
ततोऽसङ्ख्यगुणितान्युपर्यनुभयानि तत उभयानि ।।५१९।।

अन्वयार्थ - (विदियादिसु) द्वितीयादि समयों में **(चउठाणा)** चार स्थान **(पुव्विल्लेहि)** पूर्व की अपेक्षा **(असंखगुणहीणा)** असंख्यातगुणे हीन हैं। **(तत्तो)** उससे **(उवरिमणुभया)** ऊपर की अनुभय कृष्टियाँ **(असंखगुणिदा)** असंख्यातगुणित हैं।**(तदो)**उससे **(उभया)** उभयकृष्टियाँ असंख्यातगुणित हैं।

विशेषार्थ - पूर्वसमय में जो नीचे की बन्धरहित केवल उदयकृष्टियाँ थी वह आगे के समय में उभयकृष्टियाँ होती हैं और पूर्वसमय में जो अनुभयकृष्टियाँ थी उसमें से अन्त की कुछ कृष्टियाँ उभयरूप और उसके नीचे की कुछ कृष्टियाँ उत्तरसमय में केवल उदयरूप होती हैं।

पूर्वसमय की नीचे की अनुभय कृष्टियों $\dfrac{\overset{|}{४}\ १३।\ २}{ख\ २४\ \underset{a}{प}\ १६}$ को पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर एकभाग यह $\dfrac{\overset{|}{४}\ १३।२}{ख\ २४।\underset{a}{प}।१६।\underset{a}{प}}$ है। इसे अंकसंदृष्टि से पाँच का भाग देकर दो भागप्रमाण $\dfrac{\overset{|}{४}\ १३।२।२}{ख\ २४।\underset{a}{प}।१६।\underset{a}{प}\ ५}$ जघन्यादि कृष्टियाँ अनुभयरूप होती हैं और उसके ऊपर तीन भाग प्रमाण कृष्टियाँ $\dfrac{\overset{|}{४}\ १३।२।३}{ख\ २४।\underset{a}{प}।१६।\underset{a}{प}\ ५}$ उदयरूप होती हैं और बहुभागमात्र कृष्टियाँ $\dfrac{\overset{|}{४}\ १३।२।\overset{१-}{\underset{a}{प}}}{ख\ २४।\underset{a}{प}।१६।\underset{a}{प}}$ उभयरूप होती हैं।

अंकसंदृष्टि से - $\dfrac{\text{नीचे की अनुभय कृष्टियाँ}}{\text{पल्य का असंख्यातवा भाग}} = \dfrac{५०}{५} = १०$ एकभाग

५० - १० = ४० बहुभाग नयी उभयकृष्टियाँ, $\dfrac{\text{एकभाग} \times ३}{५} = \dfrac{१० \times ३}{५} = ६$ नवीन केवल उदयरूप कृष्टियाँ

$\dfrac{१० \times २}{५} = ४$ नीचे की शेष अनुभय कृष्टियाँ

उसीप्रकार पूर्वसमय में जो ऊपर की केवल उदयकृष्टियाँ थी। वें सर्व उत्तरसमय में अनुभयरूप

होती हैं। पूर्व समय में जो उभयकृष्टियाँ थी उसमें अंत की कुछ कृष्टियाँ उत्तरसमय में अनुभयरूप होती हैं और उसके नीचे की कुछ कृष्टियाँ केवल उदयरूप होती हैं।

उत्तरसमय में उभयकृष्टियों में से नवीन केवल उदयरूप हुई कृष्टियों का प्रमाण =
पूर्वसमय में ऊपर की केवल उदयरूप कृष्टियाँ ÷ पल्य का असंख्यातवाँ भाग

अंकसंदृष्टि - १७५ ÷ ५ = ३५ नवीन केवल उदयरूप कृष्टियाँ

अर्थसंदृष्टि से नवीन केवल उदयरूप कृष्टियाँ

४।१३।७
ख।२४।पु।१६।पु

उभयकृष्टियों में से उत्तर समय में अनुभयरूप हुई कृष्टियों का प्रमाण =

पूर्व समय में ऊपर की अनुभयकृष्टियाँ / पल्य का असंख्यातवाँ भाग = ४।१३।४ / ख।२४।पु।१६।पु

अंकसंदृष्टि
१००÷५ = २०

इन दोनों का प्रमाण मिलाकर उभयकृष्टियों में से कम करें।

४ १३।७ / ख।२४।पु।१६।पु + ४।१३।४ / ख।२४।पु।१६।पु = ४।१३।११ / ख।२४।पु।१६।पु इतनी कृष्टियाँ पूर्व समय की उभयकृष्टियों में से कम हुई।

अंकसंदृष्टि
३५ + २० = ५५ उभयकृष्टियों में कम हुआ प्रमाण

पूर्व समय की उभयकृष्टियाँ - उभयकृष्टियों में से कम हुई कृष्टियाँ = शेष उभयकृष्टियाँ

अंकसंदृष्टि = १६०० - ५५ = १५४५

अर्थसंदृष्टि

४।१३।पु(१) / ख २४ पु - ४ १३।११ / ख।२४।पु।१६।पु

अन्य भागहार समान हैं। शेष १६।पु भागहार का समच्छेद करने पर

४।१३।पु(१) १६।पु / ख।२४।पु १६ पु   ४ १३।११ / ख।२४।पु।१६।पु

समान संख्या रखकर शेष गुणकार में (पु(१) १६। पु) ऋणराशी का ११ गुणकार कम करना

४ १३ (।पु(१)।१६।पु-११)
ख।२४। पु।१६। पु

शेष उभयकृष्टियाँ

उभयकृष्टियों के नीचे की उदयकृष्टियाँ + अनुभयकृष्टियों का बहुभाग = उभयकृष्टियों में बढ़ा हुआ प्रमाण
= ७५ + ४० = ११५

द्वितीय समय में बंध, उदय, उभय और अनुभय कृष्टियों का नक्शा

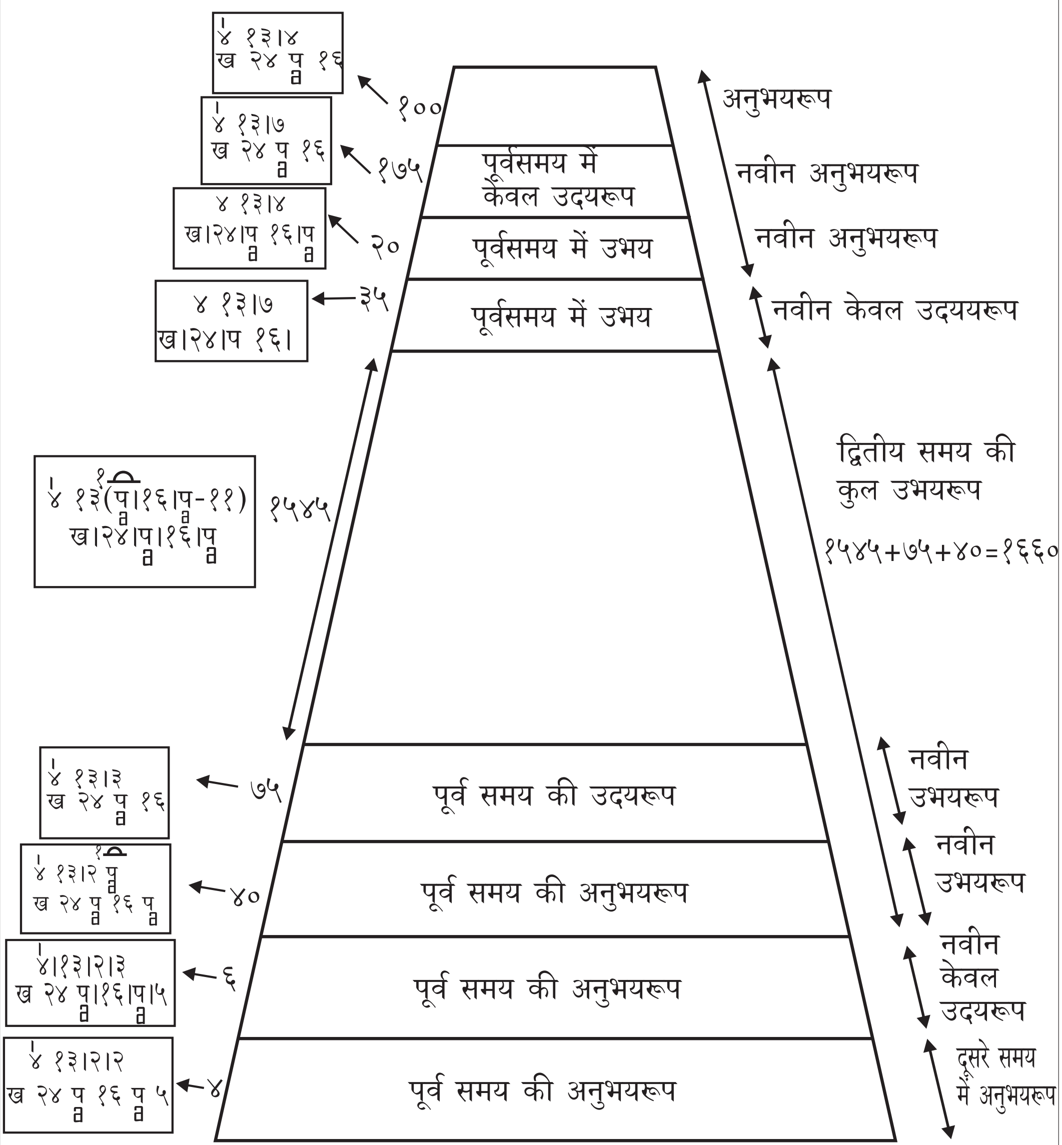

शेष उभयकृष्टियाँ + पूर्वोक्त बढ़ा हुआ प्रमाण = कुल उभयकृष्टियाँ
= १५४५ + ११५ = १६६०

पूर्व समय में ऊपर की अनुभय कृष्टियाँ + केवल उदयरूप कृष्टियाँ + उभयकृष्टियों में से नवीन अनुभय कृष्टियाँ = द्वितीय समय में ऊपर की कुल अनुभय कृष्टियाँ

१०० + १७५ + २० = २९५

भावार्थ यह है कि ऊपर की अधिक शक्तियुक्त कृष्टियाँ अनुभयरूप होने लगती हैं और नीचे की हीन शक्तियुक्त कृष्टियाँ बंध और उदयरूप (उभयरूप) होने लगती हैं। इसप्रकार परिणामों की उत्तरोत्तर विशुद्धि की वृद्धि से बंध और उदय में अनुभाग की हानि होती जाती है। उत्तरोत्तर परिणामों में विशुद्धि अनन्तगुणी बढ़ती होने से सत्ता के अनुभाग की उत्तरोत्तर हानि होना युक्त है। उसी प्रकार प्रत्येक समय में बाँधे जानेवाले अप्रशस्त कर्मों के अनुभाग में भी हानि होती जाती है।

पूर्वोक्त कृष्टियों का अल्पबहुत्व- नीचे की अनुभय कृष्टियाँ अल्प हैं (४)। उससे उसके ऊपर जो नीचे की केवल उदयरूप कृष्टियाँ हैं वे विशेष अधिक हैं (६)। उससे, ऊपर की पूर्व समय में उत्कृष्ट अनुभागसहित जो उभयकृष्टिरूप अंतिमकृष्टि थी वहाँ से नीचे की उत्तर समय में जो अनुभय कृष्टियाँ हुई वे विशेष अधिक हैं (२०)। इससे इनके नीचे जो उत्तर समय में केवल उदयरूप कृष्टियाँ हुई है वे विशेष अधिक हैं (३५)। इस प्रकार ये चार स्थान तो पूर्व समय में नीचे के अनुभय आदि कृष्टियों का प्रमाण होता था उससे असंख्यातगुणा हीन हैं।

अल्पबहुत्व का तालिका

कृष्टियाँ	प्रथम समय में	द्वितीय समय में
नीचे की उभयकृष्टियाँ	५०	४
नीचे की केवल उदयकृष्टियाँ	७५	६
ऊपर की अनुभयकृष्टियाँ	१००	२०
ऊपर की केवल उदयकृष्टियाँ	१७५	३५
द्वितीय समय में ऊपर की नई अनुभय कृष्टियाँ	-	१९५
मध्य की उभय कृष्टियाँ	१६००	१६६०

पूर्वोक्त केवल उदयकृष्टियों से (३५) पूर्वसमय में जो ऊपर की उदयकृष्टियाँ थी वहाँ से जो अनुभय कृष्टियाँ हुई वे सभी मिलकर असंख्यातगुणी हैं १९५,क्योंकि पूर्वसमय में ऊपर की अनुभय कृष्टियों का जो प्रमाण था(१००) उसका असंख्यातवाँ भागप्रमाण(२०) उभयकृष्टियों में से नवीन अनुभयरूप हुई हैं और पूर्वसमय में जो केवल उदयकृष्टियाँ थी (१७५) उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण (३५)उत्तरसमय में केवल उदयरूप कृष्टियाँ हुई हैं इसलिए द्वितीय समय की उदय कृष्टियों से नवीन अनुभय कृष्टियाँ असंख्यातगुणी हैं।

अनुभयकृष्टियों के प्रमाण से बंध-उदय सहित मध्य की उभयकृष्टियाँ (१६६०) असंख्यातगुणी हैं। इसप्रकार द्वितीयादि समयों में कृष्टियों का अल्पबहुत्व जानना चाहिए ।

द्वितीय समय में ऊपर की कृष्टि संबंधित कथन करते हैं -

पुव्विल्लबंधजेट्ठा हेट्ठासंखेज्जभागमोदरिय।
संपडिगो चरिमोदयवरमवरं अणुभयाणं च ।।५२०।।

पौर्विकबन्धज्येष्ठात् अधस्तनमसङ्ख्येयभागमवतीर्य।
साम्प्रतिकश्चरमोदय वरमवरमनुभयानां च ।।५२०।।

अन्वयार्थ - (पुव्विल्लबंधजेट्ठा) पूर्वसमय में बंध की उत्कृष्ट कृष्टि से **(हेट्ठा)** नीचे **(असंखेज्जभागं ओदरिय)** असंख्यातवें भाग प्रमाण उतरकर **(संपडिगो)** वर्तमान समय में **(चरिमोदयवरं)** अंतिम उदयरूप उत्कृष्ट कृष्टि है **(च)** और उसके ऊपर **(अणुभयाणं अवरं)** अनुभय की जघन्य कृष्टि है।

विशेषार्थ - पूर्वसमय में जो बंध की उत्कृष्ट कृष्टि है वहाँ से पूर्व समयसंबंधी अनुभयकृष्टियों के असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियाँ नीचे उतरकर वर्तमान (द्वितीय) समय में केवल उदयरूप अंतिम उत्कृष्ट कृष्टि है। उसके अनन्तर ऊपर अनुभय कृष्टि की जघन्य कृष्टि है। उस उत्कृष्ट उदयकृष्टि से नीचे उतरकर वर्तमान में उदय की जघन्यकृष्टि है। उसके नीचे ही उभयकृष्टिसंबंधी उत्कृष्ट कृष्टि है।

द्वितीय समय में नीचे की कृष्टिसंबंधी विशेष कहते हैं-

हेट्ठिमणुभयवरादो असंखबहुभागमेत्तमोदरिय।
संपडि बंधजहण्णं, उदयुक्कस्सं च होदित्ति।।५२१।।

अधस्तनानुभयवरादसङ्ख्यबहुभागमात्रामवतीर्य।
सम्प्रति बन्धजघन्यमुदयोत्कृष्टं च भवतीति ।।५२१।।

अन्वयार्थ - (हेट्ठिमणुभयवरादो) नीचे की अनुभय की उत्कृष्ट कृष्टि से **(असंखबहुभागमेत्तं)** असंख्यात बहुभागमात्र कृष्टियाँ **(ओदरिय)** नीचे उतरकर **(संपडिबंधजहण्णं)** वर्तमान बन्ध की जघन्य **(च)** और **(उदयुक्कस्सं)** केवल उदय की उत्कृष्ट कृष्टि **(होदित्ति)** है ऐसा जानना चाहिए ।

विशेषार्थ - पूर्वसमय संबंधी नीचे की अनुभयकृष्टि की उत्कृष्ट अर्थात् चरमकृष्टि से पूर्व

समयसंबंधी नीचे की अनुभयकृष्टियों के असंख्यातवें बहुभागमात्र कृष्टियाँ नीचे उतरकर वर्तमान बंध की जघन्य कृष्टि अर्थात् उभयकृष्टि की जघन्य कृष्टि है। उसके अनन्तर नीचे की कृष्टि केवल उदयकृष्टियों की उत्कृष्ट कृष्टि है।

वहाँ से आगे पूर्व समयसंबंधी अनुभयकृष्टियों के असंख्यातवें एक भाग में से तीन पंचमांश कृष्टि नीचे उतरकर वर्तमान उदयकृष्टियों की जघन्य कृष्टि है। उसके नीचे पूर्व समयसंबंधी अनुभय कृष्टियों के असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियाँ नीचे उतरकर वर्तमान अनुभयकृष्टियों की जघन्य कृष्टि है। वही सर्वकृष्टियों की जघन्य कृष्टि है। इसप्रकार अधस्तन (नीचे की) कृष्टियों का विधान जानना चाहिए। इसप्रकार पूर्वसमय संबंधी नीचे की अनुभयकृष्टियाँ, उदयकृष्टियाँ और ऊपर की उदय और अनुभयरूप कृष्टियों के प्रमाण से उत्तर समयसंबंधी कृष्टियों का प्रमाण असंख्यातगुणा हीन है और मध्य की उभयकृष्टियों का प्रमाण पूर्व समय की अपेक्षा विशेष अधिक है ऐसा जानना चाहिए ।

प्रत्येक समय में कृष्टियों का बंध और उदय कैसा होता है वह कहते हैं -

पडिसमयं अहिगदिणा उदये बंधे च होदि उक्कस्सं।
बंधुदये च जहण्णं अणंतगुणहीणया किट्टी[1] ।।५२२।।

प्रतिसमयमहिगतिना उदये बन्धे च भवत्युत्कृष्टम् ।
बन्धोदये च जघन्यमनन्तगुणहीनका कृष्टि ।।५२२।।

अन्वयार्थ - (पडिसमयं) प्रत्येक समय में **(अहिगदिणा)** सर्प की चाल के समान **(उदय बंधे च)** उदय और बंध में **(उक्कस्सं किट्टी)** उत्कृष्ट कृष्टि **(च)** और **(बंधुदये)** बंध और उदय में **(जहण्णं)** जघन्य कृष्टि **(अणंतगुणहीणया)** क्रम से अनन्तगुणी हीन हैं।

विशेषार्थ - सर्वकृष्टियों की अनन्त बहुभागमात्र मध्य की कृष्टियाँ बंधरूप हैं। उससे उदयरूप कृष्टियाँ विशेष अधिक हैं। सर्वकृष्टियों की मध्यवर्ती अनन्तकृष्टियाँ उदयरूप हैं और उदयरूप कृष्टियों की मध्यवर्ती कृष्टियाँ बन्धरूप हैं। उसमें से सबसे हीन अनुभागयुक्त प्रथमकृष्टि को जघन्यकृष्टि कहते हैं तथा सबसे अधिक अनुभागयुक्त अंतिम कृष्टि को उत्कृष्ट कृष्टि कहते हैं।

कृष्टिवेदक के प्रथम समय में उदयसंबंधी ऊपर की उत्कृष्ट कृष्टि अधिक अनुभागयुक्त है। उससे उसी समय में बंध की उत्कृष्ट कृष्टि अनन्तगुणा हीन अनुभागयुक्त है क्योंकि उदयरूप उत्कृष्ट कृष्टि से अनन्त कृष्टियाँ नीचे उतरकर बंध की उत्कृष्ट कृष्टि है ।

उससे द्वितीय समय की उदय की उत्कृष्ट कृष्टि अनन्तगुणा हीन अनुभागयुक्त है क्योंकि प्रथम

१ क. पा. सुत्त पृ. ८५० सू. १०७२- १०८२ / ज. ध. पु. १५ पृ. २४० - २४१

समय की अपेक्षा द्वितीय समय में परिणामों की विशुद्धि अनन्तगुणी हैं। उससे उसी समय में बंध की उत्कृष्ट कृष्टि अनन्तगुणा हीन अनुभागयुक्त है। उससे तृतीय समय में उदय की उत्कृष्ट कृष्टि अनन्तगुणा हीन अनुभाग युक्त है। उससे उसी समय में बंध की उत्कृष्टकृष्टि अनन्तगुणा हीन अनुभागयुक्त है। जैसे सर्प इधर-उधर गमन करता है उसी प्रकार विवक्षित समय में उदय की उत्कृष्टकृष्टि से बन्ध की उत्कृष्ट कृष्टि और पूर्व समयसंबंधी बंध की उत्कृष्ट कृष्टि से उत्तर समयसंबंधी उदय की उत्कृष्ट कृष्टि में क्रम से अनन्तगुणा हीन अनुभाग जानना चाहिए ।

कृष्टिवेदक के प्रथम समय में बंध की जघन्य कृष्टि अधिक अनुभागयुक्त है। उससे उसी समय में उदय की जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी हीन अनुभागयुक्त है। उससे द्वितीय समय में बंध की जघन्य कृष्टि अनन्तगुणा हीन अनुभागयुक्त है। उससे उसी समय में उदय की जघन्यकृष्टि अनन्तगुणा हीन अनुभागयुक्त है। इस प्रकार सर्प की चाल के समान एक समय में बंध की जघन्य से उदय की जघन्यकृष्टि और पूर्व समय की उदय की जघन्य कृष्टि से उत्तर समय की बंध की जघन्य कृष्टि में अनन्तगुणा हीन अनुभाग जानना चाहिए । परिणामों की विशुद्धि अनन्तगुणी बढ़ती होने से उत्तरोत्तर उदय और बंध अनन्तगुणा घटता जाता है। इसप्रकार का कथन क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि-वेदककाल के अंतसमय तक करना चाहिए। उसी की द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टि वेदक का भी ऐसा ही क्रम जानना चाहिए । (इससे संबंधित चित्र आगे पेज पर है।)

अब संक्रमणद्रव्य का विभाग कहते हैं -

संकमदि संगहाणं दव्वं सगहेट्ठिमस्स पढमोत्ति।
तदणुदये संखगुणं इदरेसु हवे जहाजोग्गं।।५२३।।

सङ्क्रामति सङ्ग्रहाणां द्रव्यं स्वकाधस्तनस्य प्रथम इति।
तदनुदये संखगुणं इदरेसु हवे जहाजोग्गं ।।५२३।।

अन्वयार्थ - (संगहाणं दव्वं) संग्रहकृष्टियों का द्रव्य **(सगहेट्ठिमस्स)** विवक्षित अपनी कषाय के नीचे की कषाय की **(पढमोत्ति)** प्रथम संग्रहकृष्टि तक **(संकमदि)** संक्रमण करता है। **(तदणुदये)** विवक्षित उदयरूप संग्रहकृष्टि उसके अनन्तर उदय आनेयोग्य कृष्टि में **(संखगुणं)** संख्यातगुणा संक्रमित होता है। **(इदरेसु)** इतर कृष्टियों में **(जहाजोग्गं)** यथायोग्य **(हवे)** संक्रमित होता हैं।

विशेषार्थ - यदि स्वस्थान में विवक्षित कषाय की संग्रहकृष्टि का द्रव्य संक्रमित हुआ तो अपनी तृतीय संग्रहकृष्टि तक संक्रमित होता है वैसे ही यदि परस्थान में अर्थात् अन्य कषाय में संक्रमण हुआ तो अपने निकट के कषाय की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित होता है। जो द्रव्य जिसमें संक्रमित होता है, वह

प्रत्येक समय में बंध उदयरूप कृष्टियों का अल्पबहुत्व

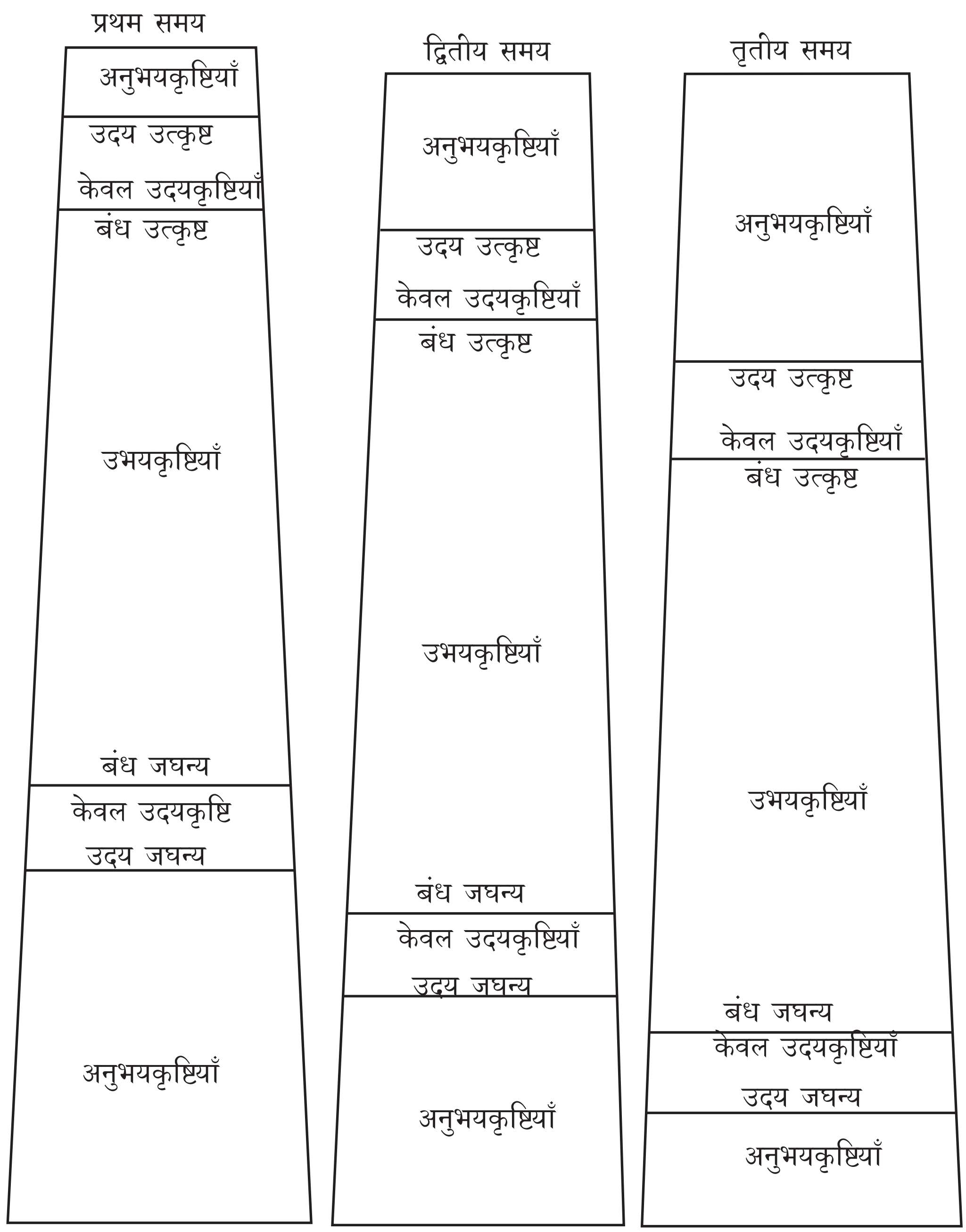

द्रव्य उस अनुभागरूप परिणमता है। वहाँ जिस संग्रहकृष्टि को भोगता है उसके अपकर्षण किये द्रव्य में से संख्यातगुणा द्रव्य उसके अनन्तर भोगने योग्य कृष्टि में संक्रमित होता है । अन्य कृष्टियों में यथायोग्य संक्रमित होता है।

जिसप्रकार लोकव्यवहार में जमा-खर्च कहा जाता है उसी प्रकार यहाँ आयद्रव्य और व्ययद्रव्य कहते हैं। अन्य संग्रहकृष्टियों का द्रव्य संक्रमण करके विवक्षित संग्रहकृष्टि में आया अर्थात् प्राप्त हुआ उसे आयद्रव्य कहते हैं और विवक्षित संग्रहकृष्टि का द्रव्य संक्रमण के द्वारा अन्य संग्रहकृष्टियों में गया उसे व्ययद्रव्य कहते हैं।

यहाँ क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि बिना अन्य ग्यारह संग्रहकृष्टियों के अपने- अपने द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर जो एक भागमात्र द्रव्य संक्रमण करता है उसे 'एकद्रव्य' कहते हैं। क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर जो एक भागमात्र द्रव्य संक्रमण करता है उसे 'तेरह द्रव्य' कहते हैं क्योंकि अन्य संग्रहकृष्टियों के द्रव्य से क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य नोकषाय का द्रव्य मिलाने से तेरहगुणा है । यह पूर्व की गाथा ५१५ के विशेषार्थ में सिद्ध करके दिखाया है।

लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि और द्वितीय संग्रहकृष्टि का अपकर्षित द्रव्य संक्रमण करता है इसलिए उसका आयद्रव्य दो हैं। लोभ की द्वितीय सग्रहकृष्टि में लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि का अपकर्षित द्रव्य संक्रमण करता है इसलिए उसका आयद्रव्य एक है । लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में मायाकषाय की प्रथम, द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टियों का अपकर्षण किया द्रव्य संक्रमण करता है इसलिए उसका आयद्रव्य तीन है।

मायाकषाय की तृतीय संग्रहकृष्टि में माया की द्वितीय और प्रथम संग्रहकृष्टि का अपकर्षित द्रव्य संक्रमण करता है इसलिए उसका आयद्रव्य दो है। माया की द्वितीय संग्रहकृष्टि में माया की प्रथम संग्रहकृष्टि का अपकर्षित द्रव्य संक्रमण करता है। इसलिए उसका आयद्रव्य एक है। माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में मान की प्रथम, द्वितीय और तृतीय संग्रह कृष्टियों का अपकर्षित द्रव्य संक्रमण करता है इसलिए उसका आयद्रव्य तीन है।

मान की तृतीय संग्रहकृष्टि में मान की द्वितीय और प्रथम संग्रहकृष्टि का अपकर्षित द्रव्य संक्रमण करता है इसलिए उसका आयद्रव्य दो है।मान की द्वितीय संग्रहकृष्टि में मान की प्रथम संग्रहकृष्टि का अपकर्षित द्रव्य संक्रमण करता है इसलिए उसका आयद्रव्य एक है। मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में क्रोध की प्रथम, द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टि के अपकर्षित द्रव्य का संक्रमण होता है इसलिए उसका आयद्रव्य पंद्रह है। क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में क्रोध की प्रथम और द्वितीय संग्रहकृष्टियों का अपकर्षित द्रव्य संक्रमण करता है इसलिए उसका आयद्रव्य चौदह है। क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि में क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का अपकर्षित द्रव्य तेरह होना चाहिये किन्तु उससे चौदहगुणा संक्रमण होता है इसलिए उसका आयद्रव्य (१३× १४) = १८२ है । यहाँ चौदह गुणा करने का प्रयोजन कहते हैं –

अनन्तर भोगने योग्य संग्रहकृष्टि में संख्यातगुणा द्रव्य का संक्रमण होता है। यहाँ संख्यात का प्रमाण अपने गुणकार से एक अधिक जानना चाहिए । अब क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि को भोगता है और उसके अनन्तर क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि को भोगेगा इसलिए क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में से अपकर्षण किए द्रव्य में से संख्यातगुणे द्रव्य का द्वितीय संग्रहकृष्टि में संक्रमण होता है।यहाँ प्रथम संग्रहकृष्टि के द्रव्य में तेरह का गुणकार है। उससे एक अधिक करने पर संख्यात का प्रमाण यहाँ चौदह जानना चाहिए। अन्य संग्रहकृष्टि का वेदन करते समय संख्यात का प्रमाण अन्य होगा। वह आगे कहेंगे । क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में आयद्रव्य नहीं हैं क्योंकि यहाँ आनुपूर्वी संक्रमण होता है। अनुभाग हीन होने की अपेक्षा से यहाँ अपकर्षण करके संक्रमण होता है ऐसा कहा है। यहाँ अनुभाग का उत्कर्षण नहीं होता । इसप्रकार आयद्रव्य का विभाग कहा ।

अब व्ययद्रव्य का विभाग कहते हैं-

क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य क्रोध की द्वितीय, तृतीय और मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमण करके गया इसलिए द्वितीय संग्रहकृष्टि में एक सौ ब्यासी (१३ × १४ = १८२) , तृतीय संग्रहकृष्टि में तेरह और मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में तेरह द्रव्य मिलकर क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का व्ययद्रव्य दो सौ आठ (२०८) होता है। क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य क्रोध की तृतीय और मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में गया इसलिए उसका व्यय द्रव्य दो है। क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में ही गया इसलिए उसका व्ययद्रव्य एक है।

मान की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य मान की द्वितीय, तृतीय और माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमण करके गया इसलिए उसका व्यय द्रव्य तीन है। मान की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य मान की तृतीय और माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में गया इसलिए उसका व्ययद्रव्य दो है । मान की तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में गया इसलिए उसका व्ययद्रव्य एक है।

माया की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य माया की द्वितीय, तृतीय और लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में गया इसलिए उसका व्ययद्रव्य तीन है। माया की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य माया की तृतीय और लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में गया इसलिए उसका व्ययद्रव्य दो है। माया की तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में गया इसलिए उसका व्यय द्रव्य एक है।

लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य लोभ की द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टि में गया इसलिए उसका व्ययद्रव्य दो है। लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में गया इसलिए उसका व्ययद्रव्य एक है। लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य अन्यत्र नहीं जाता है क्योंकि विपरीत संक्रमण का अभाव है इसलिए उसका व्ययद्रव्य नहीं है। इसप्रकार व्ययद्रव्य का विभाग कहा। (आय-व्यय) द्रव्य का चित्र आगे पेज पर है।

आयव्यय द्रव्य का नक्शा

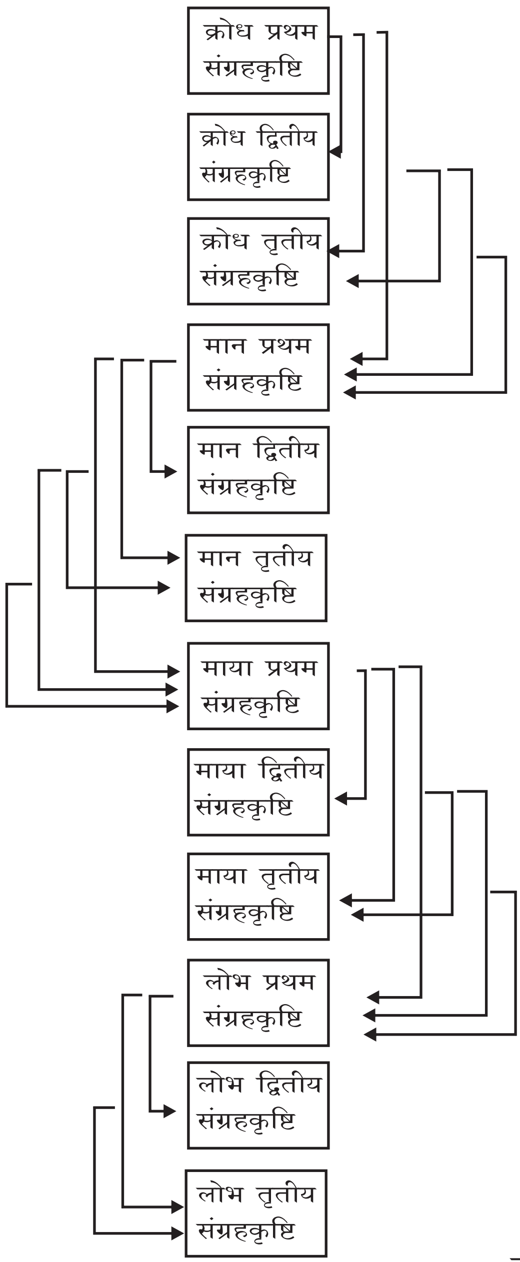

	आयद्रव्य	व्ययद्रव्य
	०	२०८
	१८२	२
	१४	१
	१५	३
	१	२
	२	१
	३	३
	१	२
	२	१
	३	२
	१	१
	२	०
कुल	२२६	२२६

आयद्रव्य, व्ययद्रव्य, घातद्रव्य और घातकृष्टियों का प्रमाण

नाम	संग्रह	द्रव्यप्रमाण	कृष्टिप्रमाण	आयद्रव्य	व्ययद्रव्य	घातद्रव्य	घातकृष्टि
	प्रथम	व १२।१३ २४	। ४।१३ ख २४	०	व १२।२०८ २४ ओ	व १२।१३ २४ ओ a	। ४।१३ ख २४ ओ a
क्रोध	द्वितीय	व १२ २४	। ४ ख २४	व १२।१८२ २४ ओ	व १२।२ २४ ओ	व १२ २४ ओ a	। ४ ख २४ ओ a
	तृतीय	व १२ २४	। ४ ख २४	व १२।१४ २४ ओ	व १२।१ २४ ओ	व १२ २४ ओ a	। ४ ख २४ ओ a
	प्रथम	व १२ २४	। ४ ख २४	व १२।१५ २४ ओ	व १२।३ २४ ओ	व १२ २४ ओ a	। ४ ख २४ ओ a
मान	द्वितीय	व १२ २४	। ४ ख २४	व १२।१ २४ ओ	व १२।२ २४ ओ	व १२ २४ ओ a	। ४ ख २४ ओ a
	तृतीय	व १२ २४	। ४ ख २४	व १२।२ २४ ओ	व १२।१ २४ ओ	व १२ २४ ओ a	। ४ ख २४ ओ a
	प्रथम	व १२ २४	। ४ ख २४	व १२।३ २४ ओ	व १२।३ २४ ओ	व १२ २४ ओ a	। ४ ख २४ ओ a
माया	द्वितीय	व १२ २४	। ४ ख २४	व १२।१ २४ ओ	व १२।२ २४ ओ	व १२ २४ ओ a	। ४ ख २४ ओ a
	तृतीय	व १२ २४	। ४ ख २४	व १२।२ २४ ओ	व १२।१ २४ ओ	व १२ २४ ओ a	। ४ ख २४ ओ a
	प्रथम	व १२ २४	। ४ ख २४	व १२।३ २४ ओ	व १२।२ २४ ओ	व १२ २४ ओ a	। ४ ख २४ ओ a
लोभ	द्वितीय	व १२ २४	। ४ ख २४	व १२।१ २४ ओ	व १२।१ २४ ओ	व १२ २४ ओ a	। ४ ख २४ ओ a
	तृतीय	व १२ २४	। ४ ख २४	व १२।२ २४ ओ	०	व १२ २४ ओ a	। ४ ख २४ ओ a
जोड	संग्रह १२	व १२	। ४ ख	। व १२।९ २४ ओ	व १२।२२६ २४ ओ	व १२ २४ ओ a	। ४ ख २४ ओ a

अब अनुसमय अपवर्तना की प्रवृत्ति का क्रम कहते हैं -

पडिसमयमसंखेज्जदिभागं णासेदि कंडयेण विणा ।
बारससंगहकिट्टीणग्गादो किट्टिवेदगो णियमा ।।५२४।।

प्रतिसमयमसङ्ख्येयभागं नाशयति काण्डकेन विना ।
द्वादशसङ्गहकृष्टीनामग्रतः कृष्टिवेदको नियमात् ।।५२४।।

अन्वयार्थ - (किट्टिवेदगो) कृष्टिवेदक जीव **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(कंडयेण विणा)** कांडक बिना **(बारससंगहकिट्टीणग्गादो)** बारह संग्रहकृष्टियों के अग्रभाग से **(असंखेज्जदिभागं)** सर्वकृष्टियों के असंख्यातवें भाग प्रमाण कृष्टियों को **(णियमा)** नियम से **(णासेदि)** नष्ट करता है।

विशेषार्थ - कृष्टिकरणकाल के अंतसमय तक अंतर्मुहूर्त काल द्वारा कांडक विधान से अनुभाग का नाश होता था।अब कृष्टिवेदक के प्रथम समय से प्रतिसमय बारह संग्रहकृष्टियों के अग्रभाग से अनन्त कृष्टियों के असंख्यातवें भागमात्र कृष्टियों का अपवर्तना घात करता है। अंतकृष्टि से लेकर अधिक अनुभागयुक्त ऊपर की कितनी ही कृष्टियों का नाश करता है अर्थात् उन कृष्टियों के द्रव्य को अल्प अनुभागयुक्त नीचे की कृष्टियों में निक्षेपण करता है। जिन कृष्टियों का घात किया उन्हें घात कृष्टियाँ कहते हैं। अपनी- अपनी संग्रहकृष्टि की अंतरकृष्टियों के प्रमाण को अपकर्षण भागहार के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर अपनी - अपनी घातकृष्टियों का प्रमाण आता हैं। सर्वकृष्टियाँ । एक-एक संग्रहकृष्टि में कृष्टियों का प्रमाण इतना है। क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में कृष्टियों का

प्रमाण तेरह गुणा है।इसे अपकर्षण भागहार के असंख्यातवें भाग से भाग दिया। यह घातकृष्टियों का प्रमाण आता है। क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में घात कृष्टियों का प्रमाण इतना है। इन घातकृष्टियों के परमाणुओं को घातद्रव्य कहते हैं। अपनी- अपनी

अंतकृष्टि के द्रव्य को घातकृष्टियों के प्रमाण से गुणित करके अंतकृष्टि के नीचे एक- एक चय बढ़ता है इसलिए विशेष अधिक करने पर घातद्रव्य का प्रमाण आता है।

परस्थान-स्वस्थान गोपुच्छ का नाश

णासेदि परट्ठाणिय गोउच्छं अग्गकिट्टिघादादो ।
सट्ठाणियगोउच्छं संकमदव्वादु घादेदि ।।५२५।।

नाशयति परस्थानकं गोपुच्छमग्रकृष्टिघातात् ।
स्वस्थानिकगोपुच्छं सङ्क्रमद्रव्याद् घातयति ।।५२५ ।।

अन्वयार्थ - (अग्गकिट्टिघादादो) अग्रकृष्टिघात से **(परट्ठाणिय गोउच्छं)** परस्थानिक गोपुच्छ का **(णासेदि)** नाश करता है। **(संकमदव्वादु)** संक्रमण द्रव्य से अर्थात् पूर्वोक्त व्ययद्रव्य से **(सट्ठाणियगोउच्छं)** स्वस्थानीय गोपुच्छ का **(घादेदि)** नाश करता है।

विशेषार्थ - विवक्षित एक संग्रहकृष्टि में अंतरकृष्टियों का जो विशेषहीन क्रम है उसे स्वस्थान गोपुच्छ कहते हैं। तथा नीचे की विवक्षित संग्रहकृष्टि की चरमकृष्टि से ऊपर की अन्य संग्रहकृष्टि की आदिकृष्टि में जो विशेषहीन क्रम है उसे परस्थान गोपुच्छ कहते हैं। कृष्टियों के हीनाधिक द्रव्य का संक्रमण होने से चयहीनरूप क्रम नष्ट हुआ। इसलिए पूर्व में जो स्वस्थान गोपुच्छ था उसका संक्रमण द्रव्य से नाश हुआ। तथा नीचे की संग्रहकृष्टि की अंतकृष्टिसे लेकर कुछ कृष्टियों का घात होने से नीचे की संग्रहकृष्टियों की अंतकृष्टि और ऊपर की संग्रहकृष्टियों की आदिकृष्टि में एक चयहीन क्रम था उसका अभाव होने से पूर्व में जो परस्थान गोपुच्छ था उसका नाश हुआ ।

कोई कहेगा कि व्ययद्रव्य गया और आयद्रव्य आया इसलिए व्ययद्रव्य से स्वस्थान गोपुच्छ का नाश हुआ तो आयद्रव्य से पुनः स्वस्थान गोपुच्छ का सद्भाव होगा, उसका उत्तर देते हैं-

आयादो वयमहियं हीणं सरिसं कहिंपि अण्णं च ।
तम्हा आयद्दव्वा ण होदि सट्ठाणगोउच्छं ।।५२६ ।।

आयतो व्ययमधिकं हीनं सदृशं कुत्राप्यन्यच्च ।
तस्मादायद्रव्यान्न भवति स्वस्थान गोपुच्छम् ।।५२६ ।।

अन्वयार्थ - (कहिंपि) कुछ संग्रहकृष्टियों में **(आयादो वयमहियं)** आयद्रव्य से व्ययद्रव्य अधिक है। कुछ स्थान पर **(हीणं)** हीन है। कुछ स्थान पर **(सरिसं)** समान है। कुछ स्थान पर **(अण्णं च)** अन्यप्रकार से है अर्थात् कुछ स्थानपर आयद्रव्य है किन्तु व्ययद्रव्य नहीं हैं तो कुछ स्थान पर व्ययद्रव्य है किन्तु आयद्रव्य नहीं है। **(तम्हा)** इसलिए **(आयद्दव्वा)** आयद्रव्य से **(सट्ठाणगोउच्छं)** स्वस्थान गोपुच्छ **(ण होदि)** नहीं होता है।

अब जिसप्रकार से स्वस्थान - परस्थान गोपुच्छ का सद्भाव होता है उसप्रकार से कहते हैं-

घादयदव्वादो पुण वय आयदखेत्तदव्वगं देदि ।
सेसासंखाभागे अणंतभागूणयं देदि ।।५२७ ।।

घातकद्रव्यात् पुनर्व्ययमायतक्षेत्रद्रव्यकं ददाति ।
शेषासङ्ख्यभागमनन्तभागोनकं ददाति ।।५२७।।

अन्वयार्थ - (घादयदव्वादो पुण) घात द्रव्य से **(वय आयदखेत्तदव्वगं)** व्ययद्रव्य और आयतक्षेत्रद्रव्य **(देदि)** देता है। **(सेसासंखाभागे)** शेष रहा असंख्यात बहुभाग द्रव्य **(अणंतभागूणयं)** अनन्तवें भाग हीनक्रम से **(देदि)** देता है।

विशेषार्थ - पूर्व में जो व्ययद्रव्य कहा गया था उसमें से जिन कृष्टियों का घात हुआ उन कृष्टियों का व्ययद्रव्य कम करे । जितना व्ययद्रव्य शेष रहा उतना द्रव्य घातद्रव्य में से ग्रहण करके जिन-जिन कृष्टियों का जितना-जितना व्ययद्रव्य होता है उतना-उतना व्ययद्रव्य उन कृष्टियों को देकर पूर्ण करने पर स्वस्थान गोपुच्छ का पुनः सद्भाव होता है।

घातकृष्टि संबंधी व्ययद्रव्य का प्रमाण -

अपनी - अपनी संग्रहकृष्टि की अंतिम अवयवकृष्टि के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देने पर उस अंतिम अवयवकृष्टि के व्ययद्रव्य का प्रमाण आता है। उसे अपनी- अपनी घातकृष्टियों की संख्या से गुणा करने पर उसमें विशेष अधिक करने पर सर्व घातकृष्टियों संबंधी व्ययद्रव्य का प्रमाण आता है। जिन घातकृष्टियों का नाश हुआ है वहाँ द्रव्य नहीं देता इसलिए पूर्वोक्त व्ययद्रव्य में से घातकृष्टियों का व्ययद्रव्य कम करने पर जो शेष व्ययद्रव्य रहता है उतना द्रव्य घातद्रव्य में से ग्रहण करके विवक्षित संग्रहकृष्टि में देने पर स्वस्थान गोपुच्छ का सद्भाव होता है।

अंतिम अवयव कृष्टि ÷ अपकर्षण भागहार = अंतिमकृष्टि का व्यय द्रव्य।

(अंतिमकृष्टि का व्ययद्रव्य × घातकृष्टियाँ) + कुछ द्रव्य = घात कृष्टियों का व्ययद्रव्य।

पूर्वोक्त व्यय द्रव्य - घातकृष्टियों का व्यय द्रव्य = देनेयोग्य व्ययद्रव्य

लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अग्रकृष्टियों का घात करने पर शेष रही कृष्टियों में जो अंतिम कृष्टि है उससे लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि में एक अधिक घातकृष्टि प्रमाण चय हीन हैं। इसलिए लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की घातकृष्टि प्रमाण चय लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि में देने पर यह प्रथम कृष्टि तृतीय संग्रहकृष्टि की अंतिमकृष्टि से एक चयप्रमाण से हीन होती है। इसी प्रकार इस द्वितीय संग्रहकृष्टि की द्वितीय संग्रहकृष्टि सें लेकर घात के अनन्तर शेष रही चरमकृष्टि तक उतना - उतना ही द्रव्य घातद्रव्य में से ग्रहण करके देने पर लोभ की तृतीय और द्वितीय संग्रहकृष्टि में एक गोपुच्छ होता है। द्वितीय संग्रहकृष्टि में घातद्रव्य में से कितना द्रव्य दिया वह कहते हैं -

लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की घातकृष्टियों का जितना प्रमाण है उतने चय प्रमाण चौड़ाई और द्वितीय संग्रहकृष्टि की शेष रही कृष्टिप्रमाण लंबाई ऐसा आयतक्षेत्र द्रव्य दिया है ।

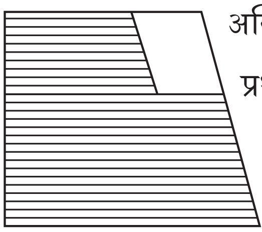

इसी प्रकार द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टि की घातकृष्टियों की संख्याप्रमाण चयस्वरूप अलग- अलग चौड़ाई और अपना घात होकर शेष रही कृष्टिप्रमाण लंबाई ऐसे दो आयत क्षेत्रप्रमाण द्रव्य अपने घातद्रव्य से ग्रहण करके लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की प्रथमादि कृष्टियों में देने पर लोभ की तीनों संग्रहकृष्टियों में एक गोपुच्छ होता है ।

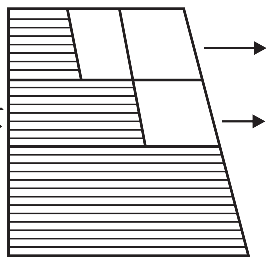

इसी क्रम से अपनी- अपनी नीचे की संग्रह कृष्टियों की घातकृष्टियों की संख्याप्रमाण चयस्वरूप चौड़ाई - चौडाई और घात करके शेष रही अपनी - अपनी कृष्टिप्रमाण लंबाई ऐसा क्रमशः ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११ आयत क्षेत्रस्वरूप द्रव्य अपने -अपने घातद्रव्य में से ग्रहण करके क्रमशः माया की तृतीय संग्रहकृष्टि से क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि तक की कृष्टियों में देने पर बारह संग्रहकृष्टियों में एक गोपुच्छ होता है। इसप्रकार आयताकार क्षेत्ररूप द्रव्य देने पर परस्थान गोपुच्छ की सिद्धि होती है। इसप्रकार स्वस्थान परस्थान गोपुच्छ पूर्ण होता है। ग्यारह संग्रहकृष्टियों में आयतक्षेत्रों की रचना आगे पेज पर है।

यहाँ मोहनीय का सर्वद्रव्य साधिक डेढ़गुणहानि गुणित आदिवर्गणामात्र [व १२] है। उसे अपकर्षण भागहार का भाग देकर साधिक नौ गुणा करने पर सर्व व्ययद्रव्य का प्रमाण आता है, क्योंकि मोह के सर्वद्रव्य को चौवीस और अपकर्षण भागहार का भाग देने पर एक व्ययद्रव्य का प्रमाण आता है। पूर्वोक्त सर्व व्ययद्रव्यों को जोड़ने पर दो सौ छब्बीस (२२६) आता है।

ग्यारह संग्रहकृष्टियों में आयत क्षेत्रों की रचना

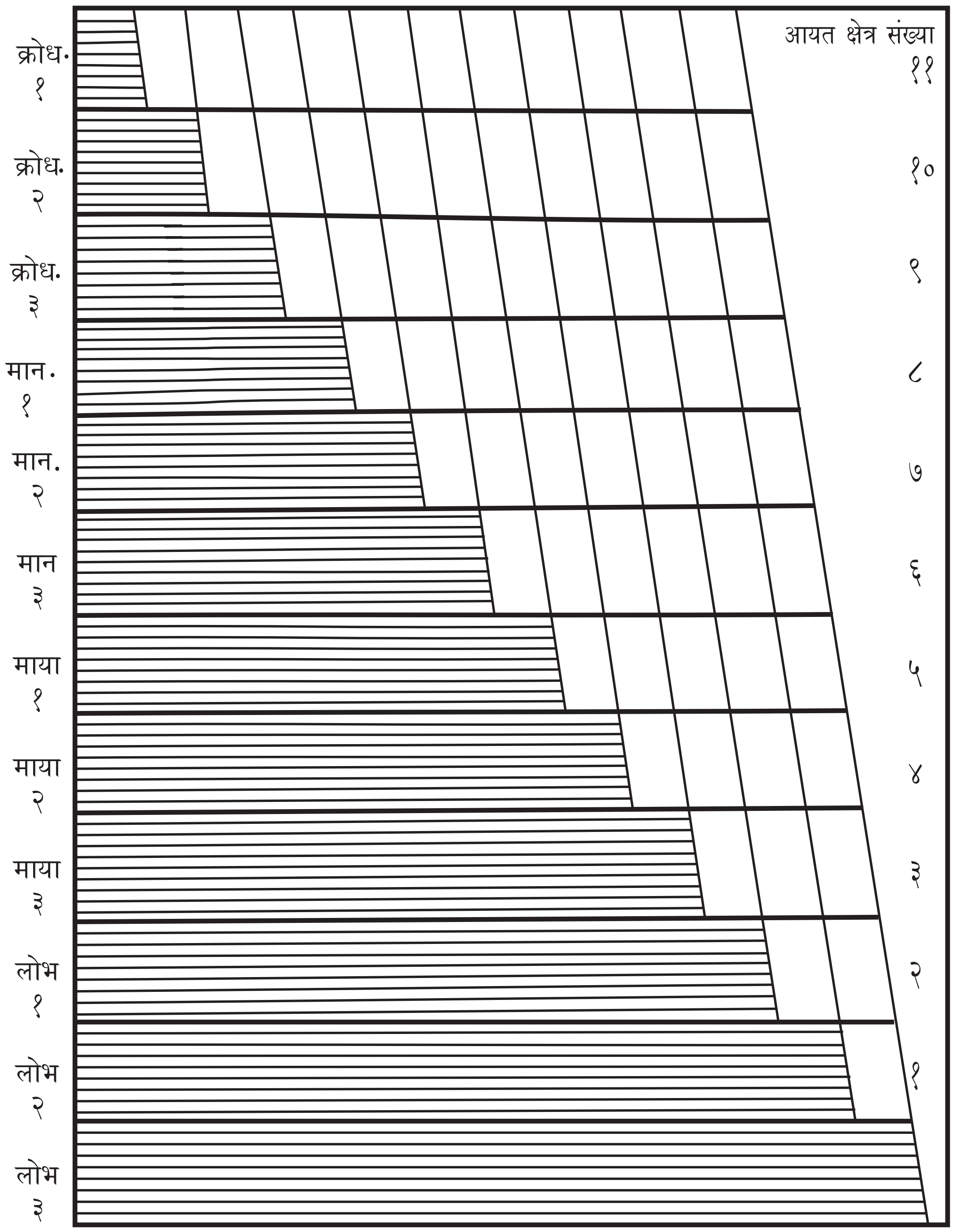

एक व्ययद्रव्य = $\dfrac{\text{सर्वद्रव्य}}{\text{अपकर्षण भागहार} \times २४}$ = $\boxed{\begin{matrix}\text{व १२}\\ \text{ओ २४}\end{matrix}}$

संपूर्ण व्ययद्रव्य = $\dfrac{\text{सर्वद्रव्य} \times २२६}{\text{अपकर्षण भागहार} \times २४}$ = $\begin{matrix}\text{व १२।२२६}\\ \text{ओ २४}\end{matrix}$ = $\boxed{\begin{matrix}\text{व १२।९}\\ \text{ओ}\end{matrix}}$

चौबीस का भाग दो सौ छब्बीस (२२६) में देने पर साधिक ९ अर्थात्($९\frac{१०}{२४}$)आता है इसलिए सर्व व्ययद्रव्य का प्रमाण लाने के लिए सर्वद्रव्य को अपकर्षण भागहार से भाग देकर साधिक ९ से गुणा किया।

मोहनीय के सर्वद्रव्य को अपकर्षण भागहार के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर सर्व घातद्रव्य का प्रमाण आता है।

सर्वकृष्टिद्रव्य ÷ $\dfrac{\text{अपकर्षण भागहार}}{\text{असंख्यात}}$ = $\boxed{\begin{matrix}\text{व १२}\\ \text{२४ ओ}\\ \text{a}\end{matrix}}$ = घातद्रव्य

इस घातद्रव्य में पूर्वोक्त जो व्ययद्रव्य और आयत चतुरस्र क्षेत्ररूप द्रव्य ग्रहण किया था वह उस घातद्रव्य का असंख्यातवाँ भागमात्र है। घातद्रव्य में से वह द्रव्य घटाने पर असंख्यात बहुभागमात्र द्रव्य रहता है । उस शेष बहुभाग को सर्व संग्रहकृष्टियों की अवयवकृष्टियों में अनन्तवें भागप्रमाण चय घटते क्रम से आगमानुसार देता है। देने का विधान-

$\dfrac{\text{शेष घातद्रव्य}}{\text{अवशेष कृष्टियाँ}}$ = मध्यमधन $\quad \dfrac{\text{मध्यमधन}}{\text{दो गुणहानि} - \left(\dfrac{\text{गच्छ}-१}{२}\right)}$ = चय (विशेष)

गच्छ का एकबार संकलन करके उसे चय से गुणा करने पर चयधन (उत्तरधन) आता है।

सर्वद्रव्य- उत्तरधन = आदिधन आदिधन ÷ गच्छ = एकखंड का प्रमाण

उसमें से एकखंड को और उत्तरधन में से गच्छप्रमाण चयों को ग्रहण करके लोभ की जघन्यकृष्टि में देता है। उसकी द्वितीय कृष्टि से वह क्रोध की उत्कृष्ट कृष्टि तक एक- एक खंड समानरूप और उत्तरधन में से एक- एक चय घटते क्रम से देता है। इस प्रकार शेष घातद्रव्य समाप्त होता है। इस प्रकार देने पर सर्वत्र एक गोपुछ होता है।

उदयगदसंगहस्स य मज्झिमखंडादिकरणमेदेण।
दव्वेण होदि णियमा एवं सव्वेसु समयेसु ।।५२८।

उदयगतसङ्ग्रहस्य च मध्यमखण्डादिकरणमेतेन ।
द्रव्येण भवति नियमादेवं सर्वेषु समयेषु ।।५२८।।

अन्वयार्थ - (उदयगदसंगहस्स य) उदयप्राप्त संग्रहकृष्टि के **(एदेण दव्वेण)** इस घातद्रव्य के द्वारा ही **(मज्झिमखंडादिकरणं)** मध्यमखण्डादि करण **(णियमा)** नियम से **(होदि)** होता है। **(एवं)** इसप्रकार विधान **(सव्वेसु समयेसु)** सर्व समयों में होता है ।

विशेषार्थ - आनुपूर्वी संक्रमण होने से जिस संग्रहकृष्टि का वेदन (अनुभव) करता है उसमें आयद्रव्य का अभाव है इसलिए संक्रमणद्रव्य द्वारा मध्यमखण्डादि नहीं होता है इसलिए मध्यमखण्ड, उभयद्रव्य विशेष इत्यादि विधान करने के लिए उस उदयरूप संग्रहकृष्टि के घात द्रव्य में से असंख्यातवाँ भागप्रमाण अलग स्थापन करके शेष घातद्रव्य को पीछे की गाथा में कहे अनुसार विशेष हीनक्रम से देता है। अलग रखे एक भाग द्रव्य को मध्यमखण्डादि विधान से देता है । इस प्रकार सर्व समयों में ऐसा विधान जानना चाहिए । इस प्रकार घातद्रव्य से एक गोपुच्छ हुआ।

अब जो अन्य संग्रहकृष्टि का द्रव्य विवक्षित संग्रहकृष्टि में आया उसे पहले आयद्रव्य कहा था । उसीको ही यहाँ संक्रमण द्रव्य कहते हैं। तथा जो द्रव्य नवीन समयप्रबद्ध में बँधकर कृष्टिरूप होता है उसे बन्धद्रव्य कहते हैं। उसका विधान कहते हैं-

कुछ संक्रमण द्रव्य और कुछ बन्धद्रव्य द्वारा कुछ नवीन अपूर्वकृष्टियों को करता है और कुछ द्रव्य पूर्वकृष्टियों में देता है। उसमें से संक्रमण द्रव्य द्वारा उन संग्रहकृष्टियों की जघन्य कृष्टि के नीचे कुछ नवीन अपूर्वकृष्टियों को करता है, उन्हें अधस्तन कृष्टि कहते हैं ।उन संग्रहकृष्टियों के पूर्व अवयवकृष्टियों के बीच-बीच में नवीन अपूर्वकृष्टियों को करता है, उन्हे अन्तरकृष्टि कहते हैं। बन्धद्रव्य द्वारा अवयवकृष्टियों के मध्य में अपूर्व कृष्टियों को करता है इनको भी अन्तरकृष्टि कहते हैं। कुछ संक्रमण द्रव्य और कुछ बन्धद्रव्य का पूर्वकृष्टियों में ही निक्षेपण करता है।

इसीका विधान आगे की गाथा में कहते हैं-

हेट्ठाकिट्टिप्पहुदिसु संकमिदासंखभागमेत्तं तु।
सेसासंखाभागा अंतरकिट्टिस्स दव्वं तु ।।५२९।।

अधस्तनकृष्टिप्रभृतिषु सङ्क्रमितासङ्ख्यभागमात्रं तु।
शेषा असङ्ख्यभागा अन्तरकृष्टेर्द्रव्यं तु ।।५२९।।

अन्वयार्थ - (संकमिदासंखभागमेत्तं तु) संक्रमण द्रव्य में से असंख्यातवाँ भाग मात्र द्रव्य

(हेट्ठाकिट्टिप्पहुदिसु) अधस्तन कृष्टियों में देता है । **(सेसासंखाभागा)** शेष असंख्यात बहुभाग प्रमाण **(दव्वं)** द्रव्य **(अंतरकिट्टिस्स)** अंतरकृष्टि का है।

विशेषार्थ - संक्रमणद्रव्य को असंख्यात का भाग देकर आया एक भागमात्र द्रव्य अधस्तन अपूर्वकृष्टियों में देता है अर्थात् इस एक भागप्रमाण द्रव्यद्वारा क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि बिना शेष ग्यारह (११) संग्रहकृष्टियों के नीचे अपूर्वकृष्टियों की रचना करता है।शेष बहुभाग प्रमाण द्रव्यद्वारा अंतरकृष्टियों के मध्य में अपूर्वकृष्टियों को करता है।इस गाथा का विशेष अर्थ जानने के लिए गाथा ५३६ का विशेषार्थ देखें।

बन्धद्रव्य का विभाजन कहते हैं-

बंधद्दव्वाणंतिमभागं पुण पुव्वकिट्टिपडिबद्धं।
सेसाणंता भागा, अंतरकिट्टिस्स दव्वं तु ।।५३० ।।

बन्धद्रव्यानन्तिमभागं पुनःपूर्वकृष्टिप्रतिबद्धम्।
शेषानन्ताभागा अन्तरकृष्टेर्द्रव्यं तु ।।५३० ।।

अन्वयार्थ - (बंधद्दव्वाणंतिमभागं पुण) बन्धद्रव्य का अनन्तवाँ भागमात्र द्रव्य **(पुव्वकिट्टिपडिबद्धं)** पूर्वकृष्टिसंबंधी है। **(तु)** और **(सेसाणंता भागा)** शेष अनन्त बहुभाग मात्र **(अंतरकिट्टिस्स दव्वं)** अंतरकृष्टिसंबंधी का द्रव्य है।

विशेषार्थ - बन्धद्रव्य को अनन्त का भाग देकर आया हुआ एक भाग प्रमाण द्रव्य पूर्वकृष्टियों में देता है और शेष अनन्त बहुभागप्रमाण द्रव्यद्वारा नवीन अंतर कृष्टियों की रचना करता है। इस गाथासंबंधी विशेष कथन गाथा ५३६ के विशेषार्थ से जानना चाहिए।

कौन-से द्रव्य के द्वारा कौन-सी कृष्टियाँ होती हैं वह कहते हैं-

कोहस्स पढमकिट्टिं, मोत्तूणेकारसंगहाणं तु।
बंधणसंकमदव्वादपुव्वकिट्टिं करेदी हु ।।५३१ ।।

क्रोधस्य प्रथमकृष्टिं मुक्त्वैकादशसङ्ग्रहाणां तु ।
बन्धनसङ्क्रमद्रव्यादपूर्वकृष्टिं करोति हि ।। ५३१ ।।

अन्वयार्थ - (कोहस्स पढमकिट्टि मोत्तूण) क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि बिना शेष **(एकारसंगहाणं तु)** ग्यारह संग्रहकृष्टियों के **(बंधणसंकमदव्वाद)** बंध और संक्रमण द्रव्य द्वारा **(अपुव्वकिट्टिं)** अपूर्वकृष्टियों को **(करेदी हु)** करता है।

विशेषार्थ - वेद्यमान क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि को छोड़कर शेष ग्यारह संग्रहकृष्टिसंबंधी संक्रम्यमान और यथासंभव बध्यमान द्रव्य द्वारा अपूर्वकृष्टियों की रचना की जाती है किन्तु क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि संबंधी अपूर्वकृष्टियाँ केवल बध्यमान द्रव्यद्वारा रची जाती हैं क्योंकि उसमें संक्रमण द्रव्य का अभाव है इसलिए 'क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि को छोड़कर' ऐसा कहा है। मान, माया और लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टिसंबंधी अपूर्वकृष्टियाँ बन्धद्रव्य और संक्रमण द्रव्य द्वारा रची जाती हैं। शेष संग्रहकृष्टियों संबंधी अपूर्वकृष्टियाँ केवल संक्रमण द्रव्य द्वारा रची जाती हैं क्योंकि उनमें बन्धद्रव्य का अभाव है। प्रथम संग्रहकृष्टि का वेदन करते समय नवीन समयप्रबद्ध का अनुभागबंध सर्व कषायों की प्रथम संग्रहकृष्टि के अनुभाग के समान होता है। यहाँ अपकर्षित द्रव्य को संक्रमणद्रव्य कहा जाता है। सर्वत्र यहाँ ऐसा ही ग्रहण करें।[1]

बंधणदव्वादो पुण चदुसु ट्ठाणेसु पढमकिट्टीसु।
बंधुप्पवकिट्टीदो[2] संकमकिट्टी असंखगुणा ।।५३२।।

बन्धनद्रव्यात्पुनश्चतुर्षु स्थानेषु प्रथमकृष्टिषु।
बन्धोत्पन्नकृष्टितः सङ्क्रमकृष्टिरसङ्ख्यगुणा ।।५३२।।

अन्वयार्थ - (बंधणदव्वादो पुण) बंधद्रव्य से **(पढमकिट्टीसु)** प्रथम संग्रहकृष्टिरूप **(चदुसु ट्ठाणेसु)** चार स्थानों में अपूर्वकृष्टियाँ करता है। **(बंधुप्पवकिट्टीदो)** बन्ध द्रव्य द्वारा उत्पन्न अपूर्वकृष्टियों की अपेक्षा **(संकमकिट्टी)** संक्रमण द्रव्यद्वारा उत्पन्न कृष्टियाँ **(असंख्यगुणा)** असंख्यातगुणी हैं।

विशेषार्थ - क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का वेदन करते समय चारों कषायों का बंध होता है। वह बंधद्रव्य चारों कषायों की प्रथम संग्रहकृष्टि रूप होता हैं। क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि को छोड़कर शेष मान, माया और लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में बंध और संक्रमण द्रव्य द्वारा अपूर्वकृष्टियों की रचना होती है। उसमें से बंध द्रव्य द्वारा अपूर्वकृष्टियाँ अल्प हैं। उससे संक्रमण द्रव्यद्वारा रची हुई अपूर्वकृष्टियाँ असंख्यातगुणी हैं। यहाँ पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है।

---

१) क.पा.सुत्त पृ. ८५२ सू १०८९-१०९१/ज.ध.पु.१५ पृ. २५६
२) पाठभेद - बंधापुव्वकिट्टीदो-आगास प्रति

संखातीद गुणाणि य, पल्लस्सादिमपदाणि गंतूण।
एक्केक्कबंधकिट्टी, किट्टीणं अंतरे होदि।।५३३।।

सङ्ख्यातीतगुणानि च पल्यस्यादिमपदानि गत्वा।
एकैकबन्धकृष्टिः कृष्टीनामन्तरे भवति।।५३३।।

अन्वयार्थ - (पल्लस्सादिमपदाणि संखातीदगुणाणि) पल्य के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातगुणे स्थान आगे **(गंतूण)** जाकर **(किट्टीणं अंतरे)** कृष्टियों के अन्तराल में **(एक्केक्क बंधकिट्टी)** एक- एक बंधकृष्टि **(होदि)** होती है।

विशेषार्थ - यहाँ बन्धद्रव्य समयप्रबद्ध प्रमाण है। उससे संक्रमण द्रव्य असंख्यातगुणा है क्योंकि डेढ़गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्त्वद्रव्य का असंख्यातवाँ भाग प्रमाण संक्रमण द्रव्य है अर्थात् असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण है। द्रव्यानुसार कृष्टि उत्पन्न होती हैं इस न्यायानुसार बन्धद्रव्यद्वारा अल्प अपूर्वकृष्टियाँ रची जाती हैं और संक्रमण द्रव्य द्वारा उनसे असंख्यातगुणी अपूर्वकृष्टियाँ रची जाती हैं। जिन संग्रहकृष्टियों का बन्ध संभव है उनकी अवयव कृष्टियों में से असंख्यातवाँ भागप्रमाण नीचे और ऊपर की कृष्टि बंधयोग्य नहीं है। मध्य की बहुभाग प्रमाण बध्यमान कृष्टियाँ हैं। उनके अंतराल में नवीन अपूर्वकृष्टियों की रचना होती है।बंधयोग्य प्रथम कृष्टि से लेकर पल्योपम के असंख्यात प्रथम वर्गमूल-प्रमाण कृष्टियाँ लांघ कर प्रथम अपूर्वकृष्टि की रचना होती है।इस प्रकार पल्योपम के असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण असंख्यातकृष्टियों के अंतराल को छोड़कर द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ आदि अपूर्वकृष्टियों की रचना होती है। इसप्रकार बन्ध की उत्कृष्ट कृष्टि के नीचे असंख्यात पल्योपम के प्रथम वर्गमूलप्रमाण कृष्टियाँ उतरने पर जो उत्कृष्ट अपूर्वकृष्टि होती है वहाँ तक यह क्रम जानना चाहिए । (चित्र आगे पेज पर है)

बन्धद्रव्य देने का क्रम -

दिज्जदि अणंतभागेणूणकमं बंधगे य णंतगुणं।
तण्णंतरे णंतगुणूणं तत्तोणंतभागूणं ।।५३४।।

दीयतेऽनन्तभागेनोनक्रमं बन्धके चानन्तगुणम्।
तदनन्तरेऽनन्तगुणोनं ततोऽनन्त भागोनम्।।५३४।।

अन्वयार्थ - बध्यमान द्रव्य **(अणंतभागेणूणकमं)** प्रथम अनन्तवें भागहीन क्रम से **(दिज्जदि)** दिया जाता है। पश्चात् **(बंधगे य)** बन्ध की अपूर्वकृष्टि में **(णंतगुणं)** अनन्तगुणा द्रव्य दिया जाता है।

बंधद्रव्य द्वारा पूर्व और अपूर्वकृष्टियों की रचना

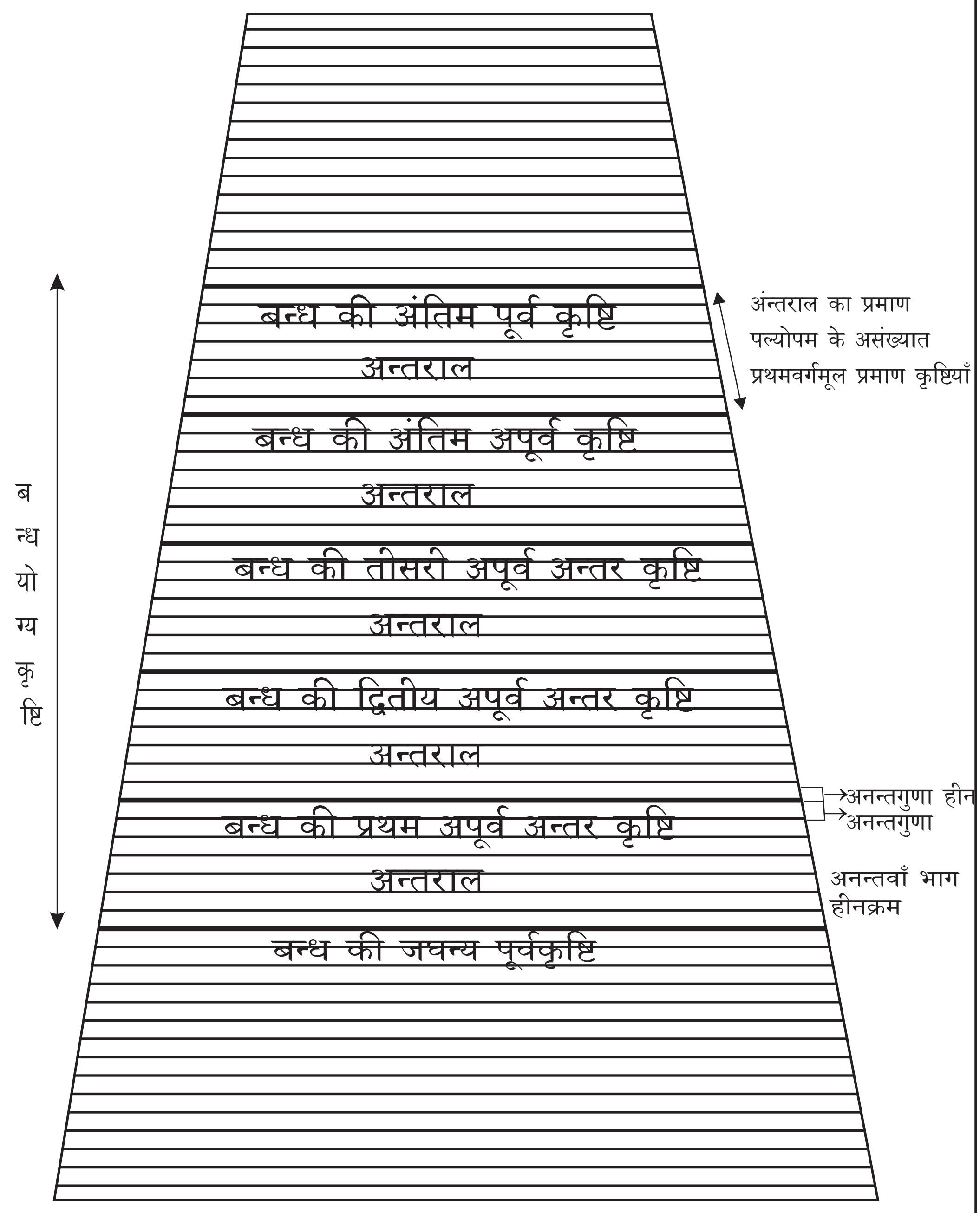

(तण्णंतरे) उसके अनन्तर पूर्वकृष्टि में **(णंतगुणूणं)** अनन्तगुणा हीन द्रव्य दिया जाता है। **(तत्तोणंतभागूणं)** उसके अनन्तर अनन्तवाँ भाग हीनक्रम से द्रव्य दिया जाता है।

विशेषार्थ - चारों कषायों की प्रथम संग्रहकृष्टि में नीचे और ऊपर की असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियों को छोड़कर शेष मध्यम कृष्टिस्वरूप से प्रवर्तमान नवकबन्ध का अनुभाग पूर्वकृष्टि स्वरूप से भी होता है और अपूर्वकृष्टि स्वरूप से भी होता है। नवक समयप्रबद्ध का अनन्तवाँ भाग पूर्वकृष्टियों में दिया जाता है और शेष अनन्त बहुभाग प्रमाण प्रदेशपुंज नवीन अपूर्वकृष्टियों को प्राप्त होता है इसलिए नवक बन्धरूप समयप्रबद्ध के अनन्त बहुभाग को अलग रखकर शेष एक भागप्रमाण द्रव्य रहता है।उसे पूर्व कृष्टियों के संबंध से बंध को प्राप्त होनेवाली जघन्यकृष्टि से देता है। उसमें से बन्धरूप जघन्य कृष्टि में अधिक प्रदेशपुंज देता है। उसके अनन्तर द्वितीय बंधरूप कृष्टि में विशेष हीन (अनन्तवें भाग से हीन) प्रदेशपुंज देता है। उससे तृतीय कृष्टि में विशेषहीन प्रदेशपुंज देता है। इसप्रकार विशेषहीन - विशेषहीन प्रदेशपुंज नवीन अपूर्वकृष्टि प्राप्त होने तक दिया जाता है।उस अंतिम पूर्वकृष्टि में दिये द्रव्य से अपूर्वकृष्टि में अनन्तगुणा द्रव्य देता है क्योंकि यह कृष्टि इस द्रव्यद्वारा ही उत्पन्न हुई है। इस अपूर्वकृष्टि से अनन्तर पूर्वकृष्टि में अनन्तगुणा हीन द्रव्य दिया जाता है क्योंकि यहाँ पूर्वकृष्टि का सद्भाव है। उसके अनन्तर अनन्तवाँ भाग हीन-अनन्तवाँ भाग हीन द्रव्य द्वितीय अपूर्वकृष्टि प्राप्त होने तक दिया जाता है। उस अंतिम पूर्व कृष्टि से द्वितीय अपूर्वकृष्टि में अनन्तगुणा द्रव्य देता है। उसके अनन्तर पुनः विशेषहीन-विशेषहीन द्रव्य दिया जाता है। इस प्रकार एक पूर्वकृष्टि से द्वितीय पूर्वकृष्टि में अनन्तवाँ भाग हीन, पूर्वकृष्टि से अपूर्वकृष्टि में अनन्तगुणा, अपूर्वकृष्टि से पूर्वकृष्टि में अनन्तगुणा हीन, पुनः पूर्वकृष्टियों में अनन्तवाँ भाग हीन ऐसा क्रम बन्ध की उत्कृष्ट कृष्टि तक जानना चाहिए। इसप्रकार द्रव्य देने पर पूर्व और अपूर्व कृष्टियों में गोपुच्छाकार रचना होती है। बंधद्रव्यद्वारा नवीन अपूर्वकृष्टियाँ भी अनन्त होती हैं। इसप्रकार बन्धकृष्टियों का स्वरूप कहा है।

अब संक्रमणद्रव्य देने का क्रम कहते हैं-

संकमदो किट्टीणं संगहकिट्टीणमंतरे होदि
संगह अंतरजादो, किट्टी अंतरभवा असंखगुणा ।।५३५।।

सङ्क्रमतः कृष्टीनां सङ्ग्रहकृष्टीनामान्तरे भवति।
सङ्ग्रहेऽन्तरजातः कृष्टिरन्तरभवा असङ्ख्यगुणाः।।५३५।।

अन्वयार्थ - (संकमदो) संक्रमण द्रव्य से **(किट्टीणं)** अवयव कृष्टियों के और **(संगहकिट्टीणं)** संग्रहकृष्टियों के **(अन्तरे)** अन्तराल में अपूर्व कृष्टियाँ **(होदि)** उत्पन्न होती हैं। **(संगह अंतरजादो)**

संग्रहकृष्टियों के अन्तराल में उत्पन्न हुई कृष्टियों से **(अंतरभवा किट्टी)** अवयवकृष्टियों के अंतराल में उत्पन्न हुई कृष्टियाँ **(असंखगुणा)** असंख्यातगुणी हैं।

विशेषार्थ - संक्रमण द्रव्य से अपूर्व कृष्टियों की रचना दो जगह होती है।

१) कृष्टिअन्तराल में अर्थात् अवयवकृष्टियों के मध्य में और

२) संग्रहकृष्टि-अंतराल में अर्थात् दो संग्रहकृष्टियों के मध्य में होती है। क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि को छोड़कर शेष ग्यारह संग्रहकृष्टियों के नीचे असंख्यातवें भागप्रमाण अपूर्वकृष्टियों की रचना होती है उसको ही संग्रहकृष्टियों के अंतराल में उत्पन्न हुई कृष्टियाँ ऐसा कहा है। इनकी रचना अपकर्षित समस्त द्रव्य के असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्यद्वारा होती है इसलिए ये कृष्टियाँ अल्प हैं। इन्हीं ग्यारह संग्रहकृष्टिसंबंधी अवयवकृष्टियों के अन्तराल में जो अपूर्वकृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं,उन्हे कृष्टियों के अन्तराल में उत्पन्न अपूर्वकृष्टियाँ कहते हैं। अपकर्षित समस्त द्रव्य के असंख्यात बहुभाग द्रव्य द्वारा इनकी रचना होती है इसलिए ये कृष्टियाँ संग्रहकृष्टि- अंतराल में उत्पन्न कृष्टियों से असंख्यातगुणी हैं।

संक्रमण द्रव्य द्वारा अपूर्वकृष्टियों की रचना

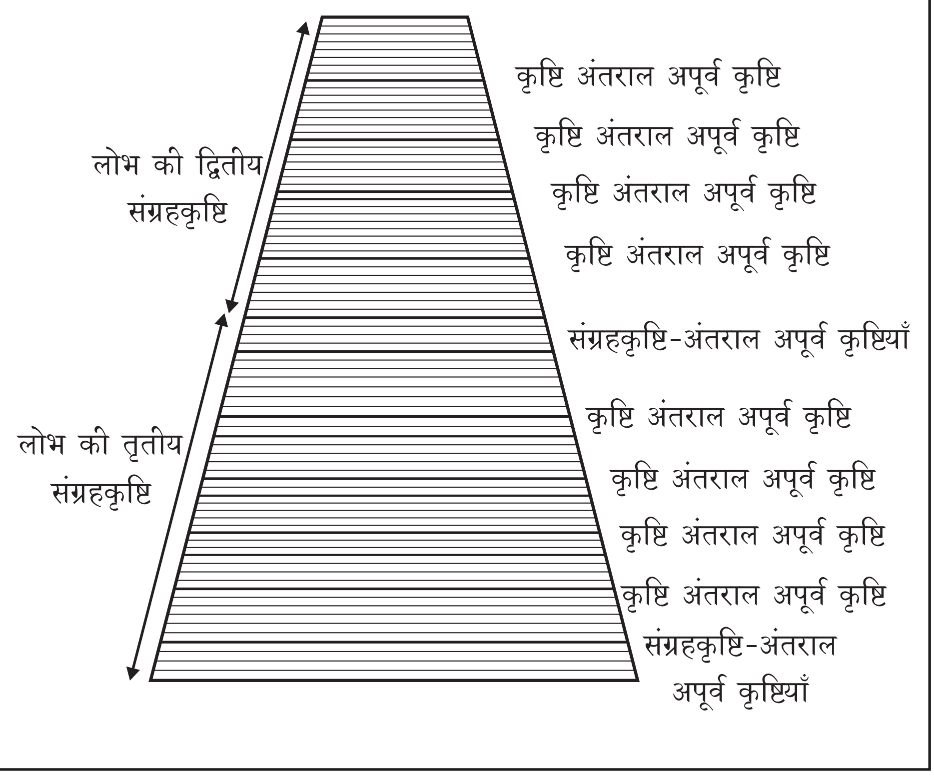

संगहअंतरजाणं अपुव्वकिट्टिं व बंधकिट्टिं वा ।
इदराणमंतरं पुण पल्लपदासंखभागं तु ।।५३६।।

सङ्ग्रहान्तरजानामपूर्वकृष्टिमिव बन्धकृष्टिमिव ।
इतरेषामन्तरं पुनः पल्यपदासङ्ख्यभागस्तु ।।५३६।।

अन्वयार्थ - (संगह अंतरजाणं) संग्रहकृष्टियों के अन्तराल में उत्पन्न कृष्टियों में द्रव्य देने का विधान **(अपुव्वकिट्टिं वा)** कृष्टिकरणकाल के द्वितीय समय में की गई अपूर्वकृष्टियों के समान जानना चाहिए। **(पुण)** पुनः **(इदराणं)** इतर अर्थात् अवयवकृष्टियों के मध्य में उत्पन्न कृष्टियों का विधान **(बंधकिट्टिं वा)** बंधकृष्टियों के समान जानना **(तु)** परन्तु **(अंतरं)** दो अपूर्वकृष्टियों में अंतर **(पल्लपदासंखभागं)** पल्य के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भागमात्र है।

विशेषार्थ - पूर्व में कृष्टिकरणकाल में द्वितीय समय में अपूर्वकृष्टियों में द्रव्य देने का जो विधान कहा है वैसा ही विधान संपूर्णरूप से संक्रमण द्रव्यद्वारा संग्रहकृष्टियों के अंतराल में रची जाने वाली अपूर्वकृष्टि संबंधी भी जानना क्योंकि उष्ट्रकूट श्रेणी के आकार से निषेक प्ररूपणा की अपेक्षा से दोनों में विशेषता नहीं है। विशेषरूप से देखने पर उससे इसमें थोड़ा भेद है। वह इसप्रकार है-

कृष्टिकरणकाल के प्रथम समय में कृष्टिरूप से परिणत द्रव्य से द्वितीय समय में कृष्टि में दिया जानेवाला द्रव्य असंख्यातगुणा है। उससे तृतीय समय में असंख्यातगुणा द्रव्य कृष्टिरूप होता है। इसप्रकार प्रत्येक समय में विशुद्धि के माहात्म्य से कृष्टिरूप से परिणत द्रव्य असंख्यातगुणा है।

उसमें से अधस्तन अपूर्व कृष्टियों की अंतकृष्टि में दिये जाने वाले द्रव्य से पूर्वकृष्टि की जघन्यकृष्टि में दिया जानेवाला द्रव्य असंख्यातवाँ भाग हीन है। उसके अनन्तर द्वितीयादि पूर्वकृष्टियों में अनन्त भागहानिरूप से यथाक्रम देकर पूर्वकृष्टि की अंतिमकृष्टि में दिये जाने वाले द्रव्य से अपूर्वकृष्टि की प्रथम कृष्टि में दिया जानेवाला द्रव्य असंख्यातवाँ भाग अधिक है। पुनः शेष अपूर्वकृष्टियों में अनन्तवाँ भाग हीन क्रम से द्रव्य दिया जाता है।

परन्तु कृष्टिवेदक काल में अपूर्वकृष्टियों में दिया जानेवाला द्रव्य पूर्व कृष्टियों के द्रव्य से असंख्यातवाँ भाग मात्र ही है इसलिए यहाँ अपूर्व कृष्टियों की अंतिमकृष्टि में दिये जानेवाले द्रव्य से पूर्वकृष्टियों की जघन्यकृष्टि में दिया जानेवाला द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है, क्योंकि यहाँ अधस्तनकृष्टि द्रव्य से मध्यमखंड द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है और पूर्वकृष्टियों की अंतिमकृष्टि में दिये जानेवाले द्रव्य से अपूर्वकृष्टियों की प्रथम कृष्टि में दिया जाने वाला द्रव्य असंख्यातगुणा है क्योंकि यहाँ मध्यमखंड द्रव्य से अधस्तनकृष्टि का द्रव्य असंख्यातगुणा है।

जिस प्रकार असंख्यातकृष्टियों का अंतर देकर बंधद्रव्य द्वारा अपूर्वकृष्टियों की रचना होती है

उसी प्रकार पल्योपम के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियों का अंतर देकर अवयव कृष्टियों में संक्रमण द्रव्यद्वारा अपूर्वकृष्टियों की रचना होती है वहाँ दीयमान द्रव्य की प्ररूपणा बंधकृष्टि के समान ही जानना चाहिए। केवल इतनी विशेषता है कि वहाँ पल्योपम के असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण कृष्टियाँ जाने पर बन्धद्रव्य द्वारा एक- एक अपूर्वकृष्टि की रचना होती है। परन्तु यहाँ उससे थोड़े अन्तर अर्थात् पल्योपम के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टि जाने पर संक्रमण द्रव्य द्वारा एक- एक अपूर्वकृष्टि उत्पन्न होती है। वहाँ डेढ़गुणहानि का त्रिभाग प्रमाण स्थान जाने पर एक-एक अपूर्वकृष्टि की उत्पत्ति होती है। परन्तु यहाँ अपकर्षण-उत्कर्षण भागहार प्रमाण स्थान जाने पर एक-एक अपूर्व कृष्टि की उत्पत्ति होती है।

अब यहाँ प्रथम द्रव्य का विशेष विधान कहते हैं-

क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि बिना अन्य ग्यारह कृष्टियों में जो आयद्रव्य है उसे ही संक्रमण द्रव्य कहते हैं। क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में आयद्रव्य का अभाव है।

गाथा ५२८ के भावार्थ में कहा गया था कि वेद्यमान संग्रहकृष्टि में घातद्रव्य के असंख्यातवें भागमात्र द्रव्य को अलग स्थापन करें। उस अलग स्थापित घातद्रव्य को देने का विधान कहते हैं–

पूर्वकृष्टियों में एक- एक विशेष (चय) घटता क्रम है। उस विशेष का प्रमाण लाते हैं।यहाँ घात करने पर शेष रही कृष्टियों का प्रमाण गच्छ है। एक कम गच्छ के अर्ध से न्यून दो गुणहानि से गुणित गच्छ का भाग सर्वद्रव्य को देने पर विशेष का प्रमाण आता है।

यहाँ सर्वद्रव्य [व १२] (डेढ़गुणहानि गुणित प्रथम वर्गणा) गच्छ [|४ / ख]

$$\frac{\text{सर्वद्रव्य}}{\text{गच्छ} \times \left\{ \text{दो गुणहानि} - \frac{(\text{गच्छ}-१)}{२} \right\}} = \text{विशेष (चय)}$$

[व १२ १ / |४ । १६ - |४ / ख ख २]

१) अधस्तन शीर्षविशेषद्रव्य - लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में एक विशेष आदि और एक विशेष उत्तर और एक कम अपनी कृष्टियों का प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके जो संकलनधन आता है उतना अधस्तनशीर्ष विशेष द्रव्य है और अन्य संग्रहकृष्टियों में जितनी नीचे की संग्रहकृष्टियों संबंधी कृष्टियों का प्रमाण उतना विशेष आदि (प्रथम कृष्टि में देनेयोग्य विशेष), एक विशेष उत्तर और अपनी-अपनी कृष्टियों के प्रमाणमात्र गच्छ स्थापित करके जो संकलन धन आता है उतना - उतना अधस्तन शीर्ष विशेष द्रव्य है। इस अधस्तन शीर्षद्रव्य को ग्यारह संग्रहकृष्टियों के आयद्रव्य से और क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के घातद्रव्य से ग्रहण करके रखे। इस द्रव्य को यथायोग्य कृष्टियों में देने पर सर्व पूर्वकृष्टियाँ लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि समान होती हैं।

२) मध्यमखंडद्रव्य - लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की प्रथमकृष्टि को [व १२| / |४ / ख] (यहाँ सर्वद्रव्य को सर्वकृष्टियों के प्रमाण से भाग देने पर मध्यमधन आता है।उसमें विशेष का प्रमाण

अधिक करने पर जघन्य कृष्टि होती है) अपकर्षण भागहार से असंख्यातगुणा ऐसे पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर एक खंड का प्रमाण [व १२ / ४ ओ ๑ ख] आता है। उसे अपनी - अपनी कृष्टियों के प्रमाण से गुणा करने पर अपनी-अपनी संग्रहकृष्टियों का मध्यमखंड आता है। इस द्रव्य को ग्यारह संग्रहकृष्टियों के आयद्रव्य से और क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के घातद्रव्य से ग्रहण करके अलग स्थापन करें। इससे एक-एक कृष्टि में एक - एक खंड का द्रव्य देने पर सर्वकृष्टि समान ही रहती है।

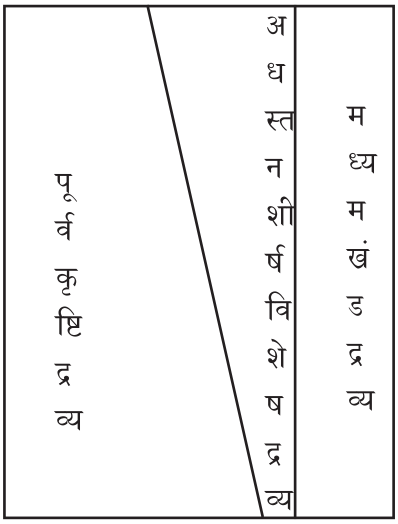

३) **अधस्तन अपूर्वकृष्टिसंबंधी द्रव्य -** एक मध्यमखंड से अधिक लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की प्रथमकृष्टि का जो प्रमाण [व १२ / ४ ख] है उतना एक अधस्तन कृष्टि का द्रव्य है। इसे अपनी- अपनी अधस्तनकृष्टियों के प्रमाण से गुणा करने पर अधस्तन अपूर्व कृष्टिसंबंधी द्रव्य आता हैं। अपनी-अपनी पूर्व कृष्टियों के प्रमाण को अपकर्षण भागहार से असंख्यातगुणे ऐसे पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर संग्रहकृष्टियों के नीचे की गई अधस्तन कृष्टियों का प्रमाण आता है। [४ / ख ओ ๑] इस अधस्तन अपूर्वकृष्टिसंबंधी द्रव्य को ग्यारह संग्रहकृष्टियों के आयद्रव्य से ग्रहण करके पृथक् स्थापन करें। इसके द्वारा संग्रहकृष्टियों के नीचे नवीन अपूर्वकृष्टियों की रचना होती है। क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमण द्रव्य का अभाव होने से उसके नीचे नवीन अपूर्वकृष्टियाँ नहीं होती है।

४) **उभयद्रव्य विशेषद्रव्य -** पूर्व-अपूर्व कृष्टियों का यहाँ जितना प्रमाण है उतना गच्छ है। एक कम गच्छ के अर्ध से न्यून दो गुणहानि से गुणित गच्छ से सर्वद्रव्य को भाग देने पर उभयद्रव्य के एक विशेष का प्रमाण आता है। क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में एक विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और क्रोध

की प्रथम संग्रहकृष्टि की सर्वकृष्टियों का जितना है उतना प्रमाणमात्र गच्छ स्थापित करके जितना संकलन धन आता है उतना उभयद्रव्य विशेष का द्रव्य है। उसमें से एक विशेष का अनन्तवाँ भागमात्र द्रव्य घटज्ञ करके जो द्रव्य का प्रमाण आता है उतना क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के घातद्रव्य से ग्रहण करके अलग स्थापन करें । यहाँ विशेष का अनन्तवाँ भागप्रमाण द्रव्य घटाया उतना द्रव्य आगे बंधद्रव्य में से मिलेगा इसलिए घटाया है। उसका वर्णन आगे करने वाले हैं। यहाँ क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का घातद्रव्य अलग स्थापन किया था वह समाप्त हुआ ।

पूर्व में व्यतीत हुई संग्रहकृष्टियों की अवयव कृष्टियों से एक अधिक विशेष आदि का प्रमाण, एक-एक चय बढ़ता जाता है इसलिए एक विशेष उत्तर का प्रमाण, अपनी-अपनी पूर्व कृष्टियों का जितना प्रमाण है उतना गच्छ स्थापित करके संकलन करने पर अपना-अपना उभय द्रव्य विशेष का द्रव्य होता है। इसे ग्यारह संग्रहकृष्टियों के अपने-अपने आयद्रव्य में से ग्रहण करके अलग रखें।

विशेष यह है कि जिन संग्रहकृष्टियों का बंध होता है उनके उभयद्रव्यविशेष में से एक विशेष का अनन्तवाँ भागमात्र द्रव्य कम करें क्योंकि यह कम किया हुआ द्रव्य बंधद्रव्य में से ग्रहण करके देता है। इसे यथायोग्य कृष्टियों में देने पर सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टियों की गोपुच्छाकार रचना होती है।

५)अंतर अपूर्व कृष्टिद्रव्य - इन पूर्वोक्त चार द्रव्यों को (अधस्तनशीर्ष, मध्यमखंड, अधस्तनकृष्टि और उभयद्रव्यविशेष) घटा करके जो अपना-अपना आयद्रव्य शेष रहता है उसे अपने-अपने संक्रमण द्रव्य से की गई अपूर्व अंतरकृष्टियों के प्रमाण से भाग देने पर एक अंतरकृष्टिसंबंधी खंड का प्रमाण आता है। उसे अपने- अपने संक्रमण द्रव्य से की हुई अपूर्व अंतरकृष्टियों के प्रमाण से गुणा करने पर अपने- अपने संक्रमण द्रव्य से उत्पन्न हुई अंतरकृष्टियों का समान द्रव्य होता है। उसे अलग स्थापित करें। इसके द्वारा पूर्वकृष्टियों के बीच-बीच में नवीन अपूर्वकृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं।

यहाँ संक्रमण द्रव्य से हुई अंतरकृष्टियों का प्रमाण लाने के लिए उपाय कहते हैं- एक मध्यमखंड से अधिक लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि समान द्रव्य द्वारा [व १२॥ । ४ ख] एक कृष्टि होती है तो पूर्वोक्त चार प्रकार के द्रव्य से न्यून अपने-अपने आयद्रव्य द्वारा [व १२।२- २४ ओ] (लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि के आयद्रव्य से पूर्वोक्त चार द्रव्य घटाने के लिए आगे की कुछ कम की संदृष्टि '—' की गई है) कितनी कृष्टियाँ होगी? ऐसा त्रैराशिक करने पर संक्रमणद्रव्य द्वारा की गई अंतरकृष्टियों का प्रमाण आता है।

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
व १२॥ । ४ ख इतने द्रव्य की	१ कृष्टि एक कृष्टि	व १२।२- २४ ओ इतने द्रव्य की कितनी?	व १२।२- २४ ओ व १२॥ । ४ ख

यहाँ कुछ कम और कुछ अधिक को न गिनते हुए व १२ का अपवर्तन करें और भागहार के भागहार को ४ / ख भाज्य राशि करके राशि का गुणकार २- को भागहार का भागहार करने पर ऐसा आता है। यह लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की संक्रमणांतर कृष्टियों का प्रमाण है। इसी प्रकार शेष दस संग्रहकृष्टियों में विधान करने पर अन्य संदृष्टि तो समान ही है और भागहार का भागहार अपने अपने एक आदि आयद्रव्य का प्रमाण कुछ कम होता है उसकी संदृष्टि

४
ख २४ ओ
२-

ग्यारह संग्रहकृष्टियों में संक्रमणांतर कृष्टियों का प्रमाण

लोभ			माया			मान			क्रोध	
तृतीय	द्वितीय	प्रथम	तृतीय	द्वितीय	प्रथम	तृतीय	द्वितीय	प्रथम	तृतीय	द्वितीय
४ ख२४ओ २-	४ ख२४ओ १-	४ ख२४ओ ३-	४ ख२४ओ २-	४ ख२४ओ १-	४ ख२४ओ ३-	४ ख२४ओ २-	४ ख२४ओ १-	४ ख२४ओ १५-	४ ख२४ओ १४-	४ ख२४ओ १८२-

इसका भाग अपनी- अपनी पूर्वकृष्टियों में देने पर अपनी - अपनी अन्तरकृष्टियों के अन्तराल का प्रमाण आता है।

पूर्वकृष्टि ÷ अंतर अपूर्वकृष्टियाँ = दो अपूर्वकृष्टियों में अन्तराल का प्रमाण

४
ख २४ ४
ख २४ ओ
२-

= ओ / २- दो अपूर्वकृष्टियों में अन्तराल का प्रमाण

अर्थात् दो अपूर्व अंतरकृष्टियों में इतनी पूर्वकृष्टियाँ है। इसीप्रकार अन्यकृष्टियों में भी जानना चाहिए। उसकी संदृष्टि-

ग्यारह संग्रहकृष्टियों में दो अपूर्वकृष्टियों में अन्तराल का प्रमाण

लोभ			माया			मान			क्रोध		
तृतीय	द्वितीय	प्रथम	तृतीय	द्वितीय	प्रथम	तृतीय	द्वितीय	प्रथम	तृतीय	द्वितीय	प्रथम
ओ २-	ओ १-	ओ ३-	ओ २-	ओ १-	ओ ३-	ओ २-	ओ १-	ओ १५-	ओ १४-	ओ १८२-	०

इसप्रकार संक्रमणद्रव्य द्वारा उत्पन्न कृष्टियों के द्रव्य का विभाग कहा । क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में आयद्रव्य का अभाव है इसलिए वहाँ यह विधान संभव नहीं । वहाँ शून्य जानना चाहिए ।

संक्रमण द्रव्य में पाँच प्रकार के द्रव्य का प्रमाण

कषाय	लोभ			माया		
संग्रह	तृतीय	द्वितीय	प्रथम	तृतीय	द्वितीय	प्रथम
अधस्तनशीर्ष विशेषद्रव्य	वि १ ४ ४ १ ख २४ ख २४ । २	वि १ ४ ४ ३ ख २४ ख २४ । २	वि १ ४ ४ ५ ख २४ ख २४ । २	वि १ ४ ४ -७ ख २४ ख २४ । २	वि १ ४ ४- ९ ख २४ ख २४ । २	वि १ ४ ४- ११ ख २४ ख २४।२
मध्यमखंडद्रव्य	व १२ ४ ४ ओ ब ब ख २४ ख	व १२ ४ ४ ओ ब ब ख २४ ख	व १२ ४ ४ ओ ब ब ख २४ ख	व १२ ४- ४ ओ ब ब ख २४ ख	व १२ ४- ४ ओ ब ब ख २४ ख	व १२ ४- ४ ओ ब ब ख २४ ख
अधस्तन कृष्टिसंबंधीद्रव्य	व १२ ४ ४ ओ ब ख २४ ख	व १२ ४ ४ ओ ब ख २४ ख	व १२ ४ ४ ओ ब ख २४ ख	व १२ ४- ४ ओ ब ख २४ ख	व १२ ४- ४ ओ ब ख २४ ख	व १२ ४ - ४ ओ ब ख २४ ख
उभयद्रव्य विशेषद्रव्य	वि १ ४ ४ ४७ ख २४ ख २४ २	वि १ ४ ४ ४५ ख २४ ख २४ २	वि १ ४ ४ ४३ ख २४ ख २४ २	वि १ ४ ४- ४१ ख २४ ख २४ २	वि १ ४ ४- ३९ ख २४ ख २४ २	वि १ ४ ४- ३७ ख २४ ख २४ २
संक्रमणांतरकृष्टि समानखंडद्रव्य	व १२ । २ - २४ ओ	व १२ । १ - २४ ओ	व १२ । ३ - २४ ओ	व १२ । २ - २४ ओ	व १२ । १ - २४ ओ	व १२ । ३ - २४ ओ

कषाय	मान			क्रोध		
संग्रह	तृतीय	द्वितीय	प्रथम	तृतीय	द्वितीय	प्रथम
अधस्तनशीर्ष विशेषद्रव्य	वि १ ४ ४ ≡ १३ ख २४ ख २४ २	वि १ ४ ४ ≡ १५ ख २४ ख २४। २	वि १ ४ ४ ≡ १७ ख २४ ख २४। २	वि १ ४ ४ = १९ ख २४ ख २४ । २	वि १ ४ ४ = २१ ख २४ ख २४ । २	वि १ ४ ४ = ४५५ ख २४ ख २४। २
मध्यमखंडद्रव्य	व १२ ४ ≡ ४ ओ ब ब ख २४ ख	व १२ ४ ≡ ४ ओ ब ब ख २४ ख	व १२ ४ ≡ ४ ओ ब ब ख २४ ख	व १२ ४ = ४ ओ ब ब ख २४ ख	व १२ ४ = ४ ओ ब ब ख २४ ख	व १२ ४ =१३ ४ ओ ब ब ख २४ ख
अधस्तन कृष्टिसंबंधीद्रव्य	व १२ ४ ≡ ४ ओ ब ख २४ ख	व १२ ४ ≡ ४ ओ ब ख २४ ख	व १२ ४ ≡ ४ ओ ब ख २४ ख	व १२ ४ = ४ ओ ब ख २४ ख	व १२ ४ = ४ ओ ब ख २४ ख	०
उभयद्रव्य विशेषद्रव्य	वि १ ४ ४≡ ३५ ख २४ ख २४ २	वि १ ४ ४ ≡ ३३ ख २४ ख २४ २	वि १ ४ ४ ≡ ३१ ख २४ ख २४ २	वि १ ४ ४ = २९ ख २४ ख २४ २	वि १ ४ ४ = २७ ख २४ ख २४ २	वि १ ४ ४ = १६९ ख २४ ख २४ २
संक्रमणांतरकृष्टि समानखंडद्रव्य	व १२ । २ - २४ ओ	व १२ । १ - २४ ओ	व १२ ।१५ - २४ ओ	व १२ । १४ - २४ ओ	व १२ । १८२ - २४ ओ	०

अब बंधद्रव्यद्वारा उत्पन्न कृष्टियों के द्रव्य का विभाग कहते हैं-

मोहनीय के एक समयप्रबद्ध को आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर जो बहुभाग आता है उसके चार समान भाग करें। एक भाग को आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग प्रथम समान भाग में मिलाने पर लोभ का बंधद्रव्य आता है। पुन: शेष एक भाग को आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर आया हुआ बहुभाग दूसरे समान भाग में मिलाने पर मायाकषाय का बंधद्रव्य आता है । पुन: शेष रहे एक भाग को आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर आया हुआ बहुभाग तृतीय समान भाग में मिलाने पर क्रोध का बंधद्रव्य आता है। शेष एकभाग को चौथे समान भाग में मिलाने पर मानकषाय का बंधद्रव्य आता है।

यहाँ स्थूलरूप से संदृष्टि इस प्रकार दी गयी है - मोहनीय के समयप्रबद्ध की संदृष्टि 'स' । इसे चार का भाग देने पर एक कषाय का द्रव्य [स/४] आता है। उसमें से मान का अल्प, उससे क्रोध, माया और लोभ का द्रव्य क्रम से अधिक है।

चारो कषायों के बन्धद्रव्य की संदृष्टि

मान	क्रोध	माया	लोभ
स ४	। स ४	॥ स ४	।॥ स ४

क्रम से अधिकद्रव्य दिखाने के लिए एक- एक खडी रेखा बढ़ायी है ।

अब बंधद्रव्य द्वारा की गई अंतर कृष्टियों और वहाँ के अंतराल का प्रमाण लाने के लिए इस द्रव्य में से बंधद्रव्य द्वारा की गई अंतरकृष्टियों का विशेष संकलनरूप द्रव्य और पूर्व एक विशेष का अनन्तवाँ भागमात्र द्रव्य आगे कहा है वह कम करने पर शेष जितना- जितना द्रव्य रहता है उसे इच्छाराशि करके त्रैराशिक करते हैं -

एक मध्यमखंड से अधिक लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्यकृष्टि के द्रव्यप्रमाण द्रव्य द्वारा एक अंतरकृष्टि होती है तो पूर्वोक्त द्रव्य द्वारा कितनी अंतरकृष्टियाँ होगी? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर जो लब्ध आता है उतना बंधद्रव्य से उत्पन्न अंतरकृष्टियों का प्रमाण है।

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्ध
समयप्रबद्ध / सर्व कृष्टियाँ = मध्यमखंडसहित लोभ की जघन्यकृष्टि का द्रव्य । स १२ । ४ ख	१ कृष्टि	मानद्रव्य स ४	स । ४ स १२ । ४ ख

लोभ की जघन्यकृष्टि के द्रव्य में मध्यमखंड मिलाने के लिए कुछ अधिक की संदृष्टि की है ।

[| ४ / ख|४|१२] यहाँ समयप्रबद्ध का अपवर्तन करके भागहार के भागहार को [| ४ / ख] भाज्यराशि करके भागहार में चार और डेढ़गुणहानि का परस्पर गुणा करने पर छह गुणहानियाँ होती है। गुणहानि की संदृष्टि आठ और उसके आगे ६ गुणकार लिखा है।

| ४ / ख ४|८|$\frac{३}{२}$ = [| ४ / ख ८|६]

सर्व पूर्वकृष्टियों के प्रमाण को छह गुणहानि का भाग देने पर जितना प्रमाण आता है उतना बंधद्रव्य से उत्पन्न अंतरकृष्टियों का प्रमाण आता है वे अंतरकृष्टियाँ मान में अल्प, उससे क्रोध में विशेष अधिक, उससे माया में विशेष अधिक, उससे लोभ में विशेष अधिक जानना चाहिए क्योंकि इनका द्रव्य भी क्रम से अधिक है।

बन्धांतर कृष्टियों के प्रमाण की संदृष्टि

मान	क्रोध	माया	लोभ
४ / ख ८|६		४ / ख ८|६	‖ ४ / ख ८|६	||| ४ / ख ८|६

यहाँ एक- एक कषाय की एक-एक संग्रहकृष्टि का ही बंध है इसलिए चार संग्रहकृष्टियों में ही बंधकृष्टियों की रचना होती है।इस बंधद्रव्य के द्वारा की गई अंतरकृष्टियों का प्रमाण पूर्वोक्त संक्रमण द्रव्य से की गई अंतरकृष्टियों के प्रमाण से असंख्यातगुणा हीन है क्योंकि संक्रमण की अंतरकृष्टियों का प्रमाण लाने के लिए सर्वकृष्टियों को अपकर्षण भागहार का भाग दिया और बंध की अंतरकृष्टियों का प्रमाण लाने के लिए सर्वकृष्टियों को पल्य के असंख्यात प्रथम वर्गमूल का भाग दिया।बंधकृष्टियों का भागहार संक्रमण कृष्टियों के भागहार से असंख्यातगुणा है। भागहार बड़ा हो तो उत्तर छोटा आता है। भागहार असंख्यातगुणा है इसलिए लब्ध असंख्यातगुणा हीन आता है ।

अपनी-अपनी संग्रहकृष्टि के ऊपर और नीचे की असंख्यातवें भागमात्र कृष्टियाँ छोड़कर संक्रमण की अंतरकृष्टिसहित मध्य की असंख्यात बहुभागप्रमाण बंधरूप पूर्वकृष्टियों को बंधद्रव्य द्वारा की गई अपनी-अपनी अपूर्व अंतरकृष्टियों के प्रमाण से भाग देने पर बंधकृष्टियों के अंतराल का प्रमाण आता है। बंधद्रव्य द्वारा की गई दो अपूर्व अंतरकृष्टियों में जितनी पूर्वकृष्टियाँ प्राप्त होती हैं उनके प्रमाण को अंतराल कहते हैं।

संग्रहकृष्टि की पूर्व अवयव कृष्टियाँ ÷ बंधांतर कृष्टियों का प्रमाण = बंधांतर कृष्टियों का अंतराल

४ / ख २४ ÷ ४ / ख ८|६ = ४ / ख २४ ४ / ख ८|६ = ८|६ / २४ = [८ / ४] (४ इसका अपवर्तन करके भागहार के भागहार को ८|६ भाज्यराशि करने पर गुणहानि का चौथा भाग आता है।

लोभ, माया और मान में गुणहानि का चौथा भागमात्र अंतराल का प्रमाण है और क्रोध में इससे तेरह गुणा अंतराल का प्रमाण होता है क्योंकि उसकी कृष्टियाँ तेरह गुणा हैं। ८ ÷ ४ × १३ = २६ अर्थात् सवा तीन गुणहानियाँ। बंधकृष्टियों का अंतराल संक्रमण की अंतरकृष्टियों के अंतराल से असंख्यातगुणा है। अपने-अपने पूर्वोक्त बंधद्रव्य को स्थापित करके | स/४ | स/४ | स/४ | स/४ | इनको अनन्त का भाग देकर एक भाग अलग रखकर रहे बहुभाग द्रव्य द्वारा नवीन बंधांतरकृष्टियाँ उत्पन्न करता है।

बंधांतर कृष्टिविशेष द्रव्य का प्रमाण कहते हैं-

बंधद्रव्य द्वारा की गई अपूर्व अंतरकृष्टियों में से अंतिमकृष्टि में पूर्वकृष्टि की अंतिमकृष्टि से जितनी कृष्टियों के नीचे यह कृष्टि प्राप्त होती है उतने चय चाहिए यही आदि का प्रमाण है और मध्य में अंतराल का जितना प्रमाण है उसमें एक अधिक चय उत्तर का प्रमाण है और अपने-अपने बंधद्रव्य द्वारा की गई अंतरकृष्टियों का प्रमाणमात्र गच्छ स्थापित करके जो संकलन धन आता है उतना बंधांतरकृष्टि विशेषद्रव्य जानना चाहिए । क्रोध, मान और लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि के बंधांतर विशेष में आदि, उत्तर, गच्छ की और संकलित धन की ऐसी संदृष्टि होती है -

	क्रोध प्र.	**मान प्र.**	**माया प्र.**	**लोभ प्र.**
आदि	वि ४।१३ ख।२४	वि ४।१५ ख।२४	वि ४।१८ ख।२४	वि ४।२१ ख।२४
उत्तर	वि १ ८।१३ ४	वि १ ८ ४	वि १ ८ ४	वि १ ८ ४
गच्छ	४ ख।८।६	४ ख।८।६	४ ख।८।६	४ ख।८।६
संकलितधन	वि ४।१३।४ ख।२४।२।ख।८।६	वि ४।३१।४ ख।२४।२।ख।८।६	वि ४।३७।४ ख।२४।२।ख।८।६	वि ४।४३।४ ख।२४।२।ख।८।६

(इसका स्पष्टीकरण आगे के पेज पर देखे)

इस द्रव्यद्वारा बंध की नवीन अपूर्वकृष्टियों और अन्यकृष्टियों में एक गोपुच्छ का सद्भाव होता है। पूर्व में एक विशेष का अनन्तवाँ भागमात्र हीन उभयद्रव्यविशेष कहा था उसमें इसका निक्षेपण जानना चाहिए। अर्थात् अन्यकृष्टियों में पूर्वोक्त संक्रमणद्रव्य का उभयद्रव्यविशेष द्रव्य देना। यहाँ भी एक विशेष का अनन्तवाँ भागमात्र द्रव्य हीन देना चाहिए क्योंकि वह आगे कहे जाने वाले एक विशेष के अनन्तवें भागमात्र बंधद्रव्य में से निक्षेपण होता है ।

बंधांतर कृष्टिविशेष द्रव्य का स्पष्टीकरण ⟶

क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में बंधांतरकृष्टि विशेष -

$\left\{\left(\frac{\text{गच्छ}-१}{२}\times \text{चय}\right)+\text{आदि}\right\}\times \text{गच्छ} = \text{संकलनधन}$

{(१⁀४ / ख ८।६।२ × वि १- ८।१३ / ४) + वि ४। ।१३ / ख ।२४ } × ४ / ख ।८।६ — गुणकार और भागहार भूत गुणहानि का अपवर्तन

{ १⁀४ / ख वि १-१३ / ।२४।२ + वि ४। । १३ / ख । २४ } × ४ / ख ।८।६ — दो संख्याओं का जोड़ करने के लिए दो का समच्छेद करें

१⁀४ / ख वि ।१३ / २४।२ + वि ४। ।१३।२ / ख ।२४।२ × ४ / ख ।८।६ — समान संख्या रखकर गुण्य गुणकारों का गुणकार करने पर १३×२=२६ और उस में मूलराशि का १३ गुणकार मिलाने पर ३९ आता है।[१]

१⁀४	वि	३९।४
ख	२४।२	ख।८।६

क्रोध की प्रथम संग्रह कृष्टि में बंधान्तर कृष्टि विशेष द्रव्य

मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में बंधांतरकृष्टि विशेषद्रव्य

$\left\{\left(\frac{\text{गच्छ}-१}{२}\times \text{चय}\right)+\text{आदि}\right\}\times \text{गच्छ} = \text{संकलनधन}$

{(१⁀४ / ख ८।६।२ × वि १- ८। / ४) + वि ४। ।१५ / ख ।२४ } × ४ / ख ।८।६ — गुणहानि का अपवर्तन

{ १⁀४ / ख वि / २४।२ + वि ४। । १५।२ / ख । २४।२ } × ४। / ख ।८।६ — दो संख्याओं का जोड़ करने के लिए दो का समच्छेद करें

समान संख्या रखकर गुण्य गुणकारों का गुणकार करने पर १५×२=३० और उस में मूलराशि मिलाने पर ३०+१=३१ आता है।

४।	वि ३१ । ४	
ख	२४।२	ख।८।६

मान की प्रथम संग्रह कृष्टि में बंधान्तर कृष्टि विशेष द्रव्य

---

१) मुद्रित और हस्तलिखित प्रति में ३९ के स्थान पर १३ दिया हैं। सूत्रानुसार संकलन करने पर ३९ उत्तर आता है। ज्ञानी लोग संशोधन करें ।

माया की प्रथमसंग्रहकृष्टि में बंधांतर कृष्टि विशेषद्रव्य -

$$\left\{\left(\frac{\text{गच्छ-१}}{\text{२}}\times\text{चय}\right)+\text{ आदि}\right\}\times\text{ गच्छ }=\text{ संकलनधन}$$

$$\left\{\left(\frac{\overset{||}{\text{४}}}{\text{ख ८।६।२}}\times\frac{\text{वि }\overset{\text{१-}}{\text{८}}}{\text{४}}\right)+\frac{\text{वि }\overset{|}{\text{४}}\text{ ।१८}}{\text{ख ।२४}}\right\}\times\frac{\overset{||}{\text{४}}}{\text{ख ।८।६}}$$ गुणहानि का अपवर्तन करें।

$$\left\{\frac{\overset{||}{\text{४}}}{\text{ख}}\ \frac{\text{वि}}{\text{२४।२}}+\frac{\text{वि }\overset{|}{\text{४}}\text{ ।१८।२}}{\text{ख ।२४।२}}\right\}\times\frac{\overset{||}{\text{४}}}{\text{ख ।८।६}}$$ दोनों का समच्छेद करें।

$$\boxed{\frac{\overset{|}{\text{४}}}{\text{ख}}\ \frac{\text{वि ३७}}{\text{२४।२}}\ \frac{\text{४}}{\text{ख ।८।६}}}$$

समान संख्या रखकर गुण्य गुणकारों का गुणकार करने पर १८×२=३६ और उस में मूलराशि का एक गुणकार मिलाया।

लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में बंधांतरकृष्टि विशेषद्रव्य

$$\left\{\left(\frac{\text{गच्छ-१}}{\text{२}}\times\text{चय}\right)+\text{ आदि}\right\}\times\text{ गच्छ }=\text{ संकलनधन}$$

$$\left\{\left(\frac{\overset{|||}{\text{४}}}{\text{ख ८।६।२}}\times\frac{\text{वि }\overset{\text{१-}}{\text{८}}}{\text{४}}\right)+\frac{\text{वि }\overset{|}{\text{४}}\text{ ।२१}}{\text{ख ।२४}}\right\}\times\frac{\overset{|||}{\text{४}}}{\text{ख ।८।६}}$$ गुणहानि का अपवर्तन करें।

$$\left\{\frac{\overset{|||}{\text{४}}}{\text{ख}}\ \frac{\text{वि}}{\text{२४।२}}+\frac{\text{वि }\overset{|}{\text{४}}\text{ ।२१।२}}{\text{ख । २४।२}}\right\}\times\frac{\overset{|||}{\text{४}}}{\text{ख ।८।६}}$$

दो का समच्छेद करें

समान संख्या रखकर शेष २१×२=४२+१=४३ गुणकार आगे लिखना

$$\boxed{\frac{\overset{|}{\text{४}}}{\text{ख}}\ \frac{\text{वि ४३}}{\text{२४।२}}\ \frac{\text{।४}}{\text{ख।८।६}}}$$

लोभ की प्रथम संग्रह कृष्टि में बंधान्तर कृष्टि विशेष द्रव्य

बंधातरकृष्टि समानखंडद्रव्य →

उस बहुभाग द्रव्य में से इतना द्रव्य कम करके शेष रहे द्रव्य को बंध की नवीन अंतरकृष्टियों के प्रमाण से भाग देने पर एक खंडमात्र एक कृष्टि का द्रव्य आता है। बंध की अंतर कृष्टियों के प्रमाण से गुणा करने पर सर्वकृष्टिसंबंधी द्रव्य आता है। इसी का नाम बंधांतरकृष्टि समानखंडद्रव्य है। इस द्रव्य के द्वारा समान प्रमाणसहित बंध की नवीन अपूर्वकृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं।

पूर्व में बंध के द्रव्य को अनन्त का भाग देकर एक भाग अलग रखा था उसमें से बंधविशेषद्रव्य ग्रहण करके अलग स्थापित करे। वह कितना है यह कहते हैं-

पूर्व-अपूर्व कृष्टि प्रमाणमात्र यहाँ गच्छ का प्रमाण है। एक कम गच्छ के अर्ध से न्यून दो गुणहानि से गुणित गच्छ का भाग उस अलग रखे एक भाग में देने पर एक विशेष आता है।वहाँ एक विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और सर्व बंधकृष्टि प्रमाण गच्छ स्थापित करके संकलन धन निकालने पर बंधविशेष द्रव्य का प्रमाण आता है। इस द्रव्य को जहाँ उभयद्रव्य विशेष द्रव्य में से अनन्तवाँ भाग कम किया था वहाँ देवें। अलग रखे एक भाग द्रव्य में से इतना द्रव्य कम करने पर जो शेष रहता है उसे अपनी सर्व बंधकृष्टियों के प्रमाण का भाग देने पर एक मध्यमखंड आता है। उसे अपनी बंधकृष्टियों के प्रमाण से गुणा करने पर जो द्रव्य आता है वह बंध का मध्यमखंडद्रव्य जानना। बंधकृष्टियों में उभयद्रव्य विशेषद्रव्य में से एक विशेष का अनन्तवाँ भाग समानरूप से कम किया था वहाँ यह द्रव्य देवें। बंध का विशेष और मध्यमखंड का द्रव्य देने पर उभयद्रव्य के विशेष में से जो द्रव्य घटाया था वह पूर्ण होता है। इसप्रकार बंधद्रव्य का विभाग जानना चाहिए।

बंधद्रव्य और संक्रमणद्रव्य का विभाग समझने के लिए अंकसंदृष्टि से स्पष्टीकरण किया जाता है। माना कि संक्रमण द्रव्य ६४७४, लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टियों में पूर्वकृष्टियाँ १२, संक्रमण अंतर अपूर्वकृष्टियाँ ५, संक्रमण अधस्तन अपूर्वकृष्टियाँ २ और बंधांतर अपूर्व कृष्टियाँ २ हैं। सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टियाँ मिलकर २१ होती हैं। संक्रमण द्रव्य में पाँच विभाग होते हैं। १) अधस्तन शीर्ष विशेष द्रव्य २)अधस्तन अपूर्वकृष्टि द्रव्य ३) मध्यमखंड द्रव्य ४) संक्रमणांतर अपूर्वकृष्टि द्रव्य ५) उभय द्रव्य विशेष द्रव्य ।

१) अधस्तन शीर्ष विशेषद्रव्य - माना कि एक अधस्तनशीर्ष विशेष का प्रमाण ४, एक कम पूर्व कृष्टियों में अधस्तन शीर्ष विशेष एक से लेकर एक-एक बढ़ते क्रम से दिये जाते है इसलिए गच्छ का प्रमाण १२- १ = ११ है ।

अधस्तन शीर्ष विशेष द्रव्य = $\left\{\left(\frac{\text{गच्छ-१}}{\text{२}} \times \text{चय}\right) + \text{ आदि}\right\} \times \text{ गच्छ}$

$\left\{\left(\frac{\text{११-१}}{\text{२}} \times \text{४}\right) + \text{४}\right\} \times \text{११} = \{(\text{१०}\times\text{२}) + \text{४}\}\ \text{११} = \text{२४} \times \text{११} = \boxed{\text{२६४}}$ अधस्तन शीर्ष वि.द्रव्य

२) अधस्तन अपूर्वकृष्टि द्रव्य - माना कि पूर्व जघन्य कृष्टि का द्रव्य २०० है। कुल अधस्तन अपूर्वकृष्टियाँ २ हैं। अधस्तन अपूर्वकृष्टि द्रव्य = पूर्व जघन्यकृष्टि द्रव्य × अधस्तन अपूर्वकृष्टियों का प्रमाण २०० × २ = ४०० अधस्तन अपूर्वकृष्टिद्रव्य

३) मध्यमखंडद्रव्य - माना कि मध्यमखंड का द्रव्य १० है । कुल संक्रमणकृष्टियाँ १९ हैं इसलिए १० × १९ = १९० मध्यम खंडद्रव्य आता है ।

४) संक्रमणांतर अपूर्वकृष्टि द्रव्य - एक-एक संक्रमणांतर अपूर्वकृष्टि में पूर्व जघन्य कृष्टि प्रमाण द्रव्य प्राप्त होता है। कुल संक्रमणांतर अपूर्वकृष्टियाँ पाँच हैं।

पूर्व जघन्यकृष्टि द्रव्य × संक्रमणांतर अपूर्व कृष्टियों का प्रमाण = संक्रमणांतर अपूर्वकृष्टि द्रव्य

२०० × ५ = $\boxed{\text{१०००}}$ संक्रमणांतर अपूर्वकृष्टि द्रव्य।

५) उभयद्रव्य विशेष द्रव्य - अंतिमकृष्टि से एक- एक उभयविशेषद्रव्य बढ़ते क्रम से दिया जाता है। पूर्व कृष्टियाँ १२ और संक्रमण अपूर्वकृष्टियाँ ७ और बंधांतर अपूर्वकृष्टियाँ २ हैं इसलिए कुल उभयकृष्टियाँ २१ होती हैं। यही गच्छ का प्रमाण है। एक उभयद्रव्य विशेष २० माना। यही आदि और चय का प्रमाण है।

उभयद्रव्य विशेष = $\left\{\left(\frac{\text{गच्छ}-१}{२} \times \text{चय}\right) + \text{आदि}\right\} \times \text{गच्छ}$

$\left\{\left(\frac{२१-१}{२} \times २०\right) + २०\right\} \times २१ = \left\{(२० \times १०) + २०\right\} २१ = २२० \times २१ = ४६२०$ उभयद्रव्य वि.द्रव्य

इस उभयद्रव्य विशेष में बंधांतर कृष्टिविशेष द्रव्य, बंध विशेष द्रव्य और बंध मध्यमखंड द्रव्य गर्भित है। यह द्रव्य बंधद्रव्य में से देता है इसलिए उतना द्रव्य उभयद्रव्य विशेष में से कम करने पर जो शेष रहता है उतना ही उभयद्रव्य विशेषद्रव्य संक्रमणद्रव्य में से ग्रहण करें।

अंत से आठवीं और बारहवीं ये दो कृष्टियाँ बंध की अपूर्वकृष्टियाँ हैं। उसमें प्राप्त होने योग्य उभयद्रव्य विशेष १४० और २१२ है। वह बंधांतर कृष्टिविशेष द्रव्य में से प्राप्त होता है। उसी प्रकार आगे कहा जाने वाला बंध मध्यमखंड १३० और बंध विशेष द्रव्य १८२ ऐसा सब मिलाकर (१४० + २१२ + १३० + १८२) = ६६४ द्रव्य उभयविशेष द्रव्य में से कम करने पर ४६२० -६६४ = ३९५६ आता है। इतना उभयविशेषद्रव्य संक्रमण द्रव्य में से देने योग्य है।

बंधद्रव्य का विभाग -

बंधद्रव्य में चार विभाग होते हैं - १) बंधांतर समान खण्डद्रव्य २) बंधांतर कृष्टि विशेषद्रव्य ३) बंधविशेष द्रव्य ४) मध्यमखंड द्रव्य । कुल बंधयोग्य पूर्वकृष्टियाँ ग्यारह और अपूर्व बंधकृष्टियाँ दो हैं इसलिए कुल बंधकृष्टियाँ तेरह होती हैं। बंधद्रव्य १०८४ माना ।

१) बंधांतर समान खण्ड द्रव्य - एक मध्यमखण्ड से सहित पूर्व जघन्यकृष्टि का जितना प्रमाण है उतना एक बंधांतरकृष्टि का समान खण्डद्रव्य होता है इसलिए

एक बंधांतर समान खण्डद्रव्य × बंध अपूर्वकृष्टियाँ = बंधांतर समान खण्ड द्रव्य

२१० × २ = ४२० बंधांतर समान खण्डद्रव्य

२) बंधांतर कृष्टिविशेष द्रव्य - बंधांतर अपूर्वकृष्टियों में जितने उभयद्रव्य विशेष दिये जाते हैं उसे बंधांतर कृष्टि विशेषद्रव्य कहते हैं। बंध की अपूर्वकृष्टियाँ पूर्व अंतिमकृष्टि से आठवीं और बारहवीं हैं। आठवी कृष्टि में उभयद्रव्य विशेषद्रव्य २० × ८ = १६० मिलता है और बारहवीं कृष्टि में २० × १२ = २४० मिलता है। १६० + २४० = ४०० कुल द्रव्य आता है। उसमें से पुन: मध्यमखंड और बंधविशेषद्रव्य कम करना है। उसका प्रमाण आठवीं कृष्टि में वीस और बारहवीं कृष्टि में अट्ठाईस आता हैं। वह कम करने पर ४००-४८ = ३५२ आता है। इतना बंधांतर कृष्टि विशेषद्रव्य जानना चाहिए ।

३) बंधविशेष द्रव्य - बंधयोग्य कृष्टियाँ तेरह हैं। यही गच्छ का प्रमाण है। बंधविशेष दो

माना है । यही आदि और चय का प्रमाण है।

$$\text{बंधविशेषद्रव्य} = \left\{ \left(\frac{\text{गच्छ}-१}{२} \times \text{चय} \right) + \text{आदि} \right\} \times \text{गच्छ}$$

$$\left\{ \left(\frac{१३-१}{२} \times २ \right) \right\} + २ \times १३ = (१२+२) \times १३ = १४ \times १३ = \boxed{१८२} \text{ बंधविशेषद्रव्य}$$

४) **बंधमध्यमखण्ड -** माना कि एक - एक बंधकृष्टि में मध्यमखण्ड का प्रमाण १० है । कुल बंधकृष्टियाँ तेरह हैं। इसलिए १३ × १० = १३० बंध मध्यमखंडद्रव्य होता है।

अंकसंदृष्टि का गणित उदाहरण मात्र होने से पूर्ण रूप से घटित नहीं होता है इसलिए कुछ त्रुटियाँ हो तो विद्वान सुधार कर लवें।

अब यहाँ संक्रमण द्रव्य और बंधद्रव्य देने का विधान कहते हैं-

लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में बंधद्रव्य का अभाव है इसलिए वहाँ केवल संक्रमण द्रव्य देने का विधान कहते हैं - लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में पाँचप्रकार का द्रव्य कहा है - १) अधस्तन खंड द्रव्य २) मध्यमखंड द्रव्य ३) उभयद्रव्य विशेष द्रव्य ४) अधस्तनशीर्ष विशेष ५) अंतर अपूर्वकृष्टि द्रव्य । इनमें से नीचे की अपूर्वकृष्टि की जघन्यकृष्टि में अधस्तनखंड में से एक खंड, मध्यमखंड में से एक खंड ३) उभयद्रव्य विशेषद्रव्य में से सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टिमात्र विशेषों को ग्रहण करके निक्षेपण करता है इसलिए यह द्रव्य आगे कृष्टियों में दिये गये द्रव्य से अधिक है। उसके ऊपर द्वितीयकृष्टि से लेकर अंत तक की अधस्तन अपूर्वकृष्टियों में एक-एक अधस्तन खंड और एक-एक मध्यमखंड समानरूप से देता है और उभयद्रव्य विशेषद्रव्य में से एक-एक विशेष (चय) हीन देता है। यहाँ अधस्तनखंडद्रव्य समाप्त होता है।

उसके ऊपर पूर्वकृष्टि की प्रथम कृष्टि में मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड, उभय द्रव्यविशेष द्रव्य में से जितनी कृष्टियाँ नीचे व्यतीत हुई उतने से हीन सर्व कृष्टि प्रमाण मात्र विशेषों को ग्रहण करके निक्षेपण करता है। अपूर्वकृष्टियों की अंतिम कृष्टि में दिये हुए द्रव्य से यह द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है क्योंकि मध्यमखंड द्रव्य से अधस्तनकृष्टिखंड असंख्यातगुणा है और एक उभय द्रव्य विशेष यहाँ कम है।

उसके ऊपर द्वितीयादि पूर्वकृष्टियों में एक, दो आदि बढ़ते क्रम से अधस्तन शीर्ष के विशेष, एक-एक मध्यमखंड और पूर्व में व्यतीत हुई कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टिप्रमाण उभय द्रव्य विशेष क्रम से अपकर्षण भागहार के अर्धप्रमाणमात्र पूर्वकृष्टियाँ व्यतीत होने तक निक्षेपण करता है। यहाँ कृष्टियों में एक उभयद्रव्य विशेष में से एक अधस्तन शीर्ष विशेष कम करने पर जितना प्रमाण आता है उतने विशेष से हीन दिये द्रव्य का क्रम जानना चाहिए ।

उसके ऊपर संक्रमण द्रव्य से की गयी अपूर्व अंतरकृष्टि है । उसमें अंतरकृष्टिसंबंधी समान खंड द्रव्य में से एक खंड, उभयद्रव्य विशेष द्रव्य में से अतीत कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टि प्रमाण विशेषों को ग्रहण करके निक्षेपण करता है । यह द्रव्य नीचे की पूर्व कृष्टि में दिये गए द्रव्य से असंख्यातगुणा है क्योंकि

एक कम अतीत कृष्टिप्रमााणमात्र पूर्व विशेष और एक मध्यमखंड के द्रव्य से हीन जो यह अंतरकृष्टिसंबंधी एक खंड है वह पूर्व कृष्टि के समान है वह उस दिये गए द्रव्य से असंख्यातगुणा है। वहाँ एक उभयद्रव्य विशेष हीन जानना चाहिए ।

उसके ऊपर पूर्वकृष्टि में नीचे व्यतीत हुई पूर्वकृष्टि प्रमाणमात्र अधस्तनशीर्ष के विशेष, एक मध्यमखंड और अतीत पूर्वापूर्व कृष्टिप्रमाण से न्यून सर्वकृष्टिप्रमाणमात्र उभयद्रव्यविशेष देता है। यह द्रव्य संक्रमण की अपूर्व अंतरकृष्टि में दिये हुए द्रव्य से असंख्यातगुणा हीन है। क्योंकि यहाँ प्राप्त हुए अधस्तनशीर्षविशेष और मध्यमखंड द्रव्य से अपूर्वकृष्टि में प्राप्त अंतरकृष्टिसंबंधी समानखंडद्रव्य असंख्यातगुणा है इसलिए संक्रमणांतर कृष्टि में दिये गये द्रव्य से पूर्व कृष्टि में दिया द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है।

उसके ऊपर पूर्वकृष्टियों में एक-एक अधस्तनशीर्षविशेष बढ़ते क्रम से, एक-एक मध्यमखंड समानरूप से और एक-एक उभयद्रव्यविशेष घटते क्रम से अर्ध अपकर्षण भागहार मात्र पूर्वकृष्टि होने तक निक्षेपण करता है।

उसके ऊपर संक्रमण की द्वितीय अपूर्व अंतरकृष्टि है। उसमें संक्रमण अंतरकृष्टिसंबंधी समान खंड द्रव्य में सें एक खंड, उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से अतीत कृष्टियों से न्यून सर्व कृष्टिप्रमाण विशेषों को ग्रहण करके निक्षेपण करता है। यह द्रव्य नीचे की पूर्व कृष्टि में दिये गए द्रव्य से पूर्वोक्त प्रकार से असंख्यातगुणा जानना। उसके ऊपर पूर्वकृष्टि में, अतीत पूर्व कृष्टि प्रमाण अधस्तनशीर्षविशेष, एक मध्यमखंड और अतीत कृष्टियों से न्यून सर्व कृष्टिप्रमाण उभयद्रव्यविशेष देता है। यह द्रव्य नीचे की अपूर्व अंतरकृष्टि में दिये गए द्रव्य से पूर्व के समान असंख्यातगुणा हीन जानना। इस प्रकार अपूर्वकृष्टि से पूर्वकृष्टि में असंख्यातगुणा घटते क्रम से और पूर्वकृष्टि से अपूर्वकृष्टि में असंख्यातगुणा बढ़ते क्रम से, लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंतकृष्टि तक द्रव्य देने का विधान जानना ।

उसके ऊपर लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि है।उसके पाँच प्रकार के द्रव्य को स्थापित करे । उसमें से संक्रमण द्रव्य से की गई अधस्तन अपूर्वकृष्टियों की जघन्य कृष्टि में अधस्तन खंड में से एक खंड, मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड और उभयद्रव्यविशेषद्रव्य में से व्यतीत हुई कृष्टियों से न्यून सर्व कृष्टि प्रमाणमात्र विशेषों को ग्रहण करके निक्षेपण करता है। यह द्रव्य लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंतिम कृष्टि में दिये गये द्रव्य से असंख्यातगुणा है, कारण पूर्व के समान ही जानना। इसके ऊपर एक-एक अधस्तन खंड और एक-एक मध्यमखंड समानरूप, तथा एक-एक उभयद्रव्य विशेष घटते क्रम से अधस्तन अपूर्वकृष्टियों की अंतकृष्टि तक देना। यहाँ अधस्तन कृष्टि द्रव्य समाप्त होता है।

उसके ऊपर पूर्वकृष्टि की प्रथम कृष्टि में व्यतीत पूर्वकृष्टि प्रमाण मात्र अधस्तनशीर्ष विशेष, एक मध्यमखंड और व्यतीत हुई कृष्टियों से न्यून सर्व कृष्टिप्रमाणमात्र उभयद्रव्यविशेष देता है। यह अपूर्वकृष्टि की अंतिमकृष्टि में दिये गऐ द्रव्य से असंख्यातगुणा हीन है ,कारण पूर्व के समान ही जानना। इसके आगे

लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में जैसा विधान कहा है वैसे ही जानना । विशेष यह है कि यहाँ अपकर्षण भागहार प्रमाण पूर्वकृष्टियाँ व्यतीत होने पर एक अपूर्वकृष्टि उत्पन्न करता है क्योंकि यहाँ आयद्रव्य एक है। तृतीय संग्रहकृष्टि में आयद्रव्य दो था इसलिए अपकर्षण भागहार का आधा अंतराल का प्रमाण था।

उसके ऊपर लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि है।इसका बंध भी है और इसका आयद्रव्य भी है इसलिए पाँच प्रकार के संक्रमणद्रव्य और चार प्रकार के बंधद्रव्य स्थापित करके देने का विधान कहते हैं। संक्रमण द्रव्य द्वारा की गयी नीचे की अधस्तन अपूर्वकृष्टियों की जघन्यकृष्टि में एक अधस्तन खंड, एक मध्यमखंड, अतीत कृष्टियों से न्यून सर्व कृष्टि प्रमाणमात्र उभयद्रव्य विशेष देता है। यह लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि की अंतिमकृष्टि में दिये गए द्रव्य से असंख्यातगुणा है। उसके ऊपर द्वितीयकृष्टि से अंत तक की अधस्तन कृष्टियों में एक-एक अधस्तन खंड, एक-एक मध्यमखंड, और अतीत कृष्टियों से न्यून सर्व कृष्टिप्रमाणमात्र उभयद्रव्यविशेष क्रम से देता है।

उसके ऊपर पूर्व कृष्टियों की प्रथमकृष्टि में अतीत पूर्वकृष्टि प्रमाणमात्र अधस्तनशीर्षविशेष, एक मध्यमखंड और अतीत कृष्टियों से न्यून सर्व कृष्टिप्रमाण मात्र उभयद्रव्य विशेष देता है। यह अपूर्व अधस्तनकृष्टि की अंतिमकृष्टि में दिये गए द्रव्य से असंख्यातगुणा हीन है। यहाँ असंख्यातगुणा अधिक और असंख्यातगुणा हीनता का कारण पूर्व के समान ही जानना चाहिए ।

उसके ऊपर संक्रमण अंतरकृष्टि के अंतराल से एक कम कृष्टितक की कृष्टियों में एक-एक अधस्तनशीर्ष विशेष बढ़ते क्रम से और एक-एक उभयद्रव्य विशेष घटते क्रम से देता है। उसके ऊपर संक्रमण द्रव्य से की गई अपूर्व अंतरकृष्टि में संक्रमण अंतरकृष्टिसंबंधी समान खंड द्रव्य में से एक खंड, उभयद्रव्य विशेषद्रव्य में से अतीतकृष्टियों से न्यून सर्वकृष्टि प्रमाणमात्र विशेष देता है। उसके ऊपर इसी क्रम से अपकर्षण भागहार का तीसरा भागमात्र पूर्वकृष्टियाँ व्यतीत होने पर एक संक्रमण की अंतरकृष्टि उत्पन्न करता है क्योंकि यहाँ आयद्रव्य तीन है। वहाँ संक्रमण की पूर्व कृष्टि में अतीत कृष्टियों से न्यून सर्व कृष्टिप्रमाणमात्र उभयद्रव्य विशेष देता है। वैसे ही संक्रमण की अपूर्व अंतरकृष्टियों में संक्रमण अंतरकृष्टि संबंधी एक समान खंड और अतीत कृष्टियों से न्यून सर्वकृष्टि प्रमाणमात्र उभय द्रव्यविशेष देता है ।

वहाँ यह विशेष जानना कि बंध होने योग्य कृष्टि की जघन्यकृष्टि से जो पूर्वकृष्टि और संक्रमण द्रव्य द्वारा की गई अपूर्वकृष्टियाँ हैं । उनमें पूर्वोक्त संक्रमणद्रव्य अपने एक विशेष का अनन्तवाँ भाग हीन देता है और वहाँ बंधद्रव्य में से पूर्व जघन्य बंधकृष्टि में बंधद्रव्य संबंधी मध्यमखंड में से एकखंड और बंधविशेषद्रव्य में से सर्व बंधकृष्टि प्रमाणमात्र विशेषद्रव्य देता है और उसके ऊपर की कृष्टियों में इससे एक-एक बंध का विशेष घटतेक्रम से देता है। इस प्रकार संक्रमणद्रव्य में से एक विशेष का अनन्तवाँभाग हीन द्रव्य दिया था वह पूर्ण होता है इसप्रकार द्रव्य दिया । वहाँ अपूर्वकृष्टि में दिया द्रव्य उसके नीचे की पूर्वकृष्टि में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा अधिक है और पूर्वकृष्टि में दिया द्रव्य उसकी नीचे की अपूर्वकृष्टि में दिये गए द्रव्य से असंख्यातगुणा हीन जानना। इसप्रकार एक अधिक संक्रमणकृष्टि के अंतराल का भाग

गुणहानि का चौथा भागमात्र बंधकृष्टि के अंतराल में देने पर जो प्रमाण आता है उतनी संक्रमण की अपूर्व अंतरकृष्टियाँ पूर्ण होने तक ऐसा ही क्रम जानना चाहिए ।

यहाँ पूर्वोक्त संक्रमण की अंतिम अंतरकृष्टि के ऊपर अंतराल में बंध की अपूर्व अंतरकृष्टि उत्पन्न करता है। इसमें संक्रमणद्रव्य नहीं देता है। बंधद्रव्य के बंधांतरकृष्टि समान खंडद्रव्य में से एकखंड, उभयद्रव्य विशेष के स्थान पर अंतरकृष्टिसंबंधी जो विशेषद्रव्य कहा गया है उसमें से अतीत सर्वकृष्टियों के प्रमाण से न्यून सर्वकृष्टि प्रमाणमात्र विशेष देता है। एक विशेष का अनन्तवाँ भाग हीन और मध्यमखंड में से एक खंड और बंधविशेषद्रव्य में से अतीत बंधकृष्टियों से न्यून सर्व बंधकृष्टि प्रमाणमात्र विशेष देता है ।

यह द्रव्य नीचे के संक्रमणद्रव्य की अंतरकृष्टि में दिये गए बंध द्रव्य से अनन्तगुणा है। उसके ऊपर की पूर्वकृष्टि में संक्रमण द्रव्य में से व्यतीत हुई कृष्टियों के प्रमाणमात्र अधस्तनशीर्षविशेष, एक मध्यमखंड, अतीत कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टिप्रमाणमात्र उभयद्रव्यविशेष अपने एक विशेष के अनन्तवें भाग से हीन देता है। वहीं पर बंधद्रव्य में से एक मध्यमखंड और बंधविशेष द्रव्य में से व्यतीत हुई बंधकृष्टियों से न्यून सर्व बंधकृष्टि प्रमाणमात्र विशेष ग्रहण करके देता है।

यहाँ अनन्तगुणा और अनन्तगुणा हीन द्रव्य कहा है। उसका कारण यह है कि यहाँ दिये गए बंधद्रव्य से बंधांतर द्रव्य अनन्तगुणा है। उसके ऊपर पूर्वोक्त प्रकार से बीच-बीच में पूर्वकृष्टियाँ और संक्रमण की अपूर्वकृष्टियाँ होती हैं । इसप्रकार एक अधिक संक्रमण के अंतराल से बंध के अंतराल को भाग देने पर जो प्रमाण आता है उतनी संक्रमण की अपूर्व अंतरकृष्टियाँ होने पर बंध की एक अपूर्वअंतरकृष्टि होती है। वहाँ द्रव्य देने का विधान पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिए।इसीप्रकार बंधांतरकृष्टि की अंतिमकृष्टि तक जानना चाहिए।

यहाँ बंधद्रव्य का अंतरकृष्टि संबंधी समान खंडद्रव्य और बंधांतर कृष्टिविशेषद्रव्य समाप्त होता है। इसके ऊपर चार प्रकार के संक्रमणद्रव्य का और दो प्रकार के बंधद्रव्य का यथायोग्य निक्षेपण होता है। ऐसा बंध की उत्कृष्टकृष्टि तक जानना। यहाँ सर्व बंधद्रव्य समाप्त हुआ। उसके ऊपर अंतकृष्टि तक चार प्रकार के संक्रमणद्रव्य का ही यथायोग्य निक्षेपण होता है। यहाँ सर्व संक्रमण द्रव्य भी समाप्त हुआ।

जिसप्रकार लोभ की तीन संग्रहकृष्टियों में द्रव्य देने का विधान कहा है उसी प्रकार माया और मान की तीन संग्रहकृष्टियों में भी कहना चाहिए। विशेष यह है कि मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमणद्रव्य द्वारा उत्पन्न अपूर्वकृष्टियों के मध्य में अंतराल का प्रमाण अपकर्षण भागहार का पंद्रहवाँ भागमात्र है क्योंकि वहाँ आयद्रव्य पंद्रह है। क्रोध की तृतीय और द्वितीय संग्रहकृष्टि में भी लोभ के समान ही विधान जानना चाहिए ।

विशेष यह है कि संक्रमण की अंतरकृष्टियों का अंतराल क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में अपकर्षण भागहार का चौदहवाँ भागमात्र और द्वितीय संग्रहकृष्टि में अपकर्षण भागहार का एक सौ ब्यासी (१८२) भागमात्र जानना चाहिए, क्योंकि क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में आयद्रव्य चौदह और द्वितीय संग्रहकृष्टि

लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में बंधद्रव्य और संक्रमणद्रव्य का विभाग									
कृष्टि का नाम	कृष्टि क्रमांक	पूर्वकृष्टि द्रव्य	अधस्तन शीर्षद्रव्य	अपूर्वकृष्टि द्रव्य	मध्यमखंड द्रव्य	बंधमध्यम खण्डद्रव्य	बंधविशेष द्रव्य	उभयविशेष द्रव्य	कुल द्रव्य
पूर्व	२१	१५६	४४	-	१०	-	-	२०	२३०
पूर्व	२०	१६०	४०	-	१०	-	-	४०	२५०
संक्रमणांतर	१९			२००	१०	-	-	६०	२७०
बंधपूर्व	१८	१६४	३६	-	१०	१०	२	६८	२९०
बंधपूर्व	१७	१६८	३२	-	१०	१०	४	८६	३१०
संक्रमणांतर	१६			२००	१०	१०	६	१०४	३३०
बंधपूर्व	१५	१७२	२८	-	१०	१०	८	१२२	३५०
बंधांतरअपूर्व	१४			२००	१०	१०	१०	१४०	३७०
बंधपूर्व	१३	१७६	२४	-	१०	१०	१२	१५८	३९०
संक्रमणांतर	१२			२००	१०	१०	१४	१७६	४१०
बंधपूर्व	११	१८०	२०	-	१०	१०	१६	१९४	४३०
बंधांतरअपूर्व	१०			२००	१०	१०	१८	२१२	४५०
बंधपूर्व	९	१८४	१६	-	१०	१०	२०	२३०	४७०
संक्रमणांतर	८			२००	१०	१०	२२	२४८	४९०
बंधपूर्व	७	१८८	१२	-	१०	१०	२४	२६६	५१०
बंधपूर्व	६	१९२	८	-	१०	१०	२६	२८४	५३०
संक्रमणांतर	५			२००	१०	-	-	३४०	५५०
पूर्व	४	१९६	४	-	१०	-	-	३६०	५७०
पूर्व	३	२००		-	१०	-	-	३८०	५९०
अधस्तनअपूर्व	२			२००	१०	-	-	४००	६१०
अधस्तनअपूर्व	१			२००	१०	-	-	४२०	६३०

लोभ की तीन संग्रहकृष्टियों में संक्रमणद्रव्य और प्रथम संग्रहकृष्टि में बंधद्रव्य की रचना

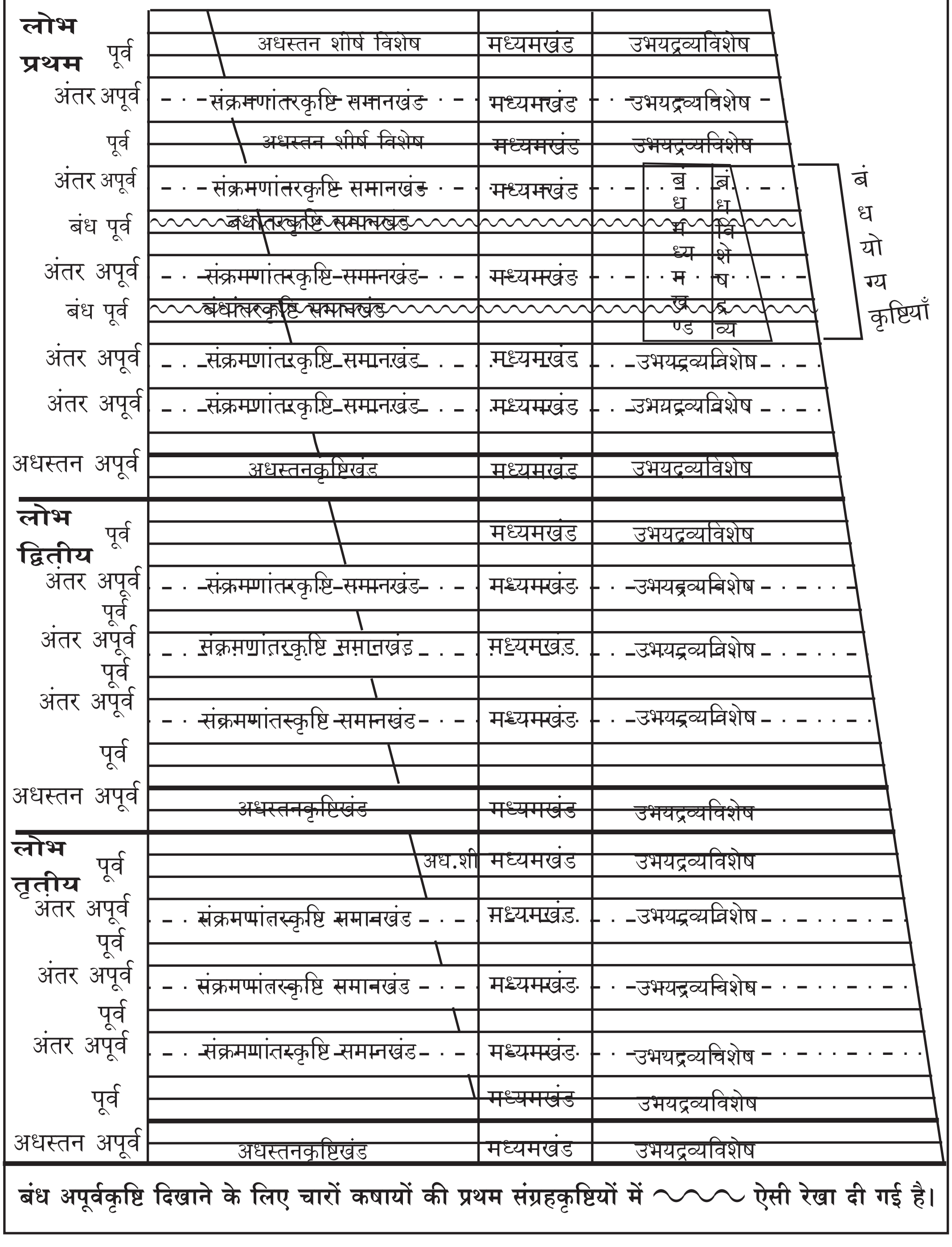

बंध अपूर्वकृष्टि दिखाने के लिए चारों कषायों की प्रथम संग्रहकृष्टियों में ~~~ ऐसी रेखा दी गई है।

में आयद्रव्य एक सौ ब्यासी है । उसी प्रकार लोभ, माया, मान की बध्यमान संग्रहकृष्टियों में बंधरहित नीचे और ऊपर की कृष्टियों में संक्रमणद्रव्य द्वारा अपूर्व अंतरकृष्टियाँ करता है।

उसके ऊपर क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमण द्रव्य का अभाव है इसलिए घातद्रव्य का एकभाग अलग रखा था उसका तीन प्रकार का द्रव्य और बंधद्रव्य का चार प्रकार का द्रव्य स्थापित करना चाहिए। वहाँ अधस्तन अपूर्वकृष्टि का अभाव है। क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि की अंतकृष्टि के ऊपर प्रथम संग्रहकृष्टि की प्रथम पूर्वकृष्टि है। उसमें घातद्रव्य में से अतीतकृष्टियों से न्यून सर्वकृष्टि प्रमाणमात्र अधस्तनशीर्ष विशेष, एक मध्यमखंड और अतीत कृष्टियों से न्यून सर्व कृष्टिप्रमाणमात्र उभयद्रव्य विशेष देता है। यह दिया गया द्रव्य क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि की अंतिम कृष्टि में दिये गये संक्रमणद्रव्य का अनन्तवाँ भागमात्र हीन है। इसके ऊपर एक-एक अधस्तनशीर्ष विशेष अधिक क्रम से और एक-एक उभयद्रव्य विशेष घटते क्रम से द्रव्य देता है ।

यहाँ विशेष यह है कि बंध होने योग्य कृष्टि की जघन्यकृष्टि समान पूर्वकृष्टि से लेकर कृष्टियों में उभयद्रव्यविशेष का द्रव्य एकविशेष का अनन्तवाँ भागमात्र हीन देता है। वहाँ जघन्य बंधकृष्टि में बंधद्रव्य का एक मध्यमखंड और अपनी बंधकृष्टियों का जितना प्रमाण है उतने बंधविशेष द्रव्य देता है और उसके ऊपर की कृष्टियों में एक - एक बंधविशेष घटते क्रम से देता है। इसप्रकार जघन्य बंधकृष्टि के ऊपर सवा तीन गुणहानिमात्र कृष्टियाँ व्यतीत होने पर अंतराल में बंधद्रव्य द्वारा अपूर्व अंतरकृष्टि उत्पन्न करता है।

लोभ, माया, और मान में बंधकृष्टियों का अंतराल गुणहानि का चौथाभाग होता है । किन्तु क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में तेरहगुणी अंतरकृष्टियाँ होने से अंतराल तेरहगुणा होता है अर्थात् सवा तीन गुणहानि। $\frac{गु}{४} \times १३ = गु \times \frac{१३}{४} = गु\ ३\frac{१}{४}$ यह बंध की अपूर्वकृष्टियों का अंतराल है ।

वहाँ बंधांतर कृष्टिसंबंधी समान खंड में से एक खंड, बंधांतरकृष्टि विशेष द्रव्य में से अतीत सर्व कृष्टियों से न्यून सर्वकृष्टि प्रमाणमात्र विशेष अपने एक विशेष के अनन्तवें भाग से हीन, मध्यमखंड में से एक खंड और अतीत सर्वकृष्टि प्रमाण से न्यून सर्व बंधकृष्टि प्रमाणमात्र विशेष यह चार प्रकार का बंधद्रव्य ही देता है, घातद्रव्य नहीं देता है। यह दिया गया द्रव्य उसके नीचे की पूर्वकृष्टि में दिये हुए द्रव्य से अनन्तगुणा है ।

उसके ऊपर पूर्वकृष्टि में घातद्रव्य में से पूर्व में व्यतीत हुई सर्वकृष्टि प्रमाणमात्र अधस्तनशीर्षविशेष, एक मध्यमखंड और अतीत कृष्टियों से न्यून सर्वकृष्टि प्रमाणमात्र उभयद्रव्य विशेष अपने - अपने विशेष के अनन्तवें भाग से हीन ग्रहण करके निक्षेपण करता है। वहाँ बंधद्रव्य का एक मध्यमखंड और अतीत बंधकृष्टियों से न्यून बंधकृष्टियों का जितना प्रमाण है उतने बंधविशेष देता है। यह बंधद्रव्य बंधातरकृष्टियों के बंधद्रव्य से अनन्तगुणा हीन है। इसका सर्व पूर्वद्रव्य और दिया गया द्रव्य मिलकर उस बंधांतरकृष्टि से एक उभयद्रव्य विशेषमात्र हीन है।

१२ संग्रहकृष्टियों में संक्रमण और बंधद्रव्य की रचना

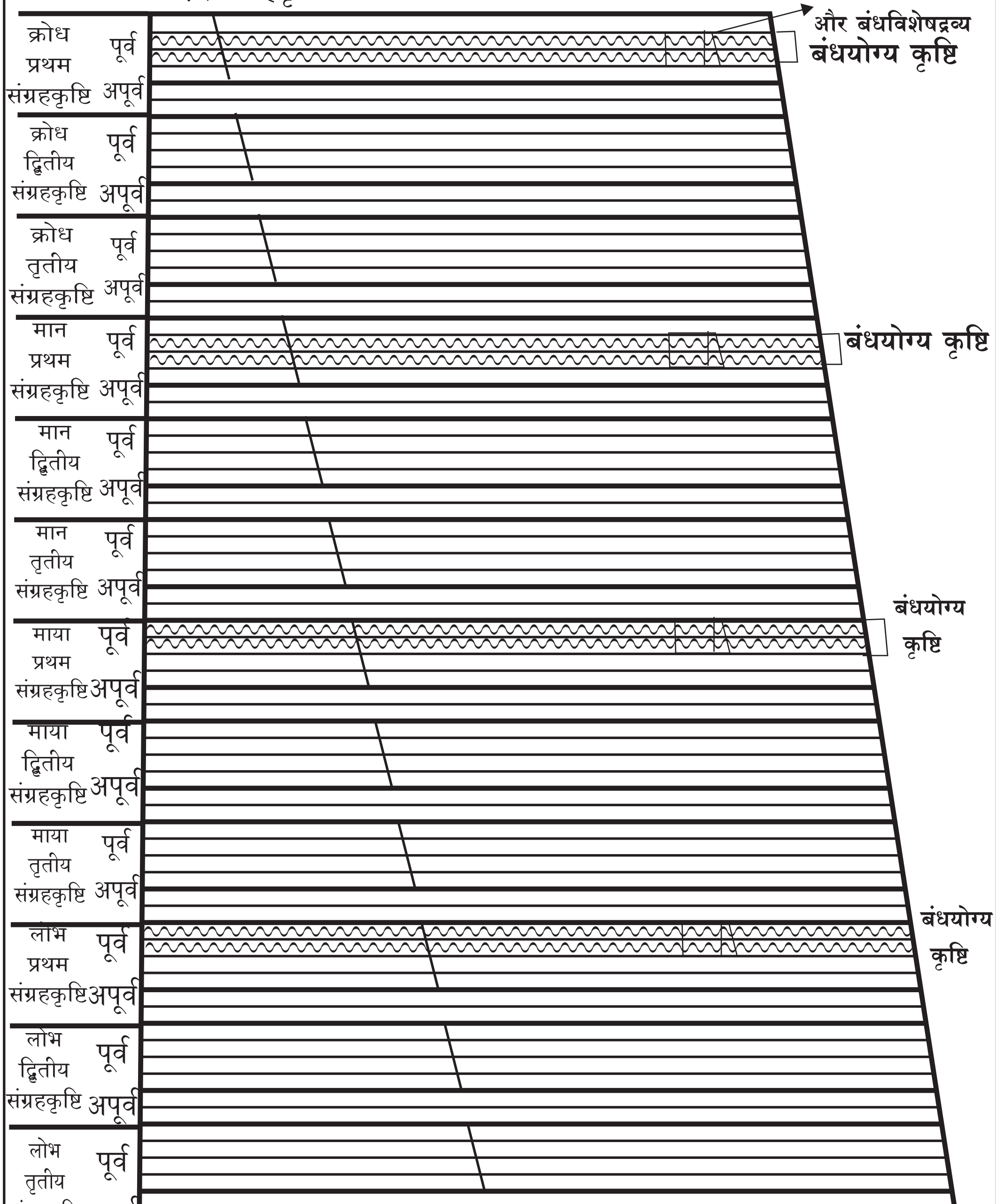

बंध अपूर्वकृष्टि दिखाने के लिए चारों कषायों की प्रथम संग्रहकृष्टियों में ~~~ ऐसी रेखा दी गई है।

उसके ऊपर सवा तीन (३ १/४)गुणहानिप्रमाण पूर्वकृष्टियाँ व्यतीत होने पर बंधद्रव्य द्वारा एक अपूर्वकृष्टि उत्पन्न होती है । उसमें द्रव्य देने का विधान पूर्व के समान ही जानना। इसप्रकार बंध की उत्कृष्ट कृष्टि तक जानना। उसके ऊपर की कृष्टियों में घातद्रव्य का ही निक्षेपण अपनी उत्कृष्टकृष्टि तक होता है। इसप्रकार दीयमान द्रव्य का क्रम जानना चाहिए। जिस प्रकार ऊँट की पीठ पहले ऊँची और बाद में नीची और उसके बाद कहीं ऊँची और कहीं नीची होती है। उसी प्रकार कहीं अधिक, कहीं हीन, कही-कुछ हीन और कुछ अधिक द्रव्य देने से अनन्तस्थान पर उष्ट्रकूट रचना होती है क्योंकि ऐसा देने पर ही सर्वकृष्टियों का एक गोपुच्छ दिखता है। ऐसा यतिवृषभ आचार्य का उपदेश है। इसप्रकार दीयमान द्रव्य का वर्णन किया है।

पूर्वद्रव्य और दिया गया द्रव्य मिलकर जो दृश्यमान द्रव्य है वह लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्यकृष्टि में बहुत द्रव्य है। उसके ऊपर क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का घात करके शेष रही उत्कृष्ट कृष्टि तक एक-एक उभयद्रव्यविशेष से हीन दृश्यमान द्रव्य है। इसप्रकार प्रथम समय में दीयमान द्रव्य का जैसा निरूपण किया है वैसा ही द्वितीयादि समयों में भी जानना चाहिए ।

कृष्टिवेदककाल के प्रथमादि समयों में क्रम से असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियों का घात होता है यह दो गाथाओं द्वारा कहते हैं-

कोहादिकिट्टिवेदगपढमे तस्स य असंखभागं तु ।
णासेदि हु पडिसमयं तस्सासंखेज्जभागकमं ।।५३७।।

क्रोधादिकृष्टिवेदकपढमे तस्य चासङ्ख्यभागं तु।
नाशयति हि प्रतिसमयं तस्यासङ्ख्यभागक्रमम् ।।५३७।।

अन्वयार्थ - (कोहादिकिट्टिवेदगपढमे) क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के वेदक के प्रथम समय में **(तस्स य असंखभागं तु)** सर्वकृष्टियों के असंख्यातवें भागमात्र कृष्टियों का **(णासेदि)** घात करता है। **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(तस्सासंखेज्जभागकमं)** उसके असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियों का क्रम से घात करता है।[१]

विशेषार्थ - विशुद्धि के माहात्म्य से क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का वेदकजीव प्रथम समय में प्रथम संग्रहकृष्टिसंबंधी कृष्टियों में से अग्रकृष्टि से लेकर के असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियों का घात करता है। पुन: द्वितीय समय में उसके असंख्यातवें भागमात्र कृष्टियों का घात करता है। प्रथम समय में घात हुई कृष्टियों से द्वितीय समय में घात हुई कृष्टियाँ असंख्यातगुणी हीन हैं। यद्यपि द्वितीय समय में विशुद्धि

१ ज. ध. पु. १५ पृ. २६४

अनन्तगुणी बढ़ती है फिरभी असंख्यातगुणी हीन कृष्टियों का घात करता है क्योंकि घात करने के पश्चात् शेष रहे अनुभाग को घात करने में कारणभूत विशुद्धि की इसीप्रकार प्रवृत्ति होने का नियम देखा जाता है। इसीप्रकार अपनी कृष्टियों के वेदककाल के द्विचरमसमय तक प्रत्येक समय में असंख्यातवें भागक्रम से कृष्टियों का घात करता जाता है किन्तु अंतिम समय में नवकबंध और उच्छिष्टावलि को छोड़कर विवक्षित संग्रहकृष्टि की सभी कृष्टियों का अभाव होता है।

अंकसंदृष्टि - माना कि सर्व कृष्टियों का प्रमाण २५६ असंख्यात चार (४) है। प्रथम समय में २५६ ÷ ४ चौसठ (६४) कृष्टियाँ नष्ट हुई। द्वितीय समय में उसका असंख्यातवाँ भाग ६४ ÷ ४ = १६ कृष्टियाँ नष्ट हुई । तृतीय समय में १६ ÷ ४ = ४ कृष्टियाँ नष्ट हुई ।

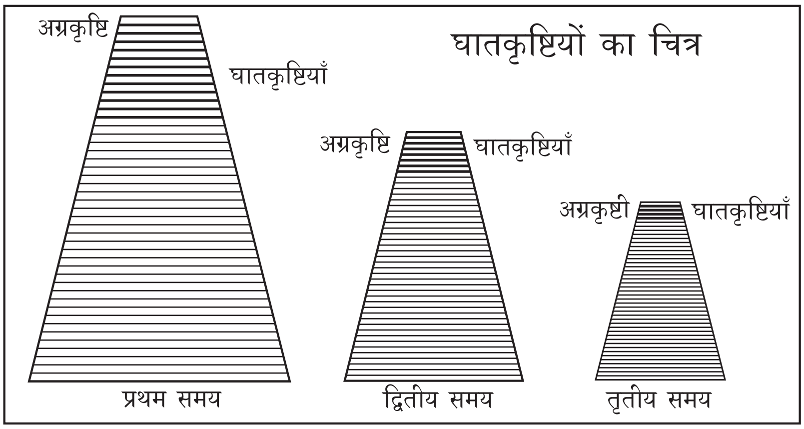

कोहस्स य जे पढमे संगहकिट्टिम्हि णट्ठकिट्टीओ।
बंधुज्झियकिट्टीणं तस्स असंखेज्जभागो हु ।।५३८।।

क्रोधस्य च याः प्रथमे सङ्ग्रहकृष्टौ नष्टकृष्टयः।
बन्धोज्झितकृष्टीनां तस्यासङ्ख्येयभागो हि ।।५३८।।

अन्वयार्थ - (कोहस्स) क्रोध की **(पढमे संगहकिट्टिम्हि)** प्रथम संग्रहकृष्टि के वेदककाल में **(जे णट्ठकिट्टिओ)** जो कृष्टियाँ नष्ट हुई वे कृष्टियाँ **(तस्स बंधुज्झियकिट्टीणं)** बंधरहित कृष्टियों के **(असंखेज्ज भागो हु)** असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

विशेषार्थ - प्रथम समयवर्ती कृष्टिवेदक क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टिसंबंधी नीचे और ऊपर की असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियों की बंधरहित कृष्टि संज्ञा है। उसमें से उपरिम अबध्यमान कृष्टियों के

असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियाँ इस सर्वकाल द्वारा विनष्ट होती हैं। क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की अपेक्षा से जो कृष्टियों के घात का क्रम कहा गया है वैसा ही शेष संग्रहकृष्टियों के विषय में भी जानना चाहिए।

क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की प्रथम स्थिति में समयाधिक आवलिकाल शेष रहने की अवस्था का कथन -

कोहादि किट्टियादिट्ठिदिम्हि समयाहियावलीसेसे ।
ताहे जहण्णुदीरइ, चरिमो पुण वेदगो तस्स[1] ।।५३९।।

क्रोधादिकृष्टिकादिस्थितौ समयाधिकावली शेषे।
तत्र जधन्यमुदीरयतिचरमः पुनर्वेदकस्तस्य ।।५३९।।

अन्वयार्थ - (कोहादिकिट्टियादिट्ठिदिम्हि) क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की प्रथम स्थिति में **(समयाहियावलीसेसे)** समयअधिक आवलि अवशेष रहने पर **(जहण्णुदीरइ)** स्थिति की जघन्य उदीरणा होती है। **(ताहे तस्स पुण)** वही उस प्रथम संग्रहकृष्टि का वह **(चरिमो वेदगो)** चरम वेदक होता है।

विशेषार्थ - प्रथम समयवर्ती कृष्टिवेदक जीव क्रोध संज्वलन की प्रथम संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टियों का अपकर्षण करके उसके द्वारा क्रोधवेदककाल के साधिक त्रिभाग से एक आवलि अधिक प्रमाण प्रथम स्थिति करता है। इसप्रकार क्रोध की प्रथमकृष्टि का वेदन करनेवाले की प्रथम स्थिति क्रमशः वेदन करते समय एक समय अधिक आवलिप्रमाण शेष रहती है उस समय क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का अंतिम समयवर्ती वेदक होता है क्योंकि प्रथम स्थिति की अंतिम आवलि उच्छिष्टावलि होती है। उसका उदय स्वस्वरूप से न आकर पररूप से संक्रमित होकर आता है और उसी समय जघन्य स्थितिउदीरणा होती है अर्थात् आवलि के ऊपर जो एक समयसंबंधी निषेक है उसमें से अपकर्षण करके उदयावलि में निक्षेपण करता है ।

---

१ ज. ध. पु. १५ पृ.२६४-२६५

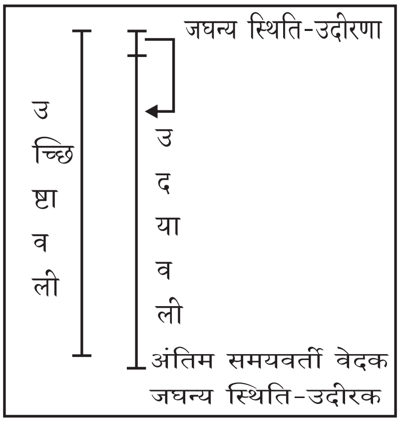

कृष्टिवेदक के प्रथम समय से चार संज्वलन के अनुभाग की जो प्रतिसमय अपवर्तना होती थी वह इस समय में भी होती है ।

एक समयअधिक आवलिकाल शेष रहने पर संज्वलन का स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व का प्रमाण

ताहे संजलणाणं बंधो अंतोमुहुत्तपरिहीणो ।
सत्तो वि य सददिवसा अडमासब्भहिय छव्वरिसा[१] ।।५४०।।

तत्र सज्वलनानां बन्धोऽन्तर्मुहूर्तपरिहीनः ।
सत्त्वमपि च शतदिवसा अष्टमासाभ्यधिकषड्वर्षाः ।।५४० ।।

अन्वयार्थ - (ताहे) वहाँ अर्थात् प्रथम संग्रहकृष्टि वेदक के अंतिम समय में **(संजलणाणं)** चार संज्वलन कषायों का **(बंधो)** स्थितिबंध **(अंतोमुहुतपरिहोणो)** अंतर्मुहूर्त हीन **(सद दिवसा)** सौ दिवस **(य)** और **(सत्तो वि)** सत्त्व भी अंतर्मुहूर्त से हीन **(अडमासब्भहिय छव्वरिसा)** आठ मास अधिक छह वर्ष होता है।

विशेषार्थ - कृष्टिवेदन के प्रथम समय में संज्वलन चतुष्क का जो स्थितिबंध चार मास होता था उसमें से संख्यात हजार स्थितिबंधापसरणों द्वारा घटाकर अब वह अन्तर्मुहूर्त कम सौ (१००) दिवस रहता है। यहाँ घटी हुई स्थिति का प्रमाण वीस (२०) दिवस है।

क्रोधसंबंधी तीनों संग्रहकृष्टियों के वेदककाल में दो मास (६०दिवस) स्थिति घटती है तो एक प्रथम संग्रहकृष्टि के वेदककाल में कितनी स्थिति घटेगी? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर वीस (२०) दिवस प्राप्त होते हैं।

१ ज. ध. पु. १५ पृ. २६८

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
३ वेदककाल में	६० दिन घटते हैं	१ वेदककाल में कितने?	$\frac{६०\times१}{३}$ =२० दिन

प्रथम संग्रहकृष्टि-वेदककाल त्रिभाग से अधिक है इसलिए प्रथम संग्रहकृष्टि वेदककाल में चार संज्वलन कषायों का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त अधिक बीस (२०) दिवस घटकर अंतर्मुहूर्त हीन सौ (१००) दिवस रहता है ।

कृष्टिवेदककाल के प्रथम समय में संज्वलनचतुष्क का स्थितिसत्त्व आठ वर्ष होता है। संख्यात हजार स्थितिकांडकों द्वारा क्रम से घटता हुआ अब अन्तर्मुहूर्त से हीन आठ मास अधिक छह वर्ष रहता है।तीनों कृष्टियों के वेदककाल में संज्वलन चतुष्क का स्थितिसत्त्व जब चार वर्ष घटता है तो प्रथम संग्रहकृष्टि के वेदककाल में कितना स्थितिसत्त्व घटेगा? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर एक वर्ष चार मास प्राप्त होते हैं।

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
३ वेदककाल में	४ वर्ष अर्थात् ४८ मास कम	१ वेदककाल में	$\frac{४८\times१}{३}$ =१६ मास अर्थात् १ वर्ष ४ मास

आठ वर्ष में से इतना कम करने पर (८ वर्ष -१$\frac{१}{३}$वर्ष)= ६$\frac{२}{३}$ अन्तर्मुहूर्त कम ६ वर्ष ८ मास स्थितिसत्त्व रहता है।

उसी समय शेष कर्मोंका स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व का विवेचन -

घादितियाणं बंधो दसवासंतो मुहुत्तपरिहीणा ।
सत्तं संखं वस्सा, सेसाणं संखऽसंखवस्साणि ।।५४१।।

घातित्रयाणां बन्धो दशवर्षा अन्तर्मुहूर्तपरिहीनाः।
सत्त्वं सङ्ख्यं वर्षाः शेषाणां सङ्ख्यासङ्ख्यवर्षाः ।।५४१ ।।

अन्वयार्थ - (घादितियाणं बंधो) तीन घातिकर्मों का स्थितिबंध **(दसवासंतो मुहुत्तपरिहीणा)** अंतर्मुहूर्त हीन दस वर्ष होता है और **(सत्तं संखं वस्सा)** स्थितिसत्त्व संख्यात वर्ष रहता है। **(सेसाणं)** शेष तीन अघाति कर्मों का **(संखऽसंखवस्साणि)** स्थितिबंध संख्यातवर्ष और स्थितिसत्त्व असंख्यातवर्ष रहता है।

विशेषार्थ - क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के वेदककाल के प्रथम समय में तीन घातिकर्मोंका

स्थितिबंध संख्यात हजार वर्ष होता था। वह संख्यातगुणी हानि के द्वारा क्रम से कम होकर अंतिम समय में अंतर्मुहूर्त कम दसवर्षप्रमाण रहता है और पूर्व में स्थितिसत्त्व संख्यातहजार वर्षप्रमाण था वह संख्यातहजार स्थितिकांडकों द्वारा संख्यातगुणितक्रम से कम होकर संख्यातहजार वर्षप्रमाण ही रहा।

शेष तीन अघातिकर्मों का स्थितिबंध पूर्व में संख्यातहजार वर्षप्रमाण होता था। वह संख्यातहजार स्थितिबंधापसरणों द्वारा संख्यातगुणा कम होकर संख्यात हजार वर्षप्रमाण ही होता है। तीन अघातिकर्मों का स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षप्रमाण था वह अब हजारों स्थितिकाण्डक घातों द्वारा असंख्यातगुणित कम होकर भी असंख्यात वर्षप्रमाण ही है ।[१]

क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि वेदक का वर्णन करते हैं-

से काले कोहस्स य विदियादो संगहादु पढमठिदी
कोहस्स विदियसंगहकिट्टिस्स य वेदगो होदि ।।५४२।।
कोहस्स पढमसंगह किट्टिस्सावलिपमाणपढमठिदी।
दोसमऊणदुआवलिणवकं च वि चेउदे ताहे [२] ।।५४३।।

स्वेकाले क्रोधस्य च द्वितीयतः सङ्ग्रहात् प्रथमस्थितिः।
क्रोधस्य द्वितीयसङ्ग्रहकृष्टेश्च वेदको भवति ।।५४२।।
क्रोधस्य प्रथमसङ्ग्रहकृष्टेरावलिप्रमाणं प्रथमस्थितिः
द्विसमयोनद्व्यावलिनवकं चापि चतुर्दश तत्र ।।५४३।।

अन्वयार्थ - (से काले) उस काल में अर्थात् प्रथम संग्रहकृष्टि वेदक के अनन्तर समय में **(कोहस्स य विदियादो संगहादु)** क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि में से **(पढमठिदी)** प्रथम स्थिति करता है **(य)** और **(कोहस्स)** क्रोध की **(विदियसंगहकिट्टिस्स)** द्वितीय संग्रहकृष्टि का **(वेदगो)** वेदक **(होदि)** होता है। **(ताहे)** उसी समय **(कोहस्स पढमसंगहकिट्टिस्स)** क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की आवलिप्रमाण **(पढमाठिदि)** प्रथम स्थिति **(च)** और **(दोसमऊणदुआवलिणवकं)** दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवक समयप्रबद्ध द्रव्य शेष रहता है। उसी समय क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य **(चेउदे)** चौदहगुणा होता है।

विशेषार्थ - क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की प्रथम स्थिति उच्छिष्टावलिमात्र शेष रहने पर प्रथम संग्रहकृष्टि का वेदककाल समाप्त होता है और उसी समय क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि में से द्रव्य का

१. ज. ध. पु. १५ पृ. २६८-२६९ २.क. पा. सुत्त पृ. ८५५ - ८५६ सू. ११३९-११४०

अपकर्षण करके उदयादि गुणश्रेणिरूप से अपने वेदककाल की अपेक्षा एक आवलि अधिक प्रथम स्थिति स्थापित करता है। उस समय दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवकसमयप्रबद्धरूप प्रदेशपुंज और उच्छिष्टावलिप्रमाण प्रदेशपुंज छोड़कर क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का शेष सर्वद्रव्य तत्काल क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टिरूप संक्रमित होता है। अब क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि से तेरहगुणी आयामयुक्त प्रथम संग्रहकृष्टि द्वितीय संग्रहकृष्टि के नीचे अनन्तगुणाहीन अनुभागरूप होकर उसकी ही अपूर्वकृष्टिरूप होकर परिणमित होती है। उस समय शेष संग्रहकृष्टि के आयाम से इसका आयाम चौदहगुणा होता है और द्रव्य भी चौदहगुणा होता है क्योंकि प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य (व १२।१३ / २४) इस द्वितीय कृष्टिरूप संक्रमित हुआ है इसका स्वयं का द्रव्य एक (व १२।१ / २४) और प्रथम संग्रहकृष्टि का आया हुआ तेरहगुणा मिलकर चौदह गुणा हुआ।

व १२।१ / २४ + व १२।१३ / २४ = व १२।१४ / २४

गाथा ५१५ में चारित्रमोहनीय का कुलद्रव्य ४९ मानकर सर्वकृष्टियों के द्रव्य का विभाग कहा था उसमें से क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का कुलद्रव्य साधिक २६ है । उसमें द्वितीय संग्रहकृष्टि का दो अंकप्रमाण द्रव्य मिलाने पर २६ + २ = २८ होता है जो क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि आदि की तुलना से चौदहगुणा है ।

संग्रहकृष्टियों के अंतिम समय में संक्रमण फालिद्रव्य देने का विधान -

पढमादिसंगहाणं चरिमे फालिं तु विदियपहुदीणं।
हेट्ठा सव्वं देदि हु मज्झे पुव्वं व इगिभागं ।।५४४।।

प्रथमादिसङ्ग्रहानां चरमे फालिं तु द्वितीयप्रभृतीनाम्।
अधस्तनं सर्वं ददाति हि मध्ये पूर्वमिवैकभागम् ।।५४४।।

अन्वयार्थ - (पढमादिसंगहाणं चरिमे) प्रथमादि संग्रहकृष्टियों के अंतिम समय में **(फालिं तु)** संक्रमण फालि के द्रव्य को **(विदियपहुडीणं हेट्ठा)** द्वितीयादि संग्रहकृष्टियों के नीचे **(सत्त्वं)** सर्वद्रव्य अर्थात् बहुभागद्रव्य **(देदि हु)** देता है।**(इगिभागं)** एक भाग द्रव्य **(मज्झे)** मध्य में अर्थात् अपूर्व अंतरकृष्टियों में **(पुव्वं वा)** पूर्व के समान देता है।

विशेषार्थ - जिस संग्रहकृष्टि को भोगता है उसका नवक समयप्रबद्ध बिना शेष सर्वद्रव्य सर्वसंक्रमणरूप है। उसे अनन्तर समय में भोगी जानेवाली संग्रहकृष्टि के नीचे और मध्य में अपूर्वकृष्टिरूप से परिणमाता है। वहाँ उस संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टियों के बीच-बीच में जो अपूर्वकृष्टियाँ करता है

उन्हें अंतिम समय में अपने द्रव्य के असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्य से रचता है और शेष बहुभाग द्रव्यद्वारा उस संग्रहकृष्टि के नीचे अपूर्वकृष्टियों को रचता है।यहाँ क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के अनन्तर द्वितीय संग्रहकृष्टि को भोगता है इसलिए द्वितीय संग्रहकृष्टि के नीचे बहुभाग द्रव्यद्वारा अपूर्वकृष्टियों को रचता है।

शंका - पूर्व में गाथा ५३५ में कृष्टिवेदक के प्रथम समय का व्याख्यान करते समय नीचे की गयी कृष्टियों के प्रमाण से मध्य में की गई कृष्टियों का प्रमाण असंख्यातगुणा कहा था; परन्तु यहाँ मध्य में की गई कृष्टियों में दिये गए द्रव्य से नीचे की गई कृष्टियों में दिया गया द्रव्य असंख्यातगुणा कहा इसलिए विरोध आता है?

समाधान - वहाँ केवल संग्रहकृष्टि के द्रव्य का असंख्यातवाँ भागमात्र द्रव्य ग्रहण किया था उसका विधान कहा। यहाँ सर्व संग्रहकृष्टि के द्रव्य की अपेक्षा सें वर्णन है इसलिए यहाँ ऐसा विधान जानना चाहिए।

यदि यहाँ भी पूर्व के समान विधान करते तो द्रव्य अधिक होने से सर्व अवयवकृष्टियों के बीच - बीच में अपूर्वकृष्टियाँ होगी तब विवक्षित अपूर्वकृष्टि में दिए गए द्रव्य से असंख्यातगुणा हीन द्रव्य आगे की पूर्वकृष्टि में दिया जाएगा और उससे आगे की अपूर्वकृष्टि में दिया गया द्रव्य असंख्यातगुणा होगा।ऐसी व्यवस्था हो जाएगी परन्तु वह इष्ट नहीं है इसलिए अंतिम फालि के द्रव्य का बहुभाग नीचे और एकभाग मध्य में देना इष्ट है।

द्वितीय संग्रहकृष्टि के उदयादिकों का विधान

कोहस्स विदियकिट्टी वेदयमाणस्स पढमकिट्टिं वा।
उदओ बंधो णासो अपुव्वकिट्टीण करणं च[1] ।।५४५।।

क्रोधस्य द्वितीयकृष्टिवेदकस्य पढमकृष्टिरिव।
उदयो बन्धो नाशोऽपूर्वकृष्टीनां करणं च।।५४५।।

अन्वयार्थ - (कोहस्स विदियाकिट्टी वेदयमाणस्स) क्रोध की द्वितीय कृष्टि का वेदन करने-वाले के **(उदयो)** कृष्टियों का उदय, **(बन्धो)** बन्ध, **(णासो)** घात **(च)** और **(अपुव्वकिट्टीण करणं)** अपूर्वकृष्टियों का करना इत्यादि विधान **(पढमाकिट्टिंवा)** प्रथम कृष्टि के समान ही जानना चाहिए ।

विशेषार्थ - द्वितीय संग्रहकृष्टि की उदीर्ण-कृष्टियों की, बध्यमान कृष्टियों की, विनाश की जानेवाली कृष्टियों की, बध्यमान द्रव्यद्वारा उत्पन्न की जानेवाली अपूर्व कृष्टियों की और संक्रम्यमान द्रव्य द्वारा उत्पद्यमान अपूर्वकृष्टियों की विधि क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के वेदक के समान ही जानना चाहिए।

१) क.पा.सुत्त पृ. ८५६ सू ११४२-११४४/ज.ध.पु.६ पृ. ३८९

क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि के स्वस्थान और परस्थान संक्रमण की सीमा कहते हैं-

कोहस्स विदियसंगहकिट्टी वेदंतयस्स संकमणं ।
सट्ठाणे तदियोत्ति य तदणंतरहेट्ठिमस्स पढमं च[1] ।।५४६।।

क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टिं वेद्यमानस्य संक्रमणम्।
स्वस्थाने तृतीयान्तं च तदनन्तरमधस्तनस्य प्रथमं च।।५४६।।

अन्वयार्थ - (कोहस्स) क्रोध की **(विदियसंगहकिट्टी)** द्वितीय संग्रहकृष्टि का **(वेदंतयस्स)** वेदन करने वाले के **(सट्ठाणे)** स्वस्थान में अर्थात् उसी कषाय में **(तदियोत्ति य)** तृतीय संग्रहकृष्टि तक **(संकमणं)** संक्रमण होता है **(च)** और परस्थान संक्रमण **(तदणंतरहेट्ठिमस्स पढमं)** उसके अनन्तर नीचे की कषाय की प्रथम संग्रहकृष्टि तक होता है।[2]

विशेषार्थ - क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में और मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित होता है, अन्य कृष्टियों में नहीं क्योंकि यहाँ आनुपूर्वी संक्रमण ही होता है। क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि अपकर्षण द्वारा तृतीयकृष्टि में और अध:प्रवृत्त संक्रमण द्वारा मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित होती है।

स्वस्थान - परस्थान संक्रमण का नियम कहते हैं -

पढमो विदिये तदिये हेट्ठिमपढमे च विदियगो तदिये ।
हेट्ठिमपढमे तदियो हेट्ठिमपढमे च संकमदि[3] ।।५४७।।

प्रथमो द्वितीये तृतीयेऽधस्तनप्रथमे च द्वितीयकस्तृतीये।
अधस्तनप्रथमे तृतीयोऽधस्तनप्रथमे च सङ्क्रामति।।५४७।।

अन्वयार्थ - विवक्षित कषाय की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य **(विदिये तदिये)** अपनी द्वितीय, तृतीय कृष्टि में **(च)** और **(हेट्ठिमपढमे)** नीचे की कषाय की प्रथम कृष्टि में **(संकमदि)** संक्रमित करता है। **(विदियगो)** द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य **(तदिये)** अपनी तृतीय कृष्टि में और **(हेट्ठिमपढमे)** नीचे के कषाय की प्रथम कृष्टि में संक्रमित करता है ।**(तदियो)** तृतीय कृष्टि का द्रव्य**(हेट्ठिमपढमे)** नीचे के

---

१) क.पा.सुत्त पृ. ८५६ सू ११४७ २) ज. ध. पु. १५ पृ. २७२-२७३
३) क.पा.सुत्त पृ. ८५६ सू ११४७-११५६

कषाय की प्रथमकृष्टि में संक्रमित करता है।

विशेषार्थ - जहाँ जिस कषाय का वेदन करता है उस विवक्षित कषाय के पश्चात् जिस कषाय का वेदन करने वाला है उसे नीचे की कषाय कहा जाता है। क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि के प्रदेशपुंज का क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में और मानकषाय की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमण करता है। क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित करता है। मान की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य मान की द्वितीय, तृतीय और माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित करता है। मान की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य मान की तृतीय और माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित करता है। मान की तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित करता है। माया की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य माया की द्वितीय, तृतीय और लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित करता है। माया की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य माया की तृतीय और लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित करता है । माया की तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित करता है। लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य लोभ की द्वितीय व तृतीय संग्रहकृष्टि में संक्रमित करता है और लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में संक्रमित करता है । यहाँ विवक्षित कषाय के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर स्वस्थान में अर्थात् अपनी ही अन्य संग्रहकृष्टियों में संक्रमित करता है और विवक्षित कषाय के द्रव्य को अध:प्रवृत्त संक्रमण भागहार का भाग देकर परस्थान में अर्थात् अन्य कषाय की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित करता है ।

कौनसी कृष्टि का द्रव्य	**कौनसी कृष्टियों में संक्रमित करता है**
क्रोध-द्वितीय	क्रोध-तृतीय, मान-प्रथम
क्रोध-तृतीय	मान-प्रथम
मान-प्रथम	मान-द्वितीय, तृतीय, माया-प्रथम
मान-द्वितीय	मान-तृतीय, माया-प्रथम
मान-तृतीय	माया-प्रथम
माया-प्रथम	माया-द्वितीय, तृतीय, लोभ-प्रथम
माया-द्वितीय	माया-तृतीय, लोभ-प्रथम
माया-तृतीय	लोभ-प्रथम
लोभ-प्रथम	लोभ-द्वितीय, तृतीय
लोभ-द्वितीय	लोभ-तृतीय
लोभ-तृतीय	संक्रमण नहीं

अब कौन - कौन सी कृष्टियों का संक्रमण नहीं होता है वह कहते हैं-

कोहस्स पढमकिट्टि, सुण्णोत्ति ण तस्स अत्थि संकमणं।
लोभंतिमकिट्टिस्स य णत्थि पडित्थावणूणादो ।।५४८।।

क्रोधस्य प्रथमकृष्टिः शून्येति न तस्यास्ति सङ्क्रमणम् ।
लोभान्तिमकृष्टेश्च नास्ति प्रतिस्थापनमूनतः ।।५४८।।

अन्वयार्थ - (कोहस्स पढमकिट्टी) क्रोध की प्रथम कृष्टि **(सुण्णोत्ति)** शून्य हुई है इसलिए **(तस्स)** उसका **(संकमणं)** संक्रमण **(ण अत्थि)** नहीं होता है **(य)** और **(पडित्थावणूणादो)** प्रतिलोम संक्रमण का अभाव होने से **(लोभंतिमकिट्टिस्स)** लोभ की अंतिमकृष्टि का संक्रमण **(णत्थि)** नहीं होता है।

विशेषार्थ- क्रोध की प्रथमकृष्टि नष्ट होने से उसका संक्रमण नहीं होता है और प्रतिलोम (विपरीत) संक्रमण का अभाव होने से लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि का संक्रमण नहीं होता है। शेष दस संग्रहकृष्टियों का संक्रमण होता है। वेदन करने के योग्य द्वितीय संग्रहकृष्टि में आयद्रव्य का अभाव है इसलिए वहाँ घातद्रव्य ही पूर्वकृष्टियों में पूर्वोक्त विधि से दिया जाता है। लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में व्ययद्रव्य नहीं है; परन्तु आयद्रव्य है इसलिए दस संग्रहकृष्टियों का संक्रमण द्रव्य पूर्वापूर्व कृष्टियों में दिया जाता है।

वेदन की जानेवाली और वेदन न की जानेवाली संग्रहकृष्टियों के बन्ध-अबन्ध का निर्देश करते हैं-

जस्स कसायस्स जं किट्टिं वेदयदि तस्स तं चेव ।
सेसाण कसायाणं पढमं किट्टिं तु बंधदि हु[1] ।।५४९।।

यस्य कषायस्य यां कृष्टिं वेदयति तस्य तां चैव ।
शेषाणां कषायाणां प्रथमं कृष्टिं तु बन्धाति हि ।।५४९ ।।

अन्वयार्थ - (जस्स कसायस्स) जिस कषाय की **(जं किट्टिं)** जिस कृष्टि का वेदन करता है **(तस्स)** उस कषाय की **(तं चेव)** उस कृष्टि को ही **(बंधदि)** बाँधता है **(तु)** परन्तु **(सेसाण कसायाणं)** शेष कषायों की **(पढमं किट्टिं तु)** प्रथमकृष्टि को **(बंधदि)** बाँधता है।

---

१) क. पा. सुत्त पृ. ८५७ सू. ११६० ज. ध. पु. १५ पृ. २७५/ ध. पु. ६ पृ. ३९०

विशेषार्थ - जिस कषाय की जिस संग्रह कृष्टि का वेदन करता है उस कषाय की उसी संग्रहकृष्टि का बंध करता है और जिन कषायों का अब वेदन नहीं करता है उन कषायों की मात्र प्रथम संग्रहकृष्टियों को ही बाँधता है। यहाँ क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि का वेदन करता है इसलिए यह जीव क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि को ही बाँधता है, और मान, माया, लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टियों को ही बाँधता है। इसीप्रकार आगे की कृष्टियों का वेदन करने वाले जीवों के विषय में भी जानना चाहिए।

शंका - यदि क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि का वेदन करता है और द्वितीय संग्रहकृष्टि का ही बन्ध करता है तो अन्य कषायों की प्रथम 'कृष्टियों' का ही बन्ध क्यों करता है? द्वितीय कृष्टियों का बंध क्यो नहीं करता है ?

समाधान - उपरितन कृष्टियों की अपेक्षा अधस्तन कृष्टियों में अनन्तगुणा-अनन्तगुणा हीन अनुभाग होता है। क्रोध की द्वितीय कृष्टि का वेदन करते समय उसी प्रकार की अनुभागयुक्त कृष्टि का बंध होता है क्योंकि भावों के अनुसार बंध यह आगम सूत्र है तथा ध्रुवबंधी प्रकृति होने से मान, माया और लोभ का भी बंध नियम से होता है। उसका भी क्रोध की वेद्यमान कृष्टियों के समान अनुभागयुक्त कृष्टियों का बंध होना चाहिए किन्तु क्रोध और अन्य कषायों की कृष्टियों का अनुभाग समान नहीं हैं क्योंकि क्रोध की कृष्टियाँ ऊपर है और मान, माया और लोभ कषाय की कृष्टियाँ नीचे-नीचे हैं इसलिए उन कषायों का सबसे अधिक अनुभागयुक्त प्रथम कृष्टि का ही बंध होता है। क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि का वेदन करते समय मान की द्वितीय, तृतीय कृष्टि का बन्ध माना जाये तो क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि की अपेक्षा से मान की द्वितीय, तृतीय कृष्टियों का हीनतम अनुभाग होने से 'भावानुसारी बंध' इस सिद्धांत का पालन नहीं होता है।

क्रोध की द्वितीय कृष्टिवेदक के प्रथम समय में ग्यारह संग्रहकृष्टियों में अवयवकृष्टि और द्रव्य का अल्पबहुत्व -

माणतिये कोहतदिये माया- लोहस्स तियतिये- अहिया।
संखगुणं वेदिज्जे अंतरकिट्टी पदेसो य ।।५५०।।

मानत्रयं क्रोधतृतीये माया लोभस्य त्रिकत्रिकेऽधिका।
सङ्ख्यगुणं वेद्यमानेऽन्तरकृष्टिः प्रदेशश्च ।।५५०।।

अन्वयार्थ - (माणतिय) मान संज्वलन की तीन **(कोहतदिये)** क्रोध संज्वलन की तीसरीकृष्टि में **(माया लोहस्स तियतिये)** माया और लोभ संज्वलन की तीन-तीन कृष्टियों में **(अंतरकिट्टी)** अंतरकृष्टियाँ **(य)** और **(पदेसो)** प्रदेश (द्रव्य)**(अहिया)** क्रम से अधिक-अधिक हैं

१ क. पा. सुत्त पृ. ८५७ सू. ११६३ - ११७४/ ज. ध. पु. १५ पृ. २७६/ ध. पु. ६ पृ. ३९० - ३९१

और **(वेदिज्जे)** वेद्यमान कृष्टि में **(संखगुणं)** अंतरकृष्टियाँ और प्रदेश संख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ - क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि का वेदन करने वाले जीव की मानकषाय की प्रथम संग्रहकृष्टि की अंतरकृष्टियाँ और प्रदेशपुंज अभव्यराशि से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण होकर भी सबसे अल्प है क्योंकि थोड़े द्रव्य से वह रची हैं। अभव्यराशि को अनन्त से गुणा करने पर जो लब्ध आता है वही लब्ध सिद्धराशि को अनन्त से भाग देने पर आता है। विशेष स्पष्टीकरण के लिए आचार्यों ने दो प्रकार से समझाया है।

कृष्टि का नाम	अंतर कृष्टि और द्रव्य का अल्पबहुत्व	अल्पबहुत्व का प्रमाण निकालने के लिए भागहार और गुणकार
मान की प्रथम कृष्टि	सबसे अल्प	-
मान की द्वितीय कृष्टि	विशेष अधिक	पल्य का असंख्यातवाँ भाग
मान की तृतीय कृष्टि	विशेष अधिक	पल्य का असंख्यातवाँ भाग
क्रोध की तृतीय कृष्टि	विशेष अधिक	आवली का असंख्यातवाँ भाग
माया की प्रथम कृष्टि	विशेष अधिक	आवली का असंख्यातवाँ भाग
माया की द्वितीय कृष्टि	विशेष अधिक	पल्य का असंख्यातवाँ भाग
माया की तृतीय कृष्टि	विशेष अधिक	पल्य का असंख्यातवाँ भाग
लोभ की प्रथम कृष्टि	विशेष अधिक	आवली का असंख्यातवाँ भाग
लोभ की द्वितीय कृष्टि	विशेष अधिक	पल्य का असंख्यातवाँ भाग
लोभ की तृतीय कृष्टि	विशेष अधिक	पल्य का असंख्यातवाँ भाग
क्रोध की द्वितीय कृष्टि	संख्यातगुणा	चौदह

स्वस्थान में पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर विशेष का प्रमाण आता है। जैसे मान की प्रथम संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टियों के प्रमाण को पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर जो एकभाग आता है उतने प्रमाण से अधिक मान की द्वितीय संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टियों का प्रमाण है। इसी प्रकार द्रव्य का प्रमाण निकालना चाहिए।

परस्थान में आवलि के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर विशेष का प्रमाण आता है। जैसे मान की तृतीय संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टियों के प्रमाण को आवलि के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर जो एकभाग आता है उतने प्रमाण से अधिक क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टियों का प्रमाण है। इसी प्रकार द्रव्य का प्रमाण भी जानना चाहिए।

लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अवयव कृष्टियों से क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि की अवयव कृष्टियों का प्रमाण चौदहगुणा है क्योंकि क्रोध की द्वितीय कृष्टि में अपना मूलद्रव्य १÷ २४ है और क्रोध

की प्रथम संग्रहकृष्टि का १३ ÷ २४ द्रव्य इसमें संक्रमित होने से इसका द्रव्य (१ ÷ २४) + (१३ ÷ २४) = १४ ÷ २४ हुआ और अन्य कृष्टियों की अंतरकृष्टि और द्रव्य का प्रमाण १ ÷ २४ है इसलिए चौदहगुणा हुआ।

वेद्यमान कृष्टि की प्रथम स्थिति में एक समयअधिक आवलि शेष रहने पर संभव होने वाले कार्य कहते हैं

वेदिज्जादिट्ठिदिए समयाहियआवलीयपरिसेसे ।
ताहे जहण्णुदीरण चरिमो पुण वेदगो तस्स[1] ।।५५१ ।।

वेद्यमानादिस्थितौ समयाधिकावलिकपरिशेषे ।
तत्र जघन्योदीरणा चरमः पुनर्वेदकस्तस्य ।।५५१ ।।

अन्वयार्थ - (वेदिज्जादिट्ठिदीए) वेद्यमान कृष्टि की प्रथम स्थिति में **(समयाहिय आवलीय-परिसेसे)** एक समय अधिक आवलि शेष रहने पर **(ताहे)** वहाँ **(जहण्णुदीरण)** जघन्य उदीरणा होती है **(पुण)** पुनः वह जीव **(तस्स)** उस कृष्टि का **(चरिमो वेदगो)** चरम समयवर्ती वेदक होता है ।

विशेषार्थ - जिस संग्रहकृष्टि का वेदन करता है उसकी प्रथम स्थिति में दो आवली शेष रहने पर आगाल-प्रत्यागाल का अभाव होता है। यद्यपि कृष्टिकरणकाल के प्रारंभ से ही मोहनीय कर्म के उत्कर्षण का अभाव होने से प्रथम स्थिति के द्रव्य का द्वितीय स्थिति में गमन नहीं होता है तो भी द्वितीय स्थिति में से प्रथम स्थिति में द्रव्य का आगमन होता था इसलिए आगाल-प्रत्यागाल की व्युच्छित्ति कही है। प्रथम स्थिति में एक समय अधिक एक आवलि शेष रहने पर जघन्य उदीरणा होती है अर्थात् उदयावली के ऊपर के एक निषेक का द्रव्य उदयावलि में देता है। वहीं उस वेदककाल का अंतिम समय होता है ।

द्वितीय संग्रहकृष्टिवेदक का अंतिम स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व का कथन तीन गाथाओं द्वारा करते हैं-

ताहे संजलणाणं बंधो अंतोमुहुत्तपरिहीणो ।
सत्तोवि य दिणसीदी चउमासब्भहिय पणवस्सा ।।५५२ ।।

तत्र सञ्ज्वलानां बन्धोऽन्तर्मुहूर्त परिहीनः ।
सत्त्वमपि च दिनाशीतिश्चतुर्मासाभ्यधिकपञ्चवर्षाः ।।५५२ ।।

---

१ क. पा. सुत्त पृ. ८५८ सू. ११७५-११७६/ ज. ध. पु. १५ पृ. २७९/ध. पु. ६ पृ. ३९१

अन्वयार्थ - (तत्र) वहाँ अर्थात् क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टिवेदक के अंतिम समय में **(संजलणाणं बंधो)** संज्वलन चतुष्क का स्थितिबंध **(अंतोमुहुत्तपरिहीणो)** अंतर्मुहूर्त हीन **(दिणसीदी)** अस्सी (८०) दिवस होता है **(य)** और **(सत्तो वि)** स्थितिसत्त्व भी अंतर्मुहूर्त हीन **(चउमासब्भहिय पणवस्सा)** चार मास अधिक पाँच वर्षप्रमाण रहता है ।

विशेषार्थ - क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि वेदक के अंतिम समय में संज्वलन चतुष्क का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम १०० दिवस होता था वह अब क्रमश: संख्यात हजार स्थितिबंधापसरणों द्वारा २० दिवस घटकर अंतर्मुहूर्त हीन ८० दिवस होता है। उसी प्रकार स्थितिसत्त्व अंतर्मुहूर्त से हीन आठ मास अधिक छह वर्ष प्रमाणा था। अब यथाक्रम संख्यातहजार स्थितिकांडकों द्वारा एक वर्ष चार मास घटकर अन्तर्मुहूर्त से हीन चार मास अधिक पाँच वर्षप्रमाण रहता है।[१]

घादितियाणं बंधो वासपुधत्तं तु सेसपयडीणं ।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति णियमेण[२] ।।५५३ ।।

घातित्रयाणां बन्धो वर्षपृथक्त्वं तु शेष प्रकृतीनाम् ।
वर्षाणां सङ्ख्येयसहस्राणि भवन्ति नियमेन ।।५५३ ।।

अन्वयार्थ - (घादितियाणं) तीन घातिकर्म का **(बंध)** स्थितिबंध **(वासपुधत्तं)** पृथक्त्ववर्ष प्रमाण होता है **(तु)** परन्तु **(सेसपयडीणं)** शेष अघातिकर्मों का स्थितिबंध **(णियमेण)** नियम से **(वस्साणं संखेज्जसहस्साणि)** संख्यातहजार वर्षप्रमाण होता है।

विशेषार्थ - क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि वेदक के अंतिम समय में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इन तीन घाति कर्मो का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त हीन दस वर्ष होता था वह यथाक्रम घटकर द्वितीय कृष्टिवेदक के अंतिम समय में अन्तर्मुहूर्त हीन वर्षपृथक्त्व होता है। वर्ष पृथक्त्व याने तीन वर्ष के ऊपर जितना जिनेन्द्र देव ने देखा हो उतना ग्रहण करना चाहिए। शेष अघातिकर्मों का स्थितिबंध नियम से संख्यात हजार वर्षप्रमाण जानना चाहिए।

घादितियाणं सत्तं संखसहस्साणि होंति वस्साणं ।
तिण्हं वि अघादीणं वस्साणि असंखमेत्ताणि ।।५५४ ।।

घातित्रयाणां सत्त्वं सङ्ख्यसहस्त्राणि भवन्ति वर्षाणाम् ।
त्रयाणामप्यघातिनां वर्षा असङ्ख्यमात्रा ।।५५४ ।।

---

१) ज. ध. पु. १५ पृ. २७९ २) ज. ध. पु. १५ पृ. २८०

अन्वयार्थ - (घादितियाणं सत्तं) तीन घातिकर्मों का स्थितिसत्त्व **(वस्साणं संखसहस्साणि)** संख्यात हजारवर्ष **(होंति)** है। **(तिन्हं वि अघादीणं)** तीन अघातिकर्मों का स्थितिसत्त्व **(असंखमेत्ताणि वस्साणि)** असंख्यात वर्षप्रमाण है।

विशेषार्थ - तीन घातिकर्मों का पूर्व में भी संख्यात हजार वर्षप्रमाण स्थितिसत्त्व होता था परन्तु अब पूर्व की अपेक्षा संख्यात गुणा हीन है। आयु के बिना शेष तीन अघातिकर्मों का स्थितिसत्त्व पूर्व की अपेक्षा असंख्यात गुणा हीन असंख्यातवर्ष प्रमाण है।

क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य में से प्रथम स्थिति स्थापना और अंतिम समय में बन्ध और सत्त्व का प्रमाण कहते हैं-

से काले कोहस्स य तदियादो संग्गहादु पढमठिदि ।
अंते संजलणाणं बंधं सत्तं दुमास चउवस्सा[१] ।।५५५।।

स्वे काले क्रोधस्स च तृतीयतः सङ्ग्रहात् प्रथमस्थितिः ।
अन्ते सञ्ज्वलनानां बन्धं सत्त्वं द्विमासं चतुर्वर्षाः ।।५५५।।

अन्वयार्थ - (से काले) उसके अनन्तर अपने काल में **(कोहस्स य तदियादो संग्गहादु)** क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में से **(पढमठिदि)** प्रथम स्थिति स्थापित करता है । **(अंते)** प्रथम स्थिति के अंतिम समय में **(संजलणाणं)** संज्वलन चतुष्क का **(बंध)** स्थितिबंध **(दुमास)** दो मास और **(सत्तं)** स्थितिसत्त्व **(चउवस्सा)** चार वर्षप्रमाण रहता है ।

विशेषार्थ - क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की द्वितीय स्थिति में से द्रव्य का अपकर्षण करके प्रथम स्थिति स्थापन करता है। उस समय द्वितीय संग्रहकृष्टि का दो समय कम दो आवलि प्रमाण नवक समयप्रबद्ध और उच्छिष्टावलिप्रमाण द्रव्य छोड़कर शेष सर्व द्रव्य तृतीय संग्रहकृष्टि रूप से परिणमाकर नष्ट करता है। उस समय द्वितीय संग्रहकृष्टि के प्राप्त हुए द्रव्य के माहात्म्य से तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य और आयाम पूर्व की अपेक्षा पंद्रहगुणा होता है। क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि का स्वयं का १ ÷ २४ और द्वितीय संग्रहकृष्टि का १४ ÷ २४ दोनों मिलकर १५ ÷ २४ भाग होता है। उसी समय क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंतरकृष्टियों के असंख्यात बहुभाग की उदीरणा होती है और उसी के असंख्यात बहुभाग प्रमाण कृष्टियों का बंध होता है किन्तु उदीर्णकृष्टियों से बध्यमान कृष्टियाँ विशेष हीन है। क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि का वेदन करनेवाले का जो विधान है वही विधान तृतीय संग्रहकृष्टि का वेदन करनेवाले का भी जानना चाहिए ।

१ क. पा. सुत्त पृ. ८५८-८५९ सू. ११८३-११९०/ ज. ध. पु. १५ पृ. २८१-२८३/ ध. पु. ६ पृ. ३९२

प्रथम स्थिति आवलिप्रत्यावलि प्रमाण शेष रहने पर आगालप्रत्यागाल की व्युच्छित्ति होती है। एक समय अधिक आवलि शेष रहने पर जघन्यस्थिति की उदीरणा होती है। वही तृतीय संग्रहकृष्टि वेदन का अंतिम समय है। उस समय संज्वलन चतुष्क का स्थितिबंध दो मास अर्थात् ६० दिवसप्रमाण होता है और स्थितिसत्त्व चार वर्षप्रमाण शेष रहता है ।

मान की प्रथम स्थिति की स्थापना और उसका प्रमाण कहते हैं-

से काले माणस्स य पढमादो संगहादु पढमठिदी ।
माणोदय अद्धाए तिभागमेत्ता हु पढमठिदी[1] ।।५५६ ।।

तस्मिन् काले मानस्य च प्रथमात् सङ्ग्रहात् प्रथमस्थितिः।
मानोदयाद्धायास्त्रिभागमात्रा हि प्रथमस्थितिः।।५५६।।

अन्वयार्थ - (से काले) क्रोध वेदक काल के अनन्तर समय में **(माणस्स य)** मान की **(पढमादो संगहादु)** प्रथम संग्रहकृष्टि में से **(पढमठिदी)** प्रथम स्थिति स्थापन करता है। **(माणोदय अद्धाए)** मान के उदयकाल के **(तिभागमेत्ता हु)** तीसरे भागप्रमाण **(पढमठिदी)** प्रथम स्थिति स्थापन करता है।

विशेषार्थ - क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि के वेदककाल के अनन्तर मान की प्रथमकृष्टि के द्रव्य को द्वितीय स्थिति में से अपकर्षित करके उदयादि गुणश्रेणिरूप प्रथम स्थिति रचता है।सर्व मानवेदककाल अन्तर्मुहूर्त होकर क्रोधवेदककाल से कुछ कम है। इस मानवेदक के सर्व काल का तृतीय भाग मान की प्रथम संग्रहकृष्टि का वेदककाल है इसलिए एक आवलि अधिक यह प्रथम स्थिति संपूर्ण मान वेदककाल का तृतीय भाग है। यद्यपि यह प्रथम स्थिति साधिक त्रिभाग प्रमाण है।परन्तु विशेष अधिक को न गिनकर त्रिभाग प्रमाण है ऐसा स्थूलरूप से कहा है।

मान की प्रथम कृष्टि का वेदन करने वाला क्षपक जीव मान की प्रथमकृष्टि की अंतरकृष्टियों में से असंख्यात बहुभाग कृष्टियों का वेदन करता है और उसी समय उदीर्ण कृष्टियों से विशेष हीन कृष्टियों का बंध करता है क्योंकि उदयरूप कृष्टियों के नीचे और ऊपर की असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियों को छोडकर शेष मध्यम बहुभाग कृष्टियाँ बंधरूप हैं।

मानवेदक के प्रथम समय में क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि का दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवक समयप्रबद्ध और उच्छिष्टावलि के द्रव्य को छोड़कर शेष सर्व सत्त्वद्रव्य मान की प्रथम संग्रहकृष्टि रूप से परिणमता है क्योंकि यहाँ आनुपूर्वी संक्रमण है। क्रोध का द्रव्य मानरूप संक्रमित होने पर

१ क. पा. सुत्त पृ. ८५९ सू. ११९१-११९२/ ज. ध. पु. १५ पृ. २८३/ ध. पु. ६ पृ. ३९२-३९३

संक्रमावलि व्यतीत होने तक उदय नहीं होता है।

शंका - क्रोधकषाय का द्रव्य मानरूप से परिणमित होकर क्या मान की प्रथम संग्रहकृष्टि के उपरिम भाग में अपूर्वकृष्टिरूप होकर अवस्थित रहता है या उसके नीचे उत्पन्न होने वाली अपूर्वकृष्टिरूप से परिणमता है या पूर्वकृष्टि में ही उसका निक्षेपण होता है?

समाधान - क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य मान की प्रथम संग्रहकृष्टि के उपरिम भाग में अपूर्वकृष्टिरूप होकर परिणमित नहीं होता है। परन्तु मान की पूर्वकृष्टियों में और उसके नीचे अपूर्व कृष्टिरूप से परिणमता है । उसमें भी पूर्व कृष्टिरूप से थोड़ा द्रव्य परिणमित होता है और अपूर्वकृष्टिरूप से अधिक द्रव्य परिणमित होता है क्योंकि क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि का आयाम अविनष्टरूप से मान की प्रथम संग्रहकृष्टि के नीचे अपूर्व कृष्टियों के आकाररूप से स्थित हुआ दिखता है। इसलिए पूर्वसमय के मान की प्रथम संग्रहकृष्टि के आयाम से वर्तमान समय में उसका आयाम सोलहगुणा होता है । स्वयं का एकगुणा और क्रोध की तृतीय कृष्टि का पंद्रहगुणा मिलकर आयाम और द्रव्य सोलहगुणा होता है। उस समय माया और लोभकषाय की प्रथम संग्रहकृष्टियों का ही बंध होता है।

मान की प्रथम संग्रहकृष्टि के वेदन का प्रकार और अंतिम समय में बंध और सत्त्व कहते हैं -

कोहपढमं व माणो चरिमे अंतोमुहुत्तपरिहीणो।
दिणमास पण्णचत्तं बंधं सत्तं तिसंजलणगाणं[1] ।।५५७।।

क्रोधप्रथममिव मानश्चरमेऽन्तर्मुहूर्तपरिहीनः ।
दिनमासपञ्चाशच्चत्वारिंशत् बन्धःसत्त्वं सञ्ज्वलनानाम् ।।५५७।।

अन्वयार्थ - (कोहपढमं व माणो) क्रोध की प्रथम कृष्टि के समान ही मान की प्रथम कृष्टि का वेदन करता है **(चरमे)** मान की प्रथम संग्रहकष्टि के वेदककाल के अंतिम समय में **(तिसंजलणगाणं)** तीन संज्वलन कषायों का **(बंध)** स्थितिबंध **(अंतोमुहुत्तपरिहीणो)** अन्तर्मुहूर्त हीन **(दिणपण्ण)** पचास दिवस और **(सत्तं)** स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्त हीन **(मासचत्तं)** चालीस मास रहता है ।

विशेषार्थ - क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की वेदन की जो विधि है वही विधि मान की प्रथम संग्रहकृष्टि की वेदन की है। विशेष यह है कि क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि वेदक के बंधद्रव्य द्वारा उत्पन्न नवीन अंतरकृष्टियों का प्रमाण लाने के लिए भागहार का प्रमाण छह गुणहानिमात्र कहा था। यहाँ उससे चौथा भाग कम है इसलिए साढ़े चार (४ $\frac{1}{2}$) गुणहानिमात्र है। आगे लोभतक भी चौथा भाग ही कम जानना अर्थात् माया की प्रथम संग्रहकृष्टि वेदक की तीन गुणहानिमात्र, लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि वेदक

१ क. पा. सुत्त पृ. ८५९ सू. ११९६-११९९/ज. ध. पु. २८६/ध. पु. ६ पृ. ३९३

का डेढ़गुणहानिमात्र भागहार जानना चाहिए। जहाँ चार कषायों का बंध होता है वहाँ प्रत्येक का द्रव्य स/४ (समयप्रबद्ध/४) इतना आता है। जहाँ तीन कषायों का बंध होता है वहाँ प्रत्येक का द्रव्य स/३ (समयप्रबद्ध/३) इतना है। जहाँ दो कषायों का बंध होता है वहाँ प्रत्येकका द्रव्य स/२ इतना है।जहाँ एक का बंध होता है वहाँ उसका द्रव्य स इतना है। अब उनकी बंधांतर कृष्टियों का प्रमााण लाने के लिए त्रैराशिक कहते हैं -

स १२ । ४ ख इतने द्रव्य की एक बंधांतर कृष्टि होती है तो स/४ इतने द्रव्य में कितनी बंधांतर कृष्टियाँ होगी?

फल × इच्छा / प्रमाण = लब्ध इस सूत्रानुसार निम्नलिखित त्रैराशिक जानना चाहिए।

बंधांतर कृष्टियों का प्रमाण निकालने के लिए त्रैराशिक विधान

जीव	प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध	गुणहानि में रुपांतर
क्रोध वेदक	स १२ ४ ख	१	स ४	स/४ ÷ स १२ ४ ख = ४ ख १२×४	४८=८×६= ४ ख ८।६ छह गुणहानि
मान वेदक	स १२ ४ ख	१	स ३	स/३ ÷ स १२ ४ ख = ४ ख १२×३	३६=८×९/२ = ४ ख८। ९/२ साढेचार गुणहानि
माया वेदक	स १२ ४ ख	१	स २	स/२ ÷ स १२ ४ ख = ४ ख १२×२	२४=८×३= ४ ख ८।३ तीन गुणहानि
लोभ वेदक	स १२ ४ ख	१	स	स ÷ स १२ ४ ख = ४ ख १२	१२=८×३/२= ४ ख८। ३/२ डेढ़ गुणहानि

बंधांतर कृष्टियों का प्रमाण

नाव	लोभ	माया	मान	क्रोध
क्रोधवेदक	४ ख ८।६	४ ख ८।६	४ ख ८।६	४ ख ८।६
मानवेदक	४ ख ८।९/२	४ ख ८।९/२	४ ख ८।९/२	
मायावेदक	४ ख ८।३	४ ख ८।३		
लोभवेदक	४ ख ८।३/२			

इसका भाग अपनी- अपनी सर्वकृष्टियों में देने पर क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि वेदक के अन्तराल का प्रमाण गुणहानि का चौथा भागमात्र कहा था । यहाँ और आगे उससे सोलहवाँ भागमात्र क्रम से हीन जानना चाहिए अर्थात् मान, माया, लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि वेदक के बंधद्रव्य द्वारा उत्पन्न नवीन कृष्टियों के मध्य में जो कृष्टियाँ है उनका अंतराल क्रम से गुणहानि का तीन सोलहवाँ भागमात्र दो सोलहवाँ भागमात्र और एक सोलहवाँ भागमात्र गुणित करना चाहिए ।

क्रोध की प्रथम, द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टिवेदक का गुणकार क्रम से तेरह, चौदह और पंद्रह, मान की प्रथमादि संग्रह कृष्टिवेदक का गुणकार क्रम से सोलह, सत्रह, अठारह, माया की प्रथमादि संग्रहकृष्टिवेदक का गुणकार क्रम से उन्नीस, बीस, इक्कीस और लोभ की प्रथमादि संग्रहकृष्टिवेदक का गुणकार क्रम से बावीस, तेवीस और चोवीस है ।

नाम	क्रोध			मान			माया			लोभ		
संग्रह	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
कृष्टि प्रमाण	४।१३ ख।२४	४।१४ ख।२४	४।१५ ख।२४	४।१६ ख।२४	४।१७ ख।४	४।१८ ख।२४	४।१९ ख।२४	४।२० ख।२४	४।२१ ख।२४	४।२२ ख।२४	४।२३ ख।२४	४।२४ ख।२४

वहाँ अपने-अपने गुणकार से गुण्य को गुणा करने पर अंतराल का प्रमाण आता है।

क्रोधवेदक को चारों कषायों, मानवेदक को क्रोध बिना तीन कषायों, मायावेदक को क्रोध और मान बिना दो कषायों, लोभ वेदक को लोभ कषाय का ही बंध होता है इसलिए इनके बंधद्रव्य द्वारा अंतरकृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं। उसी प्रकार संक्रम्यमाण द्रव्यद्वारा भी कृष्टियों के अंतराल में और संग्रहकृष्टियों के अंतराल में यथासंभव अपूर्वकृष्टियों की रचना होती है।

मान की प्रथम संग्रह कृष्टिवेदक की प्रथम स्थिति में समय अधिक आवलि शेष रहने पर उस कृष्टिवेदक का अंतिम समय होता है। उस समय क्रोध बिना तीन संज्वलन कषायों का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त हीन पचास दिवस होता है और स्थितिसत्त्व अंतर्मुहूर्त हीन चालीस मास अर्थात् तीन वर्ष चार मास रहता है। यहाँ क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के समान त्रैराशिक विधान जानना। यहाँ से आगे पूर्व संग्रहकृष्टि का द्रव्य मिलाने से वेद्यमान कृष्टि के द्रव्य में एक-एक गुणकार क्रम से बढ़ता है। वहाँ मान की द्वितीय, तृतीय, माया की प्रथम, द्वितीय, तृतीय और लोभ की प्रथम, द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टियों का द्रव्य क्रम से सत्रह, अठारह, उन्नीस, बीस, इक्कीस, बाईस, तेईस, चोवीस गुणा होता है। अपने-अपने द्रव्य का अपकर्षण करके अपने वेदककाल से आवलि मात्र अधिक प्रथम स्थिति करता है। वहाँ पूर्वोक्त विधान से उस प्रथम स्थिति में समय अधिक आवलि शेष रहने पर वेदककाल का अंतिम समय होता है।

$\frac{\text{संग्रहकृष्टि के अंतरकृष्टियों का प्रमाण}}{\text{बंधांतर कृष्टियों का प्रमाण}}$ = बंधांतर कृष्टियों के अंतराल का प्रमाण

इस सूत्रानुसार प्रत्येक कृष्टि में बंधांतरकृष्टियों के अंतराल का प्रमाण निकालते हैं -

कृष्टि का नाम	संग्रह कृष्टियों का प्रमाण	बंधांतर कृष्टियोंका प्रमाण	अंतराल का प्रमाण
क्रोधवेदक में मान, माया,लोभ	। ४ ख २४	। ४ ख ८।६	$\frac{\text{। ४ ख २४}}{\text{। ४ ख ८।६}} = \frac{\text{८।६}}{\text{२४}} = \frac{\text{८}}{\text{४}}$ गुणहानि का चौथा भाग
क्रोधवेदक में क्रोध प्रथम संग्रहकृष्टि	। ४ १३ ख २४	। ४ ख ८।६	$\frac{\text{। ४ १३ ख २४}}{\text{। ४ ख ८।६}} = \frac{\text{१३×८।६}}{\text{२४}} = \frac{\text{१३×८}}{\text{४}}$
क्रोधवेदक में क्रोध द्वितीय संग्रहकृष्टि	। ४ १४ ख २४	। ४ ख ८।६	$\frac{\text{। ४ १४ ख २४}}{\text{। ४ ख ८।६}} = \frac{\text{१४×८।६}}{\text{२४}} = \frac{\text{१४×८}}{\text{४}}$
क्रोधवेदक में क्रोध तृतीय संग्रहकृष्टि	। ४ १५ ख २४	। ४ ख ८।६	$\frac{\text{। ४ १५ ख २४}}{\text{। ४ ख ८।६}} = \frac{\text{१५×८।६}}{\text{२४}} = \frac{\text{१५×८}}{\text{४}}$
मानवेदक में माया, लोभ	। ४ ख २४	। ४ ख ८।९/२	$\frac{\text{। ४ ख २४}}{\text{। ४ ख ८।९/२}} = \frac{\text{८×९}}{\text{२४×२}} = \frac{\text{८×९}}{\text{४८}} = \frac{\text{८।३}}{\text{१६}}$ तीन गुणहानि का सोलहवाँ भाग
मानवेदक में मान प्रथम संग्रहकृष्टि	। ४ १६ ख २४	। ४ ख ८।९/२	$\frac{\text{। ४ १६ ख २४}}{\text{। ४ ख ८।९/२}} = \frac{\text{१६×८×९}}{\text{२४×२}} = \frac{\text{८×३।१६}}{\text{१६}}$
मानवेदक में मान द्वितीय संग्रहकृष्टि	। ४ १७ ख २४	। ४ ख ८।९/२	$\frac{\text{। ४ १७ ख २४}}{\text{। ४ ख ८।९/२}} = \frac{\text{८×९×१७}}{\text{२×२४}} = \frac{\text{८×३×१७}}{\text{१६}}$

कृष्टि का नाम	संग्रह कृष्टियों का प्रमाण	बंधांतर कृष्टियोंका प्रमाण	अंतराल का प्रमाण
मानवेदक में मान तृतीय संग्रहकृष्टि	। ४ १८ ख २४	। ४ ख ८।९/२	[। ४ १८ ख २४] / [। ४ ख ८।९/२] = ८।९×१८ / २×२४ = ८×३×१८ / १६
मायावेदक में लोभ	। ४ २४ ख	। ४ ख ८।३	[। ४ ख २४] / [। ४ ख ८।] = ८×३ / २४ = ८×२ / १६ दो गुणहानि का सोलहवाँ भाग ८ का एक गुणकार कम किया और भागहार में से ८ कम किये
मायावेदक में माया प्रथम संग्रहकृष्टि	। ४ १९ ख २४	। ४ ख ८।३	[। ४ १९ ख २४] / [। ४ ख ८।३] = ८×३×१९ / २४ = ८×२×१९ / १६
मायावेदक में माया द्वितीय संग्रहकृष्टि	। ४ २० ख २४	। ४ ख ८।३	[। ४ २० ख २४] / [। ४ ख ८।३] = ८×३×२० / २४ = ८×२×२० / १६
मायावेदक में माया तृतीय संग्रहकृष्टि	। ४ २१ ख २४	। ४ ख ८।३	[। ४ २१ ख २४] / [। ४ ख ८।३] = ८×३×२१ / २४ = ८×२×२१ / १६
लोभ वेदक में प्रथम संग्रहकृष्टि	। ४ २२ ख २४	। ४ ख ८।३/२	[। ४ २२ ख २४] / [। ४ ख ८।३/२] = ८×३×२२ / २४×२ = ८×२२ / १६
लोभ वेदक में लोभ द्वितीय संग्रहकृष्टि	। ४ २३ ख २४	। ४ ख ८।३/२	[। ४ २३ ख २४] / [। ४ ख ८।३/२] = ८×३×२३ / २×२४ = ८×३×२३ / ४८ = ८×२३ / १६
लोभ वेदक में लोभ तृतीय संग्रहकृष्टि	। ४ २४ ख २४	। ४ ख ८।३/२	[। ४ २३ ख २४] / [। ४ ख ८।३/२] = ८×३×२४ / २×२४ = ८×२४ / १६

मान की द्वितीय संग्रहकृष्टिवेदक के अंतिम समय में स्थितिबंध व स्थितिसत्त्व कहते हैं -

विदियस्स माणचरिमे चत्तं बत्तीसदिवसमासाणि ।
अंतोमुहुत्तहीणा बंधो सत्तो तिसंजलणाणं[1] ।। ५५८ ।।

द्वितीयस्य मान चरिमे चत्वारिंशद् द्वात्रिंशद् दिवसमासाः ।
अन्तर्मुहूर्तहीना बन्धः सत्त्वं त्रिसञ्ज्वलनानाम् ।। ५५८ ।।

अन्वयार्थ - (विदियस्स माणचरिमे) मान की द्वितीय संग्रहकृष्टिवेदक के अंतिम समय में **(तिसंजलणाणं)** तीन संज्वलन कषायों का **(बंधो)** स्थितिबंध **(अंतोमुहुत्तहीणा)** अंतर्मुहूर्त हीन **(चत्तं दिवस)** चालीस दिवस और **(सत्तो)** स्थितिसत्त्व अंतर्मुहूर्त हीन **(बत्तीसमासाणि)** बत्तीस मास रहता है।

विशेषार्थ - मान की प्रथम संग्रहकृष्टिवेदन के अनन्तर मान की द्वितीय संग्रहकृष्टि में से द्रव्य का अपकर्षण करके उदयादि गुणश्रेणिरूप से प्रथम स्थिति की रचना करता है। एक समय अधिक आवलि प्रमाण शेष रहने पर चरम समयवर्ती वेदक होता हैं।[2] उस समय तीन संज्वलन का स्थितिबंध क्रम से १० दिवस घटकर अंतर्मुहूर्त हीन चालीस दिवस प्रमाण होता है और स्थितिसत्त्व यथाक्रम ८ मास हीन होकर अन्तर्मुहूर्त हीन ३२ मास अर्थात् अन्तर्मुहूर्त हीन २ वर्ष ८ मास प्रमाण रहता है।

तृतीय संग्रहकृष्टि वेदन के अंतिम समय में स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व का निरूपण करते हैं -

तदियस्स माणचरिमे तीसं चउवीस दिवसमासाणि ।
तिण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो तह य सत्तो य[3] ।। ५५९ ।।

तृतीयस्य मानचरिमे त्रिंशच्चतुर्विंशति दिवसमासाः ।
त्रयाणां सञ्ज्वलनानां स्थितिबन्धस्तथा च सत्त्वं च ।। ५५९ ।।

अन्वयार्थ - (तदियस्स माणचरिमे) मान की तृतीय संग्रहकृष्टि के अंतिम समय में **(तिण्हं संजलणाणं)** तीन संज्वलन कषायों का **(ठिदिबंधो)** स्थितिबंध **(तीस दिवस)** तीस दिवस **(तह य)** उसी प्रकार **(सत्तो य)** स्थितिसत्त्व **(चउवीस मासाणि)** चोबीस मास रहता है।

विशेषार्थ - मान की द्वितीय संग्रहकृष्टि का वेदन करने पर मान की तृतीय संग्रहकृष्टि में से द्रव्य

१)क. पा. सुत्त पृ. ८६० सू. १२००-१२०३/ध. पु. ६ पृ. ३९४
२) ज.ध. पु.१५ पृ.२८८-२८९
३)क. पा. सुत्त पृ. ८६० सू. १२०४-१२०८

का अपकर्षण करके पूर्वोक्त प्रकार से प्रथम स्थिति करता है। एक समय अधिक आवलिप्रमाण प्रथम स्थिति शेष रहने पर चरम समयवर्ती वेदक होता है[१]। वहाँ तीन संज्वलन कषायों का स्थितिबंध यथाक्रम पुन: १० दिवस घटकर ३० दिवसमात्र होता है और स्थितिसत्त्व ८ मास घटकर पूर्ण दो वर्ष प्रमाण रहता है।

माया कषाय की प्रथमकृष्टि का वेदन और अन्तसमय में बंध और सत्त्व का प्रमाण कहते हैं -

पढमगमायाचरिमे पणवीसं वीस-दिवस-मासाणि।
अंतोमुहुत्तहीणा बंधो सत्तो दु-संजलणगाणं[२]।। ५६०।।

प्रथमगमायाचरिमे पञ्चविंशतिर्विंशतिर्दिवसमासाः।
अन्तर्मुहूर्तहीनाः बन्धः सत्त्वं द्विसञ्ज्वलनकयोः।। ५६०।।

अन्वयार्थ - (पढमगमायाचरिमे) माया कषाय की प्रथम संग्रहकृष्टि के अंतिम समय में **(दुसंजलणगाणं)** दो संज्वलन कषायों का **(बंधो)** स्थितिबंध **(अंतोमुहुत्तहीणा)** अन्तर्मुहूर्त हीन **(पणवीसं दिवस)** पच्चीस दिवस होता है और **(सत्तो)** स्थितिसत्त्व **(वीसमासाणि)** अन्तर्मुहूर्त हीन वीस मास मात्र रहता है।

विशेषार्थ - मान कषाय के वेदककाल के अनन्तर माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में से द्रव्य का अपकर्षण करके प्रथम स्थिति स्थापन करता है। उस प्रथमस्थिति में एक समय अधिक आवलिप्रमाण काल शेष रहने पर चरमसमयवर्ती वेदक होता है।[३] उस समय में माया और लोभ इन दो संज्वलन कषायों का स्थितिबंध क्रम से पूर्व की अपेक्षा ५ दिवस घटकर पच्चीस दिवस प्रमाण होता है और स्थितिसत्त्व पूर्व की अपेक्षा ४ मास घटकर बीस मास प्रमाण रहता है।

माया की द्वितीयकृष्टि के वेदन के अंतिम समय में बंध और सत्त्व का निरूपण करते है -

विदियगमायाचरिमे वीसं सोलं च दिवसमासाणि।
अंतोमुहुत्तहीणा बंधो सत्तो दु संजलणगाणं[४]।। ५६१।।

द्वितीयगमायाचरिमे विंशं षोडश च दिवसमासाः।
अन्तर्मुहूर्तहीनाः बन्धः सत्त्वं द्विसञ्ज्वलनकयोः।। ५६१।।

---

१)ज.ध. पु.१५ पृ.२८९-२९० २)क. पा. सुत्त पृ. ८६० सू. १२०९-१२१२/ध. पु.६ पृ. ३९४
३)ज.ध. पु.१५ पृ.२९० ४) क. पा. सुत्त पृ. ८६०-८६१ सू.१२१३-१२१६/ध. पु.६ पृ. ३९५

अन्वयार्थ - (विदियगमायाचरिमे) मायाकषाय की द्वितीय संग्रहकृष्टि वेदक के अंतिम समय में **(दुसंजलणगाणं)** दो संज्वलनकषायों का **(बंधो)** स्थितिबंध **(अंतोमुहुत्तहीणा)** अंतर्मुहूर्त हीन **(वीसं दिवस)** बीस दिवस होता है **(च)** और **(सत्तो)** स्थितिसत्त्व **(सोलं मासाणि)** सोलह मास रहता है।

विशेषार्थ - माया की प्रथम संग्रहकृष्टिवेदन के अनन्तर माया की द्वितीय संग्रहकृष्टि में से द्रव्य का अपकर्षण करके प्रथम स्थिति की रचना करके उसका वेदन करता है। एक समय अधिक आवलिमात्र प्रथम स्थिति शेष रहने पर अंतिम समयवर्ती वेदक होता है और उस समय में संज्वलन माया और लोभ के पूर्व स्थितिबंध में से क्रम से ५ दिवस प्रमाण स्थिति घटकर के अंतर्मुहूर्त हीन २० दिवसप्रमाण स्थिति बांधता है और स्थितिसत्त्व भी क्रम से ४ मास घट कर अंतर्मुहूर्त कम १६ मासमात्र शेष रहता है।

माया की तृतीय संग्रहकृष्टिवेदक के अंतिम समय में स्थितिबंध औंर सत्त्व का प्ररूपण दो गाथाओं द्वारा करते हैं-

तदियगमाया चरिमे पण्णरवारस य दिवसमासाणि।
दोण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो तह य सत्तो य[1]॥ ५६२॥
मासपुधत्तं वासा संखसहस्साणि बंध सत्तो य।
घादितियाणिदराणं संखमसंखेज्जवस्साणि ॥ ५६३॥

तृतीयकमायाचरमे पञ्चदश द्वादश च दिवसमासाः।
द्वयोः सञ्ज्वलनयोः स्थितिबन्धस्तथा च सत्त्वं च ॥ ५६२॥
मासपृथक्त्वं वर्षाः सङ्ख्यसहस्रा बन्धः सत्त्वं च।
घातित्रयाणामितरेषां सङ्ख्यमसङ्ख्येयवर्षाः॥ ५६३॥

अन्वयार्थ - (तदियगमायाचरिमे) माया कषाय की तृतीय संग्रहकृष्टिवेदक के अंतिम समय में **(दोण्हं संजलणाणं)** दो संज्वलन कषायों का **(ठिदिबंधो)** स्थितिबंध **(पण्णर दिवस)** पंद्रह दिवस होता है। **(तह य)** उसी प्रकार **(सत्तो य)** स्थितिसत्त्व **(वारस य मासाणि)** बारह मास रहता है वहीं **(घादितियाण)** तीन घातिकर्मों का **(बंध)** स्थितिबंध **(मासपुधत्तं)** मास पृथक्त्व प्रमाण होता है **(य)** और **(सत्तो)** सत्त्व **(संखसहस्साणि)** संख्यात हजार **(वासा)** वर्षप्रमाण रहता है और **(इदराणं)** इतर अर्थात् तीन अघातिकर्मों का स्थितिबंध **(संखं वस्साणि)** संख्यात वर्षप्रमाण और स्थितिसत्त्व **(असंखेज्जवस्साणि)** असंख्यात वर्षप्रमाण रहता है।

विशेषार्थ - माया कषाय की द्वितीय संग्रहकृष्टि के वेदन के अनन्तर माया कषाय की तृतीय

१ क. पा. सुत्त पृ. ८६१ सू. १२१७ - १२२४/ ध. पु. ६ पृ. ३९५

कृष्टि में से द्रव्य का अपकर्षण करके प्रथम स्थिति करता है। प्रथम स्थिति में एक समय अधिक एक आवलिकाल शेष रहने पर माया का अंतिम समयवर्ती वेदक होता है। उस समय संज्वलन माया और लोभ कषाय का स्थितिबंध पूर्ण १५ दिवस और स्थितिसत्त्व पूर्ण एक वर्ष प्रमाण रहता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इन तीन घाति कर्मों का स्थितिबंध पृथक्त्वमास होता है और स्थितिसत्त्व संख्यातहजार वर्षप्रमाण रहता है। नाम, गोत्र और वेदनीय इन तीन अघाति कर्मों का स्थितिबंध संख्यात वर्ष प्रमाण और स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षप्रमाण है।

लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टिवेदन के अंतिम समय में स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व कहते हैं -

लोहस्स पढमचरिमे लोहस्संतोमुहुत्त बंधदुगे
दिवसपुधत्तं वासा, संखसहस्साणि घादितिये ।। ५६४ ।।
सेसाणं पयडीणं वासपुधत्तं तु होदि ठिदिबंधो ।
ठिदिसत्तमसंखेज्जा वस्साणि हवंति णियमेण [१] ।। ५६५ ।।

लोभस्य प्रथमचरिमे लोभस्यान्तर्मुहूर्त बन्धद्विके ।
दिवसपृथक्त्वं वर्षाः सङ्ख्यसहस्राणि घातित्रये ।। ५६४ ।।
शेषाणां प्रकृतींना वर्षपृथक्त्वं तु भवति स्थितिबन्धः ।
स्थितिसत्त्वमसङ्ख्येया वर्षा भवन्ति नियमेन ।। ५६५ ।।

अन्वयार्थ - (लोहस्स पढमचरिमे) लोभ की संग्रहकृष्टिवेदन के अंतिम समय में **(लोहस्स)** संज्वलन लोभ का **(बंधदुगे)** स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व **(अंतोमुहुत्त)** अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। **(घादितिये)** तीन घातिकर्मों का स्थितिबंध **(दिवसपुधत्तं)** दिवसपृथक्त्व और स्थितिसत्त्व **(संखसहस्साणि वासा)** संख्यात हजार वर्ष है। **(सेसाणं पयडीणं)** शेष तीन अघाति प्रकृतियों का **(ठिदिबंधो)** स्थितिबन्ध **(वासपुधत्तं)** वर्ष पृथक्त्व और **(ठिदिसत्तं)** स्थितिसत्त्व **(णियमेण)** नियम से **(असंखेज्जा वस्साणि)** असंख्यात वर्ष **(हवंति)** है।

विशेषार्थ - माया संज्वलन की तीनों संग्रहकृष्टियों का वेदन समाप्त होने पर अनन्तर समय में लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में से द्रव्य का अपकर्षण करके उदयादि गुणश्रेणी रूप से प्रथम स्थिति की रचना करता है। लोभवेदक के सर्वकाल के तृतीय त्रिभाग से कुछ अधिक अथवा बादर लोभवेदककाल के अर्ध से कुछ अधिक प्रथम स्थिति का काल (आयाम) है। उसी पूर्वोक्त विधान से लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की अन्तर कृष्टियों के असंख्यात बहुभाग की उदीरणा होती है और उससे कुछ हीन कृष्टियों

१ क. पा. सुत्त पृ. ८६१-८६२ सू. १२२५ - १२३२/ ध. पु. ६ पृ. ३९६

का बंध होता है। प्रत्येक समय में कृष्टियों का बंध और उदय का अनन्तगुणित हानिरूप से अपसरण होता है और अनुभागसत्त्व का अपवर्तनाघात होता है।बध्यमान और संक्रम्यमान द्रव्य द्वारा अंतरकृष्टियों के अंतराल में और संग्रहकृष्टि के नीचे अपूर्वकृष्टियों की रचना होती है। इस विधान से प्रथमकृष्टि का वेदन करता हुआ जब प्रथम स्थिति में एक समय अधिक आवलिकाल शेष रहता है तब चरम समयवर्ती वेदक होता है। उस समय संज्वलनलोभ का पूर्व स्थितिबंध यथाक्रम हीन होकर अंतर्मुहूर्तप्रमाण स्थितिसत्त्व भी हीन होकर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण शेष रहता है परन्तु स्थितिबंध से स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा जानना। तीन घातिकर्मों का स्थितिबंध यथाक्रम हीन होकर दिवस पृथक्त्व और स्थितिसत्त्व संख्यात हजारवर्ष रहता है। तीन अघातिकर्मों का स्थितिबंध भी हीन होकर वर्ष पृथक्त्व और स्थितिसत्त्व पूर्व की अपेक्षा हीन होकर भी असंख्यात वर्ष ही रहता है।[१]

लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि का वेदन और सूक्ष्मकृष्टियों की रचना का निर्देश करते हैं -

से काले लोहस्स य विदियादो संगहादु पढमठिदी।
ताहे सुहुमं किट्टिं करेदि तव्विदियतदियादो[२] ।। ५६६ ।।

स्वे काले लोभस्य च द्वितीयतः सङ्ग्रहात् प्रथमस्थितिः।
तत्र सूक्ष्मां कृष्टिं करोति तद्द्वितीयतृतीयतः ।। ५६६ ।।

अन्वयार्थ - (से काले) लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि वेदन के अनन्तर अपने काल में **(लोहस्स य विदियादो संगहादु)** लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि में से **(पढमठिदी)** प्रथम स्थिति की रचना करता है। **(ताहे)** उसी काल में **(तव्विदियतदियादो)** लोभ की द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टियों में से **(सुहुमं किट्टिं)** सूक्ष्मकृष्टि **(करेदि)** करता है।

विशेषार्थ - प्रथम संग्रहकृष्टि का वेदन समाप्त होने पर अनन्तर समय में द्वितीय संग्रहकृष्टि में से द्रव्य का अपकर्षण करके उदयादि गलितावशेष गुणश्रेणिरूप प्रथम स्थिति स्थापन करता है। उसका आयाम शेष रहे हुए अनिवृत्तिकरण काल से आवलिमात्र अधिक होता है। उसीकाल में लोभ की द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टि में से द्रव्य का अपकर्षण करके सूक्ष्मकृष्टियों की रचना करता है। संज्वलन लोभ कषाय के अनुभाग को बादरकृष्टियों से भी अनन्तगुणित हानिरूप से परिणमित करके अत्यन्त सूक्ष्म (मन्द) अनुभाग रूप से करना ही सूक्ष्मकृष्टि है। सर्वजघन्य बादरकृष्टि से सर्वोत्कृष्ट सूक्ष्मकृष्टि का भी अनुभाग अनन्तगुणित हीन होता है।[३]

---
१) ज. ध. पु. १५ पृ. २९२-२९३ ३) ज.ध. पु.१५ पृ.२९४-२९६
२) क. पा. सुत्त पृ. ८६२ सू. १२३३-१२३४/ध. पु. ६ पृ.३९६

यदि द्वितीयत्रिभाग में सूक्ष्म कृष्टियों की रचना नहीं की तो लोभ वेदककाल के तृतीय भाग में सूक्ष्मकृष्टियों का वेदन करना संभव नहीं है। बादरलोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य सर्व मोह द्रव्य के चौवीसवे भाग से तेईसगुणा है। उसमें से अपकर्षित किया द्रव्य अनुभाग की अपेक्षा से सर्व मोहद्रव्य के चौबीसवे भाग को अपकर्षण भागहार का भाग देकर जो एक भाग आता है उससे पाँचसौ पचहत्तर गुणा है। उसमें से तेईसगुणा लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि रूप द्रव्य है और शेष पाँच सौ बावनगुणे द्रव्य द्वारा सूक्ष्मकृष्टि करता है। (२३ × २४ = ५५२; ५५२ + २३ = ५७५)

यहाँ अपकर्षण किये द्रव्य में तेईस का गुणकार होता है। उसे उससे एक अधिक चौवीस से गुणा करने पर उसके अनन्तर भोगने योग्य सूक्ष्मकृष्टि में संक्रमण होने योग्य द्रव्य पाँचसौ बावन (५५२) गुणा होता है। [व१२।२३×२४ / २४ ओ] क्योंकि उसके अनन्तर भोगने योग्य कृष्टि में संक्रमण द्रव्य संख्यातगुणा कहा है। लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में से अपकर्षण किया द्रव्य सर्व मोहद्रव्य के चौवीसवें भाग को अपकर्षण भागहार का भाग देने पर एक भागमात्र [व १२ / २४ ओ] है। उसमें से सूक्ष्मकृष्टियों को करता है। द्वितीय और तृतीय कृष्टि का मिलकर मोहद्रव्य के चौवीसवें भाग को अपकर्षण भागहार का भाग देकर जो एक भाग आता है उससे ५५३ गुणित द्रव्य हुआ।

द्वितीय संग्रहकृष्टि में से अपकृष्ट द्रव्य + तृतीय संग्रहकृष्टि में से अपकृष्ट द्रव्य = कुल अपकृष्ट द्रव्य

व१२ ५५२ / २४ ओ + व १२।१ / २४ ओ = [व १२।५५३ / २४ ओ] इतने द्रव्य द्वारा सूक्ष्मकृष्टियाँ करता है। ऐसा तात्पर्य जानना चाहिए।

सूक्ष्मकृष्टियों की रचना के स्थान और प्रकार कहते हैं -

लोहस्स तदियसंगहकिट्टीए हेट्ठदो अवट्ठाणं।
सुहुमाणं किट्टीणं कोहस्स य पढमकिट्टिणिभा[१]।। ५६७।।

लोभस्य तृतीयसङ्ग्रहकृष्ट्याऽधस्तनतोऽवस्थानम्।
सूक्ष्मानां कृष्टीनां क्रोधस्य च प्रथमकृष्टिनिभा।। ५६७।।

अन्वयार्थ - (सुहुमाणं किट्टीणं) सूक्ष्मकृष्टियों का **(अवट्टाणं)** अवस्थान **(लोहस्स तदियसंगहकिट्टीए)** लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि के **(हेट्ठदो)** नीचे है। उन सूक्ष्मकृष्टियों की रचना **(कोहस्स पढमकिट्टिणिभा)** क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के समान होती है।

विशेषार्थ - उन सूक्ष्मकृष्टियों की रचना लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि के नीचे होती है क्योंकि वे सूक्ष्मकृष्टियाँ बादरकृष्टियों से अनन्तगुणित हीन अनुभागरूप से परिणमित हुई हैं। ये सूक्ष्मकृष्टियाँ

१) ध. पु. ६ पृ.३९६-३९७/ज.ध. पु.१५ पृ.२९६-२९७

संज्वलन क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के समान ही है (१) जिस प्रकार अपूर्व स्पर्धक के नीचे अनन्तगुणा हीन अनुभागयुक्त क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि है उसी प्रकार बादरकृष्टि के नीचे अनन्तगुणा हीन अनुभागयुक्त सूक्ष्मकृष्टियों की रचना होती है। (२) जिस प्रकार क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टियों का प्रमाण शेष बादरकृष्टियों के प्रमाण से संख्यातगुणा है, उसी प्रकार सूक्ष्मकृष्टियों का प्रमाण क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि छोड़कर शेष कृष्टियों के प्रमाण से संख्यातगुणा है। (३) जिस प्रकार क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि जघन्यकृष्टि से उत्कृष्टकृष्टि तक क्रम से अनन्तगुणी अनुभाग सहित है उसी प्रकार सूक्ष्मकृष्टियाँ भी जघन्य से उत्कृष्ट तक क्रम से अनन्तगुणी अनुभाग सहित है।

शंका - यदि ऐसा है तो अन्य किसी भी कृष्टियों के साथ सूक्ष्म कृष्टियों की समानता नहीं बताकर क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के साथ ही क्यों कही ?

समाधान - अन्य कषायों की कृष्टियों के साथ सूक्ष्मकृष्टियों का सादृश्य कहने से अर्थ का ज्ञान और आयाम विशेष का ज्ञान यथार्थ हो नहीं सकता इसलिए सुखपूर्वक ज्ञान कराने के लिए प्रथम कषाय के प्रथमकृष्टि की सदृशता कही गयी है।

कृष्टियों का अल्पबहुत्व कहते हैं -

कोहस्स पढमकिट्टी कोहे छुद्धे दु माणपढमं च।
माणे छुद्धे मायापढमं मायाए संछुद्धे ।। ५६८ ।।
लोहस्स पढमकिट्टी आदिमसमयकदसुहुमकिट्टी य।
अहियकमा पंचपदा सगसंखेज्जदिमभागेण ।। ५६९ ।।

क्रोधस्य प्रथमकृष्टिः क्रोधे क्षुब्धे तु मानप्रथमं च।
माने क्षुब्धे मायाप्रथमं मायायां संक्षुब्धायाम् ।। ५६८ ।।
लोभस्य प्रथमकृष्टिरादिसमयकृत सूक्ष्मकृष्टिश्च।
अधिकक्रमाणि पञ्चपदानि स्वकसङ्ख्येयभागेन ।। ५६९ ।।

अन्वयार्थ - (कोहस्स पढमकिट्टी) (१) क्रोध की प्रथमकृष्टि **(कोहे छुद्धे दु माणपढमं च)** (२) क्रोध का संक्रमण होने पर मान की प्रथम कृष्टि **(माणे छुद्धे माया पढमं)** (३) मान का संक्रमण होने पर माया की प्रथमकृष्टि **(मायाए संछुद्धे लोहस्स पढमकिट्टी)** (४) माया का संक्रमण होने पर लोभ की प्रथमकृष्टि **(य)** और **(आदिमसमयकद सुहुमकिट्टी)** (५) प्रथम समय में की गई सूक्ष्मकृष्टियाँ **(पंचपदा)** ये पाँच पद क्रम से **(सगसंखेज्जदिमभागेण)** अपने संख्यातवें भाग से **(अहियकमा)** क्रमशः अधिक हैं।

विशेषार्थ - १) प्रथम समय में की गई सूक्ष्मकृष्टियों का प्रमाण लाने के लिए अल्पबहुत्व कहा है। (१) क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टियाँ सर्व आगे के पदों से अल्प हैं। उनका प्रमाण सर्वकृष्टि प्रमाण के चौवीसवें भाग से तेरहगुणा है। १३ ÷ २४ (२) उससे क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित होने पर मान की प्रथम संग्रहकृष्टि की अवयव कृष्टियाँ विशेष अधिक हैं। पूर्व राशि को त्रिभाग अधिक चार का भाग देने पर जो एक भाग आता है उतने से अधिक हैं। उसका प्रमाण सर्वकृष्टि प्रमाण के चौवीसवें भाग से सोलह गुणा है। १६ ÷ २४

$$\text{क्रोध की प्रथमकृष्टि} + \frac{\text{क्रोध की प्रथम कृष्टि}}{१३ \div ३} = \text{मान की प्रथम कृष्टि} \qquad ४\frac{१}{३} = \boxed{\frac{१३}{३}}$$

$$\frac{१३}{२४} + \left(\frac{१३}{२४} \div \frac{१३}{३}\right) \quad \text{(गुणा करने पर राशि पलट जाती है।)}$$

$$\frac{१३}{२४} + \left(\frac{१३}{२४} \times \frac{३}{१३}\right) = \frac{१३}{२४} + \frac{३}{२४} = \frac{१६}{२४}$$

३) मान की तृतीय संग्रहकृष्टि माया की प्रथम कृष्टि में संक्रमित होने पर माया की प्रथम संग्रहकृष्टि की अवयव कृष्टियाँ विशेष अधिक हैं। पूर्वराशि को त्रिभाग अधिक पाँच का भाग देने पर जो एक भाग आता है उतने से अधिक हैं।

$५\frac{१}{३} = \boxed{\frac{१६}{३}}$ उसका प्रमाण कृष्टिप्रमाण के चौवीसवें भाग से उन्नीस गुणा है। $\boxed{\frac{१९}{२४}}$

$$\text{मान की प्रथम कृष्टि} + \frac{\text{मान की प्रथम कृष्टि}}{१६ \div ३} = \text{माया की प्रथम कृष्टि।}$$

$$\frac{१६}{२४} + \left(\frac{१६}{२४} \div \frac{१६}{३}\right) = \frac{१६}{२४} + \left(\frac{१६}{२४} \times \frac{३}{१६}\right) = \frac{१६}{२४} + \frac{३}{२४} = \frac{१९}{२४}$$

४) उससे माया की तृतीय संग्रहकृष्टि का लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में पूर्णरूप से संक्रमण होने पर लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टियाँ विशेष अधिक हैं। पूर्वराशि को त्रिभाग अधिक छह का भाग देने पर आये हुये एक भाग से अधिक है। उसका प्रमाण $\frac{२२}{२४}$ भाग प्रमाण है। $६\frac{१}{३} = \boxed{\frac{१९}{३}}$

$$\text{माया की प्रथमकृष्टि} + \frac{\text{माया की प्रथमकृष्टि}}{१९ \div ३} = \text{लोभ की प्रथमकृष्टि}$$

$$\frac{१९}{२४} + \left(\frac{१९}{२४} \div \frac{१९}{३}\right) = \frac{१९}{२४} + \left(\frac{१९}{२४} \times \frac{३}{१९}\right) = \frac{१९}{२४} + \frac{३}{२४} = \frac{२२}{२४}$$

५) उससे प्रथम समय में की गई सूक्ष्मकृष्टियों का प्रमाण विशेष अधिक है। पूर्वराशि को ग्यारह का भाग देने पर आये हुए एक भागमात्र से अधिक है। उसका $\frac{२४}{२४}$ प्रमाण है।

$$\text{लोभ की प्रथमकृष्टि} + \frac{\text{लोभ की प्रथमकृष्टि}}{११} = \text{सूक्ष्मकृष्टि}$$

$$\frac{२२}{२४}+\left(\frac{२२}{२४}\div\frac{११}{१}\right)=\frac{२२}{२४}+\left(\frac{२२}{२४}\times\frac{१}{११}\right)=\frac{२२}{२४}+\frac{२}{२४}=\frac{२४}{२४}$$

इस प्रकार पाँच स्थान क्रमशः संख्यातवें भाग से अधिक जानना चाहिए। यद्यपि सूक्ष्मकृष्टि आयाम की अपेक्षा से $\boxed{\frac{२४}{२४}}$ है। परन्तु इसमें स्थित द्रव्य बादरकृष्टि के द्रव्य का असंख्यातवाँ भाग ही है।

प्रत्येक समय में सूक्ष्मकृष्टियों का और दीयमान द्रव्य का प्रमाण कहते हैं -

सुहुमाओ किट्टीओ पडिसमयमसंखगुणविहीणाओ ।
दव्वमसंखेज्जगुणं विदियस्स य लोहचरिमोत्ति[१] ।।५७०।।

सूक्ष्माः कृष्टयः प्रतिसमयमसङ्ख्यगुणविहीनाः ।
द्रव्यमसङ्ख्येयगुणं द्वितीयस्य च लोभचरम इति ।। ५७० ।।

अन्वयार्थ - (सुहुमाओ किट्टीओ) सूक्ष्मकृष्टियाँ **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(असंखगुणविहीणाओ)** क्रम से असंख्यातगुणी-असंख्यातगुणी हीन की जाती है और **(विदियस्स लोहचरिमोत्ति)** द्वितीय समय से लोभकषाय के अंतिम समय तक **(दव्वं)** द्रव्य **(असंखेज्जगुणं)** असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा दिया जाता है।

विशेषार्थ - सूक्ष्मकृष्टिकरणकाल के प्रथम समय में की गई सूक्ष्मकृष्टियाँ सबसे अधिक हैं। उससे द्वितीय समय में की गई अपूर्व कृष्टियाँ असंख्यातगुणी हीन हैं। इस प्रकार प्रतिसमय में की जाने वाली नवीन अपूर्व सूक्ष्मकृष्टियाँ क्रम से असंख्यातगुणी कम है। प्रथम समय में दिया गया द्रव्य थोड़ा है। उससे द्वितीय समय में सूक्ष्मकृष्टियों में दिया गया द्रव्य असंख्यातगुणा है। इस प्रकार प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि बढ़ने से सूक्ष्मकृष्टिकरण काल के अंतिम समय तक सूक्ष्मकृष्टियों में क्रम से असंख्यातगुणा द्रव्य दिया जाता है।[२]

सूक्ष्मकृष्टिकरण के प्रथम समय में सूक्ष्मकृष्टियों में और बादरकृष्टियों में दीयमान द्रव्य का निरूपण करते हैं -

दव्वं पढमे समये देदि हु सुहुमेसणंतभागूणं ।
थूलपढमे असंखगुणूणं तत्तो अणंतभागूणं[३] ।। ५७१ ।।

१) क. पा. सुत्त पृ. ८६४-८६५ सू.१२४४-१२४९ २) ज.ध. पु.१५ पृ.३००-३०१
३) ध. पु.६ पृ. ३९८

द्रव्यं प्रथमे समये ददाति हि सूक्ष्मेष्वनन्तभागोनम् ।
स्थूलप्रथमेऽसङ्ख्यगुणोनं ततोऽनन्तभागोनम् ।। ५७१ ।।

अन्वयार्थ - (पढमे समये) सूक्ष्मकृष्टिकरण काल के प्रथम समय में **(सुहुमेसणंतभागूणं)** सूक्ष्मकृष्टियों में अनन्तवें भाग घटते क्रम से **(दव्वं)** द्रव्य **(देदि हु)** देता है। उसके अनन्तर **(थूलपढमे)** प्रथम बादरकृष्टि में **(असंखगुणूणं)** असंख्यातगुणा हीन देता है। **(तत्तो)** उसके अनन्तर **(अणंतभागूणं)** अनन्तवाँ भाग घटते क्रम से द्रव्य देता है।

विशेषार्थ - सूक्ष्मकृष्टिकरण के प्रथम समय में बादर और सूक्ष्मकृष्टियों में द्रव्य देने का विधान बादरकृष्टिकरण के द्वितीय समय के विधानानुसार ही जानना चाहिए। उसमें से प्रथम आयद्रव्य, व्ययद्रव्य और घातद्रव्य का स्वरूप कहते हैं। लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर जो एक भाग आता है व १२।२३ / २४ ओ उतना लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में आय द्रव्य है और उतना ही लोभ की द्वितीय संग्रह- कृष्टि में व्यय द्रव्य है। आनुपूर्वी संक्रमण का नियम होने से लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि आयद्रव्य नहीं है। अपनी अपनी संग्रहकृष्टि की अन्तिम कृष्टि के द्रव्य को घातकृष्टियों के प्रमाण से गुणा करके जो लब्ध आया इसमें कुछ अधिक करने पर घात द्रव्य का प्रमाण आता है।अपनी-अपनी कृष्टियों के प्रमाण को अपकर्षण भागहार के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर घातकृष्टियों का प्रमाण आता है। घातकृष्टिसंबंधी व्ययद्रव्य सर्व व्ययद्रव्य का असंख्यातवाँ भाग है। घात कृष्टिसंबंधी व्ययद्रव्य को कम करने पर जो व्ययद्रव्य रहता है उतना घातद्रव्य से ग्रहण करके जिन कृष्टियों का जितना व्ययद्रव्य है उतना उन कृष्टियों में देने पर स्वस्थान गोपुच्छ होता है। घातकृष्टियों का अस्तित्व नष्ट होने से वहाँ व्ययद्रव्य देने की आवश्यकता नहीं है इसलिए घातकृष्टियों का व्ययद्रव्य घटाया।

पुन: घातकृष्टियों का जितना प्रमाण है उतने विशेष (चय) घात करने पर शेष रही प्रत्येक कृष्टि में देना है। इसलिए उसे शेष कृष्टियों के प्रमाण से गुणा करने पर जो द्रव्य होता है उतना द्रव्य घातद्रव्य से ग्रहण करके देने पर परस्थान गोपुच्छ भी होता है। इसीप्रकार सर्वकृष्टियों का एक गोपुच्छ होता है।

पूर्वोक्त दो प्रकार का द्रव्य देने पर जो घात द्रव्य शेष रहता है उसमें घात करने के अनन्तर शेष रही कृष्टि प्रमाण से भाग देने पर एक मध्यमखंड आता है। उस मध्यम खंड में एक कम गच्छ के अर्धप्रमाणरूप विशेष अधिक करने पर जो द्रव्य आता है उसे तृतीय संग्रहकृष्टि के शेष घातद्रव्य से ग्रहण करके तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्यकृष्टि में देता है। शेष रहे द्रव्य से चय घटते क्रम से अन्य कृष्टियों में देता है। इसप्रकार अपने-अपने अवशेष घातद्रव्य को देने पर अवशेष सर्व कृष्टियाँ एक गोपुच्छाकार होती है। इसप्रकार गोपुच्छाकार रूप से स्थित इन कृष्टियों में से संक्रमणद्रव्य और बंधद्रव्य द्वारा उत्पन्न

कृष्टियों में संक्रमणद्रव्य और बंधद्रव्य देने का विधान कहते हैं -

द्वितीय संग्रहकृष्टि में आयद्रव्य का अभाव है। इसलिए घातद्रव्य में से कुछ द्रव्य अलग रखकर यहाँ कहे अनुसार देना चाहिए और शेषद्रव्य पूर्व में कहे अनुसार देना चाहिए।

१) अधस्तन शीर्षद्रव्य - बादरकृष्टिसंबंधी एक विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और घात करने पर तृतीय संग्रहकृष्टि की शेष रही कृष्टिप्रमाण गच्छ स्थापित करके जो संकलनधन आता है उतना द्रव्य तृतीय संग्रहकृष्टि के आयद्रव्य में से ग्रहण करके अलग रखें। तृतीय संग्रहकृष्टि में जितनी अंतरकृष्टियाँ हैं उतने विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और द्वितीय संग्रहकृष्टि की जितनी अंतरकृष्टियाँ शेष हैं उतना गच्छ का प्रमाण स्थापित करके जो संकलन धन आता है उतना द्रव्य द्वितीय संग्रहकृष्टि के घातद्रव्य में से ग्रहण करके अलग रखें।

तृतीय संग्रहकृष्टि का अधस्तन शीर्ष द्रव्य - पद का प्रमाण = $\boxed{\frac{४}{\text{ख } २४}}$ विशेष = $\boxed{\text{वि}}$

$$\left\{\left(\frac{\text{पद} - १}{२} \times \text{वि}\right) + \text{आदि}\right\} \times \text{गच्छ} = \text{संकलनधन}$$

$$\left\{\left(\frac{४ - १ \times \text{वि}}{\text{ख } २४ । २}\right) + \text{वि}\right\} \times \frac{४}{\text{ख } २४} = \left\{\frac{\overset{१-}{४}\,\text{वि}}{\text{ख} । २४ । २} + \text{वि}\right\} \times \frac{४}{\text{ख } २४}$$

$$\boxed{\frac{\text{वि } \overset{१-}{४} \; ४}{\text{ख } । २४ । २ । \text{ख} । २४}}$$

तृतीय संग्रहकृष्टि का अधस्तनशीर्षद्रव्य

एक विशेष मिलाने के लिए एक घाटी का अपवर्तन करके एक अधिक हो गया। एक घाटि की कीमत $\frac{१}{२}$ है। $१ - \frac{१}{२} = \frac{१}{२}$ रह गए।

द्वितीय संग्रहकृष्टि का अधस्तन शीर्ष द्रव्य - पद का प्रमाण = $\boxed{\frac{४ । २३}{\text{ख } २४}}$

$$\left\{\left(\frac{\text{पद} - १}{२} \times \text{वि}\right) + \text{आदि}\right\} \times \text{गच्छ} = \text{संकलनधन}$$

$$\left\{\left(\frac{\overset{१-}{४ । २३} \times \text{वि}}{\text{ख } २४ । २}\right) + \frac{\text{वि } ४}{\text{ख } २४}\right\} \times \frac{४ । २३}{\text{ख} । २४}$$

आदि का प्रमाण = $\boxed{\frac{\text{वि } ४}{\text{ख } २४}}$

$$\left\{\frac{\text{वि } \overset{१-}{४ । २३}}{\text{ख} । २४ । २} + \frac{\text{वि } ४ । २}{\text{ख } २४ । २}\right\} \times \frac{४ । २३}{\text{ख} । २४}$$

दो का समच्छेद करके अन्य संख्या समान देखकर तेईस गुणकार में दो का गुणकार मिलाया और गुण्य-गुणकार आगे-पीछे करके लिखे। २५× २३=५७५

$$\frac{\text{वि } \overset{१-}{४ । २५}}{\text{ख} । २४ । २} \times \frac{४ । २३}{\text{ख } २४}$$

वि ४।४।५७५ (४ के ऊपर $\overline{१}$)
ख।२४।ख।२४।२

= द्वितीय संग्रहकृष्टि का अधस्तनशीर्ष
इन दोनों का नाम अधस्तनशीर्ष द्रव्य है

२) मध्यमखंड द्रव्य - तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्यकृष्टि के द्रव्य को असंख्यातगुणे अपकर्षण भागहार का भाग देकर जो एकभाग आता है वह एक मध्यम खंड है उसे तृतीय संग्रहकृष्टि संबंधी अंतरकृष्टियों के प्रमाण से गुणा करने पर जो प्रमाण आता है उतना द्रव्य तृतीयकृष्टि का मध्यमखंड द्रव्य है। वह तृतीय संग्रहकृष्टि के आयद्रव्य में से ग्रहण करके स्थापन करे। उसी एक खंड के द्रव्य को द्वितीय संग्रहकृष्टि की अंतरकृष्टियों के प्रमाण से गुणा करने पर जो आता है उतना द्रव्य द्वितीय संग्रहकृष्टि के घातद्रव्य में से ग्रहण करके अलग रखे।

तृतीय संग्रहकृष्टि का मध्यमखंड द्रव्य - तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि = [व १२ / ४ / ख]

$$\frac{\text{तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि}}{\text{अपकर्षण भागहार} \times \text{असंख्यात}} \times \text{तृतीय संग्रह अंतरकृष्टियाँ}$$

व १२ / ४ ओ a / ख × ४ / ख २४ = [व १२।४ / ४ ओ a । ख २४ / ख] तृतीय संग्रहकृष्टि का मध्यमखंड द्रव्य

द्वितीय संग्रहकृष्टि का मध्यमखंड द्रव्य -

$$\frac{\text{तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि}}{\text{अपकर्षण भागहार} \times \text{असंख्यात}} \times \text{द्वितीय संग्रह अंतरकृष्टियाँ}$$

व १२ / ४ ओ a / ख × ४।२३ / ख २४ = [व १२।४।२३ / ४ ओ a । ख २४ / ख] द्वितीय संग्रहकृष्टि का मध्यमखंड द्रव्य

यें दोनों द्रव्य मिलकर मध्यमखंड द्रव्य है।

३) उभयद्रव्य विशेष द्रव्य - उभयद्रव्यसंबंधी एक विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और द्वितीय संग्रहकृष्टि की अंतरकृष्टियों का प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके जो संकलन धन आता है उसमें से अपने एक विशेष का अनन्तवां भाग घटाने पर जो शेष रहता है उतना द्वितीय संग्रहकृष्टि के घातद्रव्य में से ग्रहण करके अलग रखे। यह वेद्यमान कृष्टि होने से इसका बंध भी होता है अर्थात् बंधद्रव्य इस कृष्टि में प्राप्त होता है इसलिए इस कम किये द्रव्य को बंधद्रव्य में से देकर पूर्ण करेंगे। यहाँ द्वितीय संग्रहकृष्टि का घातद्रव्य पूर्ण हुआ। पुन: एक अधिक द्वितीय संग्रहकृष्टि की अंतरकृष्टिप्रमाण विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और संक्रमण द्रव्य से उत्पन्न हुई अपूर्वकृष्टि सहित सर्व तृतीय संग्रहकृष्टि की अन्तर कृष्टिप्रमाण

गच्छ स्थापित करके जो संकलन धन आता है उतने उभयद्रव्यविशेषों को तृतीय संग्रहकृष्टि के आयद्रव्य में से ग्रहण करके स्थापन करे।

द्वितीय संग्रहकृष्टि का उभयद्रव्य विशेष -

$$\left\{\left(\frac{\text{पद} - १}{२} \times \text{वि}\right) + \text{आदि}\right\} \times \text{गच्छ} = \text{संकलनधन} \quad \text{द्वि. सं. का पद} = \boxed{\begin{matrix}४।२३ \\ \text{ख } २४\end{matrix}}$$

$$\left\{\left(\frac{४ \quad \overset{१}{२३} \times \text{वि}}{\text{ख } २४।२}\right) + \text{वि} \quad \frac{\times ४।२३}{\text{ख}।२४}\right\}$$

एक विशेष मिलाने के लिए गुणकार में एक कम के स्थान पर एक अधिक किया।

२३×२३ = ५२९

$$\frac{\text{वि } \overset{१}{४}।२३}{\text{ख}।२४।२} \times \frac{४।२३}{\text{ख } २४} = \boxed{\frac{\text{वि } \overset{१}{४}।४।५२९}{\text{ख } २४।२।\text{ख } २४}}$$ = द्वितीय संग्रहकृष्टि का उभयद्रव्य विशेष

तृतीय संग्रहकृष्टि का उभयद्रव्य विशेष -

$$\left\{\left(\frac{\text{पद} - १}{२} \times \text{वि}\right) + \text{आदि}\right\} \times \text{गच्छ} = \text{संकलनधन} \quad \text{तृतीय. सं. का पद} = \boxed{\begin{matrix}४ \\ \text{ख } २४\end{matrix}}$$

$$\left\{\frac{\overset{१}{४} \times \text{वि}}{\text{ख } २४।२} + \frac{\text{वि } ४।२३}{\text{ख } २४}\right\} \times \frac{४}{\text{ख } २४}$$

प्रथम दो संख्याओं को जोड़ने के लिए २ का समच्छेद करें।

$$\left\{\frac{\text{वि } \overset{१}{४}}{\text{ख}।२४।२} + \frac{\text{वि } ४।२३ \times २}{\text{ख } २४ \times २}\right\} \times \frac{४}{\text{ख } २४}$$

$$\left\{\frac{\text{वि } \overset{१}{४}}{\text{ख}।२४।२} + \frac{\text{वि } ४।४६}{\text{ख}। २४ । २}\right\} \times \frac{४}{\text{ख } २४}$$

अन्य सभी संख्या समान हैं इसलिए ४६ गुणकार में गुण्य का एक गुणकार मिलाएँ।

$$\frac{\text{वि } \overset{१}{४}।४७}{\text{ख } २४।२} \times \frac{४}{\text{ख } २४}$$

गुणकारों को आगे पिछे लिखनेपर संकलनधन आता है।

$$\boxed{\frac{\text{वि } ४ \quad ।४।४७}{\text{ख } \overset{१}{२४}।\text{ख } २४।२}}$$ तृतीय संग्रहकृष्टि का उभयद्रव्य विशेष

यहाँ घातकृष्टियों की न्यूनता, अपूर्व संक्रमण कृष्टियों की अधिकता और एक की अधिकता नहीं गिनकर संदृष्टि की है।

संक्रमणकृष्टि संबंधी समान खंड द्रव्य - मध्यमखण्ड सहित तृतीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य द्वारा एक कृष्टि होती है तो तीन द्रव्य से रहित संक्रमण द्रव्य द्वारा कितनी कृष्टियाँ होगी ? ऐसा त्रैराशिक करने पर -

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि
तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि + मध्यमखंड	१ कृष्टि	तीन द्रव्य से रहित शेष संक्रमण द्रव्य
व।१२ ४ ख	१	व।१२।२३ ≡ २४।ओ

फलराशि × इच्छाराशि / प्रमाणराशि = [१ × व १२।२३≡ / २४ ओ व १२ / ४ / ख] [व १२] का अपवर्तन करके भागहार के भागहार को राशि करके लिखने पर [४।२३ / ख २४ ओ] इतना आता है।

संक्रमण द्रव्य द्वारा की गई नवीन अपूर्वकृष्टियों का प्रमाण आता है। इसका तृतीय संग्रहकृष्टि की पूर्वकृष्टि के प्रमाण में भाग देने पर संक्रमणकृष्टियों के बीच अंतराल का प्रमाण आता है।

[४ / ख २४ ४ २३ / ख २४ ओ] = [ओ / २३] संक्रमण कृष्टियों के बीच अंतराल का प्रमाण।

[४ / ख २४] इस भागहार और गुणकार का अपवर्तन करके भागहार के भागहार को भाज्यराशि करके लिखे।

नवीन संक्रमणकृष्टियों के प्रमाण का भाग शेष संक्रमण द्रव्य में देने पर एक खंड का प्रमाण आता है। उसे संक्रमणकृष्टियों के प्रमाण से गुणा करने पर संक्रमणांतर कृष्टिसंबंधी समान खंडद्रव्य का प्रमाण आता है।

संक्रमण द्रव्य / संक्रमण कृष्टि × संक्रमणकृष्टि = संक्रमणान्तर कृष्टिसंबंधी समान खंड द्रव्य

व।१२ २३≡ / २४।ओ ४ २३ / ख २४ ओ × ४ २३ / ख २४ ओ = [व १२ २३≡ / २४ ओ] संक्रमणांतर कृष्टिसंबंधी समान खंडद्रव्य

द्वितीय संग्रहकृष्टि में आय द्रव्य का अभाव होने से यह द्रव्य नहीं है, वहाँ शून्य जानना चाहिए।

नाम	लोभ की तृतीय संक्रमणकृष्टि	लोभ की द्वितीय संक्रमणकृष्टि
अधस्तनशीर्ष पूर्व विशेषद्रव्य	१— वि ४।४ ख २४ ख २४।२	वि ४।४।५७५ ख २४ ख २४।२
मध्यमखंड	व १२।४ ४ ओ ख २४ ख	व १२।४।२३ ४ ओ ख २४ ख
उभयद्रव्य विशेषद्रव्य	वि ४।४।४७ ख २४ ख २४।२	वि ४।४।५२९ ख २४ ख २४।२
संक्रमण कृष्टिसंबंधी समान खंडद्रव्य	व १२।२३ २४ ओ	०

अब बंधद्रव्य का विभाग कहते है -

१) बंधांतरकृष्टि विशेष द्रव्य - बन्ध द्रव्य द्वारा उत्पन्न अपूर्व अंतरकृष्टियों में से जो अंतकृष्टि है वहाँ से ऊपर जितनी कृष्टियाँ हैं उतने विशेष आदि, बंधांतरकृष्टियों का जो अंतराल है उतने विशेष उत्तर और बंधांतरकृष्टियों का प्रमाणमात्र गच्छ स्थापित करके जो संकलन धन आता है उसे बंधांतरकृष्टि विशेष द्रव्य कहते है। इतना द्रव्य मोहनीय के समयप्रबद्ध में से ग्रहण करके अलग रखे।

वि ४ २३ ।	११
ख २४ प ।	१६

आदि का प्रमाण = अंतिम बंधांतर कृष्टिसहित ऊपर का पूर्व कृष्टिप्रमाण विशेष ऊपर की बंधरहित कृष्टियों का प्रमाण ४ + ७ = ११ शलाका

बंधांतर कृष्टियों का प्रमाण - एक मध्यमखंड से सहित तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्यकृष्टि द्रव्यप्रमाण द्रव्य द्वारा (डेढ़ गुणहानिगुणित समयप्रबद्ध मात्र द्रव्य को कृष्टिप्रमाण का भाग देने पर जितना प्रमाण आता है उतने द्रव्य द्वारा) एक बंधांतर कृष्टि उत्पन्न होती है तो कुछ कम मोह के समयप्रबद्ध मात्र द्रव्यद्वारा कितनी कृष्टियाँ उत्पन्न होगी? ऐसा त्रैराशिक करने पर बंधद्रव्य द्वारा की गई अपूर्व अंतरकृष्टियों का प्रमाण आता है।

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
स १२ ४ ख	१	स—	$\frac{\text{फल} \times \text{इच्छा}}{\text{प्रमाण}}$ = $\frac{१ \times \text{स—}}{\text{स १२ / ४ ख}}$ = [४ / ख १२] = [४ / ख ८।३ / २]

यहाँ कुछ कम को नही गिनकर समयप्रबद्ध का अपवर्तन किया और भागहार के भागहार को भाज्य राशि किया। १२ अर्थात् डेढ गुणहानि है इसलिए उसका रूपांतर $\frac{८।३}{२}$ ऐसा किया।

अथवा

$$\frac{\text{पूर्वकृष्टियों का प्रमाण}}{\text{डेढ़ गुणहानि}} = \text{नवीन बंधांतरकृष्टि} \quad \frac{४}{ख\ \frac{८।३}{२}} = \text{नवीन बंधांतरकृष्टियों का प्रमाण}$$

अंतराल का प्रमाण = नवीन उत्पन्न बंधकृष्टियों के बीच की कृष्टियों के प्रमाण को अंतराल कहते हैं।

$$\frac{\text{द्वितीय संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टियाँ}}{\text{नवीन बंधांतरकृष्टियाँ}} = \text{अंतराल का प्रमाण}$$

$$\frac{\frac{४}{ख।२४}\ \frac{२३}{४}}{ख\ \frac{८।३}{२}} = \frac{२३।८।३}{२४\quad २} = \frac{२३।८}{८।२}$$

यहाँ $\frac{४}{ख}$ का अपवर्तन करके भागहार के भागहार को भाज्य राशि करके लिखा।

३ और २४ का अपवर्तन करने पर ८ आता है।

८ × २ = १६ दो गुणहानि

$\frac{२३।८}{१६}$ इतने विशेष उत्तर का प्रमाण है। $\frac{वि\ \overset{१-}{८}।२३}{१६}$

$$\left\{\left(\frac{\text{पद} - १}{२} \times \text{वि}\right) + \text{आदि}\right\} \times \text{गच्छ} = \text{संकलनधन}$$

$$\left\{\left(\frac{\overset{१-}{४}}{ख\ ८।३।२} \times \frac{वि\ \overset{१-}{८}।२३}{१६}\right) + \frac{वि\ ४\ \ २३।११}{ख\ २४\ प\ ।१६}\right\} \times \frac{४}{ख\ ८।३}$$

$$\frac{वि\ ४\ \ २३\ \ ४}{ख\ २४।२\ ख\ \frac{८।३}{२}}$$

(उत्तर कैसे निकाला यह समझ नहीं आया इसलिए इसका स्पष्टीकरण नहीं किया।)

बंधांतरकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य

बंधद्रव्य में से पूर्वोक्त बंधांतरकृष्टि विशेष द्रव्य और बंधद्रव्य का अनन्तवाँ भागमात्र द्रव्य अलग रखकर शेष रहे द्रव्य को स— बंधांतर कृष्टियों के प्रमाण से $\frac{४}{ख\ १२}$ भाग देने पर एक एक समान खंड

का प्रमाण आता है। $\boxed{\begin{array}{l}\text{स—}\\ \text{४}\\ \text{ख १२}\end{array}}$ इसे बंधांतर कृष्टियों के प्रमाण से गुणा करने पर संपूर्ण बंधांतर कृष्टिसंबंधी समान खंडद्रव्य आता है।

एक समानखंड × बंधातरकृष्टियाँ = सर्व बंधातर समानखंडद्रव्य

$$\begin{array}{l}\text{स —}\\ \text{४}\\ \text{ख १२}\end{array} \times \begin{array}{l}\text{४}\\ \text{ख १२}\end{array} = \boxed{\begin{array}{l}\text{स—४}\\ \text{४ ख १२}\\ \text{ख १२}\end{array}}$$

बंध विशेष द्रव्य -

पहले समयप्रबद्ध का एक भाग द्रव्य अलग रखा है। उसे बंधकृष्टि के प्रमाण से भाग देकर पुनः उसे एक कम गच्छ के आधे से न्यून दो गुणहानि से भाग देने पर विशेष (चय) का प्रमाण आता है। उसकी संदृष्टि 'वि' है। इसे सर्व बंधकृष्टियों के प्रमाणमात्र गच्छ का एकबार संकलन करने पर जो प्रमाण आता है उससे गुणा करने पर जो द्रव्य आता है उसे बंध विशेष द्रव्य कहते हैं। बंधकृष्टियों का प्रमाण - $\boxed{\begin{array}{l}\text{४ २३}\\ \text{ख २४}\end{array}}$ सर्व कृष्टियों के प्रमाण में से अनुभय और उदयकृष्टियों का प्रमाण कम करने पर बंधकृष्टियों का प्रमाण आता है। यहाँ अनुभय, उदयकृष्टियों के प्रमाण को किंचित् जानकर गिना नहीं।

$$\left\{\left(\frac{\text{पद - १}}{\text{२}} \times \text{वि}\right) + \text{ आदि}\right\} \times \text{ गच्छ } = \text{ बंधविशेषद्रव्य}$$

$$\left\{\left(\frac{\overset{\text{१—}}{\text{४}}\ \text{२३}}{\text{ख २४।२}} \times \text{ वि}\right) + \text{वि}\right\} \times \frac{\text{४।२३}}{\text{ख २४}}$$

एक विशेषरूप आदि मिलाने के लिए एक घाटि के स्थान पर एक अधिक होता है।

२३ × २३ = ५२९

$$\frac{\text{वि } \overset{\text{१—}}{\text{४}}\text{।२३।४।२३}}{\text{ख २४।२ ख २४}} = \boxed{\frac{\text{वि } \overset{\text{१—}}{\text{४}}\text{।४।५२९}}{\text{ख २४।ख २४।२}}} \longleftarrow \text{ बंधविशेषद्रव्य}$$

इतना द्रव्य अलग रखे हुये बंध द्रव्य के अनन्तवें भागमात्र द्रव्य में से ग्रहण करके अलग स्थापन करे।

बंधद्रव्य मध्यमखंड -

बंधद्रव्य के अनन्तवें भाग में से बंधविशेष द्रव्य कम करने पर समयप्रबद्ध का अनन्तवाँ भाग शेष रहता है $\boxed{\frac{\text{स}}{\text{ख}}}$ उसे जो सर्व बंधकृष्टियों के प्रमाण का भाग देने पर $\boxed{\begin{array}{l}\text{स}\\ \text{ख ४ २३}\\ \text{ख २४}\end{array}}$ एक खंड का प्रमाण आता है। उसे बंध कृष्टियों के प्रमाण से गुणा करने पर जो द्रव्य आता है

$\boxed{\begin{array}{ll}\text{स} & \text{४ २३}\\ \text{ख ४ २३} & \text{ख २४}\\ \text{ख २४} & \end{array}}$ उसे बंधद्रव्य मध्यमखंड द्रव्य कहते हैं। यहाँ द्वितीय संग्रहकृष्टि का ही बंध है इसलिए उसी में ही ऐसा विधान जानना चाहिए।

नाम	लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि
बंधांतरकृष्टिविशेष द्रव्य	वि ४।२३।४ ख २४।२।ख।८।३ २
बंधातरकृष्टिसंबंधी समानखंड द्रव्य	स - ४ ४ ख।१२ ख।१२
बंधविशेष द्रव्य	वि ४।४।५२९ ख २४ ख २४।२
बंधमध्यमखंड द्रव्य	स ४।२३ ख ख २४ ४।२३ ख २४

सूक्ष्मकृष्टिरूप संक्रमण होने योग्य द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टि के अपकर्षण किये हुए द्रव्य का अब विभाग कहते हैं - इसके दो विभाग है -

१) सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी विशेष द्रव्य २) सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी समानखंडद्रव्य।

१) सूक्ष्मकृष्टि संबंधी विशेष द्रव्य - सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी द्रव्य को प्रथम समय में की हुई सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाणमात्र गच्छ से भाग देकर मध्यमधन आता है। पुन: उसे एक कम गच्छ के अर्ध प्रमाण से न्यून दो गुणहानि से भाग देने पर एक विशेष (चय) आता है। सूक्ष्मकृष्टियों का प्रमाण $\boxed{\frac{४}{ख}}$

सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी द्रव्य = $\boxed{\frac{व\ १२।५५३}{२४\ ओ}}$ पूर्व में गाथा ५६६ में इसका स्पष्टीकरण है।

$$\frac{\text{सूक्ष्मकृष्टि का द्रव्य}}{\text{सूक्ष्मकृष्टिप्रमाण} \times \left(\text{दो गुणहानि} - \frac{\overset{१-}{\text{गच्छ}}}{२}\right)} = \text{विशेष (चय)} \qquad \boxed{\frac{व\ १२।५५३}{२४\ ओ\ \frac{४}{ख}।१६-\frac{\overset{१-}{४}}{ख\ २}}}$$

इसे सूक्ष्मकृष्टि के प्रमाणमात्र गच्छ का संकलन करके गुणा करने पर सर्व सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी विशेष द्रव्य आता है।

एकबार संकलन = $\frac{\text{गच्छ}}{१} \times \frac{\text{गच्छ} + १}{२}$ यहाँ गच्छ $\boxed{\frac{४}{ख}}$ यह है इसलिए संकलनधन $\boxed{\frac{४}{ख\ १}\ \frac{\overset{१-}{४}}{ख\ २}}$

व १२।५५३ ४ ४ (ऊपर १—)
२४ ओ ४।१६ -४ (ऊपर १) ख ख२
ख ख२

सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी विशेष द्रव्य

२) सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी समान खंड द्रव्य -

सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी द्रव्य में से उपर्युक्त विशेष द्रव्य कम करने पर जो द्रव्य रहता है उसे सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाण से भाग देने पर एक समानखंड होता है

व १२।५५३
२४ ओ ४
ख

इसे सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाण से गुणा करने पर सर्व सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी समान खंडद्रव्य

व १२।५५३।४
२४ ओ ४ ख
ख

आता है।

नाम	सूक्ष्मकृष्टि
विशेष द्रव्य	व १२।५५३ ४। ४ (ऊपर १—) २४ ओ ४।१६-४ ख ख२ ख ख२
समान खंड	व १२ ।५५३।४ २४ ओ ४ ख ख

सूक्ष्मकृष्टि और लोभ की द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टि में देय द्रव्य का चित्र

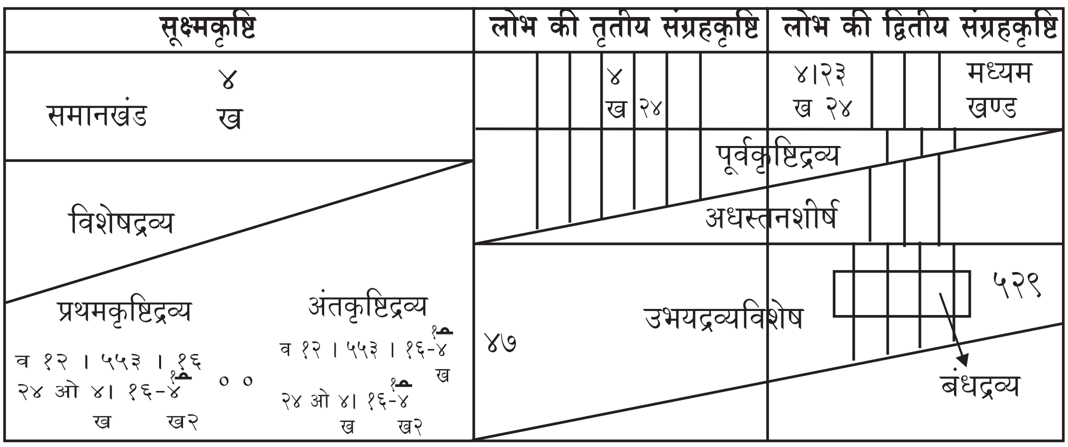

सूक्ष्मकृष्टि के लिए अपकृष्ट द्रव्य को देने का विधान कहते हैं -

सूक्ष्मकृष्टि की जघन्यकृष्टि में सबसे अधिक द्रव्य देता है। वहाँ सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी समान खंडद्रव्य में से एक खंड और सूक्ष्मकृष्टि विशेष द्रव्य में से सूक्ष्मकृष्टि प्रमाणमात्र विशेष ग्रहण करके देता है। उसके उपरिम द्वितीय कृष्टि से लेकर अंत तक की कृष्टियों में एक-एक सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी विशेष (चय) कम देता है। सभी में एक-एक सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी समान खंड और अतीत कृष्टिप्रमाण से हीन सूक्ष्मकृष्टि प्रमाणमात्र सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी विशेष द्रव्य देता है। उदाहरण - कुल सूक्ष्मकृष्टियाँ ८ मानी तो द्वितीयकृष्टि में ८ - १ = ७ विशेष, तृतीय में ८ - २ = ६ विशेष देता है। इसप्रकार यहाँ सूक्ष्मकृष्टि संबंधी द्रव्य समाप्त हुआ।

पुनः अंतिम सूक्ष्मकृष्टि में दिये हुए द्रव्य से उसके ऊपर जघन्य बादरकृष्टि में दिया हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है। वहाँ तृतीय संग्रहकृष्टि के चार प्रकार के द्रव्य में से एक मध्यम खंड द्रव्य और उभयद्रव्य विशेष द्रव्य में से सर्व बादरकृष्टि प्रमाणमात्र विशेष ग्रहण करके जघन्य बादरकृष्टि में देता है। उसके ऊपर द्वितीयादि बादरकृष्टियों में एक-एक चय घटते क्रम से देता है।

द्वितीयादि बादरकृष्टियों में एक-एक बढ़ते क्रम से अधस्तनशीर्षविशेष और एक अधिक से हीन सर्व बादरकृष्टि प्रमाणमात्र उभयद्रव्य विशेष (द्वितीयकृष्टि में एक कम सर्व बादरकृष्टि प्रमाण, तृतीयकृष्टि मे दो कम सर्व बादरकृष्टि प्रमाण इत्यादि) और एक-एक मध्यमखंड देता है। अधस्तन कृष्टि से उस उपरिमकृष्टि में एक उभय द्रव्य विशेष में से एक अधस्तनशीर्ष विशेष हीन करने पर जितना प्रमाण आता है उतना हीन द्रव्य देता है।

संक्रमण द्रव्य द्वारा उत्पन्न अपूर्वकृष्टि तक यही अनुक्रम जानना चाहिए। संक्रमण द्रव्य द्वारा उत्पन्न नवीन अपूर्वकृष्टि में संक्रमणांतर संबंधी समान खंड द्रव्य में से एक खंड, उभयद्रव्य विशेषद्रव्य में से अतीत कृष्टिप्रमाण से न्यून सर्व कृष्टिप्रमाणमात्र विशेष ग्रहण करके देता है। यह द्रव्य अपनी अधस्तन पूर्वकृष्टि में दिये हुए द्रव्य से असंख्यातगुणा है। उसके ऊपर पूर्वकृष्टि में अतीत कृष्टि प्रमाण अधस्तनशीर्षविशेष, एक मध्यम खंड और अतीत कृष्टिप्रमाण से न्यून सर्व कृष्टिप्रमाण मात्र उभयद्रव्यविशेष देता है। यह द्रव्य नीचे की अपूर्वकृष्टि में दिये हुए द्रव्य से असंख्यातगुणा हीन है। इसके ऊपर भी पूर्व के समान ही द्रव्य देता है।

पुनः द्वितीय संग्रहकृष्टि की जघन्यकृष्टि में, अतीत कृष्टिप्रमाण अधस्तनशीर्षविशेष, एक मध्यमखंड और अतीत कृष्टिप्रमाण से हीन सर्वकृष्टिप्रमाण उभयद्रव्य विशेष देता है। उसके ऊपर एक-एक अधस्तनशीर्षविशेष बढ़ते क्रम से और एक-एक उभयद्रव्यविशेष घटते क्रम से देता है। विशेष यह है कि बंधकृष्टि की जघन्यकृष्टि से लेकर उभयद्रव्य के विशेष में से एक विशेष का अनन्तवाँ भागमात्र हीन द्रव्य देता है। वहाँ बंधद्रव्य में से एक-एक मध्यमखंड और व्यतीत हुई बंधकृष्टियों से न्यून सर्वकृष्टि प्रमाणमात्र बंधविशेषों को ग्रहण करके देता है। इस क्रम से देता हुआ जहाँ बंध द्रव्यद्वारा अपूर्वकृष्टि उत्पन्न होती है वहाँ बंधद्रव्य में से बंधांतर कृष्टिसंबंधी समानखंडद्रव्य में से एक खंड और

बंधांतरकृष्टिसंबंधी विशेषद्रव्य में से व्यतीत हुई कृष्टिप्रमाण से न्यून सर्वकृष्टि प्रमाणमात्र विशेषों को ग्रहण करके देता है। यह द्रव्य अधस्तनकृष्टि में दिये हुए बंधद्रव्य से अनन्तगुणा है। उसके ऊपर पूर्वकृष्टि में तीन प्रकार का घातद्रव्य और दो प्रकार का बंधद्रव्य देता है। यहाँ दिया गया बंधद्रव्य अपूर्व बंधांतरकृष्टि में दिये हुए द्रव्य से अनन्तगुणा हीन है। उसके ऊपर बंधरूप पूर्वकृष्टियों, बंधद्रव्य से उत्पन्न अपूर्वकृष्टियों और बंधरहित पूर्वकृष्टियों में द्रव्य देने का विधान पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिए। इस प्रकार प्रथम समय में सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी प्ररूपणा समाप्त हुई।

द्वितीयादि समयों में की जानेवाली अधस्तन और अंतरकृष्टियों का निर्देश तथा उनके प्रमाण का प्ररूपण-

विदियादिसु समयेसु अपुव्वाओ पुव्वकिट्टि-हेट्ठाओ।
पुव्वाणमंतरेसु वि, अंतरजणिदा असंखगुणा[1]।।५७२।।

द्वितीयादिषु समयेष्वपूर्वाः पूर्वकृष्ट्यधस्तनाः।
पूर्वाणामन्तरेष्वप्यन्तरजनिता असङ्ख्यगुणाः।।५७२।।

अन्वयार्थ - (विदियादिसु समयेसु) द्वितीयादि समयों में **(पुव्व किट्टिहेट्ठाओ)** पूर्वकृष्टियों के नीचे **(अपुव्वाओ)** अपूर्वकृष्टियाँ करता है। **(पुव्वाणमन्तरेसु वि)** पूर्वकृष्टियों के बीच-बीच में भी अपूर्वकृष्टियाँ करता है **(अंतरजणिदा असंखगुणा)** नीचे की हुई कृष्टियों की अपेक्षा कृष्टियों के अंतराल में हुई कृष्टियाँ असंख्यातगुणी हैं।

विशेषार्थ - सूक्ष्मकृष्टिकारक द्वितीय समय में पूर्व की अपेक्षा असंख्यातगुणी हीन अपूर्व सूक्ष्मकृष्टियों की रचना करता है।उनकी संदृष्टि [४ / ख a] यह है।अपर्वू सूक्ष्मकृष्टियों की रचना दो स्थानों में करता है।१) पूर्वकृष्टियों के अधस्तन और २) अन्तराल में, नीचे की गयी कृष्टियों को अधस्तन कृष्टि कहते हैं और बीच-बीच में की गई कृष्टियों को अंतरकृष्टि कहते हैं। कृष्टियों के अधस्तन की गयी कृष्टियाँ अल्प अर्थात् असंख्यातवाँ भागमात्र हैं [४ / ख a a] उससे अन्तरकृष्टियाँ असंख्यातगुणी अर्थात् बहुभागमात्र हैं [४ a(१-) / ख a a] यहाँ गुणकार में एक कम को न गिनते हुए अपवर्तन करें[2]। [४ / ख a]

1) क. पा. सुत्त पृ. ८६५ सू. १२५५-१२६०/ध. पु.६ पृ.३९९
2) ज.ध. पु.१५ पृ.३०३

पूर्वसूक्ष्मकृष्टि और अपूर्व सूक्ष्मकृष्टियों में दिये जानेवाले द्रव्य की प्ररूपणा करते हैं

दव्वगपढमे समये देदि अपुव्वेसणंतभागूणं ।
पुव्वापुव्वपवेसे असंखभागूणमहियं च [1] ।।५७३ ।।

द्रव्यगप्रथमे समये ददात्यपूर्वेष्वनन्तभागोनम् ।
पूर्वापूर्व प्रवेशेऽसङ्ख्यभागोनमधिकं च ।।५७३ ।।

अन्वयार्थ - (अपुव्वेसणंतभागूणं) अधस्तन अपूर्वकृष्टियों में क्रम से अनन्तवाँ भाग हीन **(च)** और **(पुव्वापुव्वपवेसे)** पूर्व-अपूर्व कृष्टियों के प्रवेश में क्रम से **(असंखभागूणमहियं च)** असंख्यातवाँ भाग हीन और असंख्यातवाँ भाग अधिक **(देदि)** द्रव्य देता है अर्थात् पूर्वकृष्टियों के प्रवेश में असंख्यातवाँ भाग हीन द्रव्य देता है और अपूर्वकृष्टियों के प्रवेश में असंख्यातवाँ भाग अधिक द्रव्य देता है।

विशेषार्थ - द्वितीयादि समयों में घातद्रव्य और संक्रमणद्रव्य का विभाग पूर्व के समान ही जानना चाहिए। सूक्ष्मकृष्टि करने के लिए अपकर्षित द्रव्य प्रतिसमय असंख्यातगुणा है।
उसकी संदृष्टि- [व १२।५५३ / २४ ओ / a] (यहाँ भागहार को असंख्यात से भाग दिया है-भागहार असंख्यातवाँ भाग होने से लब्ध असंख्यातगुणा होता है।)
इस द्रव्य के विभाग में जो विशेष है वह कहते हैं- उस अपकर्षित द्रव्य के पाँच विभाग होते हैं- १) अधस्तनशीर्षविशेषद्रव्य २) अधस्तन अपूर्वकृष्टिसंबंधी समानखंडद्रव्य ३) अंतर अपूर्वकृष्टिसंबंधी समानखंड द्रव्य ४) उभयद्रव्यविशेष ५) मध्यमखंडद्रव्य ।

१) **अधस्तनशीर्षविशेष -** पूर्व समय में की गयी कृष्टियों का एक चय आदि, एक चय उत्तर और पूर्व समय में की गई कृष्टिप्रमाण में एक कम करके गच्छ स्थापन करके जो संकलनधन आता है उतना अधस्तन शीर्ष विशेषद्रव्य है। गच्छ की संदृष्टि [१- / ४ / ख] (पूर्व सूक्ष्मकृष्टि प्रमाण में से एक कम किया। संकलन सूत्रानुसार गच्छ और एक अधिक गच्छ को दो का भाग देने पर संकलन धन आता है [१- / ४ ४ / ख१ ख२] इतना विशेषमात्र द्रव्य ग्रहण करके अलग स्थापन करें। [१- / वि ४ ४ / ख ख२]

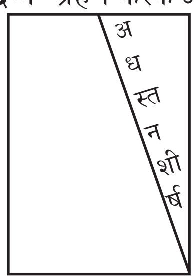

१) क. पा. सुत्त पृ. ८६६ सू. १२६१-१२६९/ध. पु.६ पृ. ३९९ / ज.ध.पु.१५ पृ.३०४

२)अधस्तन अपूर्वकृष्टिसंबंधी समानखंड द्रव्य - पूर्व समय में की गयी कृष्टियों में से जघन्यकृष्टि के द्रव्यप्रमाण एक समानखंड होता है। उसे वर्तमान समय में की गई अधस्तन कृष्टियों के प्रमाण से गुणा करने पर जो द्रव्य आता है वह अधस्तन अपूर्वकृष्टिसंबंधी समान खंडद्रव्य है । प्रथम समयसंबंधी सूक्ष्मकृष्टि के द्रव्य को प्रथम समय में की गई कृष्टि प्रमाण से भाग देकर जो लब्ध आता है उसमें विशेष अधिक है। उसे न गिनते हुए जघन्यकृष्टि का द्रव्य ऐसा

व १२।५५३
२४ ओ ४
ख

है। उसे द्वितीय समय में की गई अधस्तन अपूर्वकृष्टि प्रमाण से

४
खaa

गुणा करने पर समस्त अधस्तन अपूर्वकृष्टिसंबंधी समान खंडद्रव्य

व १२ ५५३ ४
२४ ओ ४ खaa
ख

आता है।

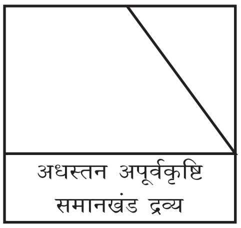

३) अंतर अपूर्वकृष्टिसंबंधी समानखंडद्रव्य - पूर्वोक्त जघन्य पूर्वकृष्टि के द्रव्य को वर्तमान समय में की गई अंतर अपूर्वकृष्टियों के प्रमाण से गुणा करने पर जो द्रव्य का प्रमाण आता है वह अंतर अपूर्वकृष्टिसंबंधी समानखंडद्रव्य है ।

पूर्व जघन्य कृष्टि द्रव्य × अंतर अपूर्वकृष्टि प्रमाण = अंतरकृष्टिसंबंधी समानखंड द्रव्य

व १२ ५५३ × ४
२४ ओ ४ खa =
ख

व १२।५५३।४
२४ ओ ४ खa
ख

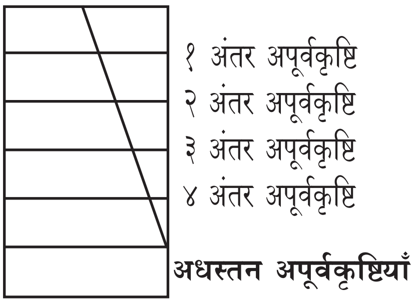

४) उभयद्रव्य विशेष द्रव्य - पूर्वसमय और इस विवक्षित समयसंबंधी सर्व सूक्ष्मकृष्टि के द्रव्य को पूर्व-अपूर्व सर्व सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाणरूप गच्छ को एक कम गच्छ के अर्ध से न्यून दो गुणहानि से गुणा करके भाग देनेपर एक उभयद्रव्य संबंधी विशेष होता है ।

$$\frac{\text{सर्व सूक्ष्मकृष्टि द्रव्य}}{\text{पूर्वापूर्व कृष्टिआयाम} \times \left\{\text{दो गुणहानि} - \left(\frac{\text{पूर्वापूर्वकृष्टिआयाम} - १}{२}\right)\right\}} = \text{उभयद्रव्यविशेष}$$

इसकी संदृष्टि = वि

पूर्व-अपूर्व सूक्ष्मकृष्टि प्रमाण गच्छ का एकबार संकलन करके जो प्रमाण आता है उसे पूर्वोक्त उभयद्रव्यविशेष से गुणा करने पर समस्त उभयद्रव्यविशेष द्रव्य आता है ।

पूर्वकृष्ट्यायाम + अपूर्व कृष्ट्यायाम = पूर्वापूर्व सूक्ष्मकृष्ट्यायाम

$\frac{४}{ख} + \frac{४}{ख\ a} = \boxed{\frac{\dot{४}}{ख}}$

प्रथम समयसंबंधी कृष्टिप्रमाण में द्वितीय समयसंबंधी कृष्टि मिलाने के लिए अधिक की संदृष्टि की है ।

संकलनसूत्र = $\frac{गच्छ}{२}\ \frac{गच्छ + १}{१}\ \ \frac{\dot{४}}{ख\ २}\ \frac{\overset{१-}{\dot{४}}}{ख\ १}$ $\boxed{\frac{वि\ \dot{४}\ \overset{१-}{\dot{४}}}{ख\ ख\ २}}$ उभयद्रव्यविशेष द्रव्य

५) **मध्यमखंड द्रव्य -** पूर्वोक्त चार प्रकार के द्रव्य को इस विवक्षित समय में अपकर्षण किए गए द्रव्य में से घटाने पर जो द्रव्य शेष रहता है उसे पूर्वअपूर्व सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाण का भाग देने पर एक खंड का प्रमाण आता है। $\boxed{\frac{व\ १२।५५३\equiv}{२४\ ओ\ \frac{\dot{४}}{ख}}}$ इसे पुनः पूर्व- अपूर्वकृष्टि प्रमाण से गुणा करने पर संपूर्ण मध्यमखंड द्रव्य $\boxed{\frac{व\ १२।५५३\equiv \dot{४}}{२४\ ओ\ \frac{\dot{४}}{ख}\ ख}}$ आता है।

नाम	द्रव्य
अधस्तनशीर्ष	$\frac{वि।\dot{४}।\overset{१-}{४}}{ख।ख।२}$
अधस्तन अपूर्वकृष्टि समानखंड	$\frac{व\ १२।५५३।४}{२४\ ओ\ \frac{४}{ख}\ ख\ aa}$
मध्यम अपूर्वकृष्टि समानखंड	$\frac{व\ १२।५५३।४}{२४\ ओ\ \frac{४}{ख}\ ख\ a}$
उभयद्रव्य विशेष	$\frac{वि।\dot{४}।\overset{१-}{\dot{४}}}{ख।ख।२}$
मध्यमखंड	$\frac{व\ १२।५५३\equiv।\dot{४}}{२४\ ओ\ \frac{\dot{४}}{ख}\ ख}$

इसप्रकार सूक्ष्मकृष्टि करने के लिए अपकर्षण किये द्रव्य का पाँच प्रकार का विभाग कहा है। उन्हें सूक्ष्मकृष्टि में देने का विधान, पूर्वोक्त बादरकृष्टि संबंधी चार प्रकार के संक्रमण द्रव्य का तृतीय संग्रहकृष्टि में देने का विधान, चार प्रकार का बंधद्रव्य और तीन प्रकार के घातद्रव्य को द्वितीय संग्रहकृष्टि में देने का विधान इस विवक्षित समय में निरूपण करते हैं-

विवक्षित समय में की गई अधस्तन सूक्ष्मअपूर्वकृष्टि की जघन्यकृष्टि में सबसे अधिक द्रव्य देता है। वहाँ सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी पाँच प्रकार के द्रव्य में अधस्तनकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य में से एकखंड, मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड, उभयद्रव्य विशेष में से सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टि-आयामप्रमाण उभयद्रव्य विशेष ग्रहण करके देता है। द्वितीय अपूर्वकृष्टि में अनन्तवाँ भाग कम द्रव्य देता है। वहाँ एक अधस्तनकृष्टि संबंधी समान खंड, एक मध्यम खंड, एक कम पूर्व-अपूर्वकृष्टि-आयाम प्रमाण उभयद्रव्यविशेष ग्रहण करके देता है। इसीप्रकार तृतीय कृष्टि से अंतिम अधस्तन अपूर्वकृष्टि तक क्रम से एक-एक उभयद्रव्यविशेष हीन - हीन देता है।

उस अंतिमकृष्टि में दिये हुए द्रव्य से पूर्वसमय संबंधी सूक्ष्मकृष्टियों की जघन्यकृष्टि में असंख्यातवें भागमात्र द्रव्य हीन देता है। वहाँ मध्यमखंड में से एक खंड, उभयद्रव्य विशेषद्रव्य में से व्यतीत हुई कृष्टियों से न्यून सर्व सूक्ष्मकृष्टि प्रमाणमात्र विशेषों को ग्रहण करके देता है। उसकी उपरिम द्वितीय पूर्वकृष्टि में अनन्तवाँ भाग हीन द्रव्य देता है। यहाँ अधस्तनशीर्ष विशेषद्रव्य में से एक विशेष, मध्यम-खंडद्रव्य में से एक खंड, उभयद्रव्य विशेष द्रव्य में से व्यतीत हुई कृष्टियों से हीन सर्व सूक्ष्मकृष्टिप्रमाण विशेषों को देता है। इसीप्रकार तृतीयादि पूर्वकृष्टियों में एक-एक अधस्तनशीर्ष विशेष अधिक और एक-एक उभयद्रव्यविशेष हीन और एक-एक मध्यमखंड समानरूप से देता है। जब तक अपूर्व अंतरकृष्टि प्राप्त नही होती है तब तक ऐसा क्रम जानना चाहिए ।

इसप्रकार पल्य के असंख्यतवें भागमात्र कृष्टियाँ होनेपर अंतिमकृष्टि में दिये हुए द्रव्य से उसके उपरिम नवीन उत्पन्न अपूर्व अंतरकृष्टि में असंख्यातवाँ भागमात्र अधिक द्रव्य देता है। वहाँ अंतरकृष्टि संबंधी समान खंडद्रव्य में से एकखंड, मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से व्यतीत हुई कृष्टियों से हीन सर्व सूक्ष्मकृष्टि प्रमाणमात्र विशेष ग्रहण करके देता है। उससे उसके उपरिम पूर्वकृष्टि में असंख्यातवाँ भाग हीन द्रव्य देता है। वहाँ अधस्तनशीर्ष विशेष में से एक हीन व्यतीत हुई पूर्वकृष्टि प्रमाणमात्र विशेष, मध्यमखंड में से एकखंड और उभयद्रव्यविशेष में से व्यतीत हुई पूर्वापूर्व कृष्टियों से हीन सर्व सूक्ष्म कृष्टिप्रमाणमात्र विशेष ग्रहण करके देता है। उसके ऊपर अंतर अपूर्वकृष्टि प्राप्त होने तक एक-एक अधस्तनशीर्ष विशेष अधिक, एक-एक उभयद्रव्य विशेष हीन और एक-एक मध्यमखंड समानरूप से देता है ।

उसके उपरिम अपूर्व अंतरकृष्टि में अंतरकृष्टिसंबंधी समानखंड, एक मध्यमखंड और व्यतीत हुई सर्व कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टि प्रमाणमात्र उभयद्रव्यविशेष देता है । यह दिया हुआ द्रव्य नीचे की कृष्टि में

दिये हुए द्रव्य से असंख्यातवाँ भाग अधिक है।

उसके ऊपर पूर्वकृष्टि में एक कम अतीत पूर्व कृष्टिप्रमाण अधस्तनशीर्ष विशेष, एक मध्यमखंड, व्यतीत सर्वकृष्टियों से न्यून सर्व कृष्टिप्रमाणमात्र उभयद्रव्यविशेष देता है। यह दिया हुआ द्रव्य अधस्तन अपूर्वअंतरकृष्टि में दिये हुए द्रव्य से असंख्यातवाँ भाग हीन है । इस प्रकार प्रथम समयकृत सूक्ष्मकृष्टियों की अंतिमकृष्टि प्राप्त होने तक पूर्व-अपूर्वकृष्टियों में इसी क्रमसे द्रव्य देना चाहिए ।

उसके ऊपर लोभ की तृतीय बादर संग्रहकृष्टि की जघन्यकृष्टि में अंतिम सूक्ष्मकृष्टि में दिये हुए द्रव्य से असंख्यातगुणा हीन द्रव्य देता है। वहाँ मध्यम खंडद्रव्य में से एक खंड, उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से सर्व बादरकृष्टिमात्र विशेष ग्रहण करके देता है। उसके उपरिम तृतीय संग्रहकृष्टि में चार प्रकार का संक्रमणद्रव्य देने का और द्वितीय संग्रहकृष्टि में चार प्रकार का बंधद्रव्य और तीन प्रकार का घातद्रव्य देने का विधान द्वितीय संग्रहकृष्टि की उत्कृष्ट कृष्टि तक जैसा प्रथम समय में कहा था वैसा ही जानना चाहिए। इसप्रकार द्वितीयादि समयों में द्रव्य देने का विधान कहा।पूर्व-अपूर्व सूक्ष्मकृष्टियों में एक गोपुच्छ होता है। सूक्ष्मकृष्टि और बादरकृष्टियों में एक गोपुच्छ नहीं होता ।

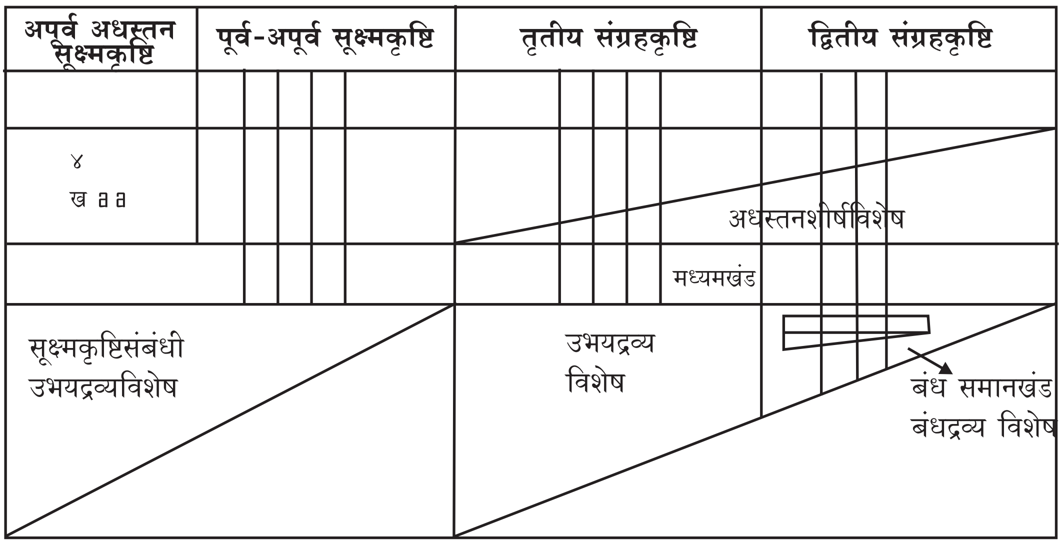

सूक्ष्म और बादरकृष्टियों में दृश्यमान द्रव्य का वर्णन करते हैं-

पढमादिसु दिस्सकमं सुहुमेसु अणंतभागहीणकमं ।
बादरकिट्टिपदेसो[1] असंखगुणिदं तदो हीणं[2] ।।५७४।।

१) यहाँ 'पवेसो' पाठ चाहिये ऐसा लगता है।
२) क. पा. सुत्त पृ. ८६६ सू. १२७०-१२७५/ध. पु.६ पृ. ४००/ज.ध.पु. १५ पृ. ३०७

प्रथमादिषु दृश्यक्रमं सूक्ष्मेष्वनन्तभागहीनक्रमम् ।
बादरकृष्टिप्रदेशोऽङ्ख्यगुणितस्ततो हीन : ।।५७४ ।।

अन्वयार्थ - (पढमादिसु) सूक्ष्मकृष्टिकारक के प्रथमादि समयों में **(दिस्सकमं)** दृश्यमान क्रम **(सुहुमेसु)** सूक्ष्मकृष्टियों में **(अणंतभागहीणकमं)** अनन्तवें भाग से हीनक्रम है। उसके अनन्तर **(बादरकिट्टिपदेसो)** बादरकृष्टि के प्रवेश में **(असंखगुणिदं)** असंख्यातगुणित है और **(तदो हीणं)** उसके अनन्तर अनन्तवाँ भाग हीनक्रम है।

विशेषार्थ - दिया गया द्रव्य और पूर्वद्रव्य मिलकर कृष्टियों में दिखनेवाले द्रव्य को दृश्यमान द्रव्य कहते हैं। उसका क्रम कहते हैं- प्रथमादि समयों में जघन्य सूक्ष्मकृष्टि में दृश्यमान द्रव्य अधिक है। इसके उपरिम द्वितीय कृष्टि से अंतिम सूक्ष्मकृष्टि तक अनन्तवाँ भाग घटते क्रम से दृश्यमान द्रव्य है अर्थात् एक-एक चय हीन है। उसके ऊपर उससे तृतीय बादरसंग्रहकृष्टि की जघन्यकृष्टि में दृश्यमान द्रव्य असंख्यातगुणा है क्योंकि बादरकृष्टियों के द्रव्य के असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्य का अपकर्षण होकर सूक्ष्मकृष्टियों की रचना हुई है । इसलिए सूक्ष्मकृष्टियों के द्रव्य की अपेक्षा बादरकृष्टियों में दृश्यमान द्रव्य असंख्यातगुणा है। उसके उपरिम तृतीय बादर संग्रहकृष्टि की द्वितीय कृष्टि से द्वितीय बादरसंग्रहकृष्टि की अंतिम बादरकृष्टि तक दृश्यमान द्रव्य अनन्तवें भाग क्रम से हीन होता गया है अर्थात् एक- एक चय हीन है। यह श्रेणिप्ररूपणा सूक्ष्मकृष्टिकारक के प्रथम समय से चरम समय तक जानना चाहिए ।

अब संक्रम्यमान द्रव्य का अल्पबहुत्व कहते हैं -

लोहस्स तदियादो सुहुमगदं विदियदो दु तदियगदं ।
विदियादो सुहुमगदं दव्वं संखेज्जगुणिदकमं ।।५७५ ।।

लोभस्य च तृतीयतः सूक्ष्मगतं द्वितीयस्तु तृतीयगतम् ।
द्वितीयतः सूक्ष्मगतं द्रव्यं सङ्ख्येयगुणितक्रमम् ।।५७५ ।।

अन्वयार्थ - (लोहस्स तदियादो सुहुमगदं) लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में से सूक्ष्मकृष्टियों में संक्रमित हुआ द्रव्य **(विदियदो दु तदियगदं)** द्वितीय संग्रहकृष्टि में से तृतीय संग्रहकृष्टि में संक्रमित हुआ द्रव्य और **(विदियादो सुहुमगदं दव्वं)** द्वितीय संग्रहकृष्टि में से सूक्ष्मकृष्टियों में संक्रमित हुआ द्रव्य **(संखेज्जगुणिदकमं)** क्रम से संख्यातगुणित है।

विशेषार्थ - सूक्ष्मकृष्टिकारक क्षपकजीव लोभ की द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टि में से असंख्यातवें भाग द्रव्य का अपकर्षण करके संक्रमण द्वारा सूक्ष्मकृष्टिरूप संक्रमित करता है। उसमें

से तृतीय संग्रहकृष्टि में से सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमित हुआ द्रव्य [व १२।१ / २४ ओ] सबसे अल्प है। उससे द्वितीय संग्रहकृष्टि में से तृतीय संग्रहकृष्टि में [व १२।२३ / २४ ओ] संख्यातगुणे द्रव्य का संक्रमण होता है क्योंकि लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य की अपेक्षा द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य संख्यातगुणा है।द्वितीय संग्रहकृष्टि में से तृतीय संग्रहकृष्टि में संक्रमित हुए द्रव्य से द्वितीय संग्रहकृष्टि में से सूक्ष्मकृष्टिरूप से संक्रमित हुआ द्रव्य संख्यातगुणा है। [व १२।५५२ / २४ ओ] क्योंकि लोभ की तृतीयसंग्रहकृष्टि-आयाम से सूक्ष्मकृष्टि का आयाम संख्यातगुणा है। आयामानुसार ही द्रव्य की संख्या का प्रमाण जानना चाहिए।

यहाँ सूक्ष्मकृष्टियों में संक्रमित हुए द्रव्य का प्रमाण कहने के लिए बादरकृष्टियों में संक्रमित प्रदेशों का अल्पबहुत्व कहते हैं-

किट्टीवेदगपढमे कोहस्स य विदियदो दु तदियादो।
माणस्स य पढमगदो, माणतियादो दु मायपढमगदो[1] ।।५७६।।
मायतियादो लोभस्सादिगदो लोभपढमगदो विदियं ।
तदियं च गदा दव्वा, दसपदमद्धियकमा होंति[2] ।।५७७।।

कृष्टिवेदकप्रथमे क्रोधस्य च द्वितीयतस्तु तृतीयतः ।
मानस्य च प्रथमगतं मानत्रयात् तु मायाप्रथमगतम् ।।५७६।।
मायत्रिकात् लोभस्यादिगतं लोभप्रथमतो द्वितीयम् ।
तृतीयं च गतानि द्रव्याणि दशपदमधिकक्रमाणि भवन्ति ।।५७७।।

अन्वयार्थ - (किट्टीवेदगपढमे) कृष्टिवेदक के प्रथम समय में **(कोहस्स य)** क्रोध की **(विदियदो हु)** द्वितीय संग्रहकृष्टि में से **(माणस्स य पढमगदो)** मान की प्रथम कृष्टि में प्राप्त हुआ द्रव्य, **(तदियादो)** क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में से **(माणस्स य पढमगदो)** मान की प्रथम कृष्टि में प्राप्त हुआ द्रव्य, **(माणतियादो दु)** मान की तीन संग्रहकृष्टियों में से **(मायापढमगदो)** माया की प्रथम कृष्टि में प्राप्त हुआ द्रव्य, **(मायतियादो)** माया की तीन कृष्टियों में से **(लोभस्सादिगदो)** लोभ की प्रथम कृष्टि में प्राप्त हुआ द्रव्य, **(लोभ पढमगदो)** लोभ की प्रथम कृष्टि में से **(विदियं गदा)** द्वितीय कृष्टि में प्राप्त हुआ द्रव्य **(च)** और **(तदियं गदा दव्वा)** तृतीय कृष्टि को प्राप्त हुआ द्रव्य ये **(दसपदं)** दस पद **(अद्धियकमा)** क्रम से अधिक **(होंति)** हैं।

विशेषार्थ - १) बादरकृष्टि वेदककाल के प्रथम समय में क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि में से

१) क. पा. सुत्त पृ. ८६७-८६८ सू.१२८०-१२८९/ध. पु.६ पृ. ४०१

मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में अध:प्रवृत्त संक्रमण द्वारा संक्रमित हुआ द्रव्य सबसे अल्प है। २) उससे क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में से मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में विशेष अधिक द्रव्य संक्रमित करता है क्योंकि अल्प अनुभागयुक्त कृष्टि का द्रव्य अधिक होता है और अधिक द्रव्ययुक्त कृष्टि में से संक्रम्यमान द्रव्य भी अधिक होता है। तृतीय संग्रहकृष्टि का अनुभाग अल्प है इसलिए अधिक अनुभागयुक्त द्वितीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य से तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य अधिक है इसलिए संक्रमण द्रव्य भी विशेष अधिक है।

प्रश्न - कितना विशेष अधिक है?

उत्तर- पूर्वद्रव्य को (द्वितीय संग्रहकृष्टि के संक्रमण द्रव्य को)पल्योपम के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर एकभाग आता है उतने प्रमाण से अधिक जानना चाहिए।

$$\text{द्वितीय संग्रहकृष्टि का संक्रमणद्रव्य} + \frac{\text{द्वितीय संग्रहकृष्टि का संक्रमणद्रव्य}}{\text{पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग}} = \text{तृतीय संग्रहकृष्टि का संक्रमणद्रव्य}$$

३) उससे मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में से माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित हुआ द्रव्य विशेष अधिक है क्योंकि यहाँ भी क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की अपेक्षा मान की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य अधिक है। यहाँ परस्थान भागहार आवलि का असंख्यातवाँ भाग है।

$$\text{क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि का संक्रमण द्रव्य} + \frac{\text{क्रो. तृ. सं. कृष्टि का संक्रमणद्रव्य}}{\text{आवलि का असंख्यातवाँ भाग}} = \text{मान के प्रथम संग्रहकृष्टि का संक्रमणद्रव्य}$$

४) उससे मान की द्वितीय संग्रहकृष्टि से माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित द्रव्य विशेष अधिक है। ५) उससे मान की तृतीय संग्रहकृष्टि से माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित द्रव्य विशेष अधिक है। यहाँ दोनों जगह विशेष अधिक का प्रमाण पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर आया एक भागमात्र है। ६) उससे माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में से लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित हुआ द्रव्य विशेष अधिक है। यहाँ पात्रानुसार विशेष का प्रमाण आवलि के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एक भाग मात्र है। ७)उससे माया की द्वितीय संग्रहकृष्टि में से लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित द्रव्य विशेष अधिक है। ८) उससे माया की तृतीय संग्रहकृष्टि में से लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित द्रव्य विशेष अधिक है। यहाँ दोनों स्थानों में विशेष का प्रमाण पूर्वद्रव्य में पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर आया एक भाग मात्र है। ९) उससे लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में से लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि में संक्रमित द्रव्य विशेष अधिक है। यहाँ परस्थान होने से विशेष का प्रमाण पूर्वद्रव्य में आवलि के असंख्यातवें भाग का भाग देकर प्राप्त हुआ एक भाग मात्र है।

प्रश्न - जहाँ अन्य कषायों की संग्रहकृष्टि के द्रव्य का अन्य कषायों की संग्रहकृष्टि में संक्रमण कहा वहाँ परस्थान संक्रमण अपने-अपने द्रव्य को अध:प्रवृत्त भागहार का भाग देकर आये हुए एक भाग

प्रमाण द्रव्य का संक्रमण होता है इसलिए अन्य कषायों में संक्रमणद्रव्य के विशेष अधिक का क्रम कहा है वह योग्य है परन्तु लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में से उसी की द्वितीय संग्रहकृष्टि में संक्रमण हुआ। यहाँ स्वस्थान संक्रमण है। यहाँ अपने द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर प्राप्त हुये एक भागमात्र द्रव्य का संक्रमण होता है। अध:प्रवृत्त भागहार से अपकर्षण भागहार असंख्यातगुणा हीन है इसलिए पूर्वोक्त संक्रमणद्रव्य से इसका संक्रमणद्रव्य असंख्यातगुणा कहना चाहिए विशेष अधिक कैसे कहा?

उत्तर - यह सत्य है, परन्तु यहाँ परिणामों के माहात्म्यवश अध:प्रवृत्त भागहार भी अपकर्षण भागहार ही के अनुसार प्रवृत्त होता है। इसलिए इस प्रकार का विशेष यहीं संभव है। अन्यत्र सर्वत्र अध:प्रवृत्त भागहार की अपेक्षा अपकर्षण भागहार असंख्यातगुणा हीन ही जानना चाहिए।

१०) उससे लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में से लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में संक्रमित द्रव्य विशेष अधिक है। यहाँ पात्रानुसार विशेष का प्रमाण पूर्व द्रव्य में पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर आया एक भागमात्र है। यहाँ भी अपकर्षण संक्रमण ही है। इसप्रकार दस स्थान अधिक क्रमसहित जानना चाहिए।

कोहस्स य पढमादो माणादी कोधतदियविदियगदं।
तत्तो संखेज्जगुणं अहियं संखेज्जसंगुणियं[1]।।५७८।।

क्रोधस्य च प्रथमात् मानादौ क्रोधतृतीय द्वितीयगतम्।
ततः सङ्ख्येयगुणमधिकं सङ्ख्येयसङ्गुणितम् ।।५७८।।

अन्वयार्थ - (तत्तो) उससे **(कोहस्स य पढमादो)** क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में से **(माणादी)** मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में प्राप्त हुआ द्रव्य **(संखेज्जगुणं)** संख्यातगुणा है। **(कोधतदियविदियगदं)** क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में से क्रोध की तृतीय और द्वितीय संग्रहकृष्टि में प्राप्त हुआ द्रव्य क्रम से **(अहियं)** अधिक और **(संखेज्जसंगुणियं)** संख्यातगुणा है।

विशेषार्थ - ११) पूर्वोक्त संक्रमणद्रव्य से क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में से मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमित द्रव्य संख्यातगुणा है क्योंकि लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि के द्रव्य से क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य तेरहगुणा है इसलिए उसमें से संक्रमित हुआ द्रव्य भी तेरहगुणा अर्थात् संख्यातगुणा ही है।[2]

१२) उससे क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में से क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में संक्रमित द्रव्य विशेष अधिक है। यहाँ विशेष का प्रमाण पूर्वद्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर आया हुआ एक

१) क. पा. सुत्त पृ. ८६८ सू. १२९०-१२९२/ध. पु.६ पृ. ४०१-४०२ २) ज.ध. पु.१५ पृ.३१०-३११

भागमात्र है। १३) उससे क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में से क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि में संक्रमित द्रव्य संख्यातगुणा है क्योंकि जिस संग्रहकृष्टि का वेदक है उसका द्रव्य उसके अनन्तर वेद्यमान कृष्टि में अन्य कृष्टियों से संख्यातगुणा संक्रमित होता है इसलिए यहाँ वेद्यमान क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का उसके अनन्तर वेद्यमान द्वितीय संग्रहकृष्टि में संक्रमित हुआ द्रव्य संख्यातगुणा कहा है।

बादरकृष्टि के विषय में संक्रमण का प्रकरण पूर्व में ही कहा है। फिर भी सूक्ष्मकृष्टियों के लिए किये गए संक्रमणद्रव्य का प्रमाण लाने के लिए कारणभूत है इसलिए यहाँ पुन: कहा है।

प्रश्न - यह बादरकृष्टि विषयक प्रदेशसंक्रमण सूक्ष्मकृष्टि विषयक प्रदेश संक्रमण का आश्रयभूत कैसे है?

उत्तर - लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि में से उसकी तृतीय संग्रहकृष्टि में जितना द्रव्य संक्रान्त हुआ उससे संख्यातगुणा द्रव्य सूक्ष्मकृष्टियों में संक्रमित होता है। इसप्रकार का संक्रमण का गुणकार नवीन नहीं है तो पूर्व में भी बादरकृष्टि में संख्यातगुणा गुणकार प्रवृत्त होता था। इसप्रकार सूक्ष्मकृष्टियों को करने में यह संक्रमण आश्रयभूत है।

अथवा क्रोध का द्रव्य तेरहगुणा होता है। उसमें से उसकी द्वितीय कृष्टि में संक्रमित हुआ द्रव्य चौदहगुणा कहा था। उसमें से तृतीयकृष्टि में, क्रोध की तृतीयकृष्टि में से मान की प्रथमकृष्टि में इसप्रकार आनुपूर्वी क्रम से आकर लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य तेईसगुणा है। उससे सूक्ष्मकृष्टियों में संक्रमित हुआ द्रव्य चौवीसगुणा है। यह अनुक्रम जानने के लिए यहाँ अल्पबहुत्व का कथन किया है।

लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि में से उसी की ही तृतीय संग्रहकृष्टि में संक्रमण करने की अवधि कहते हैं -

लोहस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जाव पढमठिदि।
आवलितियमवसेसं आगच्छदि विदियदो तदियं ।।५७९।।

लोभस्य द्वितीयकृष्टिं वेद्यमानस्य यावत् प्रथमस्थितिः।
आवलित्रिकमवशेषमागच्छति द्वितीयतस्तृतीयम्।।५७९।।

अन्वयार्थ - (लोहस्स) लोभ की **(विदियकिट्टिं)** द्वितीय संग्रहकृष्टि के **(वेदयमाणस्स)** वेदन करनेवाले जीव की **(पढमठिदि)** द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथम स्थिति **(आवलितियं)** तीन आवलि **(अवसेसं जाव)** शेष रहने तक **(विदियदो)** द्वितीय संग्रहकृष्टि में से **(तदियं)** तृतीय संग्रहकृष्टि में संक्रमण होकर द्रव्य **(आगच्छदि)** आता है।

विशेषार्थ - लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथम स्थिति में विश्रमणावलि, संक्रमणावलि और

उच्छिष्टावलि ये तीन आवलि शेष रहने तक लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में दिया जाता है क्योंकि तृतीय संग्रहकृष्टि में संक्रमित हुआ द्रव्य विश्रमणावली तक वहीं विश्राम करता है।उसके अनन्तर संक्रमणावलि में सूक्ष्मकृष्टि रूप होकर संक्रमण करता है। तब उच्छिष्टावलि मात्र प्रथमस्थिति शेष रहती है इसलिए तीन आवलि शेष रहने तक द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य तृतीय संग्रहकृष्टि में संक्रमित होता है। उसके अनन्तर द्वितीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य में अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग प्रमाण द्रव्य का सूक्ष्मकृष्टि में ही संक्रमण करता है। जबतक दो आवलि शेष रहती हैं तब तक ऐसा ही जानना चाहिए। वहाँ आगाल-प्रत्यागाल की व्युच्छित्ति होती है। आनुपूर्वी संक्रमण होने से तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य द्वितीयकृष्टि में नहीं आता इसलिए आगाल नहीं होता केवल प्रत्यागाल ही होता है वह भी रूक गया। उसी प्रकार एक समय कम आवलि प्रमाण निषेकों को अधोगलनरूप क्रम से भोगकर समय अधिक आवलि शेष रखता है।

बादरलोभ की प्रथम स्थिति समयअधिक आवलिप्रमाण शेष रहने पर तृतीयकृष्टि और कुछ कम द्वितीयकृष्टि का सूक्ष्मरूप परिणमन का निर्देश करते हैं-

तत्तो सुहुमं गच्छदि, समयाहिय - आवलीयसेसाए।
सव्वं तदियं सुहुमे णव उच्छिट्ठं विहाय विदियं च ।।५८०।।

ततः सूक्ष्मं गच्छति समयाधिकावलि शेषायाम् ।
सर्वं तृतीयं सूक्ष्मे नवकमुच्छिष्टं विहाय द्वितीयं च ।।५८०।।

अन्वयार्थ - (तत्तो) उसके अनन्तर **(समयाहिय-आवलियसेसाए)** बादरलोभ की प्रथम स्थिति में एक समय अधिक आवलि शेष रहने पर **(सव्वं तदियं)** सर्व तृतीयकृष्टि **(सुहुमं)** सूक्ष्मकृष्टि को **(गच्छदि)** प्राप्त होती है । **(च)** और **(णव उच्छिट्ठं विहाय)** नवक समयप्रबद्ध और उच्छिष्टावलि छोड़कर शेष **(विदियं)** द्वितीय कृष्टि का द्रव्य भी **(सुहुमे)** सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमता है।

विशेषार्थ - पूर्वोक्त क्रम से लोभ की द्वितीयकृष्टि में जब एक समय अधिक आवलिकाल शेष रहता है तब चरम समयवर्ती बादरसांपरायिक होता है। उसी अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के अंतिम समय में तृतीय बादरकृष्टि संपूर्णरूप से सूक्ष्मकृष्टियों में संक्रमित होती है। यह कथन उत्पादानुच्छेद की अपेक्षा से है क्योंकि अंतिम समय में वह द्रव्य बादरकृष्टिरूप ही है। अनन्तर सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में बादरकृष्टि का संपूर्णरूप से सूक्ष्मकृष्टियों में संक्रमण देखा जाता है । लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य में समय अधिक उच्छिष्टावलि मात्र निषेक और एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवक समयप्रबद्ध बादरकृष्टिरूप रहते हैं। शेष सर्वद्रव्य सूक्ष्मकृष्टिरूप होता है।[1]

१) ज.ध. पु.१५ पृ. ३१८

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के अंतिम समय में स्थितिबंध का निर्देश-

लोहस्स तिघादीणं, ताहे अघादीतियाण ठिदिबंधो ।
अंतो दु मुहुत्तस्स य, दिवसस्स य होदि वरिसस्स[1] ।।५८१ ।।

लोभस्य त्रिघातिनां तत्राघातित्रयाणां स्थितिबन्धः ।
अन्तस्तु मुहूर्तस्य च दिवसस्य च भवति वर्षस्य ।।५८१ ।।

अन्वयार्थ - (ताहे) उस अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में **(लोहस्स)** संज्वलन लोभ का **(ठिदिबंधो)** स्थितिबंध **(अंतो दु मुहुत्तस्स य)** मुहूर्त के अन्दर अर्थात् अन्तर्मुहूर्त **(तिघादीणं)** तीन घातिकर्मों का स्थितिबंध **(दिवसस्स अंतो)** दिवस के अंदर अर्थात् कुछ कम एक दिवस **(य)** और **(अघादितियाण)** तीन अघातिकर्मों का स्थितिबंध **(वरिसस्स अंतो)** वर्ष के अन्दर अर्थात् कुछ कम एक वर्ष **(होदि)** होता है।

विशेषार्थ - अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में लोभ संज्वलन का अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य स्थितिबंध होता है उसी समय में मोहनीयकर्म की बंधव्युच्छित्ति होती है क्योंकि उसके पश्चात् मोहनीय कर्म के बंध को कारणभूत परिणामों का अभाव है। तीन घाति कर्मों का स्थितिबंध पूर्व में दिवस पृथक्त्वप्रमाण होता था वह घटकर अब कुछ कम एक दिन रात प्रमाण रह गया है। नाम, गोत्र औरवेदनीय का पूर्व में संख्यातहजार वर्षप्रमाण स्थितिबंध होता था वह घटकर कुछ कम एक वर्षप्रमाण रह गया है ।

ताणं पुण ठिदिसंतं कमेण अंतोमुहुत्तयं होदि ।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि असंखवस्साणि ।।५८२ ।।

तेषां पुनः स्थितिसत्त्वं क्रमेणान्तर्मुहूर्तकं भवति ।
वर्षाणां सङ्ख्येयसहस्राण्यसङ्ख्यवर्षाणि ।।५८२ ।।

अन्वयार्थ - (ताणं पुण ठिदिसंतं) पुनः उन कर्मों का स्थितिसत्त्व **(कमेण)** क्रम से **(अंतोमुहुत्तयं)** अंतर्मुहूर्तप्रमाण, **(वस्साणं संखेज्जसहस्साणि)** संख्यात हजारवर्ष **(असंखवस्साणि)** और असंख्यातवर्ष **(होदि)** रहता है।

विशेषार्थ - अनिवृत्तिकरण के अन्तिम समय में लोभ का स्थितिसत्त्व अंतर्मुहूर्तप्रमाण, तीन

१) क. पा. सुत्त पृ. ८६९ सू. १२९८-१३००/ ध. पु.६ पृ. ४०२-४०३

घातिकर्मों का स्थितिसत्त्व संख्यातहजार वर्षप्रमाण और तीन अघातिकर्मों का स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षप्रमाण शेष रहता है।[1]

अब सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान का वर्णन करते हैं-

से काले सुहुमगुणं पडिवज्जदि सुहुमकिट्टिठिदिखंडं।
आणायदि तद्दव्वं उक्कट्टिय कुणदि गुणसेढिं ।।५८३।।

स्वे काले सूक्ष्मगुणं प्रतिपद्यते सूक्ष्मकृष्टिस्थितिखण्डम्।
आनयति तद्द्रव्यमपकृष्य करोति गुणश्रेणिम् ।।५८३।।

अन्वयार्थ - (से काले) अनिवृत्तिकरण का काल समाप्त होने पर अनन्तर समय में **(सुहुमगुणं)** सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान को **(पडिवज्जदि)** प्राप्त होता है।**(सुहुमकिट्टिठिदिखंडं)** सूक्ष्मकृष्टियों का स्थितिकांडक घात करता है **(तद्दव्वं)** सूक्ष्मकृष्टियों के द्रव्य का **(उक्कट्टिय)** अपकर्षण करके **(आणायदि)** लाता है और **(गुणसेढिं)** गुणश्रेणि **(कुणदि)** करता है ।

विशेषार्थ - बादरकृष्टि का वेदककाल समाप्त होने पर अनन्तर समय में सूक्ष्मकृष्टियों का अपकर्षण करके उसका वेदन करनेवाला क्षपक जीव सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान को प्राप्त होता है। उसी प्रथम समय में लोभ की सूक्ष्मकृष्टियों की जो अंतर्मुहूर्तमात्र स्थिति है उसका संख्यातवाँ भागमात्र स्थितिकांडक आयाम ग्रहण करता है। कृष्टिगत मोह के अनुभाग की प्रत्येक समय में अपवर्तना और ज्ञानावरणादिकों के स्थितिकांडक घात और अनुभागकांकडकघात पूर्व के समान ही होते हैं।

सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी स्थिति में प्राप्त मोह के सर्वद्रव्य को [स a१२— / ७] (उत्कृष्ट समयप्रबद्ध को स a डेढ़ गुणहानि '१२' से गुणा करने पर सर्व सत्त्वद्रव्य [स a१२—] होता है।उसे सात से भाग देने पर मोह का सत्त्वद्रव्य आता है।) अपकर्षण भागहार का भाग देकर [स a१२— / ७ ओ] एकभाग का अपकर्षण करके गुणश्रेणी करता है ।

सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में अपकृष्टद्रव्य देने के लिए तीन पर्वों का कथन और गुणश्रेणिआयाम कहते हैं -

गुणसेढि अंतरट्ठिदि बिदियट्ठिदि इदि हवंति पव्वतिया।
सुहुमगुणादो अहिया अवट्ठिदुदयादि गुणसेढी ।।५८४।।

गुणश्रेणिरन्तरस्थितिर्द्वितीयस्थितिरिति भवन्ति पर्वत्रयाणि ।
सूक्ष्मगुणतोऽधिकाऽवस्थितोदयादिगुणश्रेणिः[१] ।।५८४ ।।

अन्वयार्थ - (गुणसेढि) गुणश्रेणि **(अंतरट्ठिदि)** अंतरस्थिति और **(बिदियट्ठिदि)** द्वितीय स्थिति **(इदि)** ऐसे **(पव्वतिया)** तीन पर्व **(हवंति)** होते हैं। **(सुहुमगुणादो)** सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान के काल से **(अवट्ठिदुदयादि गुणसेढी)** उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि-आयाम **(अहिया)** अधिक है।

विशेषार्थ - गुणश्रेणि, अंतरस्थिति और द्वितीय स्थिति इन तीन पर्वों में अपकृष्टद्रव्य विभाग करके दिया जाता है। जिस निषेक तक अपकृष्टद्रव्य असंख्यातगुणित क्रम से दिया जाता है उतने आयाम को गुणश्रेणि कहते हैं। उसके ऊपर जिन निषेकों का पूर्व में अभाव किया था उतने प्रमाणरूप अंतरस्थिति है । उसके ऊपर शेष सर्व स्थितियों का नाम द्वितीय स्थिति है ।

मोहनीय की यह गुणश्रेणि सूक्ष्मसांपरायकाल से विशेष अधिक अर्थात् संख्यातवाँ भाग अधिक है और ज्ञानावरणादिकों के गलितावशेष गुणश्रेणी-आयाम से अंतर्मुहूर्त हीन है क्योंकि ज्ञानावरणादिकों के गुणश्रेणि-आयाम में क्षीणकषाय गुणस्थान का काल भी गर्भित है। यह गुणश्रेणि उदयरूप वर्तमान समय से है। पूर्व के समान उदयावलि के ऊपर नहीं। इसलिए इसे उदयादि गुणश्रेणि कहते हैं। उसीप्रकार वह अवस्थित प्रमाणवाली है। एक-एक समय व्यतीत होने पर उसके ऊपर की अंतरायाम स्थिति में से एक-एक निषेक गुणश्रेणि में मिलता है इसलिए गुणश्रेणि आयाम जितना है उतना ही रहता है। इसलिए इसे अवस्थित गुणश्रेणि कहते हैं।[२]

अपकृष्ट द्रव्य देने का विधान -

ओकट्टिदइगिभागं गुणसेढीए असंखबहुभागं ।
अंतरहिदविदियठिदी संखसलागा हि अवहिरया[३] ।।५८५ ।।
गुणिय चउरादिखंडे अंतरसयलट्ठिदिम्हि णिक्खिवदि ।
सेसबहुभागमावलिहीणे विदियट्ठिदीए हु ।।५८६ ।।

अपकर्षितैकभागं गुणश्रेण्यामसङ्ख्यबहुभागम् ।
अन्तरहिते द्वितीयस्थितिः सङ्ख्यशलाका ह्यपहरिताः ।।५८५ ।।

---

१) क. पा. सुत्त पृ. ८६९ सू. १३०८   २) ज. ध. पु.१५ पृ. ३२२
३) क. पा. सुत्त पृ. ८६९-८७० सू. १३०९-१३१२

गुणित्वा चतुरादिखण्डेऽन्तरसकलस्थितौ निक्षिपति।
शेषबहुभागमावलिहीने द्वितीयस्थितौ हि।।५८६।।

अन्वयार्थ - (ओक्कट्टिदइगिभागं) अपकर्षित द्रव्य के एक भाग द्रव्य को **(गुणसेढीए)** गुणश्रेणी में देता है **(असंखबहुभागं)** अवशेष असंख्यात बहुभागद्रव्य को **(अंतरहिदविदियठिदि)** अंतरस्थिति का द्वितीय स्थिति में भाग देने पर **(संखसलागा)** जो संख्यातप्रमाणरूप शलाका आती है उससे **(अवहरिया)** भाग देकर **(चउरादिखंडे)** संदृष्टि की अपेक्षा चार से **(गुणिय)** गुणा करके आया हुआ द्रव्य **(अंतरसयलट्ठिदिम्हि)** अंतर की सर्व स्थितियों में **(णिक्खिवदि)** निक्षेपण करता है और **(सेसबहुभागं)** शेष बहुभाग **(आवलिहीणे)** अतिस्थापनावलि से न्यून **(विदियट्ठिदीए)** द्वितीय स्थिति में देता है।

विशेषार्थ - सूक्ष्मकृष्टियों के द्वारा यद्यपि अन्तरायाम पूर्ण भरा जाता है और दोनों स्थितियाँ एकरूप होती हैं तथापि अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के चरम समय की अपेक्षा से प्रथमस्थिति और द्वितीयस्थिति का भेद करके अन्तर का कथन किया है। गुणश्रेणी का प्रमाण एक अन्तर्मुहूर्त सबसे अल्प है। उससे अंतरस्थिति का प्रमाण संख्यातगुणा संदृष्टि की अपेक्षा से चार अन्तर्मुहूर्त २१/४, उससे स्थितिकांडकायाम संख्यातगुणा संदृष्टि १६ अन्तर्मुहूर्त २१/४/४, उससे स्थितिकांडकायाम के नीचे शेष रही द्वितीय स्थिति संख्यातगुणा संदृष्टि- ६४ अन्तर्मुहूर्त २१/४/४/४, स्थितिकांडकायाम और शेष रही द्वितीय स्थिति दोनों मिलकर संपूर्ण द्वितीय स्थिति का प्रमाण होता है १६ + ६४ = ८० अंतर्मुहूर्त २१/८०। यहाँ अंतरस्थिति का भाग द्वितीय स्थिति को देकर जो प्रमाण आता है उस संख्यातप्रमाण युक्त शलाका का भाग असंख्यातबहुभागमात्र अपकृष्टद्रव्य में देने पर एकखंड अंतरस्थिति में देता है

$$\frac{\text{द्वितीय स्थिति}}{\text{अंतर स्थिति}} = \text{संख्यात प्रमाणरूप शलाका} \qquad \frac{८०}{४} = २० \text{ शलाका}$$

$$\frac{\text{असंख्यात बहुभाग द्रव्य}}{\text{शलाका}} = \boxed{\begin{matrix}\text{स a १२–}\\ \text{७ ओ २०}\end{matrix}} \text{ अंतर स्थिति में देय द्रव्य}$$

एक खंड अंतरस्थिति में देता है तब अंतरस्थिति के अंतिम निषेक में दिये द्रव्य से द्वितीय स्थिति में दिया द्रव्य कुछ कम होता है। यदि दो खंड देने को कहा तो अंतिम अंतरस्थिति में दिये द्रव्य से द्वितीय स्थितिमें दिया द्रव्य कुछ कम द्विभाग होता है, तीन खंड ग्रहण करके अंतर स्थिति में देने पर अंतिम अंतर स्थिति में दिये द्रव्य से द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में दिया द्रव्य कुछ कम त्रिभागमात्र होगा। इस क्रम से यथायोग्य संख्यात खंड ग्रहण करके अंतर स्थिति में देता है। यह द्रव्य अपकर्षण किये सर्वद्रव्य का संख्यातवाँ भाग होता है।

संदृष्टि से उस असंख्यात बहुभाग मात्र द्रव्य को बीस का भाग देकर चार गुणा करने पर अंतरस्थिति में दिये गए द्रव्य का प्रमाण आता है । (स a १२।४ / ७।ओ २०) उस असंख्यात बहुभागमात्र द्रव्य में से इतना घटा करके शेष रहे द्रव्य को द्वितीय स्थिति में अतिस्थापनावलि छोडकर सर्वत्र देता है। संदृष्टि से (स a १२।१६ / ७।ओ २०) बहुभागमात्र द्रव्य को बीस का भाग देकर सोलह से गुणा करने पर द्वितीय स्थिति में दिए गये द्रव्य का प्रमाण आता है ।

अंतरस्थिति में प्राप्त हुए द्रव्य के संबंध में दो मत हैं। जयधवल पु. १५ पृ. ३२३ पर इन दोनों मतों का उल्लेख किया है। अपकृष्टद्रव्य के असंख्यात बहुभाग का संख्यातवाँ एक भाग अंतरस्थिति में दिया जाता हैं ऐसा पहला मत है। संख्यात बहुभाग दिया जाता है ऐसा दूसरा मत है। इस लब्धिसार ग्रन्थ में प्रथम मत के अनुसार द्रव्य दिया है।

दीयमान द्रव्य का क्रम कहते हैं-

अंतरपढमठिदि त्ति य असंखगुणिदक्कमेण दिज्जदि हु ।
हीणकमं संखेज्जगुणूणं हीणक्कमं तत्तो[1] ।।५८७ ।।

अन्तरप्रथमस्थित्यन्तमसङ्ख्यगुणितक्रमेण दीयते हि।
हीनक्रमं सङ्ख्येयगुणोनं हीनक्रमं ततः।।५८७ ।।

अन्वयार्थ- (अंतरपढमठिदित्ति य) अंतरायाम की प्रथम स्थिति तक **(असंखगुणिदक्कमेण)** असंख्यात गुणितक्रम से **(दिज्जदि हु)** द्रव्य दिया जाता है।उसके ऊपर **(हीणकमं)** हीनक्रम से, उसके अनन्तर **(संखेज्जगुणूणं)** संख्यातगुणित हीन, **(तत्तो)** उसके अनन्तर **(हीणक्कमं)** हीनक्रम से द्रव्य दिया जाता है।

विशेषार्थ - पूर्व में कहे गये अनुसार अपकृष्टद्रव्य गुणश्रेणि, अंतरस्थिति और द्वितीय स्थिति में विभाग कर दिया जाता है। गुणश्रेणिशीर्ष के ऊपर अंतरायाम की प्रथम स्थिति तक द्रव्य असंख्यातगुणित क्रम से दिया जाता है। अंतरायाम के दूसरे निषेक से अंतिम निषेक तक एक-एक चय हीन दिया जाता है।अंतरायाम के अंतिम निषेक के ऊपर द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में संख्यातगुणा हीन द्रव्य दिया जाता है क्योंकि वहाँ पूर्व का सत्त्वद्रव्य है और अंतरायाम में सर्व नवीन दिया है। उसके अनन्तर द्वितीय स्थिति के द्वितीयादि निषेकों में एक-एक चय हीनक्रम से अतिस्थापनावलि के अधस्तन निषेक तक द्रव्य दिया जाता है।

---

१) क. पा. सुत्त पृ. ८७० सू. १३१३-१३१४/ज. ध. पु.१५ पृ.३२५-३२६

गुणश्रेणि में द्रव्य देने का विधान –

गुणश्रेणि में देने योग्य द्रव्य = $\dfrac{\text{अपकृष्ट द्रव्य}}{\text{पल्य का असंख्यातवाँ भाग}}$

स a १२ ७।ओ प a

गुणश्रेणि के प्रथम निषेक में दिये गए द्रव्य की एक शलाका, उससे द्वितीय निषेक में दिये द्रव्य की शलाका पल्य के असंख्यात वें भाग से गुणित है। इसप्रकार गुणश्रेणि के अंतिम निषेक तक गुणकार क्रम से असंख्यात है। प्रथम निषेक से लेकर अंतिम निषेक तक के गुणकार शलाकाओं का जोड करके उसका पूर्वोक्त गुणश्रेणि में देने योग्य द्रव्य में भाग देकर जो एक भाग आता है उसे अपनी-अपनी गुणकार शलाका से गुणा करने पर प्रथमादि निषेकों में देय द्रव्य का प्रमाण आता है।

अंकसंदृष्टि से एकसे लेकर चार गुणी-चार गुणी शलाका चार जगह स्थापन करके १/४/१६/६४ इनका जोड़ पिच्यासी (८५) होता है। उसका भाग पूर्वोक्त देयद्रव्य को देकर

स a १२ ७।ओ प ८५ a

एक-चार आदिसे गुणा करने पर प्रथमादि निषेकों में देयद्रव्य का प्रमाण आता है।

गुणकाररूप संख्याओं का जोड़ करने का करणसूत्र –

पदमितगुणहतिगुणितप्रभेदः स्याद्गुणधनं तदाद्यूनं।
एकोनगुणविभक्तं गुणसंकलितं विजानीयात्।।

अर्थ - पदमात्र गुणकारों को परस्पर गुणा करने पर जो गुणधन आता है उसमें से आदिसंख्या (प्रथम संख्या) कम करके उसे एक कम गुणकार से भाग देने पर गुणसंकलितधन आता है ऐसा जानना चाहिए।

संकलन सूत्र-

यहाँ गुणकार = ४
गच्छ = ४

$$\frac{\text{पदमात्र गुणकारों का परस्पर गुणकार - आदि}}{\text{गुणकार - १}} = \text{गुण संकलनधन}$$

$$\frac{(४\times४\times४\times४) - १}{४ - १} = \frac{२५६ - १}{३} = \frac{२५५}{३} = ८५ \text{ संकलनधन}$$

इसप्रकार वर्तमान उदयरूप गुणश्रेणि के प्रथम निषेक से गुणश्रेणि शीर्ष तक देवें। गुणश्रेणि के अंतिम निषेक को गुणश्रेणीशीर्ष कहते हैं। सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में गुणश्रेणि आयाम का अंतिम निषेक ही गुणश्रेणिशीर्ष है। पुनः द्वितीयादि समयों में एक-एक समय व्यतीत होने पर अंतरायाम के प्रथमादि निषेक गुणश्रेणि में मिलते है तब वह गुणश्रेणिशीर्ष होता है क्योंकि यहाँ अवस्थित गुणश्रेणि आयाम है।

अंतरायाम के निषेकों में द्रव्य देने का विधान -

अंतरायाम में देने योग्य पूर्वोक्त द्रव्य को अंतरायाममात्र गच्छ का भाग देने पर मध्यमधन आता है। उसमें एक कम गच्छ के अर्धप्रमाण चय मिलाने पर जो द्रव्य आता है उतना अंतरायाम के प्रथम निषेक में हैं। यह द्रव्य गुणश्रेणिशीर्ष में दिये हुए द्रव्य से असंख्यातगुणा है।

$$\frac{\text{अंतरायाम का देयद्रव्य}}{\text{अंतरायाम}} = \text{मध्यमधन}$$

स a १२।४
७।ओ २०।२९।४

$$\frac{३२००}{८} = ४००$$

$$\text{मध्यमधन} + \left(\frac{\text{गच्छ} - १}{२} \times \text{चय}\right) = \text{प्रथम निषेक में देयद्रव्य}$$

$$४०० + \left(\frac{८ - १}{२} \times ३२\right) = ४०० + \left(\frac{७ \times ३२}{२}\right) = ४०० + ११२ = ५१२$$

$$\text{चय निकालने का सूत्र} = \frac{\text{मध्यमधन}}{\text{निषेकहार} - \left(\frac{\text{गच्छ} - १}{२}\right)} = \frac{४००}{१६ - \frac{७}{२}} = \frac{४००}{\frac{३२ - ७}{२}}$$

$$= \frac{४००}{\frac{२५}{२}} = \frac{४०० \times २}{२५} = ३२ \text{ चय}$$

अर्थसंदृष्टि

स a १२।४
७ ओ २०।२९।४।१६-$२९^{१८}$४ / २

चय

दो गुणहानि × चय = प्रथम निषेक

१६ × ३२ = ५१२

स a १२।४।१६
७ ओ २०।२९।४।१६-$२९^{१८}$४ / २

प्रथम निषेक

उसके ऊपर अंतरायाम के द्वितीयादि निषेकों में क्रम से एक-एक चय हीन द्रव्य दिया जाता है। अंतरायाम के अंतिम निषेक तक यही क्रम जानना चाहिए।

द्वितीय स्थिति में द्रव्य देने का विधान -

द्वितीय स्थिति में देने योग्य पूर्वोक्त द्रव्य को आवलि से हीन द्वितीय स्थिति का भाग देने पर मध्यमधन आता है । इसमें एक कम गच्छ के अर्धप्रमाण चय मिलाने पर जो प्रमाण आता है उतना द्रव्य द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में दिया जाता है ।

$$\frac{\text{द्वितीय स्थिति में देयद्रव्य}}{\text{द्वितीय स्थिति-आवली}} = \text{मध्यमधन}$$

स a १२।१६
७ ओ २०।२९।८०

यहाँ गच्छ का प्रमाण २९।८०

दो गुणहानि = १६ (संदृष्टि)

$$\text{मध्यमधन} + \left(\frac{\text{गच्छ} - १}{२} \times \text{चय}\right) = \text{प्रथम निषेक}$$

अथवा

मध्यमधन / निषेकहार - ((गच्छ -१) / २) = चय

स a १२।१६
७ ओ २०।२१।८०।१६-२१।८०
२

दो गुणहानि × चय = प्रथम निषेक

स a १२।१६।१६
७ ओ २०।२१।८०।१६-२१।८०
२

यह दिया हुआ द्रव्य अंतरायाम के निषेक में दिये हुए द्रव्य से संख्यातगुणा कम है। पुन: उसके द्वितीयादि निषेकों में क्रम से एक-एक चय हीन द्रव्य दिया जाता हैं। प्रथम निषेक में से एक हीन गच्छमात्र चय घटाने पर अंतिम निषेक का प्रमाण आता है।

प्रथम निषेक- (गच्छ-१ × चय) = अंतिमनिषेक

स a१२।१६।१६-२१।८०
७ ओ २०।२१।८०।१६-२१।८०
२

सूक्ष्म सांपराय के प्रथम समय में दीयमान द्रव्य की रचना

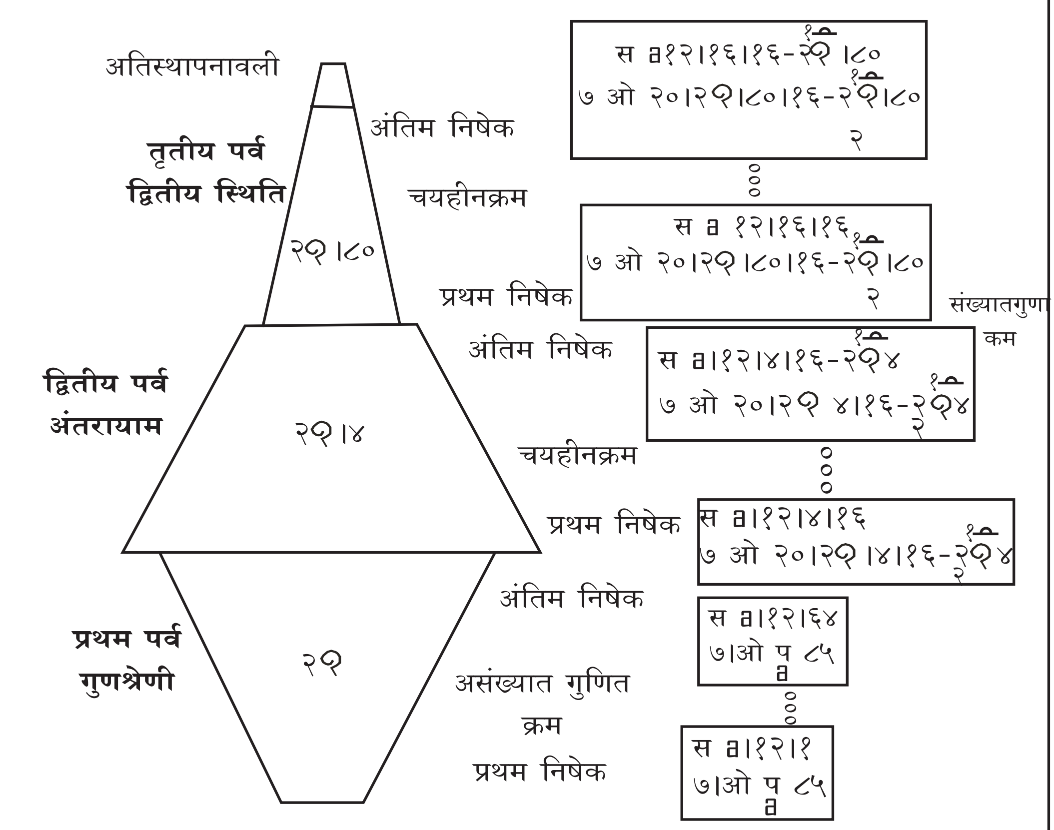

अब दृश्यमान द्रव्य का क्रम कहते हैं-

अंतरपढमठिदित्ति य असंखगुणिदक्कमेण दिस्सदि हु ।
हीणकमेण असंखेज्जेण गुणं तो विहीणकमं [1] ।।५८८।।

अन्तरप्रथमस्थित्यन्तं चासङ्ख्यगुणितक्रमेण दृश्यते हि ।
हीनक्रमेणासङ्ख्येयेन गुणमतो विहीनक्रमम् ।।५८८।।

अन्वयार्थ - (अंतरपढमठिदित्ति य) अंतर की प्रथम स्थिति तक द्रव्य **(असंखगुणिदक्कमेण)** क्रम से असंख्यातगुणित **(दिस्सदि हु)** दिखता हैं। उसके अनन्तर अंतर की अंतिम स्थिति तक **(हीणकमेण)** हीनक्रम से, उसके ऊपर द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में **(असंखेज्जेण गुणं)** असंख्यात गुणित, **(तो)** उसके ऊपर **(विहीणकमं)** हीनक्रम से दिखता है।

विशेषार्थ - वर्तमान समयसंबंधी निषेक में दृश्यमान द्रव्य अल्प है।उससे द्वितीय निषेक में असंख्यातगुणित है। यह क्रम अंतरायाम के प्रथम निषेक तक जानना चाहिए।उसके ऊपर अंतरायाम के अंतिम निषेक तक विशेषहीन क्रम है। यहाँ तक देयद्रव्य और दृश्यमान द्रव्य का क्रम समान है। अंतरायाम के अंतिम निषेक से द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक का दृश्यमान द्रव्य असंख्यातगुणा है।उसके ऊपर द्वितीय स्थिति के अंत निषेक तक विशेष घटते क्रम से दृश्यमान द्रव्य है।

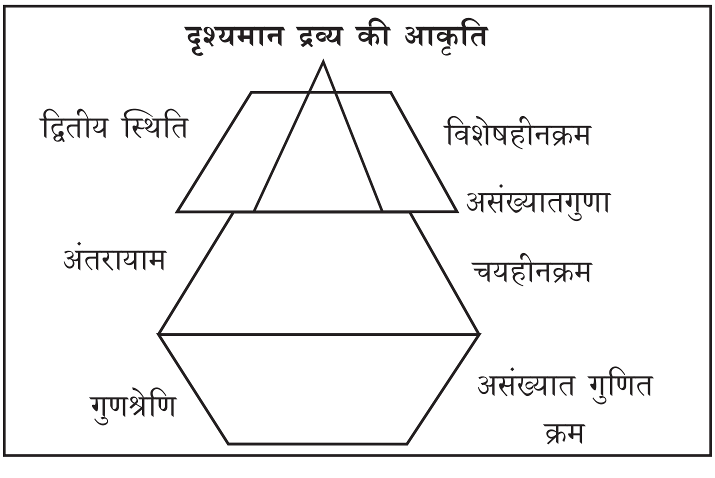

इस प्रकार सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय से प्रथम स्थितिकांडक का घात पूर्ण होने तक ऐसा क्रम जानना चाहिए। विशेष यह है कि अपकर्षण किए द्रव्य का प्रमाण प्रति समय असंख्यातगुणा जानना चाहिए।[2]

१) क. पा. सुत्त पृ. ८७०-८७१ सू.१३१९-१३२५ २)ज. ध. पु.१५ पृ. ३३०

अब प्रथम कांडक की अंतिमफालि के द्रव्य का प्रमाण लाने के लिए कहते हैं -

कंडयगुणचरिमठिदी सविसेसा चरिमफालिया तस्स ।
संखेज्जभागमंतरठिदिम्हि सव्वे तु बहुभागं ।।५८९।।

काण्डकगुणचरिमस्थितिः सविशेषा चरमफालिका तस्य।
सङ्ख्येयभागमन्तरस्थितौ सर्वस्यां तु बहुभागम् ।।५८९।।

अन्वयार्थ- (कंडयगुणचरिमठिदी) कांडकायाम से चरम स्थिति को गुणा करके उसमें **(सविसेसा)** विशेष **(चय)** द्रव्य मिलाने पर **(चरमफालिया)** अंतिम फालि का द्रव्य आता है। **(तस्स)** उसका **(संखेज्जभागं)** संख्यातवाँ भाग **(अंतरठिदिम्हि)** अंतरस्थिति में देता है। **(तु)** और **(बहुभागं)** बहुभाग **(सव्वे)** सर्वस्थिति में देता है।[१]

विशेषार्थ - द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में एक कम द्वितीय स्थिति-आयामप्रमाण चय घटाने पर उसके अंतिम निषेक का द्रव्य होता है। वहाँ से अधस्तन काण्डकायाममात्र निषेकों का द्रव्य अंतिम फालि में ग्रहण करता है इसलिए अंतिम निषेक के द्रव्य को काण्डकायाम से गुणा करके उसमें अधस्तननिषेकों में जो अधिक चय हैं वें मिलाने पर अंतफालि के सर्वद्रव्य का प्रमाण आता है ।
द्वितीय स्थिति का प्रथम निषेक- (द्वितीय स्थिति - १ × चय)= द्वि.स्थि. का अंतिम निषेक [सa१२ / ७।२१।८०]

(यहाँ सत्त्व द्रव्य को द्वितीय स्थिति का भाग देने पर मध्य निषेक आता है। उससे अंतिम निषेक विशेषहीन है। उसको न गिनकर अंतिम निषेक की वही संदृष्टि दी है।)

अंतिम निषेक × कांडकायाम = चरम फालि का द्रव्य सa १२×२१।४।४ / ७।२१।८० = [सa१२।२१।४।४ / ७।२१।८०]

इसमें कुछ चय अधिक हैं। उनके द्रव्य को किंचित् जानकर नहीं गिना।यहाँ [२१ ।४] इसका अपवर्तन करने पर ऐसा [सa१२।४ / ७।२०] चरमफालि का द्रव्य आता है। इसमें गुणश्रेणि करने के लिए अपकर्षण किया हुआ द्रव्य मिलाए। उसे कुछ जानकर गिना नहीं। उसे पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग [सa१२।४ / ७।२०।प / a] गुणश्रेणि आयाम में पूर्वोक्त प्रकार से असंख्यातगुणित क्रम से देवे ।

कांडक में से स्थिति घटाकर उसका द्रव्य नीचे के निषेकों में देने के लिए प्रतिसमय जितना द्रव्य ग्रहण किया जाता है उसे फालिद्रव्य कहते हैं और गुणश्रेणी करने के लिए सर्वस्थिति के द्रव्य का अपकर्षण करके ग्रहण किया जाता है उसे अपकृष्ट द्रव्य कहते हैं। उसमें कांडक की प्रथमादि फालिपतन

१) ज.ध. पु.१५ पृ.३२५-३२६

के समय अपकृष्टद्रव्य अधिक है और फालिद्रव्य कम है इसलिए अपकृष्ट द्रव्य की मुख्यता से देने का विधान कहा। परंतु अंतिम फालि में फालिद्रव्य अधिक है और अपकृष्ट द्रव्य कम है इसलिए फालिद्रव्य में अपकृष्ट द्रव्य साधिक करके द्रव्य देने का विधान कहा ।

शेष रहे बहुभाग द्रव्य को देने का विधान कहते हैं -

फालि के आयाम को अन्तरायाम का भाग देनेपर जो संख्यात प्रमाण आता है उससे शेष रहे बहुभाग द्रव्य में भाग देने पर एकखंड का प्रमाण आता है।

बहुभाग द्रव्य स a १२।४ प / ७।२०।प एक कम को न गिनकर पल्य के असंख्यातवें भाग का अपवर्तन करने पर

स a १२।४। / ७।२० इतना रहा। फालि का आयाम / अन्तरायाम = २१।४।४ / २१।४ = ४ संख्यात का का प्रमाण

शेष बहुभाग द्रव्य / उपर्युक्त संख्यात = एक खंड स a १२।४ / ७।२०।४ स a १२ / ७।२०

इस एक खंड द्रव्य में से पूर्व समयों में अन्तरायाम में दिया हुआ द्रव्य कम करके शेष एक खंड ग्रहण करके स a ।१२ – / ७।२० पृथक् स्थापन करे।

एक खंड के बिना शेष बहुभाग द्रव्य स a ।१२।३ / ७।२० इतना रहता है।

कांडक के नीचे शेष रही हुई द्वितीय स्थिति को अंतरायाम से भाग देकर जो प्रमाण आता है उसमें एक मिलाकर पूर्वोक्त शेष बहुभाग द्रव्य में भाग देकर जो एक भाग आता है उसे पूर्वोक्त एक खंड द्रव्य में मिलाकर जो लब्ध आता है उसे अंतरायाम में गोपुच्छाकाररूप से चयहीन क्रमसे देवें।

कांडक के नीचे शेष रही द्वितीय स्थिति / अंतरायाम   २१।४।४।४ / २१।४ = १६

१६ + १ = १७   शेष बहुभाग द्रव्य / १७ = स a ।१२।३ / ७।२०।१७   एक भाग द्रव्य

पूर्वोक्त एक खंड द्रव्य + शेष खंडों का एक भाग द्रव्य = अंतरायाम में देने योग्य द्रव्य

स a १२– / ७।२० + स a १२।३ / ७।२०।१७   समच्छेद करने पर

स a १२।१७ / ७।२०।१७ + स a १२।३ / ७।२०।१७ = **[स a १२।२० / ७।२०।१७]**   अंतरायाम में देयद्रव्य

बहुभाग द्रव्य में से इतना द्रव्य घटा करके शेष द्रव्य को कांडक के नीच शेष द्वितीय स्थिति में चयहीन क्रम से देना चाहिये।

एक खंड देनेपर शेष बहुभाग द्रव्य – अंतरायाम के शेष खंडों का देय द्रव्य = द्वितीय स्थिति में देयद्रव्य

स a ।१२।३ – स a ।१२।३ १७ का समच्छेद करने पर
७।२० ७।२०।१७

स a १२।३।१७ – स a ।१२।३ = समान संख्या निकाल कर शेष रहे १७ गुणकार में
७।२०।१७ ७।२०।१७ ऋणराशि का एक गुणकार घटाना।

स a १२।३।१६ ⟶ द्वितीय स्थिति में देने योग्य द्रव्य
७।२०।१७

इस प्रकार देने पर अंतरस्थिति के अंतिम निषेक में दिये द्रव्य से द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में दिया द्रव्य संख्यात गुणा हीन है।

अंतर स्थिति देयद्रव्य / अंतरायाम = अंतर की अंतिम निषेक में देयद्रव्य (यहाँ पर कुछ चय कम करना चाहिए इसको न गिनकर मध्यधन को अंतिम निषेक में देयद्रव्य कहा है।)

स a १२।२० = अंतर के अंतिम निषेक में देयद्रव्य
७।२०।१७।२੭।४

द्वितीय स्थिति देयद्रव्य / द्वितीय स्थिति = द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में देयद्रव्य

स a १२।३।१६ अपवर्तन करने पर स a १२।३
७।२०।१७।२੭।४।४।४ ७।२०।१७।२੭।४

इतना द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में देने योग्य द्रव्य है(यहाँ पर सर्वद्रव्य में गच्छ का भाग देने पर मध्यधन आता है और मध्यधन में एक कम गच्छ के अर्धप्रमाण चय मिलाने पर प्रथम निषेक आता है किन्तु सामान्य रूप से मध्यधन को ही प्रथम निषेक कहा है।)

अंतरस्थिति के अंतिम निषेक में २० का गुणकार है और द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में ३ का गुणकार है इस से अंतर स्थिति के अंतिम निषेक से द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में संख्यातगुणा हीनपणा जाना जाता है

प्रथम स्थितिकाण्डक की द्विचरमफालि के पतन तक प्रत्येक समय में अपकर्षित होकर दिया हुआ द्रव्य अपकर्षण भागहार से भाग देकर आया एक भाग प्रमाण ही है। इसलिए गुणश्रेणि को छोड़कर उपरिम अंतरस्थिति में निक्षिप्त हुआ द्रव्य एक गोपुच्छाकाररूप से अवस्थित जानना चाहिए। द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक से लेकर उपरिम सर्वस्थिति में निक्षिप्त हुआ द्रव्य एक गोपुच्छाकाररूप से होकर अंतरस्थिति में निक्षिप्त द्रव्य से असंख्यातगुणा प्राप्त होता है क्योंकि जबतक द्विचरमफालि का पतन

होता है तबतक प्रत्येक समय में अपकर्षित होकर अंतरस्थिति में निक्षिप्त होनेवाला द्रव्य द्वितीय स्थिति के समस्त द्रव्य का असंख्यातवाँ भाग ही है। ऐसा होकर भी उसी काल में अपकर्षित समस्त द्रव्य का असंख्यातवाँ भाग अथवा संख्यातवाँ भागप्रमाण ही है । इस कारण से अंतरस्थिति में और द्वितीय स्थिति में एक गोपुच्छ न होकर भिन्न- भिन्न गोपुच्छ हैं।

प्रथम स्थितिकाण्डक की अंतिम फालि का पतन होने पर दोनों की एक गोपुच्छ श्रेणि होती है। इसलिए प्रथम स्थितिकाण्डक की अंतिम फालि के द्रव्य का संख्यातवाँ भागप्रमाण द्रव्य अंतरस्थिति में उस समय निक्षिप्त होता है। उस अंतिम फालि के द्रव्य में संख्यात बहुभाग द्रव्य प्रथम स्थितिकाण्डक आयाम से न्यून द्वितीय स्थिति की अवयवस्थितियों में निक्षिप्त होता है जो उस समय के अंतिम फालि की एक-एक स्थितिसंबंधी द्रव्य का संख्यातवाँ भाग प्रमाण है। इतना द्रव्य एक-एक स्थितिविशेष में निक्षिप्त होता है, परन्तु अंतरस्थिति की प्रत्येक स्थिति में संख्यातगुणा प्रदेशपुंज निक्षिप्त होता है। अन्यथा दोनों की एक गोपुच्छरूप से उत्पत्ति नहीं हो सकती इसलिए अंतर की अंतिम स्थिति में निक्षिप्त हुए द्रव्य से द्वितीय स्थिति की आदि स्थिति में निक्षिप्त द्रव्य संख्यातगुणा हीन है।
संख्यातगुणित न्यूनता का कारण दूसरी अपेक्षा से स्पष्ट करते है-

अंतरस्थिति के प्रमाण से प्रथम स्थितिकांडक के प्रमाण को भाग देने पर संख्यात प्रमाण प्राप्त होता है। उसका विरलन करके प्रत्येक अंक के प्रति प्रथम स्थितिकांडकायाम को समानखंड करके देयरूप से देने पर एक-एक अंक के प्रति अंतरायाम का प्रमाण प्राप्त होता है। पुनः यहाँ एक अंक के प्रति प्राप्त प्रमाण को ग्रहण करके तत्कालीन गुणश्रेणि के ऊपर अंतर स्थिति में स्थापित करने पर अंतरस्थिति संबंधी प्रदेशपुंज और द्वितीयस्थिति संबंधी प्रदेशपुंज इन दोनों में स्तोकरूप से एक गोपुच्छ होता है।

पुनः द्वितीय अंक के प्रति प्राप्त एक खण्ड को ग्रहण करके उसकी संख्यात फालि कराए । वह कितनी है? ऐसा विचार करने पर कहते हैं -

अंतरस्थिति के आयाम से गुणश्रेणि छोड़कर समस्त स्थिति को भाग देने पर जो प्रमाण आता हैं उतनी फालियाँ करना चाहिए। उसमें एक फालि ग्रहण करके अंतरस्थिति में पहले स्थापित खंड के निकट स्थापित करे और शेष फालियों को क्रम से द्वितीय स्थिति में स्थापित करे। इसप्रकार शेष अंक के प्रति प्राप्त खण्डों को भी ग्रहण करके आगमअविरोधपूर्वक स्थापित करें । इसप्रकार करके प्रथम अन्तरसंबंधी अंतिमस्थिति में निक्षिप्त द्रव्य से द्वितीय स्थिति की आदिस्थिति में निक्षिप्तद्रव्य संख्यातगुणा हीन होता है, ऐसा निश्चय करें।

इसप्रकार प्रथमकांडककाल पूर्ण होने पर अंतरायाम पूर्ण भरा अर्थात् जो मध्य के निषेकों का अभाव हुआ था उनका सद्भाव हुआ। अंतरपूर्ण होने से गुणश्रेणि-आयाम के ऊपर सभी निषेकों में एक गोपुच्छ हुआ। इसप्रकार सूक्ष्मसांपरायकाल के प्रथम समय से प्रथम कांडक की अंतिम फालि पतन तक

तीन स्थानों में द्रव्य देने का विधान समान कहा है।

सूक्ष्मसांपराय के प्रथमकांडक-अंतिमफालि-पतनसमय में दृश्यमान द्रव्य की रचना

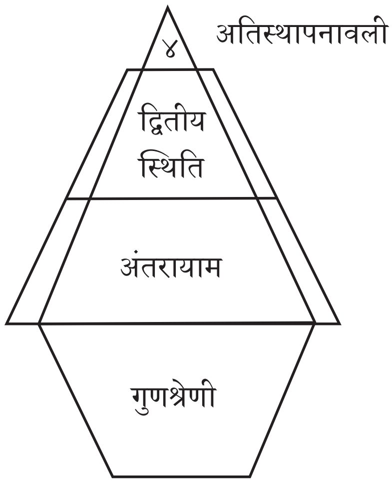

अब द्वितीयादिकांडकों में देयद्रव्य का विधान कहते हैं-

अंतरपढमठिदि त्ति य असंखगुणिदक्कमेण दिज्जदि हु।
हीणं तु मोहविदियट्ठिदिखंडयदो दुघादो त्ति ।।५९०।।

अन्तरप्रथमस्थितिरिति चासङ्ख्यगुणितक्रमेण दीयते हि ।
हीनं तु मोहद्वितीयस्थितिकाण्डकतो द्विघात इति ।।५९०।।

अन्वयार्थ- (मोहविदियट्ठिदिखंडयदो दुघादो त्ति) मोहनीय के द्वितीय स्थितिकांडक से द्विचरम कांडकघात तक **(अंतरपढमठिदित्ति य)** अंतरायाम की प्रथम स्थिति तक **(असंखगुणिदक्कमेण)** असंख्यातगुणित क्रम से **(दिज्जदि हु)** द्रव्य दिया जाता है उसके अनन्तर उसके ऊपर **(हीणं तु)** एक-एक चयरूप हीन द्रव्य दिया जाता है।

विशेषार्थ - मोह के द्वितीय स्थितिकांडकघात से द्विचरम कांडकघात तक कांडकद्वारा ग्रहण की गयी स्थिति के नीचे और उदयावलि के ऊपर जो निषेक हैं उनके द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर एक भागमात्र द्रव्य का $\frac{\text{स}\,a\,१२}{७\ \text{ओ}}$ अपकर्षण करता है। उस अपकृष्टद्रव्य को पल्य के असंख्यातवे भाग से भाग देकर एक भाग गुणश्रेणि आयाम में देता है।उसमें से प्रथम उदयनिषेक में

सबसे अल्प देता है। उसके ऊपर द्वितीयादि निषेकों में गुणश्रेणिशीर्ष तक असंख्यातगुणित क्रमसहित देता है। शेष बहुभाग द्रव्य को गुणश्रेणि के ऊपर अंतर्मुहूर्त मात्र स्थिति में देता हैं। बहुभाग द्रव्य को अंतर्मुहूर्त स्थितिप्रमाण गच्छ से भाग देने पर मध्यम धन आता है। उसमें एक कम गच्छे के अर्धप्रमाण चय मिलाकर जो प्रमाण आता है उतना द्रव्य गुणश्रेणिशीर्ष के उपरिम निषेक में देता है। यह गुणश्रेणिशीर्ष में दिये हुए द्रव्य से असंख्यातगुणा है। इसप्रकार अंतर के प्रथमनिषेक तक असंख्यातगुणा क्रम से द्रव्य देता है। उसके ऊपर क्रम से एक-एक चय हीन द्रव्य देता है। अतिस्थापनावलि प्राप्त होने तक ऐसा क्रम जानना चाहिए। यहाँ प्रथम स्थितिकांडक काल के अंत समय में ही अंतर पूर्ण हुआ इसलिए अंतरायाम में द्रव्य देने का विधान अलग नहीं कहा है।

सर्व स्थितिकांडकों में अंतफालि तक जो अपकृष्ट द्रव्य है वह सर्वद्रव्य का असंख्यातवाँ भागमात्र जानना चाहिए। अंतफालि के पतन के समय जो फालिद्रव्य है वह सर्वद्रव्य का संख्यातवाँ भाग जानना चाहिए।

द्वितीयादि कांडक से द्विचरमकांडक तक दीयमान द्रव्य का चित्र

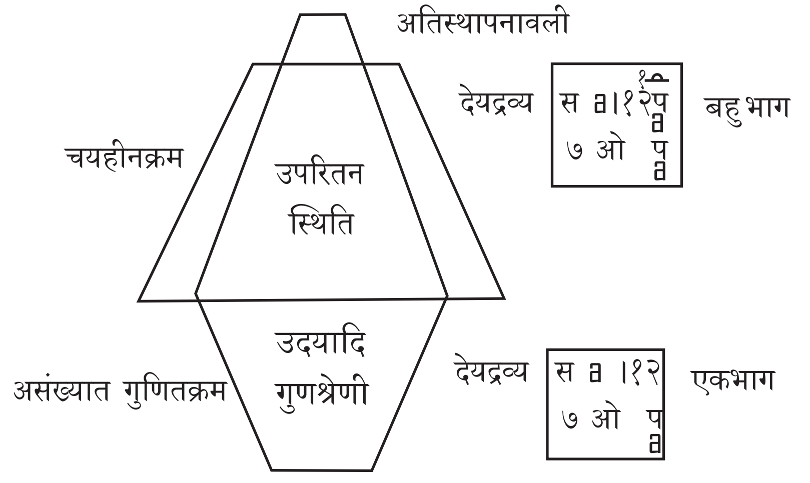

अब दृश्यमान द्रव्य का क्रम कहते हैं-

अंतरपढमठिदित्ति य असंखगुणिदक्कमेण दिस्सदि हु।
हीणं तु मोहविदियट्ठिदिखंडयदो दुघादो त्ति [1]।।५९१।।

१) क. पा. सुत्त पृ. ८७१ सू. १३२६-१३२७/ध. पु.६ पृ. ४०६

अन्तरप्रथमस्थितिरिति चासङ्ख्यगुणितक्रमेण दृश्यते।
हीनं तु मोहद्वितीयस्थितिकाण्डकतो द्विघातान्तम्।।५९१।।

अन्वयार्थ - (मोहविदियट्ठिदिखंडयदो दुघादो त्ति) मोहनीय के द्वितीय स्थितिकांडक घात से द्विचरम कांडकघात तक द्रव्य **(अंतरपढमठिदित्ति य)**अंतरायाम की प्रथम स्थिति तक **(असंखगुणिदक्कमेण)** क्रम से असंख्यातगुणित **(दिस्सदि हु)** दिखता है और उसके ऊपर **(हीणं तु)** क्रम से हीन- हीन दिखता है।

विशेषार्थ - मोहनीय का प्रथम स्थितिकांडक निर्लेपित होने पर द्वितीय स्थितिकांडकघात से द्विचरम कांडकघात तक दृश्यमान द्रव्य गुणश्रेणि के प्रथम निषेक में अल्प है। उससे गुणश्रेणीशीर्ष के ऊपर अंतरायाम की प्रथम स्थिति तक असंख्यातगुणित क्रमसहित है और उसके ऊपर सर्वत्र अंतिम निषेक तक विशेष घटते क्रमसहित दृश्यमान द्रव्य है क्योंकि प्रथम कांडक की चरम फालि के पतनसमय में गुणश्रेणी के ऊपर सर्वस्थिति का एक गोपुच्छ हुआ है।[1]

द्वितीय स्थितिकांडक के प्रथमादि समयों में गुणश्रेणिशीर्ष का अल्पबहुत्व कहते हैं-

पढमगुणसेढिसीसं पुव्विल्लादो असंखसंगुणियं।
उवरिमसमये दिस्सं विसेस-अहियं हवे सीसे।।५९२।।

प्रथमगुणश्रेणीशीर्षं पूर्वस्मादसङ्ख्यसंगुणितम्।
उपरिमसमये दृश्यं विशेषाधिकं भवेत् शीर्षे।।५९२।।

अन्वयार्थ - (पढमगुणसेढिसीसं) द्वितीय स्थितिकांडक के प्रथम समय में गुणश्रेणीशीर्ष **(पुव्विलादो)** पूर्वसमय के गुणश्रेणिशीर्ष से **(असंखसंगुणियं)** असंख्यातगुणित है, परन्तु **(उपरिमसमये)** द्वितीयादि समयों में **(सीसे दिस्सं)** गुणश्रेणिशीर्ष में दृश्यद्रव्य पूर्व गुणश्रेणिशीर्ष से **(विसेसअहियं)** विशेष अधिक **(हवे)** है।

विशेषार्थ - द्वितीय स्थितिकांडक के समय अपकर्षित करके ग्रहण किया गया सर्वद्रव्य भी मिलकर एकस्थिति के द्रव्य को पल्योपम के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर जो एक भाग आता है उतना है। वह द्रव्य मोहनीय कर्म के सर्व सत्त्वद्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर जो प्रमाण आता है उतना है। पुन: उसका भी असंख्यातवा भागप्रमाण द्रव्य को गुणश्रेणि में देता हैं और शेष असंख्यात बहुभागद्रव्य को गुणश्रेणि के उपरिम सर्व स्थितियों में देता है इसलिए पूर्व गुणश्रेणिशीर्ष से इस

१) ज.ध. पु.१५ पृ.३२६

समय में गुणश्रेणिशीर्ष असंख्यातगुणा नहीं दिखता, परन्तु विशेष अधिक है ऐसा निश्चय करें। लब्धिसार प्रथम भाग गाथा १३५ और १३६ के समान यहाँ पर भी स्पष्टीकरण जानना।यहाँ अवस्थित गुणश्रेणिआयाम होने से प्रत्येक समय में ऊपर-ऊपर का निषेक गुणश्रेणिशीर्ष होता जाता है।[१]

सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान के प्रथम समय में मोह का गुणश्रेणि-आयाम, अन्तरायाम आदि का अल्पबहुत्व -

सुहुमद्धादो अहिया गुणसेढी अंतरं तु तत्तो दु।
पढमे खंडं पढमे संतो मोहस्स संखगुणिदकमा[२] ।।५९३।।

सूक्ष्माद्धातोऽधिका गुणश्रेण्यन्तरं तु ततस्तु।
प्रथमे खण्डं प्रथमे सत्त्वं मोहस्य सङ्ख्यगुणितक्रमम् ।।५९३।।

अन्वयार्थ - (सुहुमद्धादो) सूक्ष्मसांपरायकाल से **(गुणसेढी)** गुणश्रेणि **(अहियो)** अधिक है।**(तत्तो)** उससे **(अंतरं)** अंतरायाम, **(मोहस्स)** मोहनीय का **(पढमे खंडं)** प्रथम स्थितिकांडकायाम **(पढमो संतो)** प्रथम समय का मोहनीय का स्थितिसत्त्व **(संखगुणिदकमा)** क्रम से संख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ - सूक्ष्मसांपराय का काल अंतर्मुहूर्त है उससे उसका संख्यातवाँ भाग अधिक सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में मोहनीय का गुणश्रेणि-आयाम है।उससे अंतरायाम संख्यातगुणा है। उससे सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में मोहनीयकर्म का प्रथम स्थितिकांडकायाम संख्यातगुणा है। उससे सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान के प्रथम समय में मोहनीय का स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है। सर्वत्र गुणकार उसके योग्य संख्यात है।[३]

द्वितीयादि काण्डकों के काल में गुणश्रेणि के ऊपर गोपुच्छाकार का निर्देश करते हैं-

एदेणप्पाबहुगविधाणेण विदीयखंडयादीसु।
गुणसेढिमुज्झियेया गोपुच्छा होदि सुहुमम्हि[४] ।।५९४।।

एतेनाल्पबहुकविधानेन द्वितीयकाण्डकादिषु ।
गुणश्रेणिमुज्झित्वैकं गोपुच्छं भवति सूक्ष्मे ।।५९४।।

१) ज.ध. पु.१३ पृ. ६८ २) क. पा. सुत्त पृ. ८७१ सू. १३३०-१३३५
३) ज.ध. पु. १६ पृ.३-४ ४) क. पा. सुत्त पृ. ८७१ सू. १३२८/ध. पु. ६ पृ.४०५

अन्वयार्थ - (एदेणप्पाबहुगविधाणेण) इस अल्पबहुत्व विधान से **(सुहुमम्हि)** सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में **(विदियखंडयादिसु)** द्वितीय स्थितिकाण्डकादि काल में **(गुणसेढिमुज्झिय)** गुणश्रेणि छोड़कर उपरिम सर्वस्थिति का **(एया गोपुच्छा)** एक गोपुच्छ **(होदि)** होता है ।

विशेषार्थ - यहाँ अंतरायाम से प्रथम स्थितिकांडकायाम संख्यातगुणा कहा है इसलिए प्रथम स्थितिकांडक की अंतिम फालि के द्रव्य में से अंतरायाम में देने योग्य गोपुच्छरूप द्रव्य को अंतरायाम में देकर द्वितीय स्थिति और अंतरायाम का एक गोपुच्छ किया। यदि प्रथम स्थितिकाण्डकायाम से अंतरायाम बड़ा होता तो वहाँ अंतरायाम नहीं भरा जाता तथा अंतरस्थिति और द्वितीय स्थिति में एक गोपुच्छ नहीं होता। यहाँ अन्तरायाम से प्रथम स्थितिकाण्डकायम बड़ा कहा है। उससे अंतरायाम और द्वितीय स्थिति का एक गोपुच्छ प्रथम स्थितिकांडक की अंतिम फालिपतन के समय ही होगा जहाँ निषेकरचना चयहीन क्रम से होती है वहाँ गोपुच्छ ऐसी संज्ञा है।[1]

अधस्तन अनुदीर्ण, उपरिम अनुदीर्ण और मध्यमउदीर्ण कृष्टियों का अल्पबहुत्व कहते हैं-

सुहुमाणं किट्टीणं हेट्ठा अणुदिण्णगा हु थोवाओ।
उवरिं तु विसेसहिया, मज्झे उदया असंखगुणा ।।५९५।।

सूक्ष्माणां कृष्टीनामधस्तना अनुदीर्णका हि स्तोकाः ।
उपरि तु विशेषाधिका मध्ये उदयाऽसङ्खगुणाः ।।५९५।।

अन्वयार्थ - (सुहुमाणं किट्टीणं) सूक्ष्मकृष्टियों की **(हेट्ठाअणुदिण्णगां हु)** अधस्तन अनुदीर्ण कृष्टियाँ **(थोवाओ)** थोड़ी हैं। **(उवरिं तु)** उपरिम अनुदीर्ण कृष्टियाँ **(विसेसहिया)** विशेष अधिक हैं। **(मज्झे)** मध्य की **(उदया)** उदयरूप सूक्ष्मकृष्टियाँ **(असंखगुणा)** असंख्यातगुणित हैं।

विशेषार्थ - प्रथम समयवर्ती सूक्ष्मसांपराय क्षपक को सूक्ष्मकृष्टियों में से असंख्यात बहुभाग कृष्टियाँ उदय में आती हैं। ये उदयरूप कृष्टियाँ उपरिम और अधस्तन असंख्यातवें भाग को छोड़कर मध्य की बहुभाग प्रमाण हैं। अधस्तन अनुदीर्णकृष्टियाँ अल्प हैं। उससे उपरिम अनुदीर्ण सूक्ष्मकृष्टियाँ विशेष अधिक हैं। मध्य की उदीर्यमाण कृष्टियाँ असंख्यातगुणी हैं। सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में सर्व सूक्ष्मकृष्टियों का प्रमाण सूक्ष्मकृष्टिकरण के प्रथम समय में की गई सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाण में कुछ अधिक करने पर [। ४ / ख] आता है।

१) ज.ध. पु. १६ पृ. ४/११

उसे पल्योपम के असंख्यातवें भाग से भाग देकर बहुभागमात्र [४ प a / ख a प a] मध्यमकृष्टियाँ उदयरूप हैं। एकभाग को अंकसंदृष्टि की अपेक्षा से पाँच का भाग देकर दो भागमात्र [४ २ / ख प a ५] नीचे की अनुदीर्णकृष्टियों का प्रमाण है और तीन भागमात्र [४ ३ / ख प a ५] उपरिम अनुदयरूप कृष्टियों का प्रमाण है। यहाँ जो अनुदयरूप कृष्टियाँ हैं वे मध्य की उदय कृष्टिरूप से परिणमित होकर उदय में आती हैं ऐसा जानना चाहिए।

द्वितीयादि समयों में भी प्रथम समय के समान ही कथन करे। उसमें कुछ विशेषता नहीं है; परन्तु द्वितीयादि समयों में अधस्तन कुछ नवीन उदयरूप होती हैं और उपरिम कुछ कृष्टियाँ नवीन अनुदयरूप होती हैं। उनका प्रमाण क्रम से अधस्तन और उपरिम अनुदयकृष्टियों के असंख्यातवें भागमात्र है। मध्य की उदयकृष्टियाँ क्रम से कुछ कम होती हैं। यह विधि सूक्ष्मसांपराय के अंत समयतक जानना चाहिए।

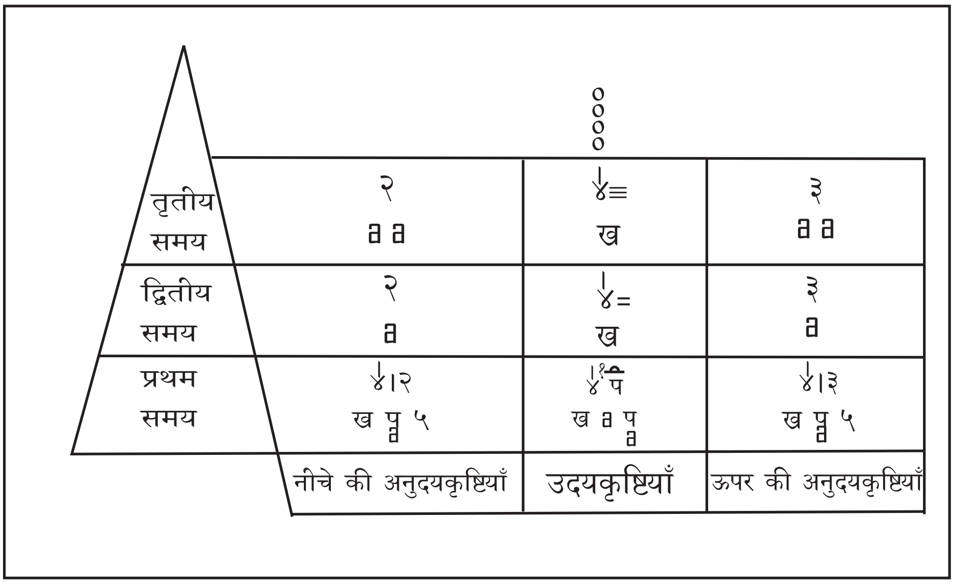

यहाँ क्रमहीनरूप प्रथमादि समयों में उदय आने योग्य निषकों की ऊर्ध्वरचना की है। वहाँ प्रथमादि निषेकों में अधस्तन अनुदय, मध्य की उदय और उपरिम अनुदयकृष्टियों की तिरछी रचना की गयी है और उनका प्रमाण लिखा है। द्वितीयादि समयों में अधस्तन अनुदयकृष्टियों में से असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियाँ उदय में आने लगती है उसका प्रमाण दिखाने के लिए प्रथम समय की अनुदयकृष्टियों के दो गुणकार को एक, दो बार असंख्यात का भाग दिया और उपरिम नवीन अनुदय कृष्टियों का प्रमाण दिखाने लिए तीन गुणकार को एक, दो इत्यादि बार असंख्यात का भाग दिया है। द्वितीयादि समयों में उदयकृष्टियों का प्रमाण अल्प दिखाने के लिए दो, तीन आदि बार कुछ कम की संदृष्टि की गई है ।

सूक्ष्मसांपराय क्षपक के अन्त में होनेवाली गुणश्रेणि का निर्देश करते हैं-

सुहमे संखसहस्से खंडे तीदेऽवसाणखंडेण ।
आगायदि गुणसेढी, आगादो संखभागे च ।।५९६ ।।

सूक्ष्मे सङ्ख्यसहस्रे खण्डेऽतीतेऽवसानखण्डेन ।
आगाप्यते गुणश्रेणी अग्रतः सङ्ख्यभागे च ।।५९६ ।।

अन्वयार्थ - **(सुहुमे)** सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में **(संखसहस्से खंडे तीदे)** संख्यात हजार स्थितिकांडक व्यतीत होने पर **(अवसाणखंडेण)** अंतिम स्थितिकांडक द्वारा **(गुणसेढी आगादो)** पूर्व गुणश्रेणि आयाम के अग्र से **(संखभागे च)** संख्यातवें भाग को **(आगायदि)** ग्रहण करता है ।

विशेषार्थ - पूर्वोक्त क्रम से संख्यात हजार स्थितिकांडकों द्वारा सूक्ष्मसांपराय का संख्यात बहुभागकाल व्यतीत होकर संख्यातवाँ भाग शेष रहता है तब अंतिम स्थितिकांडक ग्रहण करता है। उस अंतिम कांडक द्वारा प्रथम समय में जो गुणश्रेणिनिक्षेप सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान के काल से विशेष अधिक होता है उस संख्यातवे भाग प्रमाण अग्रस्थितियों को घात करने के लिए ग्रहण करता हैं क्योंकि उनके ग्रहण बिना गुणश्रेणिशीर्ष को कांडकरूप से ग्रहण करना शक्य नहीं है। तात्पर्य यह है कि गुणश्रेणिशीर्ष और उससे संख्यातगुणी उपरिम स्थितियों को अंतिम स्थितिकाण्डक में ग्रहण करता है अर्थात् सूक्ष्मसांपराय काल प्रमाण स्थितियों को छोड़कर उसकी उपरिम सर्व स्थितियों को काण्डकरूप से ग्रहण करता है।[1]

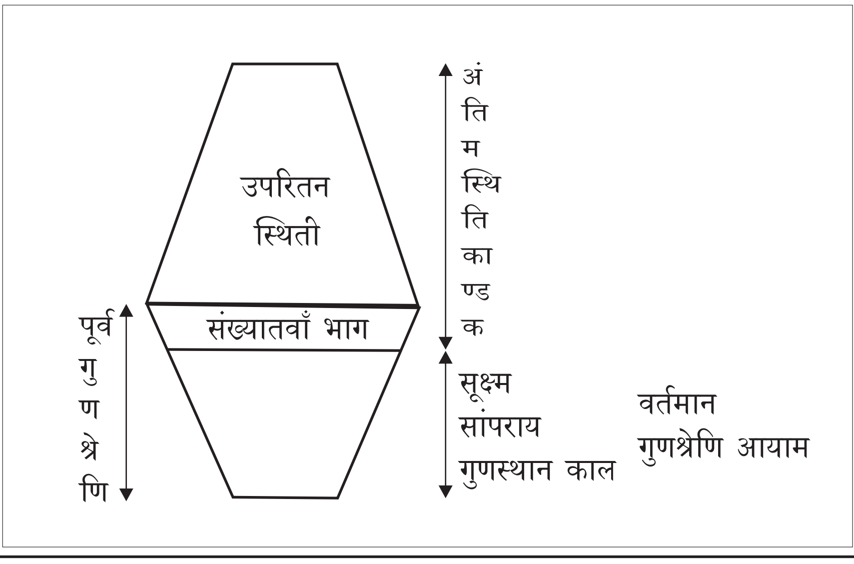

१) क. पा. सुत्त पृ. ८७२ सू. १३४४/ध. पु.६ पृ. ४०६/ ज.ध. पु.१६ पृ. १०-१२

इससे पूर्व में सूक्ष्मसांपराय काल से कुछ अधिक अवस्थित गुणश्रेणि आयाम था। अब जितना सूक्ष्मसांपराय का काल शेष रहता है उतना गुणश्रेणि आयाम जानना।

अब दीयमान और दृश्यमान द्रव्य का निर्देश करते हैं

एत्तो सुहुमंतोत्ति य दिज्जस्स य दिस्समाणगस्स कमो ।
सम्मत्तचरिमखंडे, तक्कदिकज्जेवि उत्तं च[1] ।।५९७।।

इतः सूक्ष्मान्त इति च देयस्य च दृश्यमानस्य क्रमः ।
सम्यक्त्वचरमखण्डे तत्कृतकार्येऽप्युक्तमिव ।।५९७।।

अन्वयार्थ - (एत्तो सुहुमंतोत्ति य) यहाँ से लेकर सूक्ष्मसांपराय के अन्त समयतक **(दिज्जस्स य)** देयद्रव्य और **(दिस्समाणगस्स)** दृश्यमान द्रव्य का **(कमो)** क्रम **(सम्मतचरिमखंडे)** सम्यक्त्व के चरम स्थितिकाण्डक में और **(तक्कदिजकज्जेवि)** उसके कृतकृत्य अवस्था में **(उत्तं च)** कहे गये अनुसार जानना चाहिए ।

विशेषार्थ - यहाँ मोहनीय कर्म की सर्व स्थिति में सूक्ष्मसांपराय का जितना काल शेष है उतने काल प्रमाण स्थिति बिना शेष सर्व स्थिति का घात अंतिमकांडक द्वारा करता है। उसमें से इस कांडक की स्थिति के निषेकों के द्रव्य में से जो द्रव्य कांडकोत्करण- काल के प्रथम समय में ग्रहण करता है उसे प्रथम फालि कहते हैं। उसे देने का विधान कहते हैं-

द्रव्य देने के लिए तीन पर्व हैं - १) सूक्ष्मसांपराय कालप्रमाण वर्तमान गुणश्रेणि तक २) प्रथम समय के गुणश्रेणिशीर्ष तक ३) अतिस्थापनावलि के नीचे शेष स्थिति तक ।

सूक्ष्मसांपराय के अंतिम कांडक का द्रव्य $\frac{\text{स a।१२}}{\text{७}}$ इतना हैं। इसमें कुछ कम है किन्तु उसे गिना नहीं। इसे अपकर्षण भागहार का भाग देकर $\frac{\text{स a।१२}}{\text{७ ओ}}$ प्रथम फालि का द्रव्य आता है । इसे पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर $\frac{\text{स a १२}\ \frac{\text{प}}{a}^{१-}}{\text{७ ओ}\ \frac{\text{प}}{a}}$ बहुभागमात्र द्रव्य को सूक्ष्मसांपराय के काल प्रमाण वर्तमान गुणश्रेणि-आयामरूप प्रथम पर्व में देना चाहिए ।वहाँ उसके उदयरूप प्रथम निषेक में अल्प, उससे द्वितीयादि निषेकों में असंख्यातगुणा क्रम सहित द्रव्य देता है ।वहाँ सर्व गुणकार-शलाकाओं का जोड़ करके उसका भाग उस द्रव्य में देकर आये हुए एक भाग को अपनी-अपनी गुणकार शलाका से गुणा करने पर गुणश्रेणि के निषेकों में द्रव्य देने का प्रमाण आता है। यहाँ सूक्ष्मसांपराय के अंतसमय को गुणश्रेणिशीर्ष कहा है। शेष रहे एक भाग द्रव्य को $\frac{\text{स a १२}}{\text{७ ओ}\ \frac{\text{प}}{a}}$ पुन: पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर बहुभागमात्र द्रव्य को $\frac{\text{स a।१२}\ \frac{\text{प}}{a}^{१-}}{\text{७।ओ।}\frac{\text{प}}{a}\ \frac{\text{प}}{a}}$ उस गुणश्रेणिशीर्ष के ऊपर पूर्व में जो गुणश्रेणि आयाम था उसके शीर्ष तक देता है।

---

१) यहाँ 'उत्तं व' पाठ होना चाहिये ऐसा लगता है।

तक देता है। यही द्वितीय पर्व है। वहाँ उस द्रव्य को द्वितीय पर्वमात्र गच्छ का भाग देकर आये हुए एक भाग में एक कम गच्छ के अर्ध चय मिलाकर वर्तमान गुणश्रेणिशीर्ष के अनन्तर निषेक में देता है। यह द्रव्य गुणश्रेणि शीर्ष में दिये हुए द्रव्य से असंख्यातगुणा हीन है। उसके उपरिम द्वितीयादि निषेकों में चय हीन क्रम से द्रव्य देता है।

शेष रहे एकभाग मात्र द्रव्य को (स a १२ / ७।ओ प प / a a) द्वितीय पर्व के ऊपर जो सर्व स्थिति है उसके अंत में अतिस्थापनावलि छोड़कर सर्व निषेकरूप तृतीयपर्व में देता है। वहाँ उस द्रव्य को तृतीय पर्वमात्र गच्छ का भाग देकर आये एकभाग में एक कम गच्छ के अर्धप्रमाण चय मिलाकर जो प्रमाण आता है उतना द्रव्य पूर्व गुणश्रेणि के अनन्तरवर्ती निषेक में देता है। यह द्रव्य पूर्व गुणश्रेणिशीर्ष में दिये हुए द्रव्य से असंख्यातगुणा हीन है। उसके ऊपर चय हीन क्रम से द्रव्य देता है। इसप्रकार अंतिमकांडक की प्रथम फालिपतन के समय द्रव्य देने का विधान कहा है। ऐसा ही विधान चरमकाण्डक की द्विचरम फालिपतन तक जानना चाहिए।

चरमकाण्डक की द्विचरमफालि पतन तक देयद्रव्य का क्रम

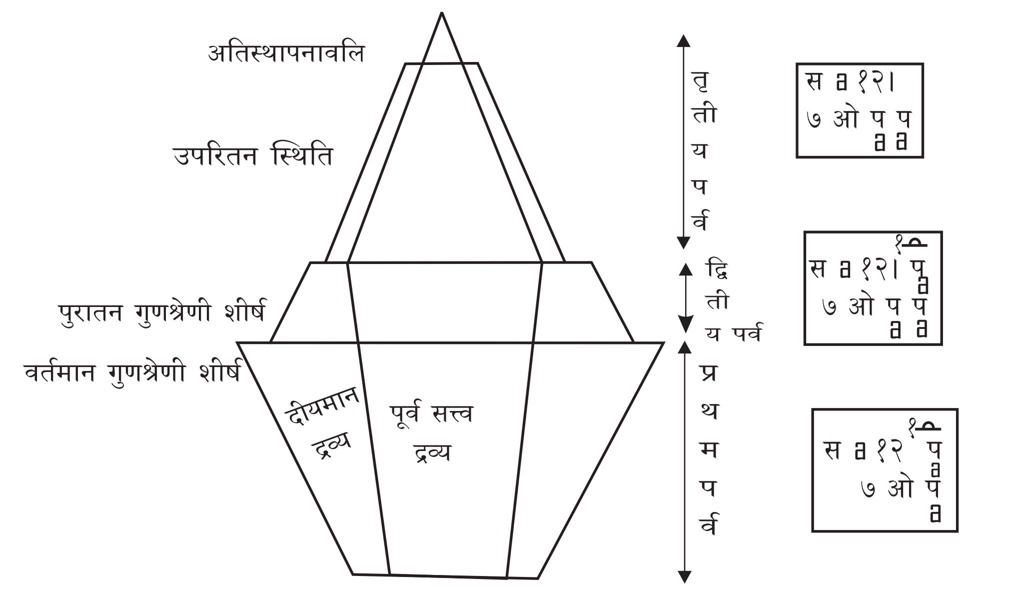

अब अंतिम कांडक की अंतिम फालि का द्रव्य देने का विधान कहते हैं- कुछ कम डेढ़गुणहानिगुणित समयप्रबद्ध प्रमाण अंतिम फालि का द्रव्य है (स a।१२ / ७) इसे असंख्यातगुणे पल्योपम के वर्गमूल प्रमाण पल्योपम के असंख्यातवें भाग का भाग देकर जो एक भाग आता है उसे वर्तमान उदय समय से लेकर सूक्ष्मसांपराय के द्विचरम समयतक जो प्रथम पर्व है उसमें देता है वहाँ प्रथम

निषेक में अल्प और द्वितीयादि निषेकों में असंख्यातगुणे क्रमसहित द्रव्य देता है। सर्व गुणकार शलाकाओं का जोड़ करके उसका भाग देय द्रव्य को देकर अपनी-अपनी गुणकार शलाका से गुणा करने पर प्रत्येक निषेक में देयद्रव्य का प्रमाण आता है। शेष बहुभाग द्रव्य को सूक्ष्मसांपराय के अंत समयसंबंधी निषेकरूप द्वितीय पर्व में देता है।यह द्रव्य द्विचरम समयसंबंधी निषेक में दिये हुए द्रव्य से असंख्यात पल्यके प्रथम वर्गमूल से गुणित जानना चाहिए। इसके समान दृश्यमान द्रव्य का क्रम भी जानना चाहिए।

चरमकाण्डक के अंतफालि का देयक्रम

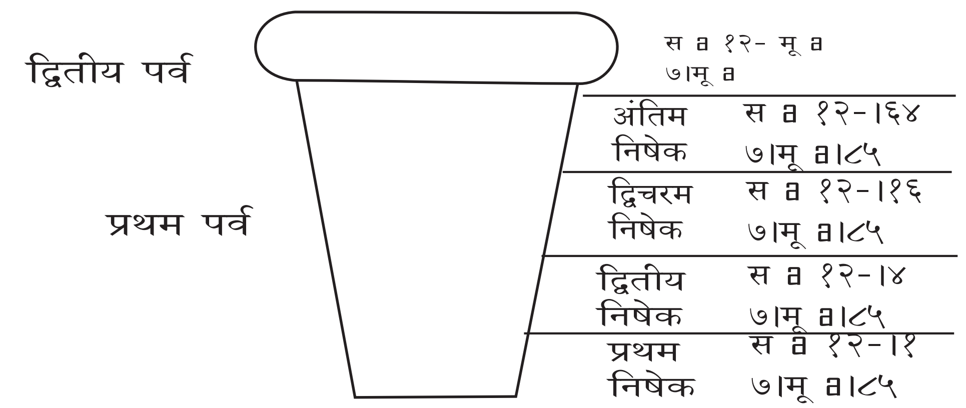

यहाँ प्रथमपर्व की असंख्यातगुणित अधिक क्रमरूप संदृष्टि की है। उसके आगे प्रथमादि निषेकों के देयद्रव्य लिखे है। उसके ऊपर द्वितीय पर्वरूप एक ही निषेक लिखा है और उसके आगे उसका द्रव्य लिखा है। मोहनीय के सर्व द्रव्य में पल्य के असंख्यात प्रथम वर्गमूल से भाग दिया और एक कम उसी संख्या से गुणा किया है। वह बहुभाग प्रमाण है।

चरमकाण्डक के अनन्तर काण्डकघात के अभाव का प्रतिपादन करके मोह की स्थितिसत्त्व का निर्देश करते हैं-

उक्किण्णे अवसाणे खंडे मोहस्स णत्थि ठिदिघादो ।
ठिदिसत्तं मोहस्स य सुहुमद्धासेसपरिमाणं [१] ।।५९८।।

उत्कीर्णेऽवसाने खण्डे मोहस्य नास्ति स्थितिघातः ।
स्थितिसत्त्वं मोहस्य च सूक्ष्माद्धाशेषपरिमाणम् ।।५९८।।

१) क. पा. सुत्त पृ. ८७२ सू. १३४५-१३४६/ज. ध. पु. १६ पृ. १२/२६

अन्वयार्थ - (अवसाणे खंडे) अंतिम स्थितिकाण्डक का **(उक्किण्णे)** उत्कीर्ण होने पर **(मोहस्स)** मोहनीय का **(ठिदिघादो)** स्थितिघात **(णत्थि)** नहीं होता है।**(य)** और **(मोहस्स)** मोहनीय का **(ठिदिसत्तं)** स्थितिसत्त्व **(सुहुमद्धासेसपरिमाणं)** सूक्ष्मसांपराय का जितना काल शेष रहा है उतना प्रमाण है ।

विशेषार्थ - इसप्रकार मोहराजा के मस्तकसमान लोभ के अंतिम स्थितिकांडक का घात होने पर मोह का स्थितिघात नहीं होता है । अब सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान का शेष कालप्रमाण मोहनीय का स्थितिसत्त्व रहता है। प्रत्येक समय में सूक्ष्मकृष्टिरूप अनुभाग की अपवर्तना होती है। उसके एक- एक निषेक को एक-एक समय में भोगते हुए सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय को प्राप्त होता है।
सूक्ष्म सांपराय के अंतिम समय में कर्म का स्थितिबंध कहते हैं-

णामदुगे वेदणीये अडवारमुहुत्तयं तिघादीणं ।
अंतोमुहत्तमेत्तं ठिदिबंधो चरिमसुहमम्हि [१] ।।५९९ ।।

नामद्विके वेदनीयेऽष्टद्वादशमुहूर्तकं त्रिघातिनाम् ।
अन्तर्मुहूर्तमात्रं स्थितिबन्धश्चरमसूक्ष्मे ।।५९९ ।।

अन्वयार्थ - (चरिमसुहमम्हि) सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में **(णामदुगे)** नाम और गोत्र का **(ठिदिबंधो)** स्थितिबंध **(अडवारमुहुत्तयं)** आठ मुहूर्त **(वेदणीय)** वेदनीय का **(वार मुहुत्तयं)** बारह मुहूर्त **(तिघादीणं)** तीन घाति का **(अंतोमुहुत्तमेत्तं)** अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है ।

विशेषार्थ - क्षपकश्रेणि में दसवें गुणस्थान के अंतिम समय में नाम, गोत्र और वेदनीय का सबसे जघन्य स्थितिबंध होता है क्योंकि वहाँ सबसे अधिक परिणामों की विशुद्धि होती है।[२]

सूक्ष्मसांपराय के चरम समय में कर्मों का स्थितिसत्त्व कहते हैं-

तिण्हं घादीणं ठिदिसंतो अंतोमुहुत्तमेत्तं तु ।
तिण्हमघादीणं ठिदिसंतमसंखेज्जवस्साणि [३] ।।६०० ।।

त्रयाणां घातिनां स्थितिसत्त्वमन्तर्मुहूर्तमात्रं तु ।
त्रयाणामघातिनां स्थितिसत्त्वमसङ्ख्येयवर्षाः ।।६०० ।।

---

१) क. पा. सुत्त पृ. ८९४ सू.१५५७-५८/ध. पु.६ पृ. ३९४ २) ज.ध. पु.१६ पृ.११८
३) क. पा. सुत्त पृ. ८९४ सू.१५५९-१५६०/ध. पु.६ पृ. ४०७

अन्वयार्थ - सूक्ष्मसांपराय के अंतिमसमय में **(तिण्हं घादीणं)** तीन घातिकर्मों का **(ठिदिसंतो)** स्थितिसत्त्व **(अंतोमुहुत्तमेतं तु)** अन्तर्मुहूर्तमात्र है और **(तिण्हं घादीणं)** तीन अघातिकर्मों का स्थितिसत्त्व **(असंखेज्जवस्साणि)** असंख्यात वर्षप्रमाण है।

विशेषार्थ - घातिकर्मोंका स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है वह क्षीणकषाय गुणस्थान के काल से संख्यातगुणा है। मोहनीयकर्म का स्थितसत्त्व नाश के सम्मुख है । पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से यद्यपि इस समय में विद्यमान है तथापि उत्पादानुच्छेद की अपेक्षा से नष्ट ही हुआ है। इसप्रकार क्षय के सन्मुख लोभ की सूक्ष्मकृष्टि का अनुभव करता है। इसप्रकार सूक्ष्मसांपराय चारित्र से युक्त सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती जीव जानना चाहिए।

।।इति कृष्टिवेदनाधिकारः।।

क्षीणकषाय नामक बारहवे गुणस्थान का वर्णन करते हैं -

से काले सो खीणकसाओ ठिदिरसगबंधपरिहीणो।
सम्मत्तडवस्सं वा, गुणसेढी दिज्जं दिस्सं च ।।६०१ ।।

स्वे काले स क्षीणकषायः स्थितिरसगबन्धपरिहीणः ।
सम्यक्त्वाष्टवर्षमिव गुणश्रेणी देयं दृश्यं च ।।६०१ ।।

अन्वयार्थ - (से काले) अनन्तर काल में **(सो)** वह जीव **(खीणकसाओ)** क्षीणकषायी होता है । **(ठिदिरसगबंधपरिहोणो)** वह स्थितिबंध और अनुभाग बंध से रहित होता है। **(सम्मत्तडवस्सं वा)** जब सम्यक्त्व प्रकृति की आठ वर्षप्रमाण स्थिति रहती है तब जिस प्रकार वर्णन किया उसी प्रकार यहाँ **(गुणसेढी दिज्जं दिस्सं च)** गुणश्रेणि, देयद्रव्य और दृश्यमान द्रव्य का कथन जानना चाहिए।

विशेषार्थ- संपूर्ण चारित्रमोहनीय कर्म का क्षय होने पर अनन्तर समय में क्षपक जीव द्रव्य और भावकषाय समूह का क्षय होने से क्षीणकषाय संज्ञा को प्राप्त होकर यथाख्यात-विहारशुद्धिसंयमी होता है। प्रथम समय में निर्ग्रन्थ वीतराग गुणस्थान को प्राप्त होता है। मोहकर्म का नि:शेष क्षय होने से जिसका चित्त स्फटिक के निर्मलपात्र में रखे गए स्वच्छ पानी के समान स्वच्छ हुआ है ऐसे निर्ग्रन्थ साधुओं को क्षीणकषायसंयत कहते हैं। स्थिति और अनुभागबंध का कारण कषाय है इसलिए कषाय का पूर्ण अभाव होने से क्षीणकषायी जीव को स्थितिबंध और अनुभागबंध नहीं होता है। योग का सद्भाव होने से उस निमित्त से प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध होता है। केवल वह सातावेदनीय का ही होता है उसे ईर्यापथ बंध कहते हैं अर्थात् प्रथम समय में कर्म बांधकर शुष्क दीवार पर लगी हुई धूलिसमान

अनन्तर समय में निर्जरित होता है अर्थात् अकर्म भाव को प्राप्त होता है ।

जिसप्रकार क्षायिकसम्यक्त्व के विधान में सम्यक्त्व मोहनीय की आठ वर्ष स्थिति शेष रहने पर कथन किया था उसी प्रकार यहाँ गुणश्रेणि, देयद्रव्य और दृश्यमान द्रव्य का कथन जानना चाहिए। वही यहाँ संक्षेप में कहते हैं -

छह कर्मों के द्रव्य का अपकर्षण करके उसे पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर उसमें से एक भाग को गुणश्रेणि आयाम में देता है। गुणश्रेणि आयाम का प्रमाण क्षीणकषाय के काल से उसका ही संख्यातवाँ भागमात्र अधिक है। वहाँ पूर्व में कहे गये क्रम से उदयरूप निषेकों में अल्प और द्वितीय समय से लेकर गुणश्रेणिशीर्ष तक के निषेकों में असंख्यातगुणित क्रमसहित देता है। बहुभाग द्रव्य गुणश्रेणि के ऊपर अतिस्थापनावलि छोड़कर सर्व स्थितियों में देता है। बहुभागद्रव्य में अवशेष स्थिति मात्र गच्छ से भाग देने पर मध्यम धन आता है और उसे एक कम गच्छ के अर्ध से हीन दो गुणहानि से भाग देने पर चय आता है। चय को दो गुणहानि से गुणा करने पर प्रथम निषेक में देने योग्य द्रव्य का प्रमाण आता है।यह द्रव्य गुणश्रेणिशीर्ष में दिये हुए द्रव्य से असंख्यातगुणा है। उसके ऊपर विशेष घटते क्रम से द्रव्य देता है।

क्षीणकषाय गुणस्थान के प्रथम समय में अपकृष्ट देयद्रव्य की रचना

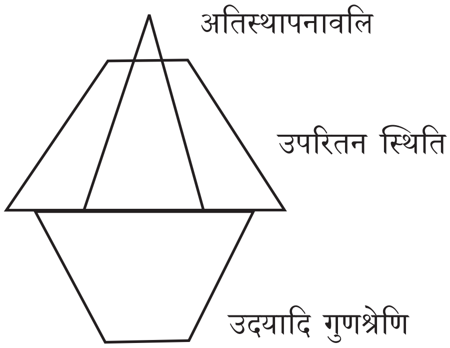

सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में अपकर्षण किये द्रव्य से यहाँ अपकर्षित किया द्रव्य असंख्यात गुणा जानना चाहिए क्योंकि कषायसहित परिणाम से होनेवाली गुणश्रेणि निर्जरा की अपेक्षा कषायरहित परिणामों से होने वाली गुणश्रेणि निर्जरा असंख्यातगुणी संभव है। यहाँ क्षीणकषाय के प्रथमादि समयों में अपकर्षण किये द्रव्य का प्रमाण एक समान ही है। क्योकि यहाँ विशुद्धता समान होती है। दीयमान और दृश्यमान द्रव्य का अन्य विशेष निरूपण जिसप्रकार सम्यक्त्व मोहनीय की क्षपणा के प्रसंग में किया था उसी प्रकार यहाँ तीन घातिकर्मों का जानना चाहिए।[१]

क्षीणकषाय के प्रथम समय से अंतर्मुहूर्त तक पृथक्त्व वितर्क विचार नाम का शुक्लध्यान होता है। क्षीणकषाय का संख्यातवाँ भाग शेष रहने पर एकत्ववितर्कअवीचार नाम का द्वितीय शुक्लध्यान होता है।

१)ज.ध. पु.१६ पृ.१२२

क्षीणकषाय गुणस्थान में स्थिति और अनुभाग कांडक का प्रमाण कहते हैं-

घादीण मुहुत्तंत्तं अघादियाणं असंखगा भागा ।
ठिदिखंडं रसखंडो अणंतभागा अपसत्थाणं ।।६०२।।

घातिनां मुहूर्तान्तमघातिकानामसङ्ख्यका भागाः ।
स्थितिखण्डं रसखण्डमनन्तभागा अप्रशस्तानाम् ।।६०२।।

अन्वयार्थ - क्षीणकषाय गुणस्थान में **(घादीण)** घातिकर्मों का **(ठिदिखंडं)** स्थितिकांडकायाम **(मुहुत्तंत्तं)** अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और **(अघादियाणं)** अघातिकर्मों का स्थितिकांडक **(असंखगा भागा)** असंख्यात बहुभाग प्रमाण है। **(अपसत्थाणं)** अप्रशस्त प्रकृतियों का **(रसखंडो)** अनुभाग कांडकायाम **(अणंतभागा)** अनन्तबहुभाग प्रमाण है।

विशेषार्थ - क्षीणकषाय गुणस्थान में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इन तीन घातिकर्मों का अन्तर्मुहूर्त आयामयुक्त स्थितिकाण्डकघात होता है। आयु छोड़कर तीन अघातिकर्मों का शेष स्थितिसत्त्व का असंख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिकाण्डक घात होता है। अप्रशस्त प्रकृतियों के पूर्व अनुभाग को अनन्त का भाग देकर उसमें से बहुभाग मात्र अनुभाग का काण्डकघात होता है।

क्षीणकषाय के चरम काण्डक का ग्रहण और वहाँ देयादि द्रव्य का विधान कहते हैं-

बहुठिदिखंडे तीदे संखा भागा गदा तदद्धाए।
चरिमं खंडं गिण्हदि लोभं वा तत्थ दिज्जादि[1] ।।६०३।।

बहुस्थितिखण्डेऽतीते सङ्ख्यभागा गतास्तदद्धायाः।
चरमं खण्डं गृह्णाति लोभ इव तत्र देयादि ।।६०३।।

अन्वयार्थ - (बहुठिदिखंडे तीदे) बहुत (संख्यात हजार) स्थितिकाण्डक व्यतीत होने पर **(तदद्धाए)** क्षीणकषाय गुणस्थान काल का **(संखा भागा)** संख्यात बहुभाग काल **(गदा)** व्यतीत हुआ तब **(चरिमं खंडं)** अंतिम स्थितिकांडक को **(गिण्हदि)** ग्रहण करता है । **(तत्थ)** वहाँ **(दिज्जादि)** देयादि द्रव्य का विधान **(लोभं वा)** लोभ के समान जानना चाहिए ।

विशेषार्थ - क्षीणकषाय गुणस्थान का संख्यात बहुभाग काल व्यतीत होकर संख्यातवाँ भाग शेष रहता है तब तीन घातिकर्मों का अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयाम युक्त अंतिम काण्डक ग्रहण करता है।

१) ज.ध. पु.१६ पृ.१२२

उस काण्डक का प्रमाण क्षीणकषाय गुणस्थान के शेष काल को छोड़कर उसके ऊपर संख्यातवाँ भागमात्र गुणश्रेणिशीर्ष और उससे संख्यातगुणे ऊपर के निषेकों के प्रमाण के बराबर है। उसके द्रव्य देने का विधान जैसे लोभ के अंतिम कांडक में कहा है वैसे ही जानना। इसप्रकार अंतिम काण्डक की प्रथमादि फालियों का घात करके पश्चात् कुछ कम डेढ़गुणहानिगुणित समयप्रबद्धप्रमाण अंतिमफालि को ग्रहण करता है और उसका द्रव्य उदयनिषेक से द्विचरम समय तक के निषेकों में असंख्यातगुणित क्रम से देता है और द्विचरम निषेक में दिये द्रव्य से असंख्यात पल्योपम के प्रथम वर्गमूल से गुणित द्रव्य चरम समयसंबंधी निषेक में देता है ।

निद्रा, प्रचला और १४ घाति प्रकृतियों के अंतिम काण्डक के देय का क्रम

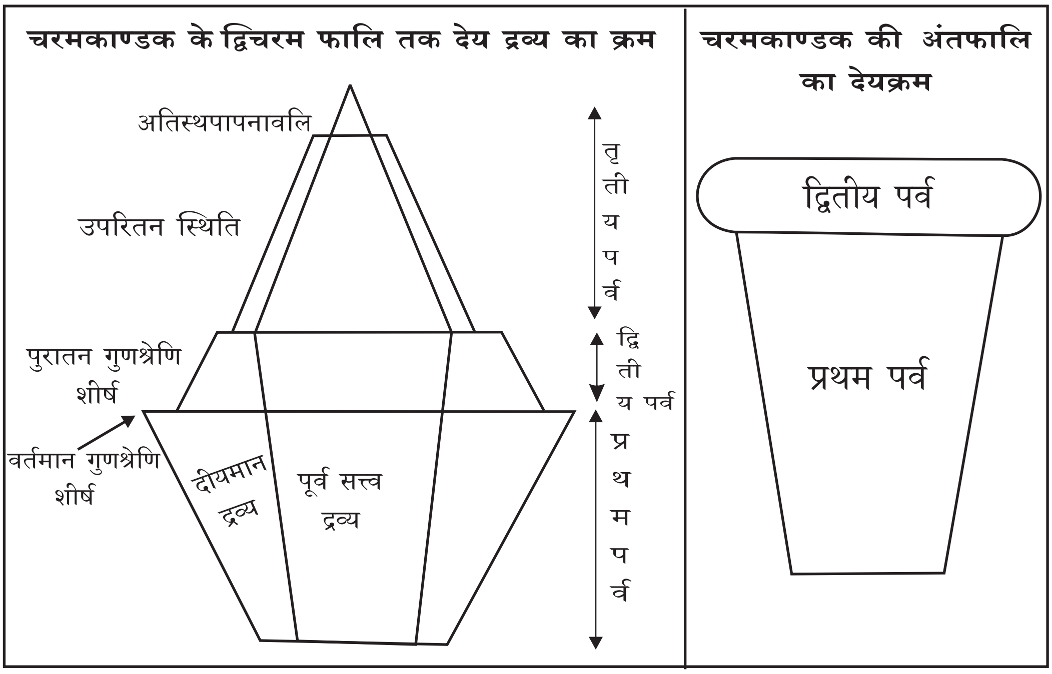

क्षीणकषाय जीव को कृतकृत्य संज्ञा की प्राप्ति और द्विचरम- समय में सत्त्व और उदयव्युच्छित्ति कहते हैं -

चरिमे खण्डे पडिदे कदकरणिज्जोत्ति भण्णदे एसो।
तस्स दुचरिमे णिद्दा पयला सत्तुदयवोच्छिण्णा ।।६०४।।

चरमे खण्डे पतिते कृतकरणीय इति भण्यते एषः ।
तस्य द्विचरमे निद्रा प्रचला सत्त्वोदयव्युच्छिन्ना ।।६०४।।

अन्वयार्थ - (चरिमे खंडे पडिदे)अंतिम काण्डक का पतन होने पर **(एसो)** यह क्षपक जीव को **(कदकरणिज्जो त्ति)** कृतकृत्य **(भण्णदे)** कहते हैं। **(तस्स दुचरिमे)** उस क्षीणकषाय के द्विचरम समय में **(णिद्दा पयला)** निद्रा और प्रचला **(सत्तुदयवोच्छिण्णा)** सत्त्व और उदय से व्युच्छिन्न होती है।

विशेषार्थ - क्षीणकषाय गुणस्थान में अंतिम काण्डक का पतन होने पर इसे कृतकृत्य छद्मस्थ कहते हैं क्योंकि इसके तीन घाति कर्मो का स्थितिकाण्डकघात नहीं होता है। केवल उदयावलि के बाहर स्थितिद्रव्य को उदयावलि में प्राप्त करनेरूप उदीरणा होती है। वह उदीरणा एक समय अधिक आवलि काल तक होती रहती है। उसके अनन्तर आवली काल शेष रहने पर एक-एक समय में एक-एक निषेक का क्रम से उदय ही होता है क्योंकि उदयावलि में प्राप्त द्रव्य की उदीरणा नहीं होती है । क्षीणकषाय के द्विचरम समय में निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियों की एक साथ उदय और सत्त्वव्युच्छित्ति होती है क्योंकि घातिकर्मरूप ईंधन को जलाने वाले द्वितीय शुक्लध्यानरूप अग्निद्वारा क्षीणकषाय जीव की निद्रा और प्रचला की व्युच्छित्ति संभव है।[1]

शंका - क्षीणकषायी जीव को ध्यानपरिणाम के विरूद्ध स्वभाववाली निद्रा और प्रचला का उदय कैसे संभव है।

समाधान - ऐसी शंका नहीं करना चाहिए क्योंकि ध्यानयुक्त अवस्था में भी निद्रा और प्रचला का अव्यक्त उदय संभव है।

उपशान्तकषायी अथवा क्षीणकषायी, पूर्वों का जानकार, तीन योगवाले,शुक्ललेश्यायुक्त उत्तम संहनन धारी जीव को प्रथम शुक्लध्यान होता है। द्वितीय शुक्लध्यान उसी जीव को होता है। विशेषता यह है कि यह ध्यान एक योगधारी क्षीणकषायी जीव को होता है। क्षीणकषायी जीव का यह द्वितीय शुक्लध्यान ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय कर्म के निरोध का कारण होता है।[2]

क्षपकश्रेणी चढ़नेवाला जीव तीन वेदों में से एक वेद और चार कषायों में से एक कषाय के उदयसहित श्रेणी चढ़ता है इसलिए उस अपेक्षा उनके बारह प्रकार होते हैं। पूर्व में कही गयी सर्व प्ररूपणा पुरुषवेद और क्रोधकषाय के उदयसहित श्रेणि चढ़नेवाले की अपेक्षा जानना चाहिए। शेष ग्यारह प्रकार के जीवों में जो विशेष है वह आगे कहते हैं-

पुरुषवेद और मानादि कषायसहित श्रेणी चढ़नेवाले का विशेष वर्णन करते हैं-

कोहस्स य पढमठिदीजुत्ता कोहादिएक्कदोतीहिं ।
खवणद्धा हि कमसो माणतियाणं तु पढमठिदी ।।६०५।।

१) ज.ध. पु.१६ पृ. १२४/२९४ २) ज. ध. पु.१६ पृ.१२३

क्रोधस्य च प्रथमस्थितियुक्ता क्रोधाद्येकद्वित्रयाणाम् ।
क्षपणाद्धा हि क्रमशो मानत्रयाणां तु प्रथमस्थितिः ।।६०५।।

अन्वयार्थ - (कोहस्स य पढमठिदीजुत्ता) क्रोध की प्रथम स्थिति से सहित **(कोहादिएक्क दोतीहिं)** क्रोधादि एक, दो, तीन कषायों का **(खवणद्धा)** क्षपणाकाल **(कमसो)** क्रम से **(माणतियाणं तु)** मानादि तीन कषायों की **(पढमठिदी)** प्रथम स्थिति होती हैं।

विशेषार्थ - पुरुषवेदयुक्त मानादि कषाय सहित श्रेणि चढ़नेवाले जीव की अध:करण से अंतरकरण की समाप्ति तक सर्व प्ररूपणा पुरुषवेद और क्रोध कषाय सहित श्रेणि चढ़नेवाले जीव के समान जानना चाहिए। उसके पश्चात् मानादि कषायों की प्रथम स्थिति में भेद है वह कहते हैं-

मानसहित श्रेणि चढ़नेवाला जीव अंतरकरण की समाप्ति के अनन्तर क्रोध की प्रथम स्थिति स्थापित नहीं करता है वह मान की प्रथम स्थिति अंतर्मुहूर्तप्रमाण स्थापित करता है। क्रोधसहित श्रेणि चढ़नेवाले की नपुंसकवेद के क्षपणाकाल से कृष्टिकरणकाल तक क्रोध की प्रथम स्थिति और क्रोध की तीन संग्रहकृष्टि का वेदककाल प्रमाण क्षपणाकाल इन दोनों का मिलकर जितना प्रमाण होता है उतनी मानसहित श्रेणि चढ़नेवाले की मान की प्रथम स्थिति होती है।

क्रोध की प्रथम स्थिति + क्रोध की तीन संग्रहकृष्टियों का क्षपणाकाल = मान की प्रथम स्थिति

मायासहित श्रेणि चढ़नेवाला जीव अंतरकरण की समाप्ति के अनन्तर क्रोध और मान की प्रथम स्थिति स्थापित नहीं करता है, परन्तु माया की प्रथम स्थिति अंतर्मुहूर्त मात्र स्थापित करता है । क्रोधसहित श्रेणि चढ़नेवाले जीव की क्रोध की प्रथम स्थिति, क्रोध का क्षपणाकाल और मान की तीन संग्रहकृष्टियों का वेदककाल मात्र मान का क्षपणाकाल इन तीनों को मिलाकर जितना प्रमाण होता है उतनी मायासहित श्रेणि चढ़नेवाले जीव की माया की प्रथम स्थिति स्थापित करता है ।

क्रोध की प्रथम स्थिति + क्रोध क्षपणाकाल + मान क्षपणाकाल = माया की प्रथम स्थिति

लोभसहित श्रेणि चढ़नेवाला जीव अंतरकरण की समाप्ति के अनन्तर क्रोध, मान और माया की प्रथम स्थिति स्थापित नहीं करता है तो लोभ की प्रथम स्थिति स्थापित करता है। क्रोधसहित श्रेणि चढ़नेवाले की पूर्वोक्त क्रोध की प्रथम स्थिति क्रोध का क्षपणाकाल, मान का क्षपणाकाल और माया का कृष्टिवेदककालमात्र माया का क्षपणाकाल इन चारों का मिलकर जितना प्रमाण होता है उतना लोभसहित श्रेणि चढ़नेवाले जीव की लोभ की प्रथम स्थिति का प्रमाण जानना चाहिए ।

क्रोध की प्रथम स्थिति + क्रोध क्षपणाकाल + मान क्षपणा काल + माया क्षपणाकाल = लोभ की प्रथम स्थिति

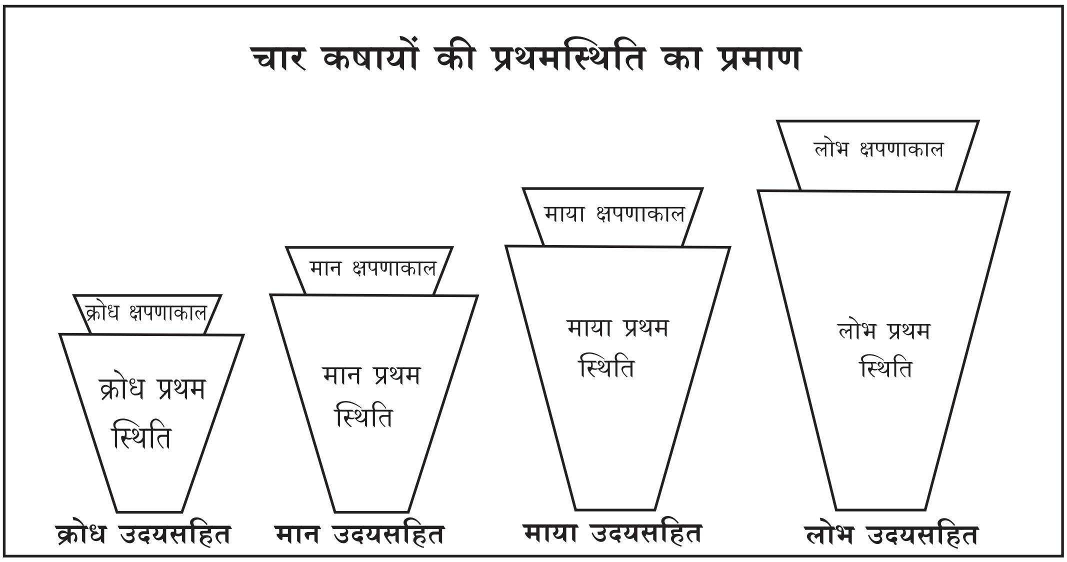

माणतियाणुदयमहो कोहादिगिदुतिय खवियपणिधम्हि ।
हयकण्णकिट्टिकरणं किच्चा लोहं विणासेदी ।।६०६ ।।

मानत्रयाणामुदयमथ क्रोधाद्येकद्वित्रयं क्षपकप्रणिधौ ।
हयकर्णकृष्टिकरणं कृत्वा लोभं विनाशयति ।।६०६ ।।

अन्वयार्थ - (माणतियाणुदयमहो) क्रोधादि एक, दो, तीन कषायों के क्षपणाकाल के निकट **(हयकण्णकिट्टिकरणं)** अश्वकर्णकरण और कृष्टिकरण **(किच्चा)** करके **(लोहं)** लोभ का **(विणासेदि)** विनाश करता है।

विशेषार्थ - मानादि तीन कषायों की उदयसहित श्रेणि चढ़नेवाले जीवों का क्रोध के उदयसहित श्रेणि चढ़नेवाले जीवों से क्या भेद है वह यहाँ कहते हैं। उसमें से प्रथम मान सहित श्रेणि चढ़नेवाले का व्याख्यान करते हैं-

१) क्रोध की उदयसहित श्रेणि चढ़नेवाला जीव जिस काल में चारों कषायों के अश्वकर्णकरण और अपूर्वस्पर्धक की विधि संपन्न करता है उसकाल में मान के उदयसहित श्रेणि चढ़नेवाला जीव पूर्वस्पर्धक रूप क्रोध को मानकषायरूप परिणमाकर उसका क्षय करता है क्योंकि वहाँ दूसरा प्रकार संभव नहीं है।

शंका - अनिवृत्तिकरण परिणाम में भेद नहीं होने पर यहाँ इस प्रकार का क्रियाविपर्यास कैसे

हुआ ?

समाधान - ऐसी शंका नहीं करना चाहिए क्योंकि मान के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढ़नेवाले क्षपक को क्रोध का उदय नहीं होने से स्पर्धक अवस्था में ही क्रोध का नाश सिद्ध होता है इसलिए इसमें कुछ विरोध नहीं है और अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में परिणामों का भेद संभव नहीं होने से भेदरूप कथन का विरोध करना ठीक नहीं क्योंकि इस गुणस्थान के करण परिणाम अभिन्न होने पर भी भिन्न कषायों के उदय के सहकारी कारणों के सानिध्य से इसप्रकार विविधता की सिद्धि होती हैं।

२) क्रोधसहित श्रेणि चढ़नेवाले के कृष्टिकरण काल में चार कषाय की बारह संग्रहकृष्टियों की रचना होती है, परन्तु मानसहित श्रेणि चढ़नेवाले जीव के क्रोध बिना तीन कषायों की नौ संग्रहकृष्टियों की रचना होती है। क्रोध का क्षय होने से क्रोध की तीन संग्रहकृष्टियाँ नहीं होती है।

३) क्रोधसहित श्रेणि चढ़नेवाला जीव जिस काल में बादरकृष्टि करता है उस काल में मानसहित श्रेणि चढ़नेवाला जीव क्रोधबिना तीन कषायों की अश्वकर्णसहित अपूर्वस्पर्धक क्रिया करता है।

४) क्रोधसहित श्रेणि चढ़नेवाला जीव जिस काल में क्रोध की तीन संग्रहकृष्टि का वेदन करके क्षय करता है उस काल में मानसहित श्रेणि चढ़नेवाला जीव मानादि तीन कषायों की नौ बादरसंग्रहकृष्टियाँ करता है। उसके पश्चात् मानकषाय का वेदनकाल आदि सर्व प्ररूपणा क्रोधसहित श्रेणि चढ़नेवाले जीव के समान जानना चाहिए।

अब मायाकषाय सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव का कथन करते हैं -

१) क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाला जिस काल में अश्वकर्ण क्रिया करता है उस काल में यह जीव क्रोध संज्वलन को मानरूप परिणमाकर क्षय करता है।

२) क्रोधसहित श्रेणी चढ़नेवाला जिस कालमें कृष्टि करता है उस काल में यह जीव मान को मायारूप परिणमाकर मान का क्षय करता है।

३) क्रोधसहित श्रेणि चढ़नेवाला जिसकाल में क्रोध की तीन संग्रहकृष्टियों का वेदन करके क्षय करता है उसकाल में मायासहित श्रेणी चढ़नेवाला यह जीव दो कषायों की अश्वकर्णसहित अपूर्वस्पर्धक क्रिया करता है।

४) क्रोधसहित श्रेणि चढ़नेवाला जिस काल में क्रोध की तीन संग्रहकृष्टियों का वेदन करके उसका क्षय करता है उस काल में मायाकषायसहित श्रेणि चढ़नेवाला माया और लोभ की छह बादर संग्रहकृष्टियों की रचना करता है। उसके ऊपर मायाकषाय का क्षपणाकाल आदि सर्वप्ररूपणा क्रोधसहित श्रेणि चढ़नेवाले के समान ही जाननी चाहिए।

अब लोभसहित श्रेणि चढ़नेवाले जीव का प्ररूपण करते हैं-

१) क्रोधसहित चढ़नेवाला जिस काल में अश्वकर्णकरण करता हैं उस काल में यह जीव सर्व

पूर्वस्पर्धकरूप क्रोध को मानरूप परिणमाकर नष्ट करता है।

२) क्रोधसहित श्रेणि चढ़नेवाला जीव जिसकाल में बादरकृष्टि करता है उसकाल में यह जीव पूर्व स्पर्धकरूप मान को मायारूप संक्रमित करके मान का क्षय करता है।

३) क्रोधसहित श्रेणि चढ़नेवाला जिसकाल में क्रोध की तीन संग्रहकृष्टियों का वेदन करके उसका क्षय करता है उसकाल में यह पूर्वस्पर्धकरूप माया को लोभरूप परिणमित करके माया का क्षय करता है।

४) क्रोधसहित श्रेणि चढ़नेवाला जीव जिस काल में मान की तीन संग्रहकृष्टियों का वेदन करके उसका क्षय करता है उसकाल में यह जीव लोभ की अपूर्व स्पर्धकों की रचना करता है।

५) क्रोधसहित श्रेणि चढनेवाला जीव जिसकाल में माया की तीन संग्रहकृष्टियों का वेदन करके उसका क्षय करता है उस काल में यह जीव लोभ कषाय की तीन बादर संग्रहकृष्टियों की रचना करता है। उसके अनन्तर लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि का वेदनकाल आदि सर्वप्ररूपणा क्रोधसहित श्रेणि चढ़नेवाले जीव की और इसकी समान है ।

तात्पर्य यह है कि मान के उदय से श्रेणि चढ़नेवाला जीव प्रथम क्रोध का पूर्व स्पर्धकरूप से क्षय करके अश्वकर्ण और कृष्टिकरण क्रिया करता है। माया के उदय से श्रेणि चढ़नेवाला प्रथम क्रोध और मान का क्रमश: पूर्वस्पर्धकरूप से क्षय करके अनन्तर अश्वकर्णकरण और कृष्टिकरण क्रिया करता है। लोभ के उदय से श्रेणि चढ़नेवाला प्रथम क्रोध, मान और माया का क्रमश: पूर्वस्पर्धकरूप से नाश करके अनन्तर अश्वकर्णकरण और कृष्टिकरण करता है। सभी का लोभकषाय का सूक्ष्मकृष्टिकरणकाल समान ही है। इसप्रकार पुरुषवेद सहित श्रेणि चढ़नेवाले चार प्रकार के जीवों के विशेष का वर्णन किया।

पुरुष वेदसहित श्रेणी चढ़नेवाले चार प्रकार के जीवों की विशेषता

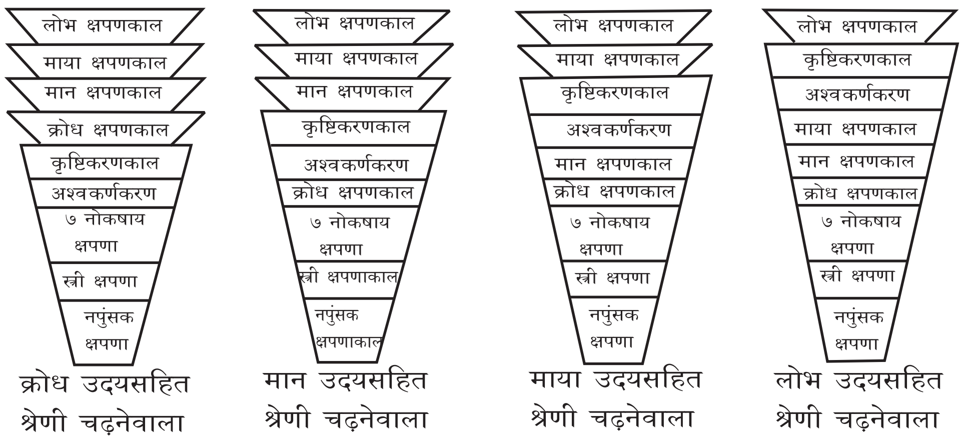

अब स्त्रीवेद सहित श्रेणि चढ़नेवाले चार प्रकार के जीवों का विशेष कहते हैं-

पुरिसोदएण चडिदस्सित्थीखवणद्धउ त्ति पढमठिदी ।
इत्थिस्स सत्तकम्मं अवगदवेदो समं विणासेदि ।।६०७।।

पुरुषोदयेन चटितस्य स्त्रीक्षपणाद्धान्तं प्रथमस्थितिः ।
स्त्रिया सप्तकर्माण्यपगतवेदः समं विनाशयति ।।६०७।।

अन्वयार्थ - (पुरिसोदएण चडिदस्सित्थी खवणद्धउत्ति) पुरुषवेद के उदय से श्रेणि चढ़नेवाले जीव का जो स्त्रीवेद का क्षपणाकाल है वहाँ तक **(इत्थिस्स)** स्त्रीवेद की **(पढमठिदी)** प्रथम स्थिति है और वह **(अवगदवेदो)** अपगतवेदी होकर **(सत्तकम्मं)** सात नोकषाय कर्मों का **(समं)** एक ही समय में **(विणासेदि)** नाश करता है।

विशेषार्थ - स्त्रीवेद सहित श्रेणि चढ़नेवाले जीव का अंतरकरण होने तक सर्व विधान पुरुषवेद सहित श्रेणि चढ़नेवाले जीव के समान जानना चाहिए। अंतरकरण होने पर यह जीव पुरुषवेद की प्रथम स्थिति स्थापित नहीं करता है। स्त्रीवेद की ही प्रथम स्थिति स्थापित करता है, क्योंकि जिस वेद और कषाय के उदय से श्रेणि चढ़ता है उसी की प्रथम स्थिति स्थापित करता है। उस स्त्रीवेद की प्रथमस्थिति का प्रमाण पुरुषवेद के उदयसहित श्रेणि चढ़नेवाले जीव का जितना नपुंसकवेद का क्षपणाकाल और स्त्रीवेद का क्षपणाकाल है उतना जानना चाहिए। पुरुषवेद के उदय से क्षपक श्रेणि चढ़नेवाले जीव का जितना नपुंसकवेद का क्षपणाकाल है उतना ही स्त्रीवेद से चढ़नेवाले जीव का नपुंसकवेद का क्षपणाकाल है। स्त्रीवेद का क्षपणाकाल भी दोनों का समान है।

उसके अनन्तर पुरुषवेदसहित श्रेणि चढ़नेवाला जीव पुरुषवेद के उदय से युक्त होकर सात नोकषायों का क्षय करता है और उसके अनन्तर एक समय कम दो आवलिकाल में पुरुषवेद के नवक समयप्रबद्ध का क्षय करता है। यह स्त्रीवेदसहित श्रेणि चढ़नेवाला जीव वेद के उदय से रहित होकर सात नोकषायों के क्षपणाकाल में सात नोकषायों का युगपत् क्षय करता है। इसे अपगतवेदी होने पर पुरुषवेद का बंध नहीं है इसलिए इसके नवक समयप्रबद्ध शेष नहीं रहते। उसके पश्चात् अश्वकर्णादि क्रियाओं में जिसप्रकार पुरुषवेदसहित श्रेणि चढ़नेवाले चार प्रकार के जीवों का विशेष कहा उसी प्रकार स्त्रीवेद सहित श्रेणि चढ़नेवाले चार प्रकार के जीवों का विशेष जानना चाहिए।

अब नपुंसकवेद सहित श्रेणि चढ़नेवाले चार प्रकार के जीवों का व्याख्यान करते हैं -

थीपढमट्ठिदिमेत्ता संढस्स वि अंतरादु संढेक्क ।
तस्सद्धा त्ति तदुवरिं संढं इत्थिं च खवदि थीचरिमे।।६०८।।

अवगयवेदो संतो सत्त कसाये खवेदि कोहुदये ।
पुरिसुदये चडणविही सेसुदयाणं तु हेट्ठुवरिं[१] **।।६०९।।**

स्त्रीप्रथमस्थितिमात्रा षण्ढस्याप्यन्तरात् षण्ढैकः ।
तस्याद्धेति तदुपरि षण्ढं स्त्री च क्षपयति स्त्रीचरिमे ।।६०८।।
अपगतवेदः सन् सप्त कषायान् क्षपयति स्त्रीचरिमे ।
पुरुषोदयेन चटनविधिः शेषोदयानां त्वधस्तनोपरि।।६०९।।

अन्वयार्थ - (संढस्स वि) नपुंसकवेद की प्रथम स्थिति भी **(थीपढमट्ठिदिमेत्ता)** स्त्रीवेद की प्रथम स्थिति के समान ही है। **(अंतरादु)** अंतरकरण के पश्चात् **(संढेक्क)** एक नपुंसकवेद का **(तस्सद्धाति)** उसके क्षपणाकाल तक क्षय करके **(तदुवरिं)** उसके ऊपर **(थीचरिमे)** स्त्रीवेद की क्षपणाकाल के अंतिम समय में **(संढं)** नपुंसकवेद **(च)** और **(इत्थि)** स्त्रीवेद का युगपत् **(खवदि)** क्षय करता है।

(अवगयवेदो संतो) अपगतवेदी होकर **(सत्त कसाये)** सात नोकषायों का **(खवेदि)** क्षय करता है। **(सेसुदयाणं तु)** शेष वेद और कषायों के उदय से चढ़ने वाले की **(हेट्ठुवरिं)** इसके नीचे और ऊपर **(चडणविही)** चढ़ने की विधि **(पुरिसुदये कोहुदये चडणविही)** पुरुषवेद के उदय से और क्रोध के उदय से श्रेणि चढ़नेवाले क्षपक के समान है।

विशेषार्थ - नपुंसकवेद सहित श्रेणि चढ़नेवाले जीव की प्ररूपणा अंतरकरणतक पुरुषवेदसहित श्रेणि चढ़नेवाले जीव के समान है। उसके अनन्तर पुरुषवेद की प्रथम स्थिति स्थापित नहीं करता हैं। नपुंसकवेद की ही प्रथम स्थिति स्थापित करता है। उसका प्रमाण स्त्रीवेद की प्रथम स्थिति के समान ही हैं।

अंतरकरण करने के अनन्तर जितना पुरुषवेद सहित श्रेणि चढ़नेवाले जीव के नपुंसकवेद का क्षपणाकाल है उतने काल तक इसकी एक नपुंसकवेद की क्षपणा होती है परन्तु वहाँ नपुंसकवेद की क्षपणा समाप्त नहीं होती है। उसके अनन्तर जो स्त्रीवेद का क्षपणाकाल है उसमें उसके नपुंसकवेद और स्त्रीवेद इन दोनों का क्षय होता है। स्त्रीवेद के क्षपणाकाल के अंतसमय में सर्व नंपुसकवेद और स्त्रीवेद का युगपत् क्षय करता है। द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से अंतिम समय में नष्ट हुआ ऐसा कहा है क्योंकि द्रव्यार्थिकनय विद्यमान का नाश कहता हैं। पर्यायार्थिक नय अविद्यमान वस्तु का नाश कहता है इसलिए उस अपेक्षा अन्त के समय में एक निषेक का सत्त्व है। आगे के समय में नष्ट होगा ऐसा जानना चाहिए।

---
१) क. पा. सुत्त पृ. ८९२-८९४ सू.१५४६-१५५२/ज. ध. पु. १६ पृ. ११५-११७/ध. पु.६ पृ. ४१०

इसके अनन्तर स्त्रीवेद सहित श्रेणि चढ़नेवाले जीव के समान अपगतवेदी होकर सात नोकषायों का क्षय करता हैं। पुरुषवेद और हास्यादि छह नोकषायों का क्षपणाकाल समान है। यहाँ भी पुरुषवेद के बंध का अभाव है इसलिए नवक समयप्रबद्ध शेष नहीं रहते हैं। उसके ऊपर जैसे पुरुषवेद सहित श्रेणि चढ़नेवाले चार प्रकार के जीवों का वर्णन किया है वैसा ही नपुंसकवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाले चार प्रकार के जीवों का वर्णन जानना चाहिए ।

इस प्रकार पुरुषवेद सहित श्रेणि चढ़नेवाले तीन प्रकार के जीव, स्त्रीवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाले चार प्रकार के जीव और नपुंसकवेद सहित श्रेणि चढ़नेवाले चार प्रकार के जीव इसप्रकार ग्यारह प्रकार के जीवों की क्रिया में विशेष वर्णन किया है। अब शेष अधस्तन और उपरिम सर्व विधान पुरुषवेद और क्रोध वे उदयसहित श्रेणि चढ़नेवाले का जैसा कहा है वैसा ही ग्यारह प्रकार के उदयसहित जीवों का जानना चाहिए ।

शंका - जब अनिवृत्तिकरण में एक समयवर्ती सर्व जीवों का परिणाम समान कहा है तो यहाँ परस्पर भेद क्यों है ?

समाधान - परिणामों की विशुद्धि की अपेक्षा से समान कहा है। परन्तु नाना प्रकार के वेद और कषाय के उदयरूप सहकारी कारण की निकटता से विविध प्रकार के क्षपणाकार्य होते हैं।

इस प्रकार प्रसंगानुरूप विशेष का वर्णन करके पूर्व में क्षीणकषाय के द्विचरमसमय तक कथन किया था अब उसके आगे वर्णन करते हैं-

चरिमे पढमं विग्घं चउदंसण उदयसत्तवोच्छिण्णा।
से काले जोगिजिणो सव्वण्हू सव्वदरसी य[१] ।।६१०।।

चरमे प्रथमं विघ्नं चतुर्दर्शनमुदयसत्त्वव्युच्छिन्नाः।
स्वे काले योगिजिनः सर्वज्ञः सर्वदर्शी च ।।६१०।।

अन्वयार्थ - (चरिमे) क्षीणकषाय गुणस्थान के अंत समय में **(पढमं)** प्रथम अर्थात् पाँच ज्ञानावरण **(विग्घं)** पाँच अन्तराय और **(चउदंसण)** चार दर्शनावरण ये चौदह कर्म प्रकृतियाँ **(उदयसत्तवोच्छिण्णा)** उदय और सत्ता से व्युच्छिन्न हुई । **(से काले)** अनन्तर समय में **(जोगिजिणो)** सयोगी जिन **(सव्वण्हू)** सर्वज्ञ **(व)** और **(सव्वदरसी)** सर्वदर्शी होते हैं।

विशेषार्थ - क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थान के अंतिमसमय में एकत्ववितर्क अवीचार नाम के द्वितीय शुक्लध्यान द्वारा पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय और चार दर्शनावरण इन तीन घातिकर्मों की

१) क. पा. सुत्त पृ. ८९६ सू. १५७१/ध. पु.६ पृ. ४१२/गो. जीव. गा. ६४

चौदह प्रकृतियों की उदय और सत्त्वव्युच्छित्ति होती है अर्थात् इन प्रकृतियों का क्षय होता है।

शंका - क्षीणकषाय गुणस्थान के चरम समय में घातिकर्मों के साथ अघातिकर्मों का क्षय क्यों नहीं होता है? क्योंकि कर्मत्व की अपेक्षा से घाति और अघातिकर्मों में कुछ अन्तर नहीं है ?

समाधान - ऐसी शंका नहीं करे? क्योंकि विशेष घातभाव की अपेक्षा दोनों में अंतर है। इसलिए क्षीणकषाय गुणस्थान के अंतिम समय में अघातिकर्मों का पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यात वर्ष का स्थितिसत्त्व रहता है क्योंकि इसकी स्थिति का विशेषघात का अभाव है। अघातिकर्म घातिकर्म के समान अप्रशस्त नहीं है। घातिकर्मों में मोहनीय कर्म अधिक अप्रशस्त है इसलिए उसका विशेषघात होने के कारण से सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान के अंतिम समय में क्षय होता है। यद्यपि कर्मत्व की अपेक्षा से घाति और अघातिकर्मों में विशेषता नहीं है फिर भी घातिकर्म अघातिकर्म की अपेक्षा अधिक अप्रशस्त होने से द्वितीय शुक्ल ध्यानरूप अग्नि के द्वारा यहाँ अवशेष घातिकर्मों का निर्मूल क्षय होता है। क्षीणकषाय गुणस्थान के चरम समय में घातिकर्मों का नाश होता है यह कथन उत्पादानुच्छेद नय की अपेक्षा से है। अंतिम समय में अंतिम निषेक का सत्त्व और उदय होता है। बन्ध की अपेक्षा इन घातिकर्मो और जीवप्रदेशों का एकत्वरूप परिणमन होता था। बंधनकारणों के प्रतिपक्षभूत मोक्षके कारणभूत परिणामरूपी यंत्रद्वारा पेलने पर जीवप्रदेशों से कर्म प्रदेश अलग होना यही क्षय है। जीव से अलग होने पर भी अकर्मभाव से परिणत कर्मपुद्गलों का पुद्गलरूप से नाश नहीं होता है। जिसप्रकार मल अलग होने पर वस्त्र निर्मल होता है किन्तु मल का अत्यन्त नाश नहीं होता है उसी प्रकार कर्म आत्मा से निवृत्त होने पर आत्मा परिशुद्ध होता है। अनन्तर समय में केवल ज्ञान, केवल दर्शन और अनन्त वीर्य से युक्त जिन, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होकर सयोगिजिन होते हैं।

शंका - छद्मस्थ का शरीर तो निगोदसहित होता है केवली होने पर उनका शरीर निगोदरहित कैसे हुआ?

समाधान - क्षीणकषाय के प्रथम समय में अनन्त निगोद जीव मरते हैं, द्वितीय समय में उनको आवलि के असंख्यातवें भाग से भाग देकर एक भाग मात्र अधिक मरते हैं।

$$\text{प्रथम समय में मृत जीव} + \frac{\text{प्रथम समय में मृत जीव}}{\text{आवली का असंख्यातवाँ भाग}} = \text{द्वितीय समय में मृत जीव}$$

इसप्रकार पृथक्त्व आवलिपर्यंत क्रम जानना चाहिए। उसके अनन्तर पूर्व समय में मरे हुए जीवों की अपेक्षा दूसरे समय में संख्यातवे भाग अधिक मरते हैं। इसप्रकार क्षीणकषाय का काल आवलि के असंख्यातवे भागमात्र शेष रहने तक यह क्रम जानना चाहिए।

$$\text{पूर्व समय में मृत जीव} + \frac{\text{पूर्व समय में मृत जीव}}{\text{संख्यात}} = \text{उत्तर समय में मृत जीव}$$

उसके अनन्तर पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणित मरते हैं।

$$\text{पूर्व समय में मृत जीव} \times \frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}} = \text{उत्तर समय में मृत जीव}$$

इस प्रकार क्षीणकषाय के अंत समय तक पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणितक्रम से निगोदया जीव मरते हैं। इस प्रकार सर्व निगोदिया जीवों का अभाव होने से केवलियों का शरीर निगोदरहित होता है।

शंका - इसप्रकार जीव मरनेपर वहाँ यथाख्यात चारित्र कैसे कहा?

समाधान - यहाँ शुक्लध्यान के बल से उनकी उत्पत्ति का निरोध होता है। जो पूर्व में उत्पन्न हुए थे वे स्वयमेव अपनी आयु के नाश से मरते हैं। जब तक निगोदिया जीवों की जघन्य आयुमात्र क्षीणकषाय का काल शेष रहता है तब तक वहाँ निगोदिया जीव उत्पन्न भी होते हैं। पूर्व में उत्पन्न हुए जीव मरते हैं। उसके अनन्तर उत्पन्न नहीं होते हैं। आयुक्षय से केवल मरते ही हैं इसलिए इन्हें कोई दोष नहीं लगता है।

अनन्तचतुष्टय की उत्पत्ति का कारण और इसकी विशेषता-

खीणे घादिचउक्के, णंतचउक्कस्स होदि उप्पत्ती।
सादी अपज्जवसिदा, उक्कस्साणंतपरिसंखा ।।६११।।

क्षीणे घातिचतुष्केऽनन्तचतुष्कस्य भवत्युत्पत्तिः।
सादिरपर्यवसितोत्कृष्टानन्तपरिसङ्ख्या।।६११।।

अन्वयार्थ - (घादिचउक्के खीणे) चार घातिकर्मों का नाश होने पर **(णंतचउक्कस्स)** अनन्तचतुष्टय की **(उप्पत्ती)** उत्पत्ति **(होदि)** होती है। यह अनन्त चतुष्टय आदि सहित और अन्त से रहित अविनाशी है। वैसे ही **(उक्कस्साणंतपरिसंख्या)** उत्कृष्ट अनन्त संख्यायुक्त है।

विशेषार्थ - अनन्तचतुष्टय की उत्पत्ति हुई इसलिए वह सादि है और वह अन्त से रहित होने से अनन्त है। वैसे ही अविभाग प्रतिच्छेदों की अपेक्षा से उत्कृष्ट अनन्तानन्त संख्याप्रमाण है अर्थात् केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेद उत्कृष्ट अनन्तानन्त हैं।

कौन - से कर्म के क्षय से कौन -सा गुण होता है -

आवरणदुगाण खये, केवलणाणं च दंसणं होदि।
विरियंतरायियस्स य खएण विरियं हवे णंतं।।६१२।।

आवरणद्विकयोः क्षये केवलज्ञानं च दर्शनं भवति ।
वीर्यान्तरायिकस्य च क्षयेण वीर्यं भवेदनन्तम् ।।६१२ ।।

अन्वयार्थ - (आवरणदुगाण खये) दो आवरणों का क्षय होने से **(केवलणाणं)** केवलज्ञान और **(दंसणं)** केवलदर्शन **(होदि)** होता है। **(विरियंतरायियस्स य)** वीर्यान्तराय कर्म के **(खएण)** क्षय से **(णंतं विरियं)** अनन्तवीर्य **(हवे)** होता है।

विशेषार्थ - ज्ञानावरण के क्षय से केलवज्ञान और दर्शनावरण के क्षय से केवलदर्शन प्रकट होता है। इसमें से केवलज्ञान इंद्रिय, मन और प्रकाशादि की सहायता से रहित है। इसलिए उसे केवल कहते हैं। वह ज्ञान सूक्ष्म, अंतरित और दूरवर्ती पदार्थों को प्रत्यक्ष युगपत् जानता है। उसमें से परमाणु आदि को सूक्ष्म कहते हैं। अतीत और अनागत कालसंबंधी पदार्थों को अंतरित कहते हैं और दूरक्षेत्रवर्ती पदार्थों को दूरवर्ती कहते हैं। उसीप्रकार केवलदर्शन सभी पदार्थों को युगपत् देखता हैं। जिसप्रकार चन्द्रमा में शीतस्पर्श और श्वेतवर्णता युगपत् है। उसीप्रकार जिनेन्द्र भगवन्तों में केवलज्ञान और केवलदर्शन युगपत् प्रवृत्त होते हैं। छद्मस्थ के समान क्रमवर्ती नहीं हैं।

वीर्यान्तराय कर्म के क्षय से अप्रतिहत सामर्थ्ययुक्त अनन्तवीर्य प्रगट होता है। अनन्तवीर्य के सद्भाव से समस्त ज्ञेयों को सदैव जानते हुए भी खेद उत्पन्न नहीं होता है।अनन्तवीर्य की सहायता के बिना उपयोग की वृत्ति निरन्तर अवस्थित नहीं रह सकती है।

अनन्तसुख की उत्पत्ति का कारण और उसकी विशेषता कहते हैं -

णवणोकसायविग्घचउक्काणं च य खयादणंतसुहं ।
अणुवममव्वाबाहं अप्पसमुत्थं णिरावेक्खं ।।६१३ ।।

नवनोकषायविघ्नचतुष्काणां च क्षयादनन्तसुखम् ।
अनुपममव्याबाधमात्मसमुत्थं निरपेक्षम् ।।६१३ ।।

अन्वयार्थ - (णवणोकसायविग्घचउक्काणं) नौ नोकषाय और अंतरायचतुष्क के **(खयादणंतसुहं)** क्षय से अनन्तसुख प्रगट होता है **(य)** और वह सुख **(अणुवमं)** अनुपम अर्थात् उपमारहित **(अव्वाबाहं)** अव्याबाध **(अप्पसमुत्थं)** आत्मा से उत्पन्न और **(णिरावेक्खं)** निरपेक्ष है।

विशेषार्थ - हास्यादि नौ नोकषाय और दानादि चार अन्तराय इन कर्मों के क्षय से अनन्तसुख उत्पन्न होता है। इसप्रकार का सुख अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं होता है इसलिए वह अनुपम है अर्थात् उस सुख को किसी की भी उपमा नहीं दे सकते है। किसी से भी वह सुख बाधित नहीं होता है इसलिए

अव्याबाध है। आत्मा से ही उत्पन्न होता है इसलिए आत्मसमुत्थ है। इन्द्रिय, विषयादिकों की अपेक्षा से रहित है इसलिए निरपेक्ष है। इसप्रकार ज्ञानवैराग्य की उत्कृष्टता को प्राप्त केवलियों को अनाकुल लक्षण वाला अनन्तसुख जानना चाहिए।[१]

क्षायिक सम्यकत्व और उत्कृष्ट चारित्र की उत्पत्ति का कारण कहते हैं-

सत्तण्हं पयडीणं, खयादु खइयं तु होदि सम्मत्तं ।
वरचरणं उवसमदो खयदो दु चरित्तमोहस्स ।।६१४।।

सप्तानां प्रकृतींना क्षयात् क्षायिकं तु भवति सम्यक्त्वम्।
वरचरणं उपशमतः क्षयतस्तु चारित्रमोहस्य ।।६१४।।

अन्वयार्थ- (सत्तण्हं पयडीणं खयादु) सात प्रकृतियों के क्षय से **(खइयं सम्मत्तं)** क्षायिक सम्यक्त्व **(होदि)** होता है और **(चरित्तमोहस्स उवसमदो खयदो दु)** चारित्रमोह के उपशम या क्षय से **(वरचरणं)** उत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र होता है।

विशेषार्थ - अनन्तानुबन्धी चार कषाय और तीन दर्शन मोह (मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व) इन सात प्रकृतियों के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। चारित्र मोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों के उपशम अथवा क्षय से यथाख्यात चारित्र नामक उत्कृष्ट चारित्र होता है। वह निष्कषाय आत्मचरणरूप है। यहाँ क्षायिक यथाख्यातचारित्र का प्रकरण है, तथापि उपशान्तकषाय गुणस्थान में भी यथाख्यातचारित्र प्राप्त होता है इसलिए उपशम यथाख्यात चारित्र का भी उल्लेख किया है।

केवलियों को असातावेदनीय के उदय से क्षुधादि परिषह होते हैं इसलिए उनकी भी आहारादि क्रियाएँ होती हैं इस प्रकार की शंका होने पर उसका परिहार करते हैं -

जं णोकसायविग्घचउक्काण बलेण दुक्खपहुदीणं।
असुहपयडिणुदयभवं इंदियखेदं हवे दुक्खं ।।६१५।।

यन्नोकषायविघ्नचतुष्काणां, बलेन दुःखप्रभृतीनाम्।
अशुभप्रकृतीनामुदयभवमिन्द्रियखेदं भवेद्दुःखम्।। ६१५।।

अन्वयार्थ - (णोकसायविग्घचउक्काण) नोकषाय और अंतराय चतुष्क के उदय की

१) ज.ध. पु.१६ पृ. १३३

(बलेण) सहायता से **(दुक्खपहुडदीणं)** दु:खरूप असातावेदनीय आदि **(असुहपयडिणुदयभवं)** अशुभ प्रकृतियों के उदय से होनेवाला **(इंदियखेदं)** इंद्रियों को खेदरूप **(दुक्खं हवे)** दु:ख है।

विशेषार्थ - नोकषाय और अंतराय के उदय की सहायता से असातावेदनीय आदि अशुभप्रकृतियों के उदय से उत्पन्न आकुलता दु:ख है। केवलियों को मोहनीय और अंतराय कर्म का क्षय होने से इंद्रिय खेदरूप दु:ख नहीं होता है।

इंद्रियसुख की व्याख्या करते हैं -

जं णोकसायविग्घचउक्काण बलेण सादपहुदीणं।
सुहपयडीणुदयभवं इंदियतोसं हवे सोक्खं।।६१६।।

यन्नोकषायविघ्नचतुष्काणां बलेन सातप्रभृतीनाम्।
शुभप्रकृतीनामुदयभवमिन्द्रियतोषं भवेत् सौख्यम्।।६१६।।

अन्वयार्थ - (णोकसायविग्घचउक्काण) नोकषाय और अंतराय चतुष्क के उदय की **(बलेण)** सहायता से **(साहपहुदीणं)** सातावेदनीय आदि **(सुहपयडीणुदयभवं)** शुभप्रकृतियों के उदय से उत्पन्न **(जं)** जो **(इंदियतोसं)** इंद्रियों का संतोष अर्थात् किंचित् निराकुलतारूप **(सोक्खं)** सुख **(हवे)** होता है।

विशेषार्थ - नोकषाय और अंतराय चतुष्क के निमित्त से सातावेदनीयादि शुभ प्रकृतियों के उदय से इंद्रियों को संतुष्ट करनेवाला सुख केवलियों को नहीं हैं। क्योंकि वे घातिकर्मरहित और इन्द्रियज्ञान से रहित हैं।

केवलियों को साता-असाताजनित सुखदु:ख के अभाव का कारण -

णट्ठा य रायदोसा इंदियणाणं चं केवलिम्हि जदो ।
तेण दु सादासादजसुहदुक्खं णत्थि इंदियजं ।।६१७।।

नष्टौ च रागद्वेषाविन्द्रियज्ञानं च केवलिनि यतः ।
तेन तु सातासातजसुखदु:खं नास्तीन्द्रियजम्।।६१७।।

अन्वयार्थ - (जदो) जिस कारण से **(केवलिम्हि)** केवलियों में **(रायदोसा)** राग-द्वेष **(णट्ठा)** नष्ट हुए हैं **(च)** और **(इंदियणाणं)** इंद्रियज्ञान नष्ट हुआ है **(तेण)** उस कारण से केवलियों के

(सादासादजसुहदुक्खं इंदियजं) साता-असाता वेदनीय के उदय से उत्पन्न इंद्रियजनित सुख दुःख **(णत्थि)** नहीं है।

विशेषार्थ- केवलियों को रागद्वेष और इंद्रियज्ञान का अभाव हुआ है इसलिए उन्हें साता-असाता उदयजनित सुख-दुःख नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि असातावेदनीय के उदयरूप कारण के सद्भाव से केवलियों को असाता वेदनीय के उदय से उत्पन्न परीषह उपचारमात्र कहे हैं। तथापि परीषहजनित दुःख उनको नहीं होता है क्योंकि घातिकर्म के उदय के सद्भाव में ही वेदनीय के उदय से सुख-दुःख होता है। जिसप्रकार उपघात परघात नामकर्म का उदय होने पर भी घातिकर्म के उदय बिना अपना और दूसरों का घात नहीं होता हैं। जब ऐसा नहीं हो तो परीषहों के निमित्त से केवलियों को दुःख होता और अनन्तसुख का अभाव मानना पड़ता इसलिए केवलियों के आहारादि क्रियायें होती हैं ऐसा मानना अयुक्त है।

अब अन्य कारण कहते हैं -

समयट्ठिदिगो बंधो सादस्सुदयप्पिगो जदो तस्स।
तेण असादस्सुदओ सादसरूवेण परिणमदि ।।६१८।।

समयस्थितिको बन्धः सातस्योदयात्मको यतस्तस्य ।
तेनासातस्योदयः सातस्वरूपेण परिणमति ।।६१८।।

अन्वयार्थ - (जदो) जिस कारण से **(तस्स)** उन्हें (केवलियों को) **(समयट्ठिदिगो)** एक समय स्थितिवाला **(सादस्स)** सातावेदनीय का **(बंधो)** बंध **(उदयप्पिगो)** उदयात्मक है **(तेण)** उस कारण से उन्हें **(असादस्सुदओ)** असाता का उदय **(सादासरूवेण)** सातास्वरूप से **(परिणमदि)** परिणमता है।

विशेषार्थ - केवलियों को एक समयमात्र स्थितिसहित सातावेदनीय का जो बंध होता है वह उदयस्वरूप ही है इसलिए असाता का उदय है फिर भी सातारूप परिणमता है क्योंकि परमविशुद्धता से साता का अनुभाग बहुत अधिक होता है उसमें अत्यन्त हीन अनुभागयुक्त असाता का उदय खंडित होता है अर्थात् असाता के उदय का कार्य व्यक्त नहीं दिखता है इसलिए उन्हें असाताजनित क्षुधादि परिषह की वेदना नहीं है। वेदना बिना उसका प्रतिकारस्वरूप आहार कैसे संभव है?

जब आहार संभव नहीं तो शास्त्र में केवलियों को आहारमार्गणा का सद्‌भाव कैसे कहा? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं-

पडिसमयं दिव्वतमं जोगी णोकम्मदेहपडिबद्धं ।
समयपबद्धं बंधदि गलिदवसेसाउमेत्तठिदी ।।६१९।।

प्रतिसमयं दिव्यतमं योगी नोकर्मदेहप्रतिबद्धम् ।
समयप्रबद्धं बध्नाति गलितावशेषायुर्मात्रस्थितिः ।।६१९।।

अन्वयार्थ - (जोगी) सयोगी जिन **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(दिव्वतमं)** दिव्यतम ऐसा **(णोकम्मदेहपडिबद्धं)** नोकर्म अर्थात् औदारिक शरीर संबंधी **(समयप्रबद्धं)** समयप्रबद्ध को **(बंधदि)** बाँधता है **(गलिदवसेसाउमेत्तठिदी)** उस समयप्रबद्ध की स्थिति सयोगिजिन की जितनी आयु गलकर शेष रही हैं उतनी जाननी चाहिए ।

विशेषार्थ - नोकर्मवर्गणा ग्रहण करने को ही आहारमार्गणा कहते हैं। इसका सद्‌भाव सयोग केवलियों को है क्योंकि ओज, लेप्य, मानसिक, कवल, कर्म व नोकर्म के भेद से आहार छह प्रकार का है। उनमें से सयोगकेवलियों को कर्म और नोकर्म ये दो आहार हैं। सातावेदनीय के समयप्रबद्ध को ग्रहण करते हैं वह कर्माहार है और औदारिक शरीर के समयप्रबद्ध को ग्रहण करते हैं वह नोकर्म आहार है। केवलियों को अन्य किसी प्रकार का आहार नहीं है।

समुद्‌घातगत केवलियों को तीन समय तक नोकर्माहार का अभाव कहते हैं-

णवरि समुग्घादगदे पदरे तह लोकपूरणे पदरे ।
णत्थि तिसमये णियमा णोकम्माहारयं तत्थ ।।६२०।।

नवरि समुद्‌घातगते प्रतरे तथा लोकपूरणे प्रतरे ।
नास्ति त्रिसमये नियमात् नोकर्माहारकस्तत्र ।।६२०।।

अन्वयार्थ - (णवरि) इतनी विशेषता है कि **(समुग्घादगदे)** समुद्‌घातगत **(तत्थ)** केवलियों में **(पदरे)** प्रतर **(लोग पूरणे)** लोकपूरण **(तह)** तथा वैसे ही **(पदरे)** प्रतर इन **(तिसमये)** तीन समयों में **(णियमा)** नियम से **(णोकम्माहारयं)** नोकर्म आहार **(णत्थि)** नहीं है ।

विशेषार्थ- केवलिसमुद्‌घात करते समय केवलियों को प्रतर समुद्‌घात का दो समय और

लोकपूरण का एक समय इन तीन समयों में नोकर्म का आहार नहीं होता है अर्थात् उस समय केवलीअनाहारक होते हैं। अन्य सर्वकाल में सयोगिजिनों को नोकर्म आहार है।

अब यहाँ समुद्घात कब होता है वह कहते हैं। क्षीणकषाय के अनन्तर जो सयोगी तीर्थंकर केवलि होते हैं वें समवसरण सभा के मध्यभाग में तीन पीठिका के ऊपर सिंहासन पर विराजमान होते हैं। वे अष्ट प्रातिहार्य और चौंतीस अतिशय सहित हैं। सप्तधातु मलरहित परम औदारिक शरीर सहित हैं। सर्वलोकपूज्य हैं। एक योजन में स्थित ऐसे दूर और निकटवर्ती तिर्यंच, मनुष्य और देवों की अठारह महाभाषा और सात सौ लघुभाषारूप परिणमित ऐसी दिव्यध्वनि द्वारा आसन्न भव्यजीवों को संसार से पार कराते हैं। जिसप्रकार इच्छा बिना चन्द्र समुद्र को बढ़ाता है उसी प्रकार केवलिभगवान इच्छारहित होकर जगत का हित करते हैं। सर्व जीवों का कल्याण हो इसप्रकार के उपकाररूप परिणामों से पूर्व में ऐसा कर्म बाँधा था जिसके उदय से सर्व जीवों का स्वयमेव उपकार होता है।

भगवान विहार करते हैं तब आकाश में दो सौ पच्चीस कमलों पर स्वयमेव गमन करते हैं। इस प्रकार उत्कृष्टरूप से कुछ कम एक कोटि पूर्व और जघन्यरूप से पृथक्त्व वर्ष प्रमाण तीर्थंकर केवलियों की स्थिति सयोगकेवलि गुणस्थान में जाननी चाहिए। सामान्य केवलियों का यथासंभव अतिशय जानना चाहिए और जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त जानना।

वहाँ सयोगी के प्रथम समय से उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि निर्जरा होती है। प्रथम समय में वेदनीय, नाम और गोत्र के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर एक भागमात्र द्रव्य ग्रहण करके पूर्व में कहे गए अनुसार गुणश्रेणि में देने योग्य द्रव्य में से उदयरूप प्रथम निषेकों में अल्प और द्वितीय निषेक से लेकर गुणश्रेणिशीर्ष तक के निषेकों में असंख्यातगुणित क्रम से निक्षेपण करता है। उपरितन स्थिति में देने योग्य द्रव्य में से प्रथम निषेक में गुणश्रेणिशीर्ष संबंधी निषेक में दिये गए द्रव्य से असंख्यातगुणा देता है और द्वितीय निषेक से लेकर अतिस्थापनावलि के अधस्तन निषेक तक चय घटते क्रम से द्रव्य देता है। क्षीणकषाय द्वारा अपकर्षण किये द्रव्य से सयोगी केवलियों का अपकृष्ट द्रव्य असंख्यातगुणा जानना और उसके गुणश्रेणि आयाम की अपेक्षा इनका गुणश्रेणि आयाम संख्यातगुणा हीन जानना क्योंकि अधस्तन गुणश्रेणिस्थान से उपरिम गुणश्रेणि स्थान में द्रव्य असंख्यातगुणा होता है और गुणश्रेणि आयाम संख्यातगुणा हीन होता है। अर्थात् विशुद्ध परिणामों से थोड़े काल में अधिक निर्जरा होती है।

सयोगकेवली के द्वितीयादि समयों में भी ऐसा विधान जानना चाहिए। परिणाम अवस्थित होने से अपकृष्ट द्रव्य और गुणश्रेणि आयाम की समानता जानना चाहिए।इतना विशेष है कि गुणश्रेणि आयाम अवस्थित है इसलिए जैसे-जैसे गुणश्रेणि आयाम का एक-एक समय व्यतीत होता है वैसे-वैसे उपरितन स्थिति का एक-एक निषेक गुणश्रेणि में मिलता हैं।

इस प्रकार सयोगि का बहुत काल व्यतीत होने पर समुद्घात क्रिया कौन से काल में होती है वह कहते हैं-

अंतोमुहुत्तमाऊ परिसेसे केवली समुग्घादं ।
दंड कवाटं पदरं लोगस्स य पूरणं कुणदी ।।६२१ ।।

अन्तर्मुहूर्तमायुषि परिशेषे केवली समुद्घातं ।
दण्डं कपाटं प्रतरं लोकस्य च पूरणं करोति ।।६२१ ।।

अन्वयार्थ - (अंतोमुहुत्तमाऊ परिसेसे) अंतर्मुहूर्तप्रमाण आयु शेष रहने पर **(केवली)** केवली भगवान **(दंड)** दंड, **(कवाटं)** कपाट, **(पदरं)** प्रतर **(य)** और **(लोगस्स पूरणं)** लोकपूरणरूप से **(समुग्घादं)** समुद्घातक्रिया **(कुणदी)** करते हैं।

विशेषार्थ - अपनी आयु अंतर्मुहूर्त शेष रहने पर सयोगी जिन समुद्घात क्रिया करते हैं। समुद्घात याने मूलशरीर को न छोड़ते हुए आत्मप्रदेशों का शरीर से बाहर फैलना । केवलिसमुद्घात के चार प्रकार हैं - १) दंड २) कपाट ३) प्रतर और ४) लोकपूरण। उसकी विधि आगे कहेंगे ।

समुद्घातक्रिया करने के पूर्व में आवर्जितकरण होता है उसका वर्णन करते हैं -

हेट्ठा दंडस्संतोमुहुत्तमावज्जिदं हवे करणं ।
तं च समुग्घादस्स य अहिमुहभावो जिणिंदस्स ।।६२२ ।।

अधस्तनं दण्डस्यान्तर्मुहूर्तमावर्जितं भवेत् करणम् ।
तच्च समुद्घातस्य च अभिमुखभावो जिनेन्द्रस्य ।।६२२ ।।

अन्वयार्थ - (दंडस्स अंतोमुहुत्तं हेट्ठा) दण्ड समुद्घात करने के अंतर्मुहूर्त काल पूर्व में **(आवज्जिदं करणं)** आवर्जित करण **(हवे)** होता है।**(तं च)** और वह आवर्जितकरण अर्थात् **(जिणिंदस्स)** जिनेन्द्रदेव का **(समुग्घादस्स अहिमुहभावो)** समुद्घात क्रिया करने के प्रति सम्मुखपना है।

विशेषार्थ - केवलिसमुद्घात के अभिमुख भाव को आवर्जितकरण कहते हैं। केवलि आवर्जितकरण का पालन करते हैं क्योंकि अन्तर्मुहूर्तमात्रयुक्त आवर्जितकरण बिना केवलिसमुद्घातरूप क्रिया की उत्पत्ति नहीं होती है।

केवलियों का स्थिति-अनुभागकांडकघात का अभाव और गुणश्रेणि का वर्णन करते हैं -

सट्ठाणे आवज्जिदकरणेवि य णत्थि ठिदिरसाण हदी ।
उदयादि अवट्ठिदया गुणसेढी तस्स दव्वं च ।।६२३ ।।

स्वस्थाने आवर्जितकरणेऽपि च नास्ति स्थितिरसयोर्हतिः ।
उदयाद्यवस्थितौ गुणश्रेणिस्तस्य द्रव्यं च ।।६२३ ।।

अन्वयार्थ - (सट्ठाणे) स्वस्थान में **(य)** और **(आवज्जिदकरणेवि)** आवर्जितकरण में भी **(ठिदिरसाण)** स्थिति और अनुभाग का **(हदी)** घात **(णत्थि)** नहीं होता है। तथा **(उदयादि अवट्ठिदया)** उदयादि अवस्थितरूप **(गुणसेढी)** गुणश्रेणी है **(च)** और **(तस्स)** उस गुणश्रेणि का **(दव्वं)** द्रव्य भी अवस्थित है।

विशेषार्थ - आवर्जितकरण के पूर्व में स्वस्थान में और आवर्जितकरण में भी कांडकादि विधानद्वारा स्थिति और अनुभाग का घात नहीं होता है। गुणश्रेणि आयाम उदयसमय से है और अवस्थित है। उसमें देने योग्य द्रव्य भी अवस्थित है। विशेष यह है कि स्वस्थान केवलि के गुणश्रेणि आयाम से आवर्जितकरणयुक्त केवलियों का गुणश्रेणि आयाम संख्यातगुणा हीन है इसलिए पूर्व के गुणश्रेणिशीर्ष से वर्तमान गुणश्रेणिशीर्ष नीचे है। परन्तु स्वस्थान केवलिद्वारा अपकर्षण किये द्रव्य से आवर्जितकरणयुक्त केवलीद्वारा अपकर्षण किया द्रव्य असंख्यातगुणा है क्योंकि गुणश्रेणि निर्जरा के ग्यारह स्थान कहे हैं वहाँ ऐसा ही क्रम कहा है।

शंका - स्वस्थान केवली और आवर्जितकरणयुक्त केवलियों के अवस्थित एकस्वरूप परिणाम होने पर भी गुणश्रेणि निक्षेप में विसदृशपना किस कारण से है?

समाधान - वीतराग परिणामों में भेद का अभाव होने पर भी अंतर्मुहूर्त आयु शेष रहने का निमित्त प्राप्त करके विशेषता होने से स्वस्थान केवली से समुद्घात के सन्मुख केवलियों के गुणश्रेणि आयाम और अपकृष्टद्रव्य की समानता नहीं कही।

स्वस्थान केवलियों के प्रथम समय से अंतिम समय तक गुणश्रेणि आयाम और अपकृष्टद्रव्य समान है इसलिए अवस्थित जानना चाहिए। आवर्जितकरण के प्रथम समय से सयोगी के द्विचरम स्थितिकांडक की अंतिम फालि पतन के समय तक गुणश्रेणि आयाम और अपकृष्ट द्रव्य समान है इसलिए अवस्थित जानना चाहिए।

अब आवर्जितकरण में गुणश्रेणि आयाम का प्रमाण कहते हैं-

जोगिस्स सेसकाले गयजोगी तस्स संखभागो य ।
जावदियं तावदिया आवज्जिदकरणगुणसेढी ।।६२४।।

योगिनः शेषकाले गतयोगी तस्य सङ्ख्यभागश्च ।
यावत् तावत्कमावर्जितकरणगुणश्रेणिः ।।६२४।।

अन्वयार्थ - (जोगिस्स सेसकाले) सयोगकेवली का शेष रहा काल **(गयजोगी)** अयोगकेवली का काल **(य)** और **(तस्स संखभागो)** उसका संख्यातवाँ भाग **(जावदियं)** सभी मिलकर जितना काल है **(तावदिया)** उतना **(आवज्जिदकरणगुणसेढी)** आवर्जितकरण का गुणश्रेणि आयाम है।

विशेषार्थ - आवर्जितकरण के प्रथम समय में सयोगी का शेष रहा काल, अयोगी का सर्व काल और अयोगी के काल का संख्यातवाँ भाग यह सब मिलकर जितना काल होता है उतना आवर्जितकरण के प्रथम समय से द्विचरम कांडक की अंतिम फालि के पतन समय तक अवस्थित गुणश्रेणि-आयाम है। वहाँ अपकृष्ट द्रव्य देने का विधान जैसा स्वस्थान केवली में कहा है वैसा ही जानना चाहिए।

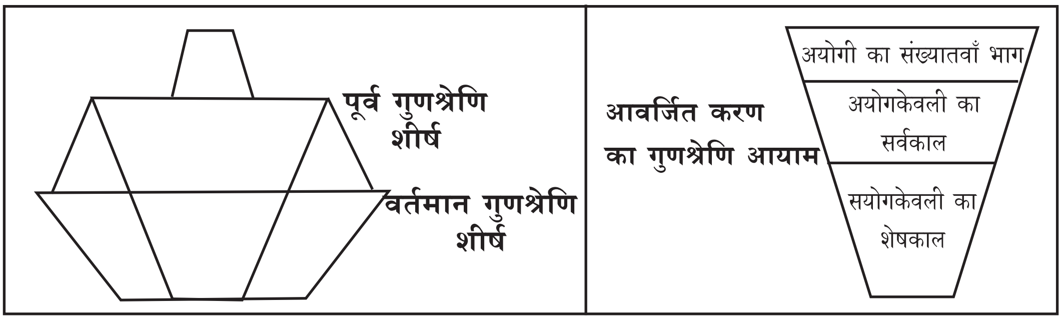

इस प्रकार अंतर्मुहूर्तमात्र आवर्जितकरण काल में क्रिया विशेष होते हैं। उसके अनन्तर केवलिसमुद्घात क्रिया करते हैं।

शंका - केवलिसमुद्घात किसे कहते है?

समाधान - उद्गमनमुद्घातः जीवप्रदेशानां विसर्पणमित्यर्थः। समीचीन उद्घातः समुद्घातः केवलिनां समुद्घातः केवलिसमुद्घातः।[1] उद्गम (निकल जाना, बाहर निकलना) इसे उद्घात कहते हैं अर्थात् जीवप्रदेशों का फैलना उद्घात है। समीचीन उद्घात समुद्घात होता है। केवलियों का समुद्घात केवलिसमुद्घात होता है। अघातिकर्मों की स्थिति समान करने के लिए जीवप्रदेशों का आगम

१) ज.ध. पु.१६ पृ.१५१

अविरूद्ध ऊपर नीचे और तिर्यक्रूप से फैलना उसे समुद्घात कहते हैं। समुद्घात दंड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण के भेद से चार प्रकार का है।

१) दंडसमुद्घात - अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयु शेष रहने पर केवलि समुद्घात करनेवाले केवली जिन पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर कायोत्सर्ग अथवा पद्मासन में स्थित होते हैं। कायोत्सर्ग से दण्डसमुद्घात करनेवाले केवलियों के मूलशरीर की परिधि प्रमाण कुछ कम चौदह राजू लंबे दण्डाकाररूप से जीवप्रदेशों का फैलना दण्डसमुद्घात है। यहाँ कुछ कम का प्रमाण लोक के नीचे और ऊपर लोक तक वातवलय से रोका हुआ क्षेत्र है क्योंकि स्वभाव से उस अवस्था में वातवलय के अंदर केवलियों के जीवप्रदेशोंका प्रवेश नहीं होता है। उत्कृष्ट अवगाह युक्त केवलियों के शरीर एक सौ आठ प्रमाणांगुल प्रमाण लंबे होते हैं। उसका नववां भाग चौड़ाई होती है। १०८÷९= १२ अंगुल व्यास की सूक्ष्म परिधि सैंतीस अंगुल और एक अंगुल के एक सौ तेरह भागों में से पिञ्च्यानवें भागमात्र $\left(३७\frac{९५}{११३}\right)$ होते हैं। यह कायोत्सर्ग स्थित केवलियों की परिधि का प्रमाण जानना चाहिए ।

पद्मासन स्थित केवलियों की चौड़ाई उससे तिगुणी अर्थात् १२ × ३ = ३६ अंगुल हैं। उसकी सूक्ष्म परिधि का प्रमाण एक सौ तेरह अंगुल और एक अंगुल के एक सौ तेरह भागों में से सत्ताईस भागमात्र $\left(११३\frac{२७}{११३}\right)$ है। इस परिधिरूप होकर कुछ कम चौदह राजू ऊँचे आत्मप्रदेश होते हैं।

२) कपाट समुद्घात- द्वितीय समय में केवली जिन कपाट समुद्घात करते हैं। कपाट के आकार के समान प्रदेश फैलते हैं इसलिए इसे कपाट समुद्घात कहते हैं। उसमें से पूर्व दिशा के सन्मुख कायोत्सर्ग आसनयुक्त केवलियों के प्रदेश कुछ कम चौदह राजू ऊँचे, कुछ कम सात राजू लंबे और बारह अंगुल चौड़े होते हैं। वैसे ही पूर्व सम्मुख पद्मासन स्थित केवलियों के प्रदेश ऊँचे और लंबे पूर्व के समान ही, चौड़े छत्तीस अंगुल होते हैं।

उत्तरदिशा के सन्मुख कायोत्सर्ग स्थित केवलियों के प्रदेश कुछ कम चौदह राजू ऊंचे और लंबाई में नीचे सात राजू क्रम से कम होते हुए मध्यलोक के निकट १ राजू पुनः बढ़ते हुए ब्रह्मस्वर्ग के निकट ५ राजू क्रम से कम होते हुए ऊपर एक राजू लंबे और सर्वत्र बारह अंगुल चौड़े होते हैं।उत्तर सम्मुख पद्मासनस्थित केवलियों के प्रदेश ऊँचे कुछ कम चौदह राजू, लंबाई पूर्व के समान कम-अधिक रूप चौड़ाई छत्तीस अंगुल होती हैं। इस प्रकार जिस प्रकार कपाट चौड़ाई की अपेक्षा से कम और लंबाई और ऊँचाई की अपेक्षा से अधिक होता है उसी प्रकार जीवों के प्रदेश चौड़े कम और लंबे तथा ऊँचे अधिक फैलते हैं। इस प्रकार इस समुद्घात में स्पष्टरूप से कपाट का आकार प्राप्त होता है।

३) प्रतर समुद्घात - तृतीय समय में केवलि जिन प्रतर समुद्धात करते हैं। इसे ही मन्थ समुद्धात भी कहते हैं। जिसके द्वारा कर्म नष्ट किये जाते हैं उसे मन्थ कहते हैं। अघातिकर्मों की स्थिति और अनुभाग का निर्मंथन करने के लिए केवलियों के प्रदेशों की जो अवस्था होती है उसे प्रतर संज्ञावाला मन्थ समुद्धात कहते हैं। इस अवस्था विशेष में विद्यमान केवलियों के प्रदेश चारों पार्श्वभाग में काकाश

प्रतराकाररूप से फैलकर वातवलय बिना संपूर्ण लोकाकाश के प्रदेशों में पूर्णरूप से अवस्थित रहते हैं।

४) **लोकपूरण समुद्घात -** चौथे समय में लोकपूरण समुद्घात होता है। इसमें वातवलय सहित सर्व लोक में आत्मा के प्रदेश फैलते हैं। संपूर्ण लोक को जीवप्रदेशों से पूर्ण करता है इसलिए इसे लोकपूरण कहते हैं। इसप्रकार चार समयों में दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरणरूप क्रम से प्रदेश फैलते हैं।

चार समयों में जो कार्यविशेष होते हैं वह कहते हैं-

ठिदिखंडमसंखेज्जे भागे रसखंडमप्पसत्थाणं ।
हणदि अणंता भागा दंडादी चउसु समएसु ।।६२५।।

स्थितिखण्डमसङ्ख्येयान् भागान् रसखण्डमप्रशस्तानाम् ।
हन्त्यनन्तान् भागान् दण्डादिचतुर्षु समयेषु ।।६२५।।

अन्वयार्थ - (दंडादी चउसु समएसु) दंडादि चार समयों में **(ठिदिखंडं)** स्थितिकाण्डक **(असंखेज्जे भागे)** असंख्यात बहुभागमात्र और **(अप्पसत्थाणं)** अप्रशस्त कर्मों का **(रसखंडं)** अनुभागकांडक **(अणंता भागा)** अनन्त बहुभागमात्र **(हणदि)** घातता है।

विशेषार्थ - दण्डरूप प्रथम समय में नाम, गोत्र, वेदनीय का स्थितिसत्त्व पूर्व में पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र $\frac{\text{प}}{a}$ था। उसे असंख्यात का भाग देकर $\frac{\text{प}}{a\,a}$ उसमें से बहुभागमात्र $\frac{\text{प}}{a}\cdot\frac{a-1}{a}$ घात करके एक भागमात्र $\frac{\text{प}}{a\,a}$ शेष रखता है।

अप्रशस्त प्रकृतियों का क्षीणकषाय के अंतिम समय में जो अनुभाग शेष था उसे अनन्त का भाग देकर वहाँ बहुभागमात्र घात करके एक भागमात्र शेष रखता है ।

कपाटरूप द्वितीय समय में दंड समुद्घात में जो स्थिति और अनुभाग शेष रहता है उसे क्रम से असंख्यात और अनन्त का भाग देकर उसमें से बहुभाग घात करके एक भागमात्र शेष रखता है। प्रतररूप तृतीय समय में कपाट समुद्घात में जो स्थिति और अनुभाग शेष रहा था उसे क्रम से असंख्यात और अनन्त का भाग देकर उसमें से बहुभाग घात करके एक भागमात्र शेष रखता है ।

लोकपूरणरूप चौथे समय में प्रतर समय में जो स्थिति और अनुभाग रहा था उसे क्रम से असंख्यात और अनन्त का भाग देकर उसमें से बहुभाग घात करके एक भाग शेष रखता है। यहाँ अन्तर्मुहूर्त स्थिति शेष रखकर शेष सर्व स्थिति का घात होता है। प्रशस्त प्रकृतियों का स्थितिघात होता है, किन्तु अनुभाग घात नहीं होता है। गुणश्रेणि निर्जरा आवर्जितकरण के समान होती है।

समुद्‌घात के चार समयों में स्थितिकाण्डकघात का चित्र

समुद्‌घात	तीन अघाति कर्मों का स्थितिकाण्डक	शेष स्थिति
	बहुभागप्रमाण	एकभागप्रमाण
दण्ड	प ${}^{१}\overline{व}$ व व	प व व
कपाट	प ${}^{१}\overline{व}$ व व व	प व व व
प्रतर	प ${}^{१}\overline{व}$ व व व व	प व व व व
लोकपूरण	प - २११ व व व व	२११

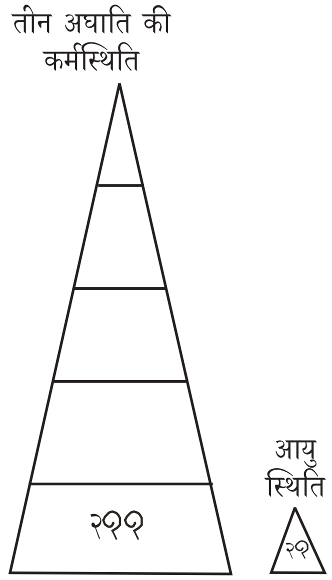

चउसमएसु रसस्स य अणुसम ओवट्टणा असत्थाणं ।
ठिदिखंडस्सिगिसमयिगघादो अंतोमुहुत्तुवरिं ।।६२६।।

चतु:समयेषु रसस्य चानुसमयापवर्तनमशस्तानाम् ।
स्थितिखण्डस्यैकसमयिकघातोऽन्तर्मुहूर्तोपरि ।।६२६ ।।

अन्वयार्थ - चार समयों में **(असत्थाणं)** अप्रशस्त प्रकृतियों के **(रसस्स)** अनुभाग का **(अणुसमओवट्टणा)** प्रत्येक समय में अपवर्तन और **(ठिदिखंडस्स)** स्थितिखण्ड का **(इगिसमयिगघादो)** एक समय वाला घात होता है। **(उवरिं)** उसके अनन्तर **(अंतोमुहुत्त)** अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डक होते हैं।

विशेषार्थ - इस प्रकार दण्डादि चार समयों में प्रत्येक समय में अप्रशस्त प्रकृतियों के अनन्त बहुभाग अनुभाग का घात होता है और एक समय में असंख्यात बहुभाग स्थिति का घात होता है। एक - एक समय में एक-एक स्थितिकाण्डकघात होना यह समुद्धात क्रिया का माहात्म्य है। लोकपूरण के अनन्तर एक- एक स्थितिकांडक और अनुभागकांडक का घात होने के लिए अंतर्मुहूर्त काल लगता है।

जगपूरणम्हि एक्का जोगस्स य वग्गणा ठिदी तत्थ।
अंतोमुहुत्तमेत्ता संखगुणा आउआ होदि ।।६२७।।

जगत्पूरणे एका योगस्य च वर्गणा स्थितिस्तत्र।
अन्तर्मुहूर्तमात्रा सङ्ख्यगुणा आयुषो भवति ।।६२७।।

अन्वयार्थ - (जगपूरणम्हि) लोकपूरण समुद्घात में **(जोगस्स)** योग की **(एक्का वग्गणा)** एक वर्गणा होती है **(तत्थ)** वहाँ **(आउआ)** आयु की अपेक्षा अन्य कर्मों की **(ठिदी)** स्थिति **(संख्यागुणा)** संख्यातगुणी **(अंतोमुहुत्तमेत्ता)** अन्तर्मुहूर्त प्रमाण **(होदि)** होती है।

विशेषार्थ - लोकपूरण के समय में योग की एक वर्गणा होती है । इसके पूर्व में आत्मा के प्रदेशों में हीनाधिक योगों के अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। यहाँ आत्मा के सर्वप्रदेशों में समान प्रमाणयुक्त योगों के अविभाग प्रतिच्छेद हुए। इसका नाम समयोग परिणाम है। सूक्ष्मनिगोदिया के जघन्य योगस्थान की जघन्य वर्गणा की अपेक्षा असंख्यातगुणी मध्यमवर्गणा के वर्गों के समान सभी आत्मप्रदेशों में समानरूप अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। यह समयोग एक समय ही रहता है। बाद में हीनाधिकता से युक्त पूर्वस्पर्धकरूप योग परिणमित होता है। वहाँ लोकपूरण समय में कर्मों की अंतर्मुहूर्तमात्र स्थिति शेष रखता है। यह शेष स्थिति आयु की अपेक्षा संख्यातगुणी है। पूर्व में जो पल्य के असंख्यातवें भागमात्र स्थिति थी उसमें से इतनी स्थिति शेष रखकर शेष सर्व स्थिति का कांडकद्वारा घात करता है।

लोकपूरण क्रिया के अनन्तर समुद्घातक्रिया को संकुचित करता है उसका क्रम कहते हैं-

एत्तो पदर कवाडं दंडं पच्चा चउत्थसमयम्हि।
पविसिय देहं तु जिणो जोगणिरोधं करेदीदि ।।६२८।।

अतः प्रतरं कपाटं दण्डं प्रतीत्य चतुर्थसमये।
प्रविश्य देहं तु जिनो योगनिरोधं करोतीति ।।६२८।।

अन्वयार्थ - (एत्तो) इस लोकपूरण के अनन्तर **(पदर कवाडं दंडं पच्चा)** प्रतर, कपाट और दण्डसमुद्घात का आश्रय करके **(चउत्थसमयम्हि)** चौथे समय में **(देहं)** मूल शरीर में **(पविसिय)** प्रवेश करके **(जिणो)** जिनेन्द्र भगवान् **(जोगनिरोधं)** योग निरोध **(करेदीदि)** करते हैं।

विशेषार्थ - लोकपूरण समुद्घात के अनन्तर प्रथम समय में लोकपूरण का संकोच करके प्रतररूप आत्मप्रदेश करते हैं। द्वितीय समय में प्रतर का संकोच करके कपाटरूप आत्मप्रदेश करते हैं। तृतीय ैर

समय में कपाट का संकोच करके दंडरूप आत्मप्रदेश करते हैं। समुद्घात क्रिया करने में और समेटने में (संकोच में) सात समय लगते हैं। उनमें से दंड के दो समयों में औदारिक काययोग होता है क्योंकि यहाँ अन्ययोग संभव नहीं है। कपाट के दो समयों में औदारिक मिश्र काययोग होता है क्योंकि यहाँ मूल औदारिक शरीर और कार्मण शरीर इन दोनों के अवलंबन से आत्मप्रदेश चंचल होते हैं। प्रतर के दो समयों में और लोकपूरण के एक समय में कार्मण काययोग होता है। क्योंकि यहाँ मूलशरीर के अवलंबन से आत्मप्रदेश चंचल नहीं हैं और शरीरयोग्य नोकर्मरूप पुद्गलों को ग्रहण नहीं करते हैं इसलिए वहाँ अनाहारक हैं। उसके अनन्तर मूलशरीर में प्रवेश करके उस शरीरप्रमाण आत्मा हुई। वहाँ औदारिक काययोग ही है। इसप्रकार समुद्घात क्रिया होती है।

लोकपूरण के अनन्तर स्थिति और अनुभाग कांडकघात शुरू होता है। मूलशरीर में प्रवेश करके अंतर्मुहूर्त काल तक विश्रान्ति लेता है। वहाँ संख्यात हजार स्थितिकांडक होने पर योगनिरोध होता है। यहाँ निरोध का अर्थ नाश जानना।

समय	**समुद्घात**	**योग**
१	दण्ड	औदारिक काययोग
२	कपाट	औदारिक मिश्र काययोग
३	प्रतर	कार्मण काययोग
४	लोकपूरण	कार्मण काययोग
५	प्रतर	कार्मण काययोग
६	कपाट	औदारिक मिश्र काययोग
७	दण्ड	औदारिक काययोग
८	मूल शरीर में प्रवेश	औदारिक काययोग

योगनिरोध का वर्णन करते हैं-

बादरमण वचि उस्सास कायजोगं तु सुहुमजचउक्कं।
रुंभदि कमसो बादरसुहुमेण य कायजोगेण ।।६२९।।

बादरमनो वच उच्छ्वास काययोगं तु सूक्ष्मजचतुष्कम्।
रुणद्धि क्रमशो बादरसूक्ष्मेण च काययोगेन ।।६२९।।

अन्वयार्थ - (बादरेण कायजोगेण) बादरकाययोग द्वारा **(बादरमण वचि उस्सास कायजोगं तु)** बादर मनोयोग वचनयोग, उच्छ्वास और काययोग को **(कमसो रुंभदि)** क्रम से नष्ट करता है। **(य)** और **(सुहुमेण कायजोगेण)** सूक्ष्मकाययोग द्वारा **(सुहुमजचउक्कं)** चारों सूक्ष्म योगों को **(कमसो रुंभदि)** क्रम से नष्ट करता है ।

विशेषार्थ - मन, वचन, काय की चेष्टा से उत्पन्न कर्मों को ग्रहण करने में कारणभूत शक्तिस्वरूप जीवप्रदेशों के परिस्पंदन को योग कहते हैं। वह योग मनोयोग, वचनयोग और काययोग के भेद से तीन प्रकार का है। उनमें से प्रत्येक योग दो प्रकार का है - बादर और सूक्ष्म। योगनिरोध क्रिया संपन्न होने के पूर्व में सर्वत्र बादरयोग होता है। इसके अनन्तर सूक्ष्मयोग से परिणमन करके योग का निरोध करते हैं।

केवली भगवान बादर काययोग में प्रवृत्त होकर प्रथम बादर मनोयोग को नष्ट करके सूक्ष्मरूप करते हैं। बाद में बादर वचनयोग को नष्ट करके सूक्ष्मरूप करते हैं। बाद में बादर उच्छ्वास को नष्ट करके सूक्ष्मरूप करते हैं। इसके पश्चात् बादर काययोग को नष्ट करके सूक्ष्मरूप करते हैं। इस प्रकार जो इनकी बादररूप शक्ति होती है वह घात करके सूक्ष्मरूप करी। इसके अनन्तर केवली भगवान सूक्ष्म काययोगरूप से प्रवर्तित होकर प्रथम सूक्ष्म मनोयोग को, पश्चात् सूक्ष्म वचनयोग को, उसके पश्चात् सूक्ष्म उच्छ्वास को और अन्त में सूक्ष्म काययोग को नष्ट करते हैं।

प्रश्न - विद्यमान वस्तु का नाश होता है। यहाँ काययोग छोड़कर अन्य योग नहीं है, क्योंकि सिद्धान्त में एक समय में एक योग कहा है। जब अन्ययोग है ही नहीं तो उसका नाश कैसे करते हैं?

उत्तर - वर्तमान व्यक्तरूप काययोग ही होता है, परन्तु मन और वचनवर्गणाओं में मनोयोग और वचनयोग उत्पन्न करने की शक्ति वहाँ होती है उसे नष्ट करते हैं। पहले तो उनकी बादर योग उत्पन्न करने की शक्ति दूर करके सूक्ष्मकृष्टियोग उत्पन्न करने की शक्तिरूप उनको करते हैं। बाद में उस शक्ति को भी नष्ट करके योग उत्पन्न करने की शक्ति से रहित करते हैं। यहाँ कारण में कार्य का उपचार करके योग को कारणभूत वर्गणा की शक्ति को योग कहा है।

पूर्व में बादरयोग था उसे सूक्ष्मरूप परिणमाने पर वें कैसे हुए? वह इस गाथा में कहते हैं-

सण्णिविसुहुमणि पुण्णे जहण्णमणवयणकायजोगादो ।
कुणदि असंखगुणूणं सुहुमणिपुण्णवरदो वि उस्सासं ।।६३० ।।

सञ्ज्ञिद्विसूक्ष्मे पूर्णे जघन्यमनोवचनकाययोगतः ।
करोत्यसङ्ख्यगुणोनं सूक्ष्मनिपूर्णावरतोऽप्युच्छ्वासम् ।।६३० ।।

अन्वयार्थ - (सण्णिविसुहुमणि पुण्णे) संज्ञी पर्याप्त, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त इनके क्रमश: **(जहण्णमणवयणकायजोगादो)** जघन्य मनोयोग, वचनयोग और काययोग से **(असंखगुणूनं)** असंख्यातगुणित हीन मन, वचन काययोग **(कुणदि)** करता है। **(सुहुमणिपुण्णवरदो)** सूक्ष्म निगोद पर्याप्त के जघन्य उच्छ्वास से भी असंख्यातगुणा हीन **(उस्सासं)** उच्छ्वास करता है।

विशेषार्थ - संज्ञी पर्याप्त का जो जघन्य मनोयोग है उससे असंख्यातगुणा हीन ऐसा सूक्ष्म मनोयोग केवली योगनिरोध करते समय करते हैं। द्वीन्द्रिय पर्याप्त का सबसे जघन्य जो वचनयोग है उससे असंख्यातगुणा बादरवचन योग होता था वह कम करके द्वीन्द्रिय के जघन्ययोग से असंख्यातगुणा हीन सूक्ष्म वचनयोग करते हैं।

सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त के जघन्य काययोग से असंख्यातगुणा केवलियों का बादर काययोग होता था। वह कम करके उससे भी असंख्यातगुणा हीन सूक्ष्म काययोग करते हैं। सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त के जघन्य उच्छ्वास से असंख्यातगुणा बादर उच्छ्वास होता था वह कम करके उससे असंख्यातगुणा हीन सूक्ष्म उच्छ्वास करते हैं।

योगनिरोध के काल का प्रमाण कहते हैं-

एक्केक्कस्स णिठंभणकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो हु।
सुहुमं देहणिमाणमाणं हियमाणि करणाणि ।।६३१।।

एकैकस्य निष्टंभनकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रो हि ।
सूक्ष्मं देहनिर्माणमानं हीयमानं करणानि ।।६३१।।

अन्वयार्थ - एक - एक बादर और सूक्ष्म मनोयोगादिकों का **(णिढंभणकालो)** निरोध करने का काल **(अंतोमुहुत्तमेत्तो)** अंतर्मुहूर्तमात्र है । **(सुहुमं देहणिमाणं)** सूक्ष्म काययोग में रहकर **(आणं)** सूक्ष्म उच्छ्वास को **(हीयमाणि करणाणि)** नष्ट करते हैं ।

विशेषार्थ - एक-एक बादर और सूक्ष्म मनोयोगादिकों का निरोध करने का काल प्रत्येक का अन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्म काययोग में रहकर सूक्ष्म उच्छ्वास को नष्ट करके उसके अनन्तर सूक्ष्म काययोग का नाश करने के लिए प्रवृत्त होते हैं।

उनकी इच्छा बिना अबुद्धिपूर्वक कार्य होते हैं वें कहते हैं -

सुहुमस्स य पढमादो मुहुत्तअंतो त्ति कुणदि हु अपुव्वे ।
पुव्वगफड्डगहेट्ठा सेढिस्स असंखभागमिदो ।।६३२।।

सूक्ष्मस्य च प्रथमात् मुहूर्तान्तरिति करोति ह्यपूर्वान् ।
पूर्वस्पर्धकाधस्तनं श्रेण्या असङ्ख्यभागमितम् ।।६३२।।

अन्वयार्थ - (सुहुमस्स य पढमादो) सूक्ष्म काययोग के प्रथम समय से **(मुहुत्तअंतो त्ति)** अंतर्मुहूर्त काल तक **(पुव्वगफड्डगहेट्ठा)** पूर्व स्पर्धकों के नीचे **(सेढिस्स असंखभागमिदो)** जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भागमात्र **(अपुव्वे)** अपूर्व स्पर्धक **(कुणदि हु)** करते हैं।

विशेषार्थ- सूक्ष्म काययोग के बल से उसी सूक्ष्म काययोग का निरोध करते हुए वहाँ अबुद्धिपूर्वक आगे कहे जाने वाले करण रूप क्रिया करते हैं। इसके पूर्व सूक्ष्म काययोग की परिस्पन्दनशक्ति को सूक्ष्मनिगोदिया के जघन्ययोग की अपेक्षा असंख्यातगुणित हानिरूप से परिणमाकर पूर्व स्पर्धकस्वरूप से प्रवृत्त होकर अब उससे भी असंख्यातगुणा हीन करके अपूर्व स्पर्धकरूप से परिणमाते हैं। इस क्रिया को अपूर्वस्पर्धककरण कहते हैं। अब इस करण की प्ररूपणा करने के लिए पूर्वस्पर्धकों की रचना जानना चाहिए । पूर्व स्पर्धकों का स्वरूप गोम्मटसार कर्मकांड में बंधोदयसत्त्वाधिकार में प्रदेशबंध के कथन के प्रसंग में योग का वर्णन किया है वहाँ से जानना चाहिए। यहाँ भी संक्षेप में उसका वर्णन करते हैं-

जघन्य योगस्थानयुक्त जीव के लोकमात्र प्रदेशों में से जिन प्रदेशों में सबसे जघन्य योगशक्ति संभव है उन्हें स्थापित करके उसके ऊपर बढ़ती हुई ⊢⊣ परन्तु अन्य प्रदेशों से हीन योगशक्ति जिन अन्य प्रदेशों में प्राप्त होती हैं उन्हें स्थापित करें। पूर्व प्रदेशों से उन प्रदेशों में जितनी शक्ति अधिक है उसका नाम अविभागप्रतिच्छेद है। बुद्धि में इतने प्रमाणवाले खंड कल्पित करके योगशक्ति का प्रमाण गिनने पर जघन्य शक्तियुक्त प्रदेशों में असंख्यातलोकमात्र [≡a] अविभागप्रतिच्छेद प्राप्त होते हैं । इतने अविभाग प्रतिच्छेदों का समूहरूप जो एक प्रदेश है उसे जघन्य वर्ग कहते हैं। इतने-इतने अविभाग प्रतिच्छेद जिन प्रदेशों में समानरूप से प्राप्त होते हैं उनके समूह को जघन्य वर्गणा कहते हैं।

जघन्य वर्गणा में जीवप्रदेशों का प्रमाण, जीव के सभी प्रदेशों को साधिक डेढ़गुणहानि का भाग देकर आया हुआ एक भागमात्र है। जो असंख्यात जगत्प्रतर [=a] प्रमाण है। यहाँ एक गुणहानि के स्पर्धकों के प्रमाण को एकस्पर्धक की वर्गणा के प्रमाण से गुणा करने पर एक गुणहानि का आयाम आता है।

एक गुणहानि स्पर्धकशलाका × एक स्पर्धक वर्गणा शलाका = गुणहानिआयाम २ × ४ = ८

उस जघन्य वर्गणा के ऊपर जघन्य वर्ग के अविभाग प्रतिच्छेदों से एक अविभाग प्रतिच्छेद जिसमें अधिक है ऐसे वर्गों के समूहरूप द्वितीय वर्गणा है। द्वितीय वर्गणा में प्रदेशों का प्रमाण जघन्य वर्गणा के प्रदेशों से एक विशेष मात्र से हीन है। जघन्य वर्गणा को दो गुणहानि से भाग देने पर विशेष का प्रमाण आता है।

जघन्य वर्गणा ÷ दो गुणहानि = विशेष (चय) ५१२ ÷ १६ = ३२

यहाँ से आगे द्वितीय गुणहानि की प्रथम वर्गणा तक की वर्गणाओं में प्रदेशरूप वर्गों का प्रमाण एक-एक विशेष मात्र घटते क्रम से जानना चाहिए। द्वितीय वर्गणा के वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों से एक अधिक अविभागप्रतिच्छेद युक्त वर्गों के समूहरूप तीसरी वर्गणा होती है। इस प्रकार एक-एक अधिक अविभागप्रतिच्छेदयुक्त वर्गों के क्रमसहित जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भागमात्र वर्गणाओं की रचना होती हैं। इनके समूह को जघन्य स्पर्धक कहते हैं। उसके ऊपर जघन्य वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों से दुगुणे अविभागप्रतिच्छेदयुक्त वर्गों के समूहरूप द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा है। उसके ऊपर उससे एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेदयुक्त वर्गों के समूहरूप उसकी द्वितीय वर्गणा है। इस क्रम से श्रेणि के असंख्यातवें भागमात्र वर्गणाओं के समूह का द्वितीय स्पर्धक होता है।

उसके ऊपर जघन्य वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों से तिगुणे अविभागप्रतिच्छेद युक्त वर्गों के समूहरूप तृतीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा है। उसके ऊपर पूर्व के समान ही एक-एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेद युक्त वर्गों के समूहरूप द्वितीयादि वर्गणाएँ हैं। इस प्रकार जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भागमात्र वर्गणाओं के समूहरूप तृतीय स्पर्धक होता है। इस प्रकार जब तक क्रम से एक-एक अविभागप्रतिच्छेद बढ़ता है तब तक वही स्पर्धक होता है और जहाँ एक साथ अनेक अविभागप्रतिच्छेद बढ़ते है, वहाँ अन्य स्पर्धक होता है। इस प्रकार जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भागमात्र स्पर्धकों की प्रथम गुणहानि होती है।

उसके ऊपर एक गुणहानि में जो स्पर्धकों का प्रमाण है उससे एक अधिक प्रमाण से गुणित जघन्य वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों का जितना प्रमाण है उतने अविभागप्रतिच्छेदों से युक्त वर्गों के समूहरूप द्वितीय गुणहानि के प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा होती है। इसमें वर्गों का प्रमाण प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा के वर्गों के प्रमाण से आधा जानना। उसके उपरिम प्रथम गुणहानि के समान अनुक्रम जानना। वर्गणाओं में वर्गों का प्रमाण एक-एक विशेष से हीन होता जाता है। यहाँ विशेष का प्रमाण प्रथम गुणहानि के विशेष से आधा है। इस प्रकार द्वितीय गुणहानि समाप्त होती है।

इस प्रकार जघन्य स्पर्धक से जितनेवाँ स्पर्धक हो उतने गुणकार से जघन्य वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों को गुणा करने पर विवक्षित स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के वर्गों में अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण आता है। उसके ऊपर द्वितीयादि वर्गणाओं में एक-एक अविभागप्रतिच्छेद बढ़ते क्रम से वर्ग होते हैं। असंख्यात लोकमात्र अविभाग प्रतिच्छेदों के समूहरूप (≡a) एकप्रदेश का नाम वर्ग हैं।

असंख्यात जगत्प्रतरमात्र (=a) वर्गों के (प्रदेशों के) समूहरूप एक वर्गणा है। जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र ($\overline{a}$) वर्गणाओं के समूहरूप एक स्पर्धक है। उसके असंख्यातवें भागमात्र ऐसे जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भागप्रमाण ($\overline{aa}$) स्पर्धकों के समूहरूप एक गुणहानि है। गुणहानि-गुणहानि प्रति वर्गणाओं में वर्गों का प्रमाण और विशेष का प्रमाण क्रम से आधा-आधा होता है इसलिए इसे गुणहानि कहते हैं। ऐसे पल्य के असंख्यातवें भागमात्र $\frac{प}{a}$ नाना गुणहानियों के समूहरूप जघन्य योगस्थान होता है।

एक वर्ग में अविभागप्रतिच्छेद	एक वर्गणा में वर्गों का प्रमाण	वर्गणाशलाका	स्पर्धकशलाका	नाना गुणहानियाँ	योगस्थान
≡a असंख्यात लोक	=a असंख्यात जगत्प्रतर	$\overline{a}$ जगत्श्रेणी का असंख्यातवाँ भाग	$\overline{aa}$ जगत्श्रेणी का असंख्यातवाँ भाग	$\frac{प}{a}$ पल्य का असंख्यातवाँ भाग	१ एक

स्पर्धकों की अंकसंदृष्टि - यहाँ जघन्यवर्ग में अविभागप्रतिच्छेद आठ (८) हैं। ऐसे वर्गों की समूहरूप प्रथम वर्गणा है। उसके ऊपर ९-९ अविभागप्रतिच्छेदयुक्त वर्गों के समूहरूप द्वितीय वर्गणा इस प्रकार एक-एक बढ़ता क्रम ग्यारह अविभागप्रतिच्छेदयुक्त वर्ग तक किया। यहाँ प्रथम स्पर्धक हुआ। द्वितीय स्पर्धक की प्रथमवर्गणा के वर्गों में १६-१६ अविभागप्रतिच्छेद हैं।उसके ऊपर एक-एक बढ़ते अविभागप्रतिच्छेद हैं। तृतीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के वर्गों में २४-२४, उसके ऊपर एक-एक बढ़ते अविभागप्रतिच्छेद हैं। इस प्रकार अंकसंदृष्टि द्वारा पूर्वोक्त कथनानुसार रचना -

प्रथम स्पर्धक	अंतर	द्वितीय स्पर्धक	अंतर	तृतीय स्पर्धक	अंतर	चतुर्थ स्पर्धक	अंतर	पाँचवाँ स्पर्धक
११	०	१९	०	२७	०	३५	०	४३
१० १०	०	१८ १८	०	२६ २६	०	३४ ३४	०	४२ ४२
९ ९ ९	०	१७ १७ १७	०	२५ २५ २५	०	३३ ३३ ३३	०	४१ ४१ ४१
८ ८ ८ ८	०	१६ १६ १६ १६	०	२४ २४ २४ २४	०	३२ ३२ ३२ ३२	०	४० ४० ४० ४०

यह जघन्य योगस्थान सूक्ष्म निगोदलब्ध्यपर्याप्तक के विग्रहगति में प्रथम समयवर्ती जीव के होता है। उसके प्रदेशों में योगशक्ति की हीनाधिकता पूर्व के समान जानना। उसमें सूच्यंगल के असंख्यातवें भागमात्र जघन्य स्पर्धकों के अविभागप्रतिच्छेद मिलाने पर द्वितीय योगस्थान होता है। उस जघन्य योगस्थान से अधिक और अन्य योगस्थान से हीन ऐसा योगस्थान किसी जीव को हुआ तो यह द्वितीय योगस्थान होता है, इससे कम नहीं।

इस प्रकार एक-एक स्थान के प्रति सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र जघन्य स्पर्धक बढ़ते हैं।

ऐसे जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र योगस्थान होने पर सर्वोत्कृष्ट योगस्थान होता है। वह संज्ञी पर्याप्तक जीव को होता है। इस प्रकार के योगस्थानों में से सयोगीजिन प्रथम संज्ञी पर्याप्तक को संभव होने वाले बादर काययोगरूप से प्रवर्तित होते हैं। उस बादरकाययोग को नष्ट करके सूक्ष्म निगोद के जघन्य स्थान से असंख्यातगुणे हीन सूक्ष्म काययोगरूप से प्रवर्तित होते हैं। अब उस पूर्व स्पर्धकरूप सूक्ष्म काययोग की शक्ति को अपूर्व स्पर्धकरूप से परिणमाते हैं। इसके पूर्व कभी भी ऐसी क्रिया नहीं हुई। इसलिए इसका अपूर्व स्पर्धक यह सार्थक नाम है। वे अपूर्व स्पर्धक योग के जघन्य स्थान संबंधी जघन्य स्पर्धक के नीचे असंख्यातगुणे हीन अविभागप्रतिच्छेदयुक्त होते हैं। उनका प्रमाण जगत्श्रेणि का असंख्यातवाँ भाग है। एक गुणहानि स्पर्धक शलाका को असंख्यातगुणे अपकर्षण भागहार का भाग देकर जो एक भाग आता है इतने अपूर्व स्पर्धकों की रचना प्रथम समय में करते हैं।

अपूर्व स्पर्धकों में जीवप्रदेश और अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण कहते हैं-

पुव्वादिवग्गणाणं जीवपदेसाविभागपिंडादो ।
होदि असंखं भागं अपुव्वपढमम्हि ताण दुगं ।।६३३ ।।

पूर्वादिवर्गणानां जीवप्रदेशाविभागपिण्डतः ।
भवत्यसङ्ख्यं भागमपूर्वप्रथमे तयोर्द्विकम् ।।६३३ ।।

अन्वयार्थ - (पुव्वादिवग्गणाणं जीवपदेसाविभागपिंडादो) पूर्व स्पर्धकों के जीवप्रदेशों के समूह से और आदिवर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों के समूह से **(अपुव्वपढमम्हि)** अपूर्वस्पर्धक करने के प्रथम समय में **(ताण दुगं)** अपूर्वस्पर्धकों के जीवप्रदेश और अविभागप्रतिच्छेद **(असंखं भागं)** असंख्यातवें भागप्रमाण **(होदि)** हैं।

विशेषार्थ - पूर्वस्पर्धकों के सर्वप्रदेश साधिक डेढगुणहानिगुणित प्रथम वर्गणा मात्र [व १२] हैं। उन्हें अपकर्षण भागहारमात्र असंख्यात का भाग देकर एक भागमात्र प्रदेशों को [व १२ / ओ] अपूर्व स्पर्धकरूप करते हैं। पूर्वस्पर्धक की आदिवर्गणा के वर्गों में जितने अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं उसे पल्य के असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात का भाग देकर जो एकभाग आता है उतने अपूर्वस्पर्धक की अंतवर्गणा के वर्गों में अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। पूर्वस्पर्धक की आदिवर्गणा के वर्ग की संदृष्टि [व] है। इसे असंख्यात का भाग देने पर [व / a] अपूर्व स्पर्धक के उत्कृष्ट वर्ग के अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। इसे अपूर्व स्पर्धकों के प्रमाण का भाग देने पर अपूर्व स्पर्धक के जघन्य वर्ग के अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं। वे ऐसे हैं - [व / a ९ / ओ a]

यहाँ प्रथम समय में अपकर्षण किए जीव के प्रदेशों में से अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में सबसे अधिक प्रदेश देते हैं और द्वितीय वर्गणा से अपूर्व स्पर्धक की अंतिम वर्गणा तक विशेष घटते क्रम से देते हैं। यहाँ विशेष का प्रमाण प्रथम वर्गणा को जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर आता है। अपूर्व स्पर्धक की अंतिम वर्गणा में दिये हुए प्रदेशसमूह को साधिक अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर एक भागमात्र पूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में दिया हुआ प्रदेशसमूह का प्रमाण आता है। इसके ऊपर विशेष घटते क्रम से प्रदेश देता हैं। यहाँ प्रदेश देने का अर्थ यह है कि उन प्रदेशों को ऐसे योगरूप परिणमाते हैं।

प्रथम समय में योग के अपूर्व स्पर्धकों की रचना

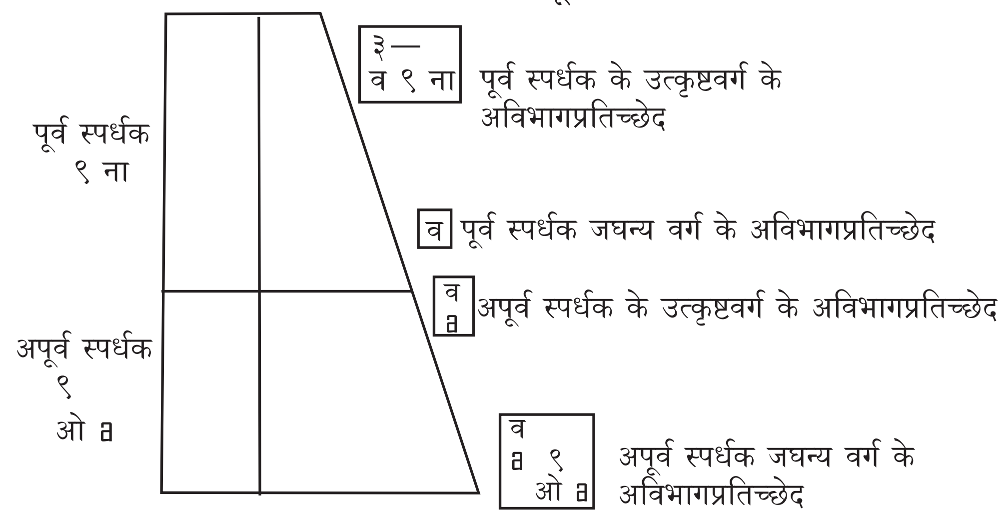

द्वितीयादि समयों में अपूर्व स्पर्धकों और उसमें जीव प्रदेशों का प्रमाण कहते हैं-

ओक्कट्टदि पडिसमयं जीवपदेसे असंखगुणियकमे ।
कुणदि अपुव्वफड्डयं तग्गुणहीणक्कमेणेव ।।६३४।।

अपकर्षति प्रतिसमयं जीवप्रदेशानसङ्ख्यगुणितक्रमेण ।
करोत्यपूर्वस्पर्धकं तद्गुणहीनक्रमेणैव ।।६३४।।

अन्वयार्थ - (पडिसमयं) प्रत्येक समय में **(असंखगुणियकमे)** असंख्यातगुणित क्रम से **(जीवपदेसे)** जीवप्रदेशों का **(ओक्कट्टदि)** अपकर्षण करता है और **(तग्गुणहीणक्कमेणेव)** असंख्यातगुणित घटते क्रम से **(अपुव्वफड्डयं)** अपूर्व स्पर्धकों को **(कुणदि)** करता है।

विशेषार्थ - द्वितीय समय में प्रथम समय में अपकर्षित किए प्रदेशों से असंख्यातगुणे प्रदेशों का (व १२ / ओ / a) (यहाँ गुणकार को भागहार का भागहार किया है।) अपकर्षण करके प्रथम समय में किये अपूर्व स्पर्धकों के नीचे इस समय में नवीन अपूर्व स्पर्धक करता है। वहाँ अपकर्षण किये प्रदेशों में से नवीन रचे हुए अपूर्व स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा में अधिक प्रदेश देता है। उसके ऊपर द्वितीय वर्गणा से लेकर अंतिम वर्गणा तक विशेष घटते क्रम से देता है।

प्रथम समय में किये अपूर्व स्पर्धकों से द्वितीय समय में नवीन किये अपूर्व स्पर्धकों का प्रमाण असंख्यातगुणा हीन है (९ / ओ a a) उसकी अंतिम वर्गणा के बराबर प्रथम समय में किये हुए अपूर्व स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा है। उसमें उससे असंख्यातगुणे हीन प्रदेश देता है। उसके ऊपर पूर्व स्पर्धक की अंतिम वर्गणा तक विशेष घटते क्रम से प्रदेश देता है।

द्वितीय समय में अपूर्व स्पर्धकों की रचना

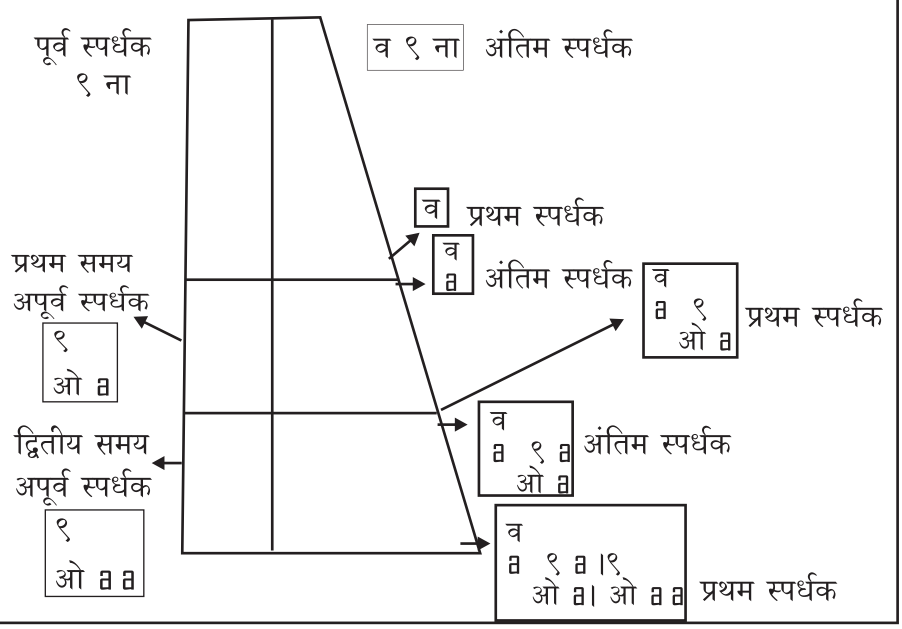

तृतीयादि समयों में ऐसा ही विधान जानना चाहिए। विशेष यह है कि प्रतिसमय अपकर्षण किये प्रदेशों का प्रमाण असंख्यातगुणे क्रमसहित जानना और नीचे-नीचे नवीन अपूर्व स्पर्धकों की रचना करते हैं उनका प्रमाण असंख्यातगुणे घटते क्रमसहित जानना। वहाँ अपकर्षण किये प्रदेशों में से नवीन अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में अधिक प्रदेश देता है। उसके ऊपर उसकी अंत वर्गणातक विशेष हीन क्रम से देता है। उसके ऊपर पूर्व समय में किए अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में असंख्यातगुणे हीन प्रदेश

दिए जाते हैं। उसके ऊपर पूर्वस्पर्धक की अंतिम वर्गणा तक विशेष घटते क्रमसहित देता है। इस प्रकार देय प्रदेशों का विधान कहा गया है। दृश्यमानप्रदेश सर्व समयों में पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों में विशेष घटते क्रमसहित जानना चाहिए।

सर्व अपूर्व स्पर्धकों का प्रमाण कहते हैं-

सेढिपदस्स असंखंभागं पुव्वाणं फड्डयाणं वा।
सव्वे होंति अपुव्वा हु फड्डया जोगपडिबद्धा।।६३५।।

श्रेणिपदस्यासङ्ख्यं भागं पूर्वेषां स्पर्धकानां वा ।
सर्वे भवन्त्यपूर्वा हि स्पर्धका योगप्रतिबद्धाः ।।६३५।।

अन्वयार्थ - (जोगपडिबद्धा) योगसंबंधी **(सव्वे अपुव्वा फड्डया)** सर्व अपूर्व स्पर्धक **(सेढिपदस्स असंखं भागं)** जगत्श्रेणी के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भाग मात्र हैं। **(वा)** अथवा **(पुव्वाण फड्डयाणं असंखं भागं)** सर्व पूर्वस्पर्धकों के असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ- सभी समयों में किए गए योग संबंधी अपूर्व स्पर्धकों का प्रमाण जगत्श्रेणी के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भागमात्र हैं अथवा सभी पूर्व स्पर्धकों के असंख्यातवें भागमात्र हैं क्योंकि पूर्वस्पर्धकों में पल्य के असंख्यातवें भागमात्र गुणहानियाँ होती हैं और उस एक गुणहानि में जो स्पर्धकों का प्रमाण है उसका असंख्यातवाँ भागमात्र सर्व अपूर्व स्पर्धकों का प्रमााण है। इस प्रकार अंतर्मुहूर्त काल में अपूर्व स्पर्धक क्रिया होती है। यहाँ स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडक घात और गुणश्रेणि निर्जरा पूर्व के समान प्रवृत्त होती है।

इस प्रकार अंतर्मुहूर्त काल तक अपूर्व स्पर्धक का पालन करके उसके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त काल तक योगसंबंधी कृष्टिरचना की प्ररूपणा करते हैं -

एत्तो करेदि किट्टिं मुहुत्तअंतो त्ति ते अपुव्वाणं।
हेट्ठादु फड्डयाणं सेढिस्स असंखभागमिदं ।।६३६।।

इतः करोति कृष्टिं मुहूर्तान्तरिति ता अपूर्वेषाम्।
अधस्तनात् स्पर्धकांना श्रेण्या असङ्ख्यभागमितम्।।६३६।।

अन्वयार्थ - (एत्तो) इसके अनन्तर **(मुहुत्तअंतोत्ति)** अन्तर्मुहूर्तकाल तक **(अपुव्वाणं फड्डयाणं**

१) ज.ध. पु.१६ पृ.१६६-१७१

हेट्ठा) अपूर्व स्पर्धकों के नीचे **(किट्टिं)** कृष्टि **(करेदि)** करता है। **(ते सेढिस्स असंखभागमिदं)** वे कृष्टियाँ जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भागमात्र हैं।

विशेषार्थ - अपूर्वस्पर्धक करने के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल तक सूक्ष्मकृष्टियों को करता है। पूर्व-अपूर्व स्पर्धकरूप से योगशक्ति थी उस को कम करके असंख्यातगुणी हीन करता है। पूर्व-अपूर्व स्पर्धकरूप से ईटों की पंक्ति के आकार से स्थित योग का उपसंहार करके सूक्ष्म-सूक्ष्म खंड की रचना करता है, उन्हें कृष्टि कहते हैं। स्पर्धकों में अविभागप्रतिच्छेद क्रम से प्रत्येक वर्गणा में विशेष अधिक बढते हैं। अपूर्व स्पर्धकों में भी पूर्व स्पर्धकों के समान अविभागप्रतिच्छेदों का क्रम होता है, किन्तु सूक्ष्मकृष्टियों में असंख्यातगुणे अविभागप्रतिच्छेद युगपत् बढ़ते हैं।

उन सूक्ष्मकृष्टियों का प्रमाण जगत्श्रेणि का असंख्यातवाँ भागमात्र है। एक स्पर्धक में जो वर्गणाओं का प्रमाण है उसके असंख्यातवें भागमात्र कृष्टियों का प्रमाण हैं। $\boxed{\frac{\text{४}}{a}}$ $\left(\frac{\text{वर्गणा शलाका}}{\text{असंख्यात}}\right)$

कृष्टिकरण के प्रथम समय में कृष्टियों के प्रदेश और अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण कहते हैं -

अपुव्वादिवग्गणाणं जीवपदेसाविभागपिंडादो।
होंति असंखं भागं किट्टीपढमम्हि ताण दुगं ।।६३७।।

अपूर्वादिवर्गणानां जीवप्रदेशाविभागपिण्डतः।
भवन्त्यसङ्ख्यं भागं कृष्टिप्रथमे तयोर्द्विकम् ।।६३७।।

अन्वयार्थ - (अपुव्वादिवग्गणाणं जीवपदेसाविभागपिंडादो) अपूर्वस्पर्धक संबंधी सर्व जीवप्रदेशों और अपूर्व स्पर्धक की आदिवर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद समूह के **(असंखं भागं)** असंख्यातवें भागमात्र **(किट्टीपढमम्हि)** कृष्टिकरण के प्रथम समय में **(ताणदुगं)** कृष्टियों के प्रदेश और अविभागप्रतिच्छेद **(होंति)** होते हैं।

विशेषार्थ - सर्व पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों के प्रदेशसमूह को $\boxed{\text{व १२}}$ अपकर्षण भागहार का भाग देकर एक भागमात्र $\boxed{\frac{\text{व १२}}{\text{ओ}}}$ प्रदेश ग्रहण करके प्रथम समय में कृष्टि करता है। कृष्टिरूप हुए प्रदेशों का प्रमाण अपूर्व स्पर्धकों के प्रदेशों के प्रमाण के असंख्यातवें भागमात्र है। वैसे ही अपूर्व स्पर्धक की जघन्य वर्गणा के वर्ग में जितने अविभागप्रतिच्छेद हैं उसके असंख्यातवें भागमात्र अविभागप्रतिच्छेद उत्कृष्ट कृष्टि के एक प्रदेश में होते हैं।

यहाँ प्रथम समय में अपकर्षण किये गये प्रदेशों को देने का विधान कहते हैं जघन्यकृष्टि में अधिक प्रदेश देता है। उसके ऊपर द्वितीय कृष्टि से अंतिम कृष्टि तक विशेष घटते क्रम से प्रदेश दिये जाते

हैं। यहाँ विशेष का प्रमाण प्रथम कृष्टि को जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर आता है। अंतिम कृष्टि से अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में असंख्यातगुणा हीन द्रव्य दिया जाता है। उसके ऊपर पूर्व स्पर्धक की अंतिम वर्गणातक विशेष हीन क्रम से प्रदेश दिये जाते हैं। प्रथम समय में की गई कृष्टियों का प्रमाण एक स्पर्धक वर्गणा शलाका का असंख्यातवाँ भागमात्र [४ / a] है।

द्वितीयादि समयों में कृष्टि और द्रव्य का प्रमाण कहते हैं-

ओक्कट्टदि पडिसमयं जीवपदेसे असंखगुणियकमे ।
तग्गुणहीणकमेण य करेदि किट्टिं तु पडिसमए ।।६३८।।

अपकर्षति प्रतिसमयं जीवपदेसे असंखगुणियकमे ।
तग्गुणहीणकमेण य करेदि किट्टिं तु पडिसमए ।।६३८।।

अन्वयार्थ - (पडिसमयं) प्रत्येक समय में **(असंखगुणियकमे)** असंख्यात गुणित क्रम से **(जीवपदेसे)** जीवप्रदेशों का **(ओक्कट्टदि)** अपकर्षण करता है **(य)** और **(पडिसमए)** प्रत्येक समय में **(तग्गुणहीणकमेण)** असंख्यातगुणित हीन क्रम से **(किट्टिं तु)** नवीन कृष्टियाँ **(करेदि)** करता है।

विशेषार्थ - द्वितीयादि प्रत्येक समय में असंख्यातगुणे क्रम से जीवप्रदेशों का अपकर्षण करता है। प्रथम समय में अपकृष्टप्रदेश [व १२ / ओ] इतने हैं । उससे असंख्यातगुणा [व १२ / ओ / a] द्वितीय समय में अपकृष्ट द्रव्य है। (यहाँ गुणकार को भागहार का भागहार करके लिखा है) प्रतिसमय पूर्व में की हुई कृष्टियों के नीचे असंख्यातगुणी घटते क्रम से नवीन कृष्टियाँ की जाती हैं। प्रथम समय में कृष्टियों का प्रमाण [४ / a] इतना है । उससे द्वितीय समय में असंख्यातगुणी हीन [४ / a ओ a] नवीन कृष्टियों का प्रमाण है।

यहाँ अपकर्षण किए प्रदेशों को देने का विधान कहते हैं- नवीन कृष्टियों की प्रथम कृष्टि में अधिक प्रदेश दिए जाते हैं। उसके उपरिम द्वितीयकृष्टि से नवीन अंतकृष्टि तक विशेष घटते क्रम से प्रदेश दिये जाते हैं। उसके उपरिम पूर्व समय में की गई कृष्टियों की प्रथम कृष्टि में असंख्यातगुणे हीन प्रदेश दिये जाते हैं। इस कृष्टि में पूर्व में जितने प्रदेश थे उतने और एक चयप्रमाण प्रदेश नवीन अंतकृष्टि से इसमें कम दिये जाते हैं। इसके ऊपर अंतकृष्टि तक विशेष घटते क्रम से प्रदेश दिये जाते हैं । अंतकृष्टि में दिये प्रदेशों से अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में दिये प्रदेश संख्यातगुणे जानना चाहिए । उसके ऊपर अंतिम पूर्व स्पर्धक की वर्गणातक विशेष घटते क्रमसहित प्रदेश दिये जाते हैं। द्वितीय समय में अपकृष्टद्रव्य के अधस्तनशीर्ष विशेषादि चार विभाग लोभ की सूक्ष्म कृष्टि के समान जानना चाहिए ।

१) अधस्तनशीर्ष विशेषद्रव्य -

प्रथम समय में अपकृष्टद्रव्य $\frac{\text{व १२}}{\text{ओ}}$ इतना है। इसे पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर एक भागमात्र कृष्टिसंबंधी द्रव्य ऐसा $\frac{\text{व १२}}{\text{ओ प}/\text{a}}$ है। अवशेष बहुभाग मात्र द्रव्य पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों में दिया जाता है।

प्रथम समय में चय = $\frac{\text{कृष्टिसंबंधी द्रव्य}}{\text{गच्छ × कुछ कम दो गुणहानि}}$ $\frac{\text{व १२}}{\text{ओ प ४।१६-}/\text{a a}}$

अधस्तनशीर्ष विशेषद्रव्य = प्रथम समय का चय × एक कम प्रथम समय के कृष्टिप्रमाण का संकलधन

$\frac{\text{व १२}}{\text{ओ प ४।१६-}/\text{a a}}$ $\frac{\overset{१\frown}{४}\ ४}{\text{a a २}}$ यहाँ गच्छ $\left(\frac{\text{वर्गणा शलाका}}{\text{असंख्यात}} - १\right)\frac{\overset{१\frown}{४}}{\text{a}}$ इतना है।

संकलन करने का सूत्र = $\frac{\text{गच्छ}}{२} \times \frac{\text{गच्छ + १}}{१}$ $\frac{\overset{१\frown}{४}\ \ ४}{\text{a २ a}}$

२) अधस्तनकृष्टिद्रव्य -

अधस्तनकृष्टिद्रव्य = प्रथम समय की प्रथम कृष्टि × द्वितीय समयकृत कृष्टियों का प्रमाण

$\frac{\text{व १२ × १६}}{\text{ओ प ४।१६ -}/\text{a a}} \times \frac{४}{\text{a ओ a}} = \frac{\text{व १२}\quad ४}{\text{ओ प ४।१६- a ओ a}/\text{a a}}$

प्रथम समय के विशेष के प्रमाण को दो गुणहानि से गुणा करने पर प्रथम वर्गणा का प्रमाण आता है।

प्रथम वर्गणा = चय × दो गुणहानि = $\frac{\text{व १२ × १६}}{\text{ओ प ४।१६-}/\text{a a}}$ द्वितीय समयकृत कृष्टियों का प्रमाण = $\frac{४}{\text{a ओ a}}$

३) उभयद्रव्यविशेषद्रव्य - उभयविशेष × संकलनधन

द्वितीय समय में अपकृष्टद्रव्य $\frac{\text{व १२}}{\text{ओ}/\text{a}}$ यह है।यहाँ भागहार के भागहार को राशि का गुणकार करके $\frac{\text{व १२ a}}{\text{ओ}}$ ऐसा होता है। इसे पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर कृष्टि संबंधी द्रव्य ऐसा $\frac{\text{व १२ a}}{\text{ओ प}/\text{a}}$ है। इसमें प्रथम समय संबंधी द्रव्य मिलाने के लिए असंख्यात गुणकार में एक अधिक करे।

१- व १२ a ओ प a

यह उभयसमय का कृष्टिसंबंधी द्रव्य है।

प्रथम समय की कृष्टियाँ + द्वितीय समय की कृष्टियाँ = उभयकृष्टियों का प्रमाण ४ + ४ = ४
a aओa a

(प्रथम समय की कृष्टियों में द्वितीय समय की कृष्टि मिलाने के लिए कुछ अधिक किया) उभयसमयसंबंधी द्रव्य को उभयसमयसंबंधी कृष्टिप्रमाण से और कुछ कम दो गुणहानि से भाग देने पर उभयविशेष आता है।

उभयविशेष = उभयकृष्टि संबंधी द्रव्य / (उभयकृष्टिप्रमाण × कुछ कम दो गुणहानि) =

१- व १२ a ओ प ४।१६- a a

उभयकृष्टि प्रमाण गच्छ और एक अधिक कृष्टि प्रमाण को दो से भाग देकर उभयकृष्टि प्रमाण गच्छ का संकलन धन आता है।

१- ४ ४ a a ।२

एक उभयविशेष × संकलधन = सर्व उभयद्रव्यविशेषद्रव्य

१- व १२ a ओ प ४।१६- a a × १- ४ ४ a a।२ =

१- १- व १२a ४ ४ ओ प ४।१६-a १ a।२ a a

सर्व उभयद्रव्यविशेषद्रव्य

व १२ a≡ ओ प a

४) मध्यमखंडद्रव्य - मध्यमखंडद्रव्य = द्वितीय संबंधी कृष्टिद्रव्य - पूर्वोक्त तीन द्रव्य (तीन द्रव्य कम करने के लिए आगे तीन तिरछी रेखाएँ दी हैं)

इसे उभयकृष्टि प्रमाण से भाग देने पर एक मध्यमखंड का प्रमाण आता है।

व १२ a≡ ओ प ४ a a

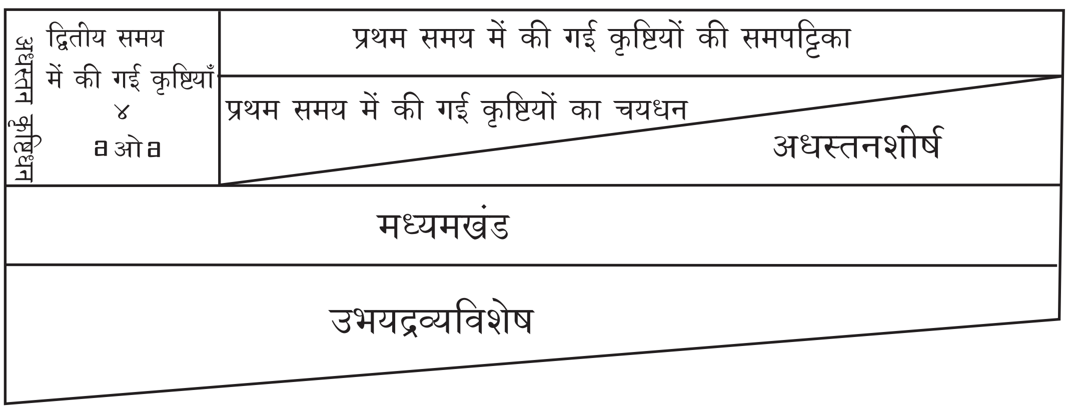

सर्व कृष्टियों का प्रमाण कहते हैं -

सेढिपदस्स असंखं भागमपुव्वाणं फड्डयाणं व ।
सव्वाओ किट्टीओ पल्लस्स असंखभागगुणिदकमा [१] **।।६३९।।**

श्रेणिपदस्यासङ्ख्यं भागमपूर्वेषां स्पर्धकानां वा ।
सर्वाः कृष्टयः पल्यस्यासङ्ख्यभागगुणितक्रमाः ।।६३९।।

अन्वयार्थ- (सव्वाओ किट्टीओ) सर्व कृष्टियों का प्रमाण **(सेढिपदस्स असंखं भागं)** जगत्श्रेणि के प्रथम वर्गमूल का असंख्यातवाँ भाग **(व)** अथवा **(अपुव्वाण फड्डयाणं असंखं भागं)** अपूर्वस्पर्धकों के प्रमाण का असंख्यातवाँ भाग है। सर्वकृष्टियाँ **(पल्लस्स असंखभागगुणिदकमा)** क्रम से पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणित हैं ।

विशेषार्थ - प्रत्येक समय में असंख्यातगुणित हीन क्रम से की गयी सर्व कृष्टियों का प्रमाण जगत्श्रेणि के प्रथम वर्गमूल का असंख्यातवाँ भाग है। वे कृष्टियाँ अपूर्व स्पर्धकों के भी असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। क्योंकि एक गुणहानिस्पर्धक शलाकाओं के असंख्यातवें भाग प्रमाण अपूर्व स्पर्धक होते हैं। उसके भी असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियाँ एक स्पर्धकसंबंधी वर्गणाओं के असंख्यातवें भागप्रमाण जानना चाहिए ।

कृष्टियों में गुणकार पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र जानना। जघन्य कृष्टि में समान अविभागप्रतिच्छेदयुक्त असंख्यात जगत्प्रतरप्रमाण जीवप्रदेश हैं। उनमें से एकप्रदेश में जितने अविभागप्रतिच्छेद हैं उससे द्वितीय कृष्टि के एकप्रदेश में पल्य के असंख्यातवें भाग गुणित अविभाग-प्रतिच्छेद हैं। उससे तृतीय कृष्टि के एक प्रदेश में पल्य के असंख्यातवें भाग गुणित अविभागप्रतिच्छेद हैं। इसप्रकार अंतकृष्टि तक क्रम जानना चाहिए।

अंतकृष्टि से अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के एक प्रदेश में अविभागप्रतिच्छेद पल्य के असंख्यातवें भाग गुणित हैं। इस गुणकार को कृष्टिस्पर्धक संबंधी गुणकार कहते हैं। उसके ऊपर द्वितीयादि वर्गणाओं के प्रदेशों में यथासंभव स्पर्धक विधान के समान एक-एक अधिक अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। इस प्रकार एक-एक प्रदेश की अपेक्षा से कथन किया है।

नानाप्रदेशों की अपेक्षा से जघन्यकृष्टि के सर्व प्रदेशसंबंधी अविभागप्रतिच्छेदों को पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर द्वितीय कृष्टि के सर्व अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण होता है। इस प्रकार अंतकृष्टितक गुणकार जानना। अंत कृष्टि से अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के सर्व प्रदेशसंबंधी अविभागप्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हीन हैं क्योंकि अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में अविभागप्रतिच्छेद

१) ज.ध. पु.१६ पृ. १७१ - १७६

अंतकृष्टि से जितने गुणित हैं उससे असंख्यातगुणे गुणकार से उस प्रथम वर्गणा के प्रदेशों को गुणा करने पर अंतकृष्टि के प्रदेश हैं।

अंतिम कृष्टि के एक प्रदेशसंबंधी अविभागप्रतिच्छेदों से अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में एक वर्ग (प्रदेश) के अविभागप्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं परन्तु अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के जीवप्रदेशों से अंतिमकृष्टि के जीवप्रदेश असंख्यातगुणे हैं। अविभागप्रतिच्छेदों के असंख्यात गुणकार से जीवप्रदेशों का गुणकार असंख्यातगुणा है इसलिए अंतिम कृष्टि से अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के कुल अविभागप्रतिच्छेद असंख्यातगुणित हीन है ।

उदाहरण - अंतिमकृष्टि में जीवप्रदेशों का प्रमाण २५६ है। प्रत्येक में अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण २० माना। कुल अविभागप्रतिच्छेद (२५६ × २० = ५१२०) अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में जीवप्रदेशों का प्रमाण १६ और प्रत्येक प्रदेश में अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण कृष्टि से चार गुणा अर्थात् ८० माना तो अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में कुल अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण (१६ × ८० = १२८०) अंतिम कृष्टि से चार गुणा हीन हुआ।

एत्थापुव्वविहाणं अपुव्वफड्ढयविहिं व संजलणे।
बादरकिट्टिविहिं वा करणं सुहुमाण किट्टीणं [1] ।।६४०।।

अत्रापूर्वविधानमपूर्वस्पर्धकविधिरिव सञ्ज्वलने।
बादरकृष्टिविधिरिव करणं सूक्ष्माणां कृष्टीनाम् ।।६४०।।

अन्वयार्थ - (एत्थापुव्वविहाणं) यहाँ अपूर्वस्पर्धक करने का विधान **(संजलणे)** संज्वलन कषाय के **(अपुव्वफड्ढयविहीं व)** अपूर्वस्पर्धक करने के विधान समान जानना । **(सुहुमाण किट्टीणं)** सूक्ष्मकृष्टि **(करणं)** करने का विधान **(बादर किट्टिविहिं वा)** संज्वलन कषाय की बादरकृष्टियों के विधान के समान जानना।

विशेषार्थ - पूर्व में अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में संज्वलन कषाय के अपूर्व स्पर्धक करने का विधान कहा है। उसके समान ही यहाँ योग के अपूर्व स्पर्धकों का विधान जानना । पूर्व में संज्वलन कषाय की बादरकृष्टियों का विधान कहा है वैसे ही योग की सूक्ष्मकृष्टि करने का विधान जानना। प्रमाणादिक का विशेष है वह विशेष जानना। वहाँ कर्मपरमाणुओं में अनुभाग शक्ति की अपेक्षा से वर्णन है। यहाँ जीवप्रदेशों में योगशक्ति की अपेक्षा से वर्णन है।

---

१) ज.ध. पु. १६ पृ. १७१ - १७६

कृष्टिकरणकाल समाप्त होने के अनन्तर होनेवाली प्रक्रिया कहते हैं -

किट्टीकरणे चरमे से काले उभयफड्डये सव्वे ।
णासेइ मुहुत्तं तु किट्टीगदवेदगो जोगी ।।६४१ ।।

कृष्टिकरणचरमे स्वे काले उभयस्पर्धकान् सर्वान् ।
नाशयति मुहूर्तं तु कृष्टिगतवेदको योगी ।।६४१ ।।

अन्वयार्थ - (किट्टीकरणे चरमे से काले) कृष्टिकरण काल के चरम समय के अनन्तर काल में **(सव्वे उभयफड्डये)** सर्व पूर्व-अपूर्व स्पर्धक **(णासेइ)** नष्ट करता है। **(मुहुत्तं तु)** अन्तर्मुहूर्त काल तक **(जोगी)** सयोगी **(किट्टीगदवेदगो)** कृष्टिगतयोग का अनुभव करता है।

विशेषार्थ - कृष्टिकरणकाल समाप्त होने पर अनन्तर समय में पूर्व और अपूर्व स्पर्धकों का नाश करता है। जब तक कृष्टिकरण काल का अंतिम समय है तब तक पूर्व स्पर्धक और अपूर्व स्पर्धक अविनष्टरूप से दिखते हैं क्योंकि उनके असंख्यातवें भागप्रमाण ही जीवप्रदेश कृष्टिरूप से परिणमे हैं। पुन: उसके अनन्तर समय में सर्व पूर्व और अपूर्व स्पर्धक अपने-अपने स्वरूप का त्याग करके कृष्टिरूप से परिणमन करते हैं। इस समय से सयोगी गुणस्थान के अंत तक अंतर्मुहूर्त काल सयोगकेवली कृष्टिरूप योग का वेदन करते हैं। प्रदेशों में जो कृष्टिरूप योगशक्ति हुई वह अब प्रकट होती है।

कृष्टियों के नाश का क्रम कहते हैं-

पढमे असंखभागं हेट्ठुवरिं णासिदूण बिदियादी ।
हेट्ठुवरिमसंखगुणं कमेण किट्टिं विणासेदि ।।६४२ ।।

प्रथमेऽसंख्यभागमधस्तनोपरि नाशयित्वा द्वितीयादौ ।
अधस्तनोपर्यसङ्ख्यगुणं क्रमेण कृष्टिं विनाशयति ।।६४२ ।।

अन्वयार्थ - (पढमे) प्रथम समय में **(हेट्ठुवरिं)** अधस्तन और उपरिम **(असंखभागं)** असंख्यातवें भागमात्र कृष्टियों का **(णासिदूण)** नाश करके **(बिदियादी)** द्वितीयादि समयों में **(कमेण)** क्रम से **(हेट्ठुवरिमसंखगुणं)** अधस्तन और उपरिम असंख्यातगुणी **(किट्टिं)** कृष्टियों का **(विणासेदि)** विनाश करता है।

विशेषार्थ - कृष्टिवेदककाल के प्रथम समय में अल्प अविभागप्रतिच्छेदयुक्त अधस्तन और अधिक अनुभागयुक्त उपरिम कृष्टियों को मध्य की कृष्टिरूप से परिणमित कराके नष्ट करता है। उनका

प्रमाण सर्व कृष्टियों के असंख्यातवें भाग है। द्वितीयादि समयों में उससे असंख्यातगुणे क्रमसहित अधस्तन और उपरिम कृष्टियों को नष्ट करता है। ऐसा जानना कि अधस्तन और उपरिमकृष्टियों का वेदन नहीं करता है। वेदककाल में अधस्तन और उपरिम कृष्टियों को मध्य की कृष्टिरूप परिणमाकर वेदन करता है।

उदयरूप कृष्टियों का प्रमाण कहते हैं -

मज्झिम बहुभागुदया किट्टिं पक्खिय विससेहीणकमा ।
पडिसमयं सत्तीदो असंखगुणहीणया होंति ।।६४३।।

मध्या बहुभागोदयाः कृष्टिमपेक्ष्य विशेषहीनक्रमाः ।
प्रतिसमयं शक्तितोऽसङ्ख्यगुणहीनका भवन्ति ।।६४३।।

अन्वयार्थ - (मज्झिम बहुभागुदया) मध्य की बहुभागप्रमाण कृष्टियाँ उदयरूप होती हैं। **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(किट्टिं पक्खिय)** कृष्टियों की अपेक्षा से **(विसेसहीणकमा)** विशेषहीन क्रमसहित कृष्टियाँ उदयरूप जानना चाहिए और **(सत्तीदो)** शक्ति की अपेक्षा **(असंख्यातगुणहीनया)** असंख्यातगुणित हीनक्रम सहित **(होंति)** होती हैं।

विशेषार्थ - सर्व कृष्टियों को असंख्यात का भाग देकर बहुभागप्रमाण मध्य की कृष्टियाँ प्रथम समय में उदय में आती हैं। द्वितीय समय में उससे विशेष हीन कृष्टियों का वेदन करता है। इस प्रकार सयोगी के अंतिम समय तक विशेषहीन क्रम से कृष्टियों का वेदन करता है ऐसा जानना चाहिए ।

अविभागप्रतिच्छेदरूप शक्ति की अपेक्षा से प्रथम समय की अपेक्षा द्वितीय समय में असंख्यातगुणे हीन योग का वेदन होता है क्योंकि प्रथम समय में नष्ट होनेवाली कृष्टियों की अपेक्षा द्वितीय समय में अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागप्रमाण अधिक अविभागप्रतिच्छेदयुक्त कृष्टियाँ नष्ट होती हैं। इसप्रकार सयोगी के अंत समय तक प्रत्येक समय में असंख्यातगुणे घटते क्रमसहित योग का वेदन होता है।

सर्वकृष्टियों का प्रमाण = प्रथम समय की कृष्टियाँ + अन्य सर्व समयों की कृष्टियाँ। [। ४ a]

इसे पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर बहुभाग प्रमाण [। १ ४ प a a प a] मध्य की उदयकृष्टियों का प्रमाण है। एक भाग ऐसा [। ४ a प a] इसे अंकसदृष्टि की अपेक्षा से पाँच का भाग देकर दो भागमात्र [। ४ २ a प ५ a] अधस्तन और तीन भागमात्र [। ४ ३ a प ५ a] उपरिम उदयकृष्टियों का प्रमाण जानना। द्वितीय समय में अधस्तन अनुदय कृष्टियों में से उसके असंख्यातवें भागमात्र उदयरूप कृष्टियाँ है और उपरिम नीचे असंख्यातवें भाग प्रमाण उदयकृष्टियाँ अनुदयरूप होती हैं। इसी प्रकार तृतीयादि समयों में भी विधान जानना ।

उदय और अनुदय कृष्टियों की रचना

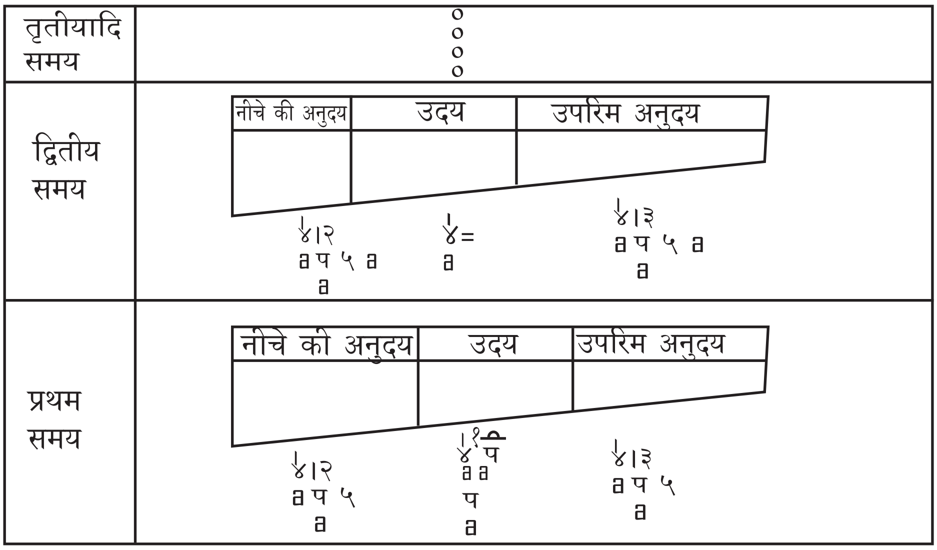

सूक्ष्म काययोगी केवलियों के ध्यान का वर्णन करते हैं-

किट्टिगजोगी झाणं झायदि तदियं खु सुहुमकिरियं तु।
चरिमे असंखभागे किट्टीणं णासदि सजोगी ।।६४४।।

कृष्टिगयोगी ध्यानं ध्यायति तृतीयं खलु सूक्ष्मक्रियं तु।
चरमेऽसङ्ख्यभागान् कृष्टींना नाशयति सयोगी ।।६४४।।

अन्वयार्थ - (किट्टिगजोगी) सूक्ष्मकृष्टि का वेदन करने वाले सयोगिजिन **(तदियं खु सुहुमकिरियं)** तृतीय सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति नाम का **(झाणं झायदि)** शुक्लध्यान ध्याते हैं। **(सजोगी)** सयोगी **(चरिमे)** अंतिम समय में **(किट्टीणं असंखभागे)** असंख्यात बहुभाग कृष्टियों का **(णासदि)** नाश करते हैं।

विशेषार्थ - सूक्ष्मकृष्टियों के वेदक सयोगीजिन सूक्ष्मक्रियारूप अप्रतिपाती नामक शुक्लध्यान को ध्याते हैं। सूक्ष्मकृष्टि को प्राप्त काययोगजनित क्रिया अर्थात् परिस्पंदन यहाँ होता है और यह ध्यान प्रतिपात से रहित है इसलिए इस ध्यान का नाम सार्थक है। अप्रतिपात अर्थात् इस ध्यान से नीचे गिरता नहीं है, ऊपर ही चढ़ता है। इस ध्यान का फल योग निरोध है, ऐसा जानना चाहिए ।

शंका - संपूर्ण पदार्थों को विषय करनेवाले ध्रुव उपयोग से परिणत केवली जिन में एकाग्रचिन्ता का निरोध होना असंभव है इसलिए यहाँ ध्यान की उत्पत्ति हो नहीं सकती ?

समाधान - यह मानना सत्य है क्योंकि जिन्होंने सर्वपदार्थों का साक्षात्कार किया है और जो क्रमरहित उपयोग से परिणत हैं ऐसे सर्वज्ञों को एकाग्रचिन्तानिरोध लक्षण रूप ध्यानसंभव नहीं हैं, फिर भी योग का निरोध होने से आस्रव निरोधरूप ध्यान का फल देखकर उपचार से केवलियों को ध्यान कहा है।

अथवा छद्मस्थों की चिंता का कारण योग है इसलिए कारण में कार्य का उपचार करके योग को भी चिंता कहा है। उसका यहाँ निरोध होता है इसलिए ध्यान कहा है। अन्यत्र उस प्रकार कहा भी है -

अंतोमुहुत्तमद्धं चिंतावत्थाणमेयवत्थुम्मि।
छदुमत्थाणं ज्झाणं जोगनिरोधो जिणाणं तु ।।

छद्मस्थों का एक वस्तु में अन्तर्मुहूर्तकाल तक चिन्ता का अवस्थान होना ध्यान है। परन्तु केवली जिनों का योग का निरोध करना ही ध्यान है।

इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से प्रतिसमय असंख्यातगुणी कृष्टियों का नाश करते हुए सयोगी के अंत समय में जो असंख्यात बहुभागप्रमाण मध्य की कृष्टियाँ शेष रही हैं उनका नाश करते हैं क्योंकि इसके अनन्तर अयोगी होनेवाले हैं।

इस प्रकार ध्यान करनेवाले, परम शुक्लध्यानरूप अग्नि के द्वारा प्रतिसमय असंख्यातगुणी श्रेणिरूप से कर्मनिर्जरा करनेवाले, तथा स्थितिकांडक और अनुभागकांडक का क्रमशः पालन करने वाले इन परमऋषियों की योगशक्ति क्रमशः हीन होती हुई सयोगकेवली गुणस्थान के अंतिम समय में पूर्णरूप से कैसे नष्ट होती है इसका प्रतिपादन करते हैं-

जोगिस्स सेसकालं मोत्तूण अजोगिसव्वकालं च ।
चरिमं खंडं गेण्हदि सीसेण य उवरिमठिदीओ ।।६४५ ।।

योगिनः शेषकालं मुक्त्वाऽयोगिसर्वकालं च ।
चरमंखण्डं गृहाति शीर्षेण चोपरिमस्थितिः ।।६४५ ।।

अन्वयार्थ - (जोगिस्स सेसकालं) सयोगी गुणस्थान का शेष काल **(च)** और **(अजोगिसव्वकालं)** अयोगी का सर्वकाल **(मोत्तूण)** छोड़कर शेष सर्व **(सीसेण य उवरिमठिदीओ)** गुणश्रेणि शीर्षसहित उपरिम स्थितियों को **(चरिमं खंडं)** अंतिम कांडकरूप से **(गेण्हदि)** ग्रहण करता है।

विशेषार्थ - सयोगी गुणस्थान का अंतर्मुहूर्तमात्र काल शेष रहने पर वेदनीय, नाम और गोत्र के अंतिम स्थितिकांडक को ग्रहण करते हैं। उसके द्वारा सयोगी का शेष रहा काल और अयोगी का सर्वकाल दोनों मिलकर जितनी स्थिति है उतने निषेकों को छोड़कर शेष सर्व गुणश्रेणिशीर्षसहित उपरितन स्थिति के निषेकों को ग्रहण करते हैं अर्थात् नष्ट करने के लिए प्रारंभ करते हैं।

नाम, गोत्र और वेदनीय के अंतिम स्थितिकाण्डक का प्रमाण

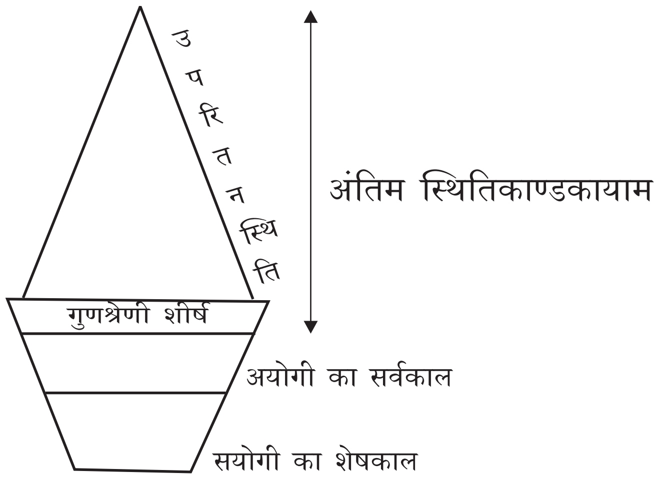

तत्थ गुणसेढिकरणं दिज्जादिकमो य सम्मखपणं वा।
अंतिमफालीपडणं सजोगगुणठाणचरिमम्हि ।।६४६।।

तत्र गुणश्रेणिकरणं देयादिक्रमश्च सम्यक्षपणमिव।
अंतिमफालिपतनं सयोगगुणस्थानचरिमे ।।६४६।।

अन्वयार्थ - (तत्थ) वहाँ **(गुणसेढिकरणं)** गुणश्रेणिकरण **(य)** और **(दिज्जादिकमो)** देयद्रव्यादि का क्रम **(सम्मखवणं वा)** सम्यक्त्वप्रकृति की क्षपणाविधि समान जानना । **(सजोग गुणठाणचरिमम्हि)** सयोगकेवली गुणस्थान के चरम समय में **(अंतिम फालीपडणं)** अंतिम फालि का पतन होता है।

विशेषार्थ - अंतिमकांडक के द्रव्य का अपकर्षण करके पूर्वोक्त क्रम से उदयनिषेक में अल्पद्रव्य

देते हैं। उसके ऊपर कांडकघात होने पर जो स्थिति शेष रहेगी उसके अंत समयतक असंख्यातगुणित क्रमसहित द्रव्य देते हैं। यहाँ गुणश्रेणिआयाम गलितावशेषरूप जानना। इसके अंतनिषेक को ही यहाँ गुणश्रेणिशीर्ष कहते हैं। उसके ऊपर स्थितिकांडक का प्रथम निषेक है। उसमें असंख्यातगुणित द्रव्य देते हैं। उसके ऊपर पूर्व में जो गुणश्रेणि-आयाम था उसके अंतिम निषेक तक विशेष घटते क्रम से देते हैं। उसके ऊपर अनन्तरवर्ती निषेक में उससे असंख्यातगुणा हीन द्रव्य देते हैं। उसके ऊपर विशेष घटते क्रम से अतिस्थापनावलि छोड़कर देते हैं। इस प्रकार अंतिम कांडकोत्कीरण के प्रथम समय से द्विचरम समय तक द्रव्य देने का विधान है।

सयोगी के अंतिम समय में अंतिम फालि का पतन होता है । उस अंतिम फालि के द्रव्य को उदयनिषेक में अल्प और द्वितीयादि अयोगी के अंतिम समयसंबंधी निषेक तक के निषेकों में असंख्यातगुणित क्रम से द्रव्य दिया जाता है। वहाँ विशेष है वह जान लेना चाहिए।

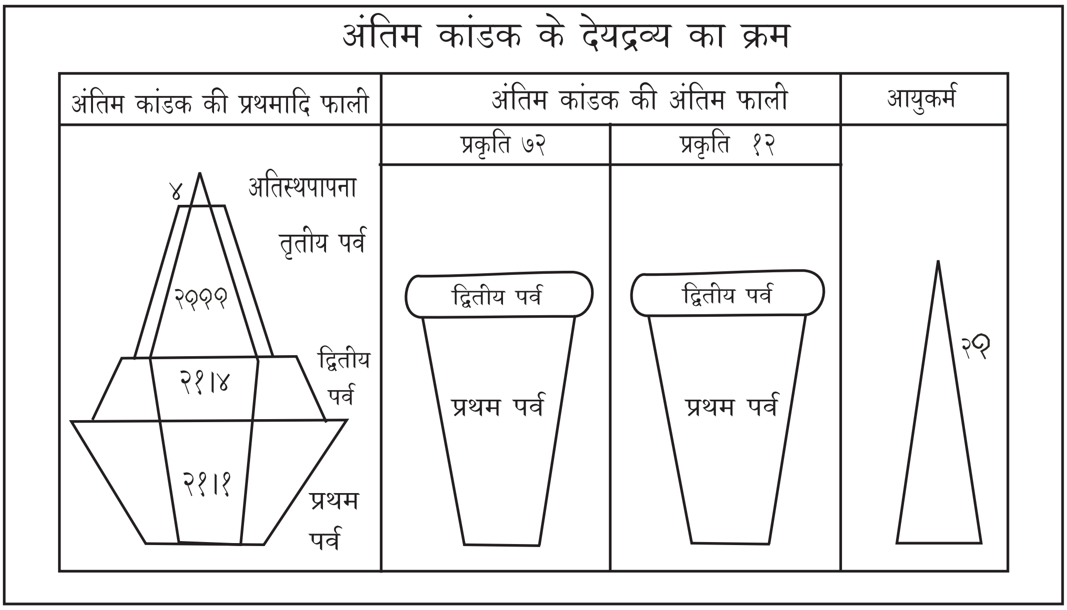

इस प्रकार सयोगी के अंतिम समय में अघातिकर्म के अंतिम कांडक की अंतिम फालि का पतन योग का निरोध और सयोग गुणस्थान की समाप्ति युगपत् होती है। इसके अनन्तर गुणश्रेणी, स्थिति और अनुभाग का घात नहीं होता है। अध:स्थितिगलन के द्वारा एक-एक समय में एक-एक निषेक क्रम से उदयरूप होकर निर्जरित होते हैं। वहाँ प्रतिसमय असंख्यातगुणे द्रव्य की निर्जरा होती है। इस प्रकार सयोगी गुणस्थान का वर्णन समाप्त हुआ।

अयोगकेवलियों के ध्यान का वर्णन करते हैं-

से काले जोगिजिणो ताहे आउगसमा हि कम्माणि ।
तुरियं तु समुच्छिण्णं किरियं झायदि अजोगिजिणो ।।६४६ ।।

स्वे कालेऽयोगिजिनस्तत्रायुष्कसमानि हि कर्माणि ।।
तुरीयं तु समुच्छिन्नक्रियं ध्यायत्ययोगिजिनः ।।६४६ ।।

अन्वयार्थ - (से काले) उसके अनन्तरकाल में **(जोणिजिणो)** अयोगिजिन होते हैं। **(ताहे)** उस समय **(आउगसमा हि कम्माणि)** आयुसमान तीन अघातिकर्मों की स्थिति होती है। **(अयोगिजिणो)** अयोगिजिन **(तुरियं तु)** चौथे **(समुच्छिण्णं किरियं)** समुच्छिन्न क्रियानिवृत्ति नाम का शुक्लध्यान **(झायदि)** ध्याते हैं।

विशेषार्थ - अयोगकेवली गुणस्थान में नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मों की स्थिति आयुकर्म के समान होती है। वह अयोगी जिन समुच्छिन्न क्रियानिवृत्ति नाम का चौथा शुक्लध्यान करते हैं। समुच्छिन्नक्रिया अर्थात् उच्छेद हुई है मन, वचन, काय की क्रिया जहाँ और अनिवृत्ति अर्थात् प्रतिपात से रहित अथवा मोक्ष से रहित होने से जो अनिवृत्त है ऐसा यह ध्यान सार्थक नामवाला है। यहाँ भी ध्यान का उपचार पूर्व के समान ही जानना, क्योंकि वास्तविकरूप से एकाग्रचिन्तानिरोध यह ध्यान का लक्षण केवलियों में प्राप्त नहीं होता है। संपूर्ण आस्रवरहित केवलियों के शेष कर्मनिर्जरा में कारणभूत स्वात्मा में प्रवृत्ति है उसका ही नाम ध्यान है।

अयोगी केवलियों को शैलेश्यभाव की प्राप्ति

सीलेसिं संपत्तो णिरुद्धणिस्सेसआसओ जीवो ।
बंधरयविप्पमुक्को गयजोगो केवली होइ[1] ।।६४८ ।।

शैलेश्यं सम्प्राप्तो निरुद्धनिःशेषास्त्रवो जीवः ।
बन्धरजोविप्रमुक्तो गतयोगः केवली भवति ।।६४८ ।।

अन्वयार्थ - (गयजोगो केवली जीवो) अयोगकेवली जीव **(सीलेसिं संपत्तो)** शैलेश्यभाव प्राप्त करके **(णिरुद्धणिस्सेसआसओ)** संपूर्ण आस्रव का निरोध करके **(बंधरयविप्पमुक्को)** बंधरूपी धूलि से मुक्त होते हैं।

१) ध. पु. ६ पृ. १९९ / गो. जीव. गा. ६५

विशेषार्थ - जिनका योग निकल गया है उन्हें अयोगकेवली कहते हैं। वे संपूर्ण शीलगुण के स्वामी होने से शैलेश्य अवस्था को प्राप्त हुए हैं। यद्यपि सयोग केवलियों को समस्त शीलगुण का स्वामिपना संभव है, परन्तु योग के निमित्त से ही आस्रव होता है इसलिए संपूर्ण संवर नहीं होने से उन्हें शैलेश्य अवस्था प्राप्त नहीं होती है। अयोगकेवलियों को योग के निमित्त से भी आस्रव नहीं होता है इसलिए पूर्ण संवर होने से उन्हें शैलेश्य अवस्था प्राप्त होती है। जिन्होंने संपूर्ण आस्रवका निरोध किया है ऐसे जीव कर्मरूपी रज से मुक्त होते हैं। भावार्थ यह है कि अयोगिजिन निरास्रव निर्बंध हुए है।

अयोगी जिनों के शुक्लध्यानद्वारा नष्ट की हुई प्रकृतियों को कहते हैं-

बाहत्तरिपयडीओ दुचरिमगे तेरसं च चरिमम्हि ।
झाणजलणेण कवलिय सिद्धो सो होदि से काले ।।६४९।।

द्वासप्ततिप्रकृतयो द्विचरमके त्रयोदश च चरमे ।
ध्यानज्वलनेन कवलितः सिद्धः स भवति स्वे काले ।।६४९।।

अन्वयार्थ- (दुचरिमगे) अयोगकेवली गुणस्थान के द्विचरम समय में **(बाहत्तरिपयडीओ)** बहत्तर प्रकृतियों को **(च)** और **(चरिमम्हि)** चरम समय में **(तेरसं)** तेरह प्रकृतियों को **(कवलिय)** कवलित करके **(से काले)** अनन्तर समय में **(सो)** वह जीव **(सिद्धो)** सिद्ध **(होदि)** होता है।

विशेषार्थ - अयोगकेवली गुणस्थान का काल 'अ इ उ ऋ लृ' इन पाँच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण में जितना काल लगता है उतना है। उस काल में एकएक समय में एकएक निषेक का अधःस्थितिगलन द्वारा क्षीण हुई अनुदयरूप बहत्तर प्रकृतियाँ द्विचरम समय में और उदयरूप तेरहप्रकृतियाँ अंतिम समय में शुक्लध्यानरूपी अग्निद्वारा भस्मीभूत होती हैं।[१]

अनुदयरूप बहत्तर प्रकृतियों के नाम - अनुदयरूप वेदनीय, देवगति, ५ शरीर, ५ बंधन, ५ संघात, ६ संस्थान, ६ संहनन, ३ अंगोपांग, २० वर्णादि, देवगत्यानुपूर्वी अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्तविहायोगति, प्रशस्तविहायोगति, अपर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र।

उदयरूप बारह प्रकृति - १ उदयरूप वेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र।

मनुष्यगत्यानुपूवी का यहाँ पर उदय नहीं है, फिर भी उसका नाश अंतिम समय में बताया है क्योंकि चौदहवें गुणस्थान के अनन्तर समय में उसका ऊर्ध्वगमन होता है।

१) ज.ध. पु.१६ पृ.२८५

इस प्रकार इन प्रकृतियों का क्षय करके अनन्तर समय में सिद्ध होते हैं।

जिस प्रकार कालिमारहित शुद्ध सोना निष्पन्न होता है उसी प्रकार सर्व कर्ममलरहित कृतकृत्य, दशारूप यह आत्मा निष्पन्न होती है।

आठवी पृथ्वी का वर्णन करते हैं-

तिहुवणसिहरेण मही वित्थारे अट्ठजोयणुदयथिरे।
धवलच्छत्तायारे मणोहरे ईसिपब्भारे[1] ।।६५०।।

त्रिभुवनशिखरेण मही विस्तारेऽष्टयोजनान्युदयस्थिरा।
धवलछत्राकारा मनोहरा ईषत्प्राग्भारा ।।६५०।।

अन्वयार्थ - (तिहुवणसिहरेण) तीन लोक के शिखर में **(वित्थारे)** विस्तार **(अट्ठजोयणुदयथिरे)** आठ योजन ऊँची, स्थिर **(धवलच्छतायारे)** श्वेतवर्णवाली, छत्राकार **(ईसिपब्भारे)** ईषत्प्राग्भार नाम की **(मणोहरे मही)** मनोहर पृथ्वी है।

विशेषार्थ - सिद्ध होने पर ऊर्ध्वगमन स्वभाव होने से यह जीव तीन लोक के शिखर में स्थित ईषत्प्राग्भार नाम की आठवीं पृथ्वी पर एक समय में पहुँचकर तनुवातवलय के अंत में विराजमान होता है। वह सिद्धभूमि मनुष्यलोक के समान पैंतालीस लाख योजन विस्तृत, गोल आकारवाली, आठ योजन ऊँची, स्थिर, श्वेतछत्राकार, बीच में मोटी और अन्त में पतली है तथा मनोहर है। धर्मास्तिकाय का अभाव होने से लोक के ऊपर गमन नहीं होता है इसलिए वहीं चरम शरीर से कुछ कम आकाररूप सिद्धजीव अनन्त ज्ञानानन्दमय विराजमान होते हैं।

प्रथम और द्वितीय शुक्लध्यान के स्वामी कहते हैं-

पुव्वण्हस्स तिजोगी संतो खीणो य पढमसुक्कं तु ।
विदियं सुक्कं खीणो इगिजोगो झायदे झाणी ।।६५१।।

पूर्वज्ञस्य त्रियोगः शान्तः क्षीणश्च प्रथमशुक्लं तु।
द्वितीयं शुक्लं क्षीण एकयोगो ध्यायति ध्यानी ।।६५१।।

अन्वयार्थ - (पुव्वण्हस्स) पूर्व का ज्ञाता **(तिजोगो)** तीन योगयुक्त **(संतो)** उपशांतमोह

१) ज.ध. पु. १६ पृ. १९३

(य) और **(खीणो)** क्षीणमोह जीव **(पढमसुक्कं)** प्रथम शुक्लध्यान **(झायदे)** ध्याते हैं। **(तु)** और **(इगिजोगो)** एक योगयुक्त **(खीणो झाणी)** क्षीणमोह ध्यानी जीव **(विदियं सुक्कं)** द्वितीय शुक्लध्यान करते हैं।

विशेषार्थ - कषायरहित जीवों को शुक्लध्यान होता है। शुक्लध्यान चार प्रकार का है।
१) पृथक्त्व विर्तक वीचार २) एकत्ववितर्क अवीचार ३) सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति और
४) समुच्छन्नक्रिया अप्रतिपाति ।

१) प्रथम पृथक्त्व वितर्क वीचार शुक्लध्यान - पृथक्त्व का अर्थ भेद है। द्वादशांग श्रुत को वितर्क कहते हैं। वीचार शब्द का अर्थ है - योग, पदार्थ और व्यंजन (श्रुतशब्द) का परिवर्तन। उपशांतमोह जीव अनेक द्रव्यों और तीनों योग के अवलम्बन से ध्यान करते हैं इसलिए उसे पृथक्त्व कहते हैं। पूर्वगतश्रुत के अर्थ में कुशल साधु ही इस ध्यान को ध्याते हैं इसलिए इसे सवितर्क कहते हैं। ध्यानयोग्य द्रव्य, गुण, पर्यय का परिवर्तन होता है अर्थात् ध्याता एक द्रव्य को छोड़कर दूसरे द्रव्य अथवा गुण अथवा पर्यय का विचार करता है। श्रुत के शब्द का अवलंबन बदलता है और मन, वचन, काययोग का परिवर्तन होता रहता है। इसलिए इस ध्यान को पृथक्त्ववितर्क वीचार ध्यान कहते हैं।

२) एकत्ववितर्क अवीचार ध्यान - एकत्व याने एकता सहित, वितर्क अर्थात् भावश्रुत, अवीचार अर्थात् असंक्रान्ति। जिस अर्थ को, जिस श्रुत के शब्द को, जिस योग की प्रवृत्तिसहित ध्याता है उसका वैसेही ध्यान करता रहता है, उसमें परिवर्तन नहीं होता है उसे एकत्ववितर्क अवीचार ध्यान कहते हैं। क्षीणकषायी जीव यह ध्यान करता है। तीसरे और चौथे शुक्लध्यान का लक्षण और स्वामी पूर्व में कहे हैं।

सिद्धों को रत्नत्रय की शुद्धि और समाधि की याचना करते हैं -

सो मे तिहुवणमहिदो सिद्धो बुद्धो णिरंजणो णिच्चो ।
दिसदु वरणाणदंसणचरित्तसुद्धिं समाहिं च ।।६५२।।

स मे त्रिभुवनमहितः सिद्धो बुद्धो निरज्जनो नित्यः।
दिशतु वरज्ञानदर्शनचरित्रशुद्धिं समाधिं च।।६५२।।

अन्वयार्थ - (तिहुवणमहिदो) तीन लोकों में पूजित **(बुद्धो)** ज्ञानी **(णिरंजणो)** निरंजन **(णिच्चो)** नित्य **(सो)** ऐसे वे **(सिद्धो)** सिद्ध भगवान **(मे)** मुझे **(वरणाणदंसणचरित्तसुद्धिं)** उत्कृष्ट ज्ञान, दर्शन, चारित्र की शुद्धि **(च)** और **(समाहिं)** समाधि **(दिसदु)** देवें।

विशेषार्थ - सिद्ध भगवान संपूर्ण कर्मों का क्षय होने से सर्व दोषों से रहित निरंजन हैं। ज्ञान और दर्शन की पराकाष्ठा प्राप्त होने से बुद्ध हैं। अविकल आत्मस्वरूप की उपलब्धि होने से नित्य अविनाशी हैं अर्थात् आत्मस्वरूप से चलायमान नहीं होते हैं। समस्त पुरुषार्थ सिद्ध होने से सिद्ध हैं। उनका ध्यान करने से भव्यजीवों को मोक्ष की सिद्धि होती है इसलिए त्रिभुवनपूजित हैं। चरमशरीर से कुछ न्यून आकारवाले अमूर्तिक सिद्ध भगवान मुझे उत्कृष्ट ज्ञान, दर्शन, चारित्र की शुद्धता और समाधि अर्थात् अनुभवदशा और संन्यासमरण प्रदान करें। इस प्रकार शुभभावना ग्रंथकार कहते हैं। यहाँ सिद्धों की जो मोक्ष अवस्था हुई उसका स्वरूप सर्व कर्मों का संपूर्ण नाश होने से संपूर्ण आत्मस्वरूप की प्राप्तिरूप जानना। अन्य मतवादी मोक्ष का अन्यथा स्वरूप कहते हैं उसका श्रद्धान करने योग्य नहीं है।

१) **बौद्ध -** जिस प्रकार दीपक का निर्वाण अर्थात् बुझना उसी प्रकार स्कन्धसंतान का नाश होने से आत्मा का अभाव होना ही निर्वाण है ऐसा बौद्ध कहते हैं। पूर्वोक्त वर्णन से उनकी मान्यता का निराकरण होता है। क्योंकि समस्त पुरुषार्थ की सिद्धि होने से पराकाष्ठा को प्राप्त ऐसे मोक्ष में आत्मा का अभाव मानने में विरोध आता है। जब मूलवस्तु का नाश होता है तो उसे करने का उपाय क्यों करता है? कोई भी सचेतन पुरुष आत्मा का अभाव करने के लिए उद्यत दिखता नहीं है। इस प्रकार मोक्ष में आत्मा का अभाव मानने पर मोक्ष के लिए पुरुषार्थ करना असमंजस होगा।

२) **यौगमत-** बुद्धि, सुख, दु:ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार इन आत्मा के नौ गुणों का नाश होना ही मोक्ष है ऐसा यौग मानते हैं। पूर्वोक्त कथन से ही उनकी मान्यता का निराकरण होता है। जहाँ विशेषरूप गुणों का अभाव हुआ वहाँ आत्मवस्तु का अभाव होता ही है क्योंकि विशेष लक्षण से शून्य वस्तु में वस्तुपना प्राप्त नहीं होता है इसलिए गधे के सींग के समान मुक्तात्मा का अभाव होने का प्रसंग आता है इसलिए यह दर्शन समीचीन नहीं है।

३) **सांख्यमत -** जिस आत्मा का कार्य-कारण संबंध दूर हुआ है ऐसी आत्मा का सोये हुए पुरुष के समान अव्यक्त चैतन्यस्वरूप से अवस्थित रहना मोक्ष है ऐसी सांख्यों की मान्यता है। उनका यह मानना असत्य है क्योंकि इस मान्यता में भी पूर्वोक्त दोष प्राप्त होते हैं क्योंकि चैतन्य आत्मा का गुण है। वह मोक्ष में विकसित होने के स्थान अव्यक्त हुआ। इस प्रकार विविध प्रकार के अन्यथा प्ररूपण करते हैं उनका निराकरण जैन न्यायशास्त्रों में किया है वहीं से जानना चाहिए।

मोक्ष अवस्था को प्राप्त सिद्ध भगवान निरन्तर अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करते हैं। जब इन्द्रिय और मन द्वारा कुछ जानना होता है और थोड़ी निराकुलता होती है तब आत्मा अपने को सुखी मानता है तो जहाँ सर्व ही जान लिया और सर्वथा निराकुलता हुई तो वहाँ परमसुख कैसे नहीं होगा? तीन लोक के तीन काल संबंधी पुण्यशाली जीवों के सुख से भी अनन्तगुणा सुख सिद्धों को एक समय में होता है क्योंकि संसार में सुख ऐसा है कि जिस प्रकार महारोगी रोग के कुछ कम होने पर अपने को सुखी मानता है और सिद्धों का सुख ऐसा है कि जैसे रोगरहित निराकुल पुरुष सहज ही सुखी होता

है। ऐसे अनन्त सुखस्वरूप से विराजमान, सम्यक्त्वादि अष्टगुणसहित, लोकाग्र में स्थित, सिद्ध भगवान हैं वह हमारा कल्याण करें ।

इस प्रकार माधवचन्द्र आचार्य ने धवल जयधवल शास्त्रानुसार स्वतन्त्र क्षपणासार ग्रंथ लिखा है। उसी के अनुसार यहाँ क्षपणा का वर्णनरूप लब्धिसार की गाथाओं का व्याख्यान किया।

अब आचार्य लब्धिसार ग्रन्थ की समाप्ति करते हुए अपना नाम प्रकट करते हैं-

वीरिंदणंदिवच्छेणप्पसुदेणभयणंदिसिस्सेण।
दंसणचरित्तलद्धी सुसूयिया णेमिचंदेण ।।६५३।।

वीरेन्द्रनन्दिवत्सेनाल्पश्रुतेनाभयनन्दिशिष्येण।
दर्शनचारित्रलब्धिः सुसूत्रिता नेमिचन्द्रेण ।।६५३।।

अन्वयार्थ - (वीरिंदणंदिवच्छेण) वीरनंदि और इंद्रनंदि आचार्यों का वत्स और **(अभयणंदिसिस्सेण)** अभयनंदि आचार्य का शिष्य **(अप्पसुदेण)** अल्पश्रुतज्ञानी **(णेमिचंदेण)** नेमिचंद्र ने **(दंसणचरित्तलद्धी)** दर्शन और चारित्रलब्धि **(सुसूयिया)** समीचीन प्रकार से कही है।

अब आचार्य गुरु को नमस्काररूप अंतिम मंगल करते हैं-

जस्स य पायपसाएण णंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो।
वीरिंदणंदिवच्छो णमामि तं अभयणंदि गुरुं ।।६५४।।

यस्य च पादप्रसादेनानन्तसंसारजलधिमुत्तीर्णः।
वीरेन्द्रनन्दिवत्सो नमामि तमभयनन्दिगुरुम् ।।६५४।।

अन्वयार्थ - (वीरिंदणंदिवच्छो) वीरनंदि और इंद्रनंदि आचार्यों का वत्स(मैं नेमिचंद्र आचार्य) **(जस्स य पायपसाएण)** जिनकी चरणकृपा से **(णंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो)** अनन्त संसार समुद्र से पार हुआ **(तं अभयणंदिगुरूं)** उन अभयनंदि गुरु को **(णमामि)** नमस्कार करता हूँ।

इस शास्त्र के अभ्यास से दर्शन और चारित्रलब्धि का स्वरूप जानकर आत्मस्वरूप का श्रद्धान और आचरण हो, जिससे सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से संपन्न होकर केवलज्ञान प्राप्त करके सर्व कर्मों का नाश हो और उत्कृष्ट ज्ञानानंदमय कृतकृत्य अवस्थारूप सिद्धपद प्राप्त हो यही मंगलभावना है।

इति चारित्रमोहक्षपणाधिकारः समाप्तः ।।

श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो नमो नमः।

श्रीमद् माधवचन्द्राचार्यविरचित संस्कृत गद्यात्मक टीकाग्रंथ
क्षपणासार

(शार्दुलविक्रीडित)

श्री सद्धर्मसमुद्रनंदनवरः संवृद्धरत्नाकरः।
सत्सेव्यो विमलोऽतुलः सुखकरो लोकप्रकाशप्रदः।।
उद्यद्धीबलभद्रमाधवनुतश्रीपादपद्मद्वयो।
यो यूयं नमतादरात् कृतधियस्तं नेमिचंद्रं सदा।।१।।

क्षपणासारशास्त्रस्य नांदीसूत्रव्याख्यानमिदं। श्री सद्धर्मसमुद्रनंदनवरः सप्तांगराज्यलक्ष्म्या विशिष्टक्षत्रधर्मेण च युतः समुद्रविजयस्य प्रियपुत्रः संवृद्धरत्नाकरः परमप्रकर्षप्राप्त-परमावगाढसम्यक्त्वकेवलज्ञानयथाख्यातशुद्धचारित्ररूपरत्नानामास्पदीभूतः। सत्सेव्यो गणधरकुलिशधरफणाधरचक्रधरप्रमुखभव्यपुंडरीकाणामाराध्यः। विमलः द्रव्यभावात्मक-घातिचतुष्टयरहितः। अतुलः रूपेण कांत्या माहात्म्येन च त्रैलोक्येऽप्यतिक्रांतोपमः। सुखकरः तत्त्वोपदेशनद्वारेण सहजशारीरमानसागंतुकानि चतुर्विधदुःखानि निवार्य भव्यानामभ्युदयनिः-श्रेयससुखस्य कर्ता। लोकप्रकाशप्रदः केवलज्ञानदिवाकरकरनिकरेण विनेयजनस्वांतध्वांतसंतानं निराकृत्य सकलपदार्थयाथात्म्यस्य प्रकाशकः। उघद्धीबलभद्रमाधवनुतश्रीपादपद्मद्वयः। विवेका-करीभूताभ्यां प्रत्यक्षवंदकतया वर्तमानबलदेववासुदेवाभ्यां स्तुतश्रीपादकमलयमलः यः तं नेमिचंद्रं नेमिनाथतीर्थकरं। कृतधियो मुख्यमंगलकरणार्पितप्रीतयो यूयं सदावंद्यवंदकभावपर्यंतं। आदरात्। अर्थितया नमत नमस्कारं कुरुत। एवंविधहरिकुलतिलकभूतनेमिनाथस्वामिनं शास्त्रकारः स्वयं निर्भरभक्त्या नमन् यूयमपि नमस्कृत्य कृतार्था भवतेति भव्यजनान् प्रेरितवानित्यर्थः।

शास्त्रकारस्य गुरुनेमिचंद्रसैद्धांतचक्रवर्तिवंदनारूपेणाथवा मंगलसूत्रं व्याक्रियते। तद्यथा यः श्रीसद्धर्मसमुद्रनंदनवरः। स्याद्वादलक्षणलक्ष्मीजन्मावासभूतविशिष्टसागारानगारधर्मसमुद्र-वर्द्धनमुख्यः संवृद्धरत्नाकरः पंचविंशतिमलरहितविशिष्टसम्यक्त्वनिरतिचारचारुचारित्र-सकलशास्त्रार्थसार्थपरिच्छेदनपटिष्टविमलज्ञानरूपरत्नानामुदयस्याकरभूतः। सत्सेव्यः विद्वज्जन-पूज्यः। विमलः अनवरतपरमागमभावनासुधासागरावगाहप्रक्षालितात्मीयकलिकलुषमलपंक-संदोहः। अतुलः कविगमकिवादिवाग्मितागुणैरद्वितीयः। सुखकरः मिथ्यात्वाद्यपायनिराकरणेन

सम्यक्त्वाद्युपायप्रदर्शनेन च समस्तजनस्य हितकरः। लोकप्रकाशप्रदः श्रुतज्ञानप्रबलप्रभाकर-प्रभूतप्रभाप्रभावेन जनस्य सर्वपदार्थानां करतलामलकवद्दर्शकः। उद्यद्धीबलभद्रमाधवेन षड्खंडात्मकसिद्धांतार्थधारणप्रतिपादनसमर्थमतिबलविशिष्टगुणैरुत्कृष्टमाधवचंद्रमुनिना पंचांग-मंत्रबृहस्पतिसमानबुद्धियुतभोजराजप्राज्यसाम्राज्यसमुद्धारणसमर्थबाहुबलयुक्तदानादिगुणोत्कृष्ट-महामात्यपदवीलक्ष्मीवल्लभबाहुबलिमहाप्रधानेन वा नुतश्रीपादपद्मद्वयः। वंदितश्रीपाद-पद्मयुगलः। तं नेमिचंद्रं। एवंविधं नेमिचंद्राचार्यं। कृतधियः एतत् शास्त्रश्रवणे दत्तचित्ताः श्रोतृजनाः ययूं आदरात् निर्भरभक्त्या सदा सर्वकालं नमत। वंदनां कुरुत।

चंद्रेण सह श्लेषोऽस्तीति तत् पक्षेऽपि अयं सूत्रार्थः संबंधनीयः। तद्यथा - श्री सद्धर्मसमुद्रनंदनवरः। लक्ष्मीरत्नादिविशिष्टवस्तूनि च दधानस्य जलधेः पुत्रवर्यः। संवृद्धरत्नाकरः सागरवर्द्धकः। सत्सेव्यः नक्षत्रादिदेवनिकायस्य आराध्यःविमलः क्षीरवाराशिवीचीनिचय-संकाशकलाकलापपरीतः। अतुलः संतापनिराकरणशैत्यकरणादिगुणैरसदृशः। सुखकरः सकल-कुवलयस्यानंदकरः। लोकप्रकाशप्रदः भुवनप्रकाशकः। उद्यद्धीबलभद्रमाधवनुतश्रीपादपद्मद्वयः निखिललोकस्योत्कृष्टदृष्टिस्थानीयसप्तानीकविराजितवसंतराजपूजितश्रीपादारविंदद्वंद्वः। यः तं ईदृशगुणयुतं नेमिचंद्रं लोकयात्रारथप्रवर्तकचंद्रं। कृतधियो यूयं धीमंतो भवन्तः सदा सर्वकालं आदरात् नमत। लोकोपकारीति स्तुतिं कुरुत[१]।। एवमुपेयतत्त्वं नमस्कृत्योपायतत्त्वस्तुतिद्वारेणास्य शास्त्रस्याधिकारनिर्देशकरणार्थं द्वितीयं मंगलसूत्रमाह।।

करणह्रासवशात्क्रमक्षयविधेर्देशात्प्रवृत्तांतरात्
परितः संक्रमणादपूर्वजनितान्मोहस्य वाहश्रुतेः।
कृशरूपानुभवात्क्षयाच्चदुरितव्रातस्य योगस्य यः
परमात्माऽजनि लब्धिसंपदुदयस्तं नौमि तत्सिद्धये।।२।।

करणह्रासवशात् इंद्रियाणि स्वस्वविषयेभ्यो व्यावर्त्य स्ववशीकरणवशात्। क्रमक्षयविधेर्देशात् अष्टकषायादिक्षपणाक्रमविधानकरणात् प्रवृत्तांतरात्। भेदविज्ञान-संपत्तियुक्तांतरात्मावलंबनात्। मोहस्य मोहनीयस्य परमाणूनां। वाहश्रुतेः प्रवाहरूपेण प्रवर्तमानेत-रकर्मसमूहस्य परमाणूनां। अपूर्वजनितात्परितः संक्रमणात्। अस्मिन्नवसरे अपूर्वतयोत्पन्नगुण-संक्रमणादिसंक्रमणैःपरस्परसंक्रमणात्। कृशरूपानुभवात् प्रतिसमयमशुभकर्मानुभागस्यानंत-गुणहीनतयानुभवनात्। दुरितव्रातस्य सकलकर्मणां योगस्य मनोवाक्कायलक्षणयोगस्य क्षयाच्च यः

१. उत्पन्नकेवल ज्ञानादिसंपत्कार्यमेवोपेयतत्त्वं एतद्विशिष्टनेमिं नमस्कृत्य। उपायतत्त्वं कर्मक्षपणं।

परममुनि: लब्धिसंपदुदय: नवकेवललब्धीनां परमकाष्ठाधिष्ठितो[१] भूत्वा। परमात्माऽजनि। अनेन क्षपणाविधानक्रमेण परमात्मपदेऽधिष्ठित:। तत्सिद्ध्ये तत्परमात्मपदप्राप्तिनिमित्तं। तं नौमि एवंविधं परमात्मानं नमस्करोमि।

अत्र करणपदेनाऽध:प्रवृत्ताऽपूर्वाऽनिवृत्तिकरणनामाधिकारत्रयं निरूपितम्। ह्रासवशादिति पदेन बंधापसरणसत्त्वापसरणनामाधिकारद्वयं निगदितम्। क्रमपदेन क्रमकरणाधिकारो भणित:। क्षयविधेरिति पदेनाऽष्टकषायषोडशप्रकृतिक्षपणाधिकार: सूचित:। देशादिति पदेन देशघातिकरणाधिकार: कथित:। प्रवृत्तांतरादिति पदेनांतरकरणाधिकारो भाषित:। परित: संक्रमणादिति पदेन नंपुसकवेदादिकर्मप्रकृतिबंधाऽऽयुक्तकरणसंक्रमणाधिकारो ध्वनित:। अपूर्वजनितादिति पदेनापूर्वस्पर्द्धककरणाधिकारो ज्ञापित:। मोहस्य वाहश्रुतेरितिपदेनाऽश्वकर्णकरणाधिकार: प्रकाशित:। कृशरूपपदेन कृष्टिकरणाधिकार: उद्योतित:। अनुभवादिति पदेन कृष्टिवेदनाधिकार: शब्दित:। दुरितव्रातस्य क्षयादिति पदेन ज्ञानावरणादिकर्मक्षपणाधिकार: प्रकटित:। योगस्य क्षयाच्चेति पदेन योगनिरोधकरणाधिकार: प्रदीपित:।।

स्वप्रतिज्ञाप्रकाशननिमित्तमिमामार्यामाह -

अथ संक्षेपाद्वक्ष्ये क्षपणाविवृतिं चरित्रमोहस्य।
मोक्षाय ममुक्षूणामक्षूणैरेभिरधिकारै:।।३।।

अथ मंगलकरणानंतरं अक्षूणैरेभिरधिकारै: चरित्रमोहस्य क्षपणाविवरणं मुमुक्षूणां सर्वकर्मनिर्मूलनार्थिमुनिजनानां मोक्षाय स्वस्वरूपप्राप्तिलक्षणमोक्षसंसिद्धिनिमित्तं संक्षेपात् संक्षेपरूपेण वक्ष्ये प्रतिपादयिष्ये इत्यनेन शास्त्रकारस्य संबंधाभिधेयप्रयोजनं प्रतिपादितं। अत्र पूर्वमेव करणपरिणाममहामंत्रप्रभावेन सप्तप्रकृतिविकृत[२]सदर्पसर्पोच्चाटनं कृत्वा क्षायिकसम्यक्त्वाक्षयमहानिधिं स्वीकृत्यैकविंशतिसत्त्वकर्मा भूत्वा अंतर्मुहूर्तांतर्मुहूर्तसमधिकाष्टवर्षन्यूनपूर्वकोटिद्वयाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणयोर्जघन्योत्कृष्टकालयोर्मध्ये क्वचिच्चारित्रमोहक्षपणार्हविशुद्धिपरिणामो भूत्वा प्रमत्ताप्रमत्तपरावर्तनसहस्राणि कृत्वा अतुलतप: प्रबलबलकलित: सम्यग्ज्ञानसेनानायकाधिष्ठित: समुज्ज्वलचारित्रमहाध्वजविराजित: महाव्रतदिव्यवाहनसहित: गुप्तित्रयांगरक्षकरक्षित: धैर्यवर[३] पुंडरीकमंडलीमंडित: शुक्ललेश्यापरिणामचारुचामरप्रचयविजित: दयामयवज्रकवचवर्मित: सद्गुणदृढ[४] [५]मार्गणातिशयधर्मसंशोभित:।

१. परमप्रकर्षाधिष्ठित: २. विषविकार ३. छत्रसमूहशोभित:/छत्रस्थवृत्तकार:
४. गुणस्थानं ५. चतुर्दशमार्गणा

सुविशुद्धध्यानचक्ररत्नालंकृतो भूत्वा प्रतिपक्षकर्मनिर्मूलनप्रक्षयेण यथाख्यातशुद्धचारित्र-प्राज्यसाम्राज्यैकाधिपत्यस्यांगीकरणार्थं क्षपकश्रेणिदिग्विजयाभिमुखयतिचक्रवर्ती निशितखङ्गरत्न-सदृशांतर्मुहूर्तकालावछिन्नाधःप्रवृत्तापूर्वानिवृत्तिकरणपरिणामान् क्रमेणादत्ते। तेष्वधःप्रवृत्तकरण-परिणामप्रथमसमयमादिं कृत्वा चरमसमयपर्यंतमनंतगुणविशुद्धिवृद्धिः। अंतर्मुहूर्तेनांतर्मुहूर्तेन स्थितिमपसृत्यापसृत्य बंधनलक्षणबंधापसरणसंख्यातसहस्राणि अप्रशस्तकर्मणां प्रतिसमय-मनंतगुणहीनद्विस्थानानुभागबंधः प्रशस्तकर्मणां प्रतिसमयमनंतगुणचतुःस्थानानुभागबंधश्चेति चतुरावश्यकानि कुर्वतः सातिशयाप्रमत्तमुनिराजस्य विशेषलक्षणप्ररूपणार्थं चत्वारि गाथासूत्राण्यवतारितानि। तेषु परिणामादिविशेषलक्षणप्ररूपणार्थं प्रथमगाथावतारः -

कसायखवणोवट्ठाणे परिणामो केरिसो हवे।
जोगो कसाय उवजोगो लेस्सा वेदो य को हवे।।

चारित्रमोहक्षपणाप्रारंभके परिणामः कीदृशो भवेदिति चेत् अतिविशुद्धः[1]। योगः कीदृशो भवेत्। चतुर्विधमनोयोगेष्वेकः चतुर्विधवाग्योगेष्वेकः सप्तविधकाययोगेष्वौदारिककाययोग एव। कषायः कीदृशो भवेदिति चेत्? संज्वलनचतुष्टये एकः। स च हीयमान एव। विशुद्धिवृद्धौ कषायवृद्धेर्विरुद्धत्वात्। उपयोगः कीदृशो भवेत्? बहुमुनिसंमतप्रवाह्योपदेशेन श्रुतज्ञानोपयोगः एव। अस्मिन् पक्षे दर्शनोपयोगो नास्ति।। अन्योपदेशेन तु मतिश्रुतज्ञानोपयोगयोरेकः। चक्षुरचक्षुर्दर्शनोपयोगयोरप्येकः। लेश्या कीदृशी भवेत्? प्रवर्द्धमानशुक्ललेश्यैव। वेदः कीदृशो भवेत्? भावापेक्षया त्रिष्वेकः। द्रव्यापेक्षया तु पुंवेद एव।।

सत्त्वादिविचारनिमित्तं द्वितीयगाथावतारः -

काणि वा पुव्वबद्धाणि के वा अंसे णिबंधदि।
कदियावलियं पविसंति कदिण्हं वा पवेसगो।।

काणि वा पुव्वबद्धाणि + तस्मिन् चारित्रमोहक्षपणाप्रारंभके महामुनौ कानि कीदृशानि पूर्वबद्धानि। प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदेन पूर्वबद्धकर्माणि सत्त्वेन वर्तन्ते। इति चेत्। क्षपितसप्तप्रकृति-नरकतिर्यग्देवायुष्येभ्यः शेषाणां सर्वेषामपि प्रकृतिसत्त्वं संभवति। तत्र आहारकतदंगोपांगतीर्थंकर-

---

१. दर्शनमोहोपशमनादौ प्रवर्तमानाऽधप्रवृत्तकरणपरिणामात् क्षपकश्रेण्यभिमुखकृताधप्रवृत्तकरण-परिणामाअतिविशुद्धाः

त्वानि भजनीयानि[१]। सत्त्वप्रकृतिषु मनुष्यायुष्यादन्यासां स्थितिसत्त्वं अंत:कोटीकोटिप्रमाणं। अनुभागसत्त्वमप्रशस्तानां[२] द्वैस्थानिकं प्रशस्तानां चातु:[३]स्थानिकं। प्रदेशसत्त्वं अजघन्याऽनुत्कृष्टमेव संभवतीति ज्ञातव्यम्। के वा अंसे णिबंधदि वा शब्दोऽत्र प्रश्नार्थ: तत भो भगवन् चतुर्विधबंधभेदेन बध्यमाना: कर्मप्रकृती: केन कीदृशेन अंशेन विभागेन निबध्नातीति चेत् तत्प्रमाणं मंददर्शनमोहोपशमकवद्ग्राह्यं तथापि मंदमतिशिष्यानुग्रहार्थं उच्यते। तद्यथा पंचज्ञानावरणीयं षड्दर्शनावरणीयसातवेदनीयचतु:संज्वलनपुंवेदहास्यरतिभयजुगुप्सोच्चैर्गोत्रपंचांतरायभेदसप्तविंशति:। नामकर्माणि तु देवगतिपंचेद्रियजातिवैक्रियिकतैजसकार्मणशरीरसमचतुरस्त्रसंस्थानवैक्रियिकांगोपांगवर्णगंधरसस्पर्शदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीरस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशस्कीर्तिनिर्माणभेदेनाष्टाविंशति:। वा एताश्च तीर्थकरत्वमित्येकान्नत्रिंशत् वा आहारशरीरतदंगोपांगाभ्यां सहिता: त्रिंशत् वा तीर्थकराहारकद्वयाभ्यां युक्ता एकत्रिंशत् प्रकृतयो बध्यन्ते इत्ययमुपशमकाद्विशेषोऽवसेय:। एवं प्रकृतिबंधो निरूपित:। बध्यमानप्रकृतीनां स्थितिसत्त्वात्संख्यातगुणहीनांत:कोटीकोटिस्थितिं बध्नाति। एवं स्थितिबंध: कथित:। प्रकृतिष्वप्रशस्तानां द्विस्थानानुभागमनंतगुणहान्या प्रशस्तानां चतु:स्थानानुभागमनंतगुणवृध्या बध्नाति एवमनुभागबंधो भणित:। प्रकृतीनामजघन्यानुत्कृष्टप्रदेशं बध्नाति। तासु प्रचलानिद्राहास्यरतिभयजुगुप्सादेवगतितत्प्रायोग्यानुपूर्वीवैक्रियिकशरीरतदंगोपांगाहारकद्विकसमचतुरस्रसंस्थानप्रशस्तविहायोगतिसुभगसुस्वरादेयतीर्थकरत्वानां कथंचिदुत्कृष्टप्रदेशमपि बध्नातीति ज्ञातव्यम्। एवं प्रदेशबंध: प्ररूपित:। कदियावलियं पविसंति। कतिकर्माण्युदयावलिं प्रविशतीति चेत्। मूलप्रकृतय: सर्वा अप्युदयरूपेण उत्तरप्रकृतय: उदयानुदयरूपेण चोदयावलिं प्रविशंति। कदिण्हं वा पवेसगो। कियंति कर्माण्युदीरणारूपेणोदयावलिं प्रवेशयन्तीति चेत्। सातासातावेदनीयमनुष्यायुर्वर्जितस्वमुखोदयसर्वकर्माणि च।।

बंधव्युछित्त्यादिविचारनिमित्तं तृतीयगाथावतार: -

के अंसे झीयदे पुव्वं बंधेण उदयेण वा।
अंतरं वा कहिं किच्चा के के संकामगो कहिं।।

पूर्वं कानि कर्माणि बंधेन उदयेन वा विनश्यंतीति चेत्। स्त्यानगृद्धि:निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला असातं मिथ्यात्त्वं द्वादशकषाया: अरति: शोक: स्त्रीवेद:नपुंसक:सर्वायूंषि परावर्तमानाऽशुभनामानि २९

१. संति न संतीति विकल्पनीयानि २. निंबकाजीररूपं ३. गुडखंडशर्करामृतभेदं

मनुष्यगत्यौदारिकशरीरतदंगोपांगवज्रवृषभनाराचसंहननमनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यातपोद्योत-भेदशुभनामानि नीचैर्गोत्रं चेति प्रकृतयो बंधतो व्युच्छिन्ना:[१] परावर्तमानाशुभनामानि कानीति चेत्। नरकतिर्यग्गत्येकेंद्रियद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियजातिपंचसंस्थानपंचसंहनननरकतिर्यग्ग-तिप्रायोग्यानुपूर्व्यप्रशस्तविहायोगतिस्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणशरीरास्थिराशुभदुर्भगदु:स्वरानादेयायशस्कीर्त्यभिधानि। स्त्यानगृद्धिनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलामिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्त्व-सम्यक्त्वप्रकृतिद्वादशकषायनरकतिर्यग्देवायुर्नरकतिर्यग्देवगतितदानुपूर्वीत्रयैकविकलेंद्रिय-जातिवैक्रियिकशरीरतदंगोपांगाहारकशरीरतदंगोपांगवज्रवृषभनाराचवर्जितषट्संहननमनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्व्यातपोद्योतस्थावरसूक्ष्मसाधारणापर्याप्तदुर्भगानादेयायशस्कीर्तितीर्थकरत्व[२] नीचैर्गोत्राण्युदयतो व्युछिन्नानि। अंतरं वा अंतरकरणं पुन:। कहिं कुत्र। किच्चा कृत्वा। के के। केषां केषां कर्मणां। कहिं कस्य मध्ये। संकामगो संक्रामकोऽस्तीति चेत्। अनिवृत्तिकरणकालसंख्यातबहुभागानतीत्यांतरकरणं संक्रमक्रियां च करोतीत्यस्मिन्नवसरे न करोतीत्ययं परिहार:।।

स्थित्यनुभागनिरूपणनिमित्तं चतुर्थगाथावतार:

के ट्ठिदीयाणि कम्माणि अणुभागेसु केसु वा।
उवट्टेदूण सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि।।

के ट्ठिदियाणि कम्माणि कीदृशस्थितिविशेषवर्तमानकर्माणि कांडकघातेनापवर्त्य शेषस्थानं कीदृशं गमयतीति प्रश्न:। अनेन स्थितिकांडकघात: सूचित:। अणुभागेसु केसु वा। कीदृशानुभागे वर्तमानकर्माणि। उवट्टेदूण। कांडकघातेन हत्वा। सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि। शेषस्थानं कीदृशं नयतीति प्रश्न:। अनेनानुभागकांडकघातो भणित: । अध:प्रवृत्तकरणे स्थित्यनुभागकांडकघातो नास्ति अपूर्वकरणे तद्घातो भवेदिति परिहार:। अध:प्रवृत्तकरणस्वरूपनिरूपणसूत्रम्-

यत्र अध:स्तनभावा भावैरूर्ध्वस्थितै: समाश्च स्यु:
तदध:प्रवृत्तकरणं गुणनामयुतं विनिर्दिष्टम्।

।। इत्यध:प्रवृत्तकरणं समाप्तम्।।

---

१. अत्र बंधव्युच्छित्तौ उदयविच्छित्तौ सत्त्वविच्छित्तौ यत्र कुत्रापि संशये गोम्मटसारे तत्र त्रिभंग्यां निर्णय: स्यादेवाऽतस्तत्र त्रिभंगी द्रष्टव्या।

२. सयोगिन्येवोदय अतएवाधस्तनगुणस्थानेषु व्युच्छित्ति:।

अनंतरक्षणेऽपूर्वकरणमारोहति। तत्प्रथमसमये वर्तमानस्य स्थितिकांडकप्रमाणं जघन्यं पल्यसंख्यातैकभागः। उत्कृष्टं तु तदालापं तथापि जघन्यात्संख्यातगुणं। अत्र जघन्योत्कृष्टकांडके कीदृशयोर्भवत इति चेत्। कश्चित् दर्शनमोहं क्षपयित्वा उपशमश्रेणिमारुह्यावतीर्य चारित्र-मोहक्षपणोद्युक्तो जातः। अन्यः कश्चिद्दर्शनमोहं क्षपयित्वा उपशमश्रेणिमनारुह्य चारित्रमोहक्षपणाभिमुखो जातः। तौ द्वौ चारित्रमोहक्षपकौ प्रथममेवापूर्वकरणगुणस्थानप्रथमसमयं प्रविष्टौ। तयोर्मध्ये यः उपशमश्रेणिमनारुह्यागतः तस्य स्थितिसत्त्वकर्म संख्यातगुणं। उपशमश्रेण्यां स्थितिकांडकघातकरणाभावात्। यः उपशमश्रेणिं चटित्वागतः तस्य स्थितिसत्त्वकर्म संख्यातगुणहीनं। तत्र बहुशैः स्थितिकांडकघातैरल्पीकृतत्वात्। यस्य संख्यातगुणहीन-स्थितिसत्त्वकर्म तस्य प्रथमस्थितिकांडकात् संख्यातगुणस्थितिसत्त्वकर्मणः प्रथमस्थितिकांडकं संख्यातगुणितं कांडकानां स्थित्यनुसारित्वात्। एवं तद्द्वितीय कांडकात्द्वितीयकांडकं संख्यातगुणं तृतीयात् तृतीयं संख्यातगुणं। सर्वस्मिन्नपूर्वकरणकाले अनेन क्रमेण व्याप्तिं नयेत् यावच्चरमस्थितिकांडकाच्चरमस्थितिकांडकं संख्यातगुणं तावत्। इदं स्थितिकांडकस्वरूपनिरूपणम्।

अनुभागकांडकघातः कथमिति चेत्। अप्रशस्तकर्मणामनंतबहुभागमात्रमनुभागकांडकं लांछितं। प्रशस्तकर्मणामनुभागकांडकघातो नास्ति। पल्यसंख्यातैकभागो बंधतोऽपसृतो जातः सर्वबध्यमानानामधःप्रवृत्तकरणचरमसमयस्थितिबंधात् पल्यसंख्यातैकभागं हीनयित्वान्यं स्थितिबंधमपूर्वकरणप्रथमसमये प्रारभते इत्यर्थः। उदयावलिबाह्यगलितावशेषगुणश्रेणिः क्रियते। तद्गुणश्रेण्यायामः अपूर्वानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायक्षीणकषायकालात्समुदितात् विशेषाधिकः। अधिकप्रमाणं क्षीणकषायकालसंख्यातैकभागमात्रं। यान्यप्रशस्तकर्माणि बंधवर्जितानि तेषां गुणसंक्रमणं करोति। बंधरहिताशुभकर्मप्रदेशान् बध्यमानस्वजातीयकर्ममध्ये प्रतिसमयम-संख्यातगुणितक्रमेण स्वभावांतररूपेण निक्षिपतीत्यभिप्रायः। स्थितिसत्त्वं स्थितिबंधश्च सागरोपम-कोटिलक्षपृथक्त्वमस्तीत्यंतःकोटीकोट्यां वर्त्तते। बंधतः सत्त्वं संख्यातगुणं। एवं स्थितिकांडक-घातानुभागकांडकघातस्थितिबंधापसरणगुणश्रेणिगुणसंक्रमणभेदपंचावश्यकप्रतिबद्धव्याख्यानम-पूर्वकरणप्रथमसमयापेक्षया प्ररूपितम्। प्रथमसमयावश्यकप्रतिपादनतो द्वितीयसमयावश्यक-निरूपणस्य[१] भेदोस्ति स क इति चेत्। प्रथमसमयगुणश्रेणितो द्वितीयसमयगुणश्रेणिनिक्षेपद्रव्य-मसंख्यातगुणं प्रतिसमयमसंख्यातगुणद्रव्यमपकृष्य गुणश्रेणिकरणात् गलितावशेषद्रव्यनिक्षेपः। विशुद्धिरनंतगुणा। शेषावश्यकेषु किमपि भेदो नास्ति। इत्यनंतरोक्तक्रमं तावन्नयेत् यावदंतर्मुहूर्तकालं प्राप्य प्रथमसमयलांछितानुभागकांडकं समाप्नोति। तदनंतरसमये घातितशेषा-

---

१. संक्रमे प्रतिसमयमसंख्यातगुणं तथापि तन्न विवक्षितं।

नुभागस्यानन्तबहुभागमात्रमन्यदनुभागकांडकं लांछितम्। इदानीमनुभागसत्त्वं कांडकघाततोऽनंतगुणहीनमस्तीति प्रथमसमयनिरूपणतः इदानींतननिरूपणाया भेदो ज्ञातव्यः। प्रथमस्थितिकांडकोत्करणकाले अनेन क्रमेण संख्यातसहस्रानुभागकांडकानि नीत्वा पुनरन्यदनुभागकांडकं प्रथमस्थितिकांडकमपूर्वकरणप्रथमसमयप्रारब्धस्थितिबंधश्चेति त्रयं युगपदेव समाप्तम्। एवं स्थितिबंधसहस्राणि नीत्वा अपूर्वकरणकालं समानतया सप्तभागीकृत्य तत्र प्रथमसप्तमभागे गते निद्राप्रचलयोर्बंधव्युच्छित्तिः। बंधव्युच्छित्तिस्थाने एव निद्रां प्रचलां स्वजातीयबध्यमानचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणीयेषु गुणसंक्रमणेन संक्रमयति। इतः परं स्थितिबंधसहस्रेषु गतेष्वपूर्वकरणस्य षट्सप्तमभागचरमे देवगत्या सह बंधयोग्यनामकर्मणां बंधव्युच्छित्तिः। परभवसंबंधिनामकर्माणि कानि कानीति चेत्। देवगतिपंचेद्रिंयजातिवैक्रियिकतैजसाहारककार्मणशरीरसमचतुरस्रसंस्थानवैक्रियिकाहारकांगोपांगवर्णगंधरसस्पर्शदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीरस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेयनिर्माणतीर्थकरत्वानीति त्रिशंत्। अत उपरि स्थितिबंधसहस्त्रेष्वपूर्वकरणगुणस्थानचरमसमयं प्राप्तः। तत्र हास्यरतिभयजुगुप्सानां बंधव्युच्छित्तिः। षण्णेकषायाणामुदयव्युच्छित्तिः।।

अपूर्वकरणस्वरूपप्रकाशकसूत्रं -

यत्रोपरितनभावा न सर्वदा अधस्तनैः समानाः स्युः।
तद्विद्ध्यपूर्वकरणं गुणसंज्ञं कर्मनाशकरं।।

।।एवमपूर्वकरणं समाप्तं।।

तदनंतरसमये प्रथमानिवृत्तिकरणो जातः। तत्क्रियमाणावश्यकान्युच्यंते। तद्यथा - प्रथमसमयानिवृत्तिकरणस्य अन्यत्स्थितिकांडकं पल्यसंख्यातैकभागमात्रं। घातितावशेषानंतबहुभागमात्रमन्यदनुभागकांडकं अपूर्वकरणचरमस्थितिबंधतः पल्यसंख्यातैकभागेन हीनोऽन्यः स्थितिबंधः। अनिवृत्तिकरणप्रथमस्थितिकांडकं सर्वेषामपि समानमन्यथा वा। प्रथमस्थितिकांडकं विषमं जघन्यादुत्कृष्टस्य संख्यातभागाधिकत्वात्। अस्य किं कारणमिति चेत्। कश्चित् संख्यातभागाधिकस्थितिसत्त्वकर्मी[१]

---

१. सव्वत्थ अपुव्वकरणपढमसमयजहण्णट्ठिदिसत्तकम्माणं उवरिट्ठिदिसत्तकम्मं समयाहियकमेण गंतूण असंखेज्जभागाहियं संखेज्जभागाहियं संखेज्जगुणाहियं च होइ। एवं ठिदिखंडस्स विवत्तं ठिदीसत्तकम्माणुसारेणेव ठिदिखंडयाणं पउत्तीयेणायत्तादौ इदं लब्धिसारमूले सप्तसप्ततितमे गाथासूत्रे प्रतिपदरूपेण वर्तते

पुनरन्य: संख्यातभागहीनस्थितिसत्त्वकर्मा तौ च क्षपकश्रेणिं युगपद् चटितौ। तयोर्मध्ये संख्यात-भागहीनस्थितिसत्त्वकर्मण: स्थितिकांडकत: संख्यातभागाधिकस्थितिसत्त्वकर्मण: स्थितिकांडक-मपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य संख्यातभागाधिकं भवत् आगत्यानिवृत्तिकरणप्रथमसमयेऽपि जघन्यकांडकत: उत्कृष्टं स्थितिकांडकं संख्यातभागाधिकतया लांछितं जातमिति युक्तियुक्तं। तत: कारणात्पूर्वोक्तार्थ: सुघटित: प्रथमस्थितिकांडकपतने तत उपर्येकसमये वर्तमानसर्वानिवृत्ति-करणानां स्थितिकांडकं घातितावशेषस्थितिसत्त्वं च समानतयैव वर्तते तत: कारणात् द्वितीयादिस्थितिकांडकानि सर्वेषामपि समानान्येव भवन्ति। प्राक्तनांत:कोटीकोटिप्रमाण: स्थितिबंधोऽपूर्वकरणकाले संख्यातसहस्रमात्रस्थितिबंधापसरणैर्हीनो भूत्वाऽनिवृत्तिकरणप्रथम-समये सागरोपमसहस्रपृथक्त्वं भवति। प्राक्तनमंत:कोटीकोटिप्रमाणस्थितिसत्त्वमपूर्वकरणकाले संख्यातसहस्रस्थितिकांडकघातैर्हीनं भूत्वा अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये सागरोपमलक्षपृथक्त्वप्रमाणं गलितावशेषगुणश्रेणिर्गुणसंक्रमणं च पूर्ववदेव प्रतिसमयमसंख्यातगुणिततया वर्तेते। अनिवृत्ति-करणप्रथमसमये सर्वकर्मणामप्रशस्तोपशमननिधत्तिनिकाचनाभिधानि त्रीणि करणानि विनष्टानि सर्वकर्मणां सर्वपरमाणव: उदयसंक्रमणापकर्षणोत्कर्षणप्रायोग्या: जाता इत्यर्थ:। अत उपरि बंधापसरणक्रम उच्यते। इत्थं प्रथमसमयनिरूपितक्रमेण संख्यातसहस्रस्थितिबंधापसरणसहिता-निवृत्तिकरणसंख्यातबहुभागेषु गतेष्वन्य: स्थितिबंधोऽसंज्ञिस्थितिबंधेन सम:। मोहनीयस्य सागरोपमसहस्रचतु:सप्तमभागा: ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयांतरायाणां सागरोपमसहस्रत्रिसप्तमभागा: नामगोत्रयो: सागरोपमसहस्रद्विसप्तमभागावित्यर्थ:। अत उपरि संख्यातसहस्रस्थितिबंधेष्वतीतेषु चतुरिंद्रियस्थितिबंधेन समान: स्थितिबंध: अत्र मोहस्य सागरोपमशतचतु:सप्तमभागा: ज्ञानावरणादिचतुष्टयस्य सागरोपमशतत्रिसप्तमभागा: नामगोत्रयो: सागरोपमशतद्विसप्तमभागौ। अनेन क्रमेण संख्यातसहस्रस्थितिबंधेषु गतेषु त्रीन्द्रियस्थितिबंधसमानस्थितिबंध:। मोहस्य पंचाशत्सागरोपमचतु:सप्तमभागा: ज्ञानावरणादिचतुष्टयस्य पंचाशत्सागरोपमत्रिसप्तमभागा:। नामगोत्रयो: पंचाशत्सागरोपमद्विसप्तमभागौ। इत उपरि संख्यातसहस्रस्थितिबंधेष्वतिक्रांतेषु द्वीन्द्रियस्थितिबंधसमानस्थितिबंध:। अत्र मोहस्य पंचविंशतिसागरोपमचतु:सप्तमभागा: ज्ञानावरणादिचतुष्टयस्य पंचविंशतिसागरोपमत्रिसप्तमभागा: नामगोत्रयो: पंचविशतिसागरोपमद्वि-सप्तमभागौ। इत उपरि संख्यातसहस्रस्थितिबंधेषु गतेष्वेकेन्द्रियस्थितिबंधसमानस्थितिबंध अत्र मोहस्यैकसागरोपमचतु:सप्तमभागा:। ज्ञानावरणादिचतुष्टयस्यैकसागरोपमत्रिसप्तमभागा:। नामगोत्रयोरेकसागरोपमद्विसप्तमभागौ स्थितिबंधो भवति। पूर्वोक्ताऽसंज्ञ्यादिस्थितिबंध-प्रमाणसाधने युक्तिरुच्यते मिथ्यात्वस्योत्कृष्टस्थितिरेकेन्द्रिये एकसागरोपमं द्वीन्द्रिये पंचविंशति:

सागरोपमाणि त्रीन्द्रिये पंचाशत्सागरोपमाणि चतुरिंद्रिये शतं सागरोपमाणि असंज्ञिजीवे सहस्रसागरोपमाणि भवंति। सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमस्थितिकमिथ्यात्वस्यैकेंद्रिये सागरोपमस्थितौ सत्यां चत्वारिंशत्कोटिकोटिस्थितिकचारित्रमोहस्य कियती स्थितिर्भवति प्र - सा ७० को २ । फ - सा १ । इ-सा ४० को २। लब्धं - सा $\frac{४}{७}$ ।त्रिंशत्कोटीकोटिस्थितिक-कर्मणः कियती स्थितिः। सा ७० को २ । सा १ । सा ३० को २। लब्धं - सा $\frac{३}{७}$ । विंशति-कोटीकोटिस्थितिककर्मणः कियती स्थितिः। सा ७० को २ । सा १ । सा २० को २। लब्धं - सा $\frac{२}{७}$ । एवं त्रैराशिककरणे एकेंद्रियप्रतिबद्धं स्थितिप्रमाणमायाति। अनेन क्रमेण द्वींद्रियादिस्थितिं गृहीत्वा त्रैराशिके तत्तत्प्रतिबद्धचारित्रमोहादिस्थितिप्रमाणमागच्छति। सुविशुद्धिकरण-परिणाममाहात्म्यतोऽनिवृत्तिकरणः एकेन्द्रियादिस्थितिबंधसमानस्थितिबंधं करोति। अयं त्रैराशिकक्रमोऽग्रे वक्ष्यमाणसत्त्वापसरणेऽपि योज्यः। एकेन्द्रियस्थितिबंधसमानस्थितिबंधतः परं संख्यातसहस्रस्थितिबंधेषु गतेषु नामगोत्रयोः पल्यमात्रस्थितिबंधः संभवति। तस्मिन्काले ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयांतरायाणां द्व्यर्द्धपल्यमात्रस्थितिबंधः। मोहस्य द्विपल्यमात्रस्थितिबंधो भवति। अत्र विंशतिकोटीकोटिसागरोपमस्थितिकनामगोत्रयोः पल्यस्थितिबंधस्तदा त्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपमस्थितिकज्ञानावरणादिचतुष्टयस्य चत्वारिंशत्कोटीकोटिसागरोपम-स्थितिकमोहस्य च कियान् स्थितिबंधो भवतीति त्रैराशिकं कृत्वा द्व्यर्द्धपल्यमात्रस्थितिबंधं द्विपल्यमात्रस्थितिबंध च साधयेत्। तस्मिन् काले स्थितिसत्त्वकर्म कियद्भवतीति चेत्। सागरोपमशतसहस्रपृथक्त्वं तथाप्यनिवृत्तिकरणप्रथमसमयस्य सागरोपमशतसहस्रपृथक्त्वात् संख्यातगुणहीनं। तस्मिन् काले अल्पबहुत्वमुच्यते। तद्यथा - नामगोत्रयोः पल्यमात्रस्थितिबंधः स्तोकः। ततः ज्ञानावरणादिचतुष्टयस्थितिबंधोऽर्द्धेनाधिकः। ततः मोहस्थितिबंधोऽर्द्धाधिकः। संप्रत्येवेदं स्थितिबंधाल्पबहुत्वं जातमिति न वाच्यं। अंत्यदीपकत्वेन पूर्वोक्तसर्वस्थितिबंधा-नामनेनाल्पबहुत्वत्वेनागतमिति ग्राह्यम्। नामगोत्रयोः पल्यस्थितिबंधाऽनंतरस्थितिबंधः संख्यातगुणहीनः। पल्यमात्रस्थितिबंधे संख्यातभागीकृते बहुभागान् हीनयित्वा एकभागस्यैव बंधसद्भावात्। शेष पंचकर्मस्थितिबंधः पूर्वबंधतो विशेषहीनः पल्यसंख्यातैकभागेन हीनत्वात्। तस्मिन्नवसरेऽल्पबहुत्वमुच्यते। नामगोत्रयोः स्थितिबंधः स्तोकः। ज्ञानावरणादिचतुर्णामपि परस्परं समानः ततः संख्यातगुणः। पल्यसंख्यातैकभागमात्रनामगोत्रस्थितिबंधात् पल्यतो विशेषाधिकस्य कर्मचतुष्टयस्थितिबंधस्य संख्यातगुणत्वस्य सुव्यक्तत्वात्। ततः मोहस्थितिबंधो विशेषाधिकः[1] अर्द्धेनाधिक इत्यर्थः। अनेन क्रमेण संख्यातसहस्रस्थितिबंधेष्वतीतेषु ज्ञानावरणादि-

१. $\frac{प}{२}$ । पल्यार्द्धेनाधिक

चतुष्टयस्य पल्यमात्र स्थितिबंधः । तस्मिन् काले मोहस्य त्रिभागाधिकपल्यमात्रं स्थितिबंधः त्रिंशत्कोटीकोटिस्थितिकज्ञानावरणादिचतुष्टयस्य पल्यमात्रस्थितिबन्धस्तदा चत्वारिंशत्कोटी-कोटिस्थितिकमोहस्य कियान् स्थितिबंध इति त्रैराशिकं कृत्वा त्रिभागाधिकपल्यमात्रं स्थितिबंधं साधयेत्। अतः परं ज्ञानावरणादिचतुःकर्मणां पल्यानंतरस्थितिबंधः संख्यातगुणहीनः। संख्यातबहुभागान् हीनयित्वा बध्नातीत्यर्थः तस्मिन् कालेऽल्पबहुत्वमुच्यते। नामगोत्रयोः स्थितिबंधः स्तोकः। ज्ञानावरणादिचतुःकर्मणां स्थितिबंधः संख्यातगुणः। मोहस्थितिबंधः संख्यातगुणः कथमिति चेत्। नामगोत्रयोः पल्यस्थितितोऽग्रे संख्यातगुणहीनस्थितिबंधसहस्रेषु गतेषु ज्ञानावरणादिचतुष्टयस्य पल्यानंतरस्थितिबंधस्योत्पत्तेः मोहस्य च पल्यतोऽधिकस्थिति-बंधोऽस्तीति कारणात्।। अनेनाल्पबहुत्वक्रमेण संख्यातसहस्रस्थितिबंधेषु गतेषु मोहस्य पल्यमात्र-स्थितिबंधो भवति। तदा शेषषण्णामपि कर्मणां पल्यसंख्यातैकभागमात्रस्थितिबंधो भवति। अस्मात्पल्यमात्रसमानस्थितिबंधादनंतरं मोहस्य संख्यातबहुभागानपसृत्यापरः स्थितिबंधः पल्यसंख्यातैकभागमात्रः अतः परं सर्वकर्मणामपि स्थितिबंधः पल्यसंख्यातैकभागमात्रो जायते तस्मिन् कालेऽल्पबहुत्वमुच्यते। नामगोत्रयोः स्थितिबंधः स्तोकः। ज्ञानावरणादिचतुःकर्मणां स्थितिबंधः संख्यातगुणः। मोहस्थितिबंधः संख्यातगुणः कथमिति चेत्। अग्रे अग्रे कर्मणां बहुबंधा पसरणप्राप्तेः[1] अनेनाल्पबहुत्वक्रमेण संख्यातसहस्रस्थितिबंधेषु गतेषु नामगोत्रयोर्दूरापकृष्टिनामा पल्यसंख्यातैकभागमात्रश्चरमोऽन्यः स्थितिबंधः। दूरापकृष्टिस्थितिबंधात्परं नामगोत्रयोः पल्यासंख्यातबहुभागैरपसृत्य पल्यासंख्यातैकभागमात्रोऽन्यः स्थितिबंधः। तदा शेषकर्मणां पल्यसंख्यातैकभागमात्रः स्थितिबंधः। तस्मिन् कालेऽल्पबहुत्वमुच्यते। नामगोत्रयोः स्थितिबंधः स्तोकः। ज्ञानावरणादिचतुर्णामसंख्यातगुणः। पल्यासंख्यातैकभागमात्रनामगोत्रस्थितिबंधानंतरं पल्यसंख्यातैकभागमात्रज्ञानावरणादिचतुष्टयस्थितिबंधोऽसंख्यातगुणः इति सुव्यक्तम्। ततः मोहस्थितिबंधः संख्यातगुणः। ज्ञानावरणादिचतुष्टयस्य मोहस्य चानतिक्रांतदूरापकृष्टित्वात्। नामगोत्रयोः पल्यासंख्यातैकभागमात्रस्थितिबंधानंतरं संख्यातसहस्रस्थितिबंधेषु गतेषु ज्ञानावरणादिचतुर्णां स्थितिबंधः दूरापकृष्टिमतिक्रम्य पल्यासंख्यातैकभागमात्रो जातः। तस्मिन् काले अल्पबहुत्वमुच्यते। नामगोत्रयोः स्थितिबंधः स्तोकः। ततः ज्ञानावरणादिचतुर्णामि-संख्यातगुणः। ततो मोहस्यासंख्यातगुणः। कुतः नामगोत्रयोरसंख्यातगुणहीनस्थितिबंधेषु बहुषु गतेषु ज्ञानावरणादिचतुष्टयस्य प्रथमपल्यासंख्यातभागमात्रस्थितिबंधात्। मोहस्याद्यापि पल्यसंख्यातैकभागमात्रस्थितिबंधत्वात्।। ज्ञानावरणादिचतुष्टयस्य पल्यसंख्यातभागस्थितिबंधा-नंतरमनेनाल्पबहुत्वेन संख्यातसहस्रस्थितिबंधेष्वतीतेषु मोहस्यापि पल्यासंख्यातैकभागस्थितिबंधः

१. पल्यसंख्यातबहुभागापसरणसंभवात्

संभवति। तदा सर्वकर्मणां पल्यासंख्यातैकभागमात्रः स्थितिबंधः। तदा स्थितिसत्त्वं प्रागुक्तं सागरोपमशतसहस्रपृथक्त्वात् कांडकघातैर्हीनं भूत्वा सागरोपमसहस्रपृथक्त्वं जायते। मोहस्य प्रथमपल्यासंख्यातैकभागबंधकालेऽल्पबहुत्वमुच्यते। नामगोत्रयोः स्थितिबंधः स्तोकः। ततो ज्ञानावरणादिचतुष्कस्य स्थितिबंधः परस्परं समानोऽसंख्यातगुणः। ततो मोहस्यासंख्यातगुणः।

अग्रतनाग्रतन[1]-स्थितिबंधतः पूर्वपूर्वस्थितिबंधोऽसंख्यातगुणः। इतीदं कारणं सुव्यक्तं। अनेनाल्पबहुत्वक्रमेण संख्यातसहस्रस्थितिबंधेष्वतीतेषु चरमस्थितिबंधादन्यस्थितिबंधः युगपन्नामगोत्रयोः स्तोकः। मोहस्यान्यस्थितिबंधोऽसंख्यातगुणः। ज्ञानावरणादिचतुर्णामपि अन्यस्थितिबंधः परस्परं समानोऽसंख्यातगुणः। पूर्वं ज्ञानावरणादिचतुष्टयस्थितिबंधादसंख्यात-गुणिततया स्थितो मोहनीयस्थितिबंधः इदानीमात्मनो विशिष्टसामर्थ्यसंभवात् तस्याप्रशस्त-तरत्वाद्विशेषघातं प्राप्य ततो युगपदेवासंख्यातगुणहीनो जातः। अनेनाल्पबहुत्वक्रमेण संख्यातसहस्त्रस्थितिबंधेष्वतीतेषु चरमस्थितिबंधादन्यस्थितिबंधो युगपदेव मोहनीयस्य स्तोकः। नामगोत्रयोरन्यस्थितिबंधोऽसंख्यातगुणः। ज्ञानावरणादिचतुर्णामन्यस्थितिबंधः परस्परं समानः प्राक्तनादसंख्यातगुणः। अत्रापि नामगोत्राभ्यां युगपन्मोहस्यासंख्यातगुणहीनत्वे कारणमप्रशस्त-तरत्वमेव। अनेनाल्पबहुत्वक्रमेण संख्यातसहस्रस्थितिबंधेष्वतीतेषु चरमस्थितिबंधाद्युगप-न्मोहनीयस्यान्यस्थितिबंधः स्तोकः। नामगोत्रयोरन्यस्थितिबंधोऽसंख्यातगुणः। घातित्रयस्या-न्यस्थितिबंधोऽसंख्यातगुणः। वेदनीयस्यान्यस्थितिबंधोऽसंख्यातगुणः। पूर्वं वेदनीयेन सह समानस्थितिविशिष्टतया आगत्येदानीं घातित्रयं वेदनीयादसंख्यातगुणहीनत्वं प्राप्तं तत्राप्रशस्तत-रत्वमेव कारणं इत्युक्ताल्पबहुत्वेन संख्यातसहस्रस्थितिबंधेषु गतेषु चरमस्थितिबंधादन्यस्थितिबंधो युगपन्मोहनीयस्य स्तोकः। घातित्रयस्यान्यस्थितिबंधोऽसंख्यातगुणः। नामगोत्रयोरन्य-स्थितिबंधोऽसंख्यातगुणः। वेदनीयस्यान्यस्थितिबंधो विशेषाधिकः। पूर्वं नामगोत्रस्थितिबंधा-दसंख्यातगुणो घातित्रयस्थितिबंधः। इदानीं ततोऽसंख्यातगुणहीनस्तत्राप्रशस्ततरत्वमेव कारणम्। अत्र विंशतिकोटीकोटिस्थितिकनामगोत्रयोः पल्यासंख्यातभागस्थितिस्तदा त्रिंशत्कोटी-कोटिस्थितिकवेदनीयस्य किमिति त्रैराशिकं कृत्वा नामगोत्रयोः स्थितिबंधाद्वेदनीयस्थितिबंधस्य विशेषाधिकत्वं साधनीयम्। एतस्मिन् चरमाल्पबहुत्वे बंधस्य क्रमकरणं जातम्। क्रमकरणमिति किम्। नामगोत्रस्थितेर्वेदनीयस्थितिर्यत्राल्पबहुत्वेऽर्द्धाधिकक्रमा जाता तदल्पबहुत्वं क्रमकरणमित्युच्यते। प्रागुक्तबंधापसरणस्यार्थपदमुच्यते। तद्यथा - पल्यमात्रस्थितिबंधपर्यंत

---

१. चालिसीयात् तीसियोऽग्रतनः तीसियाद्वीसियाग्रतनः। वीसियात् तीसियः पूर्वः तीसिया च्चालिसियः पूर्वः मूलरचनायां द्रष्टव्यं।

पल्यसंख्यातैकभागो हानिप्रमाणं। पल्यमादिं कृत्वा दूरापकृष्टिपर्यंतं पल्यसंख्यातबहुभागा हानिप्रमाणं। दूरापकृष्टिमादिं कृत्वा संख्यातवर्षसहस्रपर्यंतं पल्यासंख्यातबहुभागा हानिप्रमाणं। इयं परिभाषा अग्रे वक्ष्यमाणसत्त्वापसरणेऽपि योजनीया।

इत: परं सत्त्वापसरणमुच्यते। अनेन क्रमकरणरूपाल्पबहुत्वक्रमेण संख्यातसहस्र-स्थितिबंधेषु गतेषु स्थितिसत्त्वं सहस्रसागरोपमप्रमाणासंज्ञिस्थितिबंधसमानम्। अत: परं संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेषु गतेषु स्थितिसत्त्वं सागरोपमशतप्रमाणचतुरिंद्रियस्थितिबंधसमम्। तत: परं संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेष्वतीतेषु स्थितिसत्त्वं पंचाशत्सागरोपमप्रमाण-त्रींद्रियस्थितिबंधसमानम्। तत: परं संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेष्वतीतेषु स्थितिसत्त्वं पंचविंशतिसागरोपमप्रमाणद्वींद्रियस्थितिबंधसमम्। ततोऽग्रे संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेष्वतीतेषु स्थितिसत्त्वमेकसागरोपमप्रमाणैकेंद्रियस्थितिबंधसमम्। स्थितिकांडकसहस्रेष्वतीतेष्वित्यस्य स्थितिबंधसहस्त्रेष्वतीतेष्वित्यनेन भेदो नास्ति। स्थितिकांडकोत्करणकालसमस्थितिबंधकालयो: समानत्वात्। अत: परं संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेष्वतीतेषु नामगोत्रयो: पल्यमात्रं स्थितिसत्त्वम्। तदा ज्ञानावरणादिचतुर्णां द्व्यर्धपल्यमात्रस्थितिसत्त्वम्। मोहनीयस्य द्विपल्यमात्रं स्थितिसत्त्वम्। अस्मिन् पल्यमात्रस्थितिसत्त्वे संख्यातबहुभागमात्रस्थितिकांडकघाते नामगोत्रयो: पल्यसंख्यातैकभागमात्रस्थितिसत्त्वम् तदाऽल्पबहुत्वमुच्यते। सर्वत:स्तोकं नामगोत्रयो: स्थितिसत्त्वम्। ज्ञानावरणादिचतुर्णां स्थितिसत्त्वम् संख्यातगुणं परस्परं समानम्। मोहस्य स्थितिसत्त्वं विशेषाधिकम् अनेनाल्पबहुत्वक्रमेण स्थितिकांडकपृथक्त्वे गते ज्ञानावरणादिचतुर्णां पल्यमात्रं स्थितिसत्त्वम्। सर्वत्रापि स्थितिकांडकपृथक्त्वेन संख्यातसहस्रस्थितिकांडकमित्यर्थो ग्राह्य:। पृथक्त्वशब्दस्य वैपुल्यवाचित्वात्। तदा मोहस्य त्रिभागाधिकपल्यमात्रं स्थितिसत्त्वं। पल्यसत्त्वात्परं एकस्मिन् कांडके संपूर्णे जाते ज्ञानावरणादिचतुर्णां पल्यसंख्यातैकभागमात्रं स्थितिसत्त्वं तदाऽल्पबहुत्वमुच्यते। नामगोत्रयो: स्थितिसत्त्वं सर्वत: स्तोकम्। ज्ञानावरणादिचतुर्णां स्थितिसत्त्वं परस्परं समानम्। प्राक्तनात्संख्यातगुणम्। तत: मोहस्य स्थितिसत्त्वं संख्यातगुणम्। अत उपर्यनेनाल्पबहुत्वेन स्थितिकांडकपृथक्त्वे गते मोहस्य पल्यमात्रं स्थितिसत्त्वम्। पल्यादग्रे एकस्मिन् कांडके संपूर्णे जाते सप्तकर्मणामपि पल्यसंख्यातैकभागमात्रं स्थितिसत्त्वम्। अत उपरि संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेष्वतीतेषु नामगोत्रयोर्दूरापकृष्टिमतीत्य पल्यासंख्यातैकभागमात्रं स्थितिसत्त्वं तदाऽल्पबहुत्वमुच्यते। नामगोत्रयो: स्थितिसत्त्वं सर्वत: स्तोकम्। ज्ञानावरणादिचतुर्णां स्थितिसत्त्वमसंख्यातगुणं परस्परं समानम्। मोहस्य स्थितिसत्त्वं संख्यातगुणम्। तत उपर्यनेनाल्पबहुत्वक्रमेण स्थितिकांडकपृथक्त्वे गते ज्ञानावरणादिचतुर्णां दूरापकृष्टिमतिक्रम्य

पल्यासंख्यातैकभागमात्रं स्थितिसत्त्वं तदाऽल्पबहुत्वमुच्यते नामगोत्रयोः स्थितिसत्त्वं स्तोकम्। ज्ञानावरणादिचतुर्णां स्थितिसत्त्वं परस्परं समानमसंख्यातगुणं मोहस्य स्थितिसत्वमसंख्यातगुणम्। अत उपर्यनेनाल्पबहुत्वक्रमेण स्थितिकांडकपृथक्त्वे गते मोहस्य दूरापकृष्टिमतीत्य पल्यासंख्यातैक-भागमात्रं स्थितिसत्त्वम्। तदाऽल्पबहुत्वमुच्यते नामगोत्रयोः स्थितिसत्त्वं स्तोकम्। ज्ञानावरणादिचतुर्णां स्थितिसत्त्वं परस्परं समानमसंख्यातगुणम्। मोहस्य स्थितिसत्त्वमसंख्यात-गुणम्। अनेनाल्पबहुत्वक्रमेण संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेष्वतीतेषु चरमस्थितिसत्त्वान्नामगोत्रयोः स्थितिसत्त्वं स्तोकम्। मोहस्य स्थितिसत्त्वमसंख्यातगुणं ज्ञानावरणादिचतुर्णां स्थितिसत्त्वं परस्परं समानमसंख्यातगुणम्। इत उपर्यनेनाल्पबहुत्वक्रमेण स्थितिकांडकपृथक्त्वे गते युगपदेव मोहस्य स्थितिसत्त्वं स्तोकम्। नामगोत्रयोः स्थितिसत्त्वमसंख्यातगुणम्। ज्ञानावरणादिचतुर्णां स्थितिसत्त्वं परस्परं समानमसंख्यातगुणं तत उपरि अनेनाल्पबहुत्वक्रमेण स्थितिकांडकपृथक्त्वे गते मोहस्य स्थितिसत्त्वं स्तोकम्। नामगोत्रयोः स्थितिसत्त्वमसंख्यातगुणं घातित्रयस्य स्थितिसत्त्वमसंख्यात-गुणम्। वेदनीयस्य स्थितिसत्त्वमसंख्यातगुणम्। तत उपर्यनेनाल्पबहुत्वक्रमेण स्थितिकांडकपृथक्त्वे गते मोहस्य स्थितिसत्त्वं स्तोकम्। घातित्रयस्य स्थितिसत्त्वमसंख्यातगुणम्। नामगोत्रयोः स्थितिसत्त्वमसंख्यातगुणम्। वेदनीयस्य स्थितिसत्त्वं विशेषाधिकम्। अस्मिंश्चरमाल्पबहुत्वे सत्त्वस्य क्रमकरणं जातम्। अस्मिन् सत्त्वापसरणे त्रैराशिकक्रमाल्पबहुत्वकारणविचारप्रमुखाः अशेषविशेषा बंधापसरणवद्योजनीयाः अपसृत्य बंधनं बंधापसरणम्। स्थितिकांडकघातेन सत्त्वह्रासः सत्त्वापसरणम्।

अस्मात्क्रमकरणाल्पबहुत्वात्परं संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेष्वतीतेष्वसंख्यात-समयप्रबद्धोदीरणा भवति। पौर्वी पौर्वी असंख्यातलोकप्रतिभागतया समागतोदीरणा स्थिता इत उपरि परिणाममाहात्म्येनानुभूयमानसर्वकर्मणामपि पल्यासंख्यातप्रतिभागप्रतिबद्धा असंख्यातसमयप्रबद्धोदीरणा प्रवर्तते इत्यर्थः।

इत उपरि क्षपणाधिकारः प्रारभ्यते। असंख्यातसमयप्रबद्धोदीरणातः आरभ्य संख्यातस-हस्रस्थितिकांडकेष्वतीतेषु अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभाभिधाष्टकषायाणां संक्राम-को भवति। अत्र संक्रामको नाम[१] क्षपणाप्रारंभक इत्यर्थः। सर्वकर्मभ्यः पूर्वमष्टकषायक्षपणा-संभवेऽप्रशस्ततरत्वमेव कारणम्। कियता कालेन विनश्यन्तीति चेत्। क्षपणाप्रारंभक्षणमादिं कृत्वा प्रतिसमयमेकैकां फालिं संक्रमयन् अन्तर्मुहूर्तसमयप्रमाणफालिभिः प्रथमकांडकं संक्रमय्य तथा द्वितीयकांडकमपि संक्रमय्य अनेन क्रमेण स्थितिकांडकसहस्रैरष्टकषायान् चतुःसंज्वलनेषु पुरुषवेदे

१. अष्टकषायक्षपणारचना चतुर्विंशति मूल पत्रेऽस्ति।

च संक्रमयति। परमुखेन विनाशयतीत्यर्थः। एवमष्टकषायाणां चरमस्थितिकांडकेषु मोहराजसेनानायकेषु निर्मूलं विनष्टेष्वष्टकषायाणां शेषस्थितिसत्त्वं कालापेक्षया आवलिमात्रं जायते। निषेकापेक्षया तु समयोनावलिमात्रं। चरमकांडकघातसमयं प्रथमनिषेकस्य स्वमुखोदययुक्तान्यतमसंज्वलने संक्रमेणोदयनात्। चरमफाल्या सह समयोनावलिमात्रनिषेकाः कथं न विनश्यन्तीति चेत्। उदयावलिप्रविष्टनिषेकाणां कांडकघाताभावात्। इत उपरिसंख्यातसहस्र-स्थितिकांडकेष्वतीतेषु निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धिनरकतिर्यग्गत्येकेद्रिंयद्वींद्रियत्रीन्द्रिय-चतुरिंद्रियजातिनरकतिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यातपोद्योतस्थावरसूक्ष्मसाधारणशरीरभेदेन षोडश-कर्मणां विशेषघातको भवति। कियत्कालेन विनाशयतीति चेत्। क्षपणा[१] प्रारंभक्षणमादिं कृत्वा स्थितिकांडकपृथक्त्वेन मोहराजप्रतिबलोन्मूलनं यथा भवति तथा षोडशकर्मणां चरमस्थितिकांडके निपतति तेषां शेषस्थितिसत्त्वं कालापेक्षया आवलिमात्रम्। निषेकापेक्षया तु समयोनावलिमात्रम्। कारणं पूर्वोक्तमेव उदयावलिबाह्यसर्वद्रव्यं सजातीयाविरोधेन परप्रकृतिषु निक्षिप्य क्षपयतीत्यर्थः। एकविंशतिमोहेऽष्टकषायेषु क्षपितेषु मोहस्य त्रयोदशसत्त्वकर्मा भवति। दर्शनावरणनवके स्त्यानगृद्धित्रये क्षपिते दर्शनावरणं षोढा सत्त्वेन तिष्ठति। त्रिनवतिनामकर्मसु प्रागुक्तत्रयोदशकर्मसु विनष्टेषु अशीतिः सत्त्वेन तिष्ठति। ज्ञानावरणवेदनीयगोत्रांतरायेषु[२] शेषकर्मसु किमपि न विनष्टम्।।

।।एवमष्टकषायषोडशप्रकृतिक्षपणाधिकारः समाप्तः।।

इतः परं देशघातिकरणं प्रारभ्यते। देशघातिकरणमिति किं। मनःपर्ययज्ञानावरणादि-द्वादश[३]कर्मणामनुभागबंधं एतावत्पर्यतं सर्वघातिद्विस्थानानुभागतया आगच्छंतं इतः परं देशघातिद्विस्थाने वर्तयतीत्यर्थः। तद्यथा - षोडशकर्मसंक्रमणादुपरिस्थितिकांडकपृथक्त्वे गते मनःपर्ययज्ञानावरणीयदानांतराययोरनुभागबंधो युगपद्देशघातित्वमाप्नोति। तत उपरि स्थितिकांडकपृथक्त्वे गते अवधिज्ञानावरणावधिदर्शनावरणलाभांतरायाणामनुभागबंधो देशघातित्वमापद्यते।। अतोऽग्रे स्थितिकांडकपृथक्त्वे गते श्रुतज्ञानावरणाचक्षुर्दर्शनावरण भोगांतरायाणामनुभागबंधो देशघातित्वं प्राप्नोति। तत उपरि स्थितिकांडकपृथक्त्वे गते चक्षुर्दर्शनावरणस्यानुभागबंधो देशघाती जातः। तत उपरि स्थितिकांडकपृथक्त्वे गते मतिज्ञानावरणपरिभोगांतराययोरनुभागबंधो देशघाती जातः। अत उपरि स्थितिकांडकपृथक्त्वे गते वीर्यांतरायस्यानुभागबंधो देशघाती जातः। पुरुषवेदसंज्वलनचतुष्कयोर्देशघातिकरणमत्र कथं

१. अष्टकषायक्षपणानंतरं संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेषु गतेषु षोडशानां क्षपणा प्रारंभः।
२. षट् अशीति ३. प्रकृतीनामित्यर्थः

चतुष्कयोर्देशघातिकरणमत्र कथं नोक्तमिति न वाच्यम्। तेषां पूर्वमेव संयतासंयत-प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानेषु देशघातिद्विस्थानानुभागबंधसंभवात्।।

इतः परमंतरकरणं प्रारभ्यते। देशघातिकरणादुपरि संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेष्वतीतेषु अन्यत् स्थितिकांडकमन्यदनुभागकांडकमन्यः समस्थितिबंधः। अंतरस्थित्युत्करणं चेति चतस्रः क्रिया युगपत्प्रारभते। तत्र अंतरकरणं किं नाम। अधः उपरि कांश्चिन्निषेकांस्त्यक्त्वा अंतर्मुहूर्तप्रमाणमध्यमनिषेकाणां शून्यत्वकरणम्। तच्च केषां कर्मणां भवेत्। चतुः-संज्वलननवनोकषायवेदनीयत्रयोदशकर्मणामंतरकरणं भवति। मोहवर्जितज्ञानावरणादि-सप्तकर्मणामंतरकरणं क्वचिदपि नास्ति। अधः कियत्स्थितिं त्यक्त्वा अंतरकरणं करोतीति चेत्। उदयवतोः पुंवेदक्रोधसंज्वलनयोरंतर्मुहूर्तमात्रप्रथमस्थितिं त्यक्त्वा अंतरकरणं करोति। उदय-रहितानां शेषैकादशकर्मणामावलिमात्रं त्यक्त्वा [1]पूर्वोक्तक्रमेणोपर्यतर्मुहूर्तमात्रनिषेकान् गृहीत्वा अंतरं करोति। पुंवेदसंज्वलनक्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढं प्रति तद्द्वयस्यांतर्मुहूर्तमात्रप्रथम-स्थितिर्नियमिता। अथवा वेदत्रये एकतमं संज्वलनचतुष्टयेऽप्येकतममुदयति। तयोरुदयेन क्षपकश्रेण्यारूढस्य तद्द्वयस्य प्रथमस्थितिमंतर्मुहूर्तमात्रीं त्यक्त्वा शेषानुदयकर्मणामावलि-मात्रप्रथमस्थितिं त्यक्त्वा उपर्यंतर्मुहूर्तमात्रनिषेकान् गृहीत्वांतरकरणं करोतीत्यर्थो ग्राह्यः। अंतर्मुहूर्तप्रमिताः याः अंतरस्थितयः अंतरकरणनिमित्तमुत्कीर्यमाणास्तासाम् प्रदेशसमूहमंत-र्मुहूर्तमात्रफालीः कृत्वा असंख्यातगुणितक्रमेण फालीरुत्किरन् तत्प्रदेशानुत्कीर्यमाणस्थितिषु न निक्षिपति। तर्हि कुत्र निक्षिपतीति चेत्। यासां प्रकृतीनां समयोनावलिमात्रप्रथमस्थिति-स्तासामंतरगतद्रव्यं गृहीत्वा उदययुतप्रकृतिप्रथमस्थितौ निक्षिपति। समयोनावलिमात्रप्रथम-स्थितियुतप्रकृतयः कतिधा भवन्ति। बंधोदयवर्जिता केवलबध्यमानाश्च। तासु षण्णोकषायाः बंधोदयवर्जिताः। पुंवेदोदयारूढपक्षे इतरवेदद्वयं बंधोदयवर्जितं। स्त्रीवेदोदयारूढपक्षे नंपुसकवेदो बंधोदयवर्जितः पुंवेदः केवलबध्यमानः। नपुसंकवेदोदयारूढपक्षे स्त्रीवेदो बंधोदयवर्जितः पुंवेदः केवलबध्यमानः। चतुःसंज्वलनेषु यस्योदयेनारूढस्तं त्यक्त्वा शेषत्रयं केवलबध्यमानम्। अत्र बंधोदयवर्जितप्रकृतीनामंतरद्रव्यं स्वकीयद्वितीयस्थितौ न निक्षिपति। तासां बंधाभावेनोत्कर्षणक्रियाविषयत्वाभावात्केवलबध्यमानानामंतरद्रव्यं स्वस्वद्वितीयस्थितौ इतरबध्यमानकर्मद्वितीयस्थितौ चोत्कर्षणक्रियया निक्षिपति बंधसद्भावात्। यासां प्रकृतीनां प्रथमस्थितिरस्ति तासां तत्प्रथमस्थितेरुपरि स्थिताः याः स्थितयः अंतरनिमित्तमुत्कीर्य-माणास्तत्स्थितिप्रतिबद्धप्रदेशप्रचयं[2] तत्प्रथमस्थितौ निक्षिपति। प्रथमस्थितियुतप्रकृतयः कतिधा।

१. उपशमश्रेण्योक्तं २. उत्कीर्णकांडकबहुद्रव्ये प्रतिबद्धं अस्मादेकफालिप्रतिबद्धं संबद्धं

केवलोदयमाना बध्यमानोदयमानाश्च। तत्र स्त्रीनपुंसकवेदौ केवलोदयमानौ। पुंवेदचतु:संज्वलना: बध्यमानोदीयमानास्तासामुभयप्रकृतीनां प्रथमस्थितौ स्वकीयांतरोत्कीर्यमाणद्रव्यमन्यकर्मांतरोत्कीर्यमाणद्रव्यं चापकर्षणक्रियया समस्थितिसंक्रमणेन च निक्षिपतीत्यर्थ:। प्रथमस्थितावेव निक्षिपतीति, न द्वितीयस्थितौ च। या: प्रकृतयो बध्यमानास्तासामंतरायामात् संख्यातगुणतया स्थितामाबाधामतीत्य या जघन्यनिषेकस्थितिर्द्वितीयस्थितौ स्थिता तामादिं कृत्वा बध्यमानसर्वनिषेकेष्वपि अंतरोत्कीर्यमाणद्रव्यमुत्कर्षणक्रियया निक्षिपति। बध्यमानप्रकृतय: का इति चेत्। चतु:संज्वलनपुंवेदा:। केवलोदीयमानांतरद्रव्यं बंधोदयवत्कर्मणामंतरद्रव्यं च प्रथमस्थितौ बध्यमानद्वितीयस्थितौ च निक्षिपतीत्यत्र तात्पर्यम्।। इत उपर्यनुभागकांडकसहस्रेष्वतीतेष्वन्यदनुभागकांडकमंतरोत्कीर्यमाणकाले य: समानस्थितिबंध: यत्स्थितिकांडकं य: अतंरकरणकाल:। एते सर्वेप्यंतरचरमफाल्या समं युगपदेव विश्रांता:। इत्यंतराधिकार: समाप्त:।।

इत: परं संक्रमणं प्रारभ्यते अंतरकरणादूर्ध्वं क्रियमाणव्यापारा: के इति चेत्। अंतरानंतरसमये नंपुसकवेदस्याऽऽयुक्तकरणसंक्रमको भवति। तद्यथा - नपुंसकवेदक्षपणायां महोद्योगयुतो भूत्वा वर्तते इत्यर्थ:। मोहस्य पल्यासंख्यातभागमात्र: स्थितिबंधोऽपसृत्य संख्यातवर्षमात्रो भवति।। मोहस्य पल्यासंख्यातभागमात्रं स्थितिबंधोऽपसृत्य संख्यातवर्षमात्रो भवति। मोहस्य बंधोदयौ दारुप्रमाणं त्यक्त्वा लतामात्रे प्रविष्टौ। पूर्वं बध्यमानसमयप्रबद्धस्य बंधावल्यनंतरमपक्वपाचनलक्षणोदीरणा यथा स्वभावाद्वर्तते तथा इदानीं यानि कर्माणि बध्यमानानि तेषां बंधक्षणमादिं कृत्वा षड्स्वावलिषु गतासु उदीरणास्वभावाद्वर्त्तते। मोहस्यानुपूर्वीसंक्रमणं भवति। तद्यथा-नपुंसकस्त्रीवेदद्रव्यं पुंवेदे संक्रमयति। हास्यादिषण्णोकषायपुंवेदद्रव्यं संज्वलनक्रोधे संक्रमयति। क्रोधद्रव्यं माने। मानद्रव्यं मायायाम्। मायाद्रव्यं लोभे संक्रमयति। एतानि कर्माणि परमुखेन विनश्यन्तीति तात्पर्यम्। लोभस्य संक्रमणं नास्ति। कुत:। लोभं संक्रमयति चेत् मायादिषु संक्रमेण भवितव्यं। तथा सति आनुपूर्वी संक्रमणं त्यक्त्वा विलोमसंक्रमणतया आयाति तत: कारणात्। एतानि सप्तकरणानि अंतरकरणानंतरसमये प्रारब्धानि। तत्र मोहनीयस्य स्थितिबंधापसरणं संख्यातगुणहीनं भवतीति ग्राह्यम्। सर्वप्रकृतीनां[1] तदा युगपद् संख्यातवर्षमात्र: स्थितिबंध:। तत्र बंधापसरणं संख्यातगुणहीनं द्वात्रिंशद्वर्षमात्रस्थितिबंधमादिं कृत्वा स्थितिबंधापसरणमंतर्मुहूर्तमात्रं यावत् पर्यंतं स्वस्वजघन्यस्थितिबंधस्तावत् पर्यंतं। इतीयं व्याप्तिर्ज्ञातिव्या। अंतरकरणानंतरसमयमादिं कृत्वा संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेष्वतीतेषु संक्रम्यमाणनंपुसकवेद: संक्रांत:। नपुंसकवेदक्षपणाक्षणमादिं कृत्वा संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेषु गतेषु चरम-

---

१. मोहनीयसंबंधिनीनां

कांडकचरमफाल्या सह सर्वसंक्रमणेन नंपुसकवेदं पुंवेदरूपेण परिणमय्य नाशयतीति तात्पर्यम्। अमुमर्थमग्रे परमुखेन विनश्यत्स्त्रीवेदप्रमुखसर्वकर्मणां योजयेत्।। नंपुसकवेदक्षपणानंतरक्षणे स्त्रीवेदस्य प्रथमसमयसंक्रमकः स्त्रीवेदक्षपणाप्रारंभक इति तात्पर्यम्। तस्मिन्समयेऽन्यस्थितिकांडकमन्यदनुभागकांडकमन्यः समस्थितिबंधश्चेति त्रयं प्रारब्धम्। तत उपरि संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेषु गतेषु स्त्रीवेदक्षपणाद्धायां संख्यातैकभागे गते ज्ञानदर्शनावरणांतरायघातित्रयस्य पल्यासंख्यातैकभागमात्रस्थितिबंधं समाप्य संख्यातवर्षप्रमाणं बध्नाति। ततोऽग्रे संख्यातसहस्रस्थितिकांडकघातव्यापारेण स्त्रीवेदक्षपणाद्धायां शेषबहुभागेष्वतीतेषु स्त्रीवेदस्य यद्घातितावशेषस्थितिसत्त्वं तत्सर्वं चरमकांडकरूपेण लांछति। तस्मिन् काले शेषकर्मणां तात्कालिकपल्यासंख्यात[१]स्थितिसत्त्वासंख्यातैकभागं त्यक्त्वाशेषबहुभागान् लांछति तस्मिंश्चरमकांडके संपूर्णे जाते संक्रम्यमाणः स्त्रीवेदः संक्रातो जातः। द्वितीयस्थितिस्थितपल्यासंख्यातभागायामस्त्रीवेदचरमकांडकचरमफालिं पुंवेदे निक्षिप्य विनाशयतीत्यर्थः। तदा मोहस्य स्थितिसत्त्वं कियद्भवेदिति चेत्। संख्यातवर्षप्रमाणं भवति।

स्त्रीवेदक्षपणानंतरक्षणे सप्तनोकषायाणां प्रथमसमयसंक्रमकः आयुक्तक्रियया[२] क्षपणाप्रारंभक इत्यर्थः। तदा सर्वकर्मणां स्थितिबंधाल्पबहुत्वं कथं सप्तनोकषायप्रथमसमयसंक्रमकस्य मोहस्थितिबंधः स्तोकः, घातित्रयस्य संख्यातगुणः नामगोत्रयोरसंख्यातगुणः पल्यासंख्यातभागमात्रत्वात्। वेदनीयस्य स्थितिबंधो विशेषाधिकः। अधिकप्रमाणं त्रैराशिकेन साधयेत्। तस्मिन् क्षणे सर्वकर्मणामपि स्थितिसत्त्वाल्पबहुत्वं कथं स्यादिति चेत्। तस्मिन् काले संख्यातवर्षप्रमाणं मोहस्थितिसत्त्वं स्तोकम्। घातित्रयस्यासंख्यातगुणं पल्यासंख्यातभागमात्रत्वात्। नामगोत्रयोरसंख्यातगुणम्। वेदनीयस्य विशेषाधिकम्। मोहस्य[३] संख्यातवार्षिकं तथापि प्रागुक्तस्थितिसत्त्वक्रमकरणाल्पबहुत्वक्रमो अद्यापि वर्त्तते इति तात्पर्यम्। एवं सप्तनोकषायसंक्रामकप्रथमसमये स्थितिबंधस्थितिसत्त्वाल्पबहुत्वमुक्तम्। सप्तनोकषायप्रथमस्थितिकांडकपतनकाले घातितावशेषस्थितिसत्त्वाल्पबहुत्वं कथमस्तीति चेत् प्रथमस्थितिकांडके संपूर्णे जाते स्वस्वप्राक्तनस्थितिसत्त्वात् मोहस्थितिसत्त्वं संख्यातगुणहीनं संख्यातबहुभागस्य कांडकत्वात्। शेषकर्मस्थितिसत्त्वं स्व-स्वपूर्वस्थितिसत्त्वादसंख्यातगुणहीनं असंख्यातबहुभागस्य कांडकत्वात् प्रथमस्थितिकांडके संपूर्णे जाते मोहादिकर्मणामन्यः स्थितिबंधः कथं वर्त्तेत। नामगोत्रवेदनीयानां स्थितिबंधः स्वस्वपूर्वस्थितिबंधादसंख्यातगुणहीनः। घातिचतुष्टयस्य स्थितिबंधः पूर्वस्थितिबंधात्संख्यातगुणहीनः। अत उपरि संख्यातसहस्रकांडकेष्वतीतेषु सप्तनोकषाये क्षपणाद्धायां संख्यातैकभागे गते नामगोत्रवेदनीयानां

१. पल्यासंख्यातैकभाग २. महोद्योगयुक्तः ३. संख्यातवर्षप्रारंभः

स्थितिबंध: पल्यासंख्यातैकभागत्वं मुक्त्वा संख्यातसहस्रवर्षप्रमाणमाश्रयति। अत: परं संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेष्वतीतेषु सप्तनोकषायक्षपणाद्धायां संख्यातबहुभागे गते ज्ञानदर्शनावरणांतरायाणां संख्यातवर्षप्रमाणं स्थितिसत्त्वं ततोऽग्रे घातिचतुष्टयस्य समाने स्थितिबंधस्थितिसत्त्वे[1] गत्वा पुन: कानिचित् स्थितिबंधस्थितिसत्त्वानि संख्यातगुणहीनानि। घातिकर्मणां संख्यातवर्षमात्रस्थितिबंधस्थितिसत्त्वयो: संभवात्। अघातित्रयस्य स्थितिबंध-स्थितिसत्त्वे कथं वर्त्तेतां नामगोत्रवेदनीयानां स्थितिकांडकपूर्त्तौ स्थितिसत्त्वमसंख्यातगुणहीनम्। एषां कर्मणां स्थितिबंधपूर्त्तौ पूर्वस्थितिबंधादन्यस्थितिबंध: संख्यातगुणहीन: अनेनोक्तस्थितिबंधा-पसरणस्थितिकांडकघातक्रमेण यावत्सप्तनोकषायसंक्रमकचरमस्थितिबंधस्तावद् व्याप्तिं नयेत्। सप्तनोकषायसंक्रमकचरमसमये स्थितिबंध: कथं स्यादिति चेत्। सप्तनोकषायसंक्रमकचरमसमये पुंवेदस्य चरमस्थितिबंधोऽष्टवार्षिक:। पूर्वं संख्यातसहस्रवर्षप्रमाणंपुंवेदस्थितिबंध: क्रमेण संख्यातगुणहान्याऽपसृत्येदानीमष्टवर्षमात्र: संजात: इत्यभिप्राय:। चतु:संज्वलनानां षोडषवर्षप्रमाणस्थितिबंधोऽस्ति। मोहायुर्वर्जितषट्कर्मणां संख्यातवर्षसहस्रप्रमाणस्थिति-बंधोऽस्ति। सर्वकर्मणामपि स्थितिसत्त्वं कियत् चतुर्घातिनां संख्यातवर्षसहस्रमात्रम्। नामगोत्रवेदनीयानामसंख्यातवर्षप्रमाणम्। एवं सर्वकर्मणां स्थितिबंधस्थितिसत्त्वप्रमाणं प्ररूपितम्। पुंवेदस्य प्रथमस्थितावावलिप्रत्यावलिद्वयावशेषे आगालप्रत्यागालौ नष्टौ। द्वितीयस्थिति-स्थितपरमाणूनामपकर्षणेन प्रथमस्थितिनयनमागाल:। प्रथमस्थितिस्थितपरमाणूनामुत्कर्षणेन द्वितीयस्थितिनयनं प्रत्यागाल:। तथा सति उदीरणापि विनश्यति न वा। न विनश्यति। प्रथमस्थितित उदीरणा प्रवर्त्तते। प्रत्यावलित उदीरणा वर्त्तते इत्यर्थ:। तदावलिद्वये आवलिं गालयित्वा समयाधिक[2]प्रत्यावल्यवशेषे पुंवेदस्य सर्वजघन्यस्थित्युदीरणा भवति। बहुस्थित्युदीरणा-ऽभावे एकस्थितेरेवोदीरणाप्राप्ते:। तस्मिन्समये चरमसमयसवेदो भवति। उच्छिष्टावलिसंज्ञित-प्रत्यावलिमात्रनिषेकाणामनुभवाभावात्। तस्मिन् काले षण्णोकषायाणां स्थितिसत्त्वं संज्वलनक्रोधे निरवशेषं निक्षिप्यते। द्वितीयस्थितौ संख्यातवर्षसहस्रायामेण प्रवर्तमानां षण्णोकषायचरमफालिं सर्वसंक्रमणेन संज्वलनक्रोधे निक्षिप्य नाशयतीति तात्पर्य, तस्मिन् समये पुंवेदे विनष्टं कियत् स्थितम्। कियदिति चेत्। समयोनद्व्यावलिमात्रनवकबंधसमयप्रबद्धा: पुंवेदस्य द्वितीयस्थिताव-वशिष्यन्ते। प्रथमस्थितावसंख्यातसमयप्रबद्धप्रमाणोदयनिषेक: उच्छिष्टावलिमात्रनिषेकाश्च तिष्ठन्ति। शेषं द्वितीयस्थितिस्थितसंख्यातसहस्रवर्षायामपुंवेदपुराणस्थितिसत्त्वं सर्वं क्रोधसंज्वलने संक्रान्तम्। द्वितीयस्थितौ समयोनद्व्यावलिमात्रनवकबंधसमयप्रबद्धा: कथमवशिष्टा इति चेत्।

१. समस्थितिबंधस्थितिकांडककालपर्यंत २.समयाधिकवचनात् समयोनामावलिं गालयित्वेत्यर्थ:

सर्वत्रापि नवकबंधं क्षपणाकाले बंधावल्यां न क्षपयति। बंधावलावतिक्रांतायां प्रतिसमयमेकैक-फालिं क्षपयन् आवलिमात्रकालेनैकं नवकबंधसमयप्रबद्धं क्षपयति। अनया व्याप्त्या पुंवेदप्रथमस्थितौ बंधावलिः क्षपणावलिरुच्छिष्टावलिश्चेत्यावलित्रयेऽवशिष्टे बंधावलिप्रथमसमये बद्धसमयप्रबद्धो बंधावलिमतीत्य प्रतिसमयमेकैकफालिरूपेण विनश्यन् क्षपणावलिचरमसमये निःशेषं नश्यति। बंधावलिद्वितीयसमये बद्धसमयप्रबद्धः क्षपणावलिचरमसमये एकफालिमवशिष्य नश्यति। बंधावलितृतीयसमये बद्धसमयप्रबद्धः क्षपणावलिचरमसमये फालिद्वयमवशिष्य नश्यति।

०
० १
० १ २
० १ २ ३
० १ २ ३ ४
० १ २ ३ ४ ४
० १ २ ३ ४ ४ ४
० १ २ ३ ४ ४ ४ ४
१ २ ३ ४ ४ ४ ४
२ ३ ४ ४ ४ ४
३ ४ ४ ४ ४
४ ४ ४ ४
४ ४ ४
४ ४
४

अनेन क्रमेण गत्वा बंधावलिचरमसमये बद्धसमयप्रबद्धः[१] समयोनावलिमात्रफालीरवशिष्य नश्यति। क्षपणावल्यां बद्धसमयप्रबद्धेष्वेकापि फालिर्न नश्यति। उच्छिष्टावल्यां बंध एव नास्ति। एवं बंधावलिप्रथमसमये बद्धसमयप्रबद्धस्य विनाशात् एकदेशविकृतमनन्यवदिति न्यायेन समयोनबंधावलिमात्रसमयप्रबद्धाः संपूर्णक्षपणावलिमात्रसमयप्रबद्धाश्च क्षपणावलिचरमसमयेऽवतिष्ठन्ते तेन समयोनद्व्यावलिमात्रनवकबंधसमयप्रबद्धा द्वितीयस्थितावशिष्टा इति सुव्यक्तम्। अपगतवेदो भूत्वा उच्छिष्टावलिप्रथमसमयादारभ्य प्रतिसमयमेकैकसमयप्रबद्धं संज्वलनक्रोधे निक्षिप्य क्षपणायां तानि समयोनद्व्यावलिमात्रकालेन विनश्यंति।

इतः परमश्वकर्णक्रियासहचरितापूर्वस्पर्द्धककरणप्रारंभः। यो मोहमहीपालस्य त्रिवेदमहाभटान् षण्णोकषायांगरक्षकांश्च निर्मूलमुन्मूल्य पुंवेदसवेदानिवृत्तिकरणचरमसमयानंतर-समयेऽपगतवेदो भूत्वा संज्वलनक्रोधं क्षपयन् अश्वकर्णकरणरूपक्रियाविशेषं प्रारभते। तत्र तावच्चतुःसंज्वलनानां घातितावशेषस्थितिसत्त्वं जघन्यस्पर्द्धकात्सांप्रतिकोत्कृष्टस्पर्द्धकपर्यंत स्पर्द्धक-श्रेण्यनुभागसत्त्वं च स्थापयेत् तत्र स्थित्यनुभागकांडकघातप्रवृत्तिविषयो ज्ञातव्यः। तदनंतरमश्वकर्णकरणस्वरूपनिरूपणं क्रियते। तत्र [२]पर्यायशब्दनिर्देशमुखेनाश्वकर्णकरणलक्षणमुच्यते।

१. अत्र निषेकप्रणिधौ समयोनावलिमात्रफालीरवशिष्य नश्यतीति द्रष्टव्यं
२. पर्य्यायशब्देन वक्ष्यमाणनामत्रयापेक्षया ज्ञातव्यम्

अश्वकर्णकरणं आंदोलकरणं अपवर्त्तनोद्वर्त्तनकरणं चेत्यश्वकर्णकरणस्य नामत्रयमस्ति। तत्राश्वकर्ण-करणमिति नाम कथमायातमिति चेत्। अश्वकर्णो यथा मध्यप्रदेशादारभ्य क्रमेण आदिपर्यंतं हीनतया तिष्ठति तथा प्रथमानुभागकांडकघातानंतरमधस्तनानुभागः क्रोधसंज्वलनमादिं कृत्वा लोभसंज्वलनपर्यंतं क्रमेणानंतगुणहीनस्पर्द्धकाकारेण तिष्ठतीति अश्वकर्णकरणमिति व्यपदिश्यते। आंदोलकरणमिति नाम कथमिति चेत्। आंदोलस्तंभबद्धरज्जुमध्यं यथा प्रथमतोऽन्तपर्यंतं क्रमेण हीनं भूत्वा तिष्ठति तथात्रापि क्रोधमादिं कृत्वा लोभपर्यंतमनुभागः क्रमेण हीयमानतया तिष्ठति। अतः कारणादश्वकर्णकरणस्याप्यांदोलकरणमिति नाम जातम्। अपवर्त्तनोद्वर्त्तनकरणमिति नाम कथं। क्रोधादिलोभपर्यंतमनंतगुणहानिस्वरूपेण लोभादिक्रोधपर्यंतमनंतगुणवृद्धिस्वरूपेणानु-भागस्तिष्ठतीत्यश्वकर्णकरणस्यापवर्त्तनोद्वर्त्तनकरणमिति नाम जातम्। एवंविधमश्वकर्णकरणं कस्मिन्नवसरे प्रारभते। हास्यादिषट्कं पुंवेद[1]पुराणसत्त्वेन समं संज्वलनक्रोधे सर्वसंक्रमणेन निक्षिप्य तदनंतरक्षणे प्रथमसमयाऽपगतवेदो भवति। तस्मिन् समये प्रथमसमयाश्वकर्णकरणकारको भवति। कुतः। क्रोधादिसंज्वलनानां कांडकाधस्तनानुभागस्याश्वकर्णाकारेण तदा दर्शनात्। तदा संज्वलनक्रोधादीनां स्थितिसत्त्वस्थितिबंधौ कियंतौ स्तः। स्थितिसत्त्वं तदा संज्वलनानां संख्यातवर्षसहस्रप्रमाणम्। स्थितिबंधोऽन्तर्मुहूर्तोनषोडशवर्षमात्रः। घातित्रयस्य स्थितिबंधः स्थितिसत्त्वं च संख्यातवर्षसहस्रप्रमाणं। नामगोत्रवेदनीयानां स्थितिबंधः संख्यातवर्षसहस्रप्रमाणः। स्थितिसत्त्वमसंख्यातवर्षमात्रम्। एवमश्वकर्णकरणकारकस्य प्रथमसमये संज्वलनानां स्थितिबंधस्थितिसत्त्वप्रमाणं प्ररूपितम्। इदानीं तेषां तस्मिन्समयेऽनुभागसत्त्वाल्पबहुत्वमुच्यते। अपगतवेदो भूत्वा यावत्पर्यंतं चतुःसंज्वलनानां प्रथमानुभागकांडकं घातयति तावत्पर्यन्तमिदमल्पबहुत्वं वर्त्तते इति ग्राह्यम्। तद्यथा-माने एकगुणहानिगुणितनानागुणहानि-मात्रस्पर्द्धकगर्भमनुभागसत्त्वमनंतमपि वक्ष्यमाणेभ्यः स्तोकम्। ततः क्रोधसंज्वलने विशेषाधिकम्। ततो मायायां विशेषाधिकम्। ततो लोभेऽनंतभागरूपेण विशेषाधिकम्। अत्र स्वस्वसत्त्वस्पर्द्धकानि संस्थाप्यानंतेन भक्त्वा अनंतस्पर्द्धकमात्रं विशेषं साधयेत्। अपगतवेदेन यदनुभागकांडकं लांछितं जातं तदत्यक्त्वा तत्कालभावि सर्वानुभागसत्वं अनेनाल्पबहुत्वक्रमेण तिष्ठतीत्यर्थः। अस्याल्पबहुत्वस्यांत्यदीपकत्वादितः[2] प्राक्तनगुणस्थानेष्वपि संज्वलनानामनुभागसत्वमनेनाल्प-बहुत्वक्रमेण तिष्ठतीति ज्ञातव्यम्। क्रोधादिक्रमेण चतुःसंज्वलनसत्त्वस्पर्द्धकांकसंदृष्टिः -

५१५	५१२	५१८	५२१

अर्थसंदृष्टि : ९ ना ख[१–] / ख | ९ ना | ९ ना ख[२–] / ख | ९ ना ख[३–] / ख

१.नवकबंधापेक्षया पुराणसत्त्वमित्यर्थः २. अनिवृत्तिकरणबहुभागात् पूर्वमधस्तनगुणस्थानेष्वपि

तात्कालिकबंधानुभागस्याल्पबहुत्वं कथमस्तीति चेत्। अश्वकर्णकरणप्रथमसमयेऽनुभागबंधोऽपि संप्रत्युक्तसत्त्वानुभागाल्पबहुत्वक्रमेण तिष्ठति। अश्वकर्णकरणप्रथमसमये कांडकस्थितानुभागक्रमः कथमस्तीति चेत् तत्समये यदनुभागकांडकं लांछितं जातं तदनुभागकांडकरूपेण गृहीतं स्पर्द्धकाल्पबहुत्वमिदं क्रोधकांडके स्पर्द्धकानि स्तोकानि। मानकांडके विशेषाधिकानि। मायाकांडके विशेषाधिकानि। लोभकांडके विशेषाधिकानि। इतः प्राक्तनकांडकेषु मानस्पर्द्धकानि स्तोकानि भूत्वा क्रोधमायालोभेषु यथाक्रमेण स्वस्वसत्त्वानुसारेणानुभागकांडकाल्पबहुत्वं प्रवर्त्तते। इदानीमश्वकर्णकरणप्रथमसमये परिणाममाहात्म्येन विशेषघातं प्राप्य क्रोधकांडकेषु स्वसत्त्वानंतबहुभागमात्रस्पर्द्धकानि स्तोकानि। मानमायालोभकांडकानि क्रमेण विशेषाधिकानि भवंतीति तात्पर्यम्। क्रोधादिकांडकानामंकसंदृष्टिः। ३८७।४८०।५१०।५१९। कांडकगृहीताऽवशेषानुभागाल्पबहुत्वक्रमः कथमस्तीति चेत्। लोभगृहीतावशेषस्पर्द्धकानि स्तोकानि। मायायामनंतगुणानि। मानेऽनंतगुणानि। क्रोधेऽनंतगुणानि भवन्ति। विशेषाधिकक्रमेणानुभागकांडके गृहीते कांडकावशिष्टानुभागस्य विशेषाधिकत्वं भवेत् अनंतगुणत्वं कथमिति चेत्। परिहारः उच्यते। मानसत्त्वानुभागात् क्रोधसत्त्वानुभागो विशेषाधिकः तस्यांकसंदृष्टिः ।५१५। मानसत्त्वानुभागस्योपरि अधिकस्य क्रोधानुभागस्येयं संदृष्टिः।३। अपनीतशेषं द्वयस्यापि समानं। तस्य संदृष्टिः।५१२। इदमनंतेन भक्त्वा बहुभागप्रमाणं कांडकं कृत्वा द्वयस्यापि गृहीते कांडके समाने। अवशिष्टानुभागोऽपि समानः। अत्र गुणकारस्य भागहारस्य च संदृष्टिः ।४।। कांडकप्रमाणस्य संदृष्टिरियं। ५१२/४ । ३। शेषसत्त्वस्य प्रमाणमिदं। ५१२/४। इदं मानशेषसत्त्वमनंतबहुभागखंडानि कृत्वा एकं खंडं पृथक् संस्थापयेत् बहुखंडसंदृष्टिः [५१२/४ । ३/४] इदं मानतोऽ धिकेभ्यः प्राग्गृहीतपृथक्संस्थापितक्रोधस्पर्द्धकेभ्योऽनंतगुणं। इमानि बहुखंडानि प्राक्तनबहुखंडेषु निक्षिप्य प्राक् पृथग्निक्षिप्ताधिकस्पर्द्धकयुतक्रोधकांडकान्मानकांडकं विशेषाधिकं। क्रोधकांडकप्रमाणमिदं। ३८७। मानकांडकप्रमाणमिदं।४८०। मानशेषैकभागप्रमाणमिदं ।५१२/४।४।

अस्मात् क्रोधशेषैकभागोऽनंतगुणः। तस्य संदृष्टिः [५१२/४] इदानींतन मानसत्त्वानुभागान्मायासत्त्वानुभागो विशेषाधिकः। तस्य संदृष्टिः ।५१८।

अधिकप्रमाणमिदं ।६। अस्मिन्नपनीते मानमाययोः सत्त्वानुभागः समानः। पुनरपि मानकांडकप्रमाणेन (४८०) प्राक् पृथग्निक्षिप्ताधिक (६)। प्रमाणेन च। मायाकांडके गृहीते मानकांडकान्मायाकांडकं विशेषाधिकं। तस्य प्रमाणमिदं। ४८६। अधस्तनसत्त्वानुभागो द्वयोरपि समानः। तस्य संदृष्टिः। ५१२/४।४। पुनरस्मिन् मायासत्त्वानुभागेऽनंतभागीकृते ।५१२/४।३/४। एकभागं

त्यक्त्वा शेषबहुभागेषु (५१२। ३) प्रागुक्तमायाकांडकेन सह युतेषु मानकांडकान्मायाकांडकं
४।४।४
विशेषाधिकं। तस्य संदृष्टिरियं । ५१०। मायाशेषैकभागोऽयं | ५१२ / ४।४।४ | एतस्मान्मानशेषसत्त्वानु-भागोऽनंतगुण:। तस्य संदृष्टि | ५१२ / ४।४ |

अनेनैव प्रकारेण लोभस्यापि विचारणीयम्।लोभ सत्त्वानुभागप्रमाणमिदं ।५२१। अधिकप्रमाणमिदं। ९। अस्य कांडकप्रमाणमिदं ।५१९। लोभशेषैकभागप्रमाणमिदं | ५१२ / ४।४।४।४ | अस्मान्मायाशेषानु भागाऽनंतगुण:। तत: कारणादश्वकर्णकरणप्रथमक्षणे गृहीतावशेषस्पर्द्धकानि लोभादिक्रोधपर्यंतं क्रमेणानंतगुणान्येव न विशेषाधिकानि। तेषां संदृष्टि: ।२।८।३२।१२८। अनुभागसत्त्वविषयेयं प्ररूपणा प्रथमसमयाऽश्वकर्णकरणकारकस्योक्तेति ज्ञातव्यम्। क्रोधादिक्रमेणाश्वकर्णकरणरचना संदृष्टि:।

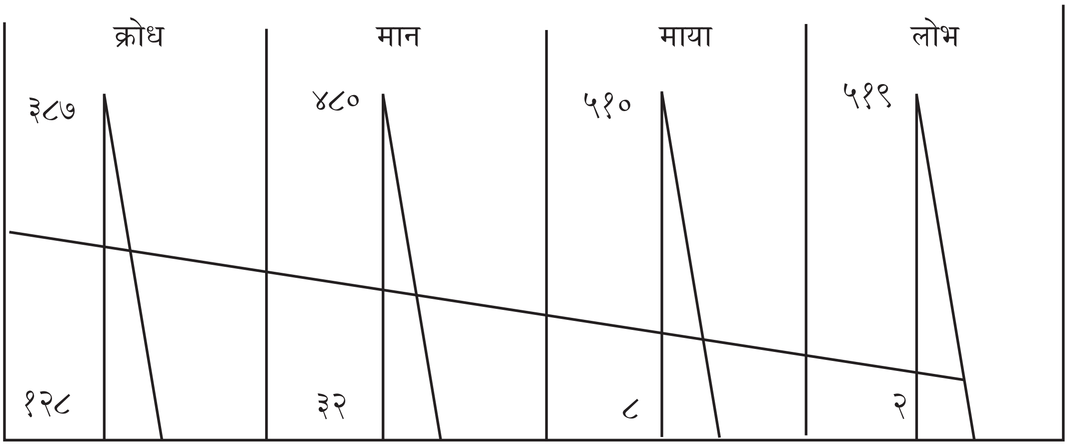

तस्मिन्नश्वकर्णकरणकारकप्रथमसमये अपूर्वस्पर्द्धकानि करोति। पूर्वं संसारावस्थायां अलब्ध-स्वरूपाणि क्षपकश्रेण्यां अश्वकर्णकरणावस्थायामुपलब्धस्वरूपाणि पूर्वस्पर्द्धकादनंतगुणहीन-शक्तिकानि यानि तानि अपूर्वस्पर्द्धकानीत्युच्यंते। अश्वकर्णकरणप्रथमक्षणात्प्रभृति तेषाम-पूर्वस्पर्द्धकानां स्वरूपनिरूपणं क्रियते। तद्यथा। अपूर्वस्पर्द्धकस्वरूपपरिज्ञानस्य पूर्वस्पर्द्धक स्वभावपरिज्ञानपूर्वकत्वात् प्रथमं तेषां विन्यासक्रम उच्यते। चतु:संज्वलनानां अश्वकर्णा-कारेणानुभागकांडकघातप्रारंभात्पूर्वं सर्वेषां जीवानां मतिश्रुतावधिमन:पर्ययज्ञानावरणचक्षुरचक्षु-रवधिदर्शनावरणसम्यक्त्वप्रकृतिचतु:संज्वलननवनोकषायपंचांतरायभेददेशघाति षड्विंशतिकर्म-देशघातिस्पर्द्धकादिवर्गणा: समाना भवन्ति। लतासमानस्पर्द्धकानि दारुसमानानंतैकभागस्थित-स्पर्द्धकानि च देशघातिस्पर्द्धकान्युच्यंते तेषु लतासमानस्पर्द्धकानामादिवर्गणा या पूर्वोक्तषड्विंशति-प्रकृतिप्रतिबद्धा सा एकैकपरमाणुगतानुभागापेक्षया समानेत्यर्थ:। वेदनीयायुर्नामगोत्रभेदाऽ-

घातिकर्मादिस्पर्द्धकादिवर्गणाः एकैकपरमाणुस्थितानुभागापेक्षया समाना इति स्वीकर्तव्यम्। घातिकर्मसु मिथ्यात्व[१] वर्जितशेषाणां केवलज्ञानकेवलदर्शनावरणनिद्रापंचकसम्यग्मिथ्यात्वानंतानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभभेदविंशतिसर्वघातिकर्मणां सर्वघातिजघन्यस्पर्द्धकादिवर्गणा एकैकपरमाणुसंबद्धानुभागापेक्षया समानाः। लताभागात्प्रभृति दार्वनंतैकभागपर्यंतस्थितानि स्पर्द्धकानि देशघातीनि भवन्ति दार्वनंतबहुभागप्रभृतीन्यस्थिशैलपर्यंतानि स्पर्द्धकानि सर्वघातीनि भवन्ति। पूर्वोक्तषड्विंशतिप्रकृतीनां लताजघन्यस्पर्द्धकात्प्रभृति देशघातिशक्त्युत्कृष्टस्पर्द्धकपर्यंतमनुभागविन्यासो भवति अत्रैव सम्यक्त्वप्रकृतेरुत्कृष्टानुभागः[२]। शेषपंचविंशतिप्रकृतीनां तत उपरितनसर्वघातिजघन्य[३]स्पर्द्धकात्प्रभृतिशैलोत्कृष्टपर्यंतमनुभागरचना भवति। सर्वघातिविंशतिप्रकृतीनां सर्वघातिजघन्यस्पर्द्धकादिवर्गणामादिं कृत्वा समानानुभागरचनायां सत्यां सर्वघाति दार्वनंतैकभागे [४]सम्यग्मिथ्यात्वानुभागस्योत्कृष्टं भवति। सर्वघातिजघन्यस्पर्द्धकमादिं कृत्वा एतावत्पर्यंतस्थितोऽनुभागशक्तिविकल्पो मिथ्यात्वस्य न ग्राह्यः। दारुशेषबहुभागजघन्यस्पर्द्धकस्यादिवर्गणया मिथ्यात्वजघन्यस्पर्द्धकादिवर्गणा समाना[५]। इतः प्रभृति मिथ्यात्वस्य शेषैकान्नविंशतिसर्वघातिप्रकृतीनां चानुभागविन्यासः शैलोत्कृष्टपर्यंतमखंडिततया गच्छति। ततः कारणान्मिथ्यात्वं विना शेषसर्वघात्यादिवर्गणाः समाना भवन्ति। एतदुक्तस्वरूपयुक्तानि पूर्वस्पर्द्धकानीति वक्तव्यानि। अघातिचतुष्टस्यापि देशघातिजघन्योत्कृष्टशक्तिपर्यंतस्थितस्वानुभागशक्तिविकल्पः सर्वघातिजघन्योत्कृष्टशक्तिपर्यंतस्थितस्वानुभागशक्तिविकल्पश्च परस्परं समानः इति योजनीयम्[६]।। अपूर्वस्पर्द्धकानि केषां कर्मणां करोतीति चेत्। पूर्वोक्तस्वरूपेषु पूर्वस्पर्द्धकेषु संज्वलनचतुष्टयपूर्वस्पर्द्धकेभ्यः प्रदेशा[७]नपकृष्य तेषां जघन्यस्पर्द्धकादिवर्गणाया अधः अनंतगुणहीनशक्तियुक्ततया अपूर्वस्पर्द्धकानि अनंतसंख्याप्रमितानि प्रथमसमयाश्वकर्णकरणकारकः करोति। पूर्वस्पर्द्धकेभ्यः कियतः प्रदेशानपकृष्य कुत्र पूर्वस्पर्द्धकजघन्यानुभागस्य कियत्तमे भागे कियत्प्रमाणानि भूत्वा अपूर्वस्पर्द्धकानि कियंति करोतीति चेत् प्रश्नचतुष्टयस्य क्रमेण परिहारः उच्यते। संज्वलनचतुष्टयस्य युगपदपूर्वस्पर्द्धकानि करोति। तथापि युगपद् वक्तुमशक्यत्वात्

१.अनन्तरपत्रे मिथ्यात्ववर्जित इत्यस्योपपत्तिः २. कुतः सम्यक्त्वप्रकृतेः सर्वघातित्वाभावात्

३. जघन्यपूर्वस्पर्धकमात्रपूर्वस्पर्धकस्वरूपकथनपर्य्यंतं केवलस्पर्धकशब्दोच्चार्यमाणोऽपि पूर्वस्पर्धकमिति ग्राह्यं ४. दारुअनंतैकभागात्सर्वघात्यनंतैकभागपर्यंतं मिश्रप्रकृतेः स्यात्

५. मिश्रप्रकृतिरहितशेषैकान्नविंशतिप्रकृतिप्रणिधौ समानाः इतिग्राह्यः

६. प्रणिधौ समान इत्यर्थः ७. कर्मपरमाणून्

क्रमवृत्तिर्भारतीति न्यायात् संज्वलनलोभस्य तावदपूर्वस्पर्द्धककरणविधानमुच्यते। द्व्यर्द्धगुणहानिमात्र[१]समयप्रबद्धप्रमाणलोभसंज्वलनपूर्वस्पर्द्धकादपकर्षणभागहारेणासंख्यातैकभाग प्रदेशानपकृष्य पूर्वस्पर्द्धकेषु जघन्यदेशघातिस्पर्द्धकादिवर्गणाया अधः अनंतगुणहान्या हीनयित्वा पुनः केवलमपूर्वस्पर्द्धकानि करोति। अनंतैकभागः कथं जात इति चेत्। अपूर्वस्पर्द्धकानां सर्वोत्कृष्ट-

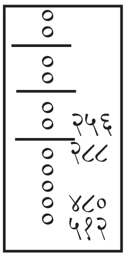

चरमवर्गणाया अविभागप्रतिच्छेदाः पूर्वस्पर्द्धकानां जघन्यदेशघातिस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभाग-प्रतिच्छेदानंतैकभागमात्रा भवंतीति तदनंतभागेन करोतीति वक्तव्यम्। क्रियमाणापूर्वस्पर्द्धकप्रमाणं कियदिति चेत्। तानि गणनया अनंतान्येव न संख्यातासंख्यातानि भवन्ति। तान्यनंतानि तथाप्येकप्रदेशगुणहानि[२]स्थानमध्यस्थितस्पर्द्धकानामसंख्यातैकभागमात्राणि भवन्ति। अपकर्षणभागहारादसंख्यातगुणेन भागहारेणेकप्रदेशगुणहानिं भक्त्वा यल्लब्धं तावन्मात्राणीत्यर्थः। प्रदेशगुणहानिरिति किमिति चेत्। पूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणा एकैकविशेषेण हीना सती यत्रार्द्धं जायते तावत्- पर्यंतस्थितस्पर्द्धकप्रमाणं प्रदेशगुणहानिः[३] सा चाभव्यराशितोऽनंतगुणा सिद्धराश्यनंतैकभागमात्रा तस्याः संदृष्टि : ९। प्रथमसमयक्रियमाणापूर्वस्पर्द्धकान्येतानि ९ इत
ओ a

उपर्यपूर्वस्पर्द्धकस्वरूपपरिज्ञाननिमित्तमविभागप्रतिच्छेदाल्पबहुत्वमुच्यते। प्रथमसमयेयान्यपूर्व-स्पर्द्धकानि कृतानि तेषामादिस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदसमूहः सर्वजीवराशेरनंतगुणोपि उपरितनवर्गणाभ्यः स्तोकः। ततः द्वितीयस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदसमूहोऽनंतबहुभागा-धिकः। प्रथमस्पर्द्धकादिवर्गणा सर्वपरमाणुस्थितानुभागप्रतिच्छेदपुंजे अनंतभागीकृते एकभागंत्य-क्त्वा बहुभागाधिका भवंतीत्यर्थः। एकवर्ग्गणास्थितसमानाविभागप्रतिच्छेदयुतसर्वपरमाणू-नामविभागप्रतिच्छेदपिंडं प्रति एतदधिकाल्पबहुत्वमुक्तम्। एकैकपरमाणुस्थिताविभागप्रतिच्छेद-पिंडं प्रति दर्श्यते। प्रथमस्पर्द्धकादिवर्गणातो द्वितीयस्पर्द्धकादिवर्गणा द्विगुणा। कुतः प्रतिस्पर्द्धकं आदिवर्गतः आदिवर्गस्य द्विगुणत्रिगुणादिवृद्धिक्रमेणाऽवस्थानात्। कषायप्राभृतनामद्वितीयसिद्धांत-व्याख्यानेपि इदमल्पबहुत्वमुक्तम्। तद्यथा प्रथमस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदपिंडः स्तोकः।

१. स १२ संज्वलन- लोभस्येतद्भागहारात्पूर्वगणितः २. गुणहान्यायाम
७।२।४ ३. प्रदेशगुणहान्याः संदृष्टिर्नवांकः

तदानयनक्रमोऽयं द्व्यर्द्धगुणहानिमात्रं [१]स्वस्वसमयप्रबद्धं संस्थाप्य अनुभागसंबंधिद्व्यर्द्धगुणहान्या भक्ते आदिवर्गणा आयाति। अनुभागप्रतिबद्धगुणहानिप्रमाणं कियदिति चेत्। एकगुणहानिस्पर्द्धकशलाका संदृष्टिः।९। एकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकासंदृष्टिः।४। एतद्द्वयं परस्परं गुणितं सत् गुणहानिप्रमाणं स्यात्। तस्य संदृष्टिः ।८। अस्या आदिवर्गणा द्विगुणगुणहान्या भक्ता सती विशेषः स्यात्। सः कः। एकवर्गणातः अन्यवर्गणा यावत्परमाणुभिर्हीयते तत्परमाणुसमूहो विशेषो नाम। तस्य संदृष्टिःवि। द्विगुणगुणहानेः संदृष्टिः १६। यतः कारणात् द्विगुणगुणहान्या आदिवर्गणायां भक्तायां विशेषः आयाति। ततः कारणात् विशेषं संस्थाप्य द्विगुणगुणहान्या गुणिते आदिवर्गणा जायते। तस्याः संदृष्टिः वि १६। वर्ग इति नाम्नः एकपरमाणुस्थिताऽविभाग-प्रतिच्छेदपुंजस्य संदृष्टिः ।व। अनेन पूर्वोक्तराशौ गुणिते प्रथमवर्गणासर्वाविभागप्रतिच्छेदप्रमाणं संपद्यते। तस्य संदृष्टिः। व वि १६। एतस्मात् द्वितीयस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदसमूहो द्विगुणः। संदृष्टिः। व २ वि १६। एतस्मात् तृतीयस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदसमूहो द्विभागाधिकः। संदृष्टिः। व ३ वि १६। एतस्माच्चतुर्थस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदसमूहः त्रिभागाधिकः। संदृष्टिः। व ४ वि १६। इत उपरि संख्यातभागाधिकासंख्यातभागा-धिकानंतभागाधिकक्रमेण व्याप्तिं नयेत्। यावत् द्विचरमापूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणाविभागप्रतिच्छेद समूहात् चरमापूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदसमूहोऽनंतभागाधिको भवति। तस्य प्रमाणं किमिति प्रथमसमयकृतापूर्वस्पर्द्धकशलाकासंदृष्टिः [९ / ओ a] [२]निक्षिप्तेयावत्प्रमाणं तावन्मात्रं भवति।

संदृष्टिः [व वि १६ । ९ / ओ a] इदमल्प बहुत्वं स्थूलतयोक्तं। समानाविभागप्रतिच्छेदयुत सर्वपरमाणु-समूहसहितवर्गणां विवक्षित्वा सूक्ष्मतयाऽल्पबहुत्वे उच्यमाने अयमर्थो नांगीकार्यः। कुतः यतः कारणात् सर्वत्रापि अधस्तनस्पर्द्धकवर्गणा- संख्यामात्रविशेषैः उपरितनस्पर्द्धकादिवर्गणा हीना गच्छन्ति। ततः कारणात् प्रथमस्पर्द्धकादिवर्गणाविभागप्रतिच्छोत् द्वितीयस्पर्द्धकादिवर्गणाविभाग-प्रतिच्छेदाः किंचिन्न्यूनद्विगुणा भवन्ति। ऊनप्रमाणानयनक्रमः कथमिति चेत्। प्रथमस्पर्द्धकादिवर्गणातः प्रथमस्पर्द्धकद्वितीयवर्गणा एकविशेषेन हीना। तृतीयवर्गणा विशेषद्वयेन हीना। अनया व्याप्त्या गत्वा चरमवर्गणा रूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणागणनामात्रविशेषैर्हीना।

---

१. क्रोधमानमायापेक्षया स्वस्वसमयप्रबंधं इति

२. रुपोनराशिना [(१⌒) ९ / ओ a] द्विचरमस्पर्द्धकादिवर्गणां [व (१⌒) ९ वि १६ / ओ a] भक्त्वा [व (१⌒) ९ वि १६ / ओ a (१⌒) ९ / ओ a] यल्लब्धं [व १ वि १६] तत्तस्मिन् द्विचरमस्पर्द्धकादिवर्गणायां [व (१⌒) ९ वि १६ / ओ a] निक्षिप्ते तत्प्रमाणं भवति।

द्वितीयस्पर्द्धकादिवर्गणा प्रथमस्पर्द्धकादिवर्गणातः सिद्धराश्यनंतैकभागाऽभव्यराश्यनंतगुणैक-स्पर्द्धकवर्गणाशलाकामात्रविशेषैर्हीना ततः कारणादेकगुणैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकामात्रविशेषो द्विगुणजघन्यवर्गेण गुणितश्चेत् द्वितीयस्पर्द्धकस्यादिवर्गणा ऋणं जायते। संदृष्टिः व २ वि ४।१।। इदं पूर्वं स्थूलरूपेणोक्तायामस्यां ।व २ वि १६। द्वितीयस्पर्द्धकादिवर्गणायामपनयेत्। द्वितीयस्पर्द्धकादि-वर्गणाविभागप्रतिच्छेदेभ्यः तृतीयस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदाः किंचिन्न्यूनद्विभागाधिका भवन्ति। द्विगुणैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकामात्रविशेषस्त्रिगुणजघन्यवर्गेण गुणितस्तृतीयस्पर्द्धकऋणं जायते। संदृष्टिः । व ३ वि ४ । २ । इदं पूर्वं स्थूलरूपेणानीतायां तृतीयस्पर्द्धकादिवर्गणायामपनयेत् तृतीयस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदेभ्यश्चतुर्थस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदाः किंचिन् न्यूनत्रिभागाधिका भवन्ति। ऊनप्रमाणं संदृष्टिः। व ४ वि ४।३। इदं पूर्वं स्थलरूपेणानीतचतुर्थस्पर्द्धकादिवर्गणायामपनयेत्। अनेन प्रकारेण पंचमादिस्पर्द्धकादिवर्गणाः किंचिन्न्यून चतुर्थभागाधिकादिक्रमेण गच्छन्ति यावज्जघन्यपरिमितासंख्यातमात्रस्पर्द्धकानां चरमस्पर्द्धकादिवर्गणास्वकीयाधस्तनस्पर्द्धकादिवर्गणातः उत्कृष्टसंख्यातभागाधिकतया संख्यात-भागवृद्धेरंतो भवति तावत्। तत उपरि यथाक्रममसंख्यातभागाधिकतया गच्छन्ति यावत् प्रथमतः आरभ्य जघन्यपरिमितानंतमात्रस्पर्द्धकानां चरमस्पर्द्धकादिवर्गणा स्वकीया-धस्तनस्पर्द्धकादिवर्गणातः उत्कृष्टाऽसंख्यातासंख्यातभागाधिकतया असंख्यात-वृद्धेरंतस्तावत्पर्यंतम्। अत उपर्य्यनंतभागाधिकक्रमेणानंतस्पर्द्धकानि गच्छन्ति। यावदपूर्वस्पर्द्धकानां चरमस्पर्द्धकं रूपोनगच्छगुणैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकामात्रविशेषैः गच्छमात्रजघन्यवर्गैर्गुणितः सन् तत्र ऋणं भवति। चरमविकल्पः कथमस्तीति चेत्। यतः कारणात् पूर्वोक्तव्याप्तिरखंडिततया सर्वत्र वर्त्तेत ततः कारणात् द्विचरमापूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणातश्चरमापूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणा किंचिन्न्यूनानंत-भागेन विशेषाधिका। अत्र भागहारोयं ।१- ९ / ओ ख। ऊन प्रमाणमिदं ।व ९। २ वि ४।१- ९ / ओ ख ओ ख। भागहारेण द्विचरमस्पर्द्धकादिवर्गणां भक्त्वा यल्लब्धं तस्मिन् न्यूनप्रमाणमपनीयशेषद्विचरमाऽपूर्वस्पर्द्धकादि-वर्गणायां निक्षिप्ते चरमापूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणा उत्पद्यते इत्यर्थः। एवमव्यवधानेनाल्पबहुत्वमुक्तम्। व्यवधानेनाल्पबहुत्वं कथमस्तीति चेत्। प्रथमसमये यान्यपूर्वस्पर्द्धकानि कृतानि तेषु प्रथमस्पर्द्धकादिवर्गणा स्तोका तस्याः संदृष्टिः। व वि १६। एतस्मात् चरमापूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणा-ऽनंतगुणा। गुणकारसंदृष्टिः ।९ / ओ ख। अयं स्थूलरूपेण गुणकारः सूक्ष्मरूपेण किंचिन्न्यूनः।

ऊनराशिप्रमाणं प्रागुक्तमेव[1] गुणितराशिसंदृष्टिः | व वि १६ । ९ / ओ a | एतस्मात् प्रथमपूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणाऽनंतगुणा। कुतः। पूर्वस्पर्द्धकानां देशघातिजघन्यस्पर्द्धकादिवर्गणातः अनंतगुणहीनतया अपूर्वस्पर्द्धकचरमवर्गणायाः करणात्। एवं प्रथमसमयाऽपगतवेदस्य लोभापेक्षया ऽपूर्वस्पर्द्धकविधानमुक्तम्। तस्य क्रोधमानमायाऽपेक्षयाऽपूर्वस्पर्द्धकविधानं कथमस्तीति चेत्। लोभस्य यथा प्रथमसमये अपूर्वस्पर्द्धकान्युक्तानि तथैव मायामानक्रोधानामपि वक्तव्यानि। कुतः। मायादिसंज्वलनानां स्वकीयस्वकीयपूर्वस्पर्द्धकेभ्योऽसंख्यातैकभागप्रदेशान् गृहीत्वा स्वस्वदेशघातिजघन्यस्पर्द्धकाधोऽनंतगुणहीनतया प्रदेश[2]गुणहानिस्थितस्पर्द्धकाऽसंख्यातैकभागमात्राण्यव्यवधानेनानंतबहुभागाधिकक्रमेण वर्द्धिताविभागप्रतिछेदयुतानि व्यवधानेन प्रथमस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदेभ्योनंतगुणचरमस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदयुतान्यपूर्वस्पर्द्धकानि करोतीति लोभनिरूपणेनास्य निरूपणस्य भेदाभावात्। चतुःसंज्वलनानामपूर्वस्पर्द्धकानि समानानि वा विषमाणि वेति चेदल्पबहुत्वमुच्यते। प्रथमसमये यानि अपूर्वस्पर्द्धकानि कृतानि तानि क्रोधस्य स्तोकानि। मानस्य विशेषाधिकानि मायाया विशेषाधिकानि लोभस्य विशेषाधिकानि विशेषप्रमाणमनंतभागः। तद्यथा - क्रोधसंज्वलनापूर्वस्पर्द्धकानि अनंतेन भक्त्वा एकस्मिन् भागे तत्रैव निक्षिप्ते मानसंज्वलनस्य स्पर्द्धकान्यायांति। तानि पूर्वभागहाराद्रूपाधिकभागहारेण भक्त्वा तत्रैव निक्षिप्ते मायासंज्वलनस्पर्द्धकान्यायांति। तानि पुनः पूर्वभागहाराद्रूपाधिकभागहारेण भक्त्वा तत्रैव निक्षिप्ते लोभसंज्वलनस्पर्द्धकानि जायन्ते। क्रोधाद्यपूर्वस्पर्द्धकशलाकांकसंदृष्टिः। १८।२१।२४।२७। अंकसंदृष्टेः प्रथमभागहारप्रमाणं । ६।

अर्थसंदृष्टिः

९	१– ९ ख	२– ९ ख	३– ९ ख
ओ a	ओ a ख	ओ a ख	ओ a ख

अर्थसंदृष्टेः प्रथमभागहारः। ख। क्रोधाद्यपूर्वस्पर्द्धकानां प्रथमस्पर्द्धकादिवर्गणा तेषां चरमस्पर्द्धकादिवर्गणापरस्परं समाना वा विषमा वा अल्पबहुत्वमुच्यते। क्रोधादीनां प्रथमसमयकृताऽपूर्वस्पर्द्धकेषु मध्ये लोभादिवर्गणायामविभागप्रतिच्छेदसमूहः स्तोकः। तस्य संदृष्टिः। ५६। मायादिवर्गणायामविभागप्रतिच्छेदसमूहो विशेषाधिकः। संदृष्टिः। ६३। मानादिवर्गणायामविभागप्रतिच्छेदसमूहो विशेषाधिकः। संदृष्टिः। ७२। क्रोधादिवर्गणायामविभागप्रतिच्छेदसमूहो विशेषाधिकः। ८४। चतुःसंज्वलनानां यान्यपूर्वस्पर्द्धकानि कृतानि तेषु चरमापूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणाऽ

---

१. सर्वजघन्यप्रथमस्पर्द्धकादिवर्गणातः द्वितीयस्पर्द्धकादिवर्गणाऽनंतबहुभागाधिकेत्यादि योज्यं।

२. गुणहान्यायाममात्रस्थित

विभागप्रतिच्छेदसमूहः समानतया स्वस्वादिवर्गणातोऽनंतगुणः। अनंतगुणत्वं कथं जातमिति चेत्। स्वस्वादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदसमूहे द्विगुणीकृते स्वस्वद्वितीयस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदसमूहः संपद्यते। त्रिगुणीकृते तृतीयस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदसमूहः संपद्यते। एवमीप्सितस्पर्द्धकशलाकाभिः प्रथमस्पर्द्धकादिवर्गणायां गुणितायामीप्सितस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदा जायंते। एवमभव्यराश्यनंतगुणसिद्धराश्यनंतैकभागमात्रापूर्वस्पर्द्धकशलाकाभिः प्रथमस्पर्द्धकादिवर्गणायां गुणितायां सर्वचरमापूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणाविभागप्रतिच्छेदा जायंते। लोभादिपूर्वोक्तापूर्वस्पर्द्धकशलाकांकसंदृष्टिः। २७।२४।२१।१८। एताभिः (यथासंख्यं) स्वस्वादिवर्गणायां गुणितायां सर्वचरमस्पर्द्धकादिवर्गणाप्रमाणं संज्वलनचतुष्टयस्य समानतया[1] आगच्छति। तस्यांकसंदृष्टिः।१५१२। पुनरपि इदं स्वस्वस्पर्द्धकशलाकाभिर्भक्त्वा स्वस्वादिवर्गणां साधयेत्। चरमवर्गणासमानेत्यस्यान्त्यदीपकत्वादधोप्यनंतस्थानेषु[2] अपूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणाः समाना भवंति। तद्यथा। क्रोधस्पर्द्धकशलाकासु मानस्पर्द्धकशलाकामध्येऽपनीतासु शेषप्रमाणमिदं।३। अनेन क्रोधस्पर्द्धकशलाकासु भक्तासु लब्धमिदं ।६। अस्य क्रोधकांडकमिति नामास्ति।एतस्माद्रूपाधिकराशेर्मानकांडकमिति नाम।७। एतस्माद्रूपाधिकस्य मायाकांडकमिति नाम ८। एतस्माद्रूपाधिकस्य लोभकांडकमिति नाम।९। स्वस्वादिवर्गणामादिं कृत्वा उपरि स्वस्वकांडकमात्रस्थानान्यतीत्य स्थितस्पर्द्धकादि[3]वर्गणा संज्वलनचतुष्टयस्यापि समाना। अत उपर्य्यपि स्वस्वकांडकमात्रस्थानान्यतीत्य स्थितस्पर्धकादिवर्गणा समाना। एवं तृतीय कांडकादिद्विचरमकांडकपर्यंतमनंतस्थानेषु वर्गणाः समाना भवन्ति। अत उपरि स्वस्वकांडकमात्रस्थानानि गत्वा तच्चरमापूर्वस्पर्धकादिवर्गणा एकैकपरमाणुस्थिताविभागप्रतिच्छेदापेक्षया समाना भवन्ति। अत्र स्वस्वकांडकायामप्रमाणेन स्वकीयस्वकीयापूर्वस्पर्द्धकशलाकासु भक्तासु[4] सदृशस्थानान्यनं तानि संज्वलनचतुष्टयस्यापि समानानि जायंते। तेषामंकसंदृष्टिः।३।

[5]अपूर्वस्पर्द्धकप्रमाणागमननिमित्तं प्रदेशगुणहानेर्भागहारप्रमाणं कियदस्तीति चेत्।

१६८०
०
०
०
१२६०
०
०
०
८४०
०
०
०
४२०
३१५
२१०
१०५

१. चतुर्णां समानतया गच्छति २. स्वस्वकांडककांडकगतचरमाऽपूर्वस्पर्द्धकमित्यादि

३. एककांडकगतैकाऽपूर्वस्पर्द्धकादि एवं १०५। द्वितीयापूर्वस्पर्द्धकस्यैकादि एवं २१० स्पर्द्धक स्यैकादि एवं ३१५ एवं सर्वकांडकस्पर्द्धकानामाद्य: प्रत्येकं उर्ध्वलिखितो ज्ञातव्य:

४. $\frac{१८}{६}$ | $\frac{२१}{७}$ | $\frac{२४}{८}$ | $\frac{२७}{९}$ सर्वत्र लब्धानि त्रिणि त्रिण्येवातः सदृश इति वचनं

५. प्रागुक्तस्य [ओ ९ a] अस्य शंकां कृत्वा निर्णयति

अल्पबहुत्वमुच्यते। अश्वकर्णकरणकारकस्य प्रथमसमये प्रदेशापकर्षणार्थं द्व्यर्द्धगुणहानिमात्रद्रव्यस्य यो भागहारः सः स्तोकः। संदृष्टिः। ओ। अपूर्वस्पर्द्धकागमननिमित्तमेकप्रदेशगुणहानि-स्थानमध्यस्थितस्पर्द्धकशलाकायाः योऽपकर्षणभागहारः सोऽसंख्यातगुणः। ओ a । एतस्मात् पल्यप्रथमवर्गमूलमसंख्यातगुणं। अपकर्षणभागहारादसंख्यातगुणेन पल्यप्रथमवर्गमूलादसंख्यात-गुणहीनेन राशिना एकप्रदेशगुणहानिस्थितस्पर्द्धकशलाकासु भक्तासु यल्लब्धं तन्मात्राणि संज्वलनचतुष्टयस्यापूर्वस्पर्द्धकानि भवन्तीति तात्पर्यम्। प्रथमसमयापकृष्टद्रव्यस्य पूर्वापूर्वस्पर्द्धकेषु विशेष[1] विन्यासक्रमः कथमस्तीति चेत्। प्रथमसमये अपूर्वस्पर्द्धकेषु निर्वर्त्त्यमानेषु पूर्वस्पर्द्धकेभ्योऽपकर्षणभागहारेण प्रदेशसमूहं भक्त्वा एकभागं गृहीत्वा तन्मध्यात् अपूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायां बहुद्रव्यं निक्षिपति। द्वितीयवर्गणायां तदनंतैकभागेन विशेषेण[2] हीनं निक्षिपति एवमव्यवधानेन गत्वा अपूर्वस्पर्द्धकचरमवर्गणायामपि विशेषहीनं निक्षिपति। अपूर्वस्पर्द्धकचरमवर्गणायां निक्षिप्तद्रव्यात् प्रथमपूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायामसंख्यातगुणहीनं निक्षिपति। तथाहि-मोहनीयस्य देशघातिसंबंधिद्व्यर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्ध संदृष्टिः । स a १२। अस्मिन्ननुभागसंबंध्यनंतात्मद्व्यर्द्धगुणहान्या भक्ते मोहनीयस्यादिवर्गणाप्रमाणं जायते। संदृष्टिः। व। अनेन[3] मोहनीयस्य सर्वसत्त्वे प्रमाणिते आदिवर्गणाः द्व्यर्द्धगुणहानिमात्रा भवन्ति। संदृष्टिः। व १२ ।[4] आवल्यसंख्यातस्य संदृष्टिः ९। अनेन पूर्वराशिं भक्त्वा एकभागं पृथक् संस्थाप्य शेषबहुभागान् समानतया द्वाभ्यां भक्त्वा कषायाणामेकभागं नोकषायाणामेकभागं दद्यात्।

संदृष्टिः | व १२।८ / २।९ | व १२।८ / २।९ | अपनीतैकभागप्रमाणं | व।१२ / ९ |

प्रथमराशिना समच्छेदीकृत्य निक्षिप्य अपवर्तितं कषायद्रव्यं साधिकार्धं भवति | व १२ / २ | द्वितीय-राशावेतावदृणं | व १२।१ / ९।२ | निक्षिप्यापवर्तिते नोकषायद्रव्यं किञ्चिन्न्यूनार्द्धं भवति। संदृष्टिः | व १२ – / २ | कषायद्रव्यमावल्यसंख्यातेन भक्त्वा एकखंडं पृथक संस्थाप्य शेषबहुभागान् चतुर्थिः समानतया भक्त्वा चतुर्णां दत्त्वा शेषैकखंडमावल्यसंख्यातेन भक्त्वा एकखंडं पृथक् संस्थाप्य शेषबहुखंडानि प्रथमपुंजस्य दत्त्वा लोभसंज्वलनद्रव्यं भवति। शेषैकखंडं

---

१. निषेक २. गोपुच्छाकारेण

३. प्र | स a १२ / ख ख ३ / २ | फ । व । इ । स a। १२ लब्ध | व ख ख ३ / २ | संदृष्टि= | व १२ |

४. उत्तरत्र वक्ष्यमाणसमपट्टिकापेक्षया एवंकृतं

पुनरप्यावल्यसंख्यातेन भक्त्वा एकखंडं पृथक्संस्थाप्य बहुखंडेषु द्वितीयपुंजस्य दत्तेषु मायासंज्वलनस्य द्रव्यं भवति। शेषैकखंडं पुनरप्यावल्यसंख्यातेन विभज्यैकखंडमपनीय बहुखंडेषु तृतीयपुंजे निक्षिप्तेषु क्रोधसंज्वलनद्रव्यं भवति। शेषैकखंडे चतुर्थपुंजे दत्ते मानसंज्वलन-द्रव्यमायाति। तेषां संदृष्टिः

व।१२।८ ४।२।९	व।१२।८ ४।२।९	व।१२।८ ४।२।९	व।१२।८ ४।२।९
व।१२।८ २।९।९	व।१२।८ २।९।९।९	व।१२।८ २।९।९।९।९	व।१२।१ २।९।९।९।९
लो	या	क्रो	मा

एतेषु समछेदेन मिलितेषु लोभद्रव्यं साधिकचतुर्भागःततो मायाद्रव्यं किंचिन्न्यूनचतुर्भागः ततः क्रोधद्रव्यं किंचिन्न्यूनचतुर्भागः। ततो मानद्रव्यं किंचिन्न्यूनचतुर्भागः। प्रागुक्तनोकषायद्रव्ये तृतीय[1] पुंजे समच्छेदेन मिलिते क्रोधद्रव्यं किंचिन्न्यून पंचगुणं ।

तेषां संदृष्टिः । | व १२ / ८ | व १२– / ८ | व १२ = ५ / ८ | व १२ ≡ / ८ |

एवं स्थितेषु पूर्वस्पर्धकसंबंधिषु द्व्यर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धद्रव्येषु लोभसंज्वलनद्रव्यमपकर्षण-भागहारेण भक्त्वाऽसंख्यातैकभागः | व १२ / ८ ओ | एतत्प्रमाणं गृहीत्वाऽपूर्वस्पर्धकानि कुर्वाणः एतस्मिन्[2] कथं द्रव्येणापूर्वस्पर्धकानि करोतीति चेत्। पूर्वस्पर्धकादिवर्गणाया असंख्यातैकभागमपकृष्य गृहीत्वाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां कांश्चिद्वर्गान् करोति । संदृष्टिः[3] | व / ओ | एवं द्विरूपोनापकर्षणभागहारमात्रवर्गणानां प्रदेशसमूहस्यासंख्यातैकभागमात्रमपकृष्यापूर्व-स्पर्द्धकादिवर्गणारूपेण निक्षिपति। संदृष्टिः। | व ओ– २ / ओ | प्रागुक्तद्रव्येऽस्मिन् द्रव्ये निक्षिप्ते

---

१. क्रोधसंबंधिनि २. | व / ओ | व / ओ | व / ओ | व / ओ | पूर्वस्पर्धकखंडा एवमपकर्षणभागहारमात्रा स्युः।एभ्यः एकखंडं पृथक् स्थापिते एवं | व १२ / ८ ओ | पूर्वस्पर्द्धकशेषबहुखंडाः | व / ओ | व / ओ | व / ओ | एवं | व ओ–१ / ओ | एषु एतावन्मात्रा एवाद्यः | व ओ–१ / ओ | अतो पूर्वस्पर्द्धकादयोपि विष्कंभेन एतावन्मात्रा एव | व ओ – २ / ओ | द्विरूपोनापकर्षणेत्यादि योज्यम् ३. प्रस्तावे

प्रथमापूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणाप्रदेशप्रमाणं भवति। संदृष्टिः[1]। | व ओ-१ / ओ | पुनरपि एतावदेतावदेव द्रव्यं गृहीत्वा निक्षिप्ते उपरितनैकवर्गणाप्रदेशप्रमाणं भवति। एवं वर्गणाः कर्तव्याः। यावच्चरमापूर्वस्पर्द्धकचरमवर्गणानिष्पत्तिर्भवति। एवं कृते एकप्रदेशगुणहानिस्पर्द्धकानामसंख्यातैक-भागमात्रः पूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणाविष्कम्भे न समानतया निष्पद्यंते। संदृष्टि | ९ / ओ a | एकस्पर्द्धकवर्गणा संदृष्टिः।४। अनेन पूर्वराशौ गुणिते अपूर्वस्पर्द्धकसर्ववर्गणाप्रमाणं भवति।

| ९।४ / ओ a | द्विगुणगुणहान्या[2] १६। अपूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणां भक्त्वा द्विगुणितायामपूर्वस्पर्द्धकप्रतिबद्धैक-विशेषो जायते। संदृष्टिः। | व ओ -१ / ओ ८ | इममपूर्वस्पर्द्धकचरमवर्गणायां निक्षिपेत्। एवंविधौ द्वौ विशेषौ द्विचरमवर्गणायां निक्षिपेत्। एवंविधान् त्रीन् विशेषान् त्रिचरम-वर्गणायां निक्षिपेत्। एवमेकाद्येकोत्तरक्रमेण विशेषेसु निक्षिप्तेषु प्रथमापूर्व-स्पर्द्धकप्रथमवर्गणायामपूर्वस्पर्द्धकवर्गणामात्रविशेषान् निक्षिपेत्। संदृष्टिः | व ओ -१।८ / ओ ८ ओ a | एवं निक्षिप्ते पूर्वापूर्वस्पर्धकानामेकगोपुच्छं भवति। पुनरप्यपूर्वस्पर्द्धकवर्गणा-शलाका गच्छं कृत्वा एकाद्येकोत्तरविशेषान् संकलनासूत्रेण[3] मेलयित्वा अपवर्तिते संदृष्टिः

| १- / व ८ / ओ ओ aa२ |[4] पुनरपि एकवर्गणाया एतावति। | व ओ -१ / ओ | द्रव्ये अपूर्वस्पर्द्धकस्यैतावतीनां | ८ / ओ a | वर्गणानां किमिति त्रैराशिके कृते अपूर्वस्पर्द्धकसमपट्टिकाद्रव्यमेतावत् | व ओ - १।८ / ओ ओ a | अस्मिन् पूर्वोक्त विशेषसंकलनराशौ निक्षिप्ते साधिकं चयधनमिदं भवति। | व ओ-१।८ / ओ ओ a | अस्य गुणकार-भागहारान् द्व्यर्द्धरूपेण गुणयित्वा संदृष्टिरेवं | व ।१२ ओ - १ / ओ ओ a ३ / २ | अस्मिन्राशौ पूर्वमपकृष्ट | व १२ / ओ |[5]

---

१. पूर्वस्पर्धकादिवर्गणाया एवं | व ओ– १ / ओ | संदृष्टिः कुत एकभागस्यापूर्वस्पर्द्धकार्थमपकृष्टत्वात्।

२. अस्मिन् चारिणवगा अट्ठ इति गुणितं इदं | ८ / ओ a |

३. सैकपदाहतपददलचयहतलब्धं | १- / व ओ - १।८ ८ / ओ ८ओ aओ a२ | चयधनमेतत्

४. (| व ओ-१ / ओ ओ a | अयमनेन | ३ / २ | गुणिते भाजिते च | व २४ ओ -१ / २ ओ a २ ३ / २ | द्विकेन चतुर्विंशंमपवर्त्य एवं | व ओ / ओ ओ a ३ ३ / २ |)

५. अत्राष्टकमवगणितं

लोभसंज्वलनद्रव्ये समछेदेनाऽ पनीते शेषप्रमाणमिदं | व १२ । ओ - १ / ओ ओ a ३ २ / २ | [1] अपूर्वस्पर्द्धकवर्गणा-[2]शलाकाभिरपूर्वस्पर्द्धकवर्गणाशलाकानां भजने | प ८ ओ a | फ श१ | इ ८ ओ a | लब्धं शलाकैका ।१। अपूर्वस्पर्द्धकवर्गणाशलाकाभिरेव द्व्यर्द्धगुणहानि मात्रपूर्वस्पर्द्धकायामे भक्ते | प ८ ओ a | फ श१ | इ ८।३ / २ | लब्धशलाका एतावत्य: | ओ a ३ / २ | एता: उभयशलाका: मेलयित्वा प्रागपनीतशेषराशिं भक्त्वा पूर्वस्पर्द्धकसंबंधि बहुशलाकाभिर्गुणने पूर्वस्पर्द्धकप्रतिबद्धद्रव्यं भवति संदृष्टि | व १२ / ओ ओ a ३ / २   २– / ओ a ३ / २   ओ a ३ / २ | [3]

अपूर्वस्पर्द्धकसंबंध्येकशलाकया गुणने अपूर्वस्पर्द्धकप्रतिभागद्रव्यं भवति संदृष्टि: | व १२ / ओ ओ a ३ / २   ओ–१ / २– / ओ a ३ / २ | इदमपूर्वस्पर्द्धकप्रतिभागद्रव्यं पूर्वोक्तविशेषसंकलनसहिता-पूर्वस्पर्द्धकसमपट्टिकाद्रव्ये समछेदेन निक्षिप्तं अपूर्वस्पर्द्धक प्रतिबद्धसर्वद्रव्यं भवति। तस्य संदृष्टि: | व १२ ।ओ / १– / ओ ओ a ३ / २ | [4]

इमं राशिमपूर्वस्पर्द्धकवर्गणाशलाकाभि:[5] भक्त्वा गुणहान्या गुणहानि: समानेत्यपवर्त्त्य तत्र [6]रूपोनपूर्वस्पर्द्धकवर्गणार्द्धमात्रविशेषेषु निक्षिप्तेषु अपूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायां निक्षेप्य द्रव्यप्रमाण-मायाति। संदृष्टि: | व ओ ओ a ३।१६ / १– २ / ओ ओ a ३ / २   १० / १६- ८ / ओ a २ |

---

१. गुणकारत्रयं छित्वा रुणं तिष्ठतित्यर्थ: २. अपूर्वस्पर्द्धकवर्गणायाम: पूर्वस्पर्द्धकवर्गणाऽसंख्यातैकभाग: इत्यर्थ: ३. प्रक्षेपयोगोद्धृत मिश्रपिंड: प्रक्षेपकगुणको तावत्स

४. अत्र समच्छेदं कृत्वा पुन अस्मिन् अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदेमज्झिमधणमागछदिइत्यभिप्राय:

५. द्व्यर्द्धगुणहानिमित्वा | ८ ३।२ / २ | | व ओ ओ a ३ / २ / ओ ओ a ३ / २   १० / १६-८ / ७ a २   १० / ८ ३ / ओ a २ |

६. रूपोनगच्छमात्रचयेषु तस्मिन्निक्षिप्तेषु आदि १– प्रमाणं अंक संदृष्टि: $\frac{३२००}{८} = ४००$ लब्धं अत्र रूपोनगच्छार्द्धमात्रे विशेषे | ३२। ८ / २ | निक्षिप्ते आदि: ५१२ अर्थसंदृष्टावप्येवमेव

एतत्प्रमणं द्रव्यमेकैकविशेषहीनतया द्वितीयादिवर्गणासु निक्षिप्यमाणं चरमवर्गणायां रूपोन-गच्छमात्रविशेषैर्हीयते। तस्य संदृष्टिः [व ओ ओ ∂ ३/२ ; १— ओ ओ ∂ ३/२ ; १६ - ८ / ओ ∂ ; १६- ८ / ओ ∂ २] अपूर्वस्पर्द्धकचरमवर्गणायां निक्षेप्तोयं प्रदेशपिंडः पूर्वस्पर्द्धकादि वर्गणाया नूतनपुरातन-सर्वप्रदेशेभ्योऽनंतभागाधिकः।

प्रागुक्तैकविशेषेणाधिक इत्यर्थः। पूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायां नूतनपुरातनद्रव्यप्रमाणं कियदिति चेत्। पूर्वोक्तपूर्वस्पर्द्धकप्रतिभागद्रव्यमपवर्त्य द्व्यर्द्धगुणहान्या भक्ते नूतनद्रव्यमायाति।

संदृष्टिः [व १ / १— ओ ओ ∂ ३/२] पूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणामपकर्षणभागहारेण भक्त्वा रूपोनाऽपकर्षणभागहारेण गुणितायां पुरातनद्रव्यमागच्छति।

संदृष्टिः [व ओ - १ / ओ][1]

अनयोः[2] समूहादपूर्वस्पर्द्धकचरमवर्गणाप्रदेशकलापो विशेषाधिकः कथं जातेति चेत्। पूर्वापूर्वस्पर्द्धकेषु अव्यवधानेन सर्वा अपि वर्गणा विशेषहीना भूत्वा एकगोपुच्छाकारेण येन कारणेन तिष्ठंति तेन कारणेन विशेषाधिको जातः। पूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायां पुरातनप्रदेशाः यतः कारणादसंख्यातबहुभागा जातास्ततः कारणात्तत्र नूतनप्रदेशसमूहोऽपूर्वस्पर्द्धकचरमवर्गणायां निक्षिप्तसर्वद्रव्यादसंख्यातगुणहीनो जातः। अत्र गुणकारप्रमाणं साधिकापकर्षणभागहारो भवति [3]उभयद्रव्यसंनिकर्षं कृत्वा गुणकारप्रमाणं ज्ञातव्यं। पूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायां निक्षिप्तद्रव्यात् पूर्वस्पर्द्धकद्वितीयवर्गणायां विशेषहीनं ददाति। आदिवर्गणाया नूतनद्रव्ये द्विगुणगुणहान्या भक्ते विशेष आयाति। संदृष्टिः [व / १— ओ १६ ओ ∂ ३/२] पूर्वस्पर्द्धकस्य शेषसर्ववर्गणास्वपि विशेषहीनं ददाति। अर्द्धार्द्धक्रमेण वर्तते। अत्र शिष्याणां विशेषनिर्णयार्थं हीनं ददाति। विशेष-प्रमाणं प्रथमगुणहानि-पर्यंतमिदं प्रागुक्तमेव द्वितीयादिगुणहानिषु द्रव्यनिक्षेपः क्षेत्ररूपेणोच्यते पूर्वस्पर्द्धकस्थितसर्वद्रव्यं समीकृतं द्व्यर्द्धगुणहान्यायाममादिवर्गणाविष्कंभं क्षेत्रं भवति। १२ 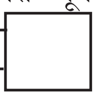 इदं क्षेत्रं विष्कंभेनऽपकर्षणभागहारमात्रफालीः कृत्वा एकफाल्यपनयने शेषक्षेत्रमेवं १२ 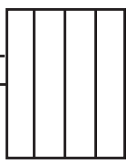 जायते। अपनीतफालीरियं १२ 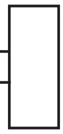 इमां फालिमायामेनाऽ-पूर्वस्पर्द्धकानयनार्थं गुणहानि प्रविष्ट द्विभागाधिक भागहारेण [ओ ∂ ३/२] अनेन [∂ ओ -१ / ओ] खंडयेत् खंडिते सति तत्रैकैकखंडायामः [∂ / ओ]

---

१. पुरातने व ओ-१ अस्मिन्नूतनेषु साधिके कृतेऽपि एवं च [ओ-। ५ / ओ]

२. नूतनपुरातनद्रव्ययोः ३. नूतन द्रव्यं [व ओ ∂ ३/२ / ओ ओ ∂ ३/२]

४. [प्र ८ / ओ ∂] [फ – १ / १२ ल] [इ – व ओ ∂ ३/२]

अपूर्वस्पर्द्धकार्धमात्रा[१] भवति तेषु खंडेष्वपूर्वस्पर्द्धकवर्गणाध्वसंकलनमात्रैर्द्विगुणविशेष[२]-खंडैऽरधिकानि रूपोनापकर्षणभागहारमात्रखंडानि [व ओ-१ / ओ] गृहीत्वा पूर्वक्षेत्रस्याऽधः अविरोधेन संधाने पूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणातोऽपूर्वस्पर्द्धकवर्गणाः अनुक्रमेण विशेषाधिका भवन्ति। पुनरपि साधिकैः रूपोनापकर्षणभागहारमात्रसकलखंडैर्हीनेषु द्विभागाधिकभागहारमात्रखंडेषु [३]एकखंडं स्वीकृत्य विष्कंभेन रूपाधिकद्व्यर्द्धभागहारमात्र[४]खंडानि कृत्वा तत्रैकविकलखंडं गृहीत्वा अपूर्वस्पर्द्धकसंबद्धसविशेषरूपोनापकर्षणभागहारमात्रसकलखंडानां पार्श्वे संस्थाप्य शेषविकल-खंडानि पूर्वस्पर्द्धकानां पार्श्वे परिपाट्या स्थापयेत्। एवं शेषाशेषसकलखंडानि पूर्वापूर्वस्पर्द्धकेषु अविरोधेन निक्षिपेत्। एवं सति पूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायां निक्षिप्तसर्वविकलखंडानि मिलित्वा एकसकलखंडप्रमाणं न भवेत्। कथमिति चेत्। अपकर्षणभागहारमात्रविकलखंडैर्हीनत्वात्। अपूर्व-स्पर्द्धकचरमवर्गणायां पुनः पूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायां निक्षिप्तकिंचिन्न्यूनैकसकलखंडं रूपोनापकर्षण-भागहारमात्रसकलखंडानि च संति ततः कारणादपूर्वस्पर्द्धकचरमवर्गणायां निक्षिप्तप्रदेश-प्रचयात्पूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायां निक्षिप्तप्रदेशसमूहः असंख्यातगुणहीनः। अनेन भेदेन गुणकारः साधिकापकर्षणभागहारमात्र इति सिद्धम्। एवमश्वकर्णकरणकारकस्य प्रथमक्षणे पूर्वस्पर्धकेषु दीयमाने क्रमः उक्तः इदानीं तत्र दृश्यमानक्रमः कथमस्तीति चेत्। तदश्वकर्णकरणकारकप्रथमक्षणे अपूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायां यः प्रदेशसमूहः दृश्यमानतया स्थितः सःबहुकः। ततः पूर्वस्पर्द्धकादि-वर्गणायां दृश्यत्वेन स्थितः प्रदेशसमूहो विशेषहीनः। हीनप्रमाणं कियदिति चेत् आदिवर्गणाया-असंख्यातैकभागः।कुतः।यतः कारणात्प्रदेशगुणहानिस्पर्धकशलाकानामसंख्यातैकभागमात्रायाम-मतिक्रम्य पूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणा तिष्ठति तस्मात्कारणात्ततः पूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणा एकप्रदेश-गुणहानिवर्गणाशलाकानामसंख्यातैकभागमात्रविशेषैर्हीना प्रागुक्तादिवर्गणां द्विगुणगुणहान्या भक्त्वा विशेषमानयेत्[५] अत्र दीयमानक्रमेणैवाऽव्यवधानदृश्यमानक्रमो ज्ञातव्यो भवतीति तं अनुक्त्वा व्यवधानेन दृश्यमानक्रमः उक्तः। एवं लोभसंज्वलनापेक्षया पूर्वापूर्वस्पर्धकेषु दीयमान-दृश्यमानक्रमो निरूपितः। लोभसंज्वलनवत् मायासंज्वलनस्य मानसंज्वलनस्य क्रोधसंज्वलनस्य च

---

१. प्र १ फ - [व ८ / ओ ओ a] इ [ओ a ३/२] २. सैकपदाहतपददलचयहत ४

३. एकखंडप्रमाण [८ / □ ओ a / a / ओ] ४. प्र - [१— / ओ a ३/२] फ - [व / ओ] इ १ [लब्ध व / १— / ओ ओ a ३/२]

५. द्वाभ्यां संगुण्येत्ये तत् प्रागुक्तमत्र ज्ञातव्यं

दीयमानदृश्यमाननिषेकस्वरूपनिरूपणं कर्त्तव्यम्।

इदानीमुदयनिरूपणोच्यते। अपूर्वस्पर्धककरणप्रथमसमये अपूर्वस्पर्धकानि कनिचिदुद्यंति कानिचिन्नोद्यंति। कथमिति चेत् तदा अपूर्वस्पर्धकस्वरूपेण परिणममानानुभागसत्त्वकर्मण: सकाशादसंख्यातैकभागप्रदेशानपकृष्योदीरणां कुर्वत: उदयनिषेकमध्ये सर्वमपूर्वस्पर्धक-स्वरूपेणानुभागसत्त्वमस्तीति सर्वापूर्वस्पर्धकानि उदीर्णानि तदा उदयनिषेकादुपरितननिषेक-समानशक्तियुक्तापूर्वस्पर्धकान्युदयं नायांतीति। अपूर्वस्पर्धकान्यनुदीर्णानि भवन्ति पूर्वस्पर्धकेष्वपि आदित: आरभ्यानंतैकभाग: उदीर्ण: अनुदीर्णश्च भवति कथमिति चेत्। प्रथमस्थितौ पूर्वस्थितद्विस्थानानुभागसंबंधिस्पर्धकेषु लतासमानानुभागानंतैकभाग: उदयतीति। पूर्वस्पर्धकानंतैकभाग: उदीर्णो भवति। उदयनिषेकादुपरिस्थितनिषेकसंबंधिसमान-शक्तियुक्तलतानंतैकभागोनोदयतीति पूर्वस्पर्धकानंतैकभाग अनुदीर्णो भवति। उपरितनलतानंतबहुभागस्पर्धकानि तात्कालिकदारुसमानस्पर्धकानि चोदयं नायान्ति। संज्वलनचतुष्टयस्यानुभागबंध: कथमस्तीति चेत्। यानि स्पर्धकानि इदानीं बंधस्वरूपेण परिणतानि तानि द्वितीयस्थितौ सत्त्वरूपेण स्थितापूर्वस्पर्धकप्रथमस्पर्धकमादिं कृत्वा यावल्लतासमान-पूर्वस्पर्धकानामनंतैकभागस्तावत् परिणमन्ति पूर्वमपि संज्वलनानुभागबंध: लतासमान-पूर्वस्पर्द्धकानामनंतैकभागस्वरूपेण परिणत:। इदानीमात्मन: परिणाममाहात्म्येन पूर्वशक्तितोऽति-शयेनानंतगुणहीनतयाऽपूर्वस्पर्धकानां प्रथमस्पर्धकमादिं कृत्वा चरमस्पर्धकपर्यंत पूर्वस्पर्धकेषु लतासमानस्पर्धकानामनंतैकभागपर्यंतं चोदीयमानानुभागादनंतगुणहीनतया परिणमन्नास्ते इति तात्पर्यम्। प्राक्तनप्ररूपणा कस्य संबंधिनीति चेत्। अयमतिक्रांतसर्वप्ररूपणाप्रबंध: प्रथमसमया-श्वकर्णकरणकारकसंबंधी भवति। क्रोधादिक्रमेण प्रथमसमयस्य पूर्वापूर्वस्पर्धकरचना संदृष्टि:

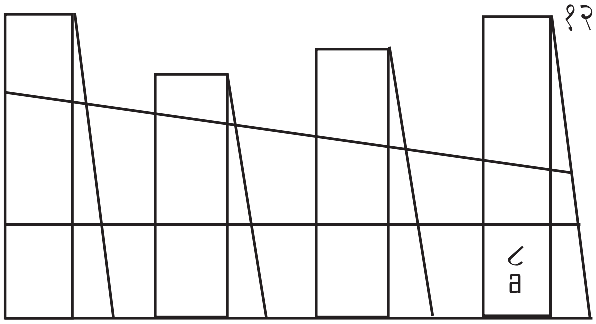

इत उपरि द्वितीयसमयेऽपि स्थितिकांडकं तदेव अनुभागकांडकमपि तदेव स्थितिबंधोपि स एव अप्रशस्तकर्मानुभागबंध: द्वितीयसमयेऽनंतगुणहीन: प्रतिसमयं विशुद्धिपरिणामस्यानंतगुणत्वात् द्वितीयसमये गुणश्रेणिरसंख्यातगुणिता अनंतगुणविशुद्धिवशेन प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण

प्रदेशानपकृष्य गुणश्रेणिनिक्षेपस्य करणात्। प्रथमसमये यान्यपूर्वस्पर्धकानि कृतानि द्वितीयसमये तानि अन्यानि च तेभ्योऽसंख्यातगुणहीनानि करोति। प्रथमसमये एकप्रदेशगुणहानिस्पर्धक-शलाकाऽसंख्यातैकभागप्रमाणानि यानि अपूर्वस्पर्धकानि कृतानि तेषां पार्श्वे पुनः कानिचित्समानशक्तिकानि कुर्वन्नेव तेभ्योऽधोऽपूर्वशक्तियुक्तानि तेभ्योऽसंख्यातगुणहीन-प्रमाणानि पुनः कानिचिदपूर्वस्पर्धकानि द्वितीयसमये करोतीत्यर्थः।

द्वितीये समये तेषु स्पर्धकेषु दीयमानप्रदेशसमूहस्य श्रेणिनिरूपणं क्रियते। तद्यथा - द्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानापूर्वस्पर्धकादि- वर्गणायां प्रदेशं बहुकं निक्षिपति द्वितीयवर्गणायां विशेषहीनं निक्षिपति। एवमव्यवधानेन विशेषहीनतया द्वितीयसमयकृता-पूर्वस्पर्द्धकचरमवर्ग्गणापर्यंते निक्षिपति तच्चरमवर्गणायां निक्षिप्तद्रव्यात्प्रथमसमयकृता-पूर्वस्पर्धकादिवर्गणायां प्रदेशमसंख्यातगुणहीनं निक्षिपति। अत्राऽसंख्यातगुणहीनत्वस्य कारणं गुणकारप्रमाणं च प्रथमसमयोक्तक्रमेण विचारणीयम्। ततो द्वितीयवर्गणायां विशेषहीनं निक्षिपति। ततः प्रभृत्यव्यवधानेन सर्ववर्गणास्वपि विशेषहीनतया निक्षिपति। पूर्वस्पर्धकादिवर्गणायां विशेषहीनतया निक्षिपति। उपरितनवर्गणास्वपि विशेषहीनतया निक्षिपति। पूर्वापूर्वस्पर्धकप्रतिबद्धद्रव्यस्यासंख्यातैकभागमपकर्षणभागहारेण विभज्य गृहीत्वा द्वितीयसमय-निर्वर्त्यमानापूर्वस्पर्धकेष्वपकृष्टद्रव्याऽसंख्यातैकभागं निक्षिप्य शेषबहुभागान् द्वितीयसमय-निर्वर्त्यमानापूर्वस्पर्धकेषु प्रथमसमयनिर्वर्तितापूर्वस्पर्धकेषु पूर्वस्पर्धकेषु चैकगोपुच्छाकारेण निक्षिपतीत्यादि विशेषान् प्रथमसमयोक्तक्रमं ज्ञात्वाऽविरोधेन योजयेत्। एवं दीयमानश्रेणिक्रमः उक्तः। इदानीमत्र दृश्यमानश्रेणिक्रमः कथमस्तीति चेत्। द्वितीयसमये अपूर्वस्पर्धकादिवर्गणायां बहुतरं दृश्यमानमस्ति शेषसर्ववर्गणास्वपि अव्यवधानेन विशेषहीनतया दृश्यं भवति। एवं द्वितीय-समयनिरूपणं समाप्तम्।

द्वितीयसमयस्य पूर्वापूवस्पर्धकरचनासंदृष्टिः

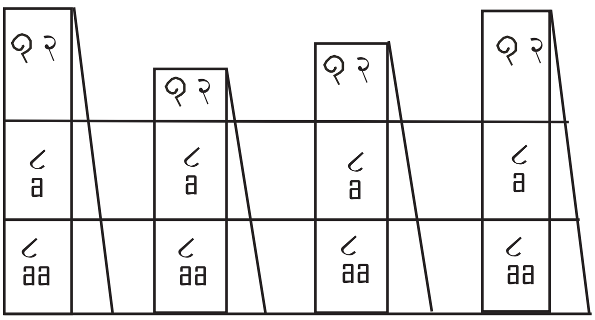

तृतीयसमयक्रमः कथमस्तीति चेत्। तृतीयसमयेप्ययमेव क्रमः किंतु द्वितीयसमयाप-

कृष्टद्रव्यात् असंख्यातगुणं द्रव्यमपकृष्यापूर्वस्पर्द्धकानि कुर्वंस्तेषु समानशक्तिकानि कानिचित् करोति। तथा तेभ्योऽधः अपूर्वशक्तिकानि कानिचित् करोति तेषां प्रमाणं द्वितीयसमयकृतापूर्वस्पर्धकाणामसंख्यातैकभागमात्रं भवति तत्र दीयमानप्रदेशसमूहस्य श्रेणिनिरूपणं क्रियते। तृतीयसमये निर्वर्त्यमानापूर्वस्पर्धकादिवर्गणायां बहुप्रदेशपिंडं दत्त्वा द्वितीयादिवर्गणासु तृतीयसमयनिर्वर्त्यमानाऽपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणापर्यंतासु विशेषहीनक्रमेण ददाति तच्चरमवर्गणायां निक्षिप्तप्रदेशसमूहात् द्वितीयसमयकृताऽपूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायां प्रदेशसमूहम-संख्यातगुणहीनं निक्षिपति। इत उपरि सर्ववर्गणास्वपि विशेषहीनं निक्षिपति। अत्राशेषविशेषनिरूपणं प्रथमसमयवत्। एवं दीयमानक्रम उक्तः।। दृश्यमानक्रमः कथमस्तीति चेत् यः प्रदेशसमूहः दृश्यमानतया स्थितः सः आदिवर्गणायां बहुकः। तत उपर्यव्यवधानेन सर्ववर्गणासु विशेषहीनो भवति।। एवं तृतीयसमयनिरूपणं समाप्तम्।

तृतीयसमयस्य पूर्वापूर्वस्पर्द्धकरचना संदृष्टिः-

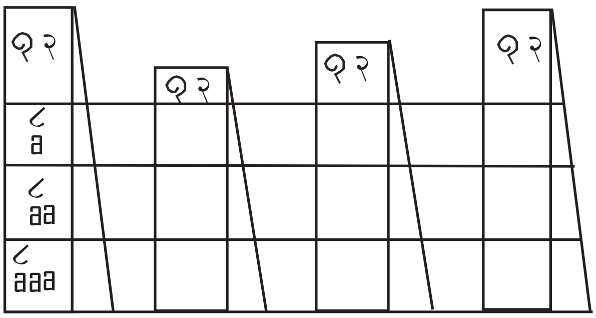

तृतीयसमये यः क्रमः उक्तः स एव शेषसमयेष्वपि वर्तते यावत्प्रथमानुभागकांडकघात-कालस्तावत्। स्थितिकांडकं तदेव। अनुभागकांडकं तदेव। स्थितिबंधः स एव। अनुभागसत्वं तदेव अप्रशस्तकर्मानुभागबंधोऽनंतगुणहीनः। गुणश्रेणिरसंख्यातगुणा। प्रतिसमयमसंख्यातगुण-द्रव्यमपकृष्याऽनंतरातीतसमयनिर्वर्तितस्पर्द्धकानामधः असंख्यातैकभागमात्राण्यपूर्वस्पर्द्धकानि करोति। तेषु दीयमान-दृश्यमान-प्रदेश-श्रेणि-प्ररूपणं तथैव भेदाभावात्। प्रथमानुभाग-कांडकघातानंतरसमयेऽनुभागसत्त्वस्य [1]नानात्वमुच्यते। तद्यथा लोभेऽनुभागसत्त्वं स्तोकं। संदृष्टिः २। मायायामनुभागसत्त्वमनंतगुणं ८। मानेऽनुभागसत्त्वमनंतगुणं ।३२। क्रोधेऽनुभागसत्त्वमनंत-गुणं।१२८। घातिताऽवशेषानुभागसत्त्वमपूर्वस्पर्द्धकानुभागेन सह अनेनाल्पबहुत्वक्रमेणा-श्वकर्णाकारेण तिष्ठतीत्यर्थः। इत उपरि सर्वस्मिन्नश्वकर्णकरणकालेऽनंतरोक्तानुभाग-सत्त्वाल्पबहुत्वक्रमः अपूर्वस्पर्द्धकविधानादिक्रमश्चाखंडितं प्रवर्तते। प्रथमादिसमयेषु

१. अल्पबहुत्वं

कृतापूर्वस्पर्द्धकप्रमाणविषयनिश्चयोत्पादननिमित्तमल्पबहुत्वमुच्यते। अश्वकर्णकरणस्य प्रथमसमये यान्यपूर्वस्पर्द्धकानि कृतानि तानि बहूनि [९/ओa] द्वितीयसमये यानि नूतनापूर्वस्पर्द्धकानि कृतानि तान्यसंख्यातगुणहीनानि [९/ओaa] तृतीयसमये यानि नूतनापूर्वस्पर्द्धकानि कृतानि तान्यसंख्यात-गुणहीनानि [९/ओaaa] एवं प्रतिसमयं यान्यपूर्वस्पर्द्धकानि कृतानि तान्यसंख्यातगुणहीनानि भवन्ति। भागहारप्रमाणं तु पल्यप्रथमवर्गमूलासंख्यातैकभागो भवति। अपूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणाऽ - विभागप्रतिच्छेदाः केन स्वरूपेण तिष्ठंतीति चेत्। अश्वकर्णकरणकालस्य चरमसमये लोभापूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायामविभागप्रतिच्छेदसमूहः स्तोकः। द्वितीयापूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायाम-विभागप्रतिच्छेदसमूहो द्विगुणः। तृतीयापूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायामविभागप्रतिच्छेदसमूहस्त्रिगुणः। एवं प्रथमापूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदसमूहात् यतरस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभाग-प्रतिच्छेदसमूहो विवक्षितः ततरस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदसमूहस्तावत्स्पर्द्धक-शलाकाभिर्गुणितः। कुतः। सर्वत्राप्यनुभागविकल्पेषु जघन्यस्पर्द्धकादिवर्गणातः द्वितायादि-स्पर्द्धकादिवर्गणासु द्विगुणत्रिगुणादिक्रमस्य सद्भावात्। वर्गणास्थितैकैकपरमाणुगताविभाग-प्रतिच्छेदापेक्षया इदमल्पबहुत्वमंगीकर्त्तव्यं। सर्वपरमाणुगताविभागप्रतिच्छेदापेक्षया तु अस्याल्पबहुत्वस्य संभवाभावात्। कुतः। तस्मिन्पक्षे किंचिन्न्यूनद्विगुणादिक्रमेण स्पर्द्धकं प्रतिवर्गणास्तिष्ठंतीति पूर्वमेव यतिवृषभाचार्यैः प्रतिपादनात्। अश्वकर्णकरणकालस्य चरमसमये अंत्यदीपकस्वरूपेणऽविभागप्रतिच्छेदाल्पबहुत्वं लोभस्य यथा निरूपितं तथैव मायायाः मानस्य क्रोधस्य च वक्तव्यम्। क्रोधादिसंज्वलनसंबंधिपूर्वापूर्वस्पर्द्धकप्रमाणविषयनिश्चयोत्पादन-निमित्तमश्वकर्णकरणप्रथमानुभागकांडकघाते जातेऽनुभागाल्पबहुत्वमुच्यते। तद्यथा। क्रोधापूर्व-स्पर्द्धकानि सर्वतः स्तोकानि। मानापूर्वस्पर्द्धकानि विशेषाधिकानि। मायापूर्वस्पर्द्धकानि विशेषाधिकानि। लोभापूर्वस्पर्द्धकानि विशेषाधिकानि। तत्रार्थयुक्तिं प्रथमसमयकृतापूर्वस्पर्द्धका नामुक्तवद् गृह्णीयात्। लोभापूर्वस्पर्द्धकेभ्यः एकानुभागप्रदेशगुणहानिस्पर्द्धकानि असंख्यातगुणानि। कुतः। प्रदेशगुणहानिमध्यस्पर्द्धकानामसंख्यातैकभागमात्राणि अपूर्वस्पर्द्धकानि भवन्तीति एकप्रदेशगुणहानिमध्यस्पर्द्धकानि तेभ्योऽसंख्यातगुणानि जातानि। अपूर्वस्पर्द्धकप्रमाणानयनार्थ-मेकप्रदेशगुणहानिप्रविष्टभागहार एवात्र[१] गुणकारो भवति। तेभ्यः एकस्पर्द्धकवर्गणा अनंतगुणाः। पूर्वस्पर्द्धकेष्वपूर्वस्पर्द्धकेषु वा अभव्यराशितोऽनंतगुणिताः सिद्धराशितोऽनंतैकभागमात्र्यः एक-स्पर्द्धकवर्गणा एकगुणहानिस्पर्द्धकेभ्योऽनंतगुणा भवन्तीति तात्पर्यम्। ताभ्यः क्रोधापूर्वस्पर्द्धक वर्गणा अनंतगुणा भवन्ति। कुतः। प्राक्तनास्ता एकस्पर्द्धकवर्गणा एतासु सर्वापूर्वस्पर्द्धकवर्गणाः।

---

१. प्रदेशगुणहानिप्रमाणानयनार्थं

ततः कारणादनंतगुणा जाताः। एकप्रदेशगुणहानिस्पर्द्धकानामसंख्यातैकभागोऽत्र गुणकारप्रमाणं भवति। ताभ्यो मानापूर्वस्पर्द्धकवर्गणा विशेषाधिकाः। ताभ्यो मायापूर्वस्पर्द्धकानां वर्गणाः विशेषाधिकाः। ताभ्यो लोभापूर्वस्पर्द्धकानां वर्गणा विशेषाधिकाः। कुतः। अपूर्वस्पर्द्धकानां विशेषाधिकत्वे तद्वर्गणानां विशेषाधिकत्वस्य सुघटत्वात्। लोभापूर्वस्पर्द्धकवर्गणाभ्यः [१ ४ / ओ a] तत्पूर्वस्पर्द्धकान्यनंतगुणानि। तथाहि। एकप्रदेशगुणहानिस्पर्धकानामसंख्यातैकभागं संस्थाप्यैक-स्पर्द्धकवर्गणाशलाकाभिर्गुणने लोभापूर्वस्पर्द्धकानां सर्ववर्गणाः जायन्ते। एकप्रदेशगुणहानि-स्पर्द्धकानि संस्थाप्य नानागुणहानिशलाकाभिर्गुणने लोभपूर्वस्पर्द्धकान्यायांति अयं राशिः पूर्वराशितोऽनंतगुणो भवति। एकस्पर्द्धकवर्गणाभ्यो नानागुणहानिशलाकानामनंतगुणत्वात्। ताभ्यस्तद्वर्गणा अनंतगुणाः एकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकानामेव गुणकारत्वात्। ताभ्यो मायायाः पूर्वस्पर्द्धकानि अनंतगुणानि। कुतः। प्रथमानुभागकांडकघातानंतरं लोभादिसंज्वलनस्पर्द्धकानाम-श्वकर्णाकारेणानंतगुणत्वात्। तेभ्यस्तद्वर्गणा अनंतगुणाः। ताभ्यो मानपूर्वस्पर्द्धकान्यनंतगुणानि। तेभ्यस्तद्वर्गणा अनंतगुणाः। ताभ्यः क्रोधपूर्वस्पर्द्धकान्यनंतगुणानि। तेभ्यस्तद्वर्गणा अनंतगुणाः। इत्यनंतरनिरूपितक्रमेणाऽनुभागकांडकसहस्रेषु गतेषु प्रतिसमयमपूर्वस्पर्द्धकेषु क्रियमाणेषु संख्यातसहस्रस्थितिकांडकयोग्यमंतर्मुहूर्तप्रमाणमश्वकर्णकरणं समाप्नोति। तच्चरमसमये स्थितिबंधप्रमाणं कियदस्तीति चेत् चतुःसंज्वलनामष्टवर्षमात्रः स्थितिबंधो भवति। पूर्वमश्वकर्णकरणप्रथमसमये अंतर्मुहूर्तोनषोडशवर्षप्रमाणेन स्थितः स्थितिबंधः प्रतिस्थितिबंधा-पसरणमेकैकांतर्मुहूर्तेन हीनो भवन्नागत्य इदानीमष्टवर्षमात्रो जात इत्यर्थः। शेषज्ञानावरणादीनां स्थितिबंधः संख्यातवर्षसहस्रमात्रो भवति। पूर्वमपि संख्यातवर्षसहस्रप्रमाणेन स्थितः स्थितिबंधः क्रमेण संख्यातगुणहान्या संख्यातसहस्रमात्रस्थितिबंधापसरणविकल्पेषु हीनो भूत्वा इदानीमपि संख्यातवर्षसहस्रप्रमाणालापं नातिक्रमतीत्यर्थः। तस्मिन्नवसरे स्थितिसत्त्वं कियदस्तीति चेत्। नामगोत्रवेदनीयानामसंख्यातवर्षप्रमाणं भवति। पूर्वमप्यसंख्यातवर्षप्रमाणेन स्थितं स्थितिसत्त्वं। संख्यातसहस्रस्थितिकांडकघातेषु असंख्यातगुणहान्या हीयमानं इदानीमपि तदालापं न त्यजतीत्यर्थः। चतुर्घातिनां स्थितिसत्त्वं संख्यातवर्षसहस्रप्रमाणं अत्रापि तात्पर्यं पूर्ववत्ज्ञातव्यम्। एवमपूर्वस्पर्द्धकक्रियासहचरितोऽश्वकर्णकरणकालः समाप्तः। अपूर्वस्पर्द्धकक्रियासहचरिता-श्वकर्णक्रियात्र विश्रांता। अग्रे कृष्टिसहचरिताश्वकर्णक्रियाऽस्तीत्यत्र यतिवृषभाचार्यतात्पर्यम्। एवमपूर्वस्पर्धकाधिकारः समाप्तः।

इतोऽग्रे कृष्टिकरणाधिकारः प्रारभ्यते। अपूर्वस्पर्धककरणकालपरिसमाप्त्यनंतरक्षणमादिं कृत्वा कृष्टिकरणकालः प्रवर्तते। कृष्टेर्लक्षणं किमिति चेत्। यतः कारणात्कर्म कृशं क्रियते ततः

कारणात् कृष्टिरित्यन्वर्थनाम। बादरसूक्ष्मकृष्टिकरणभेदेन कृष्टिकरणं द्विविधम्। तत्र इष्टका-पंक्त्याकारेण स्थितचतु:संज्वलनानां पूर्वापूर्वस्पर्द्धकानामनुभागसत्त्वमनंतगुणहीनत्वेन स्थूल-स्थूल खंडानि करोति तत् बादरकृष्टिकरणं नाम। तानि स्थूलखंडानि पूर्वशक्तितो अनंतगुणहीनानि कृत्वा सूक्ष्म-सूक्ष्मखंडरूपेण करोति तत् सूक्ष्मकृष्टिकरणं नाम। तत्र तावद्बादरकृष्ट्यधिकार उच्यते। बादरकृष्टिकरणकालप्रमाणं कियदिति चेत्। षण्णोकषायान् संज्वलनक्रोधे निक्षिप्य विनाशानंतरं या अंतर्मुहूर्तप्रमाणा क्रोधवेदकाद्धा तां संख्यातेन भक्त्वा एकभागमपनीय शेषबहुभागान् समानतया त्रिभि: संभेद्य संस्थाप्याऽपनीतैकभागं संख्यातेन भक्त्वा एकभागमपनीय बहुभागान् प्रथमत्रिभागे दद्यात्। शेषैकभागं पुन: संख्यातेन भक्त्वा एकभागमपनीय बहुभागान् द्वितीयत्रिभागे दद्यात्। शेषैकभागं तृतीयभागे दद्यात्। एवं दत्ते प्रथमत्रिभाग: साधिक:। द्वितीयत्रिभाग: किंचिन्न्यून: तृतीयत्रिभाग: पुन:किंचिन्न्यून: संदृष्टि:

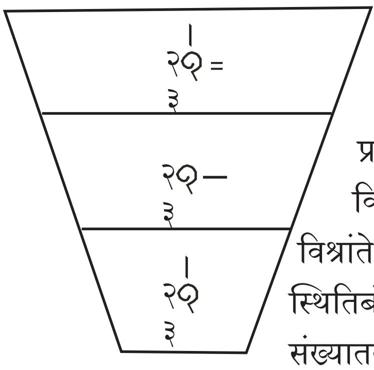

एतेषु प्रथमत्रिभाग: अश्वकर्णकरणाद्धेति प्रागुक्त:। द्वितीय - त्रिभाग: चतु:संज्वलनानां कृष्टिकरणाद्धा स्वरूपेण इदानीं प्रवर्तते। तृतीयत्रिभाग: क्रोधकृष्टिवेदकाद्धा स्वरूपेणाऽग्रे प्रवर्त्स्यति। एवंविधकृष्टिकारकाद्धा प्रथमसमये क्रियमाणव्यापार-विशेष: क: इति चेत्। अश्वकर्णकरणाद्धा चरमसमये पूर्वस्थितिबंधे विश्रांते तदुपरितनसमये संज्वलनचतुष्टयस्यांतर्मुहूर्तोनाष्टवर्षमात्रोऽन्य: स्थितिबंध:। शेषकर्मणां अपूर्वस्थितिबंधात् संख्यातगुणहीनोपि संख्यातसहस्रवर्षमात्रो भवति। संज्वलनचतुष्टयस्यान्यदनुभागकांडक-मस्मिन् समये अश्वकर्णाकारेणैव लांछितं जातम्। घातिचतुष्टयस्यान्यत्स्थितिकांडकं संख्यातवर्ष-सहस्रप्रमाणं। कुत:। संख्यातवर्षसहस्र-प्रमाण-सत्त्वस्य संख्यातबहुभागमात्रत्वात्। नामगोत्र-वेदनीयानां स्थितिकांडकमसंख्यातबहुभागमात्रं। कुत:। असंख्यातवर्षप्रमाणस्थितिसत्त्वस्या-संख्यातबहुभागमात्रत्वात्। संज्वलनचतुष्टयस्य कृष्टिकरणक्रम: कथमस्तीति चेत्। प्रथमसमय-कृष्टिकारक: क्रोधादिचतुष्टयस्य पूर्वापूर्वस्पर्द्धकेभ्य: स्वस्वद्रव्यमपकर्षणभागहारेण विभज्य स्वीकृत्य यथाक्रमं क्रोधादिचतुष्टयस्य कृष्टी: करोति। क्रोधादिसंज्वलनानां क्रियमाणकृष्टीनां प्रमाणं कियदिति चेत्। क्रोधादि-भेदेन चतुर्धा। संग्रहभेदेन द्वादशधा। अनंतरोक्तसर्वकृष्टय: अवयवकृष्टीराश्रित्य गणनापेक्षया एकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकानामनंतैकभागमात्र्यो भवन्ति। प्रत्येकं सिद्धराश्यनंतैकभागमात्रपरमाणुसमूहनिष्पन्ना: एकैकाऽविभागप्रतिच्छेदक्रमेण वर्द्धितेष्टकारचना समानाकारा एकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाभ्योऽनंतगुणा: एकस्पर्द्धकस्थितानुभागपंक्तय: एक-

स्पर्द्धकवर्गणाशलाकाः इत्युच्यंते संदृष्टिः।४। सर्वाः कृष्टयः आसामनंतैकभागमात्र्यो भवन्तीति तात्पर्यम्। संदृष्टिः। ४ ख प्रथमसमये कृतकृष्टीनां तीव्रमंदशक्तिविचारायेदमल्पबहुत्वमुच्यते। तद्यथा। अत्र क्रोधादि संज्वलनकृष्टिः पृथक् पृथक् त्रित्रिविकल्पैः स्थापयेत्। एवं स्थापिते सति एकैककषायस्य त्रित्रिसंग्रहकृष्टयो भूत्वा सर्वा अपि द्वादशधा भवन्ति। तत्र सर्वासामधो लोभस्य प्रथमसंग्रहकृष्टिमेव दत्ते। तस्यामंतरकृष्टयोऽनंताः। तत उपरितना सा लोभस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टि-र्भवति। तस्यामंतरकृष्टयः अनंताः तत उपरितना सा लोभस्य तृतीयसंग्रहकृष्टिरेव भवति। तस्यामंतरकृष्टयः अनंताः। एवं शेषनवकृष्टीनामपि स्वरूपनिरूपणं कर्त्तव्यम्। यावत् क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकृष्टिस्तावत्। एतासु द्वादशसंग्रहकृष्टिषु लोभस्य प्रथमसंग्रहस्य जघन्यकृष्टिः स्तोका। सर्वमंदानुभागसहितेत्यर्थः। ततो द्वितीयकृष्टिरनंतगुणा गुणकारः अभव्यराशितोऽनंतगुणः सिद्ध-राश्यनंतैकभागो भवति। अग्रेऽपि गुणकारप्रमाणमिदमेव। ततस्तृतीयकृष्टिरनंतगुणा। ततश्चतुर्थकृष्टिरनंतगुणा। एवमनंतगुणितक्रमेण व्याप्तिर्ज्ञातव्या। यावत् लोभस्य प्रथमसंग्रहकृष्टे-श्चरमकृष्टिस्तावत्। ततो लोभस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टेर्जघन्यकृष्टिरनंतगुणा अत्र गुणकारप्रमाणं कियदिति चेत्। अयं परस्थानगुणकारः द्वादशसंग्रहकृष्टीनां स्वस्थानगुणकारेभ्योऽनंतगुणः। लोभस्य प्रथमसंग्रहकृष्टेश्चरमकृष्टिं संस्थाप्य येन गुणकारेण गुणितायां लोभस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टे-र्जघन्यकृष्टिरुत्पद्यते स गुणकारः परस्थानगुणकार एव। स च द्वादशसंग्रहकृष्टीनामपि अवयव-कृष्टिप्रतिबद्धसर्वस्वस्थानगुणकारेभ्योऽनंतगुण इति तात्पर्यम्। एवं गुणकारभेदात्संग्रहकृष्टिभेदो जातः। इत उपरि लोभस्य प्रथमसंग्रहकृष्टौ यः क्रमः उक्तः तस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टावपि स एव क्रमो भवति। द्वितीयसंग्रहस्य चरमकृष्टेरुपरि लोभस्य तृतीयसंग्रहकृष्टौ परस्थानगुणकारो लोभस्य प्रथम-द्वितीयसंग्रहकृष्ट्योः[१] परस्थानगुणकारवत्। कुतः। स्वस्थानगुणकारात् अनंतगुण इत्यनेन भेदा-भावात्। वस्तुवृत्त्या दृश्यमाने प्राक्तनपरस्थानगुणकारात् अयं परस्थानगुणकारोऽनंतगुणः इत्यग्रे वक्ष्यमाणाल्पबहुत्वबलेन ज्ञातव्यः। इत उपरि लोभस्य तृतीयसंग्रहकृष्टेः स्वस्थानाल्पबहुत्वमपि प्राग्वन्नयेत्। लोभस्य एतास्तिस्रः संग्रहकृष्टयः एवंविधस्वरूपा भवन्ति। एवमुक्तार्थस्योपसंहारः कृतः। लोभतृतीयसंग्रहकृष्टेर्या चरमकृष्टिस्ततो मायाप्रथमसंग्रहकृष्टेर्जघन्यकृष्टिरनंतगुणा। अयं पर स्थानगुणकारः सर्वस्वस्थानगुणकारादनंतगुणः इति ज्ञातव्यः। लोभस्य तिस्रः संग्रहकृष्टयः यादृशा-ल्पबहुत्वयुताः मायायास्तिस्रः संग्रहकृष्टयोपि तादृशाल्पबहुत्वयुता इति ज्ञातव्यम्। मायाया -स्तृतीय संग्रहकृष्टेश्चरमकृष्टितो मानस्य प्रथमसंग्रहकृष्टेर्जघन्यकृष्टिरनंतगुणा। अत्रापि परस्थान-गुणकार-प्रमाणं प्राग्वद्ग्राह्यं मायायास्तिस्रः संग्रहकृष्टयो यादृशाल्पबहुत्वयुता मानस्यापि

१. द्वयोः प्रथमद्वितीयसंग्रहकृष्ट्योर्मध्ये यः प्रथमपरस्थानगुणकारोक्तस्तद्वत् प्रथमपरस्थान-गुणकारवत् द्वितीयपरस्थानगुणकार इति तात्पर्यं

तिस्रः संग्रहकृष्टयस्तादृशाल्पबहुत्वयुता इति ज्ञातव्यम्। मानस्य या तृतीयसंग्रहकृष्टि-स्तस्याश्चरमकृष्टितः क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकृष्टेर्जघन्यकृष्टिरनंतगुणा। अत्रापि परस्थानगुणकार-प्रमाणं प्राग्वग्द्राह्यम्। मानस्य तिस्रः संग्रहकृष्टयः यादृशाल्पबहुत्वयुताः क्रोधस्य तिस्रः संग्रहकृष्टयोपि तादृशाल्पबहुत्वयुता इति ज्ञातव्यम्। इत उपरि या क्रोधस्य तृतीया संग्रहकृष्टिः तस्याश्चरमकृष्टितो लोभापूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणा अनंतगुणा। कुतः। कृष्टिगतानुभागतः स्पर्द्धकगता-नुभागस्यानंतगुणत्वात्। एवं द्वादशसंग्रहकृष्टीनां तदवयवकृष्टीनां च तीव्रमंदत्वापेक्षयाऽल्प-बहुत्वमुक्तम्। इत उपरि अमुमेवार्थं स्पष्टयन् कृष्टीनामंतराल्पबहुत्वमुच्यते। तद्यथा द्वादशसंग्रह कृष्टीनां मध्ये एकैकस्यां संग्रहकृष्टौ अंतरकृष्टयः सिद्धराश्यनंतैकभागमात्र्यः सन्ति। तासामंतरा-ण्यप्यनंतानि भवंति। रूपोनांतरकृष्टिप्रमाणानि भवंतीत्यर्थः। अत्रांतरोत्पत्ति-निमित्तं प्रवृत्त-गुणकाराः अंतराणीत्युच्यंते।[1] कारणे कार्योचारात् गुणकारस्वरूपाणां तेषामंतराणां कृष्ट्यंतरा-णीति नाम। अधस्तनसंग्रहकृष्ट्युपरितनसंग्रहकृष्ट्योर्मध्यस्थितांतराणि एकादश भवन्ति। तेषां संग्रहकृष्ट्यंतराणीति नाम। स्वस्थानगुणकाराणां कृष्ट्यंतरमिति नाम। परस्थान-गुणकाराणां संग्रहकृष्ट्यंतरमिति नामेत्यर्थः। प्रागुक्तसंज्ञया निश्चितानां कृष्ट्यंतराणां संग्रहकृष्ट्यंतराणां चाल्पबहुत्वमुच्यते। तद्यथा लोभस्य प्रथमसंग्रहकृष्टेर्जघन्यकृष्ट्यंतरं स्तोकं भवति। जघन्यकृष्टिं संस्थाप्य येन गुणकारेण गुणितायां द्वितीयकृष्टिर्जायते सः कृष्टिगुणकारेषु सर्वजघन्यगुणकार इत्यर्थः। ततो द्वितीयकृष्ट्यंतरमनंतगुणं। द्वितीयकृष्टिं संस्थाप्य येन गुणकारेण गुणितायां तृतीयकृष्टिः समुत्पद्यते स गुणकारः पूर्वगुणकारादनंतगुण इत्यर्थः। ततस्तृतीयकृष्ट्यंतरमनंतगुणम्। तृतीयकृष्टिं संस्थाप्य येन गुणकारेण गुणितायां चतुर्थकृष्टिः संभवति स गुणकारः पूर्वगुणकारादनंतगुण इत्यर्थः। अनेन क्रमेण गत्वा लोभप्रथमसंग्रहस्य द्विचरमकृष्टिं संस्थाप्य येन गुणकारेण गुणितायां चरमकृष्टिरुत्पद्यते स चरमगुणकारो द्विचरमगुणकारादनंतगुणः। तत उपरि परस्थानगुणकारं[2] त्यक्त्वा लोभद्वितीयसंग्रहकृष्टेः[3] प्रथमकृष्टिं संस्थाप्य येन गुणकारेण गुणितायां तस्या द्वितीयकृष्टिरायाति स प्रथमगुणकारः चरमगुणकारादनंतगुणः। अनेनोक्तक्रमेणाव्यवधानेन गत्वा द्वादशसंग्रहकृष्टिगुणकारा यथाक्रममनंतगुणस्वरूपेण गच्छन्ति यावत्क्रोधतृतीयसंग्रहस्य चरमगुणकारस्तावत्। तत उपरि क्रोधतृतीयसंग्रहस्य परस्थानगुणकारं त्यक्त्वा व्याघुट्यागत्य

---

१. गुणकाराः कारणं अंतराणि कार्यं

२. कोर्थः। परस्थानगुणकारो तीव्र महान् कुतः क्रोधतृतीयसंग्रहकृष्टिचरमगुणकारादप्यनंतगुणितः। लोभचरमकृष्टिगुणकारादनंतगुणा वाऽस्याल्पत्वमेवायाति अत एवात्र स त्यजनीयः इत्यर्थः।

३. लोभसंग्रहचरमकृष्टिः परस्थानगुणकारेण गुणिता सती लोभद्वितीयसंग्रहप्रथमकृष्टिरुत्पद्यते।

क्रोधतृतीयसंग्रहकृष्टेश्चरमकृष्टिगुणकारात् लोभप्रथमसंग्रहस्य परस्थानगुणकारोऽनंतगुणस्ततो लोभद्वितीयसंग्रहस्य परस्थानगुणकारोऽनंतगुणः। अनेन क्रमेण परस्थानगुणकाराः परस्परमनंतगुणाः संतो गच्छन्ति। गत्वा पश्चात्क्रोधद्वितीयसंग्रहस्य परस्थानगुणकाराल्लोभापूर्वस्पर्धकादिवर्गणागुणकारोऽनंतगुणः। क्रोधचरमकृष्टिं संस्थाप्य येन गुणकारेण गुणितायां लोभापूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणा भवति स चरम-परस्थान-गुणकारोऽनंतगुणः इत्यर्थः। इति पूर्वोक्त-कृष्ट्यल्पबहुत्वस्य साधकगुणकाराल्पबहुत्वमुक्तम्। **तद्गुणकाराल्पबहुत्वयोरंकसंदृष्टिः -**

लो	या	मा	क्रो	
५१२ २५६ १२८	६५ = ४ ६५ = २ ६५ = १	६५ = २०४८ ६५ = १०२४ ६५ = ५१२	६५ = ६५ = १६ ६५ = ६५ = ८ ६५ = ६५ = ४	४२=६५५३६ लोभापूर्वस्पर्द्धकादि वर्गणानुभागः
४२ = ६४	४२ = ५१२	४२ = ४०९६	४२ = ३२७६८। त = सं	
६४ ३२ १६	३२७६८ १६३८४ ८१९२	६५ = २५६ ६५ = १२८ ६५ = ६४	६५ = ६५ = २ ६५ = ६५ = १ ६५ = ३२८६८	
४२ = ३२	४२ = २५६	४२ = २०४८	४२ = १६३८४। बि = सं	
८ ४ २	४०९६ २०४८ १०२४	६५ = ३२ ६५ = १६ ६५ = ८	६५ = १६३८४ ६५ = ८१९२ ६५ = ४०९६ =	
ज	४२ = १२८	४२ = १०२४	४२ = ८१९२। प्र = सं	

इदानीं कृष्टिकारकस्य प्रथमसमये कृष्टिषु दीयमानप्रदेशसमूहस्य श्रेणिनिरूपणं क्रियते। तद्यथा इतः पूर्वमपूर्वस्पर्द्धककरणकाले संज्वलनचतुष्टयद्रव्यं यथा विभज्य दत्तं[1] तं क्रमं ज्ञात्वा विभक्ते यथाक्रमेण लोभमायामानक्रोधानां पूर्वापूर्वस्पर्द्धकप्रतिबद्धद्रव्यसंदृष्टिरित्यस्ति।

व १२ ८	व १२- ८	व १२ ≡ ८	व १२ = ५ ८	एभ्योऽपकृष्टद्रव्याण्येतानि।

व १२ ८ ओ	व १२- ८ ओ	व १२ ≡ ८ ओ	व १२ = ५ ८ ओ	एतानि पृथक्पृथक् पल्यासंख्यातभागमात्र-खंडानि कृत्वा एकैकं खंडं पूर्वापूर्वस्पर्द्धकेषु

---

१. [स ३ १२ / ७ ख ख ३ / २] व [स ३ १२ / ७] = लब्ध व १२ =

ददातीति पृथक् संस्थाप्य शेषबहुखंडेषु गुणकारभागहाररूपेण स्थित-पल्यासंख्यातभागावपवर्त्य क्रोधद्रव्यादपकृष्टनोकषायद्रव्यं पृथक् संस्थापयेत् तस्य संदृष्टिः [व १२- / ओ २] शेषद्रव्याणि पृथक्-पृथक् पल्यासंख्यातभागमात्रेण भक्त्वा एकैकखंडं पृथक् संस्थाप्य बहुखंडानि समानतया त्रीन् त्रीन् पुंजान् कृत्वा अपनीतैकैकं खंडं पृथक्-पृथक् पल्यासंख्यातभागेन भक्त्वा एकैकखंडं पृथक् संस्थाप्य बहुखंडेषु स्वस्वप्रथमपुंजे निक्षिप्तेषु स्वस्वप्रथमसंग्रहकृष्टिद्रव्याणि साधिकानि भवन्ति। पुनरपनीतैकैकखंडं पृथक्-पृथक् पल्यासंख्यातेन भक्त्वा एकैकखंडमपनीय बहुखंडेषु स्व-स्वद्वितीयपुंजे दत्तेषु स्व-स्वद्वितीयसंग्रहकृष्टिद्रव्याणि किंचिन्न्यूनानि भवन्ति। अपनीतैकैकखंडे स्व-स्वतृतीयपुंजे निक्षिप्ते स्व-स्वतृतीयसंग्रहकृष्टिद्रव्याणि किंचिन्न्यूनानि भवन्ति। प्रागपनीतनोकषायद्रव्यं क्रोधतृतीयपुंजे द्वादशभिः समच्छेदं कृत्वा निक्षिप्ते क्रोधतृतीयसंग्रहकृष्टिद्रव्यं सर्वसंग्रहकृष्टिद्रव्येभ्यस्त्रयोदशगुणं भवति। एवं द्वादशसंग्रहकृष्टीनां द्रव्यविभागः कृतः। तेषां लोभमायामानक्रोधक्रमेण संदृष्टिः

व १२ = ओ २४	व १२ = ओ २४	व १२ = ओ २४	व १२ = ।१३ ओ २४
व १२– ओ २४	व १२– ओ २४	व १२– ओ २४	व १२– ओ २४
व १।२ ओ २४	व १।२ ओ २४	व १।२ ओ २४	व १।२ ओ २४
लोभ	या	मा	क्रो

सांप्रतं कृष्ट्यायामविभागः क्रियते। चतुःसंज्वलनानां सर्वकृष्टिप्रमाणमेकस्पर्द्धकवर्गणा-शलाकानामनंतैकभागः संदृष्टिः [४ / ख] तमावल्यसंख्यातभागमात्रखंडानि कृत्वा एकखंडमपनीय बहुखंडानि समानतया द्विभागीकृत्वापनीतैकखंडे प्रथमभागे दत्ते कषायद्रव्येण क्रियमाणकृष्ट्यायामः साधिक द्विभागो भवति। किंचिन्न्यूनद्विभागमात्रो द्वितीयभागो नोकषायप्रतिबद्धद्रव्येण क्रियमाणकृष्टिप्रमाणं भवति। तयोः संदृष्टि [।४ / ख २] [४ – / ख २] अत्र कषायप्रतिबद्धकृष्टीरावल्यसंख्यातैकभागेन भक्त्वा एकभागमपनीय शेष बहुभागान् चतुर्भिर्भक्त्वा चतुर्षु स्थानेषु स्थापयेत्। अपनीतैकभागमावल्यसंख्यातैकभागेन भक्त्वा एकभागमपनीय बहुभागान् प्रथमस्थाने दत्त्वा लोभसंज्वलनप्रतिबद्धकृष्ट्यायामः साधिकचतुर्भागो भवति। पुनरपनीतैकभागमावल्यसंख्यातेन भक्त्वा एकभागमपनीय बहुभागान् द्वितीयस्थाने दत्त्वा मायासंज्वलनप्रतिबद्धकृष्ट्यायामः किंचिन्न्यूनचतुर्भागमात्रो भवति। पुनरपनी-

तैकभागमावल्यसंख्यातेन भक्त्वा एकखंडमपनीय बहुखंडानि तृतीयस्थाने दत्त्वा क्रोधसंज्वलन-प्रतिबद्धकृष्ट्यायामः किंचिन्न्यूनचतुर्भागो भवति। पूर्वमपनीतैकभागे चतुर्थस्थाने दत्त्वा मानसंज्वलनकृष्ट्यायामः किंचिन्न्यूनचतुर्भागमात्रो भवति। प्रागुक्तनोकषायप्रतिबद्धकृष्टयः क्रोधसंज्वलनप्रतिबद्धकृष्टिभिः समच्छेदेन मिलिताः सत्यः लोभसंज्वलनकृष्ट्यायामात् किंचिन्न्यूनपंचगुणायामा भवन्ति। लोभमायामानक्रोधकृष्ट्यायामानां यथाक्रमं संदृष्टिः -

। ४ ख ८	४ — ख ८	४ ≡ ख ८	४ = ५ ख ८

अत्र क्रोधसंज्वलनकृष्टिभ्यो नोकषायप्रतिबद्धकृष्टीरपनीय शेषकृष्टीः पृथक्-पृथक् पल्यासंख्यातभागेन भक्त्वा एकैकं भागं पृथक्-पृथक् संस्थाप्य बहुभागान् त्रिभिस्त्रिभिर्भक्त्वा त्रिषु स्थानेषु संस्थाप्यापनीतैकैकभागं पल्यासंख्यातेन भक्त्वा एकैकखंडं पृथक् संस्थाप्य बहुखंडानि स्वस्वप्रथमपुंजानि निक्षिप्य स्व - स्वप्रथमसंग्रहकृष्ट्यायामः साधिको भवति। पुनरपनीतैकैकखंडं पल्यासंख्यातेन भक्त्वा एकैकभागमपनीय बहुभागेषु स्व-स्वद्वितीयपुंजे दत्तेषु स्व-स्वद्वितीयसंग्रहकृष्ट्यायामः किंचिन्न्यूनो भवति। अपनीतैकेकभागे स्व-स्वतृतीयपुंजे दत्ते स्व-स्वतृतीयसंग्रहकृष्ट्यायामः किंचिन्न्यूनो भवति। प्रागपनीतनोकषायप्रतिबद्धकृष्टीः [नो ४— / ख २] क्रोधतृतीयत्रिभागद्वादशभिः समच्छेदी कृत्य निक्षिप्तासु क्रोधतृतीयसंग्रहकृष्ट्यायामः सर्वकृष्ट्यायामात्त्रयोदशगुणो भवति। एवं तेषां द्वादशसंग्रहकृष्ट्यायामानां लोभमायामानक्रोधक्रमेण संदृष्टीः। अत्र

४ = ख २४	४ = ख २४	४ = ख २४	४ = १३ ख २४
४ — ख २४	४ — ख २४	४ — ख २४	४ — ख २४
। ४ ख २४	। ४ ख २४	। ४ ख २४	। ४ ख २४

पदाप्तमखिलं धनं भवति मध्यमे कानि तद्विभक्तपदवर्जितद्विगुणहानिभक्तं च तत्। चयो द्विगुणहानिसंगुणित एष आदिप्रमा- विशेषपरिहाणितो गमनिका ततो वर्तते इत्येतत्सूत्रेष्ट्या सर्वकृष्टि [४ / ख] संयोगेनापकृष्टसर्वद्रव्ये [व १२ / ओ] भक्ते मध्यमकृष्टौ देयद्रव्यप्रमाणमायाति। तच्च रूपोनसर्वकृष्ट्यायामार्द्धेन हीनद्विगुणगुणहान्या भक्तं सत् एकविशेषप्रमाणं भवति संदृष्टिः:

व १२ ओ ४ ख	१⌒ १६ — ४ ख २

एष द्विगुणगुणहान्या गुणितं सन् यावान् लभ्यते तावन्मात्रप्रदेशसमूहं लोभ-प्रथमसंग्रहस्य जघन्यकृष्टौ ददाति। तच्चाग्रतनकृष्टिद्रव्येभ्यो महत् संदृष्टिः

व १२।१६ ओ ४।१६ — ख	१⌒ ४ ख २

द्वितीयकृष्टौ विशेषहीनं ददाति। एवमव्यवधानेन तृतीयादिकृष्टिषु विशेषहीनद्रव्यं निक्षिपति। संदृष्टिः

व १२।१६—१ ओ ४।१६ — ख	१⌒ ४ ख २

एकैक यावत्सर्वसंग्रहकृष्टीनामंतरकृष्टीरतीत्य क्रोधतृतीयसंग्रहस्य चरमकृष्टि

प्रदेशसमूहस्तावत्। अत्रांतरानंतरे दृश्यमाने अनंतभागहानिर्भवति। एवमव्यवधानेन दीयमान-प्रदेशश्रेणिनिरूपणं निरूपितम्। व्यवधानेन दृश्यमाने लोभप्रथमसंग्रहस्य जघन्यकृष्टिप्रदेशसमूहात्क्रोधतृतीयसंग्रहस्य चरमकृष्टिप्रदेशसमूहो रूपोनसर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषैर्हीनः। तस्य संदृष्टीः

व १२।१६—१/४	
ओ ४।१६	१/४ ख
ख	ख २

अत्र[1] अनंतभागहानिरेव न च संख्यातासंख्यातभागहानिः। कुतः वर्गणा-गणनया दृश्यमाने सकलकृष्ट्यायामस्यैकस्पर्द्धकवर्गणाऽनंतैकभागत्वात्।

प्रथमसमयकृतद्वादशसंग्रहकृष्टिरचनासंदृष्टिः -

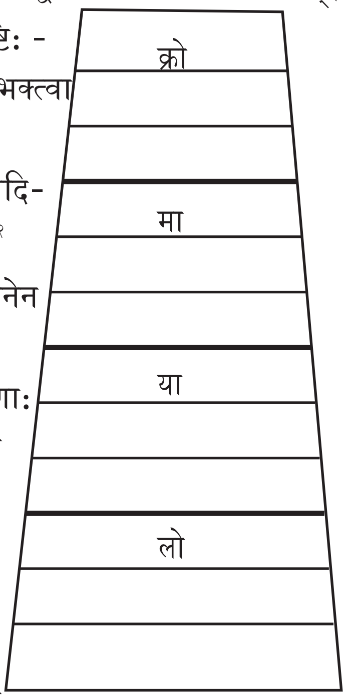

पुनः प्राक् पृथग्निक्षिप्त पूर्वापूर्वस्पर्द्धकप्रतिबद्धद्रव्यं द्व्यर्द्धगुणहान्या भक्त्वा अपूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायां दत्तं तत् क्रोधतृतीयसंग्रहचरमकृष्टौ दत्तद्रव्यादनंतगुणहीनं भवति। कुतः। क्रोधचरमकृष्टौ अपूर्वस्पर्द्धकादि-वर्गणाः अनंताः ददाति अपूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायां तु आदिवर्गणाया[2] असंख्यातैकभागं ददातीति कारणात्। द्वितीयादिवर्गणासु अव्यवधानेन विशेषहीनं द्रव्यं निक्षिपति। यावत्पूर्वस्पर्द्धकचरमवर्गणा तावत्। अत्र कृष्टिस्पर्द्धकयोर्विशेषलक्षणं किमिति चेत्। स्थानं प्रतिअनंतगुणाः कृष्टयःस्पर्द्धकानि स्थानं प्रति विशेषाधिकानि। एवं कृष्टिकारकस्य प्रथमसमयनिरूपणं समाप्तम्।

संप्रतिद्वितीयसमये क्रियमाणव्यापारः कः इति चेत्। द्वितीयसमये पुनः काश्चिदपूर्वकृष्टीः करोति। तासां प्रमाणं किमिति चेत्। प्रथमसमयनिर्वर्तितकृष्टीनामसंख्यातैकभागमात्रं भवति। ताः कस्मिन्स्थले करोतीति चेत्। एकैकस्याः संग्रहकृष्टेरधः करोति। प्रथमसमयकृतद्वादशसंग्रहकृष्टीः संस्थाप्य अपकर्षणभागहारादसंख्यातगुणितेन भागहारेण पृथक्-पृथग् भक्तासु यल्लब्धं तावन्मात्र-कृष्टीर्द्वादशसंग्रहकृष्टीनां जघन्य-कृष्टिभ्योऽनंतगुणहीनशक्तीर्द्वितीयसमये करोतीति तात्पर्यम्। तस्य संदृष्टिः-

लो	या	मा	क्रो
४ = ख २४ओa	४ = ख २४ओa	४ = ख २४ओa	४ = १३ ख २४ओa
४ — ख २४ओa	४ — ख २४ओa	४ — ख २४ओa	४ — ख २४ ओa
। ४ ख २४ ओa	। ४ ख २४ओa	। ४ ख २४ओa	। ४ ख २४ओa

१. [१२/४/ख] अत्र दो गुणहानेरतीवमहत्वादेकस्पर्द्धकवर्गणानंतैकभागः कृष्ट्यायाम अत एवानंत-भागहानिः २. सत्त्वद्रव्यस्य

आसामधस्तनकृष्टिरिति नाम[१]। अधुना द्वितीयसमये कृष्टिषु दीयमानप्रदेशसमूहस्य श्रेणिनिरूपणं क्रियते। तद्यथा क्रोधमानमायालोभानां पूर्वापूर्वस्पर्द्धकेभ्यः प्रथमसमयापकृष्ट-द्रव्यादसंख्यातगुणं द्रव्यमपकर्षति। तस्य संदृष्टिः

व १२ (with vertical stroke) ओ ८ a	व १२– ओ ८ a	व १२≡ ओ ८ a	व १२=५ ओ ८ a
लो	या	मा	क्रो

एतानि पृथक्-पृथक् पल्यासंख्यातेन भक्त्वा एकभागं पूर्वापूर्वस्पर्द्धकेषु निक्षेपार्थं पृथक् संस्थाप्य शेषबहुभागेषु गुणकारभागहारभूतपल्यासंख्यातावपवर्त्य शेषद्रव्याणि कृष्टिकारकस्य प्रथमसमयोक्तक्रमेण द्वादशसंग्रहकृष्टीनां ज्ञातव्यानि दत्ते सति लोभमायामानक्रोधक्रमेण संदृष्टिः

लोभ	या	मा	क्रो
व १२ = ओ २४ a	व १२ = ओ २४ a	व १२ = ओ २४ a	व १२ = १३ ओ २४ a
व १२– ओ २४ a	व १२– ओ २४ a	व १२– ओ २४ a	व १२– ओ २४ a
व १२ (with vertical stroke) ओ २४ a	व १२ (with vertical stroke) ओ २४ a	व १२ (with vertical stroke) ओ २४ a	व १२ (with vertical stroke) ओ २४ a

अत्र कृष्टिकारकस्य प्रथमसमयविशेषमाद्युत्तरं कृत्वा लोभस्वरूपोनप्रथमसंग्रहकृष्ट्यायामं गच्छं कृत्वा। **'रूपेणोनो-गच्छो दलीकृतः प्रचयताडितो मिश्रः। प्रभवेन पदाभ्यस्तः संकलितं भवति सर्वेषामिति'** सूत्रेण धनमानीय लोभ-संज्वलनप्रथमसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्ध-द्वितीयसमयद्रव्यादपनीय पृथक् संस्थापयेत्। प्रथमसमये विशेषसंदृष्टिः

व १२ ओ ४।१६ – ख	१ (over) ४ ख २

इदं। वि। इति संलिख्य पुनर्लोभस्य प्रथमसंग्रहकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् आदिं कृत्वा एकविशेषमुत्तरं कृत्वा द्वितीयसंग्रहकृष्ट्यायामं गच्छं कृत्वा पूर्वोक्तसूत्रेण धनमानीय लोभद्वितीय-संग्रहकृष्टिप्रतिबद्धद्रव्यादपनीय पृथक् संस्थापयेत्। पुनर्लोभप्रथमद्वितीयसंग्रहकृष्ट्यायाम मात्रविशेषान्

वि ४।२
ख २४

आदिं एकविशेषमुत्तरं लोभतृतीयसंग्रहकृष्ट्यायामं गच्छं च कृत्वा धन-मानीय लोभतृतीयकृष्टिप्रतिबद्धद्रव्यादपनीय पृथक् संस्थापयेत्। पुनरधस्तनसंग्रहत्रयमात्रविशेषान्

वि ४।१३
ख २४

आदिं एकविशेषमुत्तरं मायाप्रथमसंग्रहकृष्ट्यायामं गच्छं कृत्वा धनमानीय माया संज्वलनप्रथमसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धद्वितीयसमयद्रव्याद्गृहीत्वा पृथक् संस्थापयेत्। एवं शेषाष्टसंग्रहकृष्टिष्वपि स्व-स्वाधस्तनसर्वसंग्रहकृष्टिमात्रविशेषान् आदिं प्रथमसमयैक-विशेषमुत्तरं स्व-स्वसंग्रहकृष्ट्यायामं गच्छं च विधाय धनमानीय स्व-स्वसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्ध-द्वितीयसमयद्रव्याद्गृहीत्वा पृथक् संस्थापयेत्।

---

१. अधस्तनकृष्ट्यायाम इति नाम

अपनीतद्रव्याणां संदृष्टिः -

वि ४ १̄ ४ ५ ख २४ ख २४।२	१̄ ४ वि ४।११ ख २४ ख २४।२	१̄ ४ वि ४। १७ ख २४ ख २४।२	१̄ ४ वि ४। ४५५ ख २४ ख २४।२
वि ४ १̄ ४ ३ ख २४ ख २४।२	१̄ ४ वि ४। ९ ख २४ ख २४।२	१̄ ४ वि ४। १५ ख २४ ख २४।२	१̄ ४ वि ४। २१ ख २४ ख २४।२
वि ४ १̄ ४ १ ख २४ ख २४।२	१̄ ४ वि ४। ७ ख २४ ख २४।२	१̄ ४ वि ४। १३ ख २४ ख २४।२	१̄ ४ वि ४। १९ ख २४ ख २४।२
लोभ	या	मा	क्रो

एषामधस्तनशीर्षद्रव्यमिति संज्ञा। एतद्द्रव्यं सर्वमपि मिलितं सत् एकविशेषाद्युत्तररूपोनसकल-कृष्ट्यायामगच्छसंकलनमात्रं भवति। [वि ४   १̄ ४ / ख   ख २] पुनर्लोभप्रथमसंग्रहस्य जघन्यकृष्टौ प्रथमसमय-दत्तद्रव्यं संस्थाप्य[१] प्रागुक्तस्व- स्वाधस्तनकृष्टिभिः संगुण्य स्वस्वसंग्रहकृष्टि-प्रतिबद्धद्वितीयसमयद्रव्यादपनीय पृथक् संस्थापयेत्। अपनीतद्रव्यस्य संदृष्टिः

व १२।४ = ओ ४ ख २४ ओa ख	व १२।४ = ओ ४ ख २४ ओa ख	व १२।४ = ओ ४ ख २४ ओa ख	व १२।४ =१३ ओ ४ ख २४ ओa ख
व १२।४ – ओ ४ ख २४ओa ख	व १२।४ – ओ ४ ख २४ ओa ख	व १२।४ – ओ ४ ख २४ ओa ख	व १२।४ – ओ ४ ख २४ ओa ख
व १२।४ ओ ४ ख २४ ओa ख	व १२।४ ओ ४ ख २४ ओa ख	व १२।४ ओ ४ ख २४ ओa ख	व १२।४ ओ ४ ख २४ ओa ख
लो	या	मा	क्रो

अस्याधस्तनकृष्टिद्रव्यमिति नाम। अस्य सर्वस्यापि मिलितस्य संदृष्टिः [व १२।४।२४ / ओ ४ ख २४ ओ a / ख] पुनः प्रथमसमयद्वितीयसमयकृष्टिप्रतिबद्धसर्वद्रव्यं संयोज्य [व १२ १̄ a / ओ] प्रथमसमयसर्वकृष्ट्यायामादसंख्यातैकभागाधिकद्वितीय-

---

१. प्र १ [फ   व १२।१६   १̄ / ओ ४ १६ - ४ / ख   ख २] इ [४ / ख ओ a २४] अधस्तनकृष्टि

समयनूतनपुरातनकृष्ट्यायामेन भक्त्वा रूपोननूतनपुरातनकृष्ट्यायामार्द्धहीनद्विगुणगुणहान्या च भक्ते उभयद्रव्यविशेषः समायाति। तस्य संदृष्टिः

१—
व १२ ə १०
ओ ↓४ १६-↓४
ख ख २

इमं वि इति कृत्वा आदिं उत्तरं च विधाय क्रोधसंज्वलनतृतीयसंग्रहपूर्वापूर्वकृष्टीर्गच्छं कृत्वा धनमानीय क्रोधसंज्वलनतृतीयसंग्रहप्रतिबद्धद्वितीयसमयद्रव्याद्-गृहीत्वा पृथक् संस्थापयेत्। पुनः रूपाधिकक्रोधतृतीयसंग्रहपूर्वापूर्वकृष्टिमात्रविशेषान्

वि ४ १३
ख २४

आदिं कृत्वा एकविशेषमुत्तरं कृत्वा क्रोधद्वितीयसंग्रहपूर्वापूर्वकृष्टीर्गच्छं कृत्वा धनमानीय क्रोधद्वितीयसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धद्वितीयसमयद्रव्यादपनीय पृथग्न्यस्येत्। पुनः रूपाधिकक्रोधतृतीयद्वितीयसंग्रहकृष्टिमात्रविशेषान् आदिं कृत्वा एकविशेषमुत्तरं कृत्वा क्रोधप्रथमसंग्रहपूर्वापूर्वकृष्टीर्गच्छं कृत्वा धनमानीय क्रोधप्रथमसंग्रहप्रतिबद्धद्वितीयसमयद्रव्याद् स्वीकृत्य पृथग् निक्षिपेत् पुनः रूपाधिकक्रोधसंज्वलनपूर्वापूर्वसंग्रहकृष्टित्रयमात्रविशेषान् आदिं कृत्वा एकविशेषमुत्तरं कृत्वा मानसंज्वलनतृतीयकृष्टेर्नूतनपुरातनकृष्ट्यायामं गच्छं कृत्वा धनमानीय मानसंज्वलनतृतीयसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धद्वितीयसमयद्रव्यादपनीय पृथक् संस्थापयेत्। एवं मानसंज्वलनद्वितीयसंग्रहकृष्टिमादिं कृत्वा शेषाष्टसंग्रहकृष्टीनामपि स्व-स्वाधस्तनरूपाधिकसकल-संग्रहकृष्टिमात्रविशेषान् आदिं कृत्वा एकविशेषमुत्तरं कृत्वा स्व-स्वसंग्रहकृष्ट्यायामं गच्छं कृत्वा धनमानीय स्व-स्वसंग्रहप्रतिबद्धद्वितीयसमयद्रव्यादपनीय पृथक् संस्थापयेत्। अपनीतद्रव्याणां लोभमायामानक्रोधक्रमेण संदृष्टिः

वि ↓४ ↓४ ४३ ख २४ ख २४।२	वि ↓४ ↓४ ३७ ख २४ ख २४।२	वि ↓४ ↓४ ३१ ख २४ ख २४।२	वि ↓४ ↓४ १६९ ख २४ ख २४।२
वि ↓४ ↓४ ४५ ख २४ ख २४।२	वि ↓४ ↓४ ३९ ख २४ ख २४।२	वि ↓४ ↓४ ३३ ख २४ ख २४।२	वि ↓४ ↓४ २७ ख २४ ख २४।२
वि ↓४ ↓४ ४७ ख २४ ख २४।२	वि ↓४ ↓४ ४१ ख २४ ख २४।२	वि ↓४ ↓४ ३५ ख २४ ख २४।२	वि ↓४ ↓४ २९ ख २४ ख २४।२
लो	या	मा	क्रो

एषामुभयद्रव्यविशेष इति संज्ञा। एते सर्वेपि मिलिताः संतः एकोभयद्रव्यविशेषाद्युत्तरनूतनपुरातन-सकलकृष्ट्यायामगच्छसंकलनमात्रा भवन्ति। संदृष्टिः

१—
वि ↓४ ↓४
ख ख २

एतदुक्तत्रिविधद्रव्यहीनस्व-स्वसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धद्वितीयसमयद्रव्यं संस्थाप्य स्व-स्वनूतनपुरातनकृष्ट्यायामेन

भक्ते एककृष्टिप्रतिबद्धमध्यमखंडप्रमाणमायाति। एवं वा त्रिविधद्रव्यहीनद्वितीयमयसर्वद्रव्यसमूहं संस्थाप्य द्वादशसंग्रहकृष्टीनां नूतनपुरातनसकलकृष्ट्यायामसमूहेन भक्तेपि तल्लब्धमेवायाति तत्संस्थाप्य स्व-स्वनूतनपुरातनकृष्ट्यायामेन गुणिते स्व-स्वकृष्टिप्रतिबद्धमध्यमखंड-द्रव्याण्यायांति। तेषां संदृष्टिः

व १२४ ओ ४ ख २४ a ≡ ख	व १२४ ओ ४ ख २४ a ≡ ख	व १२४ ओ ४ ख २४ a ≡ ख	व १२४ १३ ओ ४ ख २४ a ≡ ख
व १२४ ओ ४ ख २४ a ≡ ख	व १२४ ओ ४ ख २४ a ≡ ख	व १२४ ओ ४ ख २४ a ≡ ख	व १२४ ओ ४ ख २४ a ≡ ख
व १२४ ओ ४ ख २४ a ≡ ख	व १२४ ओ ४ ख २४ a ≡ ख	व १२४ ओ ४ ख २४ a ≡ ख	व १२४ ओ ४ ख २४ a ≡ ख
लो	या	मा	क्रो

एषां मध्यमखंडद्रव्यमिति संज्ञा। एतानि सर्वाण्यपि मिलित्वा एवं (व १२ ४ / ओ ४ ख / a≡ ख) एवमुक्तानि अधस्तनशीर्षाधस्तनकृष्टिमध्यमखंडोभयद्रव्यविशेषसंज्ञितानि चतुःप्रकारद्रव्याणि क्रमेण संस्थाप्य कृष्टिकारकस्य द्वितीयसमयद्रव्यदीयमानक्रम इतः परमुच्यते।

लोभजघन्यकृष्टौ बहुद्रव्यं दत्त्वा अधस्तनशीर्षद्रव्यं विना अधस्तनकृष्टिद्रव्यादेककृष्टिद्रव्यं मध्यमखंडद्रव्यादेकखंडद्रव्यं उभयद्रव्यविशेषेभ्यः सर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा लोभप्रथमसंग्रहकृष्टेरधःक्रियमाणनूतनकृष्टिजघन्यकृष्टिस्वरूपेण ददातीति यतिवृषभाचार्यतात्पर्यम्। द्वितीयकृष्टौ अनंतभागरूपविशेषहीनं ददाति। अधस्तनकृष्टिद्रव्यादेककृष्टिद्रव्यं मध्यमखंड-द्रव्यादेकखंडद्रव्यं उभयद्रव्यविशेषेभ्यो रूपोनसकलकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च द्वितीयकृष्टिस्वरूपेण ददातीत्यर्थः। एवं यावत् अपूर्वकृष्टीनां चरमकृष्टिस्तावदनंतभागहीनं ददाति। अधस्तनकृष्टिमध्यमखंडानि अवस्थितानि कृत्वा तृतीयकृष्टिमादिं कृत्वा एकैकोभयद्रव्य-विशेषहीनक्रमेण ददद्गच्छति द्वितीयसमये निर्वर्तमानापूर्वकृष्टिचरमकृष्टिपर्यंतमित्यर्थः। अत्र लोभस्य प्रथमसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धाधस्तनकृष्टिद्रव्यं समाप्तम्।

ततः कृष्टिकारकस्य प्रथमसमयकृतकृष्टीनां ज़घन्यकृष्टावसंख्यातभागहीनं निक्षिपति। मध्यमखंडेभ्य एकखंडद्रव्यमुभयद्रव्यविशेषेभ्योऽतीतकृष्ट्यायामहीनसर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च

स्वीकृत्य प्रथमसमयकृतलोभसंज्वलनप्रथमसंग्रहकृष्टेर्जघन्यकृष्टिस्वरूपेण निक्षिपतीत्यर्थः। असंख्यातभागहीनं कथं जातमिति चेत् प्रथमसमये कृष्टिषु दत्तप्रदेशसमूहाद् द्वितीयसमये कृष्टिषु देयप्रदेशपिंडो यतः कारणादसंख्यातगुणस्ततः कारणात्प्रथमसमयकृतजघन्यकृष्टौ दत्तप्रदेशसमूहाद् द्वितीयसमयकृतापूर्वकृष्टिचरमकृष्टिदत्तप्रदेशपिंडोऽसंख्यातगुणो भवति पुनर्द्वितीयसमयकृतापूर्व-कृष्टिचरमकृष्टिदत्तद्रव्यादेकोभयद्रव्यविशेषहीनं तावदेव द्रव्यप्रथमसमयकृतजघन्यकृष्टेरुपरि पतति चेत् द्वितीयसमयकृतापूर्वकृष्टिचरमकृष्टिदत्तप्रदेशकलापादिदमसंख्यातभागाधिकं जायते प्राक्तनेनात्र स्थितद्रव्येणाधिकत्वात्। तच्च न संमतं कुतः। पूर्वाचार्याः सर्वत्रापि दीयमानदृश्यमानद्रव्ययोरेक-गोपुच्छाकारेणैवाऽवस्थानमिच्छन्ति। ततः कारणात् चरमापूर्वकृष्टिदत्तद्रव्यस्यासंख्यातैकभाग-मात्रपूर्वस्थितद्रव्येण तदनंतैकभागमात्रोभयद्रव्यविशेषेण च हीनं पतति। ततः कारणात् अत्र दीयमानप्रदेशसमूहमसंख्यातैकभागेन विशेषेण च हीनं ददातीति निश्चेतव्यं। अग्रेपि यत्र-यत्रापूर्वकृष्टिचरमात् पूर्वकृष्टिजघन्यकृष्टिप्रदेशनिक्षेपोऽसंख्यातभागहीन इति कथयति तत्र तत्रेयमेव युक्तिर्वक्तव्या। ततो द्वितीयकृष्टावनंतभागहीनं ददाति। अधस्तनशीर्षद्रव्यविशेषेभ्य एकविशेषं मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योऽतीतकृष्ट्यायामहीनसर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य प्रथमसमयकृतद्वितीयकृष्टिस्वरूपेण निक्षिपतीत्यर्थः। तदनंतराधस्तनकृष्टिदत्तप्रदेश-समूहादयं द्वितीयकृष्टिदत्तप्रदेशसमूह कियता हीन इति चेत्। प्रथमसमय[1]विशेषोनोभयद्रव्य-विशेषमात्रेण हीयते। तत्तृतीयकृष्टावधस्तनशीर्षद्रव्यस्य द्वौ विशेषौ मध्यमखंडेभ्य एकखंड-मुभयद्रव्यविशेषेभ्योऽतीतकृष्ट्यायामहीनसर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य निक्षिपति। चतुर्थकृष्टौ अधस्तनशीर्षद्रव्याद्विशेषत्रयं मध्यमखंडेभ्य एकं खंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योऽतीत-कृष्ट्यायामहीनसकलकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य निक्षिपति। एवमधस्तनशीर्षद्रव्यादतीत-पूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योऽतीतकृष्ट्यायामहीनसर्व-कृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य लोभप्रथमसंग्रहकृष्टेः पंचमकृष्टेः प्रभृति अव्यवधानेनानंतभाग-हीनं निक्षिपन् गच्छति यावत् लोभप्रथमसंग्रहकृष्टेश्चरमकृष्टिस्तावत्। अत्रानंतराधस्तनकृष्टि-दत्तप्रदेशसमूहात्तच्चरमकृष्टिदत्तप्रदेशसमूहः प्रथमसमयविशेषोनोभयद्रव्यविशेषमात्रेण हीनो भवतीति ज्ञातव्यम्[2]। अत्र लोभसंज्वलनप्रथमसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धद्वितीयसमयचतुःप्रकारद्रव्याणि समाप्तानि। प्रथमसंग्रहकृष्टेश्चरमकृष्टिदत्तप्रदेशसमूहात्प्रथमसमयकृतलोभद्वितीयसंग्रहकृष्टेरधो निर्वर्त्यमानाधस्तनकृष्टिजघन्यकृष्टिदत्तप्रदेशसमूहोऽसंख्यातभागाधिको भवति। लोभसंज्वलन-द्वितीयसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धानि द्वितीयसमयस्याधस्तनकृष्ट्यधस्तनशीर्षमध्यमखंडोभयद्रव्यविशेष-

---

१. अधस्तनशीर्षविशेषो राशेर्धनं २. अधस्तनशीर्षविशेषा उभयद्रव्यविशेषे हीयंते

नामानि चत्वारि द्रव्याणि क्रमेण संस्थाप्य तेष्वधस्तनशीर्षद्रव्यं विनाऽधस्तनकृष्टिद्रव्येभ्य एककृष्टिद्रव्यं मध्यमखंडद्रव्यादेकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीतकृष्ट्यायामहीनद्वितीयसमयसर्व-कृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य द्वितीयसंग्रहकृष्टेरधः निर्वर्त्यमानापूर्वकृष्टिप्रथमकृष्टिस्वरूपेण निक्षिपतीतितात्पर्यम्। अत्रासंख्यातभागाधिकत्वे युक्तिः प्राग्वद्वक्तव्या। किंतु प्रथमसंग्रह[१] कृष्टेर्या चरमकृष्टिस्तस्यां दृश्यमानतया स्थितप्रदेशसमूहादिदानीं[२] दीयमानप्रदेशपिंडोऽसंख्यातगुणो भवति। ततः कारणादेकोभयद्रव्यविशेषहीनतच्चरमे दृश्यमानप्रदेशमात्राधिकतया अपूर्वकृष्टीनां प्रथमकृष्टौ प्रदेशपिंडःपतति। अनेन प्रकारेण द्रव्यनिक्षेपाकरणपक्षे कृष्टिष्वेकगोपुच्छस्याभावो जायते। ततः परं अनंतभागहीनं निक्षिपति। यावदपूर्वकृष्टीनां चरमकृष्टिस्तावत्। पूर्वोक्तक्रमेणाधस्तनकृष्टिद्रव्यादेककृष्टिद्रव्यं मध्यमखंडेभ्य एकखंडं उभयद्रव्यविशेषेभ्योतीत-नूतनपुरातनकृष्ट्यायामहीनद्वितीयसमयसर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य लोभद्वितीयसंग्रह-कृष्टेरधो निर्वर्त्यमानापूर्वकृष्टीनां द्वितीयकृष्टिमादिं कृत्वा चरमकृष्टिपर्यंतं निक्षिपन् यातीत्यर्थः। सर्वापूर्वकृष्टिष्वनंतभागहीनं। कुतः। एकोभयद्रव्यविशेषमात्रेण हीयते इत्यर्थो ग्राह्यः। अत्राधस्तनकृष्टिद्रव्यं समाप्तम्। ततः प्रथमसमयनिर्वर्तितद्वितीयसंग्रहकृष्टिजघन्यकृष्टावसंख्यात-भागहीनं ददाति। अधस्तनशीर्षद्रव्यादतीतसर्वपूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीतपूर्वापूर्वकृष्ट्यायामहीनद्वितीयसमयसर्वकृष्ट्यायाममात्र विशेषांश्च स्वीकृत्य प्रथमसमयनिर्वर्तितकृष्टिजघन्यकृष्ट्याकारेण ददातीत्यर्थः। अत्र हीयमानासंख्यातैकभागस्य प्रमाणं कियदिति चेत्। एकोभयद्रव्यविशेषाधिकद्वितीयसंग्रहजघन्यपूर्वकृष्टिमात्रं भवति। इतः परमनंतभागहीनं यावत् द्वितीयसंग्रहकृष्टेश्चरमकृष्टिस्तावत्। अधस्तनशीर्षद्रव्यादतीत-सर्वपूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् मध्यमखंडेभ्यः एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योऽतीतनूतन-पुरातनकृष्ट्यायामन्यूनद्वितीयसमयसर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य प्रथमसमयकृतकृष्टीनां द्वितीयकृष्टेः प्रभृति निक्षिपन् गच्छति। द्वितीयसंग्रहकृष्टिचरमकृष्टिपर्यंतमित्यर्थः। सर्वपूर्वकृष्टिष्वनंतभागहीनं कथमिति चेत्। प्रथमसमयविशेषन्यूनैकोभयद्रव्यविशेषेण हीनं भवतीत्ययमर्थो ग्राह्यः। अत्र लोभद्वितीयसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धद्वितीयसमयचतुःप्रकारद्रव्यं समाप्तम्।

इत उपरि लोभद्वितीयसंग्रहकृष्टौ पूर्वं निषेकनिरूपणं यथा कृतं तथैव लोभतृतीयसंग्रहकृष्टावपि कर्तव्यम्। तृतीयसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धचतुर्विधद्रव्याणि क्रमेण संस्थाप्य द्वितीयसंग्रहकृष्ट्युक्तक्रमेण द्रव्यं निक्षेपणीयमित्यर्थः। किंतु अधस्तनशीषद्रव्यविशेषेभ्य उभयद्रव्यविशेषेभ्यश्च कृष्ट्यायामप्रमाणं ज्ञात्वा गृहीतव्यम्। अत्र तृतीयसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धं द्वितीय-

---

१. प्रथमसमयकृत २. प्रथमसमयकृत प्रथमसंग्रहचरमकृष्टौ ३. द्वितीयसमये दत्तरहितदृश्यमित्यर्थः

समयस्य चतुर्विधद्रव्यं समाप्तम्। ततः परं लोभतृतीयसंग्रहकृष्टिचरमकृष्टितो द्वितीयसमय-निर्वर्त्यमाना मायायाः या जघन्यकृष्टिः तस्यां प्रदेशसमूहमसंख्यातभागाधिकं निक्षिपति। मायासंज्वलनप्रथमसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धचतुर्विधद्रव्याणि क्रमेण संस्थाप्यऽधस्तनशीर्षद्रव्यं त्यक्त्वाऽधस्तनकृष्टिद्रव्यादेककृष्टिद्रव्यं मध्यमखंडद्रव्यादेकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योऽतीतनूतन-पुरातनकृष्ट्यायामन्यूनद्वितीयसमयसर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा मायासंज्वलनप्रथम-संग्रहकृष्टेरधो निर्वर्त्यमानापूर्वकृष्टीनां जघन्यकृष्टौ निक्षिपतीत्यर्थः। अत्राधिकप्रमाणं कियदिति चेत् उभयद्रव्यविशेषहीनलोभतृतीयसंग्रहकृष्टिचरमपूर्वकृष्टिमात्रं भवति। इत उपरि अनंतभागहीनं यावदपूर्वचरमकृष्टिस्तावत्। अधस्तनकृष्टिद्रव्यादेककृष्टिद्रव्यं मध्यमखंडद्रव्यादेकखंडमुभयद्रव्य-विशेषेभ्योऽतीतनूतनपुरातनकृष्ट्यायामन्यूनद्वितीयसमयसर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा द्वितीयापूर्वकृष्टिमादिं कृत्वा इदानीं निर्वर्त्यमानापूर्वकृष्टिचरमकृष्टिपर्यंतं निक्षिपन् गच्छतीत्यर्थः। इत उपरि क्रोधतृतीयसंग्रहचरमकृष्टिपर्यंतं पूर्वोक्तक्रमेण दीयमानव्याप्तिं नयेत्।

द्वितीयसमये अनेन क्रमेण द्रव्यनिक्षेपे कृते कतिषु स्थानेष्वऽसंख्यातभागहीनं कतिषु स्थानेष्वसंख्यातभागाधिकं भवतीति चेत्। संग्रहकृष्टीनां द्वादशप्रथमकृष्टिषु उभयद्रव्यविशेषाधिक-स्व-स्वपूर्वजघन्यकृष्टिमात्रासंख्यातभागहीनतया संग्रहकृष्टीनां[1] मध्ये क्रियमाणाऽपूर्वकृष्टीनामे-कादश जघन्यकृष्टिषूभयद्रव्यविशेषोनस्व-स्वपूर्वचरमकृष्टिमात्रासंख्यातभागाधिकतया त्रयोविंश-तिस्थानानि त्यक्त्वा शेषानंतनूतनपुरातनकृष्टिस्थानकेषु यथाक्रममुभयद्रव्यविशेषहीनतया प्रथम-समयविशेषोनोभयद्रव्यविशेषेण हीनं द्रव्यं निक्षिपति। द्वितीयसमये दीयमानप्रदेशसमूहस्येयं श्रेणि-रुष्ट्रकूटसदृशी भवति यतः कारणात् द्वितीयसमयेऽपकृष्य कृष्टिषु दत्तद्रव्यस्य द्वादशस्ववस्थानेष्व-संख्यातभागहान्या एकादशस्वेव स्थानेष्वसंख्यातभागवृद्ध्या शेषानंतकृष्टिस्थानकेष्वनंतभाग-हान्याऽवस्थाननियमो जातस्ततः कारणाद्दीयमानप्रदेशश्रेणिस्त्रयोविंशतिस्थानेषु उष्ट्रकूटसमानतया तिष्ठतीत्यर्थः। उष्ट्रस्य पृष्टिर्यथा पश्चिमभागे उन्नततया मध्यमभागे निम्नतया अग्रे निम्नोन्नतक्रमेण तिष्ठति तथैवात्रापि प्रदेशनिक्षेपः प्रथमं महत्तया पुनर्हान्याऽग्रे केषुचित्स्थानेषु हान्या वृद्ध्या च निक्षिपतीति तात्पर्यम्। एवं सति द्वितीयसमयापकृष्टकृष्टिप्रतिबद्धसर्वद्रव्यं संपूर्णं भवति। पुनरपि प्राक् पृथग्निक्षिप्तपूर्वापूर्वस्पर्द्धकप्रतिबद्धलोभादीनां स्वकीयस्वकीयद्रव्यं द्व्यर्द्धगुणहान्या भक्त्वा एकभागे स्व-स्वापूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायां दत्ते स्व-स्वचरमकृष्टिदत्तप्रदेशसमूहादनंतगुणहीनं[2] भवति। शेषद्रव्यमुपरितनवर्गणासु अनंतभागहीनस्वरूपेण ददाति। एवं दीयमानक्रमः उक्तः। दृश्यमानद्रव्यक्रमः कथमस्तीति चेत्। द्वितीयसमये कृष्टिषु यः प्रदेशसमूहो दृश्यमानः स लोभ-

१. मध्ये क्रियमाणाइत्येवं वाक्य योजना २. अपकृष्टद्रव्यापेक्षा

जघन्यकृष्टौ बहुकः। शेषे सर्वकृष्टिष्वनंतभागहीनतया क्रोधचरमकृष्टिपर्यंतं तिष्ठति। चरमकृष्टिद्रव्यादपूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणादृश्यमानप्रदेशसमूहोऽनंतगुणहीनः। एवमनुभागमाश्रित्य दृश्यमानक्रमः उक्तः। कृष्टिकारकस्य द्वितीयसमये प्रतिबद्धपूर्वापूर्वकृष्टिरचनेयं

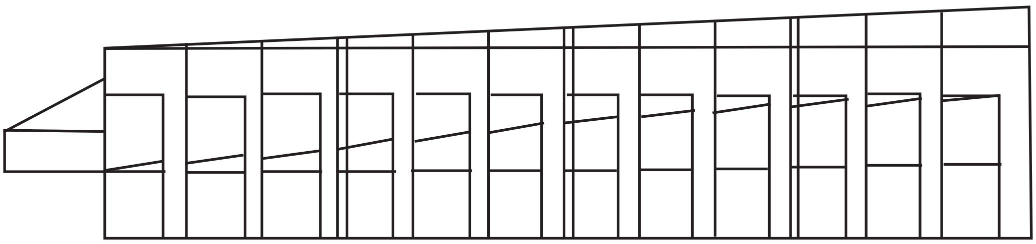

पूर्वापूर्वकृष्टिरचना

तृतीयादिसमयेषु दीयमानदृश्यमानप्रदेशश्रेणिनिरूपणं कथमस्तीति चेत्। द्वितीयसमये यथा कृष्टिषु त्रयोविंशत्युष्ट्रकूटाकारेण द्रव्यं ददाति तथैव सर्वकृष्टिकरणकालेपि दीयमान- प्रदेशसमूहस्य त्रयोविंशत्युष्ट्रकूटानि भवन्ति। द्वितीयसमये प्रदेशसमूहमपकृष्य गृहीत्वा द्वादशसंग्रह- कृष्टिस्वरूपेण ददाति। तथैव सर्वकृष्टिकरणकालेपि प्रतिसमयमपकृष्य कृष्टिप्रतिबद्धद्रव्यं प्राग्वदेव गृहीत्वा दीयमानप्रदेशसमूहं त्रयोविंशत्युष्ट्रकूटाकारेण ददातीत्यर्थः। दृश्यमानप्रदेशसमूहः सर्वकृष्टिष्वप्यनंतभागहीन एव भवति। एवं प्रतिसमयमपकृष्टद्रव्यस्याल्पबहुत्वमुच्यते। यः प्रदेश-समूहः कृष्टिकारकस्य प्रथमसमयेऽपकृष्य गृहीत्वा साकल्येन कृष्टिषु दीयते सः स्तोकः द्वितीयसमये कृष्टिरूपेण दत्तद्रव्यमसंख्यातगुणम्। तृतीयसमये कृष्टिरूपेण दत्तद्रव्यमसंख्यातगुणम्। एवं प्रतिसमयमसंख्यातगुणितद्रव्यमपकृष्य गृहीत्वा कृष्टिषु ददाति यावत्कृष्टिकरणकाल-चरमसमयस्तावत्। एवमंतर्मुहूर्तकालप्रमाणं कृष्टिकरणकालं क्रमेणातीत्य स्थितिबंधादिप्रमाणं कियदिति चेत् कृष्टिकरणकालचरमसमये चतुःसंज्वलन स्थितिबंधोंऽतर्मुहूर्ताधिकचतुर्मासमात्रः। शेषकर्मणां स्थितिबंधः संख्यातवर्षसहस्रमात्रः। अपूर्वस्पर्द्धककरणकालचरमसमयेऽष्टवर्षप्रमाणः संज्वलनचतुष्टयस्थितिबंधः अंतर्मुहूर्तमात्रेण हीयमानः आगत्याऽत्रांतर्मुहूर्ताधिकचतुर्मासमात्रो जातः। शेषकर्मणां स्थितिबंधः प्राक्तनसंख्यातवर्षसहस्रप्रमाणात्संख्यातगुणहानिरूपेण संख्यातसहस्रस्थितिबंधापसरणैर्हीयमानो भूत्वा इदानीमपि संख्यातवर्षसहस्रप्रमाणं न जहातीत्यर्थः। अस्मिन् कृष्टिकरणकालचरमसमये मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वं प्राक्तनसंख्यातवर्ष-सहस्रप्रमाणेन हीनं भूत्वा इदानीमंतर्मुहूर्ताधिकाष्टवर्षमात्रं जातम्। घातित्रयस्य स्थितिसत्त्वं संख्यातवर्षसहस्रमात्रम्। नामगोत्रवेदनीयानां स्थितिसत्त्वमसंख्यातवर्षसहस्रप्रमाणम्। अत्र सिंहावलोकनन्यायेनातिक्रांतार्थनिरूपणं क्रियते। कृष्टीः कुर्वन् पूर्वापूर्वस्पर्द्धकान्येवानुभवति। न

कृष्टीरनुभवति यथा अपूर्वस्पर्द्धकानि कुर्वन् तस्मिन् काले पूर्वस्पर्द्धकैः सहापूर्वस्पर्द्धकान्यनुभवति तथा कृष्टीः कुर्वंस्तस्मिन् काले कृष्टीर्नानुभवति। कृष्टिकरणकाले पूर्वापूर्वस्पर्द्धकान्येवानुभवतीति तात्पर्यम्। प्रथमस्थितावावलिमात्रावशिष्टायां कृष्टिकरणकालः समाप्तः। कृष्टिकरणकाल-चरमसमयेऽनुभूयमानोदयनिषेकं मुक्त्वा तत उपरि क्रोधसंज्वलनस्योच्छिष्टावलिमात्र-प्रथमस्थितावविशिष्टायां बादरकृष्टिकरणकालः समाप्तः इति तात्पर्यम्।

।। एवं कृष्टिकरणाधिकारः समाप्तः।।

इतोऽग्रे कृष्टिवेदनाधिकारः प्रारभ्यते। कृष्टिकारकचरमसमयानंतरसमये कृष्टीनां वेदको भवति। द्वितीयस्थितौ स्थितकृष्टीरपकृष्य गृहीत्वा प्रथमस्थितौ दत्वाऽनुभवतीत्यर्थः। कृष्टिवेदकस्य प्रथमसमये चतुःसंज्वलनानां स्थितिबंधः संपूर्णचतुर्मासमात्रः। कृष्टिकारकचरमसमये चतुःसंज्वलनानामंतर्मुहूर्ताधिकचतुर्मासमात्रं बध्नन् इदानीमंतर्मुहूर्तं हीनयित्वान्यस्थितिबंधं संपूर्णचतुर्मासमात्रं बध्नातीति तात्पर्यम्। चतुःसंज्वलनसत्त्वं तस्मिन्नेव समयेंऽतर्मुहूर्तात्मक-कांडकचरमफालिपतने इदानीं परिपूर्णाष्टवर्षमात्रं भवतीत्यर्थः। घातित्रयस्य स्थितिबंधस्थितिसत्त्वे द्वेअपि संख्यातवर्षसहस्रमात्रे भवतः। नामगोत्रवेदनीयानां स्थितिबंधः संख्यातवर्षसहस्रप्रमाणः। नामगोत्रवेदनीयानां स्थितिसत्त्वमसंख्यातवर्षसहस्रमात्रं भवति। नामगोत्रवेदनीयानामनुभागबंधः कथमस्तीति चेत्। तात्कालिकगुडखंडशर्करामृतरूपेण यत् उत्कृष्टं प्रवर्तते तत्तत्प्रमाणमेव भवति। अनुभवरहितसमयोनोदयावलिस्थितं क्रोधसंज्वलनस्य यदनुभागसत्त्वं तत्सर्वघातिशक्तियुक्तं भवति। कारणं किमिति चेत्। समयोनोदयावल्यां यतः कारणात्पूर्वापूर्वस्पर्द्धकानि संति तेषु पूर्वस्पर्द्धकानुभागसत्त्वं लतादारुसमानशक्तियुक्तं तिष्ठति। ततः कारणात्तच्छक्त्यपेक्षया सर्वघातीत्युक्तम्। समयोनावलिप्रमाणं सर्वघातिअनुभागसत्त्वमुदयकाले कृष्टिरूपेण भूत्वा उदयनिषेके उदेत्य गच्छति। आवल्यां समयोनत्वं कथं जातमिति चेत्। उच्छिष्टावलि-प्रथमनिषेकस्य वर्तमानसमये परमुखोदयसद्भावात्। कृष्टिरूपेण परिणमनाद्धेतोः चतुःसंज्वलनेषु ये द्विसमयोनद्व्यावलिमात्रनवकबंधसमयप्रबद्धाः तेषामनुभागाः देशघातिशक्तियुक्ता भवन्ति। ते च स्पर्द्धकशक्तियुक्ताः कुतः। कृष्टिकारकस्य काले कृष्टिरूपेण बंधाभावात्। ते च द्विसमयोनद्व्यावलिमात्रकाले कृष्टिरूपेण परिणम्य यास्यन्ति समयोनद्व्यावलिमात्रनवकबंधानुभागं रूपोनोच्छिष्टावलिप्रविष्टानुभागं च मुक्त्वा शेषं चतुःसंज्वलनानुभागसत्त्वं सर्वमपि कृष्टिरूपेण

१. कृष्टिकरणकाल एवात्रप्रथमस्थितिः

परिणमितम्[१]। अत्र सर्वकृष्टिकरणकाले कृष्टिषु दृश्यमानप्रदेशसमूहः स्वस्थाने एकगोपुच्छरूपेण तिष्ठति[२]। स्पर्द्धकगतप्रदेशोपि स्वस्थाने एक गोपुच्छाकारेण तिष्ठति। कृष्टिगतसर्वप्रदेश पिंडात्स्पर्द्धकगतप्रदेशपिंडोऽसंख्यातगुणतया यावत्तावत् एकगोपुच्छाकारेण तिष्ठति कृष्टिकारककालसमाप्त्यंनंतरसर्वदृश्यमानप्रदेशसमूहः कृष्टिरूपेण परिणम्य एकगोपुच्छाकारेण तिष्ठति। अत्र कृष्टिरूपेण परिणतद्रव्यप्रमाणं लोभमायामानक्रोधक्रमेणेदं एषां द्रव्याणां विभागक्रमः

स १२ (ऊपर I)	स १२–	स १२ ≡	स १२ = ५
७। ८	७। ८	७। ८	७। ८

कृष्टिकारकस्य द्वितीय समयोक्तप्रकारेण भवति। एवं विभक्तद्वादशसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धद्रव्याणि पूर्वापूर्वकृष्टिरूपेण संस्थाप्य त्रयोविंशत्युष्ट्रकूटस्थानानि शेषानंतभागहानिस्थानानि च पूर्वोक्तक्रमेण वक्तव्यानि । कृष्टिकारकस्य द्वितीयसमयादिचरमसमयपर्यंतनिर्वर्तितापूर्वकृष्टिप्रमाणं प्रथमसमय-कृतकृष्ट्यसंख्यातैकभागमात्रं भवति। ततः कारणात्प्रथमसमयकृतकृष्टिषु स्व-स्वासंख्यातैकभागे निक्षिप्ते सर्वकृष्टिप्रमाणं भवति। [।/४ ख] कृष्टिवेदकस्य प्रथमसमये क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टितः एतावत्प्रदेश-समूहमपकृष्य [व १२।१३ २४ ओ] गृहीत्वा तं पल्यासंख्यातेन भक्त्वा एकखंडमेतावत्। [व १२।१३ २४ ओ प/a] स्वीकृत्य प्रथम-स्थितिं कुर्वन् उदयनिषेके स्तोकं ददाति। अग्रतननिषेके एतस्मादसंख्यातगुणं ददाति। एवमसंख्यातगुणितक्रमेण गुणश्रेणिं करोति। यावत्[२] प्रथमसंग्रह-कृष्टिवेदककालादुच्छिष्टावलिमात्रेण[३] प्रथमस्थितिरधिका भवति तावत्। प्रथमस्थितिचरमनिषेकः एव गुणश्रेणिशीर्षमित्युच्यते। पुनः प्राक्तनावशिष्टबहुखंडेषु[४] स्थित्यपेक्षयाऽपकृष्टक्रोधद्वितीय-तृतीयसंग्रहकृष्टिद्रव्ये निक्षिप्ते एतावद्भवति इदं [व १२।१५ प/a १८ २४ ओ।प/a] अष्टवर्षमात्रस्थित्यायामसंजनित संख्यातावलिभिर्भक्त्वा रूपोनस्थित्यायामार्द्धमात्रविशेषाधिकं कृत्वा द्वितीय-स्थित्यादिनिषेके निक्षिप्तं सत् गुणश्रेणिशीर्षदत्तद्रव्यादसंख्यातगुणं भवति। इत उपर्यसंख्यातभागमात्रेण विशेषहीनं ददाति यावदतिस्थापनावलिं प्राप्नोति तावत्। अनेन क्रमेण प्रतिसमयं गलितावशेषगुणश्रेणिं करोति। कृष्टिकरणकाले या तृतीयसंग्रहकृष्टिः सा कृष्टिवेदके प्रथमसंग्रहकृष्टिरित्युच्यते अन्यथा कृष्टिकारकस्य प्रथमसंग्रहकृष्टिरेव कृष्टिवेदकेपि प्रथमसंग्रहकृष्टि-रित्युच्यमाने तामनुभूयाग्रतनद्वितीयसंग्रहकृष्ट्यनुभवनकाले पूर्वबंधोदयाभ्यामिदानींतनबंधो-

---

१. कृष्ट्यनुभवप्रथमसमये पूर्वापूर्वस्पर्द्धकरूपेण स्थितद्रव्यमेव तत्कृष्टिकारकस्य चरमसमये कृष्टिरूपेण परिणमितम्। २. कृष्टिकारकस्य चरमसमयापकृष्टद्रव्यप्रमाणमिदं [व १२ ओ]

३. उच्छिष्टावल्याऽभ्यधिकक्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टिवेदककालायामा एव प्रथमस्थितिः।

४. अतिस्थापनावलिस्थितिसार्थं एतत् द्रव्यमेव [व १२।२ प/a १– २४ ओ प/a] अपकृष्टं ज्ञातव्यं इदानीं अस्य राशे प्रथमस्थित्यभावादेकभाग उपरितन स्थितावेवास्तीति ज्ञातव्यः।

दयावनंतगुणौ जायेतां। न च तथा। प्रतिसमयबंधोदययोरनंतगुणहीनत्वसंभवात्। अतः कारणात्कृष्टिकारकस्य तृतीयसंग्रहकृष्टिरेव कृष्टिवेदकस्य प्रथमसंग्रहकृष्टिः प्रथमसंग्रहकृष्टिरेव तृतीयसंग्रहकृष्टिरिति गृहीतव्यम्। अग्रेप्यनुभूयमानमानादिनवसंग्रहकृष्टीनामिमामेव व्याप्तिं योजयेत्। प्रथमसंग्रहकृष्टिरनुभवन् सर्वकृष्टीरनुभवति। काश्चित्त्यक्त्वा वा इति चेत्। विशेषनिरूपणा क्रियते। कृष्टिवेदकस्य प्रथमसमये क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्ट्यसंख्यातबहुभागमात्रकृष्टयः उदयं बंधं चायाति। कुत्र स्थितास्ता उदयं बंधं चायातीति चेत्। क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टिजघन्यकृष्टिमादिं कृत्वा अधस्तनासंख्यातैकभागमात्रीस्त्यक्त्वा पुनस्तत्क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्ट्युत्कृष्टकृष्टेः प्रभूत्युपरितना-संख्यातैकभागमात्रीर्मुक्त्वा मध्यमासंख्यातबहुभागमात्र्यः उदयमायान्ति। त्यक्तकृष्टयः किं भवन्तिति चेत्। अधस्तनपार्श्वत्यक्तकृष्टयोऽनंतगुणा भूत्वा उपरितनपार्श्वे त्यक्तकृष्टयोऽनंतगुणहीना भूत्वा प्रथमसंग्रहकृष्टेर्मध्यमकृष्टिस्वरूपेणोदयमायान्ति। क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टेः सकलायामं पल्यासंख्यातेन भक्त्वा एकभागमात्रीरुपर्यधश्च त्यक्त्वा शेषबहुभागमात्र्य उदयमायान्ति। पुनरेतासूदयापन्नकृष्टिषु मध्ये उपरितनानुदयकृष्टिभ्योऽध उपरि मिलित्वा द्विगुणसाधिकमात्र-कृष्टीस्त्यक्त्वा शेषासंख्यातबहुभामात्र्यो बंधमायांतीत्यत्र नेमिचन्द्राचार्यप्रियशिष्यतात्पर्यम्। मानादीनामपि स्व-स्वप्रथमसंग्रहकृष्टेरधस्तनोपरितनासंख्यातैकभागं त्यक्त्वा मध्यमासंख्यात-बहुभागमात्र्यो बंधं प्राप्नुवन्ति। मानादीनां प्रथमद्वितीयतृतीयसंग्रहकृष्टयः इदानीमुदयं नायान्ति। क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकृष्टिं विना तस्य शेषे द्वे संग्रहकृष्टी इदानीं बंधमुदयमपि नागच्छतः। क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकृष्टेरनुभयोदयोभयकृष्टीनामल्पबहुत्वं कथमस्तीति चेत्। क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टेरधो या अनंताः कृष्टयो बंधमुदयं च नायान्ति ताः स्तोकाः तासामंकसंदृष्टिः।२। इत उपरि याः कृष्टयः उदयमायान्ति बंधं नायान्ति ता विशेषाधिकाः संदृष्टिः।३। अधिकप्रमाणमधस्तनानुभयकृष्टीः पल्यासंख्यातेन भक्त्वा तत्रै[1]कखंडप्रमाणमिति ज्ञातव्यम्। तत्क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्ट्युपरितनभागे याःकृष्टयः उदयं बंधं नायान्ति ताः विशेषाधिकाः। संदृष्टिः । ४। अत्रापि विशेषाधिक-प्रमाणमुदयकृष्टीः पल्यासंख्यातेन भक्त्वा तत्रैकखंडमात्रं भवति। ततः याः कृष्टयः उदयमायांति बंधं नायान्ति ताः विशेषाधिकाः।संदृष्टीः।७।। अत्राधिकप्रमाणं उपरितनानुभयकृष्टीः पल्या-संख्यातेन भक्त्वा तत्र एकखंडमात्रं भवति मध्ये याः कृष्टयो बंधमुदयं चागच्छन्ति। ता असंख्यात-गुणाः क्रोधप्रथमकृष्टिप्रमाणं। संदृष्टिः [४।१३ १ प ख २४ प व] संग्रहकृष्टीः पल्या-एकखंडप्रमाणमिदं [४।१३ १ ख २४ प व] संख्यातेन भक्त्वा तत्र बहुखंडान्युभय प्रक्षेपयोगोद्धृत मिश्रपिंडः प्रक्षेपकाणां

---

१. प्रथमसमयविशेषप्रमाणं [४।१३।१ ख २४ प व १६]

गुणको भवेत्स इति सूत्रेण पूर्वोक्तसकलशलाकायोगेन भक्ते लब्धमेतावत् [४।१३ / ख २४ प १६] इदमधस्तनानुभयशलाकाभ्यां गुणितं सत् अधस्तनानुभयकृष्टिप्रमाणं भवति। संदृष्टिः [४।१३ २ / ख २४ प १६] पुनः पूर्वराशिरेवाधस्तनोदयशलाकाभिर्गुणितः सन् अधस्तनोदयकृष्टिप्रमाणं भवति संदृष्टिः [४।१३।३ / ख २४ प १६] पुनः पूर्वराशिरेवोपरितनानुभयशलाकाभिर्गुणितः सन्नुपरितनानुभयकृष्टिप्रमाणं भवति। संदृष्टिः [४।१३। ४ / ख २४ प १६] पुनः पूर्वराशिरेवोपरितनोदयशलाकाभिर्गुणितः सन् उपरितनोदयकृष्टिप्रमाणं भवति। संदृष्टिः [४।१३।७ / ख २४ प १६] द्वादशसंग्रहकृष्टिषु स्व-स्वप्रथमसमयकृष्टिवेदकं प्रति इदमल्पबहुत्वमुच्यते। तद्यथा अधस्तना अनुभयकृष्टयः स्तोकाः। उदयकृष्टयस्तु विशेषाधिकाः। ततः परं पूर्वसमयबंधोत्कृष्टकृष्टिसमानकृष्टिमादिं कृत्वाऽधः या अनुभयकृष्टयः ता विशेषाधिकाः। तत अधस्तना उदयकृष्टयो विशेषाधिकाः। इतोऽग्रे पूर्वसमयोपरितनोदयजघन्यकृष्टिसमानकृष्ट्याद्याः सर्वानुभयकृष्टयः असंख्यातगुणाः कुतः पूर्वसमयोपरितनानुभयकृष्टीनामसंख्यातैकभागमात्रकृष्टीः पूर्वसमयोपरितनोदयजघन्यकृष्टिसमानकृष्टिमादिं कृत्वाऽधोऽवतीर्य सांप्रतिकानुभयकृष्टिजघन्यकृष्टिर्भवति। ततोऽधः पूर्वसमयोपरितनोदयकृष्ट्यसंख्यातैकभागमात्रकृष्टीरवतीर्य्य इदानींतनोपरितनोदयजघन्यकृष्टिसंभवात्। मध्ये बंधोदययुक्तकृष्टयोऽसंख्यातगुणा भवन्ति। पुनः पूर्वसमयाधस्तनानुभयकृष्टीनामसंख्यातबहुभागमात्रकृष्टीस्तासामुत्कृष्टकृष्टिसमानकृष्टितः अधो अवतीर्य सांप्रतिकबंधजघन्यकृष्टिर्भवति। ततोऽधः पूर्वाधस्तनोदयकृष्टीनामसंख्यातैकभागमात्रकृष्टीरवतीर्य सांप्रतिकोदयजघन्यकृष्टिर्भवति। ततोऽधः पूर्वाधस्तनानुभयकृष्टीनामसंख्यातैकभागमात्रकृष्टीरवतीर्य्य अधुनातनानुभयकृष्टिजघन्यकृष्टिर्भवति। एवं प्रतिसमयं पूर्वपूर्वानुभयोदयोदयानुभयकृष्टिभ्य उत्तरोत्तरानुभयोदयोदयानुभयकृष्टयोऽसंख्यातगुणहीनाः मध्योभयाः[1] विशेषाधिका इति ज्ञातव्यम्। अत्रायं भावार्थः। प्रथमसमयकृष्टिवेदकमादिं कृत्वा मोहनीयानुभागानामित उपर्युनसमयापवर्त्तना[2] प्रवर्त्तते पूर्वमपूर्वस्पर्द्धककरणकाले कृष्टिकरणकाले चांतर्मुहूर्तकालप्रतिबद्धा भूत्वा संज्वलनचतुष्टयानुभागकांडकघातोऽश्वकर्णाकारेण प्रवृत्तः। इदानीं द्वादशसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धानां संज्वलनानुभागानां प्रतिसमयमनंतगुणहान्या अग्रघातः प्रवर्तते इति तात्पर्यम्। इत उपरि प्रतिसमयं संज्वलनानुभागस्य बंधोदययोः प्रवृत्तिक्रमः उच्यते। प्रथमसमयकृष्टिवेदकस्यानंतबहुभागमात्र्यः

---

१. अत्रतनात् उभयद्रव्य [४।१३। ११ / ख २४ प १६ प] ज्ञातव्यं। एतस्मादृणात् संबंधि [४।१३।५ / ख २४ प १६] इदं धनमसंख्यातगुणं भवतीति ऋणादित्यर्थ उभयद्रव्यसंबंधिधनं

२. प्रतिसमय-मनंतैकभागरूपा

क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टयः उदयमायान्ति। तासूदयागतकृष्टिषु या उत्कृष्टकृष्टिः सा बहुशक्तियुक्ता भवति। क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टौ बध्यमानकृष्टयोऽनंतबहुभागमात्र्यः सन्ति। तासु बध्यमानकृष्टिषु या उत्कृष्टकृष्टिः सा उदयोत्कृष्टकृष्टितोऽनंतगुणहीना। द्वितीयसमये उदयोत्कृष्टकृष्टिः प्रथमसमय-बंधोत्कृष्टकृष्टितोऽनंतगुणहीना। ततः द्वितीयसमयस्य बंधोत्कृष्टकृष्टिरनंतगुणहीना। ततस्तृती-यसमयस्योदयोत्कृष्टकृष्टिरनंतगुणहीना। ततस्तृतीयसमयस्य बंधोत्कृष्टकृष्टिरनंतगुणहीना। एवम-हिगत्या सर्वकृष्टिवेदककालेप्यनुभागाल्पबहुत्वं प्रवर्त्तते। एवं बंधोदयोत्कृष्टकृष्ट्यल्पबहुत्वमुक्तम्। इदानीं बंधोदयजघन्यकृष्ट्यल्पबहुत्वं कथमस्तीति चेत्। कृष्टिवेदकस्य प्रथमसमये बंधजघन्यकृष्टिः तीव्रानुभागयुता। ततः उदयजघन्यकृष्टिरनंतगुणहीना। द्वितीयसमयबंधस्य जघन्यकृष्टिः प्रथमसमयोदयजघन्यकृष्टितोऽनंतगुणहीना। ततो द्वितीयसमये उदयजघन्यकृष्टिरनंतगुणहीना। ततस्तृतीयसमये बंधजघन्यकृष्टिरनंतगुणहीना। ततस्तृतीयसमये उदयजघन्यकृष्टिरनंतगुणहीना। एवमहिगत्या कृष्टिवेदकसर्वकालेपि जघन्यानुभागाल्पबहुत्वं प्रवर्त्तते। इदं क्रोधस्य प्रथमसंग्रह-कृष्टेर्व्याख्यानं बंधोदयोत्कृष्टजघन्यकृष्टिराश्रित्यागतम्। इयं प्ररूपणा क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टिवेदकस्य चरमसमयपर्यंतं ग्राह्या। तद् द्वितीयतृतीयसंग्रहकृष्ट्यनुभवकस्याऽप्यनुभागबंधोदयाल्पबहुत्व-मेवमस्तीति तात्पर्यम्। अथ संक्रमणद्रव्यप्रवृत्तिक्रमो विचार्य्यते। क्रोधादिसंग्रहाणां द्रव्यं स्वस्थाने स्व-स्वतृतीयसंग्रहपर्यंतं परस्थानस्वकीयाधःस्थितकषायप्रथमसंग्रहे च संक्रामति। स्वस्थाने वा परस्थाने वा अनुभूतसंग्रहादनंतरोदययोग्यसंग्रहे[1] संख्यातगुणतया संक्रामति। अत्र तात्पर्यमुच्यते। तद्यथा लोभसंज्वलनप्रथमसंग्रहकृष्टिद्रव्ये अपकर्षणभागहारेण भक्ते एकखंडं प्रथमसंग्रहकृष्टिद्रव्या-द्विशेषाधिकद्वितीयसंग्रहकृष्टिद्रव्ये[2] अपकर्षणभागहारेण भक्ते एकखंडं च लोभतृतीयसंग्रहकृष्टौ संक्रामतीति तस्या आयद्रव्ये द्वे तत्प्रथमसंग्रहकृष्टितोऽपकृष्टद्रव्यमेव द्वितीयसंग्रहकृष्टौ संक्रामतीति तस्या आयद्रव्यमेकं मायाप्रथमद्वितीयतृतीयसंग्रहकृष्टिद्रव्याणि अपकर्षणभागहारेण पृथक्-पृथक् भक्त्वा तत्र एकैको भागो लोभप्रथमसंग्रहकृष्टौ संक्रामतीति। तस्या आयद्रव्याणि त्रीणि। मायाप्रथमद्वितीयसंग्रहकृष्टिद्रव्ये पृथक्पृथगपकर्षणभागहारेण भक्त्वा तत्रैकैको भागो माया-तृतीयसंग्रहकृष्टौ संक्रामतीति तस्या आयद्रव्ये द्वे[3] तत्प्रथमसंग्रहादपकृष्टद्रव्यमेव द्वितीयसंग्रहकृष्टौ संक्रामतीति तस्या आयद्रव्यमेकं मानप्रथमद्वितीयतृतीयसंग्रहकृष्टिद्रव्याणि पृथगपृथगपकर्षण-भागहारेण भक्त्वा तत्रैकेकखंडं मायाप्रथमसंग्रहकृष्टौ संक्रामतीति तस्या आयद्रव्याणि त्रीणि।

---

१. उदयवत्संग्रहस्य योः गुणकारः रूपाधिकः इत्यर्थः

२. बहुभागे समभागो इत्यनेन कृष्ट्यायामसाधिके विस्तरेण चतुस्त्रिंशत्पत्रे ज्ञेयं

३. मायाद्वितीयसंग्रहकृष्टेः

मानप्रथमद्वितीयसंग्रहकृष्टिद्रव्ये पृथक पृथगपकर्षणभागहारेण भक्त्वा तत्रैकैकखंडं तत्तृतीय-संग्रहकृष्टौ संक्रामतीति तस्या आयद्रव्ये द्वे तत् प्रथमसंग्रहादपकृष्टद्रव्यमेव द्वितीयसंग्रहकृष्टौ संक्रामतीति तस्या[१] आयद्रव्यमेकं। क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टिद्रव्यं अपकर्षणभागहारेण भक्त्वा तत्र एकभागस्ततस्त्रयोदशगुणहीनं द्वितीयसंग्रहकृष्टिद्रव्यं ततो विशेषाधिकं[२] तृतीयसंग्रहकृष्टिद्रव्यं च पृथक्पृथक्त्वनैव भागहारेण भक्त्वा तत्रैकैकखंडं मानप्रथमसंग्रहकृष्टौ संक्रामतीति तस्या आयद्रव्याणि पंचदश क्रोधप्रथमद्वितीयसंग्रहकृष्टिद्रव्यं पृथक् पृथगपकर्षणभागहारेण भक्त्वा तत्रैकैकभागस्तृतीयसंग्रहकृष्टौ संक्रामतीति तस्याः आयद्रव्याणि चतुर्दश क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टि-द्रव्यमपकर्षणभागहारेण भक्त्वा तत्रैकभागं चतुर्दशगुणतया तदनंतरोदययोग्यायां तद्[३]द्वितीय-संग्रहकृष्टौ संक्रामतीति तस्या आयद्रव्याणि द्व्यशीत्युत्तरशतं। क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टौ आयद्रव्यं नास्ति। आनुपूर्वीसंक्रमणात् अत्र संक्रमणद्रव्यस्यापकर्षणव्यपदेशः कथं जातः इति चेत्। अनुभागापेक्षया हानिसद्भावात्। इत्यायद्रव्यविभागः समाप्तः।।

व्ययद्रव्यविभागः उच्यते। क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टितः स्वकीयद्वितीयतृतीयसंग्रहकृष्ट्योर्मान-प्रथमसंग्रहकृष्टौ च गतद्रव्याणि मिलित्वा तत्प्रथमसंग्रहकृष्टेर्व्ययद्रव्याणि अष्टोत्तरद्विशतं। क्रोधतृतीयसंग्रहकृष्टौ मानप्रथमसंग्रहकृष्टौ च गतद्रव्ये द्वे मिलित्वा क्रोधद्वितीयसंग्रहकृष्टेर्व्ययद्रव्ये द्वे भवतः। मानप्रथमसंग्रहकृष्टौ गतद्रव्यमेकमेव क्रोधतृतीयसंग्रहकृष्टेर्व्ययद्रव्यं भवति। मानद्वितीय-तृतीयसंग्रहकृष्ट्योर्मायाप्रथमसंग्रहकृष्टौ च गतद्रव्याणि मिलित्वा मानप्रथमसंग्रहकृष्टेर्व्ययद्रव्याणि त्रीणि भवन्ति। मानतृतीयसंग्रहकृष्टौ मायाप्रथमसंग्रहकृष्टौ च गतद्रव्ये द्वे मिलित्वा स्वकीयमान-द्वितीयसंग्रहकृष्टि द्रव्ये द्वे भवतः। मायाप्रथमसंग्रहकृष्टौ गतद्रव्यमेव मानतृतीयसंग्रहकृष्टेर्व्ययद्रव्यं भवति। मायाद्वितीयतृतीयसंग्रहकृष्ट्योर्लोभप्रथमसंग्रहकृष्टौ च गतद्रव्याणि मिलित्वा मायाप्रथम-संग्रहकृष्टेर्व्ययद्रव्याणि त्रीणि भवन्ति। मायातृतीयसंग्रहकृष्टौ लोभप्रथमसंग्रहकृष्टौ च गतद्रव्ये द्वे मिलित्वा मायाद्वितीयसंग्रहकृष्टेर्व्ययद्रव्ये द्वे भवतः। लोभप्रथमसंग्रहकृष्टौ गतद्रव्यमेकमेव माया-तृतीयसंग्रहकृष्टेर्व्ययद्रव्यं भवति। लोभद्वितीयतृतीयसंग्रहकृष्ट्योर्गतद्रव्ये द्वे मिलित्वा स्वकीयप्रथम संग्रहकृष्टेर्व्ययद्रव्ये द्वे भवतः। निजतृतीयसंग्रहकृष्टौ गतद्रव्यमेकमेव निजद्वितीयसंग्रहकृष्टेर्व्ययद्रव्यं भवति। लोभतृतीयसंग्रहकृष्टेर्व्ययद्रव्यं नास्ति। विलोमसंक्रमणाभावात्। एवं व्ययद्रव्यविभागः समाप्तः।

इत उपरि प्रागुक्तानुसमयापवर्तनाप्रवृत्तिक्रमः उच्यते। प्रथमसमयकृष्टिवेदकः द्वादशसंग्रहकृष्टीनां चरमकृष्टिमादिं कृत्वा एकैकसंग्रहकृष्ट्यसंख्यातैकभागं घातयति। अत्र विशेषार्थ निर्णयः क्रियते। स्वस्वसंग्रहकृष्टीः संस्थाप्यापकर्षण भागहारादसंख्यातगुणहीन भागहारेण पृथक्-

१. मानद्वितीयसंग्रहकृष्टेः २. बहुभागे समभागो इत्यनेन ३. क्रोध

पृथक् भक्तासु स्वस्वघातकृष्टिप्रमाण मायाति। संदृष्टिः -

लो	या	मा	क्रो
४ ख २४ ओ a	४ ख २४ ओ a	४ ख २४ ओ a	४।१३ ख २४ ओ a
४ ख २४ ओ a	४ ख २४ ओ a	४ ख २४ ओ a	४ ख २४ ओ a
४ ख २४ ओ a	४ ख २४ ओ a	४ ख २४ ओ a	४ ख २४ ओ a

एतासु घातकृष्टिषु स्व-स्व चरमकृष्टिस्थित द्रव्यंसंस्थाप्य स्व-स्व घातकृष्टि प्रमाणेन संगुण्य[1] विशेषाधिकं[2] कृतं सत् स्वस्वघात-द्रव्याणि जायंते।

एवं प्रागुक्तसर्वायव्यय घातद्रव्याणां संदृष्टिः

आयद्रव्य	व्ययद्रव्यं	घातद्रव्यं
०	व १२।२०८ २४ ओ	व १२।१३ २४ ओ a
व १२।१८२ २४ ओ	व १२।२ २४ ओ	व १२ २४ ओ a
व १२।१४ २४ ओ	व १२।१ २४ ओ	व १२ २४ ओ a
व १२।१५ २४ ओ	व १२।३ २४ ओ	व १२ २४ ओ a
व १२।१ २४ ओ	व १२।२ २४ ओ	व १२ २४ ओ a
व १२।२ २४ ओ	व १२।१ २४ ओ	व १२ २४ ओ a
व १२।३ २४ ओ	व १२।३ २४ ओ	व १२ २४ ओ a
व १२।१ २४ ओ	व १२।२ २४ ओ	व १२ २४ ओ a
व १२।२ २४ ओ	व १२।१ २४ ओ	व १२ २४ ओ a
व १२।३ २४ ओ	व १२।२ २४ ओ	व १२ २४ ओ a
व १२।१ २४ ओ	व १२।१ २४ ओ	व १२ २४ ओ a
व १२।२ २४ ओ	०	व १२ २४ ओ a

१. प्र [१] फ [व १४ / ४ / ख] इ [४ / ख २४ ओ / a] लब्धं एवं सर्वत्र घातद्रव्यं [व १२ / २४ ओ / a] विशेष-धनमेव व्येकपदार्धघ्नचय इत्यादि २. इदं समपट्टिकारूपे मध्यमधनं उत्तरधनेनाऽधिकं ज्ञातव्यम्।

अत्रोपरितनानि आयद्रव्याणि अधस्तनानि व्ययद्रव्याणि ततो अधस्तनानि घातद्रव्याणि। अत्र व्यय-द्रव्यात् स्वस्थाने गोपुच्छो नष्टः। घातद्रव्यात् परस्थाने गोपुछो नष्टः। ततः कारणात्स्वस्व-घातद्रव्ये स्वस्वव्ययद्रव्यमसंख्यातैकभाग [व १२।२०८-१ / २४ ओ a] हीनं कृत्वा अपनीय प्रतिपूरणे कृते स्वस्थानगोपुच्छो जायते। हीनप्रमाणं कियदिति चेत्। स्वस्वाग्रकृष्टिप्रविष्ट [व १२।१ / ४ / ख] द्रव्यं संस्थाप्य स्वस्वव्ययद्रव्यागमनकारणभूतेनापकर्षणभागहारेण भक्त्वा स्वस्व-विनष्टकृष्ट्यायामेन संगुण्य[१] साधिकं कृतं सत् तावन्मात्रं भवति। आयद्रव्येभ्यो व्ययद्रव्याव्यपनीय प्रतिपूरणं कथं न क्रियेतेति चेत्। एकत्र आयो व्ययश्च समानः। एकत्र आयाद्व्ययोऽल्पः। एकत्र आयाद्व्ययो बहुकः एकत्र व्यय एवास्ति आयो नास्ति। एकत्र आय एवास्ति व्ययो नास्तीति कारणात् परस्थानगोपुछ [२]इदानीमपि न जातः। कुतः। लोभतृतीयसंग्रह-[३]घातितावशिष्टचरमकृष्टितस्तद् द्वितीयसंग्रहस्यादिकृष्टेरूपाधिकनष्टकृष्टिमात्र विशेषैर्हीनत्वात्। प्राग्वत् एकविशेषहानिमिष्ट्वा विनष्टकृष्ट्यायाममात्रविशेषान्निजघातद्रव्यादपनीय निक्षिप्तेषु तच्चरमकृष्टितो द्वितीयसंग्रहप्रथमकृष्टिरेकविशेषहीना भवति। अनेन क्रमेण द्वितीयकृष्ट्यादिनिज-घातितावशिष्टचरमकृष्टिपर्यंतं तावन्मात्रविशेषान् घातद्रव्यतोऽपनीयैक[४] रूपेण निक्षिप्ते अधस्तनविनष्टकृष्ट्यायाममात्रविशेषविष्कंभेण निजघातितावशिष्टकृष्टिमात्रायामेनैकमायतचतुरस्र क्षेत्रं[५] निक्षिप्यते। प्रथमसंग्रहकृष्टौ स्वकीयाधस्तनसंग्रहकृष्टिद्वये विनष्टकृष्ट्यायाममात्रविशेष-

---

१. प्र १ फ [व १२ / ओ ४ / ख] इ [४ / ख २४ ओ a] अत्र लब्ध [व १२ ।१ / ओ २४ ओ / a] मिदं चयधनेन साधिकं कृतं सत् हीन प्रमाणं भवति [व १२ ।१ / ओ २४ ओ / a]

२. प्रतिपूरणे कृतेपि

३. अद्वाणेण सव्वधणेत्यादिना चयमानीर्य [व १२ / २४ ओ ४१६- १/४ / a ख २४ ओ ख २४ ओ २ ओ / a a] व्येकपदार्द्ध इत्यानीत चयधनमिदं [व १२ / २४ ओ ४ १६- १/४ ४ ख २४ ओ ४ २४ ओ २ / a ख २४ ओ ख २४ ओ a ओ a / a a]

४. एकाकारेण ५. [व १२ / ४ १६ - १/४ ४ ख २४ ओ / ख ख २ a] [४ - / ख २४]

विष्कंभेण निजघातितावशिष्टकृष्टिमात्रायामेण आयतचतुरस्रक्षेत्रद्वयमात्रं द्रव्यं निजघातद्रव्यात्स्वीकृत्य निक्षिप्ते लोभसंग्रहकृष्टित्रयस्यैकगोपुच्छो भवति। अनेन क्रमेण मायातृतीयसंग्रहकृष्ट्याद्यधस्तननष्टकृष्ट्यायाममात्रविशेषविष्कंभेण स्व-स्वघातितावशिष्टकृष्टि मात्रायामेण त्रिचतु:पंचषट्सप्ताष्टनवदशैकादश[1] आयतचतुरस्रक्षेत्रमात्रद्रव्याणि स्वस्व-घातद्रव्येभ्य स्वीकृत्य निक्षिप्तेषु द्वादशसंग्रहकृष्टीनां स्वस्थानपरस्थानगोपुच्छ: संपूर्णो जायते। पुनरपि सकलव्ययद्रव्याणि मेलयित्वाऽपवर्तितेषु साधिकनवगुणितं जायते संदृष्टि: [व १२ ९ / ओ] सकलघातद्रव्येषु मिलितेषु एतावत् [व १२ / ओ / a] सकलव्ययद्रव्ये आयतचतुरस्र-क्षेत्ररूपेण निक्षिप्त [व १२ ।१९८ / ख ख २ ओ प १६ / a] द्रव्येषु च घातद्रव्यात् स्वीकृतेषु असंख्यातबहुभाग-मात्रद्रव्यं [व १२।a९ / ओ] अवशिष्यते। इदं प्रथमसमयघातितावशिष्टसर्वकृष्ट्यायामेन रूपोनगच्छार्द्ध-हीनद्विगुणगुणहान्या च भक्त्वा [व १२ a - १ / ओ ४-१६-४ / ख ख २] अयं चय: सकलकृष्ट्यायामसंकलनेन संगुण्य[2] स्वस्मिन्नेवा[3]पनीय शेषद्रव्यं सर्वकृष्ट्यायामेन भक्त्वा एकखंडस्य भागहारमात्रमेव गुणकारं कृत्वा तत्रैकखंडं पूर्वोक्तसंकलनायां च सकलकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् गृहीत्वा लोभजघन्यकृष्टौ निक्षिपेत्। द्वितीयकृष्टावेकखंडं पूर्वोक्तसकलनायां च रूपोनसकलकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् गृहीत्वा निक्षिपेत्। एवमेकैकखंडं पूर्वोक्तसंकलनायां चातीतकृष्ट्यायामन्यूनसर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् गृहीत्वा तृतीयकृष्टिमादिं कृत्वा क्रोधस्य सर्वोत्कृष्टकृष्टिपर्यंतं निक्षिप्तेषु अवशिष्टघातद्रव्यं सर्वं समाप्नोति। सर्वत्रापि एकगोपुच्छो भवति। वेद्यमानक्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टौ स्वघातद्रव्यस्यासंख्यातैकभागं[4] पृथक् संस्थाप्य शेषसर्वघातद्रव्यमेकगोपुच्छाकारेण निक्षिपेत्। इत्येकगोपुछस्वरूपावस्थितद्वादशसंग्रह-

---

१. [ ] भुज [४ -१३ / ख_२४] भुजकोटि वेधेत्यदिना लब्धगुणकार: १४३ कोटि [व १२ १ ४ १ १ / ४ १६-४ ख २४ ओ / ख ख a]

२. सैकपदाहतपददलचयहतेति चयधनमानीय [व १२ a - १ १ ४ ४ / ओ ४-१६ ४ ख ख२ / ख ख २] अपवर्त्य स्वतोऽपनीय पृथक् संस्थापयेत्।
शेषद्रव्यमिदं [व १२ a= / ओ] सर्वकृष्ट्यायायामेन भक्त्वा निजभागहारेण [व १२ a= / ओ ४- / ख] गुणिते एवं [व १२। a = ४- / ओ ४- ख / ख]

३. द्रव्येस्वस्मिन्नेव द्रव्ये इत्यर्थ:।

४. क्रोधप्रथमसंग्रहस्य संक्रमणद्रव्याभावात् वक्ष्यमाणप्रकारेण मध्यमखंडादि करणार्थमिति ज्ञेयम्।

कृष्टीनां मध्ये क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टिं विना शेषैकादशसंग्रहकृष्टीनां पुनः काश्चिदपूर्वकृष्टीः करोति। क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टेर्बंधद्रव्येणैवापूर्वकृष्टीः करोति। शेषैकादशसंग्रहकृष्टीनां संक्रमणद्रव्येण यथासंभवं बंधद्रव्येण चापूर्वकृष्टीः करोतीत्यर्थः। अत्र बध्यमानद्रव्येण निर्वर्त्यमानाः कृष्टयो बह्व्यः संक्रम्यमाणद्रव्येण निर्वर्त्यमाना वा इति चेत्।[1] बध्यमानद्रव्येण निर्वर्त्यमानाः कृष्टयः स्तोकाः। संक्रम्यमानद्रव्येण निर्वर्त्यमानाः पल्यासंख्यातैकभागगुणिताः। कुतः। एकसमयप्रबद्धमात्रबंध-द्रव्याद्द्व्यर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धानामसंख्यातैकभागमात्रसंक्रमणद्रव्यस्यासंख्यातगुणत्वात् निर्वर्त्यमानकृष्टीनां च द्रव्यानुसारेणाल्पबहुत्वसंभवात्। बध्यमानद्रव्येण निर्वर्त्यमानकृष्टीः कुत्र करोतीत्युक्ते याः कृष्टयो बध्यमानद्रव्येण निर्वर्त्यंत्ते ताश्चतुःप्रथमसंग्रहकृष्टिषु करोति। ताः कृष्टीस्तच्चतुःसंग्रहकृष्टीनां अधः करोति मध्ये वा इति चेत्। एकैकसंग्रहकृष्टेरवयवकृष्टीनां मध्ये करोति। सर्वेष्ववयवकृष्टीनां मध्येषु करोति न वा इति चेत्। ।न।। सर्वेष्ववयवकृष्टिमध्येष्वकरणपक्षे कतिषु अवयवकृष्टिमध्येषु अपूर्वकृष्टीर्निर्वर्तयति इति चेत्। अर्थनिर्णयः क्रियते। बध्यमान-संग्रहाणामधः उपर्यपि असंख्यातैकभागमात्रं त्यक्त्वा मध्ये बध्यमानकृष्टीनां यत् प्रथमकृष्ट्यंतरं तत्र न द्वितीयकृष्ट्यंतरे पि न तृतीयकृष्ट्यंतरे पि न। एवं पल्यासंख्यातप्रथमवर्गमूल[2]मात्रकृष्ट्यंतराण्य-तीत्येकामपूर्वकृष्टिं निर्वर्त्तयति। पुनरपि तावत्तावत्कृष्ट्यंतराणि अतीत्यैकैकामपूर्वकृष्टिं निर्वर्त्तयति यावत् बंधोत्कृष्टकृष्टेरधः पल्यस्यासंख्यातप्रथमवर्गमूलमात्रायाममवतीर्य बंधद्रव्यनिर्वर्त्यमाना-पूर्वकृष्टीनामुत्कृष्टकृष्टिरुत्पद्यते तावत्। इत उपरि बध्यमानप्रदेशसमूहस्य निषेकश्रेणिनिरूपणं क्रियते। अत्र बध्यमानजघन्यकृष्टौ बहुद्रव्यं निक्षिपति। रूपोनकृष्ट्यायामार्द्धहीनद्विगुणहान्या गुणितस्वकीयकृष्ट्यायामेन बध्यमानद्रव्यस्यानंतैकभागं

स	१६	१०
ख	४-१३।१६-४।१३	
	ख२४	ख २४।२

भक्त्वा द्विगुणहान्या संगुण्य निक्षिपतीत्यर्थः। द्वितीयकृष्टौ अनंतभागरूपेण विशेषेण हीनं निक्षिपति। तृतीयकृष्टावनंतभागरूपेण विशेषेण हीनं निक्षिपति। चतुर्थकृष्टावनंतभागरूपेण विशेषेण हीनं निक्षिपति। एवमव्यवधानेन पूर्वकृष्टिप्रतिबद्धकृष्टिषु

---

१. क्रोधप्रथमसंग्रहानुभवनप्रथमादिसमये क्रोधमानादिप्रथमसंग्रहे एव बंधद्रव्येणापूर्वकृष्टीः करोति क्रोधद्वितीयसंग्रहानुभवने तत्रैव लोभादिप्रथमसंग्रहे चापूर्वकृष्टीः करोति। एवं स्वस्वसंग्रहानुभवने लोभादिप्रथमसंग्रहे चापूर्वकृष्टीः पुनर्मायाप्रथमसंग्रहानुभवने तत्रैव लोभादिप्रथमसंग्रहे चापूर्वकृष्टीः करोति एवं स्वस्वसंग्रहानुभवने अन्यकषायाऽनुदयप्रथमसंग्रहे चापूर्वकृष्टीः करोतीति तात्पर्यम्।

२. गुणहानिचतुर्भागः। $\frac{८}{४}$ का गुणहानिः नानागुणहानि भक्ताबाधारहितकर्मस्थितिमात्री

प०	
छे— व छे	

अपवर्तितौ मू।a।

विशेषहीनं निक्षिपति यावदपूर्वकृष्टिं प्राप्नोति तावत् । अत उपरि चरमकृष्टौ दत्तद्रव्यादपूर्वकृष्टावनंतगुणं[१] ददाति। अपूर्वकृष्टेः सकाशात् या अनंतरकृष्टिः तस्यामनंतगुणहीनं ददाति तदुपरि सर्वकृष्टिषु अनंतभागरूपेण विशेषेणहीनं ददाति यावत् पल्यासंख्यातप्रथमवर्गमूलमात्रकृष्टीरतीत्य उपरि एकामपूर्वकृष्टिं निर्वर्तति तावत्। एवं सर्वकृष्टिषु नवकबंधद्रव्यस्य निषेकप्ररूपणं ज्ञातव्यम्। अनेन प्रकारेण नवकबंध[२]द्रव्यकृताः अपूर्वकृष्टयोपि अनंता भवन्ति। एवं बंधकृष्टिस्वरूपं निरूपितं।

इदानीं संक्रमणकृष्टिस्वरूपं निरूप्यते। संक्रम्यमाणप्रदेशसमूहात् याः कृष्टयो निर्वत्तितास्ताः द्वयोः स्थानकयोर्निर्वर्त्यंते। किं तत्स्थानद्वयमिति चेत्। अवयवकृष्टीनां मध्येषु[३] संग्रहकृष्टीनामधश्च[४] करोति। क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टिं विना शेषसर्वैकादशसंग्रहकृष्टीनामधः तदसंख्यातैकभागमात्रीः अधस्तनकृष्टिनाम्नीरपूर्वकृष्टीः करोति तदेकादशसंग्रहकृष्ट्यवयवकृष्टिमध्येषु संक्रमणांतरकृष्ट्याख्याः अपूर्वकृष्टीः करोतीत्यर्थः। संग्रहकृष्टीनामधः याः कृष्टयः कृतास्ताः स्तोकाः। अवयवकृष्टीनां मध्येषु याः कृताः ता असंख्यातगुणाः। संग्रहकृष्टीनामधः याः कृष्टयः क्रियंते तासां पूर्वकृष्टिकारकद्वितीयसमये निर्वर्त्यमानापूर्वकृष्टीनां यद्विधानमुक्तं तन्निरवशेषतया कर्तव्यम्। अल्पविशेषोऽस्ति स क इति चेत्। इदानीं क्रियमाणाधस्तनापूर्वकृष्टीनां चरमकृष्टौ दीयमानप्रदेशसमूहात्पूर्वजघन्यकृष्टौ दीयमानप्रदेशसमूहः कृष्टिकारके असंख्यातभागहीनः स्यात्। इदानीं[५] असंख्यातगुणहीनमस्ति। कुतः। संप्रति अधस्तनकृष्टिद्रव्यान्मध्यमखंडद्रव्यस्यासंख्यातगुणहीनत्वात्। पुनरपि पूर्वकृष्टीनां चरमकृष्टौ दीयमानप्रदेशादपूर्वकृष्टीनां जघन्यकृष्टौ दीयमानप्रदेशः कृष्टिकारके असंख्यातभागाधिकः स्यात्। इदानीमसंख्यातगुणो भवेत्। कुतः। कृष्टिवेदकमध्यमखंडादधस्तनकृष्टेरसंख्यातगुणत्वात् अवयवकृष्टीनां मध्येषु याः कृष्टयः क्रियंते तासां पूर्वं बध्यमानप्रदेशेन निर्वर्त्यमानानामपूर्वकृष्टीनां यद्विधानं कृतं तत्सर्वं निरवशेषं क्रियते। अल्पविशेषः स क इति चेत्। बंधद्रव्येण निर्वर्त्यमानापूर्वकृष्टितः स्तोकतरकृष्टयंतराण्यतिक्रम्य संक्रम्यमाणप्रदेशसमूहेन निर्वर्त्यमानापूर्वकृष्टिः दृश्यमाना भवति। तानि कृष्टयंतराणि गणनया पल्यप्रथमवर्गमूलस्यासंख्यातैकभागमात्राणि अपकर्षणोत्कर्षणभागहारमात्राणीत्यर्थः। अत्र तात्पर्यनिरूपणं क्रियते। तद्यथा लोभसंज्वलनस्य तृतीयसंग्रहकृष्टेरायद्रव्यादैकाद्येकोत्तरनिजरूपो-

१. कृष्ट्यंतरद्रव्यस्यानंतैकभागत्वादपूर्वकृष्टिद्रव्यस्यानंतगुणत्वात्

२. बंधांतरकृष्टि संबंधि द्रव्यमिदं

स ख[१]
ख

३. प्रत्येकमेकस्थानं

४. अधश्चैकं स्थानमिति द्वौ स्थानौ

५. अनुभवने

नगच्छसंकलनमात्रपूर्वविशेषान् गृहीत्वा पृथक् संस्थापयेत्। पूर्वविशेषप्रमाणं किमित्ति चेत्। कृष्टिगततदानींतन सर्वद्रव्यं रूपोनाध्वार्द्धेन हीनद्विगुणगुणहान्या गुणितघातितावशिष्टसर्वकृष्ट्याया-मेन भक्तमेतावद्भवति। संदृष्टिः व १२ १- / ४ १६-४- / ख ख २ इदं वि इति कृत्वा पुनरपि अतीत[1]कृष्ट्यायाममात्र-विशेषान् आदिं कृत्वा एकविशेषमुत्तरं कृत्वा निजजघन्यकृष्ट्यायामं गच्छं कृत्वा पूर्वोक्त[2]संकलनसूत्रेण धनमानीय द्वितीयसंग्रहकृष्टेरायद्रव्यादपनीय पृथक् संस्थापयेत्। एवं लोभस्य प्रथमसंग्रहकृष्टिमादिं कृत्वा दशसंग्रहकृष्टीनां स्वस्वातीतकृष्ट्यध्वमात्रविशेषानादिं कृत्वा एकैकविशेषमुत्तरं कृत्वा स्वस्वकृष्ट्यायामं गच्छं कृत्वा संकलय्य स्वस्वायद्रव्येभ्यो गृहीत्वा पृथक् संस्थापयेत्। क्रोधवेदकप्रथमसंग्रहकृष्टेरायद्रव्याभावात्पूर्वं परस्थानगोपुच्छपूरणकाले पृथक्निक्षिप्त[3]घातद्रव्यान्निजसंकलनाद्रव्यं गृहीत्वा पृथक् संस्थापयेत्। एतानि संक्रमणद्रव्य-प्रतिबद्धाधस्तनशीर्षद्रव्यविशेषनामानि भवन्ति।

संदृष्टिः

१- वि ४ ४- ५ ख२४ ख २४।२	१- वि ४ ४- ११ ख२४ ख २४।२	१- वि ४ ४- १७ ख२४ ख २४।२	१- वि ४ ४- ४५५ ख२४ ख २४।२
१- वि ४ ४- ३ ख२४ ख २४।२	१- वि ४ ४- ९ ख२४ ख २४।२	१- वि ४ ४- १५ ख२४ ख २४।२	१- वि ४ ४- २१ ख२४ ख २४।२
१- वि ४ ४- १ ख२४ ख २४।२	१- वि ४ ४- ७ ख२४ ख २४।२	१- वि ४ ४- १३ ख२४ ख २४।२	१- वि ४ ४- १९ ख२४ ख २४।२
लो	या	मा	क्रो

पुनरपि लोभसंज्वलनस्य तृतीयसंग्रहकृष्टेः प्रथमकृष्टिं संस्थाप्याऽपकर्षणभागहारादसंख्यातगुणेन पल्यासंख्यातभागेन भक्त्वा एकखंडं स्व-स्वकृष्ट्यध्वना संगुण्य स्वस्वायद्रव्यादपनीय पृथक् संस्थापयेत्। क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकृष्टेर्घातद्रव्यादपनीय पृथक् संस्थापयेत्। एतानि संक्रमणद्रव्य-प्रतिबद्धमध्यमखंडनामानि भवन्ति -

१.द्वितीयादि संग्रहापेक्षया २. रूपेनोणो गच्छं इत्यादि ३. स्वघातद्रव्यस्यासंख्यातैकभागात्

संदृष्टिः

व १२ ४- ४-ओ aa ख २४ ख	व १२ ४- ४-ओ aa ख २४ ख	व १२ ४- ४-ओ aa ख २४ ख	व १२ ४-१३ ४-ओ aa ख २४ ख
व १२ ४- ४-ओ aa ख २४ ख	व १२ ४- ४-ओ aa ख २४ ख	व १२ ४- ४-ओ aa ख २४ ख	व १२ ४- ४-ओ aa ख २४ ख
व १२ ४- ४-ओ aa ख २४ ख	व १२ ४- ४-ओ aa ख २४ ख	व १२ ४- ४-ओ aa ख २४ ख	व १२ ४- ४-ओ aa ख २४ ख
लो	या	मा	क्रो

पुनरप्येकमध्यमखंडद्रव्याधिकं लोभसंज्वलनस्य तृतीयसंग्रहकृष्टेः प्रथमकृष्टिद्रव्यं संस्थाप्य क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टिं विना शेषैकादशसंग्रहकृष्टीनां स्व-स्वकृष्ट्यायामान् अपकर्षणभागहारादसंख्यातगुणेन पल्यासंख्यातेन भक्त्वैकभागेण संगुण्य स्वस्वायद्रव्येभ्यो गृहीत्वा पृथक्संस्थापयेत्। एतानि संग्रहाणामधो निर्वर्त्यमाननूतनकृष्टिप्रतिबद्धसमानखंडनामानि संदृष्टिः

व १२ ४- ४- ख २४ ओ a ख	व १२ ४- ४- ख २४ ओ a ख	व १२ ४- ४- ख २४ ओ a ख	०
व १२ ४- ४- ख २४ ओ a ख	व १२ ४- ४- ख २४ ओ a ख	व १२ ४- ४- ख २४ ओ a ख	व १२ ४- ४- ख २४ ओ a ख
व १२ ४- ४- ख २४ ओ a ख	व १२ ४- ४- ख २४ ओ a ख	व १२ ४- ४- ख २४ ओ a ख	व १२ ४- ४- ख २४ ओ a ख
लो	या	मा	क्रो

पुनरप्येकाद्येकोत्तरनिजवेद्यमानसर्वकृष्ट्यायामसंकलनामात्रोभयद्रव्यप्रतिबद्धविशेषान्[1] बंधकृष्टिनिजैकविशेषानंतैकभागहीनान् क्रोधसंज्वलनप्रथमसंग्रहकृष्टिघातद्रव्याद्गृहीत्वा पृथक् संस्थापितेषु तद्घातद्रव्यं समाप्तम्। पुनरपि रूपाधिकातीतकृष्ट्यायामाद्येकोत्तरनिजपूर्वापूर्वकृष्ट्यायामसंकलनामात्रोभयद्रव्यप्रतिबद्धविशेषान् निजद्वितीयसंग्रहकृष्ट्यायद्रव्याद्गृहीत्वा पृथक् संस्थापयेत्। एवं क्रोधतृतीयसंग्रहकृष्टिमादिं कृत्वा दशसंग्रहकृष्टिषु निजनिजातीत[2]रूपाधिककृष्ट्यायामा-

१. बंधकृष्टिभिः २. अत्र कोष्ठेष्वलिखितं रूपाधिकमस्तीति अत्र रचनायां सर्वत्रैकरूपं ऋणं निजैकविशेषानंतैकभागहीनत्वात्

द्व्येकोत्तरनिजनिज पूर्वापूर्वकृष्ट्यायामसंकलनामात्रोभयद्रव्यप्रतिबद्धविशेषान् स्व-स्वायद्रव्येभ्यो गृहीत्वा पृथक् संस्थापयेत्। बध्यमानसंग्रहकृष्टिषु निजैकविशेषानंतैकभाग[1] हीनान् गृहीत्वा पृथक् संस्थापयेदित्ययमर्थविशेषो ज्ञातव्य:। एतान्युभयद्रव्यप्रतिबद्धविशेषनामानि संदृष्टि:

वि ४- ४- ४७ ख२४ ख २४।२	वि ४- ४- ४१ ख२४ ख २४।२	वि ४- ४- ३५ ख२४ ख २४।२	वि ४- ४- २९ ख२४ ख २४।२
वि ४- ४- ४५ ख२४ ख २४।२	वि ४- ४- ३९ ख२४ ख २४।२	वि ४- ४- ३३ ख२४ ख २४।२	वि ४- ४- २७ ख२४ ख २४।२
वि ४- ४- ४३ ख२४ ख २४।२	वि ४- ४- ३७ ख२४ ख २४।२	वि ४- ४- ३१ ख२४ ख २४।२	वि ४- ४- १६९ ख२४ ख २४।२
लो	या	मा	क्रो

एतै: संक्रमणद्रव्यप्रतिबद्धचतुर्विधद्रव्यैर्हीनस्व-स्वायद्रव्याणि संस्थाप्य संक्रमणांतरकृष्ट्यानयन-निमित्तं त्रैराशिकं क्रियते। तद्यथा। एकमध्यमखंडाधिकस्य लोभसंज्वलनतृतीयसंग्रहस्य जघन्य-संग्रहकृष्टे: संदृष्टि [व १२ / ४- / ख] रेतावद्द्रव्यस्यैकांतरकृष्टिशलाका तदा [व १२।२ - / २४ ओ] एतावन्मात्र लोभसंज्वलन तृतीयसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धशेषायद्रव्यस्य किमिति त्रैराशिके कृते लब्धा: संक्रमणांतरकृष्टिशलाका एतावत्यो भवन्ति संदृष्टि: [४- / ख २४ ओ / २-] शेषदशसंग्रहकृष्टीनामपि स्व-स्वशेषायद्रव्याणीच्छाराशिं कृत्वा अनेन क्रमेण त्रैराशिके कृते लब्धा: संक्रमणांतरकृष्टिशलाका: संदृष्टि: -

४ - ख २४ ओ २-	४ - ख २४ ओ १-	४ - ख २४ ओ ३-	४ - ख २४ ओ २-	४ - ख २४ ओ १-	४ - ख २४ ओ ३-	४ - ख २४ ओ २-	४ - ख २४ ओ १-
४ - ख २४ ओ १५-	४ - ख २४ ओ १४-	४ - ख २४ ओ १८२-					

---

१. कुत इति चेत् चतु:प्रथमसंग्रहकृष्टिषु बध्यमानकृष्टीनामुभयद्रव्यविशेषेषु बध्यमानैकसमयप्र-बद्धानंतैकभागप्रतिबद्धबंधमध्यमखंडबंधविशेषाणां विद्यमानत्वात्। तेषां च निजपूर्वोक्त -विशेषानंतैकभागमात्रत्वात् अयमत्रार्थ:। बध्यमानकृष्टिषु निजैकविशेषानंतैकभागहीनसंक्रमण द्रव्यप्रतिबद्धोभयद्रव्यविशेषान् दत्त्वा पश्चात् बंधमध्यमखंडबंधविशेषैस्तन्न्यूनता पूर्यत इति आयोभयद्रव्यविशेष

एताभिः शलाकाभिः स्व-स्वसंग्रहकृष्टीनामायामे भक्ते[1] स्वस्वसंक्रमणांतरकृष्टीनामंतराणि भवन्ति तेषां संदृष्टिः

ओ २-	ओ १-	ओ ३-	ओ २-	ओ १-	ओ ३-	ओ २-	ओ १-	ओ १५-	ओ १४-	ओ १८२-

अत्र संक्रमणांतरकृष्टिशलाकाभिः स्व-स्वायद्रव्यशेषे भक्ते[2] लब्धैकभागस्य तच्छलाका एव गुणकार[3]स्वरूपेण स्थापयेत्। एतानि संक्रमणांतरकृष्टिप्रतिबद्धसमानखंडद्रव्यनामानि भवन्ति। संदृष्टिः

व १२ ४- ३- ४- ख २४ ओ ख	व १२ ४- ३- ४- ख २४ ओ ख	व १२ ४- १५- ४- ख २४ ओ ख	०
व १२ ४- १- ४- ख २४ ओ ख	व १२ ४- १- ४- ख २४ ओ ख	व १२ ४- १- ४- ख २४ ओ ख	व १२ ४- १८२- ४- ख २४ ओ ख
व १२ ४- २- ४- ख २४ ओ ख	व १२ ४- २- ४- ख २४ ओ ख	व १२ ४- २- ४- ख २४ ओ ख	व १२ ४- १४- ४- ख २४ ओ ख

एवं संक्रम्यमाणप्रदेशैर्निर्वर्त्यमानकृष्टीनां पंचप्रकारद्रव्यविभंजनविधानमुक्तम्। इदानीं बध्यमान-प्रदेशैर्निर्वर्त्यमानकृष्टीनां द्रव्यविभंजनं क्रियते। तद्यथा। मोहनीयस्यैकसमयप्रबद्धं संस्थाप्यावल्यसंख्यातभागेन भक्त्वा एकभागमपनीय शेषबहुभागद्रव्यं समानतया चतुःपुंजान् कृत्वा अपनीतैकभागमावल्यसंख्यातेन भक्त्वा एकभागमपनीय शेषबहुभागप्रथमपुंजे दत्ते लोभसंज्वलनैकसमयप्रबद्धप्रमाणं भवति [। स ७।४] अपनीतैकभागमावल्यसंख्यातेन भक्त्वा एकभाग-मपनीय बहुभागेषु द्वितीयपुंजे दत्तेषु मायासंज्वलनैकसमयप्रबद्धप्रमाणं [स- ७।४] भवति। तमपनीतैकभागमावल्यसंख्यातेन भक्त्वा एकभागमपनीय बहुभागेषु तृतीयपुंजे दत्तेषु

---

१. प्र [४ - ख २४ ओ २-] फ [४ ख २४] इ १ लब्धं [ओ २-]

२. प्र [४ - २- ख २४ ओ] फ [व १२ २- २४ ओ] इ कृ १

३. प्र कृ १ फ [व १२ ४ ख] इ [४ - २- ख २४ ओ]

क्रोधसंज्वलनैकसमयप्रबद्धप्रमाणं [स= / ७।४] भवति। शेषैकभागे चतुर्थपुंजे दत्ते मानैकसमयप्रबद्ध-प्रमाणं [स≡ / ७।४] भवेत्। एतेषु द्रव्येषु पूर्वोक्तबंधांतरविशेषसंकलनां[1] [2]पूर्वैकविशेषानंतैकभागमात्र-द्रव्यं चापनीय त्रैराशिकं कुर्यात्। तद्यथा। एकमध्यमखंडद्रव्याधिकलोभसंज्वलनतृतीयसंग्रहकृष्टे-र्जघन्यकृष्टिमात्रद्रव्यस्य [स १२ / ४ / ख] एक बंधांतरकृष्टिशलाका तदा एतावद्[3]द्रव्यस्य [स / ४] किमिति त्रैराशिके कृते। षड्गुणहानिभि: पूर्वसर्वकृष्ट्यायामं भक्त्वा तत्रैकभागमात्र्यो बंधांतरकृष्टयो भवन्ति। ता: माने स्तोका: क्रोधे विशेषाधिका:। मायायां विशेषाधिका: लोभे विशेषाधिका:तासामुक्तक्रमेण संदृष्टि: [मा ४ / ख ८।६ | क्रो ४ / ख ८।६ | या ४ / ख ८।६ | लो ४ / ख ८।६] पूर्वोक्त[4]संक्रमणांतरकृष्टिशलाकाभ्य: एता बंधांतर-कृष्टिशलाका असंख्यातगुणहीना: इति ज्ञातव्यम्। कुत:। अपकर्षणभागहारमात्रसंक्रमणांतरकृष्टि-भागहारात् पल्यासंख्यातप्रथमवर्गमूलमात्रबंधांतरकृष्टीनां भागहारस्यासंख्यातगुणत्वात्। ताभि: शलाकाभि: स्व-स्वसंग्रहकृष्टीनामधस्तनोपरितनमसंख्यातैकभागं त्यक्त्वा संक्रमणांतरकृष्टिसहित-मध्यमासंख्यातबहुभागमात्रकृष्टिषु भक्तासु[5] बंधांतरकृष्टीनामंतराणि गुणहानिचतुर्भगिमात्राणि भवन्ति। क्रोधस्य त्रयोदशगुणानि भवन्ति। तेषां क्रमेण संदृष्टि: [८/४ | ८/४ | ८/४ | ८।१३/४] एतान्यंतराणि पूर्वोक्तसंक्रमणांतरकृष्टीनामंतरेभ्यो[6]ऽसंख्यातगुणानी ति ज्ञातव्यम्।

[8]पुनरपि स्वस्वनवकबंधसकलसमयप्रबद्धं संस्थाप्यानंतेन भक्त्वा एकभागं पृथगपनीय बहुखंडात् स्वस्वबध्यमानचतु:संग्रहकृष्टिप्रतिबद्धबंधांतरकृष्टिषु चरमादिबंधांतरकृष्टिस्थितान् अतीतसर्व-

---

१. पूर्वोक्तबंधांतरकृष्टिसंबंधिचयसंकलनां द्रव्यं। २. नवकबंधसमयप्रबद्धानंतैकभागं बंधविशेष-बंधमध्यम- [ ] खंडयोग्यं पूर्वविशेषानंतैकभागमात्र चेत्यर्थ:।

३. अपवर्त्य लब्धं [४ / ख ८।६]

४. आभ्य: [४ / ख २४ ओ / २] एता [४ / ख ८।६] पल्यासंख्यातप्रथमवर्गमूलत्वादसंख्यातगुणत्वहीना भागहारबाहुल्याद्राशेर्हीनत्वमिति।

५. १. प्र [४ / ख ८।६] फ [४ / ख २४] इ १ लब्ध [८/४] इत्यादिनेतव्यं ६. आयामेभ्य:

७. गुणहानि चतुर्थभागऽऽयाम: $\frac{८}{४}$ असंख्यातगुणा:

[वि ८ / ४] [वि ४ १३ ।११ / ख २४ प १६ / a] [१– / वि ८।१३ / ४] ग [४ / ख ८।६]

८. पुन: एक एव संबंधो न कर्तव्य:

कृष्ट्यायाममात्रविशेषान् आदिं कृत्वा[१] स्वस्वरूपाधिकांतरमात्रविशेषान् उत्तरं कृत्वा स्वस्व बंधांतरकृष्टिशलाका गच्छं कृत्वा संकलय्यापनीय पृथक् संस्थापयेत्। एतानि बंधांतरकृष्टिविशेषसंज्ञानि भवन्ति। संदृष्टिः

वि ४ ४३।४ ख २४।२ ख ८।६	वि ४ ३७।४ ख २४।२ ख ८।६	वि ४ ३१।४ ख २४।२ ख ८।६	वि ४ ।१३।४ ख २४।२ ख ८।६

एकविशेषानंतैकभागहीनतया पूर्वमानीतोभयद्रव्यविशेषेषु एषामवस्थानमस्तीति ज्ञातव्यम्। पुनरपि अपनीतशेषबहुखंडद्रव्याणि स्व-स्वबंधांतरकृष्टिशलाकाभिर्भक्त्वा[२] एकखंडस्य ताः एव शलाकाः गुणकार[३]स्वरूपेण संस्थापयेत्। एतानि बंधांतरकृष्टिसमानखंडद्रव्यसंज्ञानि संदृष्टिः -

व १२ ४ ४ ख ८।६ ख	व १२ ४ ४ ख ८।६ ख	व १२ ४ ४ ख ८।६ ख	व १२ ४ ४ ख ८।६ ख

पुनरपि पूर्वं पृथग्निक्षिप्तनवकबंधसमयप्रबद्धानंतैकभागं स्व-स्वबंधकृष्ट्यध्वना रूपोनाध्वार्द्धहीनद्विगुणगुणहान्या गुणितेन भक्त्वा एकभागं बंधकृष्ट्यायामसंकलनया संगुण्य स्वस्वनवकबंधसमयप्रबद्धानंतैकभागादपनीय पृथक् संस्थापयेत् एतानि बंधविशेषसंज्ञानि संदृष्टिः

वि ४ ४ ख २४ ख २४।२	वि ४ ४ ख २४ ख २४।२	वि ४ ४ ख २४ ख २४।२	वि ४ ४।१६९ ख २४ ख २४।२

पुनरप्यपनीतशेषद्रव्याणि स्व-स्वबंधकृष्टयध्वना भक्त्वा[४] एकभागस्य तमेवाध्वानं गुणकार[५]स्वरूपेण संस्थापयेत्। एतानि बंधमध्यमखंडसंज्ञानि

संदृष्टिः

स- ४ ४ ख ४ ख २४ ख २४	स- ४ ४ ख ४ ख २४ ख २४	स- ४ ४ ख ४ ख २४ ख २४	स- ४।१३ ४ ख ४।१३ ख २४ ख।२४

---

१. पूर्वं याः बध्यमान चतुःप्रथमसंग्रहेषु बंधांतरकृष्टयः सामान्यरूपेणोक्तास्तासां चरमादि बंधांतरकृष्टिस्थितानित्यादिना वक्ष्यमाणविशेषु

२. प्र १ फ [व १२ / ४ / ख] इ [४ / ख ८।६] ३. प्र [४ / ख ८।६] फ [स = / ४] इ १

४. प्र [४ १३ / ख २४] फ [स - / ४ ख] इ १ ५. चतुर्णां प्रथमसंग्रहरचना

एवं स्थितद्रव्येषु प्रथमं संक्रम्यमाणद्रव्येण कृष्टिषु दीयमानप्रदेशस्य श्रेणिनिरूपणं क्रियते। तद्यथा लोभसंज्वलनस्य तृतीयसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धपंचविधद्रव्येष्वधस्तनखंडेभ्य एकखंडं मध्यमखंडेभ्य एक-खंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्यः सर्वपूर्वापूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा तदधःनिर्वर्त्यमाना-पूर्वजघन्यकृष्टौ निक्षिपति। तच्चाग्रतनकृष्टिषु दीयमानद्रव्याद्बहुलं। पुनरप्यधस्तनखंडेभ्य एकखंडं मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीतायामहीनसर्वायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा द्वितीय-कृष्टौ निक्षिपति। तद्विशेषहीनं भवति। अनेन क्रमेणाधस्तनखंडेभ्य एकैकखंडं मध्यमखंडेभ्य एकैक-खंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वहीनसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च गृहीत्वा तृतीयादिकृष्टौ निक्षिपति यावदपूर्वकृष्टीनां चरमकृष्टिस्तावत्। तत्रैव तदधस्तनखंडप्रतिबद्धद्रव्यं समाप्तम्।

पुनस्तन्मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योऽतीताध्वहीनसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च गृहीत्वा पूर्वकृष्टीनां प्रथमकृष्टौ दत्तेषु चरमापूर्वकृष्टिदत्तद्रव्यादिदमसंख्यातगुणहीनं।कुतः। कृष्टिवेदके मध्यमखंडादधस्तनकृष्टेरसंख्यातगुणत्वात् उभयद्रव्यविशेषेणापि हीनं भवति। पुनरधस्तनशीर्षपूर्वद्रव्यविशेषेभ्य एकविशेषं मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्व-हीनसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च गृहीत्वा तद्द्वितीयकृष्टौ निक्षिपति। तद्विशेषहीनं भवति। हीनप्रमाणं कियदिति चेत्। पूर्वविशेषहीनोभयद्रव्यविशेषमात्रं। अनेन क्रमेण तृतीयादिकृष्टौ ददाति। यावत् अपकर्षणभागहारस्यार्द्धमात्रपूर्वकृष्टीरतिक्रामति तावत् अल्पविशेषः स क इति चेत्। पूर्वकृष्टिषु द्रव्यं निक्षिपति तदा अधस्तनशीर्षपूर्वविशेषेभ्योऽतीतपूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वहीनसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च गृहीत्वा ददाति। इत्ययमर्थः सर्वत्रापि ग्राह्यः। तदुपरितनांतरे संक्रमणांतरकृष्टिप्रतिबद्धसमानखंडद्रव्येभ्य एकखंडं संक्रमणांतरकृष्टिप्रतिबद्धोभयद्रव्यविशेषेर्भ्योतीताध्वहीनसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च गृहीत्वा ददाति। तच्च तदधस्तनपूर्वकृष्टिदत्तद्रव्यादसंख्यातगुणं कुतः। रूपोनातीतपूर्वकृष्ट्यायाममात्र [1]पूर्वविशेषाधिकमध्यमखंडं हीनसमानखंडस्याऽधस्तनपूर्वकृष्ट्या समानस्य ततोऽसंख्यात-गुणत्वात्। उभयद्रव्यविशेषेणापि हीनं भवति। तदुपरितनपूर्वकृष्टावधस्तनशीर्षविशेषेभ्यो-तीतपूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोनसर्वाध्व-मात्रविशेषांश्च गृहीत्वा निक्षिप्तेषु संक्रमणांतरकृष्टिदत्तद्रव्यादसंख्यातगुणहीनं भवेत्। कुतः। अतीतपूर्वकृष्ट्यायाममात्रपूर्वविशेषाधिकमध्यमखंडस्योपरितनपूर्वकृष्टिसमानात्तदूनसमानखंडा-दसंख्यातगुणहीनत्वात्। इत उपरि पूर्वकृष्टिषु अधस्तनशीर्षविशेषेभ्योतीतकृष्ट्यायाममात्र-विशेषान् मध्यमखंडेभ्य एकैकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोनसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च गृहीत्वा

---

१. अधस्तनशीर्ष

निक्षिपन् गच्छति। यावदपकर्षणभागहारस्यार्द्धमात्रकृष्टीरतिक्रामति तावत्। तदुपरितनांतर संक्रमणांतरकृष्टिप्रतिबद्धसमानखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोनसर्वाध्वमात्र-विशेषांश्च स्वीकृत्याधस्तनपूर्वकृष्टिदत्तप्रदेशादसंख्यातगुणं ददाति। उपरितनपूर्वकृष्टावधस्तनशीर्ष-विशेषेभ्योतीतपूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोन-सर्वाध्वमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्याधस्तनसंक्रमणांतरकृष्टौ दत्तप्रदेशादसंख्यातगुणहीनं ददाति। अत्रासंख्यातगुणत्वस्यासंख्यातगुणहीनत्वस्य च कारणं प्राग्वदेव वक्तव्यम्। अनेन प्रकारेणापूर्वकृष्टितः पूर्वकृष्टौ देयप्रदेशस्यासंख्यातगुणहीनत्वं, रूपोनांतरमात्रपूर्वकृष्टिषु पूर्वविशेषोनोभयद्रव्यविशेषहीनत्वं, पूर्वकृष्टितः अपूर्वकृष्टौ देयप्रदेशस्यासंख्यातगुणत्वं च ग्राह्यं। यावत् लोभस्य तृतीयसंग्रहकृष्टेश्चरमकृष्टिस्तावत्। अत्रैव तत्प्रतिबद्धपंचविधद्रव्याणि समाप्तानि। पुनस्तद्द्वितीयसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धपंचविधद्रव्याणि संस्थाप्याधस्तनसमानखंडेभ्य एकखंडं मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोनसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च गृहीत्वा तदधो निर्वर्त्यमानापूर्वकृष्टीनां जघन्यकृष्टिस्वरूपेणाधस्तनसंग्रहकृष्टेश्चरमपूर्वकृष्टौ दत्तप्रदेशादसंख्यातगुणं ददाति। असंख्यातगुणं कथं जातमिति चेत्। रूपोनाधस्तनपूर्वकृष्ट्यायाममात्र-पूर्वविशेषाधिकमध्यमखंडोनसमानखंडस्याधस्तनसंग्रहचरमकृष्टिसमानस्य ततोऽसंख्यातगुणत्वात्। उभयद्रव्यविशेषेणापि हीनं भवति। अनेन क्रमेणाधस्तनखंडेभ्य एकखंडं मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्येभ्योतीताध्वोनसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य निक्षिपन् गच्छति यावदधस्तनकृष्टीनां चरमकृष्टिस्तावत्। अत्रैतदधस्तनकृष्टिप्रतिबद्धद्रव्यं समाप्तम्।

तस्मात्पूर्वकृष्टीनामादिकृष्टावधस्तनशीर्षविशेषेभ्यातीतपूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोनसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य चरमापूर्वकृष्टौ दत्तप्रदेशादसंख्यातगुणहीनं ददाति। असंख्यातगुणहीनं कथं जातमिति चेत्। अतीतपूर्व-कृष्ट्यायाममात्रविशेषाधिकमध्यमखंडस्योपरितनसंग्रहजघन्यपूर्वकृष्टिसमानात्तदूनसमानखंडात् असंख्यातगुणहीनत्वात्। उभयद्रव्यविशेषेणापि हीनं भवति। ततोऽग्रतृतीयसंग्रहकृष्ट्युक्तक्रमेण द्रव्यनिक्षेपः स्यात् यावच्चरमकृष्टिस्तावत्। अल्पविशेषः। स क इति चेत्। अत्रापकर्षणभागहार-मात्रायाममतिक्रम्य संक्रमणांतरकृष्टिं निर्वर्तयतीति ज्ञातव्यम्। अत्र द्वितीयसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्ध-पंचविधद्रव्याणि समाप्तानि। अधुना प्रथमसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धपंचविधसंक्रमणद्रव्यचतुर्विधबंधद्रव्या-णि क्रमेण संस्थाप्य दीयमानद्रव्यस्य श्रेणिनिरूपणं क्रियते। तद्यथा। अधस्तनखंडद्रव्येभ्य एकखंडं मध्यमखंडद्रव्येभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोनसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्याधो-

निर्वर्त्यमानाऽपूर्वकृष्टीनां जघन्यकृष्टिस्वरूपेणाधस्तनसंग्रहकृष्टे[१]श्चरमपूर्वकृष्टौ दत्तप्रदेशादसंख्यातगुणं ददाति। द्वितीयकृष्टिमादिं कृत्वा यावत् चरमापूर्वकृष्टिस्तावत् एकैकाधस्तनखंडमेकैकमध्यमखंडमतीताध्वोनसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य ददाति। ततः पूर्वकृष्टीनामादिकृष्टावधस्तनशीर्षविशेषेभ्योतीतपूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोनसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य चरमापूर्वकृष्टौ दत्तद्रव्यादसंख्यातगुणहीनं ददाति। अत्रासंख्यातगुणत्वस्यासंख्यातगुणहीनत्वस्य च कारणं प्राग्वदेव ग्राह्यं। तत उपरि रूपोनांतरमात्रपूर्वकृष्टिषु कृष्टिं प्रति पूर्वविशेषोनोभयद्रव्यविशेषेण हीनं ददाति। तदनंतरकृष्टावसंख्यातगुणं ददाति। तदुपरितनपूर्वकृष्टावसंख्यातगुणहीनं ददाति। अनेन क्रमेण निक्षिपन् गच्छति। यावत् बंधजघन्यकृष्टेरधस्तन[२] पूर्वकृष्टिस्तावत् तदुपरितनानंतरे असंख्यातगुणं ददाति। तदुपरितनबंधजघन्यकृष्टिसमानपूर्वकृष्टावधस्तनशीर्षविशेषेभ्योतीतपूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोनसर्वाध्वमात्रविशेषान् निजैकविशेषानंतैकभागहीनान् स्वीकृत्याधस्तनसंक्रमणांतरकृष्टौ दत्तद्रव्यादसंख्यातगुणहीनं ददाति। तत्रैव बंधद्रव्यप्रतिबद्धमध्यमखंडेभ्य एकखंडं बंधद्रव्यविशेषेभ्यो निजबंधकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा निक्षिप्तेषु बंधेन दीयमानद्रव्यं तत्[३] बहुकं भवति। तत उपरि रूपोनांतरमात्रपूर्वकृष्टिषु पूर्वविशेषोनोभयद्रव्यविशेषेण निजैकविशेषानंतैकभागेन च हीनतया संक्रमणद्रव्यं ददाति। बंधद्रव्ये पुनरेकैकमध्यमखंडं निजातीताध्वोनसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य ददाति। तदनंतरांतरेसंक्रमणांतरप्रतिबद्धसमानखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोनसर्वाध्वमात्रविशेषान् निजैकविशेषानंतैकभागहीनान् स्वीकृत्याधस्तनपूर्वकृष्टौ दत्तसंक्रमणद्रव्यादसंख्यातगुणं ददाति। तत्रैव बंधद्रव्यं निजैकविशेषेण हीनं निक्षिपति। तदुपरितनपूर्वकृष्टावधस्तनशीर्षविशेषेभ्योतीतपूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् संक्रमणद्रव्यप्रतिबद्धमध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयविशेषेभ्योतीताध्वोनसर्वाध्वमात्रविशेषान् निजैकविशेषानंतैकभागहीनान् स्वीकृत्य संक्रमणांतरकृष्टौ दत्तप्रदेशादसंख्यातगुणहीनं ददाति। तत्रैव बंधद्रव्यं निजैकविशेषहीनं ददाति। एवं जघन्यकृष्टेरारभ्यापकर्षणभागहारस्य त्रिभागमात्रगच्छमतीत्य तदुपरितनांतरेष्वेकैकसंक्रमणांतरकृष्टयो निर्वर्तिता भवन्ति। अनेन क्रमेण रूपाधिकसंक्रमणांतरेण [१- / ओ / ३] गुणहानिचतुर्थभागमात्र-[८ / ४] बंधातरे भक्ते लब्धमात्रसंक्रमणांतरकृष्टीर्यावन्निर्वर्तयति तावत् बंधेन

१. लोभद्वितीयसंग्रहचरमकृष्टि

२. इयं मर्यादा बंधजघन्यकृष्टेरधस्तनद्विचरमकृष्टिपर्यंतं एकां पूर्वकृष्टिं पुनस्तदनंतरमेकां संक्रमणांतरकृष्टिं गत्वा तदनंतरजघन्यबंधकृष्टिप्रारंभः

३. अग्रतनकृष्टिषु दीयमानद्रव्याद्

निर्वर्त्यमानप्रदेशं निजैकविशेषहीनतया ददाति। तत्र संक्रमणद्रव्येण निर्वर्तितचरमांतर-कृष्टेरुपरितनांतरे बंधांतरकृष्टिप्रतिबद्धसमानखंडेभ्य एकखंडं बंधद्रव्यप्रतिबद्धो[१]भयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोनसर्वाध्वमात्रान् बंधांतरद्रव्यविशेषेण प्रवेशितान् विशेषान्[२] [३]निजैकविशेषानंतैकभागहीनान् बंधद्रव्यप्रतिबद्धैकमध्यमखंडं निजातीताध्वोननिजसर्वाध्वमात्रबंधद्रव्यविशेषांश्च स्वीकृत्य निक्षिप्तेषु अधस्तनसंक्रमणांतरकृष्ट्युपरि दत्तबंधद्रव्यादिदमनंतगुणम्। तदुपरितनपूर्वकृष्टावधस्तनशीर्षविशेषेभ्योतीतपूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् संक्रमणद्रव्यप्रतिबद्ध-मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोनसर्वाध्वमात्रविशेषान् निजैकविशेषानंतैक-भागहीनान् गृहीत्वा दत्तेषु बंधांतरकृष्टेरधस्तनसंक्रमणांतरकृष्टिदत्तप्रदेशादिदमसंख्यातगुणहीनं भवति। तत्रैव बंधैकमध्यमखंडमतीतबंधाध्वोननिजसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य दत्तेषु अधस्तनबंधांतरकृष्टिदत्तप्रदेशादिदमनंतगुणहीनं भवति। अत्रासंख्यातगुणत्वस्यासंख्यात-गुणहीनत्वस्य च कारणं प्राग्वदेव वक्तव्यम्। अनंतगुणत्वस्यानंतगुणहीनत्वस्य च कारणं किमिति चेत् बंधद्रव्याद्बंधांतरद्रव्यस्यानंतगुणत्वमेव कारणम्। पूर्वं रूपाधिकसंक्रमणांतरेण बंधांतरे भक्ते लब्धमात्रसंक्रमणांतरकृष्टीरतीत्य तासु चरमसंक्रमणांतरकृष्टेरुपरि अनंतरिततया एकांतरे अनुलग्नतया यथा प्रथमबंधांतरकृष्टिर्निर्वर्तिता। तथैव शेषबंधांतरकृष्टयोपि यथाक्रमेण निर्वर्त्यन्ते यावच्चरमबंधांतरकृष्टिस्तावत् एवं निर्वर्तितासु बंधांतरकृष्टिप्रतिबद्धसमानखंडद्रव्याणि बंधद्रव्यादुभयद्रव्यविशेषेषु प्रवेशितबंधद्रव्यप्रतिबद्धोभयद्रव्यविशेषाः समाप्ताः। तत उपरि पूर्वोक्तक्रमेण चतुर्विधसंक्रमणद्रव्याणि द्विविधबंधद्रव्याणि च यथासंभवं निक्षिपन् गच्छति यावत्बंधोत्कृष्टकृष्टिस्तावत् तत्रैव द्विविधबंधद्रव्यं समाप्तम्।।

तत उपरि चतुर्विधसंक्रमणद्रव्याण्येव स्वीकृत्य निक्षिपन् गच्छति यावत् चरमकृष्टिस्तावत्। अत्र चतुर्विधसंक्रमणद्रव्यं समाप्तम्।। एवं लोभसंज्वलनस्य संग्रहकृष्टित्रयस्य दीयमानक्रमः उक्तस्तथैव मायामानसंज्वलनयोरपि वक्तव्यः। अल्पविशेषः। स क इति चेत्। मानसंज्वलनस्य प्रथमसंग्रहकृष्टौ संक्रमणद्रव्येण निर्वर्त्यमानापूर्वकृष्टीनामंतरमपकर्षणभागहारस्य पंचदशभागमात्रं स्यात्। क्रोधसंज्वलनस्य तृतीयसंग्रहकृष्टेर्द्वितीयसंग्रहकृष्टेश्च लोभवद्दीयमानक्रमोऽस्ति। अल्पविशेषः। स क इति चेत्। संक्रमणांतरकृष्टीनामंतरं तृतीयसंग्रहकृष्टावपकर्षणभागहारस्य चतुर्दशभागः द्वितीयसंग्रहकृष्टौ द्व्यशीतिशतभागः। एतावानेव विशेषः। अन्य कश्चिद्विशेषो नास्ति लोभ-मायामानानां बध्यमानसंग्रहकृष्टीनामधस्तनोपरितनबंधरहितासंख्यातैकभागमात्रकृष्टिषु संक्रमणांतरकृष्टयो निर्वर्त्यन्ते इति ज्ञातव्यम्। तत उपरि क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टेश्चरमकृष्टौ दत्त-

---

१. बंधद्रव्येण सहितोभयद्रव्यविशेषआयद्रव्यसंबंधी इत्यर्थः। २. विशेष्य पदं ३.उभयद्रव्यविशेष

संक्रमणप्रतिबद्धद्रव्यात्क्रोधसंज्वलनस्यानुभूयमानप्रथमसंग्रहकृष्टेर्जघन्यकृष्टौ[१] दत्तविशेषघातद्रव्यमनंतभागहीनं भवति। उपर्यपि पूर्वं विभक्तत्रिविधविशेषघातद्रव्याण्यव्यवधानेन पूर्वविशेषहीनोभयद्रव्यविशेषमात्रहीनं निक्षिपति। यावद्बध्यमानजघन्यकृष्टेरधस्तनकृष्टिस्तावत्। तत उपरि बध्यमानजघन्यकृष्टिसमानपूर्वकृष्टावधस्तनशीर्षविशेषेष्वतीतपूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् मध्यखंडष्वेकखंडमुभयद्रव्यविशेषेष्वतीताध्वोनसर्वाध्वमात्रविशेषान् निजैकविशेषानंतैकभागहीनान् गृहीत्वा ददाति। तत्रैव बंधद्रव्यप्रतिबद्धैकमध्यमखंडं निजबध्यमानकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा दत्तेषु तत् अग्रतनकृष्टिषु देयद्रव्याद्बहुकं। तत उपरि गुणहानिचतुर्भागाधिकत्रिगुणहानिमात्र[२]कृष्टिषु पूर्वविशेषोनोभयद्रव्यविशेषानंतैकभागेन च हीनतया विशेषघातद्रव्याणि ददाति। बंधद्रव्ये पुनर्निजैकमध्यमखंडं निजातीताध्वोननिजसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य ददाति।[३] तदुपरितनांतरे बंधांतरकृष्टिप्रतिबद्धसमानखंडेष्वेकखंड [४]तदुभयद्रव्यविशेषेष्वतीतसकलाध्वोनसर्वाध्वमात्रविशेषान् निजैकविशेषानंतैकभागोनान् बंधद्रव्यप्रतिबद्धमध्यमखंडेष्वेकखंडमतीतबंधाध्वोननिजसर्वाध्वमात्रतत्प्रतिबद्धविशेषांश्च गृहीत्वा निक्षिप्तेषु अधस्तनकृष्टिदत्तबंधद्रव्यादनंतगुणं भवन्ति। तत्प्रतिबद्धसर्वद्रव्यादेकोभयद्रव्यविशेषहीनं च भवति। तदुपरितनकृष्टावधस्तनशीर्षविशेषेष्वतीतपूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् मध्यमखंडेष्वेकखंडमुभयद्रव्यविशेषेष्वतीतसर्वाध्वोनसर्वाध्वमात्रविशेषान् निजैकविशेषानंतैकभागहीनान् विशेषघातद्रव्याद्गृहीत्वा ददाति। एवं निक्षिप्ते बंधांतरकृष्टेरधस्तनकृष्टिदत्तनिजद्रव्याद्विशेषद्वयहीनं भवति। तत्रैव बंधैकमध्यमखंडस्य निजातीताध्वोननिजसर्वाध्वमात्रविशेषाणां च निक्षेपे बंधांतरकृष्टिदत्तद्रव्यादनंतगुणहीनं भवति। अनेन क्रमेणोपरितनकृष्टिष्वपि द्रव्यनिक्षेपं करोति यावत् बंधोत्कृष्टकृष्टिस्तावत्। तत उपरिविशेषघातद्रव्यमेव विशेषहीनतया निक्षिपति। यावत् निजोत्कृष्टकृष्टिस्तावत्। कृष्टिषु दीयमानद्रव्यश्रेणिक्रमः इत्थमेवास्तीति कथं ज्ञायते इति चेत्। द्वादशसंग्रहकृष्टीनां दृश्यमानप्रदेशमेकगोपुच्छाकारेण स्थापयितुं संक्रमणबंधद्रव्यद्वयं आश्रित्यानंतरस्थानेषु उष्ट्रकूटश्रेणिप्ररूपकयतिवृषभमुनिवदनवनजातविनिर्गतचूर्णिसूत्राद् ज्ञातव्यः। एवं कृष्टिवेदकप्रथमसमये दीयमानद्रव्यस्य श्रेणिनिरूपणं कृतम्। द्वितीयादिसमयेष्वपि दीयमानद्रव्यस्य श्रेणिनिरूपणमनेन क्रमेण कर्तव्यम्। दृश्यमानद्रव्यं पुनर्लोभसंज्वलनतृतीयसंग्रहस्य जघन्यकृष्टौ बहुकं भवति।

---

१. एकचयहीनमेव ज्ञातव्यं

२. $\boxed{\frac{८।१३}{४}}$ इदं भिद्यते चेत् तदा एतावद्भवति ८।३।

३. अत्र त्रयोदशगुणकारे एक पृथक् कृते एवं $\boxed{\frac{८।१}{४}}$ शेष द्वादशगुण $\boxed{\frac{८।१२}{४}}$ अपवर्तिते त्रिगुणहानिं ८।३ अस्यां पृथक् कृते $\boxed{\frac{८}{४}}$ । गुणहानि चतुर्थभागोधिकः इति तात्पर्यं।

४. आयद्रव्यसंबंधि उभयद्रव्यमित्यादि।

द्वितीयकृष्टावुभयद्रव्यविशेषमात्रेणानंतभागरूपेण हीनं एवमव्यवधानेनोभयद्रव्यविशेषमात्रेण हीनं भवति यावत्क्रोधसंज्वलनप्रथमसंग्रहस्य घातितावशिष्टोत्कृष्ट-कृष्टिस्तावत् एवं निक्षिप्तद्रव्याणां संदृष्टिः →

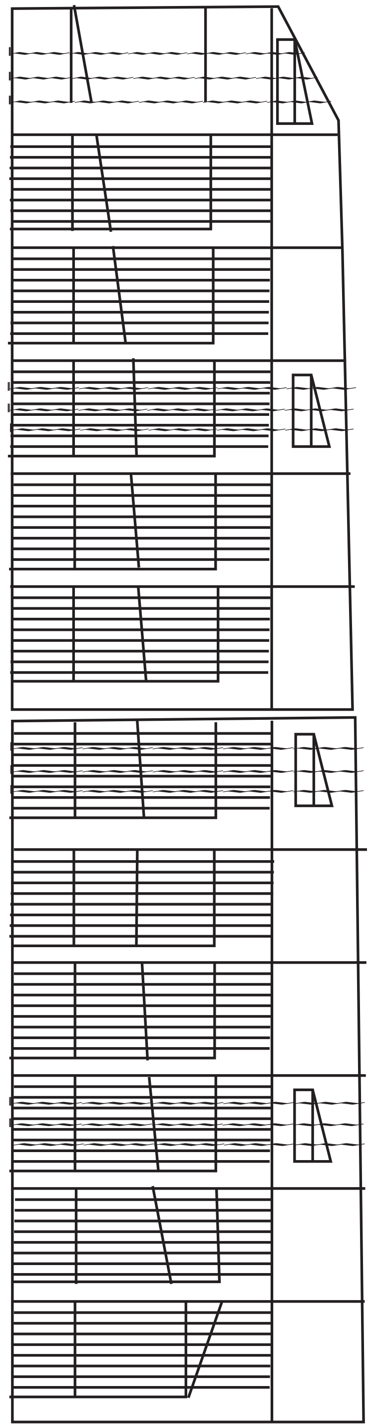

इति तात्पर्यार्थनिरूपणं समाप्तम्।।

इतोग्रे सर्वसमयेषु घातकृष्टीनामल्पबहुत्वमुच्यते। तद्यथा प्रथमसमयकृष्टिवेदकेन क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टेरसंख्यातैक-भागो हन्यते। प्रथमसमये याः कृष्टयो हतास्ता बह्व्यः द्वितीयसमये याः कृष्टयो हतास्ता असंख्यातगुणहीना भवन्ति। संदृष्टिः -

लो	या	मा	क्रो
४ ख २४ ओ a a	४ ख २४ ओ a a	४ ख २४ ओ a a	४।१३ ख २४ ओ a a
४ ख २४ ओ a a	४ ख २४ ओ a a	४ ख २४ ओ a a	४ ख २४ ओ a a
४ ख २४ ओ a a	४ ख २४ ओ a a	४ ख २४ ओ a a	४ ख २४ ओ a a

तृतीयादिसमयेषु सर्वसंग्रहघातकृष्टीनां एवं असंख्यातगुणहीन-क्रमेणाल्पबहुत्वं वक्तव्यम्। यावत्क्रोधसंग्रहप्रथमकृष्टिवेदकस्य द्विचरमसमये नवकबंधोच्छिष्टावलिवर्जितानां विवक्षितसंग्रह-सर्वावयवकृष्टीनां विनाशसद्भावात्। इदानीं प्रथमसंग्रहकृष्टि-वेदकस्य प्रथमसमयादारभ्य यावत्तत्संग्रहकृष्टिनाशकालस्य द्विचरमसमयस्तावत्। विनष्टाऽशेषकृष्टीनां प्रमाणमुच्यते। तत्सर्वकाले याः विनष्टकृष्टयः ताः प्रथमसमयकृष्टिवेदकस्य क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टौ याः उपरितनाऽ बध्यमान[1] कृष्टयः

१. उपरितनबंधरहितकेवलोदया अनुभयाश्चाऽबध्यमाना

तासामसंख्यातैकभाग ४ । १३ ।११ ख २४ प १६ a a मात्र्य एव भवन्ति। क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टेः प्रथमस्थितौ समयाधिकावलावशिष्टायां तत्संग्रहकृष्टेश्चरमसमयवेदको भवति।

अस्मिन्समये वर्तमानस्य यः प्ररूपणाप्रपंचः सः इत उपर्युच्यते। तद्यथा तस्मिन् समये क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टेर्जघन्यस्थित्युदीरको[1] भवति। कुतः समयाधिकावलिमात्रप्रथमस्थितेश्चरम-स्थितिमपकृष्य गृहीत्वा उदयावल्यां निक्षेपात्। तस्मिन् समये क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टेश्चरमसमयवेदको भवति। चतुःसंज्वलनानुभागसत्त्वस्य पूर्वं या अग्रघातरूपेणानुसमयापवर्तना प्रवर्तिता तां इदानीमपि तेन क्रमेण प्रवर्तयति। तत्र भेदो नास्ति। चतुःसंज्वलनानां स्थितिबंधः अंतर्मुहूर्तोन-दशदिनाधिकमासत्रयं भवति। कृष्टिवेदकस्य प्रथमसमये संपूर्णचतुर्मासमात्रः एषां स्थितिबंधः क्रमेण संख्यातसहस्रबंधापसरणैरपसृत्य इदानीमंतर्मुहूर्तोनदशदिवसाधिकत्रिमासमात्रो जात इति तात्पर्यम्। अत्र चतुर्मासमात्रस्थितिबंधादपसृतस्थितिबंधप्रमाणमंतर्मुहूर्ताधिकविंशतिदिवसमात्रं तत्कथमिति चेत्। क्रोधसंग्रहकृष्टित्रयवेदककाले मासद्वयस्य हानौ सत्यामेकप्रथमसंग्रहकृष्टि-वेदककाले किमिति[2] त्रैराशिके कृते[3] पूर्वोक्तहानिप्रमाणस्यागमनात्। चतुःसंज्वलनानां स्थितिसत्त्वमंतर्मुहूर्तोनाष्टमासाधिकषड्वर्षमात्रं भवति। कृष्टिवेदकप्रथमसमये अष्टवर्षमात्र-स्थितिसत्त्वं क्रमेण हीनं भूत्वा इदानीमंतर्मुहूर्तोनाष्टमासाधिकषड्वर्षमात्रं जातमित्यर्थः। अत्राष्टवर्षमात्रप्राक्तनस्थितिसत्त्वात् हीनस्थितिप्रमाणमंतर्मुहूर्ताधिकमासचतुष्टयसहितैकवर्षमात्रम्। कुतः। संग्रहकृष्टित्रयवेदककाले वर्षचतुष्टयस्य हानौ सत्यां प्रथमसंग्रहकृष्टिवेदककाले किमिति त्रैराशिके कृते[4] पूर्वोक्तहानिप्रमाणागमनात्। घातित्रयस्य स्थितिबंधः अंतर्मुहूर्तोनदशवर्षमात्रो भवति। पूर्वं संख्यातवर्षसहस्रमात्रः एषां स्थितिबंधः पूर्वबंधात्संख्यातगुणहान्या क्रमेणापसृत्य संप्रत्यंतर्मुहूर्तोनदशवर्षमात्रो जात इत्यर्थः। घातिकर्मणां स्थितिसत्त्वं संख्यातवर्षसहस्रमात्रं भवति। पूर्वं संख्यातवर्षसहस्रमात्रमेषां स्थितिसत्त्वं संख्यातसहस्रस्थितिकांडकैः संख्यातगुणहान्या हीयमानमिदानीमपि तत्प्रायोग्यसंख्यातवर्षसहस्रमात्रं जातमित्यर्थः। अघातिकर्मणां स्थितिबंधः संख्यातवर्षसहस्रमात्रो भवति। अत्रापि प्राग्वत्तात्पर्यं वक्तव्यम्। नामगोत्रवेदनीयानां स्थितिसत्त्वमसंख्यातवर्षमात्रं भवति। असंख्यातगुणहान्या हीयमानमपि एषां स्थितिसत्त्वस्य

---

१. एकसमयमात्री स्थितिः जघन्यस्थितिरुच्यते।

२.

प्र	सं	फ	दिन	इ	सं	लब्ध	दिन
	३		६०		१		२०

३. अंतर्मुहूर्त पृथक् कृत्वा पश्चात् त्रैराशिक विधानं

४.

प्र	सं	फ	मास	इ	सं	लब्ध	मास
	३		४८		१		१६

सर्वत्राप्यऽसंख्यातवर्षसहस्रप्रमाणेनावस्थाननियमात्। क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टिवेदकानंतरक्षणे क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टितः प्रदेशसमूहमपकृष्य गृहीत्वा क्रोधद्वितीयसंग्रहकृष्टिवेदककालादावलि-मात्राधिकतया उदयादिगुणश्रेणिरूपेण परिणमिता जाता। निरवशेषतया किं परिणमिता इति चेत्। अल्पविशेषोऽस्ति। स क इति चेत्। प्रथमसंग्रहकृष्टेर्द्वितीयस्थितौ द्विसमयोनद्व्यावलिमात्र-नवकबंधान् प्रथमस्थितावुच्छिष्टावलिप्रविष्टसत्त्वं विहाय शेषसर्वक्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टेः प्रदेशसमूहं स्वकीयद्वितीयसंग्रहकृष्टे[१]रधोऽनंतगुणहान्या परिणमय्य तदपूर्वकृष्टिरूपेण प्रवर्तयति। तदैव शेषसंग्रहकृष्टिष्वपि यथासंभवं संक्रमयतीत्यर्थः। तदा क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टेर्द्रव्यं चतुर्दशगुणं भवति। संदृष्टिः $\boxed{\begin{array}{l} \text{व।१२।१४} \\ \text{२४} \end{array}}$ तस्मिन् काले क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टेर्वेदको भवति।

द्वितीयसंग्रहकृष्टिसंवेदन क्रमः कथमिति चेत्। क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टिवेदकस्य यः क्रमः पूर्वमुक्तः स एव क्रमः क्रोधद्वितीयसंग्रहकृष्टिवेदकस्यापि कर्तव्यः। कोपि भेदो नास्ति। अधस्तनोपरितनानुभयकृष्टीनामधस्तनोपरितनोदयकृष्टीनां मध्यमोभयकृष्टीनां विनाश्यमानकृष्टीनां बंधद्रव्येण निर्वर्त्यमानपूर्वापूर्वकृष्टीनां संक्रमणद्रव्येण निर्वर्त्यमानपूर्वापूर्वकृष्टीनां च संबंध्या-वश्यकानि प्रथमसंग्रहकृष्ट्युक्तक्रमेण निरवशेषं वक्तव्यानीति तात्पर्य्यम्। अत्र संक्रम्यमाण-प्रदेशसमूहस्य श्रेणिनिरूपणं क्रियते। तद्यथा। क्रोधद्वितीयसंग्रहकृष्टितः प्रदेशसमूहः क्रोधतृतीयसंग्रहकृष्टौ मानप्रथमसंग्रहकृष्टौ च प्रविशति। क्रोधतृतीयसंग्रहकृष्टितः प्रदेशसमूहो मानप्रथमसंग्रहकृष्टौ संक्रामति। मानप्रथमसंग्रहकृष्टितः प्रदेशसमूहो मानस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टौ तृतीयसंग्रहकृष्टौ मायाप्रथमसंग्रहकृष्टौ च प्रविशति। मानद्वितीयसंग्रहकृष्टितः प्रदेशसमूहो मानतृतीयसंग्रहकृष्टौ मायाप्रथमसंग्रहकृष्टौ च प्रविशति। मानतृतीयसंग्रहकृष्टितः प्रदेशसमूहो मायाप्रथमसंग्रहकृष्टौ संक्रामति। मायाप्रथमसंग्रहकृष्टितः प्रदेशसमूहो मायाया द्वितीयसंग्रहकृष्टौ तृतीयसंग्रहकृष्टौ लोभप्रथमसंग्रहकृष्टौ च प्रविशति। मायाद्वितीयसंग्रहकृष्टितः प्रदेशसमूहो मायातृतीयसंग्रहकृष्टौ लोभप्रथमसंग्रहकृष्टौ च प्रविशति। मायातृतीयसंग्रहकृष्टितः प्रदेशसमूहो लोभप्रथमसंग्रहकृष्टौ संक्रामति। लोभप्रथमसंग्रहकृष्टितः प्रदेशसमूहो लोभस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टौ तृतीयसंग्रहकृष्टौ च प्रविशति। लोभद्वितीयसंग्रहकृष्टितः प्रदेशसमूहो लोभतृतीयसंग्रहकृष्टावेव संक्रामति। अत्र सर्वत्रापि अपकर्षणवशेन स्वस्थानसंक्रमणं अधःप्रवृत्तसंक्रमणवशेन परस्थान-संक्रमणमिति ज्ञातव्यम्। अनया संक्रमणपरिपाट्या दशसंग्रहकृष्टीनां संक्रमणाय द्रव्यं यतः कारणादुक्तं ततः कारणात्तासामधः अवयवकृष्ट्यंतरेषु च अपूर्वकृष्टयो निर्वर्त्यन्ते वेद्यमानसंग्रहकृष्टौ तु घातद्रव्येण पूर्वकृष्टयो निर्वर्त्यन्ते तस्यां संक्रमणाय द्रव्याभावात्। सर्वत्रापि पूर्वानुभूतसंग्रहकृष्टेः[२]

---

१. अधस्तनकृष्टिस्वरूपेणापूर्वकृष्टयो भूत्वा २. सर्वसंक्रमणभागहार एकः १ अनेन भक्तं

सर्वसंक्रमणद्रव्यमनंतरसमये वेद्यमानसंग्रहकृष्टेः प्रथमसमये तत्संग्रहकृष्टेरधः अवयवकृष्ट्यंतरेषु च अपूर्वकृष्टिरूपेण विभज्य ददाति। अंतरेषु निजद्रव्यस्यासंख्यातैकभागेनापूर्वकृष्टीर्निर्वर्त्य शेषबहुभागैरधस्तनकृष्टीर्निर्वर्तयतीत्ययमर्थो योज्यः। अधः काश्चित् अंतरेषु च ताभ्यः असंख्यातगुणाः कृष्टीर्निर्वर्तयतीत्यनेन कृष्टिवेदकप्रथमसमयव्याख्यानेन इदं व्याख्यानं विरुध्यते इति चेत्[1]। न तद् व्याख्यानस्य संग्रहद्रव्यासंख्यातैकभागमात्र व।१३।१८२ २४ ।ओ विषयत्वात् अस्य च सकलसंग्रहद्रव्य व।१२।१३ २४ विषयत्वाद्भिन्नविषय-व्याख्यानयो-र्विरोधाभावात् अत्रापि पूर्वव्याख्यानस्यैव ग्रहणपक्षे किं बाधास्तीति चेत्। अवयवकृष्टीनामेकैकांतराले बह्वीनामपूर्वकृष्टीनां निर्वर्तनं जायते तच्चागमविरुद्धं। किंच उलंघनाभावे सर्वावयकृष्ट्यंतरेष्वपूर्वकृष्टीनां प्रवेशेन असंख्यातगुणहीनदीयमानानंतरमेवासंख्यातगुणदीयमानं जायते। तादृशदीयमानश्रेणिनिरूपकसूत्राभावात्। इदमप्यागमविरुद्धम्। ततः कारणादत्रतन-व्याख्यानमेव प्रधानतया स्वीकर्तव्यम्। क्रोधद्वितीयसंग्रहकृष्टिवेदकः किं सर्वकषायाणां द्वितीयसंग्रहकृष्टीरेव बध्नाति। वा क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टिं बद्ध्वा शेषकषायाणां प्रथमसंग्रहकृष्टिमेव बध्नातीत्याशंका चेत्। परिहारः उच्यते। चतुःकषायेषु यस्य कषायस्य प्रथमद्वितीयतृतीयसंग्रहेषु यां संग्रहकृष्टिं वेदयति तस्य कषायस्य तां वेद्यमानसंग्रहकृष्टिमेव बध्नाति। अवेद्यमानशेषकषायानां प्रथमसंग्रहकृष्टीरेव बध्नाति ततः कारणात्क्रोधद्वितीय-संग्रहकृष्टिवेदकः क्रोधद्वितीयसंग्रहकृष्टिं मानमायालोभानां तु प्रथमसंग्रहकृष्टीरेव बध्नाति। इमां व्याप्तिमुपरितनसंग्रहकृष्टिवेदकस्यापि योजयेत्। अत एव बंधेन निर्वर्त्यमानकृष्टीनामवकाशरूपेण स्थितचतुःसंग्रहकृष्टयः उक्ताः। क्रोधद्वितीयसंग्रहकृष्टिप्रथमसमयवेदकस्यैकादशसंग्रहकृष्टिषु दृश्यमानांतरकृष्टीनामल्पबहुत्वमितोऽग्रे उच्यते। तद्यथा। मानप्रथमसंग्रहकृष्टेरवयवकृष्टयः सर्वतः स्तोकाः। स्तोकतरद्रव्येण निर्वर्तितत्वात्। द्वितीयसंग्रहकृष्टेरवयवकृष्टयो विशेषाधिकाः विशेषाधिकद्रव्येण निर्वर्तितत्वात् विशेषप्रमाणं[2] पल्यासंख्यातभक्तैकखंडमात्रं। अग्रतनप्रदेशेष्वपि[3] स्वस्थानविशेषप्रमाणमिदमेव तृतीयसंग्रहकृष्टेरवयवकृष्टयो विशेषाधिकाः। अत्रापि विशेषप्रमाणं प्रागुक्तमेव ग्राह्यम्। क्रोधतृतीयसंग्रहकृष्टेरवयवकृष्टयो विशेषाधिकाः। विशेषाधिकद्रव्येण निर्वर्त्तितत्वात्। अत्र तु विशेषप्रमाणमावल्यसंख्यातैकभागभक्तैकखंडमात्रं। अग्रतनप्रदेशेष्वपि[4]

१. अपकृष्टशेषबहुभागस्य द्व्यशित्युत्तरशतं

२. पंचत्रिंशत्पत्रे द्रष्टव्यं।

३. यत्र स्व-स्व त्रिसंग्रहेषु पल्यासंख्यातेन बहुभागे समभागःकृतस्तत्र परस्थानां

४. लोभादिचतुर्णां आवल्यसंख्यातेन बहुभागे समभाग अतः परस्थानं

परस्थानविशेषप्रमाणमिदमेव। मायाप्रथमसंग्रहकृष्टेरवयवकृष्टयो विशेषाधिकाः। द्वितीयसंग्रह-कृष्टेरवयवकृष्टयो विशेषाधिकाः। तृतीयसंग्रहकृष्टेरवयवकृष्टयो विशेषाधिकाः। लोभस्य प्रथमसंग्रहकृष्टेरवयवकृष्टयो विशेषाधिकाः। द्वितीयसंग्रहकृष्टेरवयवकृष्टयो विशेषाधिकाः। तृतीयसंग्रहकृष्टेरवयवकृष्टयो विशेषाधिकाः। क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टेरवयवकृष्टयः संख्यातगुणाः। गुणकारप्रमाणं चतुर्दशरूपाणि। आसामेकादशसंग्रहकृष्टीनामवयवकृष्टीनामल्पबहुत्वेन एतावद्-द्रव्यस्य[1] एतावत्कृष्टयस्तदा एव तावद्[2] द्रव्यस्य कियत्यः कृष्टयो भवन्तीति इच्छाराशिरूपयोः संक्रमणद्रव्यबंधद्रव्ययोः फलराशिरूपेण स्थाप्यमानावयवकृष्टीनां स्तोकबहुत्वमुक्तमिति तात्पर्यम्। एकादशसंग्रहकृष्टीनामवयवकृष्टीनामल्पबहुत्वं यथा उक्तं तथैव तत् प्रदेशसमूहस्याप्यल्पबहुत्वं वक्तव्यम्। संक्रमणांतर[3]बंधांतर[4]कृष्टिसाधकत्रैराशिकस्य प्रमाणराशिस्वरूपेण स्थाप्यमानद्रव्ययोरनेन प्रदेशाल्पबहुत्वेन स्तोकबहुत्वमुक्तमित्यभिप्रायः। क्रोधद्वितीयसंग्रहकृष्टिवेदकस्य प्रथम-स्थितावावलिप्रत्यावलिद्वयावशेषे आगालप्रत्यागालौ विनष्टौ तस्यां प्रथमस्थितौ समयोनावलि-मात्रकालं गालयित्वा समयाधिकावलिमात्रकालेऽवशिष्टे क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टेश्चरमसमयवेदको भवति तदा संज्वलनानां स्थितिबंधः किंचिन्न्यूनविंशतिदिवसाधिकद्विमासमात्रः। अत्र पूर्वोक्तस्थितिबंधात् हीनस्थितिबंधप्रमाणं प्राग्वत्। घातित्रयस्य स्थितिबंधो वर्षपृथक्त्वमात्रः। अत्र वर्षपृथक्त्वमिति किं। वर्षत्रयस्योपरि जिनदृष्टप्रमाणं ज्ञातव्यम्। अघातिकर्मणां स्थितिबंधः संख्यातवर्षसहस्रप्रमाणः। संज्वलनानां स्थितिसत्त्वमंतर्मुहूर्तोनचतुर्मासाधिकपंचवर्षमात्रम्। अत्र प्राग्वद्धानिप्रमाणम्। घातित्रयस्य स्थितिसत्त्वं संख्यातवर्षसहस्रमात्रम्। नामगोत्रवेदनीयानां स्थितिसत्त्वमसंख्यातवर्षमात्रम्। तदुपरितनसमये क्रोधतृतीयसंग्रहकृष्टेः प्रदेशं द्वितीय-स्थितितोऽपकृष्य तद्वेदककालादावलिमात्राधिकामुदयादिगुणश्रेणिरूपेण प्रथमस्थितिं करोति। अत्र द्विसमयोनद्व्यावलिमात्रनवकसमयप्रबद्धान् उच्छिष्टावलिं च मुक्त्वा शेषद्वितीयसंग्रहकृष्टेः सर्वद्रव्यं

---

१. प्र [व १२ / २४] फ [४ / ख २४] इच्छा राशि-र्विवक्षितो भवति।

२. षट्चत्वारिंशत्सप्तचत्वारिंशदन्यपत्रेषु संक्रमणांतरबंधांतरकृष्टिविभंजने त्रैराशिकक्रमो व्यक्त तया तत्र तत्र कृतोस्ति।

३. प्र [व १२ / ४ / ख] फ १ इ [व १२ / २४ ओ / २]

४. प्र [स १२ / ४ / ख] फ १ इ [स / ४]

तृतीयसंग्रहकृष्टिरूपेण परिणमितं जातमिति ज्ञातव्यं। संदृष्टिः [व १२।१५ / २४] तृतीयसंग्रहकृष्टिवेदकस्योदयबंधकृष्टिप्रमाणमुच्यते। प्रथमस्थितिकरणप्रथमसमये क्रोध तृतीयसंग्रह-संग्रहकृष्टेरवयवकृष्टीनामसंख्यातबहुभागमात्रकृष्टयः उदयमायान्ति। तासां पुनरवयवकृष्टीनामसंख्यातबहुभागमात्रकृष्टयः बंधमायान्ति। उदीयमानकृष्टिभ्यो बध्यमानकृष्टयो विशेषहीनाः इत्येतत्क्रोधप्रथमसंग्रहप्रथमसमयवेदकप्ररूपणाप्रपंचप्रभावेन ज्ञातव्यम्। क्रोधद्वितीयसंग्रहकृष्टिवेदकस्य यद्विधानं प्रागुक्तं तदेव विधानं तृतीयसंग्रहकृष्टिवेदकस्यापि निरवशेषं कर्तव्यम्। क्रोधतृतीयसंग्रहकृष्टिवेदकस्य प्रथमस्थितौ समयाधिकावलाववशिष्टायां क्रोधस्य चरमसमयवेदको भवति। तस्मिन् समये जघन्यस्थित्युदीरको भवति। एकस्या एव स्थितेरुदीरणासंभवात्। अधुना कर्मणां स्थितिबंधस्थितिसत्त्वप्रमाणं विचार्यते। तस्मिन् समये संज्वलनानां स्थितिबंधः संपूर्णद्विमाससमात्रः। पूर्वोक्तस्थितिबंधादंतर्मुहूर्तोनविंशतिदिवसाधिकद्विमाससमात्रस्थितिबंधात् क्रमेण हीयमानोऽधुना संपूर्णद्विमाससमात्रो जातः इति भावार्थः। एषां स्थितिसत्त्वं संपूर्णचतुर्वर्षमात्रं। अत्र पूर्वस्थितितो हीनस्थितिसत्त्वप्रमाणं पूर्ववत् अत्र शेषकर्मणां स्थितिबंधस्थितिसत्त्वप्रमाणपरीक्षा सुगमा। क्रोधवेदनानंतरसमयेअपूर्वकृष्टिस्वरूपेण संक्रांत-पंचदशखंडमात्रक्रोधतृतीयसंग्रहद्रव्यसहितमानप्रथमसंग्रहकृष्टिद्रव्यमेतावत् [व १२।१६ / २४ ओ]

अपकृष्य गृहीत्वा उदयादिगुणश्रेणिरूपेण प्रथमस्थितिं करोति। तत्प्रथमस्थितिप्रमाणं कियदिति चेत्। क्रोधवेदककालाद्विशेषहीनसर्वमानवेदककालो यः तस्य त्रिभागमात्रमावल्यधिकं प्रथमस्थितिप्रमाणं भवति। तदनंतरं मानप्रथमसंग्रहकृष्टिवेदकः तत्प्रथमसंग्रहकृष्टेरवयवकृष्टीनां पल्यासंख्यातबहुभागमात्रकृष्टीरनुभवति। तदुदीयमानकृष्टिभ्यो विशेषहीनकृष्टिर्बध्नाति। मायालोभयोः प्रथम[1]कृष्टीरेव बध्नाति। मानप्रथमसंग्रहकृष्टिवेदकस्य प्रतिसमयं संग्रहकृष्टीनामग्रकृष्टेरारभ्यासंख्यातैकभागविनाशः। बध्यमानद्रव्येण संक्रम्यमाणद्रव्येण चापूर्वकृष्टिनिर्वर्तनं प्रतिसमयं बंधोदयकृष्टीनामनंतगुणहीनकरणं चेत्येताः क्रियाः क्रोधप्रथमसंग्रहप्रथमसमयवेदकप्ररूपणाप्रपंचेन समाना ज्ञातव्याः। अयं तु विशेषः मानप्रथमसंग्रहवेदके बंधांतरकृष्टिशलाकासु भागहाराः पूर्वभागहारचतुर्थभागेन मायालोभप्रथमसंग्रहवेदकेपि तावतैव हीयन्ते।[2]

---

१. संग्रहे एव बंधः २. क्रोधवेदके चतुर्बंधकः माने त्रिबंधको भवतीति कृष्टयो वर्द्धंते।

प्र सि[1] ख / ४ ख	फ ४ / ख।८।६	इ स ख[1] / ३ ख	लब्ध ४ / ख।८।९ / २

तेषां क्रमेण संदृष्टिः -

क्रो				मा			या		लो
४ ख।८।६	४ ।ख।८।६	४ ।ख।८।६	४ ।ख।८।६	४ ख।८।९ २	४ ।ख।८।९ २	४ ।ख।८।९ २	४ ख।८।३।	४ ख।८।३	४ ख।८।३ २

क्रोधसंबंधिवेद्यमान[1] कृष्टौ बंधद्रव्येण निर्वर्त्यमानकृष्ट्यंतरं क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्ट्युक्तांतरात् गुणहानिचतुर्भागमात्राधिकं[2] सत् गच्छति। मानमायाप्रथमकृष्टिवेदकयोः क्रमेण मायालोभ-योर्लोभस्यांतराणि स्व-स्व प्राक्तनांतराद् गुणहानिषोडशभागेन हीयन्ते। तत्र वेद्यमानकृष्ट्यंतरं यथाक्रमं षोडशरूपैरेकान्नविंशतिरुपैर्गुणितं भवति। लोभप्रथमकृष्टिवेदके द्वाविंशतिरूपैर्गुण्यते। स्व-स्वद्वितीयादिकृष्टिवेदकेषु स्वस्वगुणकारेष्वकैकरूपे संयुते अंतरमायाति। तेषां यथाक्रमेण

संदृष्टिः -

क्रो	मा			या		लो
८।८।८।८।१३ ४ ४ ४ ४	८।३। १६	८।३। १६	८।३।१६ १६	८।२ १६	८।२।१९ १६	८।२२ १६

वेद्यमानकृष्टिद्रव्यं यासु कृष्टिषु संक्रामति तासु संक्रमणद्रव्येण निर्वर्तितकृष्टीनामंतरविशेषो ज्ञातव्यः। मानप्रथमकृष्टिवेदकस्य प्रथमस्थितौ समयाधिकावलिमात्रावशिष्टायां संज्वलनत्रयस्य स्थितिबंधः अंतर्मुहूर्तोनविंशतिदिवसाधिकमासमात्रः। अत्रांतर्मुहूर्ताधिकदशदिवसमात्रं हानिप्रमाणं त्रैराशिकेनानेतव्यम्। तेषां स्थितिसत्त्वमंतर्मुहूर्तोनचतुर्मासाधिकत्रिवर्षप्रमितं। क्रोधवेदकचरमसमये चतुर्वर्षमात्रसंज्वलनस्थितिसत्त्वमंतर्मुहूर्ताधिकाष्टमासमात्रस्थितिसत्त्वहान्या हीनं भूत्वा अंतर्मुहूर्तोनचतुर्मासाधिकत्रिवर्षमात्रमधुना जातमित्यर्थः[3] तदनंतरसमये मानद्वितीयसंग्रहकृष्टितः प्रदेशसमूहमपकृष्य उदयादिगुणश्रेणिरूपेण निजवेदककालादावल्यधिकायामां प्रथमस्थितिं करोति। तस्य द्रव्यप्रमाणमिदं [व १२।१७ / २४] मानप्रथमसंग्रहकृष्टिवेदककाले यत्प्ररूपणं प्रागुक्तं तेनैव विधानेन स्वकीयकृष्टिवेदककालचरमसमयं प्राप्नोति। मानद्वितीयसंग्रहकृष्टिवेदकस्य प्रथमस्थितौ समयाधिकावलिमात्रावशिष्टायां संज्वलनानां स्थितिबंधः किंचिन्न्यूनदशदिवसाधिकमासमात्रः

१. द्वितीयतृतीय

२. [८ १४ / ४ | ८ १५ / ४] अधिकं मानादिद्वितीयादिसंग्रहवेदकेष्वधिकक्रम

एवं

८।२।२१ १६	८।२३ १६	८।२४ १६

८।३।१७ १६	८।३।१८ १६	८।२।२० १६

३. मानप्रथमकृष्टिवेदकचरमसमयात

पूर्वोक्तबंधाद्यथाक्रममंतर्मुहूर्ताधिकदशदिवसहानिप्रमाणम्। एषां स्थितिसत्त्वं किंचिन्न्यूनाष्टमासाधिकद्विवर्षमात्रम्। अत्रापि हानिप्रमाणं साधिकाष्टमाससमात्रं तदनंतरसमये मानतृतीयसंग्रहकृष्टितः प्रदेशसमूहमपकृष्य उदयादिगलितावशेषगुणश्रेणिरूपेण स्वकीयवेदककालादावल्यधिकायामां प्रथमस्थितिं करोति। तद्द्रव्यप्रमाणमिदं $\frac{\text{व १२।१८}}{\text{२४}}$ मानद्वितीयसंग्रहकृष्टिवेदककाले यद्विधानं प्रागुक्तं तेनैव विधानेन स्वकीयकृष्टिवेदक-कालचरमसमयं प्राप्नोति। मानतृतीयसंग्रहकृष्टिवेदकस्य प्रथमस्थितौ समयाधिकावलिमात्रावशिष्टायां मानस्य चरमसमयवेदको भवति। तदा संज्वलनत्रयस्य स्थितिबंधः संपूर्णमासमात्रः। एषां सत्त्वं संपूर्णवर्षद्वयमात्रम्। तदुपरितनसमये मायाप्रथमसंग्रहकृष्टिमपकृष्य उदयादिगलितावशेषगुणश्रेणिरूपेण निजवेदककालादावल्यधिकायामां प्रथमस्थितिं करोति। तद्द्रव्यप्रमाणमिदं $\frac{\text{व १२।१९}}{\text{२४}}$ मानतृतीयसंग्रहकृष्टि वेदक्काले यद्विधानं पूर्वमुक्तं तेनैव विधानेन स्वकीयकृष्टिवेदक-कालचरमसमयं प्राप्नोति। मायाप्रथमसंग्रहकृष्टिवेदकस्य प्रथमस्थितौ समयाधिकावलिमात्रावशिष्टायां संज्वलनद्वयस्य स्थितिबंधो देशोनपंचविंशतिदिवसमात्रः। तयोः स्थितिसत्त्वं देशोनाष्टमासाधिकवर्षमात्रम्। तदनंतरसमये मायाद्वितीयसंग्रहकृष्टितः प्रदेशसमूहमपकृष्योदयादिगलितावशेषगुणश्रेणिरूपेण स्वकीयवेदककालादावल्यधिकायामां प्रथमस्थितिं करोति। तद्द्रव्यप्रमाणमिदं $\frac{\text{व १२।२०}}{\text{२४}}$ स च मायाद्वितीयसंग्रहकृष्टिवेदकः मायाप्रथमसंग्रहकृष्टिवेदककाले यद्विधानं प्रागुक्तं तेनैव विधानेन स्वकीयकृष्टिवेदककालचरमसमयं प्राप्नोति। मायाद्वितीयसंग्रहकृष्टिवेदकस्य प्रथमस्थितौ समयाधिकावल्यवशेषसंज्वलनद्वयस्य स्थितिबंधो देशोनविंशतिदिवसमात्रः। तयोः स्थितिसत्त्वं देशोनषोडशमाससमात्रम्। तदनंतरसमये मायातृतीयसंग्रहकृष्टितः प्रदेशसमूहमपकृष्योदयादिगलितावशेषगुणश्रेणिरूपेण स्ववेदककालादावलिमात्राधिकतया प्रथमस्थितिं करोति। तद्द्रव्यप्रमाणमिदं $\frac{\text{व १२।२१}}{\text{२४}}$ मायाद्वितीयसंग्रहकृष्टिवेदककाले यद्विधानं प्रागुक्तं तेनैव विधानेन स्वकीयकृष्टि वेदक्कालचरमसमयं प्राप्नोति मायातृतीयसंग्रहकृष्टिवेदकस्य प्रथमस्थितौ समयाधिकावल्यवशेषे तस्याश्चरमसमयवेदको भवति। तदा संज्वलनद्वयस्थितिबंधः संपूर्णपंचदशदिवसमात्रः। तत्स्थितिसत्त्वं परिपूर्णैकवर्षमात्रम्। घातित्रयस्य स्थितिबंधो मासपृथक्त्वम्। तत्स्थितिसत्त्वं संख्यातवर्षसहस्रमात्रम्। अघातिकर्मणां स्थितिसत्त्वमसंख्यातवर्षमात्रम्। तेषां स्थितिबंधस्तत्प्रायोग्यसंख्यातवर्षप्रमाणः। तदनंतरसमये लोभप्रथमसंग्रहकृष्टितः प्रदेशसमूहमपकृष्योदयादिगलितावशेषगुणश्रेणिरूपेण निजवेदककालादावलिमात्राधिकायामां प्रथमस्थितिं करोति। इयं च प्रथमस्थितिः सकलबादरसूक्ष्म-

लोभवेदककालात्साधिक[1]त्रिभागमात्री बादरलोभवेदककालात्साधिकद्विभागमात्रीति ज्ञातव्यम्। तद्द्रव्यप्रमाणमिदं [व १२।२२ / २४] मायातृतीयसंग्रहकृष्टिवेदककाले यद्विधानं प्रागुक्तं तेनैव विधानेन स्वकीयकृष्टि-वेदककालचरमसमयं प्राप्नोति। लोभप्रथमसंग्रहकृष्टिवेदकस्य प्रथमस्थितौ समयाधिकावल्यवशेषे लोभसंज्वलनस्थितिबंधोऽतंर्मुहूर्तमात्रः। तत्स्थितिसत्त्व-मप्यंतर्मुहूर्तमात्रम्। तथापि स्थितिबंधात्संख्यातगुणमिति ज्ञातव्यम्। घातित्रयस्य स्थितिबंधो दिवसपृथक्त्वम्। पूर्वं मासपृथक्तया स्थितः स्थितिबंधः क्रमेण हीयमानः इदानीं दिवसपृथक्त्वं जातः इत्यर्थः। अघातिकर्मणां स्थितिबंधो वर्षपृथक्त्वं भवति। प्राक्तनस्तत्प्रायोग्यसंख्यातवर्षमात्रः स्थितिबंधः इदानीं वर्षपृथक्त्वं जात इत्यभिप्रायः। घातिकर्मणां स्थितिसत्त्वं संख्यातवर्षसहस्रमात्रम्। अघातिकर्मणां तु असंख्यातवर्षप्रमाणम्। तदुपरितनसमये लोभद्वितीयसंग्रहकृष्टितः प्रदेशसमूहमपकृष्योदयादिगलितावशेषगुणश्रेणिरूपेण निवृत्तिकरणकाला-दावल्यधिकायामां प्रथमस्थितिं करोति। तस्मिन् समये बादरलोभस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टि-तस्तृतीयसंग्रहकृष्टितश्च प्रदेशसमूहमपकृष्य सूक्ष्मशक्तियुक्तत्वादन्वर्थनाम्नीः सूक्ष्मसांपरायकृष्टीः करोति। बादरलोभद्वितीयसंग्रहकृष्टिद्रव्यप्रमाणमिदं [व १२।२३ / २४] एतस्मादनु-भागापेक्षयापकृष्टद्रव्यमिदं[2] [व १२।५७५ / २४ ओ] एतस्मात् तृतीयसंग्रहकृष्टिरूपेण परिणममानद्रव्यमेतावत्प्रमाणं [व १२।२३ / २४। ओ] अपनीय शेषद्रव्ये तृतीयसंग्रहकृष्टितः अपकृष्टद्रव्ये [व १२।१ / २४ ओ] एतस्मिन्निक्षिप्ते संदृष्ट्या एवं भवति। [व १२।५५३ / २४ ओ] एतावद्द्रव्येण सूक्ष्मकृष्टीः करोतीति तात्पर्यम्। तासामवस्थानं कुत्रेति चेत्। लोभतृतीयसंग्रहकृष्टेरधः आसाम-वस्थानं भवति। आसामायामो लक्षणं च किमिति चेत्। क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टिवत्। यथाहि-क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्ट्यायामः शेषसंग्रहकृष्ट्यायामासंख्यातगुणः। तथैव सूक्ष्मसांपरायकृष्ट्याया-मोऽपि कृष्टिकारककाले संजातः। क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टिरहितशेषसंग्रहकृष्ट्यायामात्[3] संख्यातगुणः एवंपूर्वस्पर्द्धकानामधः अनंतगुणहीनतया यथा पूर्वं क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टिः कृता तथैव

---

१. बहुभागे समभाग

२. [व १२।५७५ / २४ ओ] अत्र लोभतृतीयसंग्रहे संक्रमणद्रव्यमिदं [व १२।२३ / २४ ओ] सूक्ष्मकृष्टिनिमित्तं गृहीत-द्रव्यमिदं [व १२।२३।२४ / २४ ओ] गुणितं [व १२।५५२ / २४ ओ] अत्र चतुर्विंशतिगुणकारः कथं ज्ञात इति चेत्। पूर्वंक्रोध-प्रथमसंग्रहाद्द्वितीयसंग्रहे संक्रमणद्रव्यं चतुर्दशगुणं भवति। द्वितीयसंग्रहकृष्टिवेदने तृतीयसंग्रहे पंचदशगुणतया संक्रामति। अनेन प्रकारेण।१६।१७।१८।१९।२०।२१।२२।२३।२४।

३. [४ १ / ख २४] संख्यातगुणः [४। २४ / ख २४]

लोभतृतीयबादरकृष्टेरधः अनंतगुणहीनक्रमेण सूक्ष्मसांपरायकृष्टिरपि क्रियते एवं वा क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टिर्यथा जघन्यकृष्टेरारभ्योत्कृष्टकृष्टिपर्यंतमनंतगुणतया कृता तथैव सूक्ष्मसांपरायकृष्टिरपि जघन्यकृष्टेरारभ्योत्कृष्टकृष्टिपर्यंतमनंतगुणतया क्रियते इति तात्पर्यम्। प्रथमसमयक्रियमाणसूक्ष्मसांपरायकृष्टयायामप्रमाणप्रतिपादननिमित्तमल्पबहुत्वमुच्यते[१]। क्रोधप्रथमसग्रहकृष्टेरवयवकृष्टयः स्तोकाः। संदृष्टिः ४।१३ ख २४ क्रोधसंग्रहकृष्टित्रये मानस्योपरि निक्षिप्ते मानप्रथमसंग्रह कृष्टेरवयवकृष्टयो विशेषाधिकाः संदृष्टिः ४।१६ ख २४ अधिकप्रमाणं त्रिभागाधिकचतुरूपैः पूर्वराशौ[२] भक्ते एकखंडमात्रं भवति। मानसंग्रहकृष्टित्रये मायाया उपरि निक्षिप्ते मायाप्रथमसंग्रहकृष्टेरवयवकृष्टयो विशेषाधिकाः। संदृष्टिः ४।१९ ख २४ विशेषप्रमाणं त्रिभागाधिकपंचरूपैः पूर्वराशौ[३] भक्ते एकखंडमात्रम्। मायासंग्रहत्रयो लोभस्योपरि दत्ते लोभप्रथमसंग्रहकृष्टेरवयवकृष्टयो विशेषाधिकाः संदृष्टिः ४।२२ ख २४ विशेषप्रमाणं त्रिभागाधिकषङ्रूपैः पूर्वराशौ[४] भक्ते एकखंडमात्रं। प्रथमसमये याः सूक्ष्मसांपरायकृष्टयः कृताः ता विशेषाधिकाः संदृष्टिः ४।२४ ख २४ विशेषप्रमाणं एकादशरूपैः पूर्वराशौ भक्ते एकभागमात्रं। पूर्वोक्तसंख्यातैकभागमात्रो विशेषः एवं व्यवधानेनाव्यवधानेनापि[५] ग्राह्यः।

द्वितीयादिसमयकृतसूक्ष्म सांपरायकृष्टीनामल्पबहुत्वमुच्यते। प्रथमसमयकृतसूक्ष्मसांपरायकृष्टयो बह्व्यः। द्वितीयसमये कृतापूर्वसूक्ष्मसांपरायकृष्टयोऽसंख्यातगुणहीनाः इत्यव्यवधानेननांतर्मुहूर्तप्रमाणे सर्वसूक्ष्मसांपरायकृष्टिकरणकाले क्रियमाणापूर्वसूक्ष्मसांपरायकृष्टयोऽसंख्यातगुणहीनश्रेण्या क्रियन्ते। अनेन प्रतिसमयं निर्वर्त्यमानापूर्वसूक्ष्मसांपरायकृष्टिप्रमाणं निरूपितम्। सूक्ष्मकृष्टिषु सर्वसमयदीयमानद्रव्यस्याल्पबहुत्वमुच्यते। सूक्ष्मसांपरायकृष्टिषु प्रथमसमये प्रदेशसमूहं स्तोकं ददाति। द्वितीयसमये प्रदेशसमूहमसंख्यातगुणं ददाति। अनेन क्रमेण यावदंतर्मुहूर्तप्रमितसूक्ष्मसांपरायकृष्टिकरणकालचरमसमयस्तावदसंख्यातगुणं ददाति। प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्ध्या प्रवर्द्धमानः प्रतिसमयमसंख्यातगुणं द्रव्यमपकृष्य ददातीति तात्पर्यम्। प्रथमसमये सूक्ष्मसांपरायकृष्टिषु दीयमानप्रदेशसमूहस्य श्रेणिनिरूपणं क्रियते। तद्यथा अत्र प्रथमं तावत् आयद्रव्याणां व्ययद्रव्याणां घातद्रव्याणां च स्वरूपनिरूपणं क्रियते।

---

१. किमर्थमिदं विधानमिति चेत्। क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टिप्रभृतिलोभप्रथमसंग्रहपर्यंत विशेषाधिके कृते सत्येव पश्चादेतस्मादिमा सूक्ष्मकृष्टयो विशेषाधिका इति वक्तुं पार्यते नान्यथा।

२. ४।१३ ख २४।१३ ३ ३. ४।१६ ख २४।१६ ३ ४. ४।१९ ख २४।१९ ३ ५. एकैकसंग्रहं प्रति ग्राह्यः

लोभतृतीयसंग्रहकृष्टेरायद्रव्यप्रमाणं द्वितीयसंग्रहकृष्टिद्रव्ये अपकर्षणभागहारेण भक्ते एकखंडमात्रं भवति। [व १२।२३ / २४ ओ] आनुपूर्वीसंक्रमणनियमाद्द्वितीयसंग्रहकृष्टेरायद्रव्यं नास्ति केवलं व्ययद्रव्यमेव। व्ययद्रव्यप्रमाणं कियदिति चेत्। निजद्रव्ये अपकर्षणभागहारेण भक्ते पंचविंशतिखंडमात्रं भवति। तृतीयसंग्रहकृष्टेर्व्ययद्रव्यप्रमाणं [व १२।५७५ / २४ ओ] = [व १२ / २४ओ] स्वद्रव्ये अपकर्षणभागहारेण भक्ते एकखंडमात्रं भवति।

सूक्ष्मकृष्टीनामायद्रव्यप्रमाणं प्रागुक्तमेव। [व १२।५५३ / २४ ओ] संग्रहकृष्टिद्वयस्य घातद्रव्यप्रमाणं स्वस्वचरमकृष्टिद्रव्ये घातकृष्ट्यायामेन स्व-स्वकृष्ट्यायामे अपकर्षणभागहारादसंख्यातगुणहीनभागहारेण भक्ते[1] एकखंडमात्रेण [४। २३ / ख २४ ओ / a] = [४ / ख २४ ओ / a] संगुण्य साधिके[2] कृते भवति। एषु त्रिप्रकारद्रव्येषु स्वस्वघातद्रव्या दसंख्यातैकभागहीनं व्ययद्रव्य[3] गृहीत्वा प्रतिपूरणे कृते स्वस्थानगोपुच्छो भवति। संप्रत्यपि परस्थानगोपुच्छस्यानुद्भूतत्वादधस्तनविनष्टकृष्ट्यायाममात्रविशेषान्[4] घातितावशिष्टोपरितन-कृष्ट्यायामेन[5] संगुण्योपरितनकृष्टेर्घातद्रव्यादपनीय दत्ते परस्थानगोपुच्छोपि भवति। शेषसर्वद्रव्ये घातितावशिष्टसर्वकृष्ट्यायामेन भक्ते एकखंडं रूपोनाध्वार्द्धमात्रावशिष्टद्रव्यविशेषैरधिकं कृत्वा[6] तृतीयसंग्रहकृष्टेर्न्निजावशिष्टद्रव्यादपनीय तत्संग्रहजघन्यकृष्टौ[7] दत्त्वा शेषद्रव्यं विशेषहीनस्वरूपेण स्वस्वद्रव्यादपनीय दत्ते सति अवशिष्टद्रव्यं गोपुच्छाकारेण दत्तं भवति। अनेन स्वरूपेण स्थितकृष्टिषु

---

१. अनुत्पन्नत्वात्

२. [व १२।१३ / २४ ओ / a] [व १२।१ / २४ ओ / a] एते द्वे घातद्रव्ये

३. हीनप्रमाणं कियदिति चेत्। स्व-सत्ताग्रकृष्टिप्रविष्टद्रव्यं संस्थाप्य स्व-स्वव्ययद्रव्यागमन-कारणभूते नापकर्षणभागहारेण भक्त्वा स्व-स्वविनष्टकृष्ट्यायामेन संगुण्य साधिकं कृतं सत् तावन्मात्रं भवति। व्ययद्रव्यं [व १२।५७५ / २४ ओ] = [व १२ / २४]

४. [वि ४ / ख २४ ओ / a]

५. [४।२३- / ख २४] संगुण्य [ ] ४।२३ / ख २४ कोटि [वि ४ / ख २४ ओ / a]

६. [व १२ / ओ ४ / a ख] अत्र इदं [व १२ / ओ ४ १६ ४ ख२ / a ख ख२] निक्षिप्तं सत् लोभतृतीयसंग्रहस्य प्रथमकृष्टि:स्यात्।

७. तृतीयसंग्रहद्रव्यं तृतीय संग्रहे एव ददातीति द्वितीयसंग्रहेऽप्येवं

संक्रमणद्रव्येण बंधद्रव्येण च निर्वर्त्यमानकृष्टीनां द्रव्यविभागकरणे एकं विशेषमादिंकृत्वा एकविशेषमुत्तरं कृत्वा रूपोनविनष्टावशिष्टकृष्टिं गच्छं कृत्वा धनमानीय तृतीयसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धायद्रव्यादपनीय पृथक् संस्थापयेत्। पुनरतीतकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् आदिं कृत्वा एकविशेषमुत्तरं कृत्वा निजनष्टावशिष्टकृष्टिं गच्छं कृत्वा संकलय्य द्वितीयसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धविशेषघातद्रव्यात्पृथक्संस्थापयेत्। एते[1] बादरकृष्टिप्रतिबद्धाधस्तन-शीर्षपूर्वविशेषनामनी। संदृष्टिः

वि ४	१ ४	वि ४	१ ४ ५७५
ख २४	ख२४।२	ख २४	ख२४।२

पुनस्तृतीयसंग्रहकृष्टे-र्जघन्यकृष्टिप्रविष्टद्रव्यं अपकर्षण भागहारादसंख्यातगुणभागहारेण भक्त्वा

व १२
४ ओ a
ख

निजकृष्ट्यायामेन संगुण्य तावन्मात्रद्रव्यं तत्संग्रहस्यायद्रव्यादपनीय पृथक्संस्थापयेत्। तमेव गुण्यमानराशिं द्वितीयसंग्रहकृष्ट्या-यामेन संगुण्य तावन्मात्रद्रव्यं तत्संग्रहस्य विशेषघातद्रव्यादपनीय पृथक्संस्थापयेत् एते बादरकृष्टिसंबंधिमध्यमखंडद्रव्यसंज्ञे। संदृष्टिः

व १२	४	व १२	४ २३-
४ ओ a	ख २४	४ ओ a	ख २४
ख		ख	

पुनरेकाद्येकोत्तरनिजपूर्वकृष्ट्यायामसंकलनामात्रो-भयद्रव्यविशेषान् निजैकविशेषानंतैकभागहीनान् वेद्यमानसंग्रहकृष्टेर्विशेषघातद्रव्यादुद्धृत्य पृथक्सं-स्थापयेत्। तत्संग्रहस्य विशेषघातद्रव्यमत्र समाप्तम्। पुना रूपाधिकातीतकृष्ट्यायामाद्येकोत्तर-संक्रमणद्रव्यनिर्वर्त्यमानापूर्वकृष्टिसहितनिजपूर्वकृष्ट्यामसंकलनामात्रान् उभयद्रव्यविशेषान् तृतीयसंग्रहकृष्टेरायद्रव्यात् स्वीकृत्य पृथक्संस्थापयेत्। एते उभयद्रव्यविशेषसंज्ञे।

संदृष्टिः

वि १ ४	४ ४७	वि १ ४	४ ५२९
ख २४	ख२४।२	ख २४	ख२४।२

एतेन त्रिप्रकारद्रव्येण हीनतृतीयसंग्रहकृष्टि-प्रतिबद्धायद्रव्येण निर्वर्त्यमाननूतनकृष्टीनां प्रमाणमितोऽग्रे उच्यते। तद्यथा - मध्यमखंडद्रव्याधिकतृतीयसंग्रहकृष्टिजघन्यकृष्टिद्रव्यस्यै-कसंक्रमणांतरकृष्टिशलाका तदा पूर्वोक्तत्रिप्रकारद्रव्येण हीननिजायद्रव्यस्य कियत्यः संक्रमणांतरकृष्टिशलाका भवन्तीति।

प्र व १२	फ १	इ व १२।२३-
४		२ ४ ओ
ख		

त्रैराशिके कृते लब्धाः संक्रमणांतरकृष्टिशलाका एतावत्यो भवन्ति।

संदृष्टिः

४ ।२३
ख २४ ओ

पुनरेतावत्शलाकानां एतावानध्वा तदा एक शलाकायाः किमिति।

प्र ४ ।२३	फ ४	इ १
ख २४ ओ	ख २४	

त्रैराशिके कृते लब्धोऽध्वा एतावान् भवति

ओ
२३

पुनः पूर्वोक्त-संक्रमणांतरकृष्टिशलाकाभिर्निजावशिष्टायद्रव्यं भक्त्वा एकखंडस्य

४ ।२३
ख २४ ओ

ता एव शलाकाः गुणकारस्वरूपेण स्थापयेत्। एताः संक्रमणांतरकृष्टिप्रतिबद्ध समानखंड

---

१. पूर्वगोपुच्छविशेष एवाधस्तनशीर्षे इयं व्याप्तिः

नाम्न्य:। संदृष्टि: [व १२।४।२३ / ४ ख २४ ओ / ख] अधुना बध्यमानद्रव्येण निर्वर्त्यमानकृष्टीनां द्रव्यविभाग: क्रियते। तद्यथा बंधद्रव्येण निर्वर्त्यमानचरमांतरकृष्टिसहितोपरितनकृष्टयो यावत्य: तावतो विशेषान् आदिं कृत्वा [वि ४।२३।११ / ख २४ प / १६ a] गुणहानिषोडशभागहीन [८।३ / २] द्व्यर्द्धगुणहानौ रूपं निक्षिप्य तावन्मात्रविशेषानुत्तरं [८ / १६] कृत्वा [वि १— ८।२३ / १६] पूर्वसर्वकृष्ट्यायामे द्व्यर्द्धगुणहान्या भक्ते एकखंड[1] मात्रीर्बंधांतरकृष्टिशलाका एता [४ / ख ८।३ / २] गच्छं कृत्वा धनमानीय एकोभयद्रव्यविशेषानंतैकभागमपनीय[2] शेषद्रव्यं मोहनीय- प्रतिबद्धैक समय-प्रबद्धात्स्वीकृत्य पृथक्संस्थापयेत्। एते बंधांतरकृष्टिविशेषनामान:। संदृष्टि: [वि ४ २३।४ / ख २४।२।ख ८ ३/२] पुन: शेषद्रव्यादेकसमयप्रबद्धानंतैकभाग स्वीकृत्य शेषबहुभागद्रव्येण निर्वर्त्यमाननूतनकृष्टीनां प्रमाणमुच्यते। तद्यथा। मध्यमखंडद्रव्याधिक-लोभजघन्यकृष्टिप्रविष्टद्रव्यस्य एकबंधांतरकृष्टिशलाका तदा किंचिन्न्यूनैकसमयप्रबद्धमात्रद्रव्यस्य किमिति [स १२।१ स- / ४ / ख] त्रैराशिके कृते लब्धा: बंधातरकृष्टिशलाका एतावत्य: [४ / ख १२] पुनरेतावदंतरकृष्टिशलाकानामेतावानध्वा तदा एकांतरकृष्टि-शलाकाया: किमिति [४ ।।४।२३।।१ / ख १२ ख २४] त्रैराशिके कृते लब्धो[3] बंधाध्वा एतावान् भवति। [८।२३ / १६] पुनरेतावद्बंधांतरकृष्टिशलाकानां किंचिन्न्यूनैकसमयप्रबद्धमात्रद्रव्यं तदा एकबंधांतरकृष्टिशलाकाया: किमिति [४ ।स-१।१ / ख १२] त्रैराशिकं कृत्वा लब्धं तेनैव भागहारेण संगुणयेत्। एतानि बंधांतरकृष्टिप्रतिबद्ध-समानखंडसंज्ञानि। संदृष्टि: [स- ४ / ४ ख १२ / ख १२] पुन: प्राक्पृथग्निक्षिप्तसमयप्रबद्धानंतैकभागमात्रद्रव्यं बंधकृष्ट्यध्वना [४। २३ १पि / ख २४ प a / a] रूपोनाध्वार्द्धोनद्विगुणहानिगुणितेन भक्ते तत्रतनविशेषो जायते बंधकृष्ट्यायामसंकलनमात्रविशेषान् पूर्वोक्तसमयप्रबद्धानंतैक-भागात्स्वीकृत्य पृथक्संस्थापयेत्।

---

१. [प्र व १२ | फ ४ / ख | इ स ८।३ / ८।३ / २ | २ ख ख ३ / २ | ख ख३ / २] अपवर्त्य इच्छाराशिरयं [व १२ / ८।३ / २] लब्धकृष्टि [४ / ख ८।३ / २]

२. बंधकृष्टीनां प्रदेशे बंधांतरकृष्टिविशेषान्न निक्षिपतीति तत्प्रणिधिगतबंधद्रव्याण्यपनयेदित्यर्थ:।

३. बंधांतरकृष्ट्यंतर

एते बंधविशेषनामानः संदृष्टिः [वि १- ४ ४- ५२९ / ख।२४ ख २४।२] [1]शेषद्रव्ये बंधकृष्ट्यायामेन भक्त्वा तेनैव गुणिते एतानि बंधमध्यमखंड-नामानि। संदृष्टिः [स ४।२३ / ख ४।२३ ख २४ / ख २४] इदानीं संक्रमणद्रव्येण निर्वर्त्यमानसूक्ष्मकृष्टीनां द्रव्यविभागः क्रियते तद्यथा रूपोनाध्वार्द्धहीनद्विगुणगुणहानिगुणितप्रथमसमयनिर्वर्त्यमानसूक्ष्मकृष्ट्यध्वना [४।२४ / ख २४] सूक्ष्म-कृष्टिप्रतिबद्धसर्वद्रव्यं भक्त्वा एकभागं सूक्ष्मकृष्ट्यध्वसंकलनेन संगुण्य तावन्मात्र-द्रव्यं सूक्ष्मकृष्टिद्रव्यात्स्वीकृत्य पृथक् संस्थापयेत्। एते सूक्ष्मकृष्टिप्रतिबद्धविशेषा भवन्ति संदृष्टिः [व १२। ५५३ १ ४ १ ४ / २४ ओ ४।१६- ४ ख ख २ / ख ख२] शेषद्रव्ये सूक्ष्मकृष्ट्यायामेन भक्त्वा तेनैव गुणिते एतानि सूक्ष्मकृष्टि-प्रतिबद्धसमानखंडनामानि संदृष्टिः [व १२।५५३।४ / २४ ओ ४ ख / ख] इदानीं दीयमान-द्रव्यश्रेणिनिरूपणं क्रियते। जघन्य-कृष्टौ प्रदेश-समूहं बहुकं ददाति। अनेन क्रमेण विभक्तद्रव्येषु सूक्ष्मकृष्टिप्रतिबद्धसमानखंडेभ्य एकखंडं तत्प्रतिबद्धविशेषेभ्यः सूक्ष्मकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य जघन्यसूक्ष्मकृष्टिस्वरूपेण निक्षिपति तदुपरितनकृष्टौ देयद्रव्याद्बहुकं ददातीति तात्पर्यम्। द्वितीयकृष्टावनंतभागहीनतया ददाति। पूर्वोक्त-समानखंडेभ्य एकखंडं तत्प्रतिबद्धविशेषेभ्यो रूपोनगच्छमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य द्वितीयकृष्टि-स्वरूपेण ददातीति भावार्थः तृतीयकृष्टावनंतभागहीनं ददाति। समानखंडेभ्य एकखंडं सूक्ष्मकृष्टिविशेषेभ्योतीताध्वोनसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य तृतीयकृष्टिस्वरूपेण ददातीत्यर्थः। चतुर्थकृष्टावनंतभागहीनं ददाति। समानखंडेभ्य एकखंडं सूक्ष्मकृष्टिविशेषेभ्योतीताध्वोनसर्वाध्व-मात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य चतुर्थकृष्टिस्वरूपेण ददातीत्यभिप्रायः। एवमव्यवधानेन गत्वा चरमसूक्ष्म-सांपरायकृष्टावनंतभागहीनत्वेन ददाति। समानखंडेभ्य एकैकखंडं सूक्ष्मकृष्टिविशेषेभ्योतीताध्वोन-सर्वाध्वमात्रविशेषांश्च गृहीत्वा अव्यवधानेनानंतभागहीनतया चरमसूक्ष्मसांपरायकृष्टिपर्यंतं निक्षिपन् गच्छतीति हृदयम्। चरमसूक्ष्मसांपरायकृष्टिदत्तद्रव्याद् जघन्यबादरसांपरायकृष्टौ दीयमानप्रदेशसमूहोऽसंख्यातगुणहीनः[2] तृतीयसंग्रहकृष्टिप्रतिबद्धचतुर्विधद्रव्येषु मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्यः सर्वबादरकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा चरमसूक्ष्मसांपराय-कृष्टिदत्तद्रव्यादसंख्यातगुणहीनं जघन्यबादरसांपरायकृष्टौ ददातीत्याचार्यतात्पर्यम्। तदुपरि विशेषहीनं ददाति। अधस्तनशीर्षविशेषान् मध्यमखंडानि उभयद्रव्यविशेषांश्च गृहीत्वा द्वितीयबादरकृष्टिमादिं कृत्वा पूर्वविशेषहीनोभयद्रव्यविशेषमात्रोनं ददातीत्यभिप्रायः।

---

१. उदयकृष्टेर्बंधकृष्टिरुपरि अधः पल्यासंख्यातैकभागेन हीना अत एव गच्छे किंचिन्न्यूनां

२. सूक्ष्मकृष्टिमध्यमखंडोयं [व १२।५५३ / २४। ओ ४ / ख] तृतीयसंग्रहायद्रव्यमध्यमखंडोयं [व १२ / ४ ओ a / ख] असंख्यात-गुणहीनः कुत अस्मिन् संक्रमणांतरकृष्टौ असंख्यातबहुभाग दत्तत्वात्।

यत्रापूर्वकृष्टिनिर्वर्त्तनं तत्र संक्रमणद्रव्यप्रतिबद्धसमानखंडेभ्यो एकैकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योऽतीताध्वोनसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च गृहीत्वाऽधस्तनकृष्टौ दत्तद्रव्यादसंख्यातगुणं ददाति। तदुपरितनकृष्टौ शेषत्रिप्रकारद्रव्यं स्वीकृत्यासंख्यातगुणहीनतया ददाति[1]। बंधातरकृष्टिषु अनंतगुणं तदनंतरं अनंतगुणहीनं द्रव्यं प्राग्वद्ददातीति वक्तव्यम्। अत्र पूर्वविशेषादुभयद्रव्यविशेषोऽसंख्यातभागाधिको[2] तान् भाज्यभागहारान् संस्थाप्य श्रोतृजनानां प्रतीतिमुत्पादयेत्। एवं प्रथमसमयसूक्ष्मकृष्टिप्रतिबद्धप्ररूपणं समाप्तम्।

सूक्ष्मसांपरायकृष्टिकारको द्वितीयसमये अपूर्वसूक्ष्मसांपरायकृष्टीः करोति। ताश्च प्रथमसमयकृतसूक्ष्मकृष्टिभ्योऽसंख्यातगुणहीनाः ताः द्वयोः स्थानयोः करोति। ते स्थाने के इति चेत्। प्रथमसमयकृतकृष्टीनामधो मध्येषु च करोति। अधःक्रियमाणकृष्टयः स्तोकाः। मध्येषु क्रियमाणकृष्टयोऽसंख्यातगुणाः। द्वितीयसमये घातद्रव्याणां संक्रमणद्रव्याणां च विभागं प्राग्वदेव कुर्यात्। किंतु प्रथमसमये सूक्ष्मकृष्टिनिमित्तमपकृष्टद्रव्याद्द्वितीयसमये अपकृष्टद्रव्यमसंख्यातगुणम्। संदृष्टिः [व १२ ५५३ / २४ ओ / a] एतस्मादेकाद्येकोत्तररूपोनप्रथमसमयसूक्ष्मकृष्टिगच्छसंकलनमात्रपूर्वविशेषान् गृहीत्वा पृथक् संस्थापयेत् एते अधस्तनशीर्षविशेषनामानः। संदृष्टिः [वि १/४ ४ / ख ख २] पुनः प्रथमसमयकृतजघन्यकृष्टिद्रव्यं संस्थाप्य पूर्वसूक्ष्मकृष्ट्यायामादसंख्यातगुणहीनाधस्तनकृष्ट्यायामेन संगुण्य तावन्मात्रद्रव्यं स्वीकृत्य पृथक्संस्थापयेत्। अधो निर्वर्त्यमानापूर्वकृष्टिप्रतिबद्धसमानखंडद्रव्यसंज्ञम्। संदृष्टिः [व १२ ५५३।४ / २४ ओ ४ ख ओ aa / ख] पुनः पूर्वसूक्ष्मकृष्ट्यायामादसंख्यातगुणहीनेन अधो निर्वर्त्यमानापूर्व - कृष्ट्यायामादसंख्यातगुणेनांतरनिर्वर्त्यमानापूर्वकृष्ट्यायामेन तत् जघन्यकृष्टिद्रव्यं संगुण्य तावन्मात्रद्रव्यं तस्मात्स्वीकृत्य पृथक्संस्थापयेत्। इदमंतरकृष्टिप्रतिबद्धसमानखंडसंज्ञम्। संदृष्टिः [व १२। ५५३।४ / २४ ओ ४ ख a / ख] पुनः प्रथमसमयसूक्ष्मकृष्टिगतद्रव्यसहितद्वितीयसमयसूक्ष्मकृष्टिगतद्रव्यं संस्थाप्य द्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानापूर्वकृष्ट्यध्वसहितपूर्वकृष्ट्यध्वना रूपोनाध्वार्द्धहीनद्विगुणहानिगुणितेन भक्त्वा द्वितीयसमयसर्वसूक्ष्मकृष्ट्यायामसंकलनेन संगुण्य तावन्मात्रविशेषान् पूर्वद्रव्याद्गृहीत्वा पृथक्संस्थापयेत्। एते

---

१. अनेन प्रकारेण द्वितीयसंग्रहेपि दत्त्वा पश्चात् बंधांतरकृष्टिष्विति तात्पर्यम्।

२. अधस्तनशीर्षसहितसमपट्टिकायाः पूर्वविशेषः एतावान् [व १२ / ४ ।१६ / ख] पुनर्मध्यमखंडरूपसमपट्टिकासंबंधिविशेषप्रमाणमिदं [व १२ / ओ a ४।१६ / ख] अनयोर्मेलने उभयद्रव्यविशेषो भवति।

उभयद्रव्यविशेषनामानः संदृष्टिः

१-			
वि	४	४	
	ख	ख	२

एतेन चतुर्विधद्रव्येण हीनद्वितीयसमयापकृष्टद्रव्यं सर्वसूक्ष्मकृष्ट्यायामेन भक्त्वा तेनैव संगुणितं तत् मध्यमखंडसंज्ञम्। संदृष्टिः

व १२।	५५३।	४	
२४ ओ		४	ख
	a	ख	

द्वितीयसमये दीयमानप्रदेशसमूहस्य श्रेणिनिरूपणं क्रियते। अनेन क्रमेण विभक्तसूक्ष्मकृष्टिप्रतिबद्धपंचविधद्रव्यैः प्राग्वद्विभक्तबादरकृष्टिप्रतिबद्धचतुर्विधसंक्रमणद्रव्यैर्द्वितीयकृष्टिप्रतिबद्धचतुर्विधबंधद्रव्यत्रिविधविशेषघातद्रव्यैश्च द्वितीयसमयदीयमानद्रव्यश्रेणिनिरूपणं क्रियते इति भावार्थः। तद्यथा द्वितीयसमये कृतसूक्ष्मसांपरायजघन्यकृष्टौ प्रदेशसमूहं बहुकं ददाति। सूक्ष्मकृष्टिप्रतिबद्धपंचविधद्रव्येष्वधस्तनसमानखंडेभ्य एकखंडं मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्यः पूर्वापूर्वसूक्ष्मकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य द्वितीयसमयजघन्यसूक्ष्मकृष्टिस्वरूपेण ददातीति तात्पर्यम्। द्वितीयसमयकृष्टावनंतभागरूपविशेषहीनं ददाति। अधस्तनमध्यमखंडेभ्य एकैकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोननिजसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य द्वितीयकृष्टिस्वरूपेण ददातीति भावार्थः। अनेन क्रमेण गत्वा प्रथमसमये या जघन्यसूक्ष्मसांपरायकृष्टिः कृता तस्यामसंख्यातभागहीनं ददाति। अधस्तनमध्यमखंडेभ्य एकैकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोननिजसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य तृतीयादिकृष्टिषु निक्षिपन् गच्छति। यावत् अपूर्वकृष्टीनां चरमकृष्टिस्तावत्। तत उपरि मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोननिजसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य प्रथमसमयकृतजघन्यसूक्ष्मकृष्टावपूर्वकृष्टीनां चरमकृष्टिदत्तद्रव्यादसंख्यातभागहीनं ददातीत्यभिप्रायः। ततोऽग्रेऽनंतभागहीनं ददाति यावन्निर्वर्त्यमानाऽपूर्वकृष्टिं प्राप्नोति तावत्। अधस्तनशीर्षविशेषेभ्य एकविशेषं मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीतसर्वाध्वोननिजसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य प्रथमसमयकृतद्वितीयकृष्टौ पूर्वविशेषोनोभयद्रव्यविशेषमात्रहीनतया ददाति। तृतीयादिकृष्टिषु अधस्तनशीर्षविशेषेभ्योऽतीतपूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् मध्यमखंडेभ्य एकैकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोननिजसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य निक्षिपन् गच्छति। यावन्निर्वर्त्यमानापूर्वकृष्टिमाप्नोति तावदित्यभिप्रायः। निर्वर्त्यमानापूर्वकृष्टावसंख्यातभागाधिकं ददाति अंतरकृष्टिप्रतिबद्धसमानखंडेभ्य एकखंडं मध्यमसमानखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोननिजसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य प्रथमसमयकृतजघन्यकृष्टेरारभ्य पल्यासंख्यातैकभागमात्रांतरमतीत्य तत्र स्थितांतरकृष्टीनां प्रथमकृष्टावधस्तनकृष्टिदत्तद्रव्यादसंख्यातभागाधिकं ददातीति भावार्थः। कुतः। अतीतरूपोनपूर्वकृष्ट्यायाममात्रपूर्वविशेषैरुभयद्रव्यविशेषेण च हीनपूर्वसर्वजघन्यकृष्टिमात्रेणाधिकत्वात्। तदुपरि पूर्वसमयनिर्वर्तितकृष्टौ देयप्रदेशसमूहोऽसंख्यातभागहीनः। अधस्तनशीर्षविशेषेभ्योतीत-

पूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोननिजसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्यातीतापूर्वकृष्टौ दत्तद्रव्यादसंख्यातभागहीनं पूर्वसमयनिर्वर्तिततदनंतरोपरितनकृष्टौ ददातीति तात्पर्यम्। कुतः। अतीतपूर्वकृष्ट्यायाममात्रपूर्वविशेषन्यूनपूर्वजघन्यकृष्ट्या हीनत्वात्। तदुपरितनोपरितनकृष्टावनंतभागहीनं ददाति। अधस्तनशीर्षविशेषेभ्योतीतपूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् मध्यमखंडेभ्य एकैकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीताध्वोननिजसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च स्वीकृत्य पूर्वविशेषोनोभयद्रव्यविशेषमात्रेण हीनतया उपरितनकृष्टिषु निक्षिपन् गच्छति यावदपूर्वकृष्टिं प्राप्नोति तावदित्यर्थः। उपर्यप्यनेन क्रमेण निक्षिपति यावत्प्रथमसमयकृतचरमसूक्ष्मकृष्टिस्तावत्। इत उपरि तृतीयबादरकृष्टिप्रतिबद्धचतुर्विधसंक्रमणद्रव्येषु मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्यो निजसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च गृहीत्वा चरमसूक्ष्मकृष्टौ दत्तद्रव्यासंख्यात[१]गुणहीनतया जघन्यबादरकृष्टौ ददाति। तदुपरि तत्प्रतिबद्धाधस्तनशीर्षविशेषेभ्य एकविशेषं मध्यमखंडेभ्य एकखंडमुभयद्रव्यविशेषेभ्योतीतबादरकृष्ट्यायामन्यूननिजसर्वाध्वमात्रविशेषांश्च गृहीत्वा पूर्वविशेषन्यूनोभयद्रव्यविशेषमात्रेण हीनतया द्वितीयकृष्टौ ददाति। अनेन क्रमेणोपर्यपि चतुर्विधसंक्रमणद्रव्यैस्त्रिविधविशेषघातद्रव्यचतुर्विधबंधद्रव्यैश्च दीयमानश्रेणिनिरूपणं प्रथमसमयवत्कुर्यात्। यावद्वेद्यमानलोभसंज्वलनद्वितीयबादरसंग्रहकृष्टेश्चरमकृष्टिस्तावत्। इति द्वितीयसमये दीयमानश्रेणिनिरूपणं समाप्तम्।।

द्वितीयसमये दीयमानप्रदेशसमूहस्य यद्विधानमुक्तं तेनैव विधानेन तृतीयादिशेषसमयेष्वपि कर्तव्यम्। यावद्बादरसांपरायचरमसमयस्तावत्। द्वितीयादिसमयेषु कृष्टिरूपेण निक्षिप्तद्रव्याणामियं संदृष्टिः

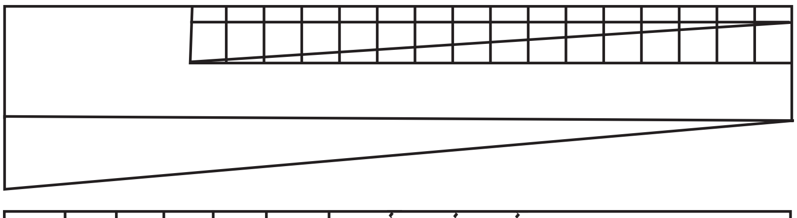

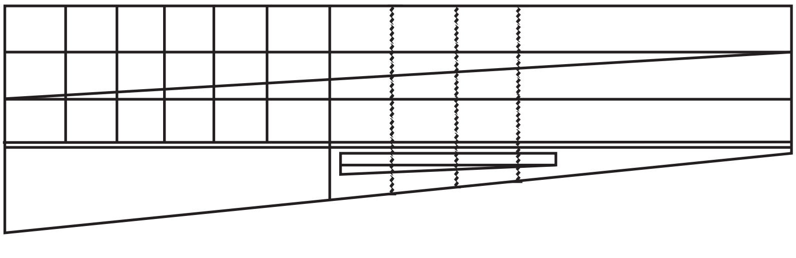

---

१. द्वितीयसमये आयद्रव्यं सूक्ष्मकृष्टावेवाऽसंख्यातगुणमागच्छति बादरकृष्टौ असंख्यातगुणं न द्वितीयसमये घातद्रव्याणां संक्रमणद्रव्याणां च विभागं प्राग्वदेव कुर्यात्।

सूक्ष्मसांपरायकृष्टिकारकस्य प्रथमसमयात्प्रभृति कृष्टिषु दृश्यमानप्रदेशसमूहस्येतोऽग्रे श्रेणिनिरूपणं क्रियते। तद्यथा जघन्यसूक्ष्मसांपरायकृष्टौ प्रथमसमयात्प्रभृतिदृश्यमानप्रदेशसमूहो बहुकः। तदुपरि द्वितीयकृष्टिमादिं कृत्वा अव्यवधानेनाऽनंतभागहीनतया दृश्यमानः स्यात् यावच्चरमसूक्ष्मसांपरायकृष्टिस्तावत्। तच्चरमकृष्टितस्तृतीयसंग्रहस्य जघन्यबादरसांपरायकृष्टौ दृश्यमानप्रदेशसमूहोऽसंख्यातगुणः। तत उपरि स्वकीयोभयद्रव्यविशेषमात्रहीनतया दृश्यमानो भवति यावच्चरमबादरकृष्टिस्तावत्। ततोऽग्रे सिंहावलोकनन्यायेन सूक्ष्मकृष्टिकरणकाले बादरलोभस्य द्वितीयतृतीयसंग्रहकृष्टिभ्यामागतप्रदेशस्याल्पबहुत्वमुच्यते। सूक्ष्मसांपराय-कृष्टिकरणावसरे लोभतृतीयसंग्रहचरमबादरसांपरायकृष्टितः सूक्ष्मसांपरायकृष्टौ संक्रांतप्रदेशः स्तोकः संदृष्टिः [व १२ / २४ ओ] लोभद्वितीयसंग्रहकृष्टितश्चरम[1] बादरसांपरायकृष्टौ संक्रमणप्रदेशसमूहः संख्यातगुणः। संदृष्टिः [व १२।२३ / २४। ओ] लोभद्वितीयसंग्रहकृष्टितः सूक्ष्मसांपरायकृष्टौ संक्रमणप्रदेशसमूहः संख्यातगुणः। कुतः। लोभतृतीयसंग्रह-कृष्ट्यायामात्सूक्ष्मसांपरायकृष्ट्यायामस्य [४ / ख] संख्यातगुणत्वात्। संदृष्टिः [व १२।५५२ / २४ ओ]

इत उपरि सूक्ष्मसांपरायकृष्टिविषयस्य प्रदेशसंक्रमणाल्पबहुत्वस्य साधकं बादरसांपरायकृष्टिविषयं प्रदेशसंक्रमणाल्पबहुत्वमुच्यते। क्रोधप्रथमसमयकृष्टिवेदकस्य क्रोधद्वितीयसंग्रहकृष्टितो मानप्रथमसंग्रहकृष्टौ संक्रमणप्रदेशसमूहः स्तोकः। क्रोधतृतीयसंग्रहकृष्टितो मानप्रथमसंग्रहकृष्टौ संक्रमणप्रदेशसमूहो विशेषाधिकः। कुतः। अल्पानुभागशक्तियुक्तसंग्रह-कृष्ट्यायामस्य विशेषाधिकत्वात्। विशेषाधिकायामयुतसंग्रहात्संक्रमणद्रव्यमपि विशेषाधिकत्वेन संक्रामति। विशेषाधिकप्रमाणं पात्रानुसारेण[2] पल्यासंख्यातभक्तैकभागो भवति। मानप्रथमसंग्रहकृष्टितो मायाप्रथमसंग्रहकृष्टौ संक्रमणप्रदेशसमूहो विशेषाधिकः। अत्राधिकप्रमाणं[3] पात्रानुसारेणावल्यसंख्यातभक्तैकखंडमात्रं। मानद्वितीयसंग्रहकृष्टितो मायाप्रथमसंग्रहकृष्टौ संक्रमणप्रदेशसमूहो विशेषाधिकः। मानतृतीयसंग्रहकृष्टितो मायाप्रथमसंग्रहकृष्टौ संक्रमणप्रदेशसमूहो विशेषाधिकः। मायाप्रथमसंग्रहकृष्टितो लोभप्रथमसंग्रहकृष्टौ संक्रमणप्रदेशसमूहो विशेषाधिकः। मायाद्वितीयसंग्रहकृष्टितो लोभप्रथमसंग्रहकृष्टौ संक्रमणप्रदेशसमूहो विशेषाधिकः। लोभप्रथमसंग्रहकृष्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकृष्टौ संक्रमणप्रदेशसमूहो विशेषाधिकः। अत्र सर्वत्रापि पात्रानुसारेण[4] संक्रमणद्रव्यविशेषाधिकमिति

---

१. तृतीयसंग्रहकृष्टौ २. क्रोधतृतीयसंग्रहपात्रं

३. अत्र पात्रं माया एवाऽधस्थितं न पुनरुपरि स्थितं मानपात्रं, अधस्तनसंग्रह पात्रं

४. संग्रहायामानुसारेण

युक्तिं ब्रूयात्। ननु क्रोधद्वितीयसंग्रहत आरभ्य अधःसंक्रांतसर्वद्रव्यमपि परस्थानसंक्रमणात् अधःप्रवृत्तसंक्रमणेन संक्रांतं लोभप्रथमसंग्रहकृष्टितो लोभद्वितीयसंग्रहे संक्रांतद्रव्यं स्वस्थान-संक्रमणादपकर्षणसंक्रमणेन संक्रांतं अतःकारणात् पूर्वसंक्रमणद्रव्यादिदं संक्रमणद्रव्यमसंख्यात-गुणमेव भवेन्न विशेषाधिकं। कुतः। अधःप्रवृत्तभागहारादपकर्षणभागहारस्य सर्वत्राप्यसंख्यात-गुणहीनत्वादिति चेत्। अत्र परिहार उच्यते। सर्वो सर्गस्थानेषु एतौ द्वौ भागहारावनेनैव प्रकारेण प्रवर्तेते। अपवादरूपे अत्र परिणामातिशयमाश्रित्याधःप्रवृत्तभागहारोऽपकर्षणभागहारानुसारेणैव प्रवर्त्तेते। ततोऽपवादविषयं परिहृत्योत्सर्गः प्रवर्तते इति न्यायादिमं[1] विषयं त्यक्त्वा शेषविषयेषु अपकर्षणभागहारादधःप्रवृत्तभागहारोऽसंख्यातगुण इति ग्राह्यः। लोभप्रथमसंग्रहकृष्टितो लोभतृतीयसंग्रहकृष्टौ संक्रमणद्रव्यं विशेषाधिकम्। अत्र पात्रानुसारेण विशेषाधिकं ज्ञेयम्। क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टिप्रदेशसत्त्वस्य त्रयोदशगुणत्वात् संक्रमणद्रव्यमपि संख्यातगुणं जातम्। क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टित एव क्रोधतृतीयसंग्रहकृष्टौ संक्रमणप्रदेशसमूहो विशेषाधिकः। अत्र[2] पात्रानुसारेण विशेषाधिकत्वमवसेयम्। क्रोधप्रथमसंग्रहकृष्टितः क्रोधद्वितीयसंग्रहकृष्टौ संक्रमण-प्रदेशसमूहः संख्यातगुणः अत्र प्राक्तनपात्रादिदानींतनं पात्रमल्पं तथाप्यनंतरोदययोग्यत्वात् संक्रमणद्रव्यं संख्यातगुणं जातम्। बादरकृष्टिविषयं इदं प्रदेशसंक्रमणाल्पबहुत्वमतिक्रांतावसरं तथापि उत्क्षिप्तं[3] कुतः सूक्ष्मसांपरायकृष्टिषु क्रियमाणासु सतीषु संक्रमणद्रव्याणामाधाराधेय-वशेनोक्ते तदल्पबहुत्वेन सह पूर्वोक्ताल्पबहुत्वं सदृशाश्रय[4]मिति। अनेनाल्पबहुत्वेन सह पूर्वोक्त-बादरकृष्टिविषयाल्पबहुत्वं सदृशाश्रयं कथं जातमिति चेत्। लोभद्वितीयबादरसंग्रहकृष्टितस्तृतीय-बादरसंग्रहकृष्टौ संक्रम्यमाणप्रदेशसमूहात्सूक्ष्मकृष्टिषु संक्रम्यमाणप्रदेशसमूहः संख्यातगुणः इतीदानीमल्पबहुत्वमुक्तम्। ईदृशप्रदेशसंक्रमणं[5] गुणकारश्चात्र प्रवर्त्य स्थिताविति न। पूर्वमपि बादरकृष्टिविषये संख्यातगुणात्प्रदेशसमूहात्संख्यातगुणं प्रदेशसंक्रमणं भूत्वा आगच्छदिदानीमपि संख्यातगुणं जातमित्येतदर्थनिरूपणद्वारेण सूक्ष्मकृष्टिषु क्रियमाणासु इदं प्रदेशसंक्रमणाल्प-बहुत्वमाश्रयीभूतं जातम्। [6]प्रथमसमये सूक्ष्मसांपरायकृष्टिषु अपकृष्य देयप्रदेशसमूहः स्तोकः

---

१. मानप्रथमसंग्रहात् क्रोधतृतीयसंग्रह विशेषाधिकः

२. क्रोधप्रथमकृष्टिवेदकप्रथमसमयादारभ्य बादरलोभद्वितीयकृष्टिवेदकचरमसमयपर्यतं

३. उद्घाटितं

४. लोभद्वितीयबादरसंग्रहाऽऽश्रयः इत्यर्थः।

५. चतुर्दशादि

६. लोभद्वितीयसंग्रह

द्वितीयसमये अपकृष्य देयप्रदेशसमूहोऽसंख्यातगुणः। एवं यावदनिवृत्तिकरणचरम-समयस्तावदसंख्यातगुणो भवति। प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्ध्या प्रवर्द्धमानोऽयं मुनिः प्रतिसमयम-संख्यातगुणप्रदेशसमूहमपकृष्य सूक्ष्मसांपरायकृष्टीः करोतीत्यभिप्रायः। इदमल्पबहुत्वं पूर्वोक्तं तथापि संबंधं द्योतयितुं पुनरप्युक्तम्। अनेन पूर्वोक्तक्रमेण लोभद्वितीयसंग्रहकृष्टिवेदकस्य प्रथमस्थितौ समयाधिकावलिरवशिष्यते तदा चरमसमयानिवृत्तिकरणो जायते। तदा लोभतृतीयबादरसांपरायकृष्टिः परमुखेन[1] संक्रम्यमाणा सती सूक्ष्मकृष्टिरूपेण साकल्येन संक्रांता जाता। लोभद्वितीयसंग्रहकृष्टावपि समयोनद्व्यावलिमात्रनवकबंधसमयप्रबद्धान् समयाधि-कोच्छिष्टावलिप्रविष्टबादरकृष्टिं च मुक्त्वा शेषद्वितीयसंग्रहकृष्टिः परमुखेन संक्रांता द्रव्यार्थिकनयापेक्षया अस्मिन् समये संक्रांता जातेत्युक्ता। पर्यायार्थिकनयापेक्षया तु अग्रतनसमये द्विसमयोनद्व्यावलिमात्रनवकबंधान् उच्छिष्टावलिप्रविष्टं च मुक्त्वा तच्छेषबादर-कृष्टिप्रतिबद्धसर्वद्रव्यं सूक्ष्मकृष्टिस्वरूपेण संक्रांतमिति ज्ञातव्यम्। इदानीं सर्वकर्मणां स्थितिबंध-स्थितिसत्त्वप्रमाणमुच्यते। तदनिवृत्तिकरणस्य चरमसमये लोभसंज्वलनस्य जघन्यस्थितिबंधोंऽत-र्मुहूर्तमात्रः। अत्रैव मोहनीयस्य बंधव्युछित्तिर्जातेति ज्ञातव्या। घातित्रयस्य स्थितिबंधः किंचिन्न्यूनदिवसमात्रः पूर्वं दिवसपृथक्त्वमात्रस्थितिबंधः क्रमेण हीयमानः इदानीं मुहूर्तपृथक्त्वप्रमाणो जात इत्यर्थः। नामगोत्रवेदनीयानां बादरसांपरायस्य चरमस्थितिबंधः प्राक्तनसंख्यातवर्षसहस्रप्रमाणात्क्रमेण हीयमानः किंचिन्न्यूनवर्षमात्रो जातः। चरमसमयबादर-सांपरायस्य मोहनीयस्थिति-सत्त्वमंतर्मुहूर्तमात्रम्। घातित्रयस्य स्थितिसत्त्वं संख्यातवर्षसहस्रमात्रम्। नामगोत्रवेदनीयानां स्थितिसत्त्वमसंख्यातवर्षमात्रम्।

अनिवृत्तिकरणस्वरूपनिरूपकसूत्रं -

एकसमये[2] मिथो ये भाषादिभिरसदृशाः सदृशाश्च।
परिणामैः सदृशाः स्युर्नियमादनिवृत्तयस्तेऽमी।।

मोहराजस्य महामंत्रिणा चतुर्विधसंज्वलनबादरकृष्टीर्निर्मूलमुन्मूल्यानंतरसमये अयं मुनिः प्रथमसमयसूक्ष्मसांपरायो जातः। सूक्ष्मकृष्टीरपकृष्य वेदयमानः सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानं प्राप्तःइति तात्पर्यम्। सूक्ष्मसांपरायप्रथमसमये लोभसंज्वलनप्रतिबद्धसूक्ष्मकृष्टीनां याः स्थितयोंऽतर्मुहूर्त-प्रमाणाः तत्संख्यातैकभागमात्रस्थितिकांडकं लांछितं जातम्। मोहकृष्टिगतानुभागानु[3]-समयापवर्तनं ज्ञानावरणादिकर्मणां स्थित्यनुभागघातश्च प्राग्वत्प्रवर्तेते। तत्र द्रव्यनिक्षेपक्रमः कथमिति चेत्।

---

१. प्राक् इदानीं   २. परस्पर   ३. मोहसूक्ष्मकृष्टीनां

सूक्ष्मकृष्टिप्रतिबद्धा[1] ल्लांछितालांछितस्थितिस्थितादेतावन्मात्र। स १२-। द्रव्यादेतावत् [स १२ / ओ] द्रव्यमपकृष्य पल्यासंख्यातेन भक्त्वा बहुखंडानि पृथक्संस्थाप्यैकखंडमेतावन्मात्रं [स १२ / ओ प / a] पदमितगुणहानिगुणितप्रभवः स्याद्गुण[2]धनं तदाद्यूनं एकोनगुणविभक्तं गुण- संकलितं[3] विजानीयादित्येतत्सूत्रेष्ट्या एकादिपल्यासंख्यातैकभागमात्रगुणोत्तरनिजगुणश्रेण्यायामग-च्छगुणसंकलनामानीय तया भक्त्वा एकभागमात्र[4]द्रव्यमुदयनिषेके ददाति। तच्चाग्रतननिषेकेषु देयद्रव्येभ्यःस्तोकम्। तत उपर्यंतमुहूर्तप्रमितनिजगुणश्रेणिशीर्षपर्यंतम-संख्यातगुणितक्रमेण स्थितनिजनिजगुणकारशलाकाभिरेकभागं संगुण्य तावन्मात्रमसंख्यात-गुणश्रेणिरूपेण ददाति। गुणकारशलाकानां संदृष्टिः १।४।४।४।४४४। गुणसंकलितधनस्यांक-संदृष्टिः८५। सूक्ष्म-सांपरायेण क्रियमाणगुणश्रेण्यायामः अंतर्मुहूर्तप्रमितसूक्ष्मसांपराय-कालाद्विशेषाधिकस्तथापि ज्ञानावरणादीनां तत्कालभाविगलितावशेषगुणश्रेण्यायामादंतर्मुहूर्तेन हीनः[5] इयमवस्थितगुणश्रेणिरिति ज्ञातव्या। गुणश्रेणिशीर्षादुपरि या व्यवधानस्थितिस्तस्या गुणश्रेणिशीर्षदत्तद्रव्यादसंख्यातगुणं ददाति। तत उपरि विशेषहीनं ददाति। यावत्पूर्वसमये यदंतरायामप्रमाणस्थितं तच्चरमांतरस्थितिस्तावत्। चरमांतरस्थितौ दत्तद्रव्यात्पूर्वसमये या द्वितीयस्थितिः तस्या आदिस्थितौ दीयमानद्रव्यसमूहः संख्यातगुणहीनः। तदुपरितनस्थितौ विशेषहीनं भवति। अत्र तात्पर्यार्थः उच्यते। तद्यथा। अंतरदीर्घप्रमाणं सर्वतः स्तोकम्। संदृष्टिः २१४। स्थितिकांडकदीर्घप्रमाणं संख्यातगुणं। संदृष्टिः २१।४।४। स्थितिकांडकाधस्तनस्थितिदीर्घ-प्रमाणं संख्यातगुणं। संदृष्टिः २१।४।४।४। द्वितीयस्थितिसमस्तदीर्घमिदं। २१४।२०। अंतरस्थिति-दैर्घ्येण द्वितीयस्थितिदैर्घ्ये भक्ते लब्धमेतावत्। २०। अनेन संख्यातराशिना पूर्वं पृथक्स्थापित-बहुभागद्रव्यमिदं[6] [व १२ १ a / ओ a] भक्त्वा एकखंडं स्वीकृत्यांतरस्थितौ देयपक्षे चरमांतरस्थितौ दत्त-द्रव्याद्द्वितीयस्थितेरादिस्थितौ देयद्रव्यं[7] किंचिन्न्यूनं भवति। खंडद्वयं

---

१. 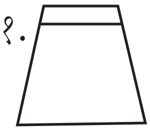 इदं लांछितं। २. ऋणसहितं ३. शुद्धधनं

४. [स १२ / ओ प प / a a] इदं [स १२ / ओ प ८४ / a] इदमपि एकादृशमेव स्यात्। ५. अस्य चरमनिषेकं भक्तेत्यर्थः।

६. अत्रैकरूपमेव गुणयाऽपवर्त्य विंशत्या भक्ते अंतरद्रव्यं [व १२ / ओ २०] स्यात्युमैन द्वितीयस्थिति [व १२ १ a / ओ a]

७. अंतरद्रव्य

गृहीत्वा अंतरस्थितौ देयपक्षे चरमांतरस्थितौ दत्तद्रव्याद् द्वितीयस्थितेरादिस्थितौ देयद्रव्यं किंचिन्न्यूनद्विभागो भवति। खंडत्रयं गृहीत्वा अंतरस्थितौ देयपक्षे चरमांतरस्थितौ दत्तद्रव्याद् द्वितीयस्थितेरादिस्थितौ देयद्रव्यं किंचिन्न्यूनत्रिभागो भवति। अनेन क्रमेण तत्प्रायोग्यसंख्यातखंडानि स्वीकृत्यांतरस्थित्यायामप्रमाणेन भक्त्वा निजरूपोनगच्छार्द्धमात्रविशेषान् संयोज्य गुणश्रेणिशीर्षस्यानंतरांतरस्थितौ निक्षिप्तेषु गुणश्रेणिशीर्षदत्तद्रव्यादिदमसंख्यातगुणं भवति। शेषखंडद्रव्यं स्वीकृत्यांतरस्य द्वितीयस्थितेरारभ्य विशेषहीनस्वरूपेण ददाति यावच्चरमांतरस्थितिस्तावत् इत्यंतरस्थितौ दत्तद्रव्यमपकृष्टसर्वद्रव्यसंख्यातैकभागमात्रं भवति। पुन: शेषसंख्यातबहुभागमात्रद्रव्यमावल्यूनद्वितीयस्थित्यायामेन भक्त्वा रूपोनगच्छार्द्धमात्र

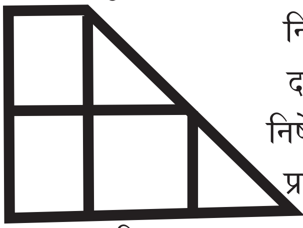

कु व । वि ११
२२

निजविशेषान् संयोज्य द्वितीयस्थितेरादिस्थितौ निक्षिप्तेषु चरमांतरस्थितौ दत्तद्रव्यादिदं संख्यातगुणहीनं। शेषद्रव्यमपि स्वीकृत्य द्वितीयस्थितेर्द्वितीय निषेकात्प्रभृति विशेषहीनस्वरूपेण निक्षिपन् गच्छति यावदतिस्थापनावलिं प्राप्नोति तावत्। सूक्ष्मसांपरायस्य प्रथमसमये य: प्रदेशसमूहोऽपकृष्टस्तमनेन पूर्वोक्तदीयमाणश्रेणिक्रमेण ददाति। प्रथमकांडकस्य प्रथमसमयापकृष्टद्रव्यनिक्षेपसंदृष्टि:

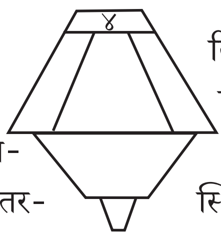

द्वितीयसमयेपि प्रथमसमयापकृष्टद्रव्यादसंख्यातगुणद्रव्यमपकृष्यानेन क्रमेण निक्षिपन् उदयनिषेकेऽल्पं निक्षिपति द्वितीयनिषेके असंख्यातगुणं एवमसंख्यातगुणतया निक्षिपन् गच्छति यावत्प्रथमसमयकृतगुणश्रेणिशीर्षस्योपरितनानंतरस्थितिस्तावत्। कुत:। मोहनीयस्यावस्थितगुणश्रेणिनिक्षेपात् गुणश्रेणिशीर्षस्योपरितनानंतरैकस्थितौ[1] गुणश्रेणिविषयत्वाभावेपि द्रव्यमाहात्म्यादसंख्यातगुणत्वेन ददाति। तत उपरिभूत[2] पूर्वकन्यायविषयीकृतांतरचरमस्थितिपर्यंत विशेषहीनत्वेन ददाति। तत उपरि द्वितीयस्थितेरादिस्थितौ प्राग्वत्संख्यातगुणहीनतया ददाति। तत उपरि विशेषहीनतया निक्षिपन् गच्छति यावदतिस्थापनावलिं प्राप्नोति तावत्। तृतीयादिसमयेष्वप्यपकृष्य देयद्रव्यस्य दीयमानश्रेणिनिरूपणमनेन क्रमेण कुर्यात् यावत्सूक्ष्मसांपरायस्य प्रथमस्थितिकांडकमुत्कीर्यमाणमुत्कीर्णं भवति तावत्। अत्र चरमफालिद्रव्यप्रमाणनिरूपणं क्रियते। तद्यथा द्वितीयस्थिते: प्रथमगोपुच्छद्रव्या

स १२
२१ ।४।२०

च्चरमफालेश्चरमगोपुच्छद्रव्यं रूपोननिजगच्छमात्रविशेषैर्हीनं भवति। तस्यप्रमाणमिदं[3] चरमफालिदैर्घ्येण

---

१. अंतरप्रथम निषेके

२. प्रागुक्त प्रकार एव

३. चरमनिषेकद्रव्यं

स १२।१६- ¹/२१४।२०
२१४।२०।१६- ¹/२१४।२०
२

संगुण्य विशेषाधिकं कृतं सत् चरमफाले: सर्वद्रव्यप्रमाणमेतावत् (स १२।२९।४।४ / २९।४।२०) अत्र चरम-फालिदैर्घ्यप्रमाणसमानगुणकारभागहारान् अपवर्त्यैतावत् इदं (स १२।४ / २०) द्रव्यम-धोऽपकृष्टद्रव्येणाधिकं कृत्वा संस्थाप्य पल्यासंख्यातभागेन भक्त्वा एकभागं स्वीकृत्यो-दयनिषेकादारभ्य गुणश्रेणिशीर्षपर्यंतमसंख्यातगुणितक्रमेण दत्त्वा शेषबहुभागेन अंतरायामेन चरमफालिदैर्घ्यं[1] भक्त्वा लब्धसंख्यातरूपैर्भक्ते एकखंडमेतावत् (स १२ / २०) पूर्वमंतरस्थितौ दत्तद्रव्येण हीनं कृत्वा स्वीकृत्य पुन: शेषद्रव्यमेतावत् (स १२।३ / २०) अंतरायामेण[2] शेष द्वितीयस्थितिदैर्घ्यं (२९।४।४।४ / २९।४) भक्त्वा लब्धरूपाधिकसंख्यातरूपैर्भक्त्वा एकखंडमेतावत् (स १२।३ / २०।१७) प्राग्गृहीतद्रव्येण समच्छेदं कृत्वा मिलिते एतावत् (स १२।२० / २०।१७) इदं द्रव्यमंतरस्थितिषु प्राग्वद्गोपुच्छाकारेण दत्वा शेषद्रव्यमेतावत् (स १२।३।१६ / २०।१७) शेषद्वितीयस्थितौ गोपुच्छाकारेण दत्ते चरमांतरस्थितौ दत्तैतावन्मात्र (स १२।२० / २९।४।२०।१७) द्रव्याद्द्वितीयस्थितेरादिस्थितौ दत्तैतावन्मात्रद्रव्यं संख्यातगुण- हीनमस्ति। ततः कारणाद्द्वितीयसमयादरभ्य सूक्ष्म- (स १२।३ / २९।४।२०।१७) सांपरायस्य प्रथमस्थितिकांडक-चरमफालिपातपर्यंतमपकृष्य देयद्रव्यस्य दीयमानश्रेणिक्रम: प्रथमसमयवदिति समर्पणं सूक्तं जातम्। अत्रांतरपूरणेन गुणश्रेणिं विना शेषसर्वस्थितिष्वपि एकगोपुच्छो जात: इति ज्ञातव्य:। द्वितीयस्थितिकांडके द्रव्यनिक्षेपक्रम: कथमस्तीति चेत्। द्वितीयस्थितिकांडका-त्तदधस्तनोदयावल्युपरितनसर्वस्थितिभ्यश्च प्रदेशसमूहमपकृष्य पल्यासंख्यातेन भक्त्वा तत्रैकखंडं स्वीकृत्य प्राग्वदुदयनिषेके स्तोकं ददाति। तत उपरि असंख्यातगुणश्रेणिरूपेण ददाति यावद्गुणश्रेणिशीर्षस्योपरितनांतरैकस्थितिस्तावत्। शेषबहुभागमात्रद्रव्यमुपरितनांतर्मुहूर्तप्रमाणा-यामेन भक्त्वा तत्रैकखंडं रूपोनगच्छार्द्धमात्रविशेषाधिकं कृत्वा स्वीकृत्य गुणश्रेणिशीर्ष-स्योपरितनानंतरस्थितौ दत्तं सत् गुणश्रेणिशीर्षप्राग्दत्तद्रव्यात्संप्रति दत्तद्रव्यमसंख्यातगुणम्। शेषद्रव्यं तदनंतरस्थिते: प्रभृति विशेषहीनस्वरूपेण निक्षिपन् गच्छति यावत्स्वस्वाति-स्थापनावलिं प्राप्नोति तावत्। द्वितीयकांडकप्रथमसमयापकृष्टद्रव्यनिक्षेपसंदृष्टि:

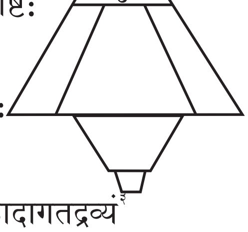

इत उपरि सूक्ष्मसांपरायसर्वस्थितिकांडकेष्वपि दीयमानप्रदेशश्रेणिक्रम: एवमस्तीति ज्ञातव्य:। यावन्मोहनीयस्य द्विचरमस्थितिकांडकस्य चरमफालि: पतति तावत्। सर्वस्थितिकाण्डकेषु चरमफालिपातपर्यंतमपकृष्यमाणद्रव्यं सकलद्रव्यासंख्यातैकभागमात्रमेव स्यात्। चरमफालिपातकाले स्थितिकांडकादागतद्रव्यं[3]

---

१. प्र २९४ फ १ इ २९।४।४ लब्ध ४   २. कांडकावशिष्ट   ३.चरमफालावेककांडकस्या-संख्यातबहुभागद्रव्यं कांडकानि च संख्यातान्येवाऽतः कारणादधस्तनाऽऽगतद्रव्यं

सकलद्रव्यसंख्यातैकभाग[1] एव भवेदिति स्वीकुर्यात्। एवं सूक्ष्मसांपराय प्रथमसमयादारभ्य दीयमानद्रव्य श्रेणिनिरूपणं समाप्तम्।

अथ प्रथमसमयसूक्ष्मसांपरायस्य लोभस्य निषेकेषु यः प्रदेशसमूहः दृश्यमानोऽस्ति तस्य श्रेणिनिरूपणं क्रियते। तद्यथा प्रथमसमयसूक्ष्मसांपरायस्योदयस्थितौ दृश्यमानप्रदेशसमूहः स्तोकः। द्वितीयस्थितौ दृश्यमानोऽसंख्यातगुणः। तत उपरि गुणश्रेणिशीर्षस्यानंतरैकनिषेकपर्यंतम-संख्यातगुणः। कुतः। अस्मिन् स्थले[2] दीयमानद्रव्यवत् दृश्यमानद्रव्यस्यापि असंख्यात-गुणश्रेणिरूपेणावस्थानात्। तत उपरि विशेषहीनतया दृश्यमानमस्ति यावच्चरमांतरस्थितिस्तावत्। कुतः। दीयमानप्रदेशानुसारेणैव दृश्यमानप्रदेशस्यापि विशेषहानिस्वरूपेणावस्थानात्। चरमांतरस्थितेर्दृश्यमानाद्द्वितीयस्थितेरादिस्थितौ दृश्यमानोऽसंख्यातगुणः तत उपरि चरमस्थितिपर्यंत विशेषहीनतया दृश्यमानोस्ति। द्वितीयसमयात्प्रभृति यावत्सूक्ष्मसांपरायस्य प्रथमस्थितिकांडकं चरमसमयाऽविनाशितं तावद्[3] दृश्यमानश्रेणिप्ररूपणस्य क्रमोऽयमेव। प्रथमस्थितिकांडकस्य चरमफालिपतनानंतरं दृश्यमानद्रव्यस्य श्रेणिनिरूपणक्रमः कथमस्तीति चेत्। प्रथमस्थितिकांडकविनाशात्परमुदयस्थितौ प्रदेशसमूहः स्तोकतया दृश्यमानो भवति। द्वितीयस्थितावसंख्यातगुणतया दृश्यमानः। तत उपरि गुणश्रेणिशीर्षस्यानंतरैकस्थितिर्या-वत्तावत्पर्यंतमसंख्यातगुणत्वेन दृश्यमानोऽस्ति। तत उपरि विशेषहीनतया दृश्यमानोऽस्ति। यावत् मोहनीयस्योत्कृष्टस्थितिस्तावत्। कुतः। प्रथमस्थितिकांडकस्य चरमफालिपातकाले गुणश्रेणिं विना उपरितनाशेषस्थितौ प्राक् एकगोपुच्छाकारेण निक्षिप्त[4]दीयमानद्रव्यानुसारेणैव दृश्यमानद्रव्यस्याप्य-वस्थानात्। सूक्ष्मसांपरायस्य प्रथमस्थितिकांडकं प्रथमसमयविनाशितं जातं तदा गुणश्रेणिं विना शेषस्थितिषु एकगोपुछश्रेणिः कथं जाता इति प्रश्ने तन्निर्णयं कर्त्तुमिमान्यल्पबहुत्व-पदान्युच्यन्ते।।तद्यथा अंतर्मुहूर्तप्रमाणसूक्ष्मसांपरायकालः सर्वतः स्तोकः। ततः प्रथमसमयसूक्ष्म सांपरायस्य मोहनीयप्रतिबद्धगुणश्रेणिनिक्षेपो विशेषाधिकः। विशेषप्रमाणं सूक्ष्मसांपरायकालस्य संख्यातैकभागमात्रम्। ततः अंतरस्थित्यायामः संख्यातगुणः ततः सूक्ष्मसांपरायस्य मोहनीयस्य प्रथमस्थितिकांडकं संख्यातगुणम्। ततः प्रथमसमयसूक्ष्मसांपरायस्य मोहनीय स्थितिसत्त्वंसंख्यात-गुणं। अत्र गुणकारप्रमाणं तत्प्रायोग्यसंख्यातरूपाणि। इदमल्पबहुत्वं प्रकृतार्थसाधकं कथं जातमिति चेत्। यतः कारणादस्मिन्नल्पबहुत्वे अंतरायामात्प्रथमस्थितिकांडकायामः संख्यातगुणः इत्युक्तः।

---

१. [स १२।२९ / ७।२९।९] अपवर्तितं [स १२ / ७ ९]

२. प्रथमसमयदीयमानक्रमे अंतरप्रथमनिषेके गुणश्रेणि-शीर्षादसंख्यातगुणं दत्तं

३. द्विचरमसमये

४. अनेकवार

ततः कारणात्प्रथमस्थितिकांडकस्य चरमफालिद्रव्येंऽतरायाममात्रगोपुच्छान् गृहीत्वा अंतरस्थितिषु दत्त्वा द्वितीयस्थित्या सहैकगोपुच्छं कर्तुं द्रव्यमस्तीत्यस्य व्यापकतया प्रकृतार्थसाधकं जातम्। अन्यथा। प्रथमस्थितिकांडकायामात् अंतरायामस्य महत्त्वपक्षे अंतरस्थितिद्वितीयस्थित्योरेकगोपुच्छस्याघटनात्। द्वितीयादिस्थितिकांडकेष्वपि दृश्यमानश्रेणिनिरूपणमनेन क्रमेण कुर्यात्। अयं तु विशेषः। गुणश्रेणिशीर्षे दृश्यमानद्रव्यं विशेषाधिकमेव नासंख्यातगुणं अस्य कारणं दर्शनमोहनीयस्य क्षपणायां सम्यक्त्वस्याष्टवर्षात्परं यथा उक्तं तथैव स्वीकुर्य्यात्। इति दृश्यमानद्रव्यश्रेणिनिरूपणं समाप्तम्।

इत उपरि संक्षेपरूचिशिष्यानुग्रहनिमित्तं बादरकृष्टिप्रतिबद्धार्थनिरूपणपुरस्सरं पुनः सूक्ष्मसांपरायप्रतिबद्धार्थनिरूपणं क्रियते। लोभद्वितीयसंग्रहकृष्टिवेदकस्य प्रथमस्थितौ विश्रमणावलिः संक्रमणावलिरुच्छिष्टावलिश्चेत्यावलित्रयं यावदवशिष्यते तावदेव लोभद्वितीयसंग्रहकृष्टितः प्रदेशसमूहं गृहीत्वा लोभतृतीयसंग्रहकृष्टौ ददाति न तत उपरि पुनः कुत्र ददातीति चेत् सर्वद्रव्यं सूक्ष्मसांपरायकृष्टिषु ददाति। प्रथमस्थितावावलित्रयं कुतोऽवशिष्यते इति चेत्। लोभद्वितीयसंग्रहकृष्टितस्तृतीयबादरसांपरायकृष्टौ संक्रांतद्रव्यं तत्रैव विश्रमणावलिमात्रकालमचलस्वरूपेण स्थित्वा पश्चात्संक्रमणप्रायोग्यं भूत्वा संक्रमणावलिमात्रकालेन तद्द्रव्यं सर्वं पुराणसत्वेन सह सूक्ष्मकृष्टिषु संक्रामति। एवं संक्रमणे सति उच्छिष्टावलिमात्रप्रथमस्थितिरवशिष्यते। ततः कारणात् लोभद्वितीयसंग्रहकृष्टेः प्रथमस्थितावावलित्रयमवशिष्यते तावत् लोभद्वितीयसंग्रहकृष्टेर्द्रव्यं तृतीयबादरकृष्टौ संक्रामति। तत उपरि न संक्रामतीति निरूपणं युक्तियुक्तम्। इत उपरि सूक्ष्मकृष्टिषु द्वितीयसंग्रहकृष्टिद्रव्यमपकर्षणसंक्रमणेन निक्षिपंस्तिष्ठति यावन्निजप्रथमस्थितेरावलिप्रत्यावलिमात्रमवशिष्यते तावत्।[1] तत्रागालप्रत्यागालव्युच्छित्तिं कृत्वा पुनः समयोनावलिमात्रनिषेकान् अधोगलनया अनुभूय समयाधिकावलिमात्रप्रथमस्थितौ वर्तमानश्चरमसमयबादरसांपरायो भवति। तदनंतरसमये प्रथमसमयसूक्ष्मसांपरायो जातः। तदा अधः उपरि पल्यासंख्यातैकभागमात्रसूक्ष्मकृष्टीर्मुक्त्वा मध्यमसूक्ष्मकृष्टयोऽसंख्यातबहुभागा उदयन्ति। अधुना अनुदीर्णकृष्टीनामुदीर्णकृष्टीनां चाल्पबहुत्वमुच्यते। अधस्तनानुदीर्णकृष्टयः स्तोकाः। उपरितनानुदीर्णकृष्टयो विशेषाधिकाः। अधिकागमननिमित्तं भागहारः पल्यासंख्यातैकभागः। मध्ये याः सूक्ष्मसांपरायकृष्टयः उदीर्णाः ताः पल्यासंख्यातभागगुणिताः। अधस्तनप्रक्षेपशलाकांकसंदृष्टिः।२। उपरितनप्रक्षेपशलाकांकसंदृष्टिः।३। सकलसूक्ष्मकृष्टिसंदृष्टिः $\frac{४}{ख}$
एताः सूक्ष्मकृष्टीः पल्यासंख्यातभागेन भक्त्वा तत्र बहुखंडं मध्यमोदयकृष्टिप्रमाणं संदृष्टिः ४१ प/a
ख प/a

---

१. आवलिद्वयशेषे सति

एकखंडं सकलप्रक्षेपशलाकायोगेन भक्त्वा अधस्तनप्रक्षेपशलाकाभ्यां गुणितं सत् अधस्तनानुदयकृष्टिप्रमाणं भवति संदृष्टिः [।४।२ / ख प ५ / a] उपरितनप्रक्षेपशलाकाभिर्गुणितं सत् उपरितनानुदयकृष्टिप्रमाणं भवति। संदृष्टिः [।४।३ / ख प ५ / a] सूक्ष्मसांपरायस्य काले यावत्संख्यातबहुभागा गच्छन्ति तावत् संख्यातसहस्र- स्थितिकांडकेषु पतितेषु मोहनीयस्य चरमस्थितिकांडकं पातयन् शेषसूक्ष्मसांपरायस्य कालं त्यक्त्वा शेषोपरितन-मोहनीयस्य गुणश्रेणिनिक्षेपस्य शीर्षादारभ्य अधस्तनसंख्यातभागेन[1] सह उपरि पुनः काश्चित् स्थितय[2]श्चरमकांडकस्वरूपेण लांछिता जाताः। स्वकीयकालाद्विशेषाधिकतया प्रथमसमय-सूक्ष्मसांपरायेण निक्षिप्तगुणश्रेणिनिक्षेपे सूक्ष्मसांपरायस्यावशिष्टकालमात्रगुणश्रेणिगोपुच्छान् त्यक्त्वा[3] शेष[4]विशेषाधिकनिक्षेपप्रमाणगुणश्रेणिगोपुच्छान् तदुपरितन[5]गुणश्रेणिगोपुच्छान् तत उपरि गुणश्रेणिशीर्षात्संख्यातगुणांतर्मुहूर्तमात्रगोपुच्छांश्च चरमस्थितिकांडकस्वरूपेण लांछतीत्यभिप्रायः। चरमस्थितिकांडकस्य प्रथमसमये उत्कीर्यमाणद्रव्यस्येत उपरि श्रेणिनिरूपणं क्रियते। तद्यथा तस्मिन् समये प्रथमफालिद्रव्यमपकृष्य पल्यासंख्यातभागेन भक्त्वा बहुखंडानि पृथक्संस्थाप्य शेषैकखंडं पुनरपि पल्यासंख्यातभागेन भक्त्वा बहुखंडं पृथक्संस्थाप्य शेषैकखंडं पृथक्संस्थाप्य तेषु प्रथमबहुखंडं पूर्वोक्तगुणसंकलितसूत्रेष्टेन गुणकारशलाकासंयोगेन भक्त्वा स्व-स्वगुणकारशलाकाभिः संगुणिते उदयनिषेके प्रदेशसमूहं स्तोकं ददाति। तदनंतरनिषेके असंख्यातगुणं ददाति। एवमसंख्यातगुणश्रेणिरूपेण निक्षिपन् गच्छति यावत्सूक्ष्मसांपराय-चरमसमयस्तावत्। इदमेवेदानींतनगुणश्रेणिशीर्षमिति। अत्र प्रथमपर्वप्रतिबद्धद्रव्यं समाप्तम्।

पुनर्द्वितीयबहुखंडद्रव्यं[6] पदाप्तमखिलं धनं गमनिका ततो वर्त्तते इति सूत्रेण निक्षिपन् तदनंतरनिषेके गुणश्रेणिशीर्षदत्तद्रव्यादसंख्यातगुणहीनं ददाति। तत उपरि विशेषहीनं निक्षिपन् गच्छति। यावत्पुराणगुणश्रेणिशीर्षं तावत्। तत्र द्वितीयपर्वप्रतिबद्धद्रव्यं समाप्तम्।

पुनरवशिष्टैकखंडद्रव्यमनेन सूत्रेण निक्षिपन् तदुपरितनस्थितौ पुराणगुणश्रेणिशीर्षे दत्तद्रव्याद-संख्यातगुणहीनं ददाति। तत उपरि सर्वेष्वपि निषेकेषु विशेषहीनं ददाति। यावत्स्वकीयचरमस्थितिमतिस्थापनावलिमात्रेण प्राप्नोति तावत्। चरमनिषेकादारभ्यावलिमात्र-निषेकान् त्यक्त्वा शेषनिषेकेषु द्रव्यं ददातीत्यर्थः। अत्र तृतीयपर्वप्रतिबद्धद्रव्यं समाप्तम्।

---

१. उपरितनस्थित्यऽपेक्षयाऽधस्तनसंख्यातभागः स्वतंत्रापेक्षया समस्तसूक्ष्मसांपरायकालः
२. शेषा सर्वा
३. [२१ / ४] इदं चरमकांडकोत्करणकालाद्बहुकमिति ज्ञातव्यम्
४. सूक्ष्मसांपरायाद्धासंख्यातैकभागमात्र
५. अधोगलितमात्रान् द्वितीयादिसमयेषु-द्वितीयस्थितितो गुणश्रेणिरूपेण गृहीतान्
६. अद्धाणेणेत्यादिनाऽ

चरमकांडकप्रथमसमयापकृष्टद्रव्यनिक्षेपसंदृष्टिः

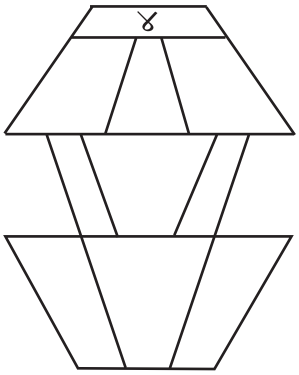

चरमस्थितिकांडकस्य द्वितीयादिफालिपतने अनेन क्रमेण दीयमानद्रव्यश्रेणिनिरूपणं कुर्यात्। यावद्द्विचरमफालिद्रव्यं पतति तावत् पुनः किञ्चिन्न्यूनद्व्यर्द्धगुणहानिमात्र-समयप्रबद्धप्रमाणं चरमफालिद्रव्यं पल्यासंख्यात प्रथमवर्गमूल-प्रमाणेन पल्यासंख्यातभागेन भक्त्वा एकखंडं गुणकारशलाका-संकलनेन भक्त्वा स्व-स्वगुणकारशलाकाभिः संगुण्य गुण-श्रेण्यायामे निक्षिपन् उदयस्थितौ प्रदेशसमूहं स्तोकं ददाति। द्वितीयस्थितावसंख्यातगुणं ददाति। तत उपरि असंख्यातगुणक्रमेण ददाति यावत्सूक्ष्मसांपरायस्य द्विचरमसमय स्तावत्। चरमसमये शेषा-संख्यातबहुभाग मात्रद्रव्यं ददाति। तच्च द्विचरमसमये दत्तद्रव्यात्पल्यस्यासंख्यातप्रथमवर्ग-मूलमात्रगुणकारेण गुणितं भवति। चरमफालिद्रव्यनिक्षेप संदृष्टिः

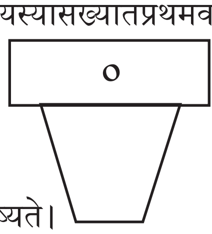

तच्चरमस्थितिकांडकपतनानंतरं मोहनीयस्य स्थितिकांडकघाताभावः। शेष कर्मणां स्थितिकांडकघातोस्ति तदा स्थितिसत्त्वप्रमाणं कियदिति चेत्। सूक्ष्मसांपरायस्य कालो यावान् तावन्मात्रमेव मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वमवशिष्यते। अत्र श्रेण्यारूढाः द्वादशविधाः। तद्यथा पुरुषवेदक्रोधोदयारूढः पुरुषवेदमानोदयारूढः पुरुषवेदमायोदयारूढः पुरुषवेदलोभोदयारूढः स्त्रीवेदक्रोधोदयारूढः स्त्रीवेदमानोदयारूढः स्त्रीवेदमायोदयारूढः स्त्रीवेदलोभोदयारूढः। नपुंसकवेदक्रोधोदयारूढः नपुंसकवेदमानोदयारूढः नपुंसकवेदमायोदयारूढः नपुंसकवेदलोभोदयारूढश्चेत्येतेषु कं प्रति क्षपणाविधानमुक्तमिति चेत्। सूक्ष्मसांपरायपर्यंता इयमनंतरोक्तसकलक्षपणाप्ररूपणा पुरुषवेदोदयविशिष्टो भूत्वा क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढस्तं क्षपकं प्रति उक्ता। इदानीं पुरुषवेदोदयविशिष्टमानोदयेन क्षपकश्रेणिमारूढस्य प्ररूपणाप्रबंधः उच्यते। तद्यथा अधःप्रवृत्तकरणादारभ्यांतरकरणपर्यंतं क्रोधोदयक्षपकमानोदय-क्षपकायाः प्ररूपणाभेदो नास्ति।[१] अंतरकरणनिष्पत्यनंतरं क्रोधस्य प्रथमस्थितिर्नास्ति। मानस्य प्रथमस्थितिरस्ति। प्रथमक्षपकः पुरुषवेदोदयेन सह संज्वलनक्रोधस्यांतर्मुहूर्तमात्रप्रथमस्थितिं स्थापयति। अयं क्षपकः पुरुषवेदेन सह संज्वलनमानस्यांतर्मुहूर्तमात्रप्रथमस्थितिं स्थापयति। क्रोधस्य प्रथमस्थितिं न स्थापयति। इत्यत्र भेदो ज्ञातव्यः। तत्प्रथमस्थितिः कियत्प्रमाणा अस्तीति चेत्। क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढस्य नपुंसकवेदक्षपणाद्धादिकृष्टिकारकाद्धापर्यंतक्रोधप्रथमस्थितिः

---

१. अंतरकरणनिष्पत्यानंतरं भेदोस्ति स कथमिति चेत्

क्रोधसंग्रहकृष्टित्रयक्षपणाद्धासहिता सती मानोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढस्य मानप्रथमस्थितिर्भवति। क्रोधोदयक्षपक: क्रोधस्यांतरकरणकाल कृष्टिकरणाद्धापर्यंतप्रथमस्थितिं संस्थाप्यांतरकरणं कृत्वा पश्चात्क्रमेण संग्रहत्रयस्य वारत्रयं प्रथमस्थितिं करोति। मानोदयक्षपक: अंतरकरणकाले एव मानस्य तावतीं प्रथमस्थितिं युगपत्करोतीत्यभिप्राय:। एवं प्रथमस्थितिप्रमाणप्ररूपणायां क्षपकद्वयस्य भेदो निरूपित:। इदानीमीदृशप्रमाणमानप्रथमस्थितौ क्रियमाणावश्यकभेदो निरूप्यते। क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढ: यत्र चतु:संज्वलनानामश्वकर्णकरणमपूर्वस्पर्द्धकविधानं च करोति तस्मिन् काले मानोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढ: संज्वलनक्रोधं स्पर्द्धकरूपेण विनाशयति[1] तत: कारणात्क्रोधोदय-क्षपकस्य द्वादशसंग्रहकृष्टयो भवन्ति। मानोदयक्षपकस्य नवैव संग्रहकृष्टयो भवन्ति। अयं तृतीयभेद:[2] क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढस्य यत्र चतु:संज्वलनकृष्टिकरणाद्धा तत्र मानोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढस्य संज्वलनत्रयस्याश्वकर्णकरणाद्धा प्रवर्तते। अयं चतुर्थो भेद:।। क्रोधोदयेन क्षपकश्रेणिमारूढस्य यत्र क्रोधसंग्रहकृष्टिक्षपणाद्धा तत्र मानोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढस्य मानादिसंज्वलनत्रयस्य कृष्टिकारकाद्धा भवति। अयं पंचमो भेद:। क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढस्य यत्र मानसंज्वलनसंग्रहत्रयक्षपणाद्धा तत्र मानोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढस्य मानसंग्रहकृष्टिक्षपणाद्धा भवति। अत्रोभयो: किमपि भेदो नास्तीत्यभिप्राय:। इत उपरि यथा क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढस्य क्षपणाविधानमुक्तं तथैव मानोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढस्यापि वक्तव्यम्। मायासंग्रहकृष्टिक्षपणाद्धाप्रभृति सूक्ष्मसांपराय-पर्यंतस्थितप्ररूपणाप्रबंधे क्षपकोभयस्य किमपि भेदो नास्तीति तात्पर्यम्।

अथ पुरुषवेदोदयविशिष्टमायोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढस्य प्ररूपणभेद: उच्यते। तद्यथा अत्राध:प्रवृत्तकरणादारभ्यांतरकरणपर्यंतं प्रथमतृतीयक्षपकयो: किमपि भेदो नास्ति। अंतरकरणानंतरं भेदोऽस्ति। स क इति चेत्। क्रोधोदयक्षपकश्रेण्यारूढस्य कृष्टिकरणाद्धापर्यंतक्रोध-प्रथमस्थितिं क्रोधसंग्रहकृष्टित्रयक्षपणाद्धा मानसंग्रहकृष्टित्रयक्षपणाद्धा सहिता सती मायोदय-क्षपकश्रेण्यारूढस्य मायाप्रथमस्थितिप्रमाणं भवति। क्रोधोदयक्षपक: क्रोधस्यांतरकरणकाले कृष्टि-करणाद्धापर्यंतं प्रथमस्थितिं संस्थाप्यांतरकरणं कृत्वा पश्चात्क्रमेण क्रोधमानसंबंधिसंग्रहषट्कस्य वारषट्कं प्रथमस्थितिं करोति। मायोदयक्षपक: अंतरकरणकाले एव मायाया: तावतीं प्रथमस्थितिं युगपदेव करोतीत्यभिप्राय:। एवं तावन्मात्रप्रथमस्थितौ क्रियमाणव्यापारविशेषान्वेषणं क्रियते। क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढ: यत्रोद्दशे संज्वलनचतुष्टयस्याश्वकर्णक्रियां करोति तत्रोद्देशे मायोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढ: संज्वलनक्रोधं पूर्वस्पर्द्धकरूपेण विनाशयति। क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढ: यत्र

---

१. मानरूपेण परिणमय्यत्यर्थ:। २. मानोदयेनारूढ: मानस्य प्रथमस्थितिं कुर्यात् अयं प्रथमभेद: मानोदयारूढ: प्रथमस्थितिसमधिकतया युगपदेव करोति अयं द्वितीयो भेद:।

चतु:संज्वलनकृष्टिकरणाद्धा तत्र काले मायोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढ: संज्वलनमानं पूर्वस्पर्द्धकरूपेण नाशयति[1] तत: कारणात् मायोदयक्षपकस्य संग्रहकृष्टय: षडेव भवन्ति। क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढ: यत्र प्रणिधौ क्रोधसंज्वलनसंग्रहकृष्टित्रयं नाशयति तत्र स्थले मायोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढ: मायालोभसंज्वलनयोरपूर्वस्पर्द्धकविधानसहिताश्वकर्णकरणं करोति। अयं चतुर्थो भेद:। क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढ: यत्र स्थाने मानसंज्वलनसंग्रहत्रयं नाशयति तत्र स्थाने मायोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढ: मायालोभयो: बादरकृष्टी: करोति। अयं पंचमो भेद:। क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारुढ: यत्र खंडे मायासंज्वलनसंग्रहकृष्टित्रयं नाशयति तत्र स्थाने मायोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढ: मायासंज्वलनसंग्रहकृष्टित्रयं नाशयति अत्र स्थाने क्षपकोभयस्य क्षपणाव्यापारवैपरीत्यं नास्तीति तात्पर्यम्। इत उपरि लोभबादरसूक्ष्मकृष्टिविनाशकस्य किमपि भेदो नास्ति।

अथ पुरुषवेदोदयविशिष्टसंज्वलनलोभोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढस्य क्षपणाविधानभेद: उच्यते। अत्राप्यध:प्रवृत्तकरणादारभ्यांतरकरणपर्यंतं किमपि भेदो नास्ति। अंतरकरणादुपरि लोभसंज्वलनस्यांतर्मुहूर्तमात्रप्रथमस्थितिं करोति। प्रथमक्षपक: क्रोधसंज्वलनस्यांतर्मुहूर्तमात्रप्रथमस्थितिं करोति। अयं चतुर्थक्षपक: क्रोधप्रथमस्थितिकरणमंतरेण लोभसंज्वलनस्यैव प्रथमस्थितिमंतर्मुहूर्तप्रमितां करोति। अयमनयो: प्रथमभेद:। सा प्रथमस्थिति: कियतीति चेत्। क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढस्य कृष्टिकरणकालपर्यंतक्रोधप्रथमस्थिति: क्रोधमानमायाक्षपणाद्धासहिता सती लोभोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढस्य लोभप्रथमस्थितिर्भवति। क्रोधोदयक्षपक: क्रोधस्यांतरकरणकाले कृष्टिकरणाद्धापर्यंतं प्रथमस्थितिं संस्थाप्यांतरकरणं कृत्वा पश्चात्क्रमेण क्रोधमानमायासंबंधिसंग्रहनवकस्य नववारं प्रथमस्थितिं करोति। लोभोदयक्षपक: अंतरकरणकाले एव लोभस्य तावतां प्रथमस्थितिं युगपदेव करोतीति तात्पर्यम्। अयं द्वितीयो भेद: तावन्मात्रप्रथमस्थितौ क्रियमाणकार्यभेदनिर्णय: इत उपरि क्रियते। क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढ: यत्रोद्देशे चतु:संज्वलनानामश्वकर्णकरणं करोति तत्रोद्देशे लोभोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढ: संज्वलनक्रोधं पूर्वस्पद्धकरूपेण नाशयति। क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढो यत्र स्थाने संज्वलनचतुष्टयस्य कृष्टी: करोति तस्मिन्काले लोभोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढ: संज्वलनमानं पूर्वस्पर्द्धकरूपेण नाशयति। क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढ: संज्वलनमानं पूर्वस्पर्द्धकरूपेण नाशयति। क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारुढ: यत्र स्थले क्रोधसंज्वलनसंग्रहत्रयं नाशयति तस्मिन् स्थाने लोभोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढ: संज्वलनमायां पूर्वस्पर्द्धकरूपेण क्षपयति तत: कारणाल्लोभोदयक्षपकस्य तिस्र एव संग्रहकृष्टयो भवन्ति। क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढ: यत्र प्रणिधौ मानसंज्वलनसंग्रहत्रयं निर्मूलयति तस्मिन् खंडे

---

१. मायारूपेण निक्षिपति।

लोभोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढः लोभसंज्वलनस्याश्वकर्णकरणं करोति। अत्र लोभसंज्वलनस्याश्वकर्णाकारेणाऽनुभागरचनाया अघटनादनुभागविशेषघातः अपूर्वस्पर्द्धकविधानं चापेक्ष्याश्वकर्णकरणकालघटना वक्तव्या। क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढः यत्र पदे मायासंज्वलनसंग्रहत्रयमुन्मूलयति तत्र स्थले लोभोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढः लोभसंज्वलनस्य पूर्वापूर्वस्पर्द्धकद्रव्यं गृहीत्वा बादरसंग्रहकृष्टित्रयं करोति। क्रोधोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढः यत्र स्थाने लोभसंज्वलनसंग्रहत्रयं निर्मूलयति तस्मिन् स्थले लोभोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढः लोभसंज्वलनसंग्रहत्रयं क्षपयति। अत्र स्थले अनयोः किमपि भेदो नास्तीत्यभिप्रायः। अयं सर्वः सन्निकर्षणसमुत्पन्नप्ररूपणाभेदः पुरुषवेदोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढमानमायालोभोदयक्षपकसमूहस्य पुरुषवेदक्रोधोदयक्षपकमाश्रित्योक्तः/ उक्तार्थोपयोगिनी संदृष्टिः

लोभकृ = ३ क्ष =	लो = ३ क्षपणा	लो = ३ क्ष	लो = ३ क्षपणा
या = कृ = ३ क्ष =	या = ३ क्षपणा	या = ३ क्षपणा	कृष्टिकरण
मा = कृ = ३ क्ष =	मा = कृष्टि ३ क्ष	कृष्टिकरण	अश्वकर्णकर
कृष्टि ३ क्षप =	कृष्टिकरण	अश्व करण	या = क्षपणा
कृष्टिकर =	अश्वकर्णक	मान क्ष	मा = क्षपणा
अश्वकर्ण =	क्रोध क्षप	क्रो = क्ष	क्रो = क्षपणा
नोकषाय ७ क्ष =	नो क = ७ क्षप	नोक ७ क्षप	नोक ७ क्षपणा
पुं क्रोधोदय	पुं वेद मानोद	पुं = मायोदय	पुंवेद लोभोद

इत उपरि स्त्रीवेदोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढक्षपकस्य क्षपणाप्ररूपणाभेद उच्यते। अत्राधः-प्रवृत्तकरणादारभ्य यावदंतरकरणं न करोति तावत् प्ररूपणाभेदो नास्ति अंतरकरणं कुर्वन् स्त्रीवेदस्य प्रथमस्थितिं करोति। प्रथमक्षपकं पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितिं करोति। अयं क्षपकः तस्य प्रथमस्थितिमकृत्वा स्त्रीवेदस्यैव प्रथमस्थितिं करोतीत्ययं भेदः। कुतः। यस्य वेदस्य यस्य संज्वलनस्य चोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढः तयोर्द्वयोरेव प्रथमस्थितिमंतर्मुहूर्तप्रमितां स्थापयतीति नियमात्। सा प्रथमस्थितिः कियतीति चेत् पुरुषवेदेन क्षपकश्रेण्यारूढक्षपकस्य नपुंसकवेदक्षपणाद्धासहितस्त्रीवेदक्षपणाद्धा यावती स्त्रीवेदोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढक्षपकस्य स्त्रीवेदप्रथमस्थितिस्तावती स्यात्। नपुंसकवेदं क्षपयतोऽस्य क्षपकस्य पुरुषवेदक्षपकात्कोपि भेदो नास्ति। नपुंसकवेदक्षपणानंतरं स्त्रीवेदं क्षपयति। स्त्रीवेदक्षपणाद्धायाः प्रमाणं कियदिति चेत्। पुरुषवेदेन क्षपकश्रेण्यारूढक्षपकस्य स्त्रीवेदक्षपणाद्धा यावती स्त्रीवेदेन क्षपकश्रेण्यारूढक्षपकस्यापि

स्त्रीवेदक्षपणाद्धा तावत्येव। पुरुषवेदोदयक्षपकस्य स्त्रीवेदक्षपणाद्धातः स्त्रीवेदोदयक्षपकस्य स्त्रीवेदक्षपणाद्धायाः प्रमाणेन प्रणिधिना च भेदो नास्तीत्यभिप्रायः। स्त्रीवेदप्रथमस्थितिः प्रक्षीणानंतरमपगतवेदो भूत्वा सप्तनोकषायान् क्षपयति। पुरुषवेदोदयक्षपकः सवेदः सन् षण्णोकषायान् पुरुषवेदपुराणसत्त्वं च क्षपयति। अयं क्षपकः अपगतवेदो भूत्वा पुरुषवेदषण्णोकषायान् क्षपयति। इत्ययमनयोर्भेदो ज्ञातव्यः। सप्तनोकषायाणां क्षपणाद्धा समाना भवति। पुरुषवेदोदयक्षपकः सप्तनोकषायक्षपणाद्धायाश्चरमे पुरुषवेदपुराणसत्वेन सह षण्णोकषायान् क्षपयित्वा तत उपरि समयोनद्व्यावलिमात्रकाले गते पुरुषवेदनवकबंधसमयप्रबद्धान् नाशयति। अयं क्षपकः अपगतवेदावस्थायां पुरुषवेदस्य बंधाभावात्सप्तनोकषायान् स्वकीयक्षपणाद्धायाश्चरमे साकल्येन क्षपयति। अयं भेदस्तृतीयः। इत उपरि स्त्रीवेदोदयविशिष्टचतुर्विधक्षपकस्याश्वकर्णकरणादिक्रियाप्रबंधस्याधारीभूतेषु सूक्ष्मसांपराय-पर्यंतेषु कथितावशिष्टपदेषु पुरुषवेदोदयविशिष्टचतुर्विधक्षपकाद्भेदलेशोपि नास्ति। पूर्वोक्तार्थ-प्रतिबद्धसंदृष्टिः

लो= कृ = ३ क्ष	लो = ३ क्षप	लो = ३ क्ष	लो = ३ क्षप
या = ३ क्ष प	या = ३ क्ष	या = ३ क्ष	कृष्टिकर
मा = ३ क्षप	मा = ३ क्ष	कृष्टिकर	अश्वकर्णक
कृष्टि क्षप	कृष्टिकर	अश्वकर्ण	या = क्ष
कृष्टिकर	अश्वकर्ण	मा = क्षप	मा = क्षप
अश्वकर्णक	क्रोध = क्ष	क्रो = क्षप	क्रो = क्ष
नो क ७ क्ष	नो = ७ क्ष	नो = ७ क्ष	नो = ७ क्षप
स्त्रीवेद क्रो=	स्त्रीवेद = मानो	स्त्रीवे = या =	स्त्री = लोभो

इत उपरि नपुंसकवेदोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढक्षपकस्य क्षपणाप्ररूपणानानात्वमुच्यते। अत्राप्यधः-प्रवृत्तकरणादारभ्यांतरकरणं यावन्न करोति तावत् प्ररूपणाभेदो नास्ति। अंतरकरणं कुर्वन् नपुंसकवेदस्य प्रथमस्थितिं स्थापयति प्रथमक्षपकः पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितिं करोति। अयं क्षपकः तस्य प्रथमस्थितिमकृत्वा नपुंसकवेदस्य प्रथमस्थितिं करोति। इत्ययमेको भेदः। सा प्रथमस्थितिः कियतीति चेत्। स्त्रीवेदोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढक्षपकस्य स्त्रीवेदप्रथमस्थितिः यावती नपुंसकवेदोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढक्षपकस्यापि नपुंसकवेदस्य प्रथमस्थितिस्तावत्येव भवति। एवंविध प्रथमस्थितौ नपुंसकवेदस्त्रीवेदयोः क्षपणायाः प्रारंभः परिसमाप्तिश्च युगपत्क्रमेण वा इति चेत्। निर्णयः क्रियते।

अंतरचरमफालिपतनानंतरसमयात्प्रभृति नपुंसकवेदक्षपणां प्रारभते। तद्क्षपणाद्धाप्रमाणं कियदिति चेत्। पुरुषवेदोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढक्षपकस्य नपुंसकवेदक्षपणाद्धाया: यावत्प्रमाणमस्ति नपुंसक-वेदोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढक्षपकस्य तावत्प्रमाणनपुंसकवेदक्षपणाद्धाक्षयेपि नपुंसकवेदो न क्षीयते। तदुपरितनसमये स्त्रीवेदक्षपणां प्रारभते। तर्हि तमेकमेव किं क्षपयेत् अन्यद्वा नंपुसकवेदमपि क्षपयति पुरुषवेदेन क्षपकश्रेण्यारूढक्षपकस्य यस्यामद्धायां स्त्रीवेदो विनष्ट: तस्यामेवाद्धायामेवं द्वयं क्षपयते। नपुंसकवेदोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढक्षपकस्य सर्व: स्त्रीवेद: नपुंसकवेदश्च युगपत् स्त्रीवेदपुराणसत्त्व-क्षपणाकालचरमसमये द्वितीयस्थितिस्थितपुरुषवेदस्यो[1]परि सर्वसंक्रमणेन संक्रांततया नष्ट: द्रव्यार्थिकनयो विद्यमानवस्तुनो नाशं मन्यते। तदभिप्रायेण चरमसमये तद्द्वयं नष्टमिति ज्ञातव्यम्। पर्यायार्थिकनय: अविद्यमानवस्तुनो नाशं वक्तीति तदनुमत्या अग्रतनसमये नष्टमिति द्वितीयो भेद:। तदा प्रथमस्थितौ नपुंसकवेदस्योदयनिषेक: एकोऽवशिष्यत्ते। स च तदनंतरसमये नश्यति। तद्विनाशोपरि अपगतवेद: सन् सप्तनोकषायान् क्षपयति। पुरुषवेदोदयक्षपक: सवेद: षण्णोकषायान् पुरुषवेदपुराणसत्त्वं च क्षपयति। अयं क्षपक: अपगतवेदो भूत्वा पुरुषवेदषण्णोकषायान् क्षपयति। अयं तृतीयो भेद:। सप्तनोकषायाणां क्षपणाद्धा समाना। पुरुषवेदोदयक्षपक: सप्तनोकषायक्षपणा-द्धायाश्चरमे पुरुषवेदपुराणसत्वेन सह षण्णोकषायान् क्षपयित्वा तत उपरि समयोनद्व्यावलिमात्रे काले गते पश्चात् पुरुषवेदनवकबंधसमयप्रबद्धान्नाशयति। अयं क्षपक: सवेदद्विचरमसमये पुरुषवेदबंधव्युच्छितिर्भवतीति अपगतवेदप्रथमक्षणात्प्रभृति सप्तनोकषायक्षपणाद्धायां द्विसमयोन-द्व्यावलिमात्रकाले गते पुरुषवेदनवकबंधसमयप्रबद्धं विनाश्य तदद्धाचरमसमये सप्तनोकषायान् साकल्येन क्षपयति। अयं चतुर्थो भेद:। इत उपरि नपुंसकवेदोदयविशिष्ट चतुर्विधक्षपकाणामश्व-कर्णकरणादिक्रियाप्रबंधस्याधारीभूतेषु सूक्ष्मसांपरायपर्यंतेषु कथितावशिष्टपदेषु पुरुषवेदोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढचतुर्विधक्षपकसमूहस्य प्ररूपणं यथा प्रागुक्तं तथैवास्ति विशेषाभावात्।

अत्रोपयोगिनी संदृष्टि: -

लो= ३ क्ष	लो = ३ क्षप	लो = ३ क्षप	लो = ३ क्ष प
या = ३ क्ष	या = ३ क्ष	या = ३ क्ष	कृष्टिकर
मा = ३ क्ष	मा = ३ क्षप	कृष्टिकर	अश्वकर्ण
कृष्टि क्ष	कृष्टिकर	अश्वकर्ण	या = क्षप
कृष्टि क	अश्वकर्ण	मा = क्ष	मा = क्ष
अश्व क्ष	क्रो = क्ष	क्रो = क्ष	क्रो = क्ष
नो =७ क	नोक = ७ क्ष	नो = ७ क्ष	नो = ७ क्ष
नपुं = क्रो	न = मानोद	न = या =	न = लोभो

१. पुरुषवेदे इत्यर्थ

एवं द्वादशविधक्षपकानां क्षपणाप्ररूपणाभेदः प्रतिपादितः। अत्र मंदरमहीधरप्रमाणदूषण पाषाणवर्षण[1]प्रवणप्रेक्षः[2] परमागमपूर्वापरपरीक्षादक्षः शैक्षः सूक्ष्मेक्षिकया पूर्वपक्षमीदृक्षं करोति। समसमयवर्तिनः अनिवृत्तिकरणक्षपकपरिणामाः समाना असमाना वा। समानाश्चेत् क्षपणालक्षण-कार्यभेदो न संभवति समानकारणनिष्पाद्यत्वात्। असमाना इति पक्षे एकसमये परस्परं मिथो ये भाषादिभिरसदृशाः। सदृक्षाश्च परिणामैः सदृशा स्युर्नियमादनिवृत्तयस्तेऽमी इत्यागमो बाध्यते इत्यत्र परिहार उच्यते द्वितीयपक्षाऽनभ्युपगमात्। तत्पक्षनिक्षिप्तप्रदूषणलेशस्याप्यप्रवेशः। प्रथमपक्षप्रक्षिप्तप्रदूषणसंभवोऽसंभावाः एव। यथा विशिष्टशक्तियुक्तशाल्यादिबीजानि एकस्वरूपाण्यपि बहुस्वभावक्षेत्रादिबाह्यसामग्रीसन्निधानेन नानाप्रकारकार्यजनकानि तथैवैक-समयस्थितनानाजीवगोचरानिवृत्तिकरणपरिणामाः एकस्वभावा अपि भिन्नस्वभाववेदकषायोदय-सहकारिकारणसामग्रीसन्निधानेन नानाविधक्षपणालक्षणकार्योत्पादका भवंतीत्यत्र विरोधाभावात् क्षपणाविधानप्रभेदप्रतिपादनं समंजसं। एवं सूक्ष्मसांपरायकाले संख्यातैकभागेऽवशिष्टे निजांतरंग-समुद्भूतप्रभूतदेदीप्यमानप्रथमशुक्लध्यानप्रचंडाखंडमंडलाग्रनिशातधारानिर्घातिने लीलावष्टब्ध-विष्टपत्रयप्रकृष्टावष्टंभविशिष्टमोहमहामहीपालकमस्तकायमानलोभचरमकांडकप्रपातं कृत्वा क्रमेणाधःस्थितिगलनेन स्वकालावशेषमात्रगुणश्रेणिगोपुच्छान्। अनुसमयापवर्त्यमानसूक्ष्मकृष्टि-रूपानुभागसंगतान् अनुभवन् यदा महामुनिराजश्चरमसमयसूक्ष्मसांपरायो जातस्तदा नामगोत्रसर्वपश्चिमस्थितिबंधोऽष्टमुहूर्तमात्रः। वेदनीयचरमबंधः द्वादशमुहूर्तप्रमितः घातित्रय-स्यांत्यबंधोंऽतर्मुहूर्तप्रमाणः घातित्रयस्य स्थितिसत्त्वमंतर्मुहूर्तमात्रमपि क्षीणकषायस्य कालात् संख्यातगुणम्। नामगोत्रवेदनीयस्थितिसत्त्वमसंख्यातवर्षसंमितम्। मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वं क्षयोन्मुखमस्तीति द्रव्यार्थिकनयाश्रयणेनास्मिन् समये विद्यमानमपि विनष्टमिति ज्ञातव्यम्। सूक्ष्मसांपरायस्वरूपावभासकसूत्रम्। लोभस्य सूक्ष्मकृष्टीः क्षयोन्मुखा यो यतिः सवेदयति स्यात्सूक्ष्मसांपरायः पंचमचारित्रसमभिमुखः। अत्र कृष्टिवेदकाधिकारः समाप्तः।।

इदानीं साक्षान्निर्ग्रंथवीतरागगुणस्थानस्वरूपं निरूप्यते। चारित्रमोहनीयनिर्म्मूलक्षयानंतर-समये अयं महात्मा क्षीणकषायगुणस्थानमाश्रयति। द्रव्यभावभेदभिन्नाशेषकषायकलुषप्रक्षयेणायं मुमुक्षुः क्षीणकषाय इत्यन्वर्थसंज्ञां लभमानो यथाख्यातशुद्धचारित्रा[3]क्षूणाक्षयलक्ष्मीवल्लभो जात इत्यर्थः। तत्प्रथमसमये सर्वकर्मणां स्थित्यनुभागं न बध्नाति। कुतः। तत्कारणकषाय- परिणामस्य तदन्वयव्यतिरेकानु[4]विधायित्वात्। तादृशकषायपरिणामसंश्लेषाभावादस्य यतिपतेः स्थित्यादिबंधसंभवो नास्तीति सूक्तम्। प्रकृतिप्रदेशबंधः योगमात्रनिबंधनत्वादत्र संभवति। तस्य

१. समर्थ २. विचार पर ३. साकल्य ४. सति भवनमन्वयअसत्यभवनं व्यतिरेकः।

प्रतिषेधो नास्ति। स च सातवेदनीयस्यैव। शेषप्रकृतीनामत्र बंधाभावात्। स च ईर्यापथबंधः[१] स्थित्यनुभागबंधकारणकषायसंयोगाभावात्। शुष्ककुड्यपतितपांशु[२]मुष्टिवद्बंधानंतरसमये[३] निर्जीर्यात्। अधुना क्षीणकषायप्रथमसमये क्रियमाणव्यापारप्रभेदः प्रतिपाद्यते। ज्ञानदर्शनावरणांतरायाणामंतर्मुहूर्तमात्रं स्थितिकांडकं घातितावशिष्टानुभागस्यानंतबहुभाग-मात्रमनुभागकांडकं च लांछति। नामगोत्रवेदनीयानां शेषस्थितिसत्त्वस्यासंख्यातबहुभाग-मात्रस्थितिकांडकं लांछितम्। एतत् कर्मसंबंध्यप्रशस्तप्रकृतीनां घातितावशेषानुभागस्यानंत-बहुभागप्रमाणमनुभागकांडकं लांछितम्। तत्प्रथमसमये गुणश्रेणिनिक्षेपः कथमस्तीति चेत्। षड्कर्मणां प्रदेशपिंडमपकृष्य पूर्वोक्तक्रमेण निक्षिपन् उदयनिषेके स्तोकं ददाति। द्वितीयनिषेके असंख्यातगुणं ददाति इत्यसंख्यातगुणश्रेणिं स्थापयति। यावत् क्षीणकषायाद्धाया उपरि संख्यातैकभागमात्राध्वानमतीत्य गुणश्रेणिशीर्षं तिष्ठति तावत्। पुनर्गुणश्रेणिशीर्षे दत्तद्रव्यात्तदुपरितनानंतरस्थितावसंख्यातगुणं ददाति कुतः अपकृष्टद्रव्यं पल्यासंख्यातेन भक्त्वा एकखंडं गुणश्रेण्यां दत्त्वा शेषबहुखंडमात्रद्रव्यं गुणश्रेणिशीर्षस्योपरितनाध्वना रूपोनाध्वार्द्धहीन-द्विगुणहानिगुणितेन भक्त्वा द्विगुणहान्या संगुण्य[४] निरुद्धनिषेके दीयमानतावन्मात्रद्रव्यस्य गुणश्रेणिशीर्षदत्तद्रव्यादसंख्यातगुणत्वस्य निर्बाधबोधसंसिद्धत्वात्। तदुपरितनसर्वनिषेकेषु विशेषहीनं निक्षिपन् गच्छति यावत् चरमस्थितिमतिस्थापनावलिमात्रेण प्राप्नोति तावत्। द्वितीयसमयेपि गुणश्रेणिनिक्षेपक्रमः एवमेव। अयं तु विशेषः। निक्षेपायामेना[५]पकृष्टप्रदेशप्रमाणेन च गुणश्रेणिरवस्थिता भवति। अधस्तनाशेषगुणश्रेणिनिर्जराभ्यः इयं गुणश्रेणिनिर्जरा असंख्यातगुणत्वेन प्रवर्तते। सकषायपरिणामनिबंधनगुणश्रेणिनिर्जराभ्यः अकषाय[६]परिणामनिबद्धगुणश्रेणिनिर्जराया असंख्यातगुणत्वस्य युक्तियुक्तत्वात्। दीयमानदृश्यमानायोर्विशेषनिरूपणं दर्शनमोहनीयक्षपणायां सम्यक्त्वस्य यथा प्ररूपितं तथैव घातित्रयस्यापि कुर्यात्। अत्र क्षीणकषायस्य प्रथमसमयादारभ्यांतर्मुहूर्तकालं प्रथमशुक्लध्यानं प्रवर्तते। स्वकालस्य संख्यातैकभागमात्रचरमभागे द्वितीयं शुक्लध्यानं प्रवर्तते। सुविशुद्धशुक्लध्यानपरिणामेन विना एतत् कर्मक्षपणाया अकरणात्। अत्र प्रस्तुतश्लोकद्वयं।

[७]शांतक्षीणकषायस्य पूर्वज्ञस्य त्रियोगिनः।
शुक्लाद्यं शुक्ललेश्यस्य मुख्यसंहननस्य तत्।

---

१. क्षीणकषायोपशांतकषायसयोगकेवलिषु बंधः ईर्यापथनामा अधस्तनगुणस्थानेषु सांपरायननामा।
२. धूलिवदेव ३. अभावः स्यात्। ४. अवलंबितनिषेके आदिनिषेके इत्यर्थः
५. असंख्यातगुणक्रमेण निक्षेपो न स्यात् ६. अत्युत्कृष्टपरिणामत्वात् ७. उपशांतकषाय

द्वितीयस्याद्यवत्सर्वं विशेषस्त्वेकयोगिनः।
विघ्नावरणरोधार्थं क्षीणमोहस्य तत्स्मृतम्।

अनेन क्रमेण संख्यातसहस्रस्थितिकांडकानि हत्वा क्षीणकषायकाले संख्यातैकभागे अवशिष्टे घातित्रयस्य चरमस्थितिकांडकमंतर्मुहूर्तायामेन लांछन् क्षीणकषायशेषकालप्रमाणनिषेकान् २१/४ त्यक्त्वा प्रथमसमयक्षीणकषायनिक्षिप्तगुणश्रेणिशीर्षस्याग्रमादिं कृत्वा अधःसंख्यातैकभाग-मात्रं गोपुच्छसमूहेन सहोपरिसंख्यातगुणगोपुच्छस्थितीश्चरमकांडकाकारेण लांछति। अत्र दीयमानप्रबंधप्ररूपणं संज्वलनलोभचरमस्थितिकांडकोक्तवत्कुर्यात्। एवं तच्चरमस्थितिकांडक-प्रथमादिफालीर्निर्मूल्य पश्चात् तच्चरमस्थितिकांडकस्य किंचिन्न्यूनद्व्यर्द्धगुणहानिमात्रं चरमफालिद्रव्यं स्वीकृत्य पूर्वोक्तक्रमेण निक्षिपन् उदयस्थितौ स्तोकं ददाति। द्वितीयस्थितावसंख्यातगुणं ददाति। एवमसंख्यातगुणश्रेण्या द्रव्यं निक्षिपन् क्षीणकषायचरमसमये द्विचरमसमये दत्तद्रव्यात् पल्यासंख्यातप्रथमवर्गमूलगुणितं ददाति। इत उपरि घातित्रयस्य स्थितिकांडकघातो नास्ति। केवलमुदयावलिबाह्यस्थितिस्थितप्रदेशमपकृष्यासंख्यातगुण-श्रेणिरूपेणोदीरणां करोति। एवं घातित्रयस्योदीरको भवति। यावत् समयाधिकावलिका-चरमछद्मस्थस्तावत्। तत उपरि घातित्रयस्य क्रमोदय एव। उदयावलिप्रविष्टप्रदेशसत्त्वस्योदीरणाया अभावात्। इत उपरि क्षीणकषायस्य द्विचरमसमये निद्राप्रचलायोरुदयव्युछित्तिः सत्त्वव्युछित्तिश्च युगपदेव भवतः। शुक्लध्यानपरिणतस्य क्षीणकषायस्य तद्ध्यानविरोधिनिद्राप्रचलोदयः कथं घटते इति नाशंकनीयम्। ध्यानोपयुक्तेपि अव्यक्ततदुदयसंभवस्य विरोधाभावात्। तत उपरि क्षीणकषायस्य चरमसमये पंचज्ञानावरणीयचतुर्दर्शनावरणीयपंचांतरायाणां युगपदुदयव्युछित्तिः सत्त्वव्युछित्तिश्च भवतः। तदा अघातिकर्मणां स्थितिप्रमाणं कियदिति चेत्। नामगोत्रवेदनीयानां स्थितिसत्त्वमसंख्यातवर्षप्रमाणम्। पल्यासंख्यातभागमात्रमित्यर्थः। घातिकर्मवदघातिकर्मणामपि कर्मत्वेन विशेषाभावात् क्षीणकषायचरमसमये निरवशेषक्षयः कथं न जायेतेति नाशंकनीयं। घातिकर्मवदघातिकर्मणां विशेष[1]घाताभावात्। स च कुतः घातिकर्मवदेषामप्रशस्ततरत्त्वाभावात्। यथैव हि घातिकर्मत्त्वा[2]विशेषेपि मोहनीयस्याऽत्यप्रशस्तत्वात् प्रागेव सूक्ष्मसांपरायचरमसमये विनाशो जातः। तथा कर्मत्वा[3]विशेषेप्यघातिकर्मपरित्यागेन घातिकर्मणामेव क्षीणकषायस्य चरमसमये निर्मूलप्रक्षयोऽस्तीति सिद्धम्। क्षय इति किं? जीवप्रदेशैः सह बंधापेक्षया एकत्वमुपगतानां [4]बंधकारणप्रतिपक्ष[5]मोक्षकारणकलापनैक[6]प्राकद्यान्निर्मोच्यमानानां कार्मण-स्कंधानां जीवात् यत् अत्यंतविश्लेषणं स एव क्षयः इति ग्राह्यम्। जीवात्पृथग्भूयाकर्मस्वरूपेण

१. कृष्ट्यादि २. साधारण ३. साधारणं चेत् ४. मिथ्यादर्शनादि ५. रत्नत्रय ६. निकट प्रादुर्भूत

परिणतास्तथापि कर्मपुद्गलानां पुद्गलस्वरूपेण विनाशाभावात्। अत्र प्रवरप्रशस्यप्रबलप्रसन्नप्रभूतप्रतिभाप्रकामप्रकर्षप्रयुक्तः प्रवचनप्रगल्भप्रतिपाद्यः[१] प्रमाणप्रतिपन्नप्रश्नप्रपंचं प्रपंचयति। क्षीणकषायस्य शरीरं बादरनिगोदजीवैराश्रितंमनाश्रितं वा। आश्रितपक्षे सयोगकेवलिशरीरमपि निगोदाश्रितं जायेत। क्षीणकषायस्यैव सयोगकेवलित्वेन भवनात्। अनाश्रितं चेत्

भूजलबहुलानिलजाः[२] केवलिसाहारदेवनैरयिकाः।
न निगोदाश्रितदेहास्तदाश्रितांगास्ततः शेषाः।।

इत्यागमेन विरोधो भवेत्। अत्र प्रतिविधीयते। द्वितीयपक्षस्यानभ्युपगमात्तत्पक्षभाषितदूषणप्रसंगोऽसंगत एव प्रथमपक्षनिक्षिप्तदूषणमपि अदक्षप्रेक्षशैक्षलक्षितम्[३]। कुतः। क्षीणकषायस्य चरमसमये सकलनिगोदजीवानां निश्शेषविश्लेषसंभवात्। तथा हि। क्षीणकषायस्य प्रथमसमये बादरनिगोदा अनंताः म्रियंते। द्वितीयसमये विशेषाधिकाः म्रियंते। अधिकप्रमाणं तु प्रथमसमयमृतजीवानामावल्यसंख्यातैकभागमात्रम्। एवं तृतीयादिष्वपि समयेषु विशेषाधिका म्रियंते यावत्क्षीणकषायस्य काले प्रथमसमयादारभ्यावलिपृथक्त्वं गच्छति तावत् तत उपरि संख्यातभागेन संख्यातभागेनाधिका म्रियंते यावत्क्षीणकषायस्य काले आवल्यसंख्यातैकभागमात्रमवशिष्यते तावत्। तदुपरितनानंतरसमये असंख्यातगुणा म्रियंते। गुणकारप्रमाणं पल्यासंख्यातैकभागमात्रं विशेषाधिकमरणकालचरमसमयमृतजीवेषु तत्प्रायोग्यपल्यासंख्यातैकभागेन गुणितेषु[४] गुणश्रेणिमरणकालप्रथमसमयमृतजीवप्रमाणं जायते इत्यभिप्रायः। एवं गुणश्रेणिमरणकालद्वितीयसमयात्प्रभृतियावत्क्षीणकषायस्य चरमसमयस्तावदसंख्यातगुणा असंख्यातगुणा म्रियंते। गुणकारः सर्वत्रापि पल्यासंख्यातभागमात्रः एव। शुक्लध्यानेन प्रतिसमयमनंतानंतजीवराशेर्मरणे सति क्षीणकषायस्य यथाख्यातचारित्रसिद्धेरभावात् मुक्तिप्राप्तिः कथमिति नाशंकनीयं। शुक्लध्यानेनैषामुत्पत्तिनिरोध एव, न मरणं। मरणं तर्हि कुतो भवतीति चेत्। स्वायुष्यक्रमक्षयवशात्। तथाहि क्षीणकषायस्य काले प्रथमसमयात्प्रभृतिबादरनिगोदजीवा उत्पद्यन्ते यावत्तेषां जघन्यायुर्मात्रकालोऽवशिष्यते तावत्। तत उपरि ध्यानवशेन तेषामुत्पत्तिर्निरुध्यते कुतः। उत्पन्नजीवानां जीविकाकालाभावात्[५] इतः अधः एषामुत्पत्तिर्मृतिश्च स्तः। इत उपरि केवलं मृतिरेव। अतः कारणात् पूर्वोक्तदूषणानां लेश्यस्यापि प्रवेशाभावः। क्षीणकषायस्वरूपोद्योतकसूत्रम्-

निःशेषनष्टमोहः स्फटिकामलभाजनांबुसमचित्तः।
क्षीणकषायो भणितो निर्ग्रंथो वीतरागैः सः।।

---

१. शिष्यः २. बहुलोऽग्नि ३. कुशलतया द्रष्टुमशक्त शिष्यवत् ४. गुणकारक्रमः
५. यतो जघन्यकालो पि समयोनस्ततकारणादुत्पतिर्न स्यात्।।

एवं क्षीणकषायस्य चरमसमये सततानुबद्धप्रवृद्धबहुविधप्रगुणगुणसंघातघातिघातिकर्मेंधनानि द्वितीयशुक्लध्यानप्रबलप्रज्वलनज्वालाजालकवलितानि कृत्वा अनंतरसमये परमस्नातकगुणस्थानं[1] प्राप्यानंतकेवलज्ञानदर्शनवीर्यसुखसंयुक्तो भूत्वा स्वयंभूत्वं स्वीकुर्वाणो महात्मा सयोगजिन इत्युच्यते। अत्र केवलज्ञानादीनां स्वरूपं निरूप्यते। इन्द्रियालोकमनस्कारं[2] निरपेक्षत्वादसहायज्ञानं केवलज्ञानं नाम। त्रिकालगोचरान् सूक्ष्मांतरितविप्रकृष्टाद्यनंतार्थान् क्रमकरणप्रकाशव्यवधान-व्यपेतत्वेन ज्ञानावरणीयकर्मनिरवशेषप्रक्षयेण समुद्भूतं यत् निरतिशयज्योति: सर्वकालमेकरूपेण यथावत्तया युगपदेव साक्षात्करोति तत्केवलज्ञानमित्यभिप्राय:। अस्यानंत्यविशेषणमविनश्वरत्वं वक्तुं क्षायिकभावस्य साद्यपर्यवसितस्वरूपेणावस्थाननियमात् अनन्तपर्यायविषयस्य ज्ञानस्य परमोकृष्टानन्तपरिमाणत्वं निरूपयितुं वा आनन्त्यविशेषणम्। प्रमेयस्यानन्त्ये सति तत्परिच्छेदकशक्तीनामप्यानंत्यस्यानुक्तसिद्धत्वात्। प्रकृतार्थप्रतिपादकसूत्रम्।

क्षायिकमेकमनन्तं त्रिकालसर्वार्थयुगपदवभासि।

निरति[3]शयमत्यय[4]च्युतमव्यवधानं च केवलज्ञानम्।।

केवलदर्शनस्यापि स्वरूपनिरूपणमेवमेव। केवलज्ञानोत्पत्तिसमकालमेव स्वावरणात्यंत-परिक्षयेणोद्भूतस्य सकलपदार्थावलोकनस्वभावस्य दर्शनोपयोगस्याप्यानंत्यविशेषणविशिष्ट-केवलव्यपदेशस्य सुघटनात्। चंद्रे शीतस्पर्शधवलवर्णयोर्युगपत्प्रवर्तनवत् जिनेंद्रचंद्रे एतौ द्वावुपयोगौ युगपत्प्रवृत्ताविति ज्ञातव्यौ।वीर्यान्तिरायकर्मनिर्मूलप्रक्षयेणाऽविर्भूतं श्रमक्लमाद्यवस्थाविरोधि-निरंतरप्रवृत्तमप्रतिहतसामर्थ्योपेतं वीर्यमनन्तवीर्यमित्युच्यते। तच्चानन्तपदार्थपरिच्छेदकध्रुवोप-योगपरिणामप्रवृत्तावपि खेदाभावलक्षणोपकारकारित्वादस्य सर्वज्ञस्य सफलमेव। अन्यथा तदुपयोगस्यास्मदाद्युपयोगवत् सामर्थ्यविरहेण निरंतरप्रवृत्त्यभावे सांतरप्रवृत्तिर्भवेत्। अयमर्थ: पूर्वाचार्यैरप्युक्त:-

तव वीर्यविघ्नविलयेन समभवदनन्तवीर्यता तत्र।

सकलभुवनाधिगमप्रभृतिस्वशक्तिरवस्थितो भवान्।।

इत्यनेनैवानन्तसुखस्वरूपमपि निरूपितम्। तद्यथा अनंतज्ञानदर्शनवीर्यपरिवर्द्धितसामर्थ्यस्य ज्ञानवैराग्यातिशयपरमकाष्टा[5]ऽधिष्ठितस्य जिनेंद्रस्यात्मोपादानसिद्धातीन्द्रियनि:प्रतिपक्षनिरतिश-यपरमानंदस्वरूपानाकुलत्वलक्षणानंतसुखस्य तदविनाभूततया प्रादुर्भवनात्। अनेनैवासात-वेदनीयोदयसद्भावेन सयोगकेवलिनि अनन्तसुखाभावं तदनुयायिकवलाहारप्रवृत्तिं च प्रतिपादयन्

---

१. केवली २. चित्ता भोगो मनस्कार:

३. उपमातीत ४. विनाशरहितं ५. अग्र

प्रतिवादी प्रत्युक्तः[१] तद्यथा तदुदयो विद्यमानोपि घातिकर्मोदयसहकारिकारणवैकल्या[२]-दुपघातपरघातनामकर्मोदयवत् कार्यकर्त्ता न। वेदनीयोदयमात्रस्यैव सद्भावात्। इतरथा समग्रक्षुत्परीषहसद्भावे तदुदयजनितानां पिपासाशीतोष्णदंशमशकचर्याशय्यावधरोगतृणस्पर्श-मलसंज्ञितदशपरीषहाणामप्यविकलसंभवो भवेत्। तथा सति वधरोगपीडाजनितदुःखमपि जायेत। तस्मिन् सति लाभमिच्छतो मूलोच्छित्तिवत् केवलित्वस्याभावो भवति। ततः कारणात्केवलिभुक्तिरस्तीति दुराग्रहग्रस्तमहामुनिवचनं प्रेक्षापूर्वकारिणामुपेक्षार्हमेव। अनंतदानलाभभोगोपभोगलब्धयोपि वीर्यग्रहणेनैवोपलक्ष्यंते। अंतरायनिरवशेषपरिक्षयजनित-त्वस्याविशिष्टत्वात्। सकलप्राणिगणविषयाभयदानसामर्थ्यप्रतिबंधाभावात्त्रैलोक्याधिपत्य-प्राप्तिप्रतिबंधापायात्। प्रयोजनपक्षे स्वाधीनसमस्तभोगोपभोगवस्तुसंप्राप्तिप्रतिबंधविगमात् ता अत्र सफला इति ज्ञातव्यम्। एवं द्विविधमोहनीयप्रक्षयेणोत्पन्नाऽविनश्वरसम्यक्त्वचारित्रविशुद्धिः ज्ञानदृगावरणमूलोत्तरप्रकृतिपरिक्षयानंतरसंजनितक्षायिकानन्तकेवलबोधदर्शनपरिणामः अंतरायप्रक्षयसमुद्भूतानन्तवीर्यदानलाभभोगोपभोगसामर्थ्यं चेत्येताभिर्नवकेवललब्धिभिर्विराजमानो मुनिः ईर्यापथबंधकारणमनोवाक्काययोगयुक्त त्वात्सयोग इति। जितघातिव्रातत्वात्जिन इति चोच्यते। तत्स्वरूपनिरूपकसूत्रद्वयम् -

केवलबोधदिवाकरकिरणकलापप्रणाशिताज्ञानः।
नवकेवललब्ध्युद्गमसुजनितपरमात्मपर्यायः।।
यस्त्रिविधयोगयुक्तावसहायज्ञानदर्शनोपेतः।
एष जितघातिजातः सयोगकेवलिजिनो भणितः।।

पुनः नागनाकिनायकनिकायचित्तनेत्रचमत्कारकारिभूरिशोभैकशरणभुवनशरणसमवसरण-सारभूमंडलमंडनलोकलक्ष्मीमंडपलक्ष्मीमंडपमध्यमभूभागभूषणभक्तिकभव्यनव्यागण्यपुण्या-नल्पकल्पपादपमूलपीठिकाय मानत्रिपीठाग्रानुलग्नत्रिलोकाधिपत्यशिखरिशिखरायमाणविशिष्ट-सिंहविष्टरशेखरीभूते सकलकल्याणकारणकल्याणचतुष्टयप्रभूतविभूतिविशेषिते आर्यवर्यप्रातिहार्या-ष्टकविराजिते प्रगुणगुणद्वादशगणसमाराधिते निरतिशयचतुस्त्रिंशदतिशयशोभिते समुदित-कोटिप्रचंडमार्तंडमंडलमयूखमंडलीसमधिक[३] मरीचिमंडितभुवनजननयनानंदजननमहिममहित-धातुरहितमलवियुतरक्तनेत्रकटाक्षशरमोक्षादिदोषादूषितसमचतुरस्रसंस्थानसंस्थितवज्रवृषभ-नाराचसंहननसंगतदिव्यगंधपरिमलितसाष्टसहस्रलक्षणसंलक्षितप्रमाणसंस्थितनखकेशोपेत-निरायुधनिर्भयनिरंबरनिर्भूषणकांतवक्त्रादिगुणगणनिधानपरमौदारिकशरीरसमलंकृते

---

१. निराकृतो जातः। २. विकलता ३. इदं विशेषणं जिनस्य

चतुर्विधोपसर्गक्षुधादिपरीषहरागद्वेषादिसकलदोषगोचरातिक्रांतगणधरचक्रधरकुलिशधरमुशलधरगदाधरादिसंपूजित[१२]राजर्षिदेवर्षि ब्रह्मर्षि[३]निषेविते जिनेंद्रचन्द्रे निर्जरादिव्यापारव्याहारप्रवृत्ति[४]-क्रमः कथमस्तीति चेत्। सयोगजिनस्य प्रथमसमये आयुर्वर्जितघातिचतुष्टयद्रव्यमपकृष्य क्षीणकषायोक्तपूर्वोक्तक्रमेण निक्षिपन् उदयनिषेके स्तोकं ददाति। अनंतरनिषेके असंख्यातगुणं इत्यसंख्यातगुणश्रेणिं निक्षिपति यावत् गुणश्रेणीशीर्षं तावत्। तत उपरि तदनंतरस्थितावसंख्यातगुणं ददाति। तत उपरि विशेषहीनं निक्षिपति यावत् स्वस्वातिस्थापनावलिं न प्राप्नोति तावत्। अत्र क्षीणकषायेण गुणश्रेणिनिमित्तमपकृष्टद्रव्यात् सयोगकेवलिना अपकृष्यमाणद्रव्यमसंख्यातगुणम्। तद्गुणश्रेणिनिक्षेपायामात् एतद्गुणश्रेणिनिक्षेपायामः संख्यातगुणहीनः इति ज्ञातव्यम्। छद्मस्थपरिणामात् केवलिपरिणामस्यात्यंतविशुद्धत्वात्। द्वितीयसमयेपि उदयस्थितौ स्तोकं ददाति। द्वितीयस्थितावसंख्यातगुणं इत्यसंख्यातगुणतया ददाति यावत्प्रथमसमयगुणश्रेणिशीर्षं तावत्। गुणश्रेणिशीर्षादनंतरस्थितावप्यसंख्यातगुणं ददाति। तदुपरितनस्थितावपि असंख्यातगुणं ददाति। तत उपर्यतिस्थापनावलिं मुक्त्वा सर्वत्रापि विशेषहीनतया ददाति। अत्र सयोगजिनस्य प्रथमसमयादारभ्य समुद्घातोन्मुखकेवलिप्रथमसमयपर्यंतं द्रव्येणायामेन च गुणश्रेणिरवस्थिता इति ज्ञातव्यम्। परिणामेषु प्रतिसमयमवस्थितेषु सत्सु तन्निबंधनद्रव्यापकर्षणगुणश्रेणिनिक्षेपायामयोरपि सदृशत्वं। कारणानुविधायिकार्यमिति न्यायेनोचितत्वात्। एवं प्रतिसमयमसंख्यातगुणश्रेण्या कर्मप्रदेशान् निर्जयन् योजनांतरदूरसमीपस्थाष्टादशमहाभाषासप्तशत[५] कुभाषापरिणततिर्यग्देवमनुष्यभाषाकारन्यूनाधिकभावातीतदोषरहितहितमधुरमनोहरगंभीरविशददिव्यध्वनिना आसन्नभव्यलोकस्य सकलसंसारदुःखापारकूपारगर्त्तावर्त्तवर्तिजीवजातसमुद्धरणपोतप्रायं सकलाभ्युदयनिःश्रेयससुखकारणं सागारानगारभेदभिन्नं निर्मलधर्ममुपदिशन् अबुद्धिपूर्वकं सर्वसत्त्वसमुद्धरणभावनातिशयप्रेरितो विनेयजनपुण्येन यथोचितधर्मक्षेत्रे त्रिलोकाधिपतीनामभिगमनीयोऽर्चनीयः पूजनीयो वंदनीयो नमस्करणीयो भूत्वा ज्ञानावरणादिकर्मणां [६]निश्चयव्यवहारापायातिशयानंतरप्रादुर्भूताचिंत्यज्ञानदर्शनसकलसाम्राज्यलक्ष्मीवल्लभः प्रशस्तविहायोगतिसव्यपेक्षं महाविभूत्यलंकृतो भूत्वा उत्कृष्टेन देशोनपूर्वकोटिकालं श्रीविहारं करोति। अत्र तीर्थकरकेवलिनो जघन्यश्रीविहारकालो वर्षपृथक्त्वं सामान्यकेवलिनो जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तः इति ज्ञातव्यम्। केवलिव्यापारव्याहारातिशयः [७]अभिसन्धिपूर्वकः अन्यथा यत्किंचनकारि-

---

१. विक्रियाक्षीणर्द्धिप्राप्ता २. गगनगमनर्द्धि संपन्नाः ३. बुद्ध्यौषर्द्धियुक्ताः
४. दिव्यध्वनि ५. क्षुल्लक ६. पर्यायार्थिकनय ७ बुद्धिपूर्वको भवेत्।

त्वदोषप्रसंगात्। तस्मिन् सति स्वेच्छाकारित्वेनासर्वज्ञ एव। तच्चानिष्टं इत्यस्य पूर्वपक्षस्य परिहार उच्यते। कल्पवृक्षोऽभिसंधिरहितोऽपि परार्थसंपादनसामर्थ्येनार्थिनामभीष्टं सम्पादयति। तथैव निष्ठिता[१]र्थार्हत्परमेष्ट्यप्यबुद्धिपूर्वकमेव परार्थप्रवृत्तिस्वाभाव्येनाखिलभव्यजनहितसिद्धिनिमित्तं कायवाग्व्यापारव्यापृतो भवति। चंद्रवद्वा यथा चंद्रो जलवृद्धिकरणे अभिसंधिरहितोपि नियतकाले उदेत्य तद्वृद्धिं स्वभावेन करोति तथैव जिनचंद्रोपि[२]ऽचिकीर्षाभावेपि योग्यकाले प्रादूर्भय दिव्यवचनरोचिर्निचयेन धर्मसमुद्रवृद्धिं संपादयतीति पूर्वोक्तदूषणस्यावकाशाभाव:। स जिनभास्कर: श्रीविहारमंबरतले भक्तिनिर्भरसुरनिकरविरचितपंचविंशत्युत्तरद्विशतकमलानामुपरि प्रयत्नाभावेपि स्वभावातिशयेन प्रवर्तते इति ज्ञातव्यम्। योगशक्तेरचिंत्यत्वात्। अत्र प्रस्तुतस्तुति:।

त्रयोदशगुणस्थानतुंगोदयनगोदित:।
स्वदेहरोचि[३]सन्निद्रविनेयोत्कर[४]पुष्कर:
केवलज्ञानभाभिन्नघनाज्ञानतमस्तति:।
विधूतघातिजीमूतो जयताज्जिनभास्कर:।

तथा ओजोलेप्यमानसकवलकर्मनोकर्मभेदभिन्नषड्विधाहारेषु सयोगकेवलिन:कर्मनोकर्माहारावेव स्त:। शेषा न संति। तत्रापि योगकारणैकसमयस्थितिकसातकर्मसमयप्रबद्धबंध: सर्वकालमप्यस्ति। औदारिकशरीरनामकर्मोदयकारणकसुवर्णसुगंधसुरससुस्पर्शयुक्तगलितावशेषायुर्मात्रस्थितिक-शरीरोपचयनिमित्तनोकर्मप्रतिबद्धसमयप्रबद्धबंध: प्रतरलोकपूरणप्रतरसंज्ञितसमुद्घातसमयत्रयं विना शेषसर्वसमयेष्वप्यस्ति केवलिसमुद्घातं तदा करोति। तस्य स्वरूपभेद: क इति चेत्। निजायु: अंतर्मुहूर्तमात्रावशिष्टं तदा केवली प्रथमत: आवर्जितकरणं करोति। आवर्जितकरणमिति समुद्घातक्रियाभिमुखावस्था। तत् अंतर्मुहूर्तकालं करोति। अंतर्मुहूर्तकालं आवर्जितकरणप्रवृत्तिर्न चेत् समुद्घातक्रियाभिमुखीभावस्यासंभवात्। तदा नामगोत्रवेदनीयानां प्रदेशपिंडमपकृष्य पूर्वोक्तक्रमेणोदयनिषेके प्रदेशप्रचयं स्तोकं ददाति। तदनंतरनिषेके असंख्यातगुणं ददाति एवमसंख्यातगुणश्रेण्या निक्षिपन् गच्छति यावत् शेषसयोगायोगकालाद्विशेषाधिकस्वरूपा-वस्थितगुणश्रेणिशीर्षं तावत्। इदं गुणश्रेणिशीर्षं तदनंतराधस्तनसमये वर्तमानस्वस्थानसयोगजिनेन कृतगुणश्रेण्यायामात्संख्यातगुणहीनाध्वानमधोऽवतीर्य भवति। [५]प्रदेशापेक्षया तत: असंख्यातगुण-प्रदेशविन्यासस‌हितमिति ग्राह्यं। इदं कथं ज्ञायत इति चेत्। दर्शनलाभे देशविरतेऽनंताघसंवियोग करे[६] दर्शनमोहक्षपके चरित्रमोहोपशमक उपशांते। क्षपके क्षीणे जिनयोर्द्रव्यमसंख्यातसंगुणं काल:

१. कृतकृत्या २. कर्तुमिच्छा ३. विकसित ४. कमलं
५. समत्तुपत्तिये इत्यत्रगुणश्रेण्यायामतारतम्यं ज्ञातव्यं ६. विसंयोजन

संख्यातगुणोनस्ता एकादशनिर्जराः क्रमशः। इत्येकादशगुणश्रेणिस्वरूपनिरूपकार्षात् ज्ञातव्यम्। तद्गुणश्रेणिशीर्षादुपरितनानंतरनिषेकेऽपि असंख्यातगुणं ददाति। तत उपरि सर्वनिषेकेषु विशेषहीनं ददाति। आवर्जितकरणकालस्य द्वितीयादिसमयेष्वपि गुणश्रेणिनिक्षेपः एवमस्तीति ज्ञातव्यः। अत्र दृश्यमानद्रव्यश्रेणिनिरूपणं ज्ञात्वा वदेत्। स्वस्थानसयोगकेवलिवत्। समुद्घातक्रियाभिमुख-सयोगकेवलिनो गुणश्रेणिनिक्षेपः अवस्थितायामः इति (नि)श्चिनुयात्। कुतः। इतः प्रभृति सयोगद्विचरमस्थितिकांडकचरमफालिपर्यंतमवस्थितस्वरूपेणायं गुणश्रेणिनिक्षेपायामः प्रवर्तते इति परमगुरुसंप्रदायोपदेशबलेन सुनिर्णीतत्वात् स्वस्थानकेवलिनः समुद्घातक्रियाभिमुख-केवलिनश्चावस्थितैकस्वरूपपरिणामत्वे सति अत्र स्थले गुणश्रेणिनिक्षेपस्य विसदृशत्वं कथं जातमिति नाशंकनीयं। परमवीतरागपरिणामस्य भेदाभावेपि अंतर्मुहूर्तमात्रायुष्यमपेक्ष्य समुत्पन्नानामंतरंगविशेषपरिणामविशेषाणां क्रियाभेदसाधकत्वात्। एवमन्तर्मुहूर्तकालमावर्जित-करणगोचरव्यापारप्रबंधमतीत्य तत्करणकालनिष्ठापनानंतरसमये केवलिसमुद्घातं करोति। केवलिसमुद्घातः इति किं। अघातिकर्मस्थितिसमीकरणनिमित्तं समयाविरोधेन केवलिजीव-प्रदेशानामूर्ध्वाधस्तिर्यग्विसर्पणं केवलिसमुद्घातः इत्युच्यते। स च केवलिसमुद्घातः दंडकपाटप्रतरलोकपूरणभेदेन चतुर्विधः। तत्र दंडसमुद्घातस्वरूपमिदं। अंतर्मुहूर्तायुष्येऽवशिष्टे पूर्वाभिमुखः उत्तराभिमुखो वा भूत्वा पल्यंकासनेन कायोत्सर्गेण केवलिसमुद्घातं करोति। तत्र कायोत्सर्गेण दंडसमुद्घातकरणक्रमोऽयं उत्कृष्टावगाहविशिष्टकेवलिशरीरोत्सेधः अष्टोत्तरशत-प्रमाणप्रमाणांगुलप्रमितः १०८ [1]तन्नवमभागो व्यासः १२ व्यासं षोडशगुणितं षोडशसहितं त्रिरूप[2]-रूपैर्भक्तं त्रिगुणव्याससमेतं सूक्ष्मादपि विद्धितं सूक्ष्मं। इति सूत्रेण अस्य सूक्ष्मपरिधावानीते सप्तत्रिंशदंगुलानि पंचनवतित्रयोदशशतभागश्च भवेत् [३७।९५ / ११३] अनेन परिधिप्रमाणेन देशोनचतुर्दश-रज्जूत्सेधेन दंडाकृत्या जीवप्रदेशानां निर्गमनं दंड-समुद्घातो नाम। देशोनप्रमाणमध-स्तनोपरितनलोकपर्यंत वातवलयावरुद्धक्षेत्रमात्रं भवति। स्वभावेनैव तदवस्थायां वातवलयाभ्यंतरे केवलिजीवप्रदेशानां प्रवेशाभावात्। पल्यंकासनेन समुद्घातं कुर्वतोपि दंडसमुद्घातक्रमः एवमेव किंतु पूर्वविष्कंभादयं विष्कंभस्त्रिगुणः ३६। अस्य परिधिस्त्रयोदशोत्तरशतांगुलानि सप्तविंशतित्रयोदश-शतभागश्च [११३।२७ / ११३] दंडाकारेणोक्तक्रमेण जीवप्रदेशनां विसर्पणसद्भावादस्य समुद्घातस्य दंड-समुद्घातः इत्यन्वर्थ नाम। अस्मिन् समुद्घाते वर्तमानकेवलिनः इतरयोगसंभवाभावा-

---

१. मध्यमनवतालापेक्षया १०८ जघन्यनवतालापेक्ष्या १०४ तु उत्कृष्टनवतालापेक्षेया ११२

२. व्यासं १२ षोडशगुणितं १२।१६ षोडशसहितं १२।१६ त्रिरूपरूपै ११३ र्भक्तं [१३।१६ / ११३] त्रिगुणव्याससमेतं ३६ अस्मिन्निक्षिप्ते [३७।९५ / ११३]

दौदारिककाययोग एवास्ति। अत्र वर्तमानकेवलिनः क्रियमाणकार्यविशेषः कः इति चेत्। एकसमये एव केवलिसमुद्घातमाहात्म्येनायुर्वर्जिताघातिकर्मणां तत्कालोपभ्यमानपल्यासंख्यातैकभागमात्र-स्थितिसत्त्वासंख्यातबहुभागं हत्वा असंख्यातैकभागं स्थापयति। तत्राप्रशस्तप्रकृतीनां क्षीणकषाय-चरमसमये घातितावशेषितानुभागसत्त्वस्यानंतबहुभागं हत्वा अनंतैकभागं स्थापयति। प्रशस्त-प्रकृतीनां स्थितिकांडकघात एवानुभागकांडकघातो नास्ति। गुणश्रेणिनिर्जरा आवर्जितकरणवत् प्रवर्तते। किमपि विशेषो नास्ति। एवं दंडसमुद्घातं कृत्वा तदनंतरसमये कवाटसमुद्घातं करोति। तद्यथा। पूर्वाभिमुखः कायोत्सर्गेण कपाटसमुद्घातं करोति। पूर्वाभिमुखो भूत्वा पल्यंकासनेन कवाटसमुद्घातं कुर्वतोपि विष्कंभायामो प्राग्वदेव बाहल्येन षड्त्रिंशदंगुलानि। उत्तराऽभिमुखतया कायोत्सर्गेण कवाटसमुद्घातं कुर्वन् देशोनचतुर्दशरज्ज्वायामेन सप्तैकपंचैकरज्जूप्रमाणविष्कंभेन द्वादशांगुलबाहल्येन कवाटसमुद्घातं करोति। उत्तराभिमुखतया पल्यंकासनेन कपाटसमुद्घातं कुर्वतोपि विष्कंभायामो प्राग्वदेव बाहल्यं षड्त्रिंशदंगुलप्रमितं। कवाटं यथा बाहल्येन स्तोकं विष्कंभायामाभ्यां प्रवृद्धं तथा तदवस्थायां तदाकारेण जीवप्रदेशानां विसर्पणसद्भावात् अस्य समुद्घातस्य कवाटसमुद्घातः इति गुणनाम। तदवस्थायां वर्तमानकेवलिनः औदारिकमिश्रकाययोगः कार्मणौदारिकशरीरद्वयावष्टंभेन[1] तत्र जीवप्रदेशानां परिस्पंदपर्यायप्रवृत्तिसद्भावात्। एवंविधावस्था-व्यापृतकेवलिक्रियमाणकार्यविशेषः कः इति चेत्। आयुर्वर्जिताघातिचतुष्टयस्य घातितावशिष्ट-पल्यासंख्यातैकभागमात्रस्थितिसत्त्वस्यासंख्यातबहुभागमेकसमये हत्वा एकभागं स्थापयति। अप्रशस्तकर्मणां घातितावशिष्टानुभागसत्त्वस्यानंतबहुभागं हत्वा एकभागं स्थापयति। गुणश्रेणि-निरूपणाया आवर्जितकरणकथितविकल्प एव। एवं द्वितीयसमये कपाटसमुद्घातं कृत्वा तृतीयसमये प्रतरसमुद्घातं करोति। चतुःपार्श्वेषु प्रतराकारेण विसर्पसकलवातवलयविरहितावशेषलोकाकाश-प्रदेशेषु केवलिजीवप्रदेशपूरणं प्रतरसमुद्घातो नाम। तत्र मूलशरीरावष्टंभजनितजीवप्रदेशपरिस्पंद-स्याभावात् शरीरप्रायोग्यनोकर्मपुद्गलपिंडग्रहणाभावात् केवली कार्मणकाययोग्यपि अनाहारकश्च भवति। तदवस्थायां घातितावशिष्टस्थितिसत्त्वासंख्यातबहुभागमप्रशस्तप्रकृतीनां घातितावशिष्टा-नुभागसत्त्वस्यानंतबहुभागं च प्राग्वद्घातयति। गुणश्रेणिनिक्षेपमपि प्राग्वत्करोतीति द्रष्टव्यम्। एवं प्रतरसमुद्घातं कृत्वा चतुर्थसमये लोकपूरणं करोति। सर्ववातव्याप्तलोकाकाशप्रदेशेषु जीवप्रदेशानां नैरंतर्येण प्रविष्टत्वात्। एवंविधं जीवप्रदेशविसर्पणं लोकपूरणसमुद्घातो नाम। तदा लोकाकाश-प्रदेशः जीवप्रदेशाश्चाऽन्यूनाऽनतिरिक्ता भूत्वा तिष्ठन्ति। तत्रापि प्राक्तनसमयवत् कार्मणकाययोगी अनाहारकश्च भवति। कार्मणकाययोगिलोकपूरणकेवलिनि योगशक्तिरेकवर्गणाप्रमाणेन तिष्ठति।

---

१. व्याप्तेन

लोकमात्रा शेषजीवप्रदेशा योगाविभागप्रतिछेदवृद्धिहानी विना अन्योन्यसदृशप्रमाणस्वरूपेण परिणमन्तीत्यर्थ: अयं समयोगपरिणाम: इत्युच्यते। अयं सूक्ष्मनिगोदजघन्यवर्गणात: असंख्यात-गुणतत्प्रायोग्यमध्यमवर्गणाप्रमाणमिति निश्चिनुयात्। तदा पूर्ववत् अवशिष्टस्थितिसत्त्वमन्तर्मुहूर्त-मात्रं तथापि आयु:स्थितिसत्त्वात् संख्यातगुणम्। एवं दंडकवाटप्रतरलोकपूरणसमुद्घातेषु चतुर्षु समयेषु अप्रशस्तकर्मानुभागसत्त्वस्यानुसमयापवर्तनं स्थितिकांडकैकसमयिकघातश्च जातौ। इति केवलिसमुद्घातस्य फलम्। लोकपूरणानंतरं समुद्घातक्रियां क्रमेणोपसंहरति। लोकपूरणमुपसंहृत्य मंथानं करोति। प्रतरसमुद्घातस्यागमरूढ्या मंथा इति नाम। अस्मिन्समये समपरिणामं निहत्य समयाविराधेन सर्वपूर्वस्पर्द्धकस्वरूपेण परिणत इति ज्ञातव्यम्। तदनंतरसमये मंथानमुपसंहृत्य कवाटं करोति। अनंतरसमये कवाटसमुद्घातमुपसंहृत्य दंडसमुद्घातमाश्रयति। तदनंतरसमये दंडसमुद्घातमुपसंहृत्य मूलशरीरप्रमाणान्यूनाधिकजीवप्रदेशो भूत्वा स्वस्थानकेवली भवति। अत्रावतारकस्य प्रतरे प्राग्वत् कार्मणकाययोग: कवाटे औदारिकमिश्रकाययोग: दंडे औदारिककाययोग: इति ज्ञातव्यम्। अत्रोपयोग्यार्यात्रियम् -

दंडं प्रथमसमये द्वितीयसमये जिन: कवाटाख्यं
मंथानमथ तृतीये लोकव्याप्तिं चतुर्थे तु।
संहृत्य जगत्पूर्तिं मंथानं पंचमे पुन: कुरुते।
षष्ठे तत: कवाटं दंडमत: सप्तमे समये
औदारिकांगयोगो दंडद्वितये कवाटयुगले तु तन्मिश्र:
प्रतरयुगे लोकव्याप्तौ च कार्मणयोग:।।

एवं समुद्घातक्रिया निर्वर्तनं जातं। अवतारकप्रथमसमयादारभ्य घातितावशिष्टान्तर्मुहूर्त-मात्रस्थितिसत्त्वसंख्यातबहुभागं घातितावशिष्टानुभागसत्त्वानन्तबहुभागं च कांडकरूपेण घातयति। लोकपूरणस्योपरि स्थित्यनुभागकांडकमनुसमया[१]पवर्तनं मुक्त्वा अंतर्मुहूर्तेन प्रवर्तनात्। एवं स्थित्यनुभागकांडकेषु संख्यातसहस्रेषु समयाविरोधेन गतेषु केवली योगनिरोधं करोति। तद्यथा बादरकाययोगे वर्तमान: अंतर्मुहूर्तेन बादरमनोयोगं निरुणद्धि। अत्र निरोध: इत्युक्ते नाश: इत्यर्थोऽगीकर्तव्य:। बादरकाययोगव्यापृतो भवन्नेव बादरमनोयोगशक्तिमंतर्मुहूर्तेन निरुध्य संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तकसर्वजघन्यमनोयोगादध: असंख्यातगुणहीनत्वेन सूक्ष्मभावेन स्थापयती-त्यभिप्राय:। अत्र सूक्ष्मप्रेक्ष: शैक्ष: पूर्वपक्षमीदृक्षमाक्षिपति। बादरकाययोगवर्तिकेवली तत्काले अविद्यमानबादरमनोयोगं निरुणद्धि विद्यमानं वा। अविद्यमानस्य निरोध: वंध्यास्तनंधयनिरोधवद-

१. एतयोर्घात एकैकसमये न स्यात्किंत्वन्तर्मुहूर्ते

संभाव्य:। विद्यमानस्य निरोधकरणपक्षे एककाले त्रियोगानामेकजीवे विवक्षिते एक एव भवेन्नान्याविति राद्धांतपद्धति:। इत्यागमेन विरुध्यते इत्यत्र परिहारोयं। प्रथमपक्षस्यानभ्युपगमात् तत्पक्षनिक्षिप्तप्रदूषणमशिक्षितलक्षितम्। द्वितीयपक्षोद्भावितदूषणमप्ययुक्तियुक्तम्। कुत:। तस्मिन् काले मनोवर्गणाजनितमनोयोगप्रवृत्यभावेपि तद्वर्गणानां मनोयोगोत्पादनशक्तिरस्ति सैव शक्ति: कारणे कार्योपचारादिति न्यायेन योग[1] इत्युच्यते। तस्य निरोधात्। बादरकाययोगे स्थित्वा बादरमनोयोगं निरुणद्धीति सुघटितमेव। अयमर्थोऽग्रेपि वक्तव्य:। एवं बादरमनोयोगशक्तिं निरुध्य तदनंतरसमयात्प्रभृति अंतर्मुहूर्तेन बादरकाययोगे वर्तमान: बादरवाग्योगं निरुणद्धि पूर्वं द्वीन्द्रियपर्याप्तकसर्वजघन्यवाग्योगादसंख्यातगुणतया स्थितनिजवाग्योगशक्तिं निरुद्धं द्वीन्द्रिय-पर्याप्तकसर्वजघन्यवाग्योगादध: असंख्यातगुणहीनतया सूक्ष्मस्वरूपेण स्थापयतीति भाव:। एवं बादरवाग्योगं निरुध्य तदनंतरसमयात्प्रभृति अंतर्मुहूर्तेन बादरकाययोगे वर्तमानो बादरो-श्वासनिश्वासं निरुणद्धि। उछ्वासनिश्वासपर्याप्तापर्याप्तस्य सूक्ष्मनिगोदनिर्वृत्यपर्याप्तकस्य सर्वजघन्योच्छ्वासशक्तित: असंख्यातगुणत्वेन संज्ञिप्रायोग्यतया स्थितस्वकीयोच्छ्वासनिश्वासपरि-स्पंदशक्तिं निरुध्य सर्वजघन्यसूक्ष्मनिगोदोच्छ्वासनिश्वासशक्तेरध: असंख्यातगुणहीनतया सूक्ष्मभावेन स्थापयतीति तात्पर्यम्। एवं बादरोच्छ्वासनिश्वासं निरुध्य तदनंतरक्षणादारभ्यान्तर्मुहूर्तकालेन बादरकाययोगवर्तमानस्तमेव बादरकाययोगं निरुणद्धि सूक्ष्मनिगोदसर्वजघन्यकाययोगाद-संख्यातगुणं स्वकीययोगं सूक्ष्मनिगोदसर्वजघन्यकाययोगादध: असंख्यातगुणहीनतया सूक्ष्मावस्थया स्थापयतीति हृदयम्। अत्र प्रस्तुतसूत्रद्वयं -

पंचेंद्रियोऽथ संज्ञी य: पर्याप्तो जघन्ययोगी स्यात्।
[2]निरुणद्धि मनोयोगं ततोप्यसंख्यातगुणहीनं।।
द्वींद्रियसाधारणयो [3]र्वागुच्छ्वासौ करोत्यधस्तद्वत्।
[4]पनकस्य काययोगं जघन्यपर्याप्तकस्याध:।।

एवं बादरकाययोगं निरुध्य तदनंतरसमयात्प्रभृति सूक्ष्मकाययोगावस्थित: सन्नंतर्मुहूर्तकालेन सूक्ष्ममनोयोगं निरुणद्धि। प्राक् सूक्ष्मत्वं प्राप्याऽव्यक्तस्वरूपावस्थितां मनोयोगशक्तिमिदानीं निर्मूलमुन्मूलयतीति भावार्थ:। एवं मनोयोगं विनाश्य तदनंतरसमयादारभ्यान्तर्मुहूर्तेन सूक्ष्मकाययोगावष्टंभेन सूक्ष्मवाग्योगं निरुणद्धि। प्राग् द्वीन्द्रियपर्याप्तकसर्वजघन्यशक्तितोऽसंख्यात-गुणहीनतयाऽवस्थितसूक्ष्मवाग्योगशक्तेरधुना नि:शेषनाशं करोतीत्यभिप्राय:। एवं सूक्ष्मवाग्योगं विनाश्य तदनंतरसमयादारभ्यान्तर्मुहूर्तेन सूक्ष्मकाययोगबलेन सूक्ष्मोच्छ्वासनिश्वासं निरुणद्धि। पूर्वं

१. शक्ति: कारणं योग: कार्यं २. नाशयति ३. वागुच्छ्वासाभ्यांयोर्वा ४. बादरकाययोगस्य

सूक्ष्मतया स्थितोश्वासनिच्छ्वासपरिस्पंदशक्तेः सांप्रतं निरवशेषक्षयं करोतीति तात्पर्यम्। एवं सूक्ष्मकाययोगव्यापृतः सन् मनोवागुच्छ्वासनिश्वासयोः सूक्ष्मशक्तीरुक्तक्रमेण निर्मूल्य सूक्ष्मकाययोगनिरोधप्रवृत्तः केवली सूक्ष्मकाययोगवर्तमानः एताः वक्ष्यमाणक्रिया अबुद्धिपूर्वकमेव करोति। ताः क्रियाः का इति चेत्। प्रथमसमये पूर्वस्पर्द्धकानामधः अपूर्वस्पर्द्धकानि करोति। अत्र तावन्मंदबुद्धिशिष्यानुग्रहार्थं प्रासंगिकरूपेण योगाश्रितार्थविशेषनिरूपणं क्रियते कर्माकर्षणकारण-भूतात्मशक्तिर्योगः सा च योगशक्तिः लोकमात्रजीवप्रदेशेषु एकरूपेण न तिष्ठति। योगाविभाग-प्रतिच्छेदानां हीनाधिकभावसद्भावात्। तद्यथा लोकमात्रजीवप्रदेशेषु सर्वजघन्यशक्तियुक्त-जीवप्रदेशशक्तिं बुद्ध्या प्रसार्य अतः अधिकशक्तियुक्तशेषजीवप्रदेशेभ्यः सर्वहीनशक्तियुक्त-जीवप्रदेशशक्तौ अस्योपरितनभागे प्रसारितायां सत्यां योगस्य जघन्यशक्तिवृद्धिः सा अविभागप्रतिच्छेदो नाम। तेन सर्वजघन्यजीवप्रदेशशक्तौ प्रज्ञया प्रमाणितायामविभागप्रतिच्छेदाः असंख्यातलोकमात्रा भवन्ति। तेषां वर्ग इति नाम। जीवैकप्रदेशस्थिताविभागप्रतिच्छेदसमूहस्य वर्गव्यपदेश इत्यभिप्रायः। पुनस्तत्समानशक्तियुक्तजीवप्रदेशा असंख्यातजगत्प्रतरप्रमाणाः सन्ति। तत्सर्वजीवप्रदेशशक्तीः अविभागप्रतिच्छेदप्रमाणेन प्रमाणयित्वा पूर्ववर्गपार्श्वे निक्षिप्तेषु सदृशवर्गा भवन्ति। तत्समूहो वर्गणा भवति। पुनरविभागप्रतिच्छेदोत्तरशक्तियुक्तजीवप्रदेशाः प्राक्तन-सदृशशक्तियुक्तप्रदेशेभ्यो विशेषहीनाः सन्ति तेषामविभागपुंजे पूर्ववर्गणाया उपरि निक्षिप्ते द्वितीयवर्गणा भवति। अत्र विशेषहीनप्रमाणं कियदिति चेत्। श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रद्विगुणहान्या प्रथमवर्गणाजीवप्रदेशान् भक्त्वा तत्रैकखंडमात्रं भवति। अग्रेपि द्वितीयगुणहानेः प्रथमवर्गणापर्यंतं विशेषहानिप्रमाणमिदमेव। पुनरविभागप्रतिछेदोत्तरशक्तियुक्तप्रदेशेषु प्राक्तनप्रदेशेभ्यो विशेषहीनेषु तेषामविभागप्रतिच्छेदसमूहे पूर्ववर्गणाया उपरि निक्षिप्ते तृतीयवर्गणा भवति। एवमविभाग-प्रतिच्छेदोत्तरक्रमेण श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रवर्गणानां रचनां कुर्यात्। तत्समूहस्पर्द्धकमिति संज्ञा। स्वजघन्यवर्गादुपरि एकैकाविभागप्रतिच्छेदवृद्धिनियमयुतं स्पर्द्धकमिति युगपदनेकाविभाग-प्रतिच्छेदवृद्धियुतं स्पर्द्धकांतरं भवति। पुनरधस्तनानंतरवर्गणाजीवप्रदेशेभ्यो विशेषहीनाः प्राक्तना-दिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदेभ्यो द्विगुणाविभागप्रतिच्छेदसहितजीवप्रदेशाः सन्ति। तेषां प्रथमस्पर्द्धकचरमवर्गणाया उपरि रचनायां कृतायां द्वितीयस्पर्द्धकस्यादिवर्गणा भवति। तत उपरि प्रथमस्पर्द्धकोक्तक्रमेण द्वितीयस्पर्द्धकस्यापि रचनां कृत्वा तत उपरि प्रथमस्पर्द्धकादिवर्गणातः त्रिगुणशक्तियुक्तजीवप्रदेशनिचयं स्वीकृत्य तृतीयस्पर्द्धकादिवर्गणां रचयित्वा अत्रापि प्राग्वद-विभागप्रतिच्छेदोत्तरक्रमेण वर्गणा रचयित्वा तृतीयस्पर्द्धकमतीत्य तदनंतरमादिस्पर्द्धकस्या-दिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदेभ्यश्चतुर्गुणाऽविभागप्रतिच्छेदसहितजीवप्रदेशसमूहं स्वीकृत्य

चतुर्थस्पर्द्धकस्यादिवर्गणां रचयित्वा तत्रापि पूर्वोक्तविधानेनाऽविभागप्रतिच्छेदोत्तरतया वर्गणा रचयित्वा चतुर्थस्पर्द्धकमतीत्य तत उपरि पंचमस्पर्द्धकप्रभृति चटिताध्वमात्रगुणकारगुणितप्रथम-वर्गणाप्रमाणादिवर्गणायुता नामऽविभागप्रतिच्छेदोत्तरद्वितीयादिवर्गणाविशिष्टानां श्रेण्यसंख्या-तैकभागमात्राणां स्पर्द्धकानां रचनायां कृतायां प्रथमगुणहानिः सम्पूर्णा भवति। तत उपरि रूपाधिकैकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकामात्रगुणकारगुणितप्रथमवर्गणाप्रमाणाविभागप्रतिच्छेद-कलापयुक्तान् अधस्तनानंतरवर्गणातः विशेषहीनान् जीवप्रदेशान् स्वीकृत्य रचितेषु द्वितीयगुण-हानेरादिवर्गणा भवति। इयं प्रथमगुणहान्यादिवर्गणातः प्रदेशापेक्षया द्विगुणहीना भवति। ततः कारणाद्गुणहान्यंतरं जातम्। तत उपरि द्वितीयवर्गणातः आरभ्य प्रथमगुणहान्युक्तक्रमेण द्वितीयगुण-हानिं रचयेत्। प्रथमगुणहानेर्विशेषादत्रविशेषोऽर्द्धं भवति। उपरितनगुणहानिष्वपि विशेषः पूर्वपूर्वविशेषार्द्धार्द्धक्रमेण वर्तते इति ज्ञातव्यम्। एवं पल्यासंख्यातैकभागमात्रगुणहानिषु रचितासु एकयोगस्थानं संपूर्णं भवति। लोकमात्रजीवप्रदेशाः समाप्नुवन्ति। स्थानांतर्गतस्पर्द्धकांकसंदृष्टिः -

<table>
<tr><td>११
१०।१०
९।९।९
८।८।८।८</td><td>अंतर</td><td>१९
१८।१८
१७।१७।१७
१६।१६।१६।१६</td><td>अंतर</td><td>२७
२६।२६
२५।२५।२५
२४।२४।२४।२४</td><td>अंतर</td></tr>
<tr><td>३५
३४।३४
३३।३३।३३
३२।३२।३२।३२</td><td>अंतर</td><td>४३
४२।४२
४१।४१।४१
४०।४०।४०।४०</td><td>अंतर</td><td>५१
५०।५०
४९।४९।४९
४८।४८।४८।४८</td><td>अंतर</td></tr>
<tr><td>५९
५८।५८
५७।५७।५७
५६।५६।५६।५६</td><td>अंतर</td><td>६७
६६।६६
६५।६५।६५
६४।६४।६४।६४</td><td>अंतर</td><td>७५
७४।७४
७३।७३।७३
७२।७२।७२।७२</td><td>अंतर</td></tr>
<tr><td>८३
८२।८२
८१।८१।८१
८०।८०।८०।८०</td><td>अंतर</td><td>९१
९०।९०
८९।८९।८९
८८।८८।८८।८८</td><td>अंतर</td><td>९९
९८।९८
९७।९७।९७
९६।९६।९६।९६</td><td></td></tr>
</table>

अत्र विवक्षितस्पर्द्धकस्य चरमवर्गं रूपाधिकं कृत्वा तदुपरितनस्पर्द्धकादिवर्गादपनीयावशिष्टं स्पर्द्धकांतरमायाति। तच्चासंख्यातलोकप्रमितं। कुत:। एकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकारहितसर्वजघन्यवर्ग-मात्रत्वात्। संदृष्टि: ८४। योगस्थानसंदृष्टि:

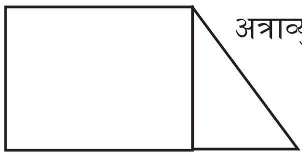

अत्राव्युत्पन्नव्युत्पत्तिनिमित्तं किं स्थानं नाम। गुणहानिसमूह:। का गुणहानि:। क्रमवृद्धस्पर्द्धकसमूह:। किं स्पर्द्धकं वर्गणासमूह:। का वर्गणा वर्गसमूह:। को वर्ग: अविभागप्रतिच्छेदसमूह:। कोऽविभागप्रतिच्छेद:। योगशक्तेर्जघन्यवृद्धिरिति विलोमक्रमेणोच्चरेत्। योगशक्तेर्जघन्यवृद्धिरविभागप्रतिच्छेद:। अविभागप्रतिच्छेदसमूहो वर्ग:। वर्गसमूहो वर्गणा। वर्गणासमूह: स्पर्द्धकं। स्पर्द्धकसमूहो गुणहानि:। गुणहानिसमूह: स्थानमित्यनुलोमक्रमेणोच्चरेत्। अस्मिन् योगनानागुणहानिशलाका: पल्यासंख्येयभागमात्र्य:। एकगुणहानिस्पर्द्धकशलाका: श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्र्य:। तासामंकसंदृष्टि:।९। एकस्पर्द्धकवर्गणाशलाका अपि श्रेण्य-संख्येयभागमात्र्य:। तासामंकसंदृष्टि:।४। तथापि एकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाभ्योऽसंख्यातगुणा:। एकवर्गणावर्गसंख्या असंख्यातजगत्प्रतरप्रमाणा। कुत: द्व्यर्द्धगुणहान्या सर्वजीवप्रदेशेषु भक्तेषु लब्धस्य तावन्मात्रत्वात्। एकवर्गाऽविभागप्रतिच्छेदकलापोऽसंख्यातलोकमात्र:। सर्वगुण-हान्यायामा: परस्परं समाना: सर्वस्पर्द्धकायामा: परस्परं समाना: इति निश्चिनुयात्। इदं सर्वजघन्योपपादयोगस्थानमिति ग्राह्यम्। इदं कस्य भवतीति चेत्। विग्रहगतौ वर्तमानस्य प्रथमसमयतद्भवस्थस्य[1] सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तजीवस्य भवति। अस्य जघन्यस्योपरि सूच्यंगुला-संख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पर्द्धकेषु निक्षिप्तेषु द्वितीययोगस्थानमुत्पद्यते। सूच्यंगुलासंख्यातैकभाग-मात्रजघन्यस्पर्द्धकेषु यावंतोऽविभागप्रतिच्छेदा: सन्ति तावत्सु वीर्यांतरायक्षयोपशममपेक्ष्य जघन्यस्थानस्योपरि वर्द्धितेषु द्वितीययोगस्थानमुत्पद्यते इत्यभिप्राय:। पुनर्द्वितीयोगस्थानं प्रतिराशिं कृत्वा तत्र सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पर्द्धकवृद्धौ निक्षिप्तायां तृतीययोगस्थानमुत्पद्यते। एवमुत्पन्नोत्पन्नयोगस्थानं प्रतिराशिं कृत्वा तावन्मात्राऽवस्थितवृद्धिं निक्षिप्य नानाजीवविषयाणि श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्राणि योगस्थानानि आगमाविरोधेनोत्पादनीयानि। यावत्सर्वोत्कृष्टपरिणाम-योगस्थानमुत्पद्यते तावत्। तत्केषां भवतीति चेत्। संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तकानां भवति। एवंविधयोगस्थानेषु सयोगकेवली योगनिरोधेन पूर्वं संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तकप्रायोग्यपूर्वस्पर्द्धकात्मक-योगस्थाने वर्तमानो बादरकाययोगं निरुंधन्नेव प्राक्तनयोगशक्तिं निरुध्य सूक्ष्मनिगोदजघन्य-योगस्थानादसंख्यातगुणहीनशक्तौ परिणमय्य सूक्ष्मभावेन संस्थाप्य तत्पूर्वस्पर्द्धकरूपेणैव वर्तमान-सूक्ष्मकायपरिस्पंदशक्तिमिदानीं स्वप्रभावेन पूर्वस्पर्द्धकादसंख्यातगुणहान्याऽपूर्वस्पर्द्धकाकारेण

---

१. भवग्रहणप्रथमसमयस्य

परिणमयतीत्यभिप्राय: इयं क्रिया इत: प्राक् कुत्रापि न भवेत् अस्मिन्नवसरे एव संभवादस्यापूर्वस्पर्द्धककरणमिति गुणनाम। अस्य करणस्य स्पष्टत्वकरणाय तावत् श्रेण्यसंख्येयभागमात्रपूर्वस्पर्द्धकानि रचयितव्यानि संदृष्टि: -

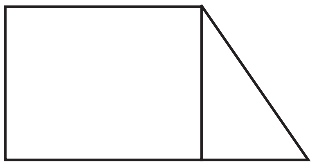

रचितेषु सत्सु सूक्ष्मनिगोदजघन्यस्थानप्रतिबद्धस्पर्द्धकेभ्य: एतानि अपूर्वस्पर्द्धकान्यसंख्यातगुणहीनानि भवन्ति। अन्यथा पक्षे तेभ्य: एषां सूक्ष्मत्वा[1]घटनात्। एवं विरचितपूर्वस्पर्द्धकानामध: अपूर्वस्पर्द्धकानि करोति। तद्यथा आदिवर्गणाप्रमाणेन [2]सर्वपूर्वस्पर्द्धकगतवर्गणासु प्रमाणितासु द्व्यर्द्धगुणहानिमात्र्यो भवन्ति। संदृष्टि: ।व १२। प्रथमसमये तदसंख्येयभागमात्रजीवप्रदेशानपकर्षणभागहारेणापकर्षति [व १२ / ओ] एषु अपूर्वस्पर्द्धकाकारेण परिणतजीवप्रदेशा: शक्त्यपेक्षया पूर्वस्पर्द्धकस्यादिवर्गणाया अविभागप्रतिच्छेदेभ्योऽसंख्यातगुणहीनाऽविभागप्रतिच्छेदसहिता:। कुत:। क्रियमाणापूर्वस्पर्द्धक-चरमवर्गणाऽविभागप्रतिछेदानामपि[3] पूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदेभ्योऽसंख्यात-गुणहीनत्वनियमात्। अत्रासंख्यातगुणहीनत्वस्य भागहार: पल्यासंख्यातैकभागमात्र:। इत उपरि प्रथमसमयापकृष्टजीवप्रदेशानां पूर्वापूर्वस्पर्द्धकेषु निषेकविन्यासक्रम: उच्यते। अपूर्वस्पर्द्धका-नामादिवर्गणायां बहुजीवप्रदेशान् ददाति। द्वितीयवर्गणायां जीवप्रदेशान् विशेषहीनान् ददाति। अत्र विशेषागमननिमित्तं भागहारप्रमाणं श्रेण्यसंख्यातैकभाग:। अनेन क्रमेण विशेषहीनजीवप्रदेशान् निक्षिपन् तावद्गच्छति यावदपूर्वस्पर्द्धकचरमवर्गणा भवति। अपूर्वस्पर्द्धकचरमवर्गणात: पूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायामसंख्यातगुणहीनान् जीवप्रदेशान् ददाति।[4] अत्रासंख्यातगुणहीनत्वस्य कारणभागहार: सातिरेकापकर्षणभागहारप्रमाण: इति ग्राह्यम्। अस्य कारणं तु प्रागुक्तवत्स्वीकुर्यात्। इत उपरि समयाविरोधेन विशेषहीनतया जीवप्रदेशनिक्षेप: इति जानीयात्। अत्रानिवृत्तिकरणगुणस्थानप्रतिबद्धचतु:संज्वलनापूर्वस्पर्द्धकविधानोक्तक्रमेण संदृष्टिं संस्थाप्य दीयमानविषये शिष्याणामर्थनिर्णय: कार्य:। प्रथमसमयकृतसर्वापूर्वस्पर्द्धकप्रमाणमेकगुणहानि-स्पर्द्धकशलाकानामसंख्यातैकभागमात्रम्। संदृष्टि: [९ / ओ a] एवमपूर्वस्पर्द्धककारकप्रथमसमयप्ररूपणं

१. अपूर्वस्पर्द्धकत्वा

२. इष्टिकापंक्तिक्षेत्रे द्व्यर्धगुणहानिप्रमिते

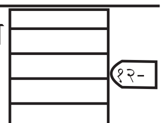

३. त्रैराशि: प्र फ इ एक शलाका तावदायामे यद्येका वर्गणा व तदैतावत: १२ किमिति
१ व १२

४. न केवलं द्वित्रिचरमादीनां

प्रपूर्णं जातं। उभयस्पर्द्धकसंदृष्टिः

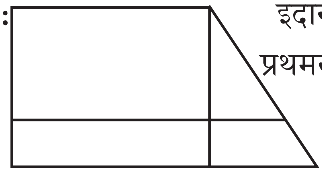

इदानीं द्वितीयसमये अपकृष्टजीवप्रदेशानां श्रेणिनिरूपणं क्रियते। तद्यथा प्रथमसमयापकृष्टजीवप्रदेशेभ्योऽसंख्यातगुणान् एतावतः [व १२ / ओ / a] जीवप्रदेशान् द्वितीयसमयेऽपकृष्य प्रथमसमयकृतापूर्वस्पर्द्धकानामधःनूतनस्पर्द्धकानि कुर्वन्। तत्समयनिर्वर्त्यमानापूर्वस्पर्द्धकानामादिवर्गणायां बहुजीवप्रदेशान् ददाति। तत उपरि विशेषहीनतया अपूर्वस्पर्द्धकचरमवर्गणापर्यंतं ददाति। तत उपरि प्रथमसमयनिर्वर्तितापूर्वस्पर्द्धकानां जघन्यस्पर्द्धकादिवर्गणायामसंख्यातगुणहीनं ददाति। तत उपरि सर्वत्रापि विशेषहीनं ददाति। द्वितीयसमयनिर्वर्तितापूर्वस्पर्द्धकानि प्रथमसमयनिर्वर्तितापूर्वस्पर्द्धकेभ्योऽसंख्यातगुणहीनानि भवन्ति। संदृष्टिः [९ / ओ aa] द्वितीयसमयोभयस्पर्द्धक संदृष्टिः -

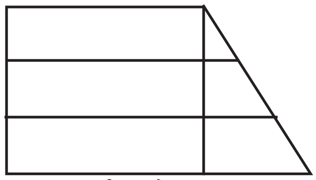

एवं पूर्वपूर्वसमयनिर्वर्तितापूर्वापूर्वस्पर्द्धकानामधोऽधो नूतननूतनस्पर्द्धकानि निर्वर्त्तयति यावत् अंतर्मुहूर्तकालस्तावत्। विशेषोऽयं।पूर्वपूर्वसमयापकृष्टजीवप्रदेशेभ्यः उत्तरोत्तरसमयापकृष्यमाणजीवप्रदेशा असंख्यातगुणा भवन्ति। पूर्वपूर्वसमयनिर्वर्तितापूर्वस्पर्द्धकायामादुत्तरोत्तरसमयनिर्वर्त्यमानापूर्वस्पर्द्धकायामाः असंख्यातगुणहीना भवन्ति। सकलसमयदीयमानक्रमः तत्कालकृतापूर्वस्पर्द्धकचरमवर्गणापर्यंतं विशेषहीनो भवति। तदनंतरोपरितनवर्गणायामसंख्यातगुणहीनं ददाति। तत उपरि सर्वत्रापि विशेषहीनं ददाति। सर्वसमयदृश्यमानक्रमः तत्कालकृतापूर्वस्पर्द्धकप्रथमवर्गणात आरभ्य सर्वत्रापि विशेषहीन एव स्यात्। एषु सर्वसमयेषु निर्वर्तितापूर्वस्पर्द्धकप्रमाणं कियदिति चेत्[१] श्रेण्यसंख्यातैकभागः श्रेणिप्रथमवर्गमूलादसंख्यातगुणहीनः। सर्वपूर्वस्पर्द्धकेभ्योऽसंख्यातगुणहीनः। कुतः। पूर्वस्पर्द्धकेषु पल्यासंख्यातैकभागमात्रगुणहानयः। तासु एकगुणहानिस्थितस्पर्द्धकेभ्यः एषामसंख्यातगुणहीनत्वात्। अत्र सर्वत्र स्थित्यनुभागकांडकघातः गुणश्रेणिनिर्जरा च प्रागुक्तक्रमेण प्रवर्तते इति ज्ञातव्यम्। सयोगकेवलिचरमसमयपर्यंतं तत्प्रवृत्तेः प्रतिषेधाभावात्। अत्रापूर्वस्पर्द्धककरणं समाप्तं।। एवमंतर्मुहूर्तकालमपूर्वस्पर्द्धकानि कृत्वा इत उपर्यंतर्मुहूर्तकालं सूक्ष्मकृष्टीः करोति। पूर्वापूर्वस्पर्द्धकस्वरूपेणेष्टकापंक्तिसंस्थानसंस्थितयोगशक्तिमतिशयेन ह्रासयित्वा अपूर्वस्पर्द्धकसर्वजघन्यादिवर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदसमूहादसंख्यातगुणहीनाविभाग-प्रतिच्छेदकलापकलितानि सूक्ष्मसूक्ष्मखंडानि करोतीत्यभिप्रायः। तद्यथा प्रथमसमयकृष्टिकारकः पूर्वापूर्वस्पर्द्धकस्थितसर्वजीवप्रदेशान्अपकर्षणभागहारेण भक्त्वा तत्रैकखंडमेतावन्मात्र [व १२ / ओ] मपकृष्य पूर्वोक्तक्रमेण निक्षिपन् प्रथमसमयक्रियमाणकृष्टीनां प्रथमकृष्टौ बहुजीवप्रदेशान्

१. अत्र अनुभवनं संज्वलनेऽपूर्वस्पर्द्धकबत् ज्ञेयं अपूर्वस्पर्द्धकगतयोगमनुभवति।

प्रदेशान् ददाति। द्वितीयकृष्टौ विशेषहीनतया ददाति। अत्र विशेषागमननिमित्तभागहारप्रमाणं श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रनिषेकभागहारः। एवं विशेषहीनतया निक्षिपन् गच्छति यावत् चरमकृष्टिस्तावत्। चरमकृष्टितोऽपूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणायामसंख्यातगुणहीनतया ददाति। तत उपरि सर्वत्रापि विशेषहीनतया ददाति। एवं प्रथमसमयदीयमानक्रमनिरूपणं समाप्तम्। प्रथमसमयकृतकृष्टिप्रमाणमेकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकासमूहासंख्यातैकभागमात्रं संदृष्टिः- ४/a प्रथमसमयकृतकृष्टिसंदृष्टिः द्वितीयसमये प्रथमसमयापकृष्टजीवप्रदेशेभ्योऽसंख्यातगुणान् एतावतः व १२ / ओ / a जीवप्रदेशान् अपकृष्य तत्काल-निर्वर्त्यमानापूर्वकृष्टीनां प्रथमकृष्टौ बहुजीवप्रदेशान् a ददाति। द्वितीयकृष्टावसंख्यातैकभागेन विशेषहीनं ददाति। एवं विशेषहीनतया निक्षिपन् गच्छति यावत् द्वितीयसमयक्रियमाणापूर्वकृष्टीनां चरमकृष्टिस्तावत्। तच्चरमकृष्टितः प्रथमसमयकृतकृष्टीनां जघन्यकृष्टावसंख्यातगुणहीनत्वेन ददाति। प्राक्तनतत्रत्यजीवप्रदेशमात्रेणैककृष्टिविशेषेण च हीनतया ददातीत्यभिप्रायः। इत उपरि सर्वत्रापि विशेषहीनतयैव ददाति यावच्चरमकृष्टिस्तावत्। अत्र मध्यमखंडादिविकल्पेन द्रव्यनिक्षेपं पूर्वोक्तक्रमं ज्ञात्वा कुर्यात्। पुनश्चरमकृष्टितोऽपूर्वस्पर्द्धकस्यादिवर्गणायामसंख्यातगुणहीनतया ददाति। अत उपरि विशेषहीनतया ददाति। द्वितीयसमयकृतकृष्टिप्रमाणं प्रथमसमयनिर्वर्तितकृष्ट्यसंख्यातैकभागमात्रं।संदृष्टिः ४/aa उभयसमयकृतकृष्टिसंदृष्टिः 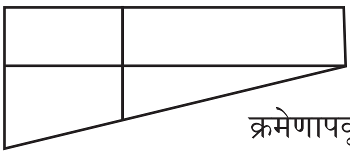 एवं प्रतिसमयमसंख्यात गुणहीनक्रमेणापूर्वकृष्टीर्निर्वर्तयति। जीवप्रदेशानसंख्यातगुणित - क्रमेणापकृष्यान्तर्मुहूर्तप्रमितकृष्टिकरणकालचरमसमयपर्यन्तं कृष्टिषु ददाति। स्पर्द्धकानां कृष्टीनां च को भेदः। प्रतिपदमविभागप्रतिच्छेदापेक्षया विशेषाधिकानि स्पर्द्धकानि, प्रतिपदं गुणिताः कृष्टयः इति भेदः। अत्र कृष्टिगुणकारप्रमाणं पल्यासंख्यातैकभागः। गुणनाक्रमः कथमस्तीति चेत्। जघन्यकृष्टौ सदृशाविभागप्रतिच्छेदसहितजीवप्रदेशा असंख्यातजगत्प्रतरप्रमाणाः सन्ति। तत्रैकजीवप्रदेशस्थितयोगाविभागप्रतिच्छेदेषु पल्यासंख्यातैकभागेन गुणितेषु द्वितीयकृष्टेरेकजीवप्रदेशस्थितयोगाविभागप्रतिच्छेदसमूहो भवति। द्वितीयकृष्टेरेकजीवप्रदेशस्थिताविभागप्रतिच्छेदकलापे[१] पल्यासंख्यातेन गुणिते तदनंतरोपरितन-कृष्टेरेकजीवप्रदेशस्थिताविभागप्रतिच्छेदप्रचयो भवति। एवं तृतीयादिकृष्टिष्वपि गुणकारनिरूपणं कुर्यात्। पुनश्चरमकृष्टेरेकजीवप्रदेशस्थितयोगाविभागप्रतिच्छेदपुंजे पल्यासंख्यातभागेन गुणिते अपूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणाया एकजीवप्रदेशप्रतिबद्धाविभागप्रतिच्छेदप्रकरो भवति। अयं पल्यासंख्या-

१. समूहे

तैकभागः कृष्टिस्पर्द्धकसंबंधिगुणकार इत्युच्यते। तत उपरि जीवप्रदेशाः स्पर्द्धकाविरोधेनाऽविभाग-प्रतिच्छेदैर्विशेषाधिका भवन्ति। एवमेकजीवप्रदेशानाश्रित्य गुणकारो निरूपितः। इदानीं नानाजीवप्रदेशगुणकार प्ररूप्यते। जघन्यकृष्टिस्थितसर्वाविभागप्रतिच्छेदेषु पल्यासंख्यातेन गुणितेषु द्वितीयकृष्टिगतसकलाविभागप्रतिच्छेदा भवन्ति। एवं चरमकृष्टिपर्यंतं गुणकारव्याप्तिं नयेत्। पुनश्चरमकृष्टेः सदृशधनिकनिखिलाविभागप्रतिच्छेदेभ्योऽपूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणासदृशधनिकाविभागप्रतिच्छेदसंदोहोऽसंख्यातगुणहीनः। कुतः। उपरितन[1] वर्गणाऽविभागप्रतिच्छेदगुणकारात् अधस्तनकृष्टिजीवप्रदेशगुणकारस्यासंख्यातगुणत्वात्। अत्र गुणकारः श्रेण्यसंख्यातैकभागः इति निश्चिनुयात्। इत उपर्यविभागप्रतिच्छेदाल्पबहुत्वमागमाविरोधेन ज्ञात्वा नयेत्। अनेन कृष्टि-गुणकारनिरूपणेन कृष्टिस्पर्द्धकयोर्जात्यंतरत्वं[2] सिद्धम्। एवमंतर्मुहूर्तकालनिर्वर्तितसकलयोग-कृष्टिप्रमाणं श्रेण्यसंख्यातैकभागः। कुतः। श्रेणिप्रथमवर्गमूलादसंख्यातगुणहीनानामासां श्रेण्यसंख्यातैकभागत्वस्य युक्तियुक्तत्वात्। अपूर्वस्पर्द्धकानामसंख्यातैकभागो भवति। कुतः। एकस्पर्द्धकवर्गणानामसंख्यातैकभागमात्राणामासामेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकासमूहासंख्यातैक-भागमात्रापूर्वस्पर्द्धानामसंख्यातैकभागत्वस्य निर्बाधबोधसंसिद्धत्वात्। एवं कृष्टिकरणकालः समाप्तः।। तदनंतरसमये पूर्वापूर्वस्पर्द्धकानि विनाशयति। कृष्टिकरणकालचरमसमयो यावत्तावत् पूर्वापूर्वस्पर्द्धकानि तु अविनष्टस्वरूपेन दृश्यमानानि भवन्ति। तदसंख्यातैकभागमात्रजीवप्रदेशानां समयं प्रति कृष्टिरूपेण परिणमनात्। इदानीं पूर्वापूर्वस्पर्द्धकानि सर्वाण्यपि निजस्वरूपं त्यक्त्वा कृष्टिस्वरूपेण परिणतानि भवन्ति। जघन्यकृष्टेरारभ्योत्कृष्टकृष्टिपर्यंतासु कृष्टिषु सदृशधनिकस्वरूपेण तेषां तदैव परिणमननियमादिति तात्पर्यम्। पूर्वापूर्वस्पर्द्धकानां नाशक्षणादारभ्य सयोगगुणस्थान-चरमसमर्यपर्यंतमंतर्मुहूर्तकालं कृष्टिगतयोगं वेदयति। कृष्टिगतयोगवेदकान्तर्मुहूर्तकालमवस्थित-स्वरूपेणानुभवेत् न वा इति चेत्। अस्या आशंकाया अयं परिहारः। प्रथमसमये कृष्टिवेदकः अधस्तनोपरितनासंख्यातैकभागप्रविष्टकृष्टीर्मध्यमकृष्टिरूपेण परिणमय्याऽवशिष्टबहुभागकृष्टीर्वे-दयति। द्वितीयसमये प्रथमसमयानुभूतकृष्टीना[3] मधस्तनोपरितनासंख्यातैकभागप्रमाणकृष्टयः[4] स्व-स्वरूपं त्यक्त्वा मध्यमकृष्टिरूपेण वेद्यमाना भवन्ति। ततः कारणात्प्रथमसमये योगाद्द्वितीय-

---

१. अपूर्वस्पर्द्धकजघन्यवर्गणाविभागप्रतिच्छेदगुणकारात्कृष्टिगतजीवप्रदेशाऽसंख्यातगुणा अतः एव तेषामविभागप्रदेशतिछेदाप्यऽसंख्यातगुणा

२. कृष्टेः श्रेण्यसंख्यातैकभागगुणकारः। स्पर्द्धकस्य पुनः पल्यासंख्यातैकभागो गुणकार अत एव

३. [४ १/प / a प a / a] ४. [४ १/प / a प a प / a aa] अपवर्तितमिदं [४ a / a प / a] उभयत्र विभज्य देयं [४ a २ / a प ५ / a] [४ a ३ / a प ५ / a]

समययोगोऽसंख्यातगुणहीनः। तृतीयादिसमयेष्वपि कृष्टिवेदकस्यायमेव क्रमः ततः कारणात्प्रथमसमये बहुकृष्टीर्वेदयति। द्वितीयसमये विशेषहीनतया वेदयति एवं सयोगचरमसमयो यावत्तावत् विशेषहीनक्रमेण कृष्टीर्वेदयतीति ग्राह्यम्। प्रथमसमयविनाशितकृष्टिभ्यो द्वितीयसमये असंख्यातगुणतया विनाशयति। एवं प्रतिसमयमधस्तनोपरितनासंख्यातैकभागप्रतिबद्ध-कृष्टीरसंख्यातगुणितक्रमेण मध्यमकृष्ट्याकारेण परिणमय्य विनाशयतीति ज्ञातव्यम्। एवमंतर्मुहूर्तकालं कृष्टिगतयोगमनुभवतः सूक्ष्मतरकाययोगवर्तमानस्य सयोगकेवलिनः तदवसरे कीदृशं ध्यानं वर्त्तते इति चेत्। सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति संज्ञं तृतीयं शुक्लध्यानं प्रवर्तते। अस्य ध्यानस्येदं नाम कथमन्वर्थमिति चेत्। क्रिया इति योगः सूक्ष्मतरकाययोगः यत्र ध्यानेऽस्ति तत् सूक्ष्मक्रिया नाम। प्रतिपतनरहितत्वादप्रतिपाति। इत्यस्य ध्यानस्य फलं किमिति चेत्। योगास्रवस्यात्यंतनाश एव फलम्। सूक्ष्मतरकायपरिस्पंदस्याप्यत्र[१] निरन्वयनिरोधसद्भावात्। अयमर्थश्चिरंतनाचार्यैरप्युक्तः।

[२]तृतीय काययोगस्य सर्वज्ञस्याद्भुतस्थितेः।
योगक्रियानिरोधार्थं शुक्लध्यानं प्रकीर्तितमित्येवं।।

सकलपदार्थविषयनिरंतरोपयोगपरिणतकेवलिनि एकाग्रचिंतानिरोधासंभवात् ध्यानं न घटते इति चेत्सत्यं साक्षात्कृतसकलपदार्थस्याक्रमोपयोगपरिणतस्य सर्वज्ञस्यैकाग्रचिंतानिरोधलक्षण-ध्यानासंभवस्य संमतत्वात् योगनिरोधमात्रे कर्मास्त्रवनिरोधलक्षणध्यानफलप्रवृत्तिदर्शने[३] कारणे कार्योपचारादिति न्यायेन चिंताहेतुभूतयोगः चिंता इति तस्य एकाग्रस्वरूपेणक्रियमाणनिरोधः[४] ध्यानमुपचर्यते इति न पूर्वोक्तदोषसंभवः। एकाग्रचिन्तानिरोधः इति व्याख्यानमाश्रित्य वा पूर्वोक्तदोषं परिहरेत्। अयमर्थः पुरातनयतिप्रधानैरपि प्रतिपादितः -

अंतर्मुहूर्तकालं चिंतावस्थानमेकवस्तुगतं।
छद्मस्थानां ध्यानं योगनिरोधो जिनानां तु।

इत्यनेन कारणेनोक्तलक्षणलक्षितसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिसंज्ञितपरमशुक्लध्यानमस्मिन्नवसरे योगनिरोधकेवलिकर्मादानसामर्थ्यनिरवशेषनिरोधनिमित्तं ध्यायति इतीदं सुघटितमेव। एवं ध्यायन् सयोगकेवली परमशुक्लध्यानप्रभावेन कृष्टिवेदकप्रथमसमयात्प्रभृति प्रतिसमयं कृष्ट्यसंख्यातैक-भागमसंख्यातगुणितक्रमेणानुभूय[५] विनाशयन् स्वगुणस्थानचरमसमयेऽवशिष्टकृष्ट्यसंख्यात-

---

१. निरवशेष २. शुक्लध्यान ३. फललक्षणकार्ये कारणभूतं ध्यानं फले ध्यानाऽऽरोपः कर्त्तव्यमिति।
४. एकाग्रचिंतानिरोध इत्युक्ते योगनिरोध इत्येकार्थः ५. मध्यमकृष्टिस्वरूपेण
६. अत्रैव सयोगिगुणस्थाने

बहुभागं[६] निरवशेषं विनाशयति। उपरितनगुणस्थाने योगप्रवृत्तेरत्यंतोच्छेदात् स्वगुणस्थानमन्त-र्मुहूर्तमात्रावशिष्टं तदा नामगोत्रवेदनीयानां चरमस्थितिकांडकं लांछन् सयोगकेवलिशेष-कालायोगकेवलिसर्वकालयोर्मेलने यल्लभ्यते तावतो निषेकान् त्यक्त्वा गुणश्रेणिशीर्षेण सह उपरितनसर्वनिषेकान् लांछति। तदा तत्प्रदेशसमूहमपकृष्य पूर्वोक्तक्रमेण निक्षिपन् उदयनिषेके स्तोकं ददाति। तदनंतरनिषेके असंख्यातगुणतया ददाति। एवमसंख्यातगुणश्रेण्या निक्षिपन् गच्छति यावत् स्थितिकांडकजघन्यस्थितेरधस्तनानंतरस्थितिस्तावत्। इदमेव सांप्रतिकगुणश्रेणिशीर्षं नाम एतस्मात् गुणश्रेणिशीर्षात् स्थितिकांडकजघन्यस्थितावसंख्यातगुणहीनं ददाति। तदुपरितनानंतर-स्थितेरारभ्य विशेषहीनतया निक्षिपन् गच्छति यावत्पुराणगुणश्रेणिशीर्षं तावत्। पुराणगुणश्रेणिशीर्षादुपरितनानंतरस्थितावसंख्यातगुणहीनतया ददाति। तत उपरि सर्वत्रापि विशेषहीनतया ददाति। तत उपरि गलितावशेषगुणश्रेणिर्भवतीति ज्ञातव्यम्। एवं प्रतिसमयं दीयमानद्रव्यस्यायमेव क्रमः यावच्चरमस्थितिकांडकद्विचरमफालिस्तावत्।। चरमस्थितिकांडक-चरमफालिद्रव्यं पूर्वोक्तक्रमेण निक्षिपन् उदयनिषेके स्तोकं ददाति। तदनंतरनिषेके असंख्यातगुणतया ददाति। एवमसंख्यातगुणश्रेण्या निक्षिपन् गच्छति यावदयोगकेवलिचरम-समयस्तावत्। अघातित्रयचरमस्थितिकांडकचरमफालिपतनसमये योगनिरोधक्रियासमाप्तिः सयोगगुणस्थानसमाप्तिश्च युगपदेव भवतः। इत उपरि गुणश्रेणिस्थित्यनुभागघातो नास्ति। अधःस्थितिगलनेनासंख्यातगुणश्रेणिरूपेण कर्मनिर्जरा प्रवर्तते। अस्मिन् समये नामगोत्रवेदनीय-स्थितिसत्त्वमायुःस्थितिसत्त्वं च समानं भवेत्। एवं सयोगगुणस्थानप्रतिबद्धप्ररूपणाप्रबंधः प्रपूर्णः

सयोगगुणस्थानकालपरिसमाप्त्यनंतरसमये क्रमप्राप्तायोगगुणस्थानमयं महात्मा आश्रित्यांतर्मुहूर्तकालं शैलेश्यप्राज्यसाम्राज्यलक्ष्मीवल्लभो भवति। सकलगुणशीलानामेकाधिपति-र्भवेदित्यभिप्रायः। तथा सति सयोगकेवलिनोपि इदं विशेषणं भवेत्। तत्रापि सकलगुणशीलाधिपत्यस्याविकलस्वरूपेण सत्त्वादिति पूर्वपक्षस्य परिहारः उच्यते। परमोपेक्षालक्षणयथाख्यातशुद्धपरमप्रकर्षप्राप्तसकलगुणनिधानसयोगकेवलिन्यपि सकलगुण-शीलानामविकलस्वरूपेण प्रादुर्भावेपि तत्र योगास्रवसत्त्वमात्रापेक्षया सकलसंवरसंसिद्धेरभावात् तद्विशेषनिरूपणं नास्ति। निरुद्धनिःशेषास्रवायोगकेवलिनि अबाधितरूपेण सुव्यक्ततया सकलसंवरोऽस्तीति शैलेश्यविशेषणं प्रतिपादितम्। अत एव पूर्वोक्तदोषस्यावकाशो नास्ति। अयोगकेवलिस्वरूपप्रतिपादकसूत्रं -

शैलेश्यं संप्राप्तो निरुद्धनिखिलास्रवः कृतार्थो यः।
बंधरजोरहितः स्यादयोगकेवलिजिनः सोयम्।।

एवमलेश्यास्वरूपेण शैलेश्यप्राप्तायोगकेवलिनि कीदृशं ध्यानं प्रवर्त्तते। इति चेत्। समुच्छिन्न क्रियानिवृत्तिरिति चतुर्थशुक्लध्यानं प्रवर्त्तते। अतिशयेन विनष्टसमुच्छिन्नसर्ववाग्मनःकाययोग-व्यापारत्वा[१]प्रतिपातित्वाभ्यामस्य समुच्छिन्नक्रियानिवृत्तिरित्यन्वर्थनाम। एवंविधशुक्लध्यानं लेश्याभावेनौदारिकतैजसकार्मणकायबंधनिर्मोचनमयं परमपुरुषो ध्यायतीत्यभिप्रायः। अत्रापि प्राग्वद्ध्यानोपचारक्रमं ब्रूयात्। वस्तुवृत्त्या एकाग्रचिंतानिरोधलक्षणध्यानप्रवृत्तिर्निरंतरोपयोग-परिणतकेवलिनि न संभवतीति निराकृतनिखिलास्रवस्य केवलिनः शेषकर्मनिर्जरानिमित्त-स्वात्मप्रवृत्तिरेव ध्यानमिति ग्राह्यम्। अयमर्थश्चिरंतनाचार्येणाप्युक्तः -

चतुर्थं स्यादयोगस्य शेषकर्म छिदुत्तमं।

फलमस्याद्भुतं धाम परतीर्थ्यदुरासदं[२]।।

इत्ययमयोगकेवली पंचह्रस्वाक्षरोच्चारणकालप्रमाणावच्छिन्ननिजाद्धा यथाक्रममधःस्थितिगलनेन क्षीणा सती तद्द्विचरमसमये जाज्वल्यमानपरमशुक्लध्यानशिखिशिखाशतप्रभूताहुति-करणेनानुदयवेदनीयदेवगतिपंचशरीरपंचतद्बंधनपंचतत्संघात षड्संस्थानत्र्यंगोपाङ्गषड्संहनन-पंचवर्णद्विगंधपंचरसाष्टस्पर्शदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीअगुरुलघुकोपघातपरघातोच्छ्वासप्रशस्ताप्रशस्त-विहायोगत्यपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरशुभाशुभदुर्भगसुस्वरदुस्वरानादेयायशस्कीर्तिनिर्माणनाम-नीचैर्गोत्रभेदभिन्नद्वासप्ततिप्रकृतीन्धनानि निर्दह्य तच्चरमसमये सोदयवेदनीयमनुष्यायु-र्मनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजातिमनुष्यानुपूर्वी त्रसबादरपर्याप्तसुभगादेययशस्कीर्तितीर्थकरनामोच्चैर्गोत्र-भेदेन त्रयोदशप्रकृतीस्तीर्थकररहितद्वादशप्रकृतीर्वा प्रक्षयं नीत्वा तदनंतरमयं परमात्मा समुत्तीर्णानन्तसंसारसागरः निर्दग्धसकलमलकलङ्कः पाषाणकिट्टकालिकाधातुवर्जित-जात्यकनकवत् लब्धात्मस्वभावः प्रदीपशिखावत् ऊर्ध्वगतिस्वभावेन मार्तण्डमण्डलसमवृत्तमनुष्य-लोकसुरेषत्प्राग्भारवसुन्धरोपरितनतनुवाताग्रिमलोकान्तमेकसमयेन प्राप्य गतिकारणधर्मास्ति-कायाभावात्तत उपरिगमनरहितः चरमशरीरात् किञ्चिन्न्यूनजीवघनपरिमाणतदाकारः अष्टगुणपरिपुष्टः कृतकृत्यः सकलजगन्मंगलीभूतः अमूर्तस्त्रिलोकचूडामणिः जाज्वल्यमान-सर्वांगीणानन्तकेवलज्ञानदर्शनविस्फुरणाक्रमसमाक्रान्तसर्वद्रव्यक्षेत्रकालभावः निरतिशयनिरुपम-निर्व्याबाधवृद्धिहानिवर्जितविषयातीतमितिरहितशाश्वतविशालस्वात्मोपादानसंसिद्धसर्वांग-समुत्पन्नपरमानन्तस्वरूपानन्तसुखसुधासारसागरान्तर्मग्नः शीतीभूतः सकलात्मगुणसम्पूर्ण-तापरमकाष्टाधिष्ठितो भवति। अत्र सर्वकर्मप्रक्षयोद्भूताविकलात्मस्वरूपोपलब्धिरेव मोक्षस्वरूपं। तेन प्रदीपनिर्वाणवत्स्कन्धसन्तानात्यन्तोच्छेदादभावमात्रो मोक्षः इति सौगतवचनमसमंजसम्।

---

१. द्वंद्वसमास २. परमतेषु दुर्लभं

कुतः। सकलपुरुषार्थसिद्धेः परमकाष्ठालक्षणमोक्षस्याभावमात्रत्वविरोधात्। अभावमात्रश्चेत्। प्रेक्षापूर्वकारिणां तन्निमित्तप्रयासाऽनर्थकः स्यात्। स चेत् तस्य कस्याप्यात्माभावनिमित्त-प्रयत्नाकरणात्। अत्रोपयोगी श्लोकः

अपूर्वलाभसमुद्दिश्य जनः सर्वोऽपि चेष्टते।
न हि मूलविनाशाय प्रेक्षावान् कश्चिदीहते।

अनेनैव बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्काराणां नवानामात्मगुणानामत्यन्तोच्छित्तौ गुणविरहितस्यात्मनः स्वात्मन्यवस्थानं निःश्रेयसमिति यौगमतमपि निराकृतम्। अत्रापि पुरुषार्थनाशं विना पुरुषार्थसिद्धेरत्यन्ताभावात्। विशेषलक्षणशून्यस्यावस्तुत्वात् शशविषाणवन्मुक्तात्मनामभावप्रसंगादिदमपि मतमसमीचीनम्। उपरतकार्यकारणसम्बन्ध-स्यात्मनः सुषुप्तपुरुषवदव्यक्तचैतन्यस्वरूपेणावस्थानं निर्वाणमिति सांख्यदर्शनमपि असद्दर्शनमेव तत्रापि पूर्वोक्ताशेषदोषस्यापरिहार्यत्वात्। अत एव स्वात्मोपलब्धिः सिद्धिरिति सिद्धान्तपद्धतिरेव विचारचतुरचेतः शिखरिशिखरारूढत्वेन युक्तिसिद्धा भवति। सिद्धस्वरूपनिरूपकसूत्रसार्थः -

कृत्स्नकर्मक्षयादूर्ध्वं निर्वाणमधिगच्छति।
तत्स्वभावत्वतो जीवो निर्व्याघातप्रदीपवत्।।१।।
दग्धे बीजे यथात्यन्तप्रादुर्भवति नांकुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे नारोहति भवांकुरः।।२।.
उत्पत्तिश्च विनाशश्च प्रकाशतमसोरिह।
युगपद्भवतो यद्वत्तथानिर्वाणकर्मणोः।।३।.
संसारविषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखं।
परमाल्हादरूपं तदनौपम्यमनुत्तरं।।४।।
श्लोकमेकं विजानानः शास्त्रं ग्रंथार्थतोपि वा।
ह्लादते मानुषस्तीव्रं किंपुनः सर्वभाववित्।।५।।
लोकतत्सदृशो ह्यर्थः कृत्स्नेऽप्यन्यो न विद्यते।
उपमीयेत तद्येन तस्मान्निरूपमं स्मृतं।।६।।
त्रिषु लोकेषु कालेषु पिण्डितात्प्राणिनां सुखात्।
अनन्तगुणितं प्राहुः सिद्धक्षणसुखं बुधाः।।७।।
सा क्रमज्ञानदृग्वीर्याः साव्याबाधावगाहनाः।
सौक्ष्म्यागुरुलघुत्त्वाढ्याः सम्यक्त्वगुणभूषिताः।।८।।

त्रिलोकीशेखरा नित्या: शीतीभूता निरंजना:।
कृतार्था: सिद्धसाध्यास्ते सिद्धा: न: सन्तु सिद्धिदा:।।९।।
य: कृष्टिस्पर्द्धकानां व्यतनुत विधिवल्लक्षणं तद्विकल्पं।
तसाकल्येन [1]प्रमाणं नशनविधिमतो मोक्षसंप्राप्त्युपायम्।
भक्त्या भव्या भजध्वं कृतियतिवृषभं तं सदालोकदृष्टिं
षड्खंड श्री[2] धवाद्यद्विजविभु[3] बलवद्वाहुबल्यर्च्यपादम्।।१०।।
ये कृत्वा धवलां जयादिधवलां सिद्धांतटीकां सतीं
चंद्रार्कद्युतिवत्समस्तभुवनं प्राकाशन् संततम्।
[4]तत्कृष्टं च महापुराणमनिशं तान् संघनिस्तारकान्
वंदध्वं वरवीरसेनजिनसेनाचार्यवर्यान् बुधा:।।११।।
कीर्तिछत्रयुतस्तपोबलवृत्तश्चारित्रसिंहासन:
शीलास्त्र: शमचामर: पृथुदयादुर्ग: सुदृक्कोशवान्।
प्रज्ञाचक्रधर: सुयोगसचिव: सिद्धांतषड्खंडकं
यो रक्षन् मुनिचंद्रसूरिनृपतिं तं नौमि मूर्द्धादरात् ।।१२।।
दु:खौर्वं [5]जननादिवीचिनिचयं मिथ्यात्वनक्राकुलं
मोहांबुं नरकादिगर्तममितं घोरं भवांभोनिधिं
यत्सत्याखिलतत्त्वदेशनमहानावाहमुत्तीर्णवान्।
सैद्धांताधिपनेमिचंद्रगणिनं तं नं नमामि त्रिधा।।१३।।
विनेयसुखकारकं सकलसंघनिस्तारकं
स्मरेभमददारकं बुधमनस्तमोहारकं
त्रिगौरवनिवारकं श्रुतसमुद्रसंपूरकं
नमामि गुणधारकं सकलचंद्रभट्टारकम्।।१४।।
तपोनिधिमहायश:
सकलंचंद्रभट्टारकप्रसाधिततपोबलाद्विपुलबोधसच्चक्रत:।
श्रुतांबुनिधिनेमिचंद्रमुनिपप्रसादागता
त्प्रसाधितमविघ्नत: सपदि येन षड्खंडकं।।१५।।

---

१. संख्या २. माधवचंद्रपति ३. चतुरंगनावत् ४. संक्षिष्टधा ५. दु:खौर्वं दु:खवडवामुखं

अमुना माधवचंद्रदिव्यगणिना त्रैविद्यचक्रेशिना
क्षपणासारमकारिबाहुबलिसन्मंत्रीशसंज्ञप्तये।
शककाले शरसूर्यचंद्र[१] गणिते जाते पुरे क्षुल्लके
शुभदे दुंदुभिवत्सरे विजयतामाचंद्रतारं भुवि।।१६।।

क्षपणासार संपूर्णम्।।

।।श्री।।।।श्री।।।।श्री।।।।श्री।।।।श्री।।

संवत् १६२० वर्षे। आषाढ शुदि शुक्रे। श्रीमूलसंघे भट्टारकश्रीसकलकीर्तिस्तत्पट्टे। भ० श्री भुवनकीर्तिस्त० भ० श्री ज्ञानभूषणस्त० भ० श्री विजयकीर्तिस्त० भ०। श्री सुभचंद्र स्त० भ० श्री सुमतिकीर्तिस्तदाम्नाये गिरपूरवास्तव्य हुंबड ज्ञातीय को० साईया भार्यासहि जलदे सूत जोधा भा० जमणादे। तयो: पुत्रास्त्रय: प्र०नाकर भा० नाकरदे द्वितीयपुत्र शंकर भा० प्रेमलदे तृतीयपुत्र सिंघराज भा० सुंनादे एतेषां मध्ये यो योधाख्यस्तेन ज्ञाणावरणीकर्मक्षयार्थं। श्री लब्धिसारनाम ग्रंथं लिखाप्य ब्रह्मश्रीधनकराय प्रदत्तं।।

संवत १६९२ श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे मलयखेड सिंहासनाधीश्वर भ०श्रीदेवेंद्रकीर्तिस्तत्पट्टे भ० श्रीधर्मचंद्रस्त० भ श्री धर्मभूषणस्तत्पट्टे भ० श्री देवेन्द्रकीर्ति स्त० भ० श्री कुमुदचंद्रस्तत्पट्टे भट्टारक श्री श्री श्री श्री श्री धर्मचंद्राणामिदं पुस्तकं लब्धिसारनामपुस्तकं।

* * * * *

---

१. ११२४

दातारों की शुभनामावली

१	ब्र. नमिता जैन	बिना	५१,०००
२	बडजात्या परिवार	इंदौर	५०,०००
३	प्रा. शांतीलाल बडजात्या	इंदौर	२१,०००
४।	ब्र. आभा दीदी जैन	दिल्ली	१५,०००
५	इंदूमती अण्णासाहेब खेमलापूरे	घटप्रभा	११,१११
६	सौ. विभा राजेश जैन	दिल्ली	११,०००
७	श्री. दीपक आर. शहा	कोल्हापूर	१०,०००
८	डॉ. शिरीषजी शहा।	इंडी	१०,०००
९	यवगौंडा चौगुले		५,०००
१०	ब्र. गीता मोदी	बिना	५,१००
११	गुप्तदान		५,०००
१२	बी. बी. तुरमंदी	बेळगांव	५,०००
१३	सौ. भारती प्रकाश पाटील		५,००८
१४	सरोज प्रभाकर जोहरापूरकर	कारंजा	५,०००
१५	सौ. धनश्री वीरधवल मेहता	सोलापूर	५,५००
१६	अरूणा हिरालाल दोशी	पुणे	३,०००
१७	गुप्तदान		३,३००
१८	रमेश दोशी	अकलूज	२,५००
१९	भ. महावीर जयंती महोत्सव समिती	कारंजा	२,५००
२०	भारती ए. शेंडगे	सांगाव	२,००१

दातारों की शुभनामावली

२१	सुभाष गांधी	फलटण	२,०००
२२	दिपा जैन	दिल्ली	२,१००
२३	रमेश सखाराम शहा	फलटण	२,०००
२४	मनिषा एस् रोटे	बाहुबली	१,००१
२५	वीतराग स्वाध्यय मंडळ	कोल्हापूर	१,६००
२६	विरश्री चौगुले	-	१,१११
२७	प्रकाश डी मुरगी	बेळगांव	१,०००
२८	मृदुला एस् शहा	पुणे	१,०००
२९	लीलावती भूपाल होसकल्ले	अकिवाट	१,०००
३०	ब्र. स्मिता अजित वणकुद्रे	सोलापूर	१,०००
३१	गुप्तदान	-	१,१०१
३२	परिमल प्रमोद रुईवाले	कारंजा	१,०००
३३	रिदीत राहूल जैन	-	५००
३४	श्रीमती अरूणा सौदे	कोल्हापूर	५००
३५	ललीता मगदूम	कोल्हापूर	५००
३६	अविनाश ऐनापूरे	-	५००
३७	मंजू जैन	कोल्हापूर	५००
३८	शकुंतला बा. पाटील	गडहिंग्लज	५०१
३९	सरोजनी महावीर गाठ	हुपरी	५००
४०	सौ. वृषाली विपुलकुमार शहा	सोलापूर	५००